जातकपारिजातः
गोपेश कुमार ओझा

श्रीदैवज्ञवैद्यनाथविरचितः

जातकपारिजातः

श्रीदैवज्ञवैद्यनाथविरचितः

जातकपारिजातः

सौरभभाष्यसहितः

प्रथमो भागः

भाष्यकारः
ज्योतिषकलानिधि दैवज्ञशिरोमणि
पण्डित गोपेश कुमार ओझा
एम० ए०, एल० एल० बी०
सुगमज्योतिषप्रवेशिका, अङ्कविद्या (ज्योतिष) भावार्थबोधिनी फलदीपिका, हस्तरेखा-विज्ञान, जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका), त्रिफला (ज्योतिष) भारतीयलग्नसारिणी, Predictive Astrology of the Hindus, 1000 Aphorisms on Love and Marriage (Part I: Western Astrology, Part II : Hindu Astrology), Your Stars and Love Life, How to Interpret your Horoscope आदि पुस्तकों के रचयिता ।

मो ती ला ल ब ना र सी दा स
दिल्ली □ वाराणसी □ पटना

आमुखम्

सकुचत नवजलजात लाज सफरी उर आवे ।
मृगमदभञ्जन होय गर्व खञ्जन को जावे ।।
कोटिकाम अभिराम अमिय आकर रतनारे ।
शोभा सिन्धु ललाम सकलकवि बरनत हारे ।।
उठत आँकुरे जिन हेरे कमला हृदय ।
करहु नयन वे बाँकुरे भक्त ओर प्रभु हो सदय ।।

श्री परमेश्वर की असीम अनुकम्पा से प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ 'जातक पारिजात' (भाग १) और उसका हिन्दी भाषा में यह सौरभ भाष्य पाठकों के सम्मुख उपस्थित है । ज्योतिष में संहिता, होरा और सिद्धान्त, यह तीन प्रधान विषय हैं । इनमें जातकपारिजात होरा के अन्तर्गत आता है। इस पुस्तक का निर्माण विख्यात कीर्ति सर्वार्थचिन्तामणिकार श्री वेंकटाद्रि के पुत्र श्री वैद्यनाथ ने किया। यह समस्त प्राचीन फलित ग्रन्थों का सारभूत है । इस ग्रंथ का निर्माण १३४७ शक अर्थात् १४८२ विक्रम संवत् में हुआ । यह बहुत प्राचीन ग्रन्थ है और इसमें बहुत से प्राचीनतर ज्योतिष ग्रंथों का सार है । भिन्न-भिन्न स्थानों पर श्रीपतिपद्धति, सारावली, बृहज्जातक, सर्वार्थचिन्तामणि आदि ग्रन्थों की छाया मिलती है। बृहज्जातक के तो बहुत से श्लोक अक्षरशः जातकपारिजातकार ने ले लिये हैं । स्वयं श्री वैद्यनाथ ने लिखा है कि गर्ग, पराशर आदि आचार्यों के शास्त्रों का सार इस ग्रन्थ में है। विशेषकर सारावली, सर्वार्थचिन्तामणि एवं बृहज्जातक का सार तो इस ग्रंथ में भरा पड़ा है ।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक राशिशील अध्याय में ग्रन्थकर्ता ने अपना कुछ परिचय दिया है—यह भारद्वाज कुल के ब्राह्मण थे, श्री वेंकटाद्रि के पुत्र थे। ग्रंथ के अन्त में भी यही परिचय मिलता है। पुराने समय में ग्रंथकार अपना विशेष परिचय नहीं देते थे ।

कुछ लोगों का विचार है कि 'प्रतापरुद्रीय' के लेखक वैद्यनाथ ही 'जातक पारिजात' के रचयिता हैं । दैवज्ञ केशव जिनका 'केशव जातक' ज्योतिष शास्त्र-का प्रसिद्ध ग्रंथ है लिखते हैं कि वह वैद्यनाथ के शिष्य थे । मुहूर्ततत्त्व में कहा है—

ज्योतिःशास्त्रमहार्णवादुदहरन्मौहूर्ततत्त्वं बहु ।
व्याप्यल्पं गुरुवैद्यनाथचरणद्वन्द्वे रतः केशवः ।।

मुहूर्ततत्त्व केशव दैवज्ञ का लिखा हुआ है और इस श्लोक में केशव ने स्पष्ट लिखा है कि इनके गुरु वैद्यनाथ थे। यह वैष्णव थे क्योंकि जातकपारिजात के तृतीय श्लोक में इन्होंने श्री रघुनाथजी की वन्दना की है। यह भी सर्वसम्मत है कि यह दक्षिण भारत के रहने वाले थे। क्योंकि बारह राशियों के वास जिन बारह देशों में इन्होंने बताये हैं, उनमें अधिकांश दक्षिण भारत में हैं—

क्रमात्पाटलकर्णाटचेरचोलवसुन्धराः ।
पाण्डचकेरलकोल्लासमलयावनिसैन्धवाः ।।
उदवपाञ्चालयवनकोशलक्षितिसंज्ञकाः ।
मेषादिसर्वराशीनां वासदेशाः प्रकीर्तिताः ।।

पहले अध्याय में इन्होंने राशियों के शुभाशुभ फल दिए हैं अर्थात् किस राशि की क्या विशेषता है। वैद्यनाथ दैवज्ञ ने लिखा है कि मीन, वृश्चिक, वृषभ ब्राह्मण राशियाँ है। कुम्भ, मिथुन, तुला वैश्य हैं, कन्या, मकर, कर्क, शूद्र राशियां हैं, धनु, मेष व सिंह क्षत्रिय राशियाँ हैं। यह कथन पराशर के मत से भिन्न है क्योंकि उनके अनुसार कर्क, वृश्चिक, मीन ब्राह्मण राशियां हैं। मेष, सिंह, धनु क्षत्रिय राशियां हैं। कुम्भ, तुला, मिथुन वैश्य राशियाँ हैं, वृषभ, कन्या, मकर शूद्र राशियाँ हैं। यह कर्क के स्थान में वृषभ और वृषभ के स्थान में कर्क लेखक का अपना मत है अथवा लिपिकारों की त्रुटि है। बहुत सी जगह इन्होंने विशेष बात कही है।

आरः स्ववारनवभागदृगाणवग
मीनालिकुम्भमृगतुम्बुरुयामिनीषु ।
वक्रे च याम्यदिशि राशिमुखे बलाढ्यो
मीने कुलीरभवने च सुखं ददाति ।।
जा० पा० श्लोक अध्याय २, ६३

अर्थात् मंगल, मेष, मीन वृश्चिक, कुंभ, मकर में भी अच्छा फल दिखाता है और बलवान् होता है। दशम में कर्क का मंगल अच्छा फल दिखाता है। अपनी नीच राशि मकर में भी बृहस्पति बलवान् होता है।

आमुखम्

मीनालिचापकटके निजवर्गवारे
मध्यंदिनोदगयने यदि राशिमध्ये ।
कुंभे च नीचभवनेपि वली सुरेज्यो
लग्ने सुखे च दशमे बहुवित्तदः स्यात् ॥

इस प्रकार बहुत सी बातें इसमें विशेष कही गई हैं जिनका अनुभव पाठक स्वयं करेंगे ।

गोपेश कुमार ओझा

३० जून १९७९
६३, दरियागंज
दिल्ली-११०००२

विषय-सूची

अध्याय १

राशिशीलाध्याय

अथ मंगलाचरण करते हैं। श्रेय की प्राप्ति और प्रत्यूह निवारण के लिये मंगलाचरण आवश्यक है।

> श्रीकान्ताजशिवस्वरूपममरज्योतिर्गणस्वामिनं
> मायातीतमशेषजीवजगतामीशं दिनेशं रविम्।
> नत्वा गर्गपराशरादिरचितं सङ्गृह्य होराफलं
> वक्ष्ये जातकपारिजातमखिलज्योतिर्विदां प्रीतये ॥ १ ॥

श्री—लक्ष्मी के कान्त (पति) भगवान् विष्णु, अज—ब्रह्मा तथा भगवान् शंकर (इस त्रयीमय) के स्वरूप, देवताओं तथा ज्योतिर्गण (आकाशीय समस्त भासमान ग्रह, नक्षत्र, ताराओं) के स्वामी, मायातीत (माया से परे), अशेष (जिनकी गणना नहीं हो सकती) सकल चराचर जीवों के स्वामी, दिनेश भगवान् सूर्य को प्रणाम करके, गर्ग, पराशर आदि ज्योतिष के प्रवर्तक तथा आचार्यों ने जो रचना की है, उसमें से होराफल (जन्मकुण्डली के फलादेश सम्बन्धी शास्त्र) संग्रह कर समस्त ज्योतिष के ज्ञाताओं की प्रीति के लिए जातक-पारिजात (नामक ग्रंथ) कहता हूँ।

"त्रिमूर्तिस्तु दिवाकरः" इस उक्ति से भगवान् सूर्य ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के सम्मिलित स्वरूप-त्रिगुणात्मक हैं। भगवान् एक ही है, किन्तु उनको त्रिगुणात्मक मान कर उनकी तीन रूपों में आराधना की जाती है। प्रकृति को भी 'अजा-मेकां लोहित-शुक्ल-कृष्ण-वर्णाम्' इस प्रकार त्रिगुणात्मक माना है। कहा भी है :—

> रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे।
> अजाय सर्ग-स्थिति-नाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥

सांख्य में प्रकृति और पुरुष को ब्रह्म का स्वरूप माना है।

सूर्य को इसी कारण पुराणपुरुष कहा गया है। 'पूषा पुराणपुरुषः स नमोऽस्तु तस्मै।' पुराणपुरुष भगवान् का नाम है। वाल्मीकीय रामायण में भी सूर्य के लिये कहा गया है 'एष ब्रह्मा च विष्णुश्च, शिवः स्कन्दः प्रजापतिः'। सूर्य को नमस्कार करते हैं; उस सूर्यबिम्ब में ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का ध्यान किया जाता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि इस ग्रंथ में सूर्य को प्रणाम करते

हुए, उसी में त्रिमूर्ति (भगवान्) का सन्निवेश क्यों किया गया ? किसी अन्य स्वरूप में त्रिमूर्ति का ध्यान क्यों नहीं किया गया ? इसका कारण है। ज्योतिष शास्त्र में सूर्य का प्राधान्य है। कमलाकर ने कहा है :—

तेजसां गोलकः सूर्यो ग्रहर्क्षाण्यम्बुगोलकाः।
प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिप्रदीपिताः॥

सूर्य में देवता, ऋषिगण, गन्धर्व, अप्सराओं आदि का निवास माना गया है। विशद विवरण के लिये देखिये वायुपुराण का अध्याय ५२। कहते हैं :—

ब्रह्मोपेतस्तथा दक्षो यज्ञोपेतश्च स स्मृतः।
एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु॥

वेदांगत्वेन ज्योतिष को चक्षु (नेत्र) माना है :—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।

चक्षु में तेजस् तत्त्व की प्रधानता है। तेजस् तत्त्व के अधिष्ठाता सूर्य हैं। इस कारण सूर्य के रूप में भगवान् का मंगलाचरण किया गया है। वराह-मिहिर ने भी बृहज्जातक के प्रारंभ में भगवान् सूर्य की स्तुतिरूप में मंगलाचरण किया है।

जातकपारिजातकार प्रारंभ में ही कहते हैं कि गर्ग, पराशर आदि ने फलित ज्योतिष के सम्बन्ध में जो कहा है—उसी में से संग्रह कर, इस ग्रंथ की रचना करता हूँ। प्राचीन आचार्य कौन-कौन हैं ?

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरंगिराः॥
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥

इस श्लोक में श्रीकान्त (विष्णु), ब्रह्मा और शंकर—इस क्रम से त्रिमूर्ति का ध्यान क्यों किया ? ब्रह्मा, विष्णु, शिव—यह क्रम क्यों नहीं रखा ? इसमें दो हेतु हैं : श्री शब्द विशेष मंगलवाचक है। दूसरा हेतु यह है कि तृतीय श्लोक में भगवान् रामचन्द्र की स्तुति की गई है, इससे प्रकट है कि ग्रंथकार के आराध्यदेव विष्णु (के अवतार भगवान् राम) थे। इस कारण त्रिमूर्ति का ध्यान करते हुए सर्व-प्रथम श्रीकान्त का नामोल्लेख किया॥ १॥

भारद्वाजकुलोद्भवस्य विदुषः श्रीव्यङ्कटाद्रेरिह
ज्योतिःशास्त्रविशारदस्य तनयः श्रीवैद्यनाथः सुधीः ।
होरासारसुधारसज्ञविबुधश्रेणीमनःप्रीतये
राशिस्थाननिरूपणादि सकलं वक्ष्ये यथाऽनुक्रमम् ॥ २ ॥

अब अपना संक्षिप्त परिचय देते हैं। भारद्वाज कुल में उत्पन्न ज्योतिष शास्त्र में विशारद, विद्वान् श्रीव्यङ्कटाद्रि का पुत्र मैं वैद्यनाथ सुधी (विद्वान्) होराशास्त्र रूपी अमृत के रसज्ञ विद्वत्समूह के मन की प्रीति के लिये अर्थात् आनन्द के लिये राशिस्थाननिरूपण आदि समस्त विषय क्रमपूर्वक कहता हूँ ॥ २ ॥

इष्ट देवता को प्रणाम

प्रणम्य वन्दारुजनाभिवन्द्यपदारविन्दं रघुनायकस्य ।
सङ्गृह्य सारावलिमुख्यतन्त्रं करोम्यहं जातकपारिजातम् ॥ ३ ॥

देवताओं से वन्दित श्री रघुनायक (भगवान् रामचन्द्र) के चरणकमलों को प्रणाम कर सारावली आदि मुख्य ग्रंथों से संग्रह कर, मैं जातकपारिजात की रचना करता हूँ ॥ ३ ॥

अथ मेषादि राशियों के नामान्तर

मेषाजविश्वक्रियतुम्बुराद्या वृषोक्षगोताबुरुगोकुलानि ।
द्वन्द्वं नृयुग्मं जुतुमं यमं च युगं तृतीयं मिथुनं वदन्ति ॥ ४ ॥

कुलीरकर्काटककर्क्कटाख्याः कण्ठीरवः सिंहमृगेन्द्रलेयाः ।
पाथोनकन्यारमणीतरुण्यस्तौली वणिक्जूकतुलाधटाश्च ॥ ५ ॥

अल्यष्टमं वृश्चिककौर्पिकीटाः धन्वी धनुश्चापशरासनानि ।
मृगो मृगास्यो मकरश्च नक्रः कुम्भो घटस्तोयधराभिधानः ॥६॥

मीनान्त्यमत्स्यपृथुरोमझषा वदन्ति
दस्रादिकर्क्षनवपादयुताः क्रियाद्याः ।
चक्रस्थिता दिविचरा दिननाथसंख्याः
क्षेत्रर्क्षराशिभवनानि भसंज्ञितानि ॥ ७ ॥

मेष, वृष आदि राशियों के प्रसिद्ध नाम हैं। परन्तु गौ (गाय) के धेनु, पयस्विनी आदि अन्य पर्याय भी हैं—उसी प्रकार मेष आदि के अन्य पर्याय हैं—वही इन श्लोकों में बतलाते हैं। इनको जान लेना आवश्यक है; क्योंकि यदि कहीं मेष की जगह किसी ग्रंथ में अज या क्रिय शब्द आ गया तो पाठक की गति रुक न जावे कि यह 'अज' क्या है ?

(१) मेष—अज, विश्व, क्रिय, तुम्बुर, आद्य। (२) वृष—उक्ष, गौ, ताबुरु, गोकुल। (३) मिथुन—द्वन्द्व, नृयुग्म, जुतुम, यम, युग, तृतीय। (४) कर्क—कुलीर, कर्काटक, कर्क्कट। (५) सिंह—कण्ठीरव, मृगेन्द्र, लेय। (६) कन्या—पाथोन, रमणी, तरुणी। (७) तुला—तौली, वणिक्, जूक, घट। (८) वृश्चिक—अलि, अष्टम, कौर्पि, कीट। (९) धनु—धन्वी, चाप, शरासन। (१०) मकर—मृग, मृगास्य, नक्र। (११) कुंभ—घट, तोयधर। (१२) मीन—अन्त्य, मत्स्य, पृथुरोम, झष।

पंडितों की प्रणाली है कि एक ही शब्द के पदार्थों में से कभी किसी का प्रयोग करते हैं, कभी किसी का। यथा—

अज-कर्कास्र-कन्यैण-युग्मस्थ-केन्द्रगः फणी।
पराशरमुनिः प्राह राजयोगकरः स्वयम्॥

अज (मेष), कर्क, अस्र (अष्टम अर्थात् वृश्चिक), कन्या, एण (मृग अर्थात् मकर), युग्म (मिथुन) में यदि राहु केन्द्र में हो तो राजयोगकारक होता है। वृश्चिक के लिये अस्र, मकर के लिये एण का प्रयोग किया है।

अब जातकादेशमार्ग का एक श्लोक लीजिये—

पापः पापेक्षितो वा यदि बलरहितः पापवर्गस्थितो वा
पुत्रस्थानाधिपो वा यदि मृतभपतिर्मान्दिराशीश्वरो वा।
नीचस्था चामरेड्यो मधुपगतसितः पापसंयुक्तशुक्रः
कुर्युस्ते दारनाशं मदनमुपगताः सौम्ययोगेक्षणोना॥

(इस श्लोक की व्याख्या के लिये देखिये जातकादेशमार्ग-चन्द्रिका पृष्ठ ४०)। यहाँ वृश्चिक में शुक्र हो, इसके लिये 'मधुपगतसितः' लिखा है। मधुप=अलि=वृश्चिक। अन्य ज्योतिष के ग्रंथों में इन राशियों के नामान्तर भी लिखे हैं, वे भी देख लेने चाहिये। आकाशचक्र में—अश्विनी नक्षत्र से प्रारंभ कर नौ नौ चरणों की एक राशि होती है। प्रत्येक नक्षत्र में चार चरण होते हैं। इस प्रकार अश्विनी के चार चरण, भरणी के चार चरण तथा कृत्तिका का एक चरण यह मेष राशि हुई। कृत्तिका के बाकी तीन चरण, रोहिणी के चार चरण, मृगशिरा के प्रारंभ के दो चरण यह वृष राशि हुई। इसी प्रकार नौ नौ नक्षत्र चरणों की एक राशि होती है। यह चक्र में स्थित हैं। चक्र क्या? आकाश में पृथ्वी के

परिभ्रमण का मार्ग। या यह कहिये कि सूर्य जिस मार्ग में चलता हुआ प्रतीत होता है। प्रतीत होता है क्यों कहा? क्योंकि सूर्य वास्तव में चलता नहीं है—मालूम होता है कि चलता है। यह चक्र वास्तव में गोल नहीं है, अण्डाकार है।

यहाँ मूल में दस्र शब्द आया है। दस्र अश्विनी का नाम है। देखिये अध्याय ९ श्लोक ४०। मूल में 'दिननाथ-संख्या' लिखा है। दिननाथ का अर्थ है सूर्य। सूर्य की संख्या १२ है–'द्वादशात्मा दिवाकरः।' रुद्र का अर्थ ११, दिश् (दिशा) का १०, नन्द का ९, वसु का ८ इत्यादि। संस्कृत में संख्या-निर्देश की यह एक प्रणाली है।

भ, क्षेत्र, राशि, भवन, ऋक्ष–ये सब राशि के नामान्तर हैं। बृहज्जातक में भी लिखा है: 'राशि-क्षेत्र गृहर्क्ष भानि भवनञ्चैकार्थ-सम्प्रत्यये' ॥ ४-७ ॥

कालपुरुष के अंगों–मेषादि राशियों का न्यास

भचक्र (राशिचक्र) को कालपुरुष का शरीर (आपादमस्तक) मानकर किस अंग में कौन-सी राशि है, यह बतलाते हैं:–

कालात्मकस्य च शिरोमुखदेशवक्षोहृत्कुक्षिभागकटिबस्तिरहस्यदेशाः।
ऊरू च जानुयुगलं परतस्तु जङ्घे पादद्वयं क्रियमुखावयवाः क्रमेण ॥८॥

(१) मेष–शिर। (२) वृष–मुख। (३) मिथुन–वक्षस्थल (छाती)। (४) कर्क–हृदय। (५) सिंह–उदर (पेट) तथा कुक्षि। (६) कन्या–कटि (कमर)। (७) तुला–बस्ति। (८) वृश्चिक–लिंग (जननेन्द्रिय)। (९) धनु–दोनों ऊरु (जाँघ)। (१०) मकर–दोनों घुटने। (११) कुंभ–दोनों पिंडलियाँ। (१२) मीन–दोनों पैर।

वस्ति क्या? रुद्रभट्ट इसकी व्याख्या करते हैं। नाभि से लिंगमूल तक एक खडी रेखा खींचिये। इस रेखा को दो समान भागों में विभाजित कीजिये। ऊपर का आधा भाग कन्या राशि के अन्तर्गत। नीचे का आधा भाग बस्ति। लिंगमूल से गुदावधि वृश्चिक राशि। अन्य शरीर के भाग प्रसिद्ध हैं—उनकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

कालपुरुष के किस अंग में कौन-सी राशि न्यस्त है, यह बतलाने का प्रयोजन क्या? स्वल्पजातक में कहा है:—

कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत् प्रसवकाले।
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च ॥

अर्थात् यह विचार करना चाहिये कि कौन सी राशि में शुभ ग्रह का योग है और किस राशि में पाप ग्रह का! यहाँ योग से शुभ ग्रह की दृष्टि तथा युति

दोनों समझना चाहिये। जो राशि शुभ ग्रह युत दृष्ट हो—उस राशि का काल पुरुष के शरीर के जिस भाग में न्यास है—जातक का वह भाग (शरीर का अंग) पुष्ट (स्वस्थ) होगा। और जिस राशि में पापग्रह है या जिस पर पापग्रह की दृष्टि है—उस राशि से सम्बन्धित (कालपुरुष के शरीर में राशिन्यास जो बताया गया है, उसके अनुसार) शरीर का भाग (अंग) उपद्रित (रोगयुक्त) होगा ॥ ८ ॥
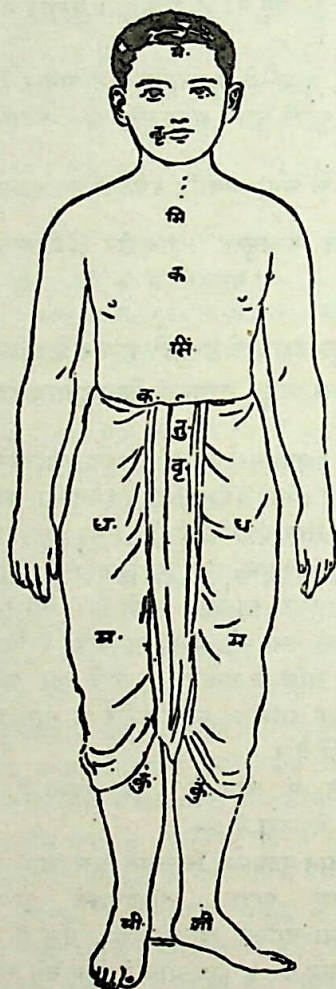
मीन आदि राशियों का स्वरूप वर्णन

व्यत्यस्तोभयपुच्छमस्तकयुतौ मीनौ सकुम्भो नर-
स्तौली चापधरस्तुरङ्गजघनो नक्रो मृगास्यो भवेत्।
वीणाढ्यं सगदं नृयुग्ममबला नौस्था ससस्यानला
शेषाः स्वस्वगुणाभिधानसदृशाः सर्वे स्वदेशाश्रयाः ॥ ६ ॥

इस श्लोक में राशिस्वरूप वर्णन किसी क्रम-विशेष से नहीं कहा गया है। मीन का आकार दो ऐसी मछलियों की तरह है कि एक का मुख दूसरी की पूंछ में लगा है। कुंभ का स्वरूप है कि किसी पुरुष के कंधे पर रिक्त कुंभ है। पुरुष के हाथ में तुला (तराजू) यह तुला का रूप है। धनु का स्वरूप इस प्रकार है नीचे घोड़ा, उस पर आरूढ़ पुरुष के हाथ में खिंचा हुआ धनुष। मकर का नीचे का आधा मगर (जलजन्तु-विशेष जिसे मगरमच्छ कहते हैं) ऊपर का मुख (शिरोभाग) हरिण के सदृश। मिथुन—स्त्री और पुरुष का जोड़ा—स्त्री के हाथ में वीणा, पुरुष के हाथ के गदा। कन्या—नौका में कन्या के हाथ में सस्य (अन्न) और अग्नि। मेष का जैसा नाम वैसा ही रूप है अर्थात् मेंढे के समान मेष, बैल के समान वृषभ, केकड़े की तरह कर्क और शेर के स्वरूप की भाँति सिंह, बिच्छू के समान वृश्चिक।

पाश्चात्य ज्योतिष में हम लोगों की तरह मेष के लिये १, वृष के लिये २, मिथुन के लिये ३ आदि लिखने की प्रथा नहीं है। जन्मकुण्डली चक्र में, राशि-विशेष का निर्देश करने के लिये निम्नलिखित स्वरूप वाले चिह्न प्रयुक्त किये जाते हैं।

♈	♉	♊	♋	♌	♍
मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या

यहाँ मेंढे के सीग (शृंग) का आकार मेष का प्रतीक है। वृषभ के शृंग का आकार वृषभ का। अन्योन्याश्लिष्ट युगल का प्रतीक मिथुन का चिह्न। पीछे की पुच्छ सिंह का, योनि का आकार कन्या का लक्षण है।

♎	♏	♐	♑	♒	♓
तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुंभ	मीन

यहाँ तराजू का स्वरूप तुला का, उठा हुआ डंक वृश्चिक का, शर धनु का। इस प्रकार सांकेतिक लक्षण से राशि का निर्देश किया जाता है। यहाँ पाश्चात्य ज्योतिष के राशिनिर्देशक आकृतियों का परिचय कराने में दो हेतु हैं। एक तो

यह कि राशि के स्वरूप पर आधारित चिह्न किन्हीं-किन्हीं देशों में प्रचलित हो गये हैं। दूसरा यह कि हिन्दी के पाठक यदि इन आकारों (चिह्नों) से परिचित हो जायें तो उन्हें अंग्रेजी के पंचांग तथा अंग्रेजी की लग्नसारिणी देखने में सौकर्य होगा। हमारे कुंभ का स्वरूप है कंधे पर रिक्त घट, किन्तु अंग्रेजी ज्योतिष में स्वरूप है—मनुष्य जलपूर्ण घट से पानी गिरा रहा है। जलतरंग का द्योतक वहाँ कुंभ का सांकेतिक आकार है—जो ऊपर दिया गया है।

जातकपारिजातकार कहते हैं कि सब राशियाँ अपने-अपने स्थान में रहती हैं, यथा तुला दुकान में, मछली जल में—जो जिसका स्वाभाविक स्थान है। परन्तु यवनेश्वर राशियों के स्वरूप और आश्रय का विशेष विस्तार से वर्णन करते हैं :—

आद्यः स्मृतो मेषसमानमूर्तिः कालस्य मूर्द्धा गदितो पुराणैः।
सोजाविका-संचर-कंदराद्रि तेनाग्निधात्वाकररत्नभूमिः ॥
वृषाकृतिस्तु प्रथितो द्वितीयः स वक्त्रकंठायतनं विधातुः।
वनाद्रिसानुद्विपगोकुलानां कृषीवलानामधिवासभूमिः ॥
वीणागदाभृन्मिथुनं तृतीयः प्रजापतेः स्कन्धभुजांसदेशे।
प्रनर्तको गायनशिल्पकस्त्री क्रीडारतिद्यूतविहारभूमिः ॥
कर्की कुलीराकृतिरंबुसंस्थो वक्षःप्रदेशे विहितश्च धातुः।
केदारवापीपुलिनानि तस्य देवांगनारम्यविहारभूमिः ॥
सिंहश्च शैले हृदयप्रदेशं प्रजापते पंचममाहुराद्याः।
तस्याटवी-दुर्ग-गुहावनाद्रि व्याधावनीदुर्गवनप्रदेशाः ॥
प्रदीपिकां गृह्य करेण कन्या नौस्था जले षष्ठमिति ब्रुवन्ति।
कालार्थधीरा जठरं विधातुः सशाद्वला स्त्रीरतिशिल्पभूमिः ॥
वीथ्यां तुलापण्यधरो मनुष्यः स्थितः सनाभीकटिबस्तिदेशे।
शुक्लार्थवीण्यापणपट्टनाध्वसार्थाधिवासोन्नतसस्यभूमिः ॥
श्वभ्रोष्टमो वृश्चिकविग्रहस्तु प्रोक्तः प्रभो मेढ्रगुदप्रदेशे।
श्वभ्रविषाश्मगुप्तिर्वल्मीककीटाजगराहिभूमिः ॥
धन्वी मनुष्यो हयपश्चिमार्धस्तमाहुरूरूभुवनप्रणेतुः।
समस्थित—व्यस्त—समस्तवाजिसुरास्त्रभृद्यज्ञरथाश्वभूमिः ॥
मृगार्द्धपूर्व मकरोर्द्धगात्रो जानुप्रदेशं तमुशन्ति धातुः।
नदीवनारण्यसरोव्रचनूपश्वभ्रादिवासो दशमः प्रदिष्टः ॥
स्कंधे तु रिक्तः पुरुषस्य कुंभो जंघे तमेकादशमाहुरार्याः।
शुष्कोदकाधारकुशस्य पक्षी, स्त्रीशौंडिको द्यूतनिवासभूमिः ॥
जले तु मीनद्वयमर्त्यराशिः कालस्य पादौ विहितौ वरिष्ठौ।
स पुण्यदेव-द्विज-तीर्थ-भूमिर्नदी-समुद्रांबुचयाधिवासः ॥

विज्ञ पाठक अवलोकन करेंगे कि जातकपारिजात में कालपुरुष के किस अंग में किस राशि का न्यास है और यवनेश्वर के मत में कहीं-कहीं विभिन्नता है ॥ ९ ॥

मेषादि राशियों का स्थान-वर्णन

यवन-मतानुसार मेषादि का स्थान, ऊपर व्याख्या में दिया जा चुका है। अब जातकपारिजातकार राशियों का स्थान कहते हैं :—

मेषस्य धातुकररत्नधरातलं स्यात्
उक्ष्णस्तु सानुकृषिगोकुलकाननानि ।
द्यूतक्रियारतिविहारमही युगस्य
वापीतटाकपुलिनानि कुलीरराशेः ॥१०॥

कण्ठीरवस्य घनशैलगुहावनानि
षष्ठस्य शाद्वलवधूरतिशिल्पभूमिः ।
सर्वार्थसारपुरपण्यमही तुलायाः
कीटस्य चाश्मविषकीटबिलप्रदेशाः ॥११॥

चापस्य वाजिरथवारणवासभूमिः,
एणाननस्य सरिदम्बुवनप्रदेशाः ।
कुम्भस्य तोयघटभाण्डगृहस्थलानि
मीनाधिवाससरिदम्बुधितोयराशिः ॥१२॥

प्रत्येक राशि का वास-स्थान बताया जाता है :—

(१) मेष—जहाँ धातु होते हैं (लोहे, ताँबे, चाँदी, सोने आदि की खान) जहाँ रत्न (पृथ्वी में) पाये जाते हैं। (२) वृष—खेती का स्थान, पहाड़ी के ऊपर चौरस (समतल) भूमि जहाँ गाय बैल आदि रहते हों, जंगल। (३) मिथुन—जहाँ जुआ (सट्टा आदि) खेला जाता हो, रति (स्त्री पुरुष संप्रयोग), विहार (आमोद-प्रमोद का स्थान)। (४) कर्क—बावड़ी, कुआं, नदी का किनारा (संक्षेप में जल-स्थान)। (५) सिंह—निविड़ पहाड़ों की गुफा, घने वन। (६) कन्या—तृणयुक्त (शस्यश्यामल) भूमि हो, वधुओं का रतिस्थान (शयनकक्ष), जहाँ शिल्प का काम होता हो। (७) तुला—ऐसा बाज़ार जिसकी दुकानों में बहुमूल्य पदार्थों का क्रय-विक्रय होता हो। मूल में शब्द आया है—सर्वार्थसार—सब धनों का सार, पुरपण्य (नगर की दुकानें)। (८) वृश्चिक—पत्थर (अर्थात् पत्थरों के

बीच की संधि या रंध्रस्थान), विषैले कीड़े जिन विलों (भूमि के अन्तर्गत सूक्ष्म कुटिल मार्ग से जिनमें प्रवेश किया जाता है) में रहते हैं। (९) धनुः—जहाँ घोड़े, हाथी, रथ आदि रखे जाते हों। (१०) मकर—जहाँ नदियों का जल हो, वन। यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि मकर पूर्वार्द्ध (०° से १५° तक) चतुष्पाद-वश्य है, इसलिये इस भाग को वन और उत्तरार्द्ध (१५° से ३०° तक) जलचरवश्य है—इसलिये इसको जल-स्थान समझना। स्मरण दिलाया जाता है कि मकर का स्वरूप है 'एणास्यो मकरः'—पूर्वार्द्ध मृग—(वनचर), पश्चिमार्द्ध मकर (जलचर)। (११) कुंभ—जहाँ जल, घट (कलश या जलकलश), भाण्ड (बरतन) रखे जाते हों (१२) मीन—नदी, समुद्र, जलराशि (तालाब आदि जहाँ मछलियाँ रहती हैं)।

राशियों के निवासस्थान का ज्योतिष में क्या प्रयोजन ? इनका फलित ज्योतिष में क्या उपयोग और कैसे किया जाये ? इसके कई उपयोग हैं। कोई वस्तु खो जाये तो कहाँ मिलेगी या मिल सकेगी ? यदि जन्मकुण्डली में लाभ-स्थान में कोई राशि पड़ी है—तो उस स्थान सम्बन्धी स्थान के कार्यों से लाभ होगा। जिसके जन्मलग्न (या नवांश लग्न वलवान् हो तो नवांश) में जो राशि पड़ी है—तत्सम्बन्धी स्थान में रहना जातक पसन्द करेगा।

इस सम्बन्ध में—जन्मलग्न चर है, स्थिर या द्विस्वभाव—इस आधार पर पाश्चात्य ज्योतिष का एक सिद्धान्त बतलाया जाता है। मान लीजिये किसी सड़क पर तीन मकान उपलब्ध हैं, या तीन भूमिखंड उपलब्ध हैं—जिन पर आप मकान बनवा सकते हैं। अब आप आदि का मकान (या भूमिखण्ड) लें, या मध्य का, या अन्त का ? यदि आपका चर लग्न है तो प्रारंभ का लीजिये, स्थिर लग्न है तो मध्य का और द्विस्वभाव लग्न है तो अंत का। यह विशेष शुभ होगा। प्रसंग से पाश्चात्य ज्योतिष की चर्चा कर दी गई है। अब प्रकृत विषय पर आइये ॥ ११-१२ ॥

राशियों का मान पुरुष-स्त्री संज्ञा आदि

ह्रस्वा गोऽजघटाः समा मृगनृयुक्चापान्त्यकर्काटकाः
दीर्घा वृश्चिककन्यकाहरितुला मेषादिपुंयोषितौ।
प्रागादिक्रियगोनृयुक्कटकभान्येतानि कोणान्विता-
न्याहुः क्रूरशुभौ चरस्थिरतरद्वन्द्वानि तानि क्रमात् ॥१३॥

मान—मेष, वृष और कुंभ ह्रस्व; मिथुन, कर्क, धनु, मकर तथा मीन सम (न ह्रस्व, न दीर्घ) और सिंह, कन्या, तुला तथा वृश्चिक दीर्घ हैं।

ह्रस्व, सम, दीर्घ का क्या अर्थ ?

यदि राशियों का अंशात्मक मान लिया जाये तो सभी राशियाँ ३०-३० अंश की हैं–अर्थात् समान हैं। किन्तु पृथिवी का परिभ्रमण मार्ग सर्वथा गोल नहीं है; अण्डाकार है, और पृथिवी अपनी धुरी पर सीधी नहीं है, ध्रुव तारे की ओर इस का उत्तरी भाग सदैव रहता है–इस कारण अपनी धुरी पर झुकी हुई है। सन् १९०५ में इसका झुकाव २३°-२७′-५.९२′ था। सन् १९७४ में २३°-२६′-३३.६′ था। इस प्रकार दीर्घकाल में इस झुकाव में सूक्ष्म अन्तर आ जाता है। अस्तु, उपर्युक्त दो कारणों से प्रत्येक राशि का किसी स्थान पर उदयमान समान नहीं होता। यह उदयमान में अन्तर अक्षांश के कारण होता है। भूमध्य रेखा ०° अक्षांश पर है। इसके उत्तर में उत्तरीय अक्षांश होता है। इसके दक्षिण में दक्षिणीय अक्षांश। भूमध्य रेखा कहिये, ०° अक्षांश कहिये एक ही बात है। हमारे शास्त्रों में, लंका के स्थल-विशेष पर ०° अक्षांश होने के कारण, इसको 'रावणराजधान्याम्' इस शब्द से उल्लेख किया है। वास्तव में रावण की राजधानी का कोई अन्य महत्व नहीं है। ०° अक्षांश का महत्त्व है। लंका या ०° अक्षांश पर सायन उदयमान निम्नलिखित हैं :—

	घ. प. वि.		घ. प. वि.
मेष	४-३९- ०	तुला	४-३९- ०
वृष	४-५९-१०	वृश्चिक	४-५९-१०
मिथुन	५-२१-५०	धनु	५-२१-५०
कर्क	५-२१-५०	मकर	५-२१-५०
सिंह	४-५९-१०	कुंभ	४-५९-१०
कन्या	४-३९- ०	मीन	४-३९- ०

इस प्रकार ०° अक्षांश पर मेष, कन्या, तुला, मीन का उदयमान समान है। वृष, सिंह, वृश्चिक तथा कुंभ का एक सदृश है। तथा मिथुन, कर्क, धनु, मकर का एक-सा है।

पंचांग में जो पलभादी रहती है (पलभा भेद अक्षांश भेद से होता है— देशान्तर भेद से नहीं। यह स्मरण रखना चाहिये)। उसे तीन स्थानों पर रखिये और क्रमशः (i) १० (ii) ८ तथा (iii) $\frac{१०}{३}$ से गुणा करने पर जो गुणनफल आये उसे तीन स्थानों पर पृथक्-पृथक् रखिये। पलभा प्रायः पंचांगों में दी रहती हैं, तथापि जिनके पास विस्तृत पंचांग नहीं है, उनके लाभार्थ आगे दी जाती है।

अक्षांश	पलभा	अक्षांश	पलभा
१	०-१२-३४	२	०-२५- ९
३	०-३७-४४	४	०-५०-२१
५	१- ३- ०	६	१-१५-४४
७	१-२८-२३	८	१-४१-१०
९	१-५४- ०	१०	२- ६-५४
११	२-१९-५५	१२	२-३३- ०
१३	२-४६-१२	१४	२-५९-२८
१५	३-१२-५४	१६	३-२६-२४
१७	३-४०- ५	१८	३-५३-५६
१९	४- ७-५५	२०	४-२२- १
२१	४-३६-२२	२२	४-५०-५२
२३	५- ५-३८	२४	५-२०-३१
२५	५-३५-४२	२६	५-५१- ७
२७	६- ६-५०	२८	६-२२-४८
२९	६-३९- ४	३०	६-५५-४१
३१	७-१२-३६	३२	७-२९-५३
३३	७-४७-३१	३४	८- ५-३८
३५	८-२४- ७	३६	८-४३- ५
३७	९- २-३५	३८	९-२२-३०
३९	९-४३- १	४०	१०- ४- ९
४१	१०-२५-५०	४२	१०-४८.१८
४३	११-११-२४	४४	११-३५-२४
४५	१२- ०- ०	४६	१२-२५-३७
४७	१२-५२- ५	४८	१३-१९-३८
४९	१३-४८-१८	५०	१४-१८- ३
५१	१४-४९- ८	५२	१५-२१-३२
५३	१५-५५- ३	५४	१६-३१- १

भारतवर्ष हमारा देश ८° से ३६°-४८′ उत्तरीय अक्षांशों के मध्य में है। इस कारण हमने अपनी पुस्तक में ८° अक्षांश से प्रारंभ कर ३६°-४८′ उत्तरीय अक्षांश तक ही लग्नसारणियाँ दी हैं। इसमें सूर्योदय निकाले बिना, सूर्य स्पष्ट किये बिना जन्म के घंटे, मिनट से ही साक्षात् लग्न स्पष्ट हो जाता है (अंश, कला, विकला तक)। इष्टकाल निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिज्ञासु

पाठक अवलोकन करें। अस्तु, प्रकृत विषय पर आइये। इस पुस्तक में पिछले पृष्ठ पर ५४ अंश तक की पलभा इसलिये दे दी गई है कि बाहर के देशों की पलभा का ज्ञान होने से, विदेशों में जन्मे व्यक्तियों का लग्न स्पष्ट करने में सुविधा हो।

अस्तु, पलभा से लग्नमान कैसे ज्ञात करना—यह बताया जाता है। काशी का अक्षांश २५°-१९′ उत्तरीय है। २५° अक्षांश की पलभा ५-३५-४२ है। २६° की पलभा ५-५१-७। इस कारण त्रैराशिक से २५°-१९′ (काशी) की पलभा ५-४०-३५ हुई। अब इसको (i) १० (ii) ८ तथा (iii) १०/३ से गुणा कर—गुणनफल को तीन स्थान पर पृथक् रखा।

(i) ५६-४५-५० (ii) ४५-२६-४० (iii) १८-५५-१३.३

यह चर खंड हुए। अब ऊपर जो लंकोदय (0° अक्षांश) के लग्नमान दिये हैं, उनमें मेष के मान में (i) ५६-४५-५० घटाया तो काशी का मेषोदय मान हुआ। लंकोदय के वृष के मान में से (ii) ४५-२६-४० घटाया तो काशी का वृषोदय मान हुआ। लंकोदय के मिथुनोदय मान में से (iii) १८-५५-१३.३ घटाया तो काशी में मिथुन लग्न के उदय का मान हुआ।

लंकोदय के कर्कमान में (iii) १८-५५-१३.३ जोड़ा तो काशी का कर्कोदय मान हुआ। लंकोदय के सिंहमान में (ii) ४५-२६-४० जोड़ा तो काशी में सिंह लग्न के उदय का मान आया। लंकोदय के कन्यामान में (i) ५६-४५-५० जोड़ा तो काशी का कन्योदय मान आया।

(१) मेष लं० २७९-०-०	वृष लं० २९९-१०-०
— ५६-४५-५०	— ४५-२४-४०
का० २२२-१४-१०	२५३-४५-२०
मिथुन लं० ३२१-५०-०	कर्क लं० ३२१-५०-०.६
— १८-५५-१६.६	+१८-५५-१.६
का० ३०२-५४-४३.३३	का० ३४०-४५-१६.६६
सिंह लं० २९९-१०-०	कन्या लं० २७९-०-०
+ ४५-२४-४०	+ ५६-४५-५०
३४४-३४-४०	३३५-४५-५०

जो मेष का लग्नमान हो वही मीन का होता है, जो वृष का वही कुंभ का। मिथुन और मकर का उदयमान समान होता है। कर्क और धनु का एक समान। जो सिंह का वही वृश्चिक का और कन्या एवं तुला का एक समान। यह सायन लग्न के मान हैं। सायन लग्न निकालकर अयनांश घटाने से निरयण लग्न स्पष्ट होता है।

इस प्रकार मेषादि द्वादश राशियों का उदयमान काशी में निम्नलिखित हुआ। ऊपर जो पल दिये गये हैं उन्हें ६० से विभाजित कर घड़ी पल बना लीजिये।

राशि	मान	राशि	मान
	घ. प. वि. प्र.		घ. प. वि. प्र.
मेष	३-४२-१४-१०	मीन	३-४२-१४-१०
वृष	४-१३-४५-२०	कुंभ	४-१३-४५-२०
मिथुन	५- २-५४-४३.३	मकर	५-२ -५४-४३.३
कर्क	५-४०-४५-१६.६	धनु	५-४०-४५-१६.६
सिंह	५-४४-३४-४०	वृश्चिक	५-४४-३४-४०
कन्या	५-३५-४५-५०	तुला	५-३५-४५-५०
योग	३०- ०- ०- ०		३०- ०- ० -०

एक पल में २४ सेकिंड होते हैं। ज्योतिष में गणित प्रायः घड़ी, पल में ही दिया रहता है। ऊपर जो प्रत्येक राशि का काशी में उदयमान घड़ी, पल, विपल, प्रतिविपल में दिया गया है वह केवल गणित प्रक्रिया समझाने के लिये है, इसलिये लग्नानयन के निम्नलिखित मान मानने चाहियें।

मेष तथा मीन ३ घड़ी ४२ पल, वृष तथा कुंभ ४ घड़ी १४ पल, मिथुन तथा मकर ५ घड़ी ३ पल, कर्क तथा धनु ५ घड़ी ४१ पल, सिंह तथा वृश्चिक ५ घड़ी ४४ पल एवं कन्या तथा तुला ५ घड़ी ३६ पल। योग ६० घड़ी।

इन राशियों के उदयमान की जो इतनी विस्तृत व्याख्या की गई है इसके तीन कारण हैं :

प्रथम तो यह कि ग्रंथकार ने मेष को ह्रस्व कहा और मीन को सम (न ह्रस्व न दीर्घ)। यह शुद्ध नहीं है क्योंकि मेष और मीन एक सदृश मान है। इस कारण सारावली (अध्याय ३ श्लोक ३७) का मत उचित है कि मेष, वृष, कुंभ, मीन ह्रस्व हैं। मिथुन, कर्क, धनु, मकर सम (न ह्रस्व, न दीर्घ) हैं और सिंह, कन्या, तुला तथा वृश्चिक दीर्घ हैं :–

ह्रस्वास्तिमिगोऽजघटा मिथुनधनुर्कर्किमृगमुखाश्च समाः।
वृश्चिक-कन्या-मृगपतिवणिजो दीर्घाः समाख्याताः॥

द्वितीय हेतु व्याख्या का यह है कि आगे इसी अध्याय के श्लोक ५६ में उदयमान का प्रकरण आया है। इसलिये इस प्रकरण को समझाना आवश्यक था। तृतीय हेतु यह है कि जातक-पारिजात ज्योतिष का विशिष्ट ग्रंथ है। जो इस

ग्रंथ को पढ़ें उन्हें ज्योतिष का सर्वांगीण ज्ञान होना चाहिये। प्रति ग्रक्षांश में किस प्रकार राशियों के उदयमान घटते बढ़ते रहते हैं, यह हृदयस्थ हो जाने से ज्योतिषी यह भूल नहीं करें कि मद्रास का जन्म हो ग्रौर काशी की लग्नसारिणी से लग्न निकालें या काशी का जन्म हो ग्रौर दिल्ली की लग्नसारिणी से लग्न निकालें। ग्राज ज्योतिष-जगत में यह महान् ग्रनर्थ हो रहा है कि ज्योतिषी जी के पास जहाँ का पंचाग है—उसमें जो सारिणी दी गई है, उसी सारिणी से लग्न निकाल लेते हैं न जन्म-स्थान के ग्रक्षांश का विचार करते हैं न ग्रयनांश संस्कार। इस कारण जन्मलग्न प्रारंभिक या ग्रंत का ग्रंश हुग्रा तो ग्रशुद्ध हो जाता है ग्रौर लग्न स्पष्ट ग्रशुद्ध होने से दशवंर्ग कुंडलियाँ भी प्रायः ग्रशुद्ध हो जाती हैं।

ऊपर जो ग्रक्षांश के ग्राधार पर, लंकोदय के मेष, वृष, मिथुन के मान में से घटाना ग्रौर कर्क, सिंह तथा कन्या के मान में जोड़ना—यह जो पद्धति बताई गई है, वह उत्तरीय ग्रक्षांशों के लिये है। दक्षिणीय ग्रक्षांशों में मेषादि राशियों के उदयमान भिन्न हैं। काशी का ग्रक्षांश २५°-१९′ उत्तरीय है। मान लीजिये लंका से दक्षिण किसी स्थान की २५°-१९′ दक्षिणीय ग्रक्षांश की जन्मकुंडली बनानी है तो क्या प्रक्रिया? जहाँ जन्म हुग्रा है वहाँ का सूर्योदय ज्ञात कर इष्ट निकालिये। मान लीजिये इष्टम् ३०-५६ है, सूर्य स्पष्ट के ग्रागे काशी की सारिणी में (उदाहरण के लिये संवत् २०३१ के विश्वपंचाग का पृष्ठ ४० देखिये, मान लीजिये सूर्य स्पष्ट ४-१५ है तो देखिये।

सूर्य : ४-१५	२५-५५-४९
इष्टम्	३०-५६-००
योग	५६-५१-४९

ग्रब ग्राप साधारणतः ५६-५१-४९ इस संख्या से लग्न देखते हैं। दक्षिणीय ग्रक्षांश २५-१९ का लग्न निकालना हैं। इसमें निम्नलिखित प्रक्रिया विशेष है। ऊपर जो ५६-५१-४९ ग्राया इसमें ३० घड़ी जोड़िये। योगफल ग्राया ८६-५१-४९। ६० से ग्रधिक है इस कारण ६० कम किया। शेष २६-५१-४९। ग्रब काशी की सारिणी में देखिये, इस संख्या से लग्न ग्राता है ४।२० (ग्रर्थात् सिंह के २० ग्रंश) इसमें ६ राशि जोड़िये। योग हुग्रा १०।२० ग्रर्थात् यदि सूर्य स्पष्ट ४-१५ हो तो २५°-१९′ दक्षिणीय ग्रक्षांश पर ३०।५६ इष्ट पर कुंभ के २० ग्रंश लग्न स्पष्ट होगा।

मैंने संस्कृत तथा हिन्दी की जो भी पुस्तकें देखीं, उनमें किसी में भी दक्षिण ग्रक्षांशों पर लग्न कैसे निकालें यह देखने में नहीं ग्राया। ग्राज सहस्रों भारतीय परिवार सुदूर दक्षिण देशों में रहते हैं तथा दक्षिण ग्रफ्रीका, दक्षिण ग्रमेरिका,

मलेशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि के वासी हमारे देश में, हमारे विद्वानों से जन्मकुंडली बनवाना चाहते हैं, इसलिये भूमध्य रेखा से दक्षिण स्थित स्थानों में जन्म लेने वालों का उत्तरीय अक्षांशों की सारिणी से लग्न कैसे निकालना इसका ज्ञान हो जाये ।

यह स्मरण रखना चाहिये कि भूमध्य रेखा से दक्षिण में जो देश हैं—वहाँ हमारे यहाँ जिनका उदयमान ह्रस्व है वह दीर्घ हो जाता है और हमारे यहाँ जिनका उदयमान दीर्घ है, उनका उदयमान ह्रस्व हो जाता है। उदाहरण के लिये अक्षांश २५°-१९′ दक्षिणीय पर मेषादि का उदयमान क्या होगा ?

मेष तथा मीन — २७९ + ५६-४५-५० = ३३५-४५-५०

वृष तथा कुंभ — २९९-१० + ४५-२४-४० = ३४४-३४-४०

मिथुन तथा मकर — ३२१-५० + १८-५५-१६.६ = ३४०-४५-१६.६

कर्क तथा धनु — ३२१-५० − १८-५५-१६.६ = ३०२-५४-४३.३

सिंह तथा वृश्चिक — २९९-१० − ४५-२४-४० = २५३-४५-२०

कन्या तथा तुला — २७९ − ५६-४५-५० = २२२-१४-१०

फलित ज्योतिष में ह्रस्व, सम, दीर्घ राशियों का क्या उपयोग ?

लग्न शिर है, द्वितीय स्थान नेत्र, तृतीय बाहु—इस प्रकार मेष से मीन तक १२ राशियों का जिस प्रकार कालपुरुष के अंगों में न्यास किया जाता है, उसी प्रकार लग्न से व्यय पर्यन्त द्वादश भावों के जातक के १२ अंग मानने चाहियें—

भाव	अंग	भाव	अंग
लग्न	शिर	तृतीय	कंठ, वक्षस्थल का
द्वितीय	चेहरा, नेत्र		ऊपरी भाग, बाहु

भाव	अंग	भाव	अंग
चतुर्थ	हृदय, वक्षस्थल का नीचे का भाग	नवम	जाँघें, कूल्हे
पंचम	पेट (नाभि के ऊपर)	दशम	घुटने, पीठ
षष्ठ	नाभि के नीचे, बस्ति के ऊपर		
सप्तम	बस्ति	एकादश	पिंडलियाँ
अष्टम	गुह्य अंग	द्वादश	पैर

देखिये किस भाव में दीर्घ राशि है। यदि राशि दीर्घ है और उसका स्वामी भी दीर्घ राशि में है तो उस भाव सम्बन्धी शरीर का अंग बड़ा होगा। उदाहरण के लिये सिंह लग्न हो, लग्नेश सूर्य वृश्चिक में हो तो सिंह और वृश्चिक दोनों दीर्घ राशि होने से सिर बड़ा होगा; क्योंकि लग्न से सिर का विचार होता है।

मान लीजिये मेष लग्न है। मेष का स्वामी मंगल मीन में है। मेष और मीन दोनों ह्रस्व राशि हैं। इसलिये सिर छोटा होगा।

लेकिन यह भूमध्य रेखा से उत्तर के देशों में जन्म लेने वाले व्यक्तियों को (यथा भारत में) लागू होगा। आस्ट्रेलिया भूमध्य रेखा 0° अक्षांश से सुदूर दक्षिण में है। वहाँ सिंह और वृश्चिक ह्रस्व हैं। इसलिये लग्नेश सूर्य वृश्चिक में हो तो सिर छोटा होगा। मेष लग्न हो, लग्नेश मंगल मीन में हो तो वहाँ मेष और मीन दोनों दीर्घ हैं, इस कारण सिर बड़ा होगा। इसी लिये ज्योतिष में कहा है 'देश, काल, पात्र' का विचार करना। ज्योतिष में बुद्धि और तारतम्य की बहुत आवश्यकता है।

पुरुष स्त्री संज्ञा—मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुंभ पुरुष राशियाँ हैं। वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन स्त्री। ऊपर जो पुरुष या स्त्री संज्ञा कही हैं, इसका क्या उपयोग? प्रश्नकुंडली में—जिसका पता लगाना है—या संतानविचार में पुत्र होगा या कन्या आदि निर्णय में इससे सहायता मिलती है। ऊनी (१-३-५ आदि) राशियाँ पुरुष हैं। पूरी (२-४-६ आदि) राशियां स्त्री हैं। इन्हें क्रमशः ओज और युग्म राशियाँ भी कहते हैं। पुरुष राशि में ग्रह होने से जातक ओजस्वी, वीर, साहसी और पुरुषार्थी होता है। स्त्री राशि में ग्रह होने से मृदु स्वभाव, सुखी और भोगी होता है। इस सिद्धान्त पर स्त्री की कुंडली में लग्न और चन्द्रमा की ओज (पुरुष) राशि में अच्छा नहीं माना है; क्योंकि ऐसा होने से 'पुरुषाकृति शीलयुता' स्त्री मर्दानी होती है। आगे ग्रहों के प्रकरण (द्वितीय अध्याय) में यह बतलाया गया है कि कौन से ग्रह पुरुष, कौन से स्त्री और कौन से नपुंसक माने गये हैं। पुरुष ग्रह पुरुष राशि, पुरुष नवांश में बली

माने गये हैं—स्त्री ग्रह स्त्री राशि स्त्री नवांश में। पुरुष नवांश क्या? जो राशियाँ पुरुष हैं वे नवांश भी पुरुष हैं यथा मेष, मिथुन आदि। जो राशियाँ स्त्री हैं, वे नवांश भी स्त्री हैं—वृष, कर्क आदि। सारावली में कल्याण वर्मा कहते हैं :

ओजेपूग्राः पुरुषाः सौम्या युग्मेषु सर्वभवनेषु।

लग्न और चन्द्र ओज में है या सौम्य में यह देखना चाहिये। लग्न और चन्द्र की प्रधानता है। वैसे अधिक ग्रह ओज राशि में होंगे तो ओज राशि के गुण जातक में अधिक होंगे। यदि अधिक ग्रह युग्म राशि में हों तो उसके चापल्य आदि। रुद्रभट्ट कहते हैं कि ओज और युग्म राशि के लक्षण केवल जातकों में ही घटित नहीं होते, अपितु सर्व पदार्थों में। ओज राशियों के द्रव्य (पदार्थ) भी रूक्ष होते हैं, युग्म राशि में सौम्य। यदि मैथुन विषयक प्रश्न हो तो विषम राशि में एक बार मैथुन कहना। युग्म राशि में दो बार।

दिन में जन्म हो तो सूर्य पिता, शुक्र माता। रात्रि में जन्म हो तो शनि पिता, चन्द्रमा माता। दिन में निषेक हो तो सूर्य पिता, शुक्र माता, शनि चाचा, चन्द्रमा मौसी। रात्रि में निषेक हो तो शनि पिता, सूर्य चाचा, चन्द्रमा माता, शुक्र मौसी। यदि ऊपर बताये गये नियमानुसार पिता और चाचा के कारक ग्रह ओज राशि में हों तो शुभ फल। यदि माता और मौसी के कारक ग्रह युग्म राशि में हों तो उनके लिये शुभ फल (माता का कारक युग्म में हो तो मातृ सम्बन्धी, मौसी का कारक युग्म में हो तो मौसी सम्बन्धी—दोनों के कारक युग्म राशियों में हों तो दोनों के लिये। इसी प्रकार पिता और चाचा के शुभ के लिये दोनों के कारक का ओज राशि में होना चाहिये—इन दोनों में जिसका कारक ओज राशि में होगा, उसके लिये शुभ)। अर्थात् सूर्य या शनि यदि युग्म राशि में हो या हों तो पिता या चाचा जिसका या जिनका कारक युग्म में हो उसके लिये अशुभ। और माता तथा मौसी में जिसका कारक ओज राशि में हो, उसके लिये अशुभ, यह सिद्ध होता है।

रुद्रभट्ट कहते हैं, यदि जातक की कुण्डली में सूर्य या शनि युग्म राशि, युग्म नवांश में हो, जातक पिता या चाचा, जिसका कारक युग्म राशि, युग्म नवांश में हो उससे विरोध करता है। यदि चन्द्र या शुक्र ओज राशि, ओज नवांश में हो तो जातक की माँ या मौसी जिसका कारक ओज राशि, ओज नवांश में हो उससे विरोध करता है।

यदि उपर्युक्त स्थिति में पुरुष की कुण्डली में, लग्न में पापग्रह हो और सप्तमेश बलवान् हो तो उस वर्ग की स्त्रियों (चाची, मौसी, मामी आदि) से मैथुन करता है। उदाहरण के लिये पुरुष की कुण्डली में उपर्युक्त परिस्थिति में तृतीयेश यदि चन्द्र, शुक्र से युत हो तो जो रिश्ते में बहन लगती हो उससे मैथुन

करता है। चन्द्र शुक्र के साथ जो ग्रह हो, वह किस भाव का स्वामी है–उस भाव से सम्बन्धिनी स्त्री से मैथुन करेगा। उदाहरण के लिये दशम से पिता–दशम से तृतीय (लग्न से द्वादश) पिता का छोटा भाई। उस लग्न से द्वादश से सप्तम अर्थात् लग्न से षष्ठ–चाचा की पत्नी। चतुर्थ से माता, चतुर्थ से तृतीय–माँ का छोटा भाई या बहिन। यह लग्न से षष्ठ स्थान हुआ, इससे मौसी। इस लग्न से षष्ठ से सप्तम अर्थात् लग्न से द्वादश–इससे मामा की पत्नी हुई।

इसी प्रकार स्त्री की कुण्डली में उपर्युक्त परिस्थिति सूर्य, शनि युग्म राशि, युग्म नवांश में हो, लग्न में पाप ग्रह हो, सप्तमेश बलवान् हो तो जो ग्रह सूर्य, शनि के साथ हो–वह ग्रह जिस भाव का स्वामी हो–उस भाव से जिस सम्बन्धी का विचार किया जाता है, उस पुरुष से मैथुन करती है। उदाहरण के लिये तृतीय छोटी बहिन–तृतीय से सप्तम अर्थात् लग्न से नवम बहनोई हुआ। लग्न से चतुर्थ माँ। चतुर्थ से तृतीय अर्थात् लग्न से षष्ठ–माँ का छोटा भाई। पंचम से अपनी कन्या, पंचम से सप्तम लग्न से एकादश–अपना जामाता। यह सब ओज, युग्म का क्या उपयोग है यह बतलाने के लिये लिखा गया है। विशेष व्याख्या के लिये देखिये रुद्रभट्ट का होराशास्त्र पर विवरण पृ० ७९-८०।

दिशा : (i) मेष, सिंह, धनु की पूर्व दिशा है। (ii) वृष, कन्या, मकर की दक्षिण। (iii) मिथुन, तुला, कुंभ की पश्चिम। (iv) कर्क, वृश्चिक, मीन की उत्तर। इसका प्रयोजन क्या? मुहूर्त विचार में–जिस दिशा में यात्रा करना हो, उसी दिशा का लग्न हो तो बहुत प्रशस्त यात्रा मानी गई है। 'दिग्द्वार भे लग्नगते प्रशस्ते यात्रार्थदात्री जयकारिणी च।' जिस दिशा में यात्रा करना हो–उस दिशा की राशि में चन्द्रमा हो तो भी बहुत प्रशस्त माना गया है—'हरति सकलदोषं चन्द्रमा सम्मुखस्थः'। लाभस्थान में जो राशि हो उस दिशा में कार्य करने से लाभ होता है। किस दिशा में क्या करने से किस प्रकार की सिद्धि या सफलता होगी इसके विस्तृत विचार के लिये देखिये जातकादेशमार्गचन्द्रिका पृष्ठ १३९-१६४।

क्रूर और शुभ : ओज राशियाँ–मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुंभ क्रूर हैं तथा युग्म राशियाँ–वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन शुभ हैं। यहाँ मूल में शुभ शब्द आया है, जो सौम्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्रयोजन? क्रूर राशि में उग्रकार्य, युद्ध आदि, जिनमें साहस की आवश्यकता होती है, सिद्ध होते हैं। सौम्य राशियों में मृदु कार्य–प्रेमप्रसंग, शुभ काम्य कर्म यथा लक्ष्मी-प्राप्ति शुभ और सफल होते हैं। यह मुहूर्तविषयक विचार हुआ। जातक-फलादेश में क्रूर राशि लग्न में होने से जातक में पौरुष, साहस आदि गुण होते हैं। सौम्य राशि लग्न में होने से प्रकृति में मृदुता, सौम्यता आदि होती है।

किसी भी भाव में शुभ राशि होना, उसका स्वामी शुभ ग्रह होना, शुभ युक्त, शुभ दृष्ट होना अच्छा माना गया है। तद्भाव सम्बन्धी फल शुभ होता है। ऊपर जो राशियों को क्रूर और शुभ इन दो भागों में विभाजित किया गया, वहाँ यह भी तारतम्य कर लेना कि राशीश क्रूर है या सौम्य। वृष और तुला दोनों का स्वामी शुक्र है। वृष सौम्य राशि, राशीश भी सौम्य। तुला क्रूर राशि किन्तु राशीश सौम्य, इसलिये उतनी क्रूर नहीं हुई। मकर और कुंभ दोनों का स्वामी शनि है। मकर सौम्य किन्तु राशीश क्रूर। इस कारण उतनी सौम्य नहीं हुई। कुंभ क्रूर राशीश भी क्रूर, इस कारण पूर्ण क्रूर।

राशियों की प्रकृति को भी ध्यान में रखना चाहिये। मेष और वृश्चिक दोनों का स्वामी मंगल है। मेष सामने से हमला (आक्रमण) करता है इसलिये मेष लग्न वाले जातक, सम्मुख ही क्रोध करते हैं। वृश्चिक (बिच्छू) का अग्र भाग मृदु होता है, डंक पृष्ठ भाग में रहता है। वृश्चिक लग्न हो या इस राशि में चन्द्र या सूर्य हो तो जातक प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण नहीं करता; गुप्त रूप से पीछे से पछाड़ता है। जैसे वृश्चिक के सूर्य वाले पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कामराज प्लान बनाकर अपने प्रतिद्वन्द्वियों को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल से निकाल दिया, आगे से मृदु बने रहे।

चर, स्थिर, द्वन्द्व : मेष, कर्क, तुला, तथा मकर चार राशियाँ है। वृष, सिंह, वृश्चिक तथा कुंभ स्थिर और मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन द्विस्वभाव। इसका उपयोग क्या ? पहिले मुहूर्त-विषयक विचार लीजिये। यदि चर लग्न में कोई कार्य किया जाये तो स्थायी नहीं होता। चर लग्न में यात्रा करेंगे तो शीघ्र वापिस आयेंगे। स्थिर लग्न में गृहप्रवेश आदि स्थायी कार्य किये जाते हैं।

यदि जातक का चर लग्न हो, लग्नेश भी चर राशि में हो तो संचारशील होता है—घूमने, फिरने, भ्रमण करने का शौकीन। स्थिर राशि का लग्न हो, लग्नेश स्थिर राशि में हो तो स्थितिशील होता है। शीघ्र कार्य सिद्ध होगा या देर से, इस प्रकार के प्रश्न में चर, स्थिर, द्विस्वभाव का विचार निर्णय में सहायक होता है।

भट्टोत्पल कहते हैं :—

स्थिरराशौ लग्नगते स्थानप्राप्तिं वदेन्न गमनञ्च।
रोगोपशमो नाशो द्रव्याणां स्यात् पराभवो नात्र॥
चरराशौ विपरीतं मिश्रं वाच्यं द्विमूर्त्युदये।
स्थिरवत् प्रथमेऽर्धे स्यादेवं चरराशिवत् सर्वम्॥

द्वन्द्व का अर्थ है जिसमें चर और स्थिर दोनों का मिश्रित फल हो। एक सम्प्रदाय यह है कि द्वन्द्व राशियों का (मिथुन, कन्या, धनु तथा मीन का) पूर्वार्द्ध

स्थिर का फल करता है और उत्तरार्द्ध चर का । सत्याचार्य कहते हैं कि चर, स्थिर, द्विस्वभाव जैसे लग्न में मनुष्य का जन्म होता है—वैसी ही प्रकृति जातक की होती है ।

चरसंज्ञा स्थिरसंज्ञा द्विप्रकृतिरिति राशयः क्रमशः ।
राशि-स्वभाव-तुल्या जायन्ते प्रकृतयः प्रसूतानाम् ॥

केवल जन्म लग्न से ही विचार करना पर्याप्त नहीं है । चन्द्र आदि ग्रह, चर, स्थिर आदि जिस प्रकार की राशि में बाहुल्य से होते हैं—उसका प्रभाव भी पड़ता है। फलतः चर राशि में अधिक ग्रह हों तो विचारशील कम, क्रियाशील अधिक । स्थिर राशि में अधिक ग्रह हों तो विचारशील अधिक, क्रियाशील कम । चर का स्वभाव है शीघ्र क्रोध हो, शीघ्र प्रसाद हो किन्तु स्थायी न हो । स्थिर का स्वभाव हो तो देर से क्रोध, विलंब से प्रसाद हो परन्तु चिरस्थायी हो । द्वन्द्व का मिश्र स्वभाव है ॥ १३ ॥

वीर्योपेता निशि वृषनृयुक्कर्किचापाजनक्राः
हित्वा युग्मं भवनमपरे पृष्टपूर्वोदयाश्च ।
शेषाः शीर्षोदयदिनबलाः श्रेष्ठता राशयस्ते
मीनाकारद्वयमुभयतः काललग्नं समेति ॥ १४ ॥

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु तथा मकर रात्रिबली राशियाँ हैं; सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक कुंभ तथा मीन दिवाबली हैं अर्थात् दिन में बलवान् होती हैं । यह भी एक सम्प्रदाय है कि दिवाबली राशियों को सूर्य की राशियाँ मानना और निशाबली राशियों को चन्द्रमा की ।

सिंह कन्या तुलाली च कुंभान्त्यौ सूर्यराशयः ।
अन्ये तु राशयः चान्द्रा द्युनिशाराशयश्च ते ॥

किन्तु सारावली अध्याय ३ के श्लोक ९ और १० में कल्याण वर्मा कहते हैं कि भगण (भचक्र) में १२ मण्डल (राशियाँ) हैं, उसमें सिंह से प्रारंभ कर छः राशियों का—अर्थात् सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु तथा मकर—इस आधे का स्वामी सूर्य है और कर्क से प्रतिलोम (उल्टा) गिनने पर—अर्थात् कर्क, मिथुन, वृष, मेष, मीन तथा कुंभ, इन छः राशियों का स्वामी चन्द्रमा है । जिस भगण के अर्द्ध भाग का अधिपति सूर्य है, उसमें ग्रहों के होने से जातक तेजस्वी और साहसी होता है तथा चन्द्राधिष्ठित अपरार्द्ध में ग्रहों के होने से मृदु, सौम्य तथा सौभाग्यशाली होता है ।

१

२

कुण्डली संख्या १ एक सज्जन की है, जिनका जन्म २० अगस्त १९२५ को हुआ। राहु के अतिरिक्त सब ग्रह सूर्याधिष्ठित ६ राशियों में हैं। कुण्डली संख्या २ जिनकी जन्मकुण्डली है उनका जन्म १ जून सन् १९१६ को हुआ। मंगल और राहु को छोड़ कर अन्य ग्रह चन्द्राधिष्ठित ६ राशियों में हैं। वास्तव में राहु और केतु का विचार इस योग में नहीं करना चाहिये; क्योंकि इनमें से एक सूर्याधिष्ठित भगणार्द्ध में होगा तो दूसरा चन्द्रमा के अपरार्द्ध में।

इसी अध्याय में आगे श्लोक १६-१८ में कहा है कि कौन-सी राशि किस समय (प्रातः, मध्याह्न, सायं या निशार्ध में) बलवान् होती है और भावबल उसी के आधार पर स्थिर किया जाता है। इसलिये इस श्लोक में केवल दिवा-बली, रात्रिबली यह संज्ञा मात्र कही गई है कि दिन के समय दिनबली राशियाँ श्रेष्ठ और रात्रि के समय रात्रिबली। इसका विशेष उपयोग यात्राविचार–विशेषतः युद्धयात्रा-विचार में किया जाता है। दिन में यात्रा करनी हो तो दिवाबली लग्न में; रात्रि में यात्रा करनी हो तो रात्रिबली लग्न में 'शस्तं दिवा दिनबले निशि नक्तवीर्ये रात्रौ विपर्ययबले गमनं न शस्तम्।'

अब राशियों की शीर्षोदय, पृष्ठोदय, उभयोदय संज्ञा कहते हैं। (i) मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक तथा कुंभ शीर्षोदय हैं। (ii) मेष, वृष, कर्क, धनु तथा मकर पृष्ठोदय हैं। (iii) मीन राशि का स्वरूप ऐसी दो मछलियाँ हैं जिनमें एक का सिर दूसरे की पुच्छ की ओर है। इसलिये मीन को उभयोदय माना है। राशियों को शीर्षोदय, पृष्ठोदय, उभयोदय–इन तीन भागों में विभाजित किया, इसका फलित ज्योतिष में उपयोग क्या ?

(१) शीर्षोदय राशियाँ शुभ हैं। पृष्ठोदय अशुभ हैं। उभयोदय में शुभा-शुभ का सम्मिश्रण है। कृष्णीय में कहा है :–

पृष्ठोदयेषु सिध्यत्यशुभं मूर्धोदयेषु शुभमुक्तम् ।
उभयोदये विमिश्रं ग्रहरहितेभ्यः फलं वाच्यम् ॥

जिस राशि में कोई ग्रह रहता है, वह ग्रह अपनी शुभाशुभ प्रकृति से उस राशि को शुभाशुभ बना देता है। शुभ ग्रह शुभ प्रभावान्वित करेगा। अशुभ ग्रह पाप फल युक्त। किन्तु यदि राशि में कोई ग्रह न हो तो शीर्षोदय राशि को शुभ मानना, पृष्ठोदय को क्रूर। शुभ कार्य शीर्षोदय में करना, क्रूर कर्म पृष्ठोदय में। उभयोदय मीन का मिश्रित प्रभाव है।

(२) जन्मकुण्डली में पापग्रह पृष्ठोदय में होगा तो अत्यन्त पापफल करेगा, शीर्षोदय में होगा तो कम पापफल। जन्मकुण्डली में शुभ ग्रह शीर्षोदय राशि में होगा तो अत्यन्त शुभफल करेगा; पृष्ठोदय में होगा तो शुभता में न्यूनता होगी।

(३) शीर्षोदय राशि में स्थित ग्रह शीघ्र फल दिखलाते हैं, पृष्ठोदय में स्थित ग्रह देर से, विलम्ब से। उभयोदय मीन में--मध्य भाग में (न शीघ्र, न विलम्ब से)। यह दशा, अन्तर्दशा आदि में विचार करना। प्रश्नकुण्डली में कार्य बनेगा ऐसा फल भासित हो तो कहना कि शीघ्र कार्य बनेगा। पृष्ठोदय लग्न हो और कार्य बनेगा ऐसा ग्रहों का फल प्रतीत होगा तो देर से बनेगा। उभयोदय में न शीघ्र न विलंब से। चर, स्थिर आदि का विचार भी कर लेना चाहिये—दोनों का तारतम्य कर फल कहने की प्रक्रिया है॥ १४ ॥

राशियों की सलिलादि संज्ञा

मीनालिकर्कटमृगाः सलिलाभिधाना-
स्तोयाश्रया घटवधूयुगगोपसंज्ञाः ॥
निस्तोयभूतलचराः क्रियचापतौलि-
कण्ठीरवाश्च बहवः प्रवदन्ति सन्तः ॥ १५ ॥

कर्क, वृश्चिक, मकर और मीन जलराशियाँ हैं। वृष, मिथुन, कन्या और कुंभ तोयाश्रय (जल आश्रय है जिनका) हैं। मेष, सिंह, तुला तथा धनु निस्तोय (जल रहित) भूमि में विचरण करने वाले हैं।

बृहज्जातक अध्याय १ श्लोक ५ में बारहों राशियों का स्वरूप बतलाने के बाद कहते हैं : 'खच्राश्च सर्वे' अपने-अपने स्वरूप के अनुकूल स्थान में रहते हैं। जातकपारिजात में भी श्लोक ९ में राशियों के लिये 'स्वदेशाश्रयः' कहा गया है। परन्तु इस श्लोक में वृश्चिक को जलराशि कहा है। (बिच्छू तो पानी में नहीं रहता—मीन, कर्कट और मकर तो रहते हैं)। वृष को तोयाश्रय कहा, मेष

को निस्तोय भूतल-चर। कन्या तथा कुंभ का तोयाश्रय होना ठीक है। कन्या नौका में स्थित है। कुंभ जल का पात्र है। परन्तु मिथुन तोयाश्रय क्यों ? आदि शंका उठना स्वाभाविक है।

पाश्चात्य ज्योतिष में राशियों को चार भागों में विभाजित किया है (i) मेष, सिंह, धनु–अग्नि। (ii) वृष, कन्या, मकर–पृथ्वी। (iii) मिथुन, तुला, कुंभ–वायु। (iv) कर्क, वृश्चिक, मीन–जल।

बृहज्जातक अध्याय २ श्लोक ६ में किस ग्रह में कौन सा तत्व (पृथ्वी आदि) बताया गया है। राशियों का तत्त्व नहीं कहा गया है। किन्तु रुद्रभट्ट लिखते हैं–जो राशि स्वामी का तत्त्व वही राशितत्त्व। इसके अनुसार (१) मेष–अग्नि। (२) वृष–जल। (३) मिथुन–पृथ्वी। (४) कर्क–जल। (५) सिंह–अग्नि। (६) कन्या–पृथ्वी। (७) तुला–जल। (८) वृश्चिक–अग्नि। (९) धनु–आकाश। (१०) मकर–वायु। (११) कुंभ–वायु। (१२) मीन–आकाश। राशियों के इन तत्त्वों का फलित ज्यौतिष में उपयोग क्या ?

रुद्रभट्ट अपने विवरण के पृष्ठ १७ में कहते हैं :—**'तत्र यस्मिन्नङ्गे विरुद्ध-भूतैक्यं सम्भवति तत्र तथाविधो रोगो वाच्यः'**। सामान्यज्ञान से यह समझना चाहिये कि जल और पृथ्वी का सम्मिश्रण होता है, इसलिये जल और पृथ्वी परस्पर विरुद्ध नहीं हैं। किन्तु जल और अग्नि परस्पर विरुद्ध हैं। जब परस्पर विरुद्ध भूतों का ऐक्य हो–दो विरुद्ध भूतों वाले ग्रहों की युति या परस्पर पूर्ण दृष्टि या कोई ग्रह ऐसी राशि में बैठा हो–जिसमें ग्रह और राशि के भूतों में विरोध हो तो उस स्थान में (भाव से निर्दिष्ट अंग में, या राशि काल पुरुष के जिस अंग की द्योतक हो उसमें) रोग होता है। अपने भूत वाली राशि में ग्रह का तत्संबन्धी गुण बढ़ जाता है। विरुद्ध भूत वाली राशि में न्यूनता हो जाती है॥ १५॥

किस भाव में कौन सी राशि बली

चापापरार्द्धहरिगोमकरादिमेषा
मानस्थिता बलयुताश्च चतुष्पदाख्याः।
कन्यानृयुग्मघटतौलिशरासनाद्या
लग्नान्विता यदि नरा द्विपदा बलाढ्याः॥१६॥

मृगापरार्द्धान्त्यकुलीरसंज्ञा
जलाभिधाना बलिनश्चतुर्थे।
जलाश्रयो वृश्चिकनामधेयः
स सप्तमस्थानगतो बली स्यात्॥१७॥

केन्द्रं गतेऽह्नि द्विपदो बलाढ्यः
चतुष्पदाः केन्द्रगता रजन्याम् ।
कीटास्तु सर्वे यदि कण्टकस्थाः
सन्धिद्वये वीर्ययुता भवन्ति ॥१८॥

(i) मेष, वृष, सिंह, धनु का उत्तरार्द्ध तथा मकर का पूर्वार्द्ध चतुष्पद हैं। ये दश में बली होती हैं। (ii) मिथुन, कन्या, तुला, धनु का पूर्वार्द्ध तथा कुंभ—ये नर राशि हैं और लग्न (प्रथम भाव में) बलवान् होती हैं। (iii) कर्क, मकर का उत्तरार्द्ध तथा मीन जलराशियाँ हैं, ये चतुर्थ भाव में बलिष्ठ होती हैं। (iv) वृश्चिक जलाश्रय है। बहुत से इसे कीट संज्ञक कहते हैं, यह सप्तम में बलवान् होती है।

अब एक अन्य प्रकार कहते हैं। (i) दिन में जन्म हो तो द्विपद (दो पैर वाली—नर) राशियाँ केन्द्र में बलवान्। (ii) रात्रि में जन्म हो तो चतुष्पद राशियाँ केन्द्र में बलवान्। (iii) प्रातः या सायं संध्या समय जन्म हो तो कीट राशियाँ केन्द्र में बलवान् होती हैं। इनका प्रश्नकुंडली में भी विचार करना चाहिये।

पराशर के मतानुसार कर्क और वृश्चिक दोनों कीट राशियाँ हैं। किन्तु गर्ग और कतिपय अन्य आचार्यों के अनुसार केवल वृश्चिक कीट राशि है॥ १६-१८॥

राशियों की धातु, मूल, जीव संज्ञा

धातुर्मूलं जीवमित्याहुरार्या मेषादीनामोजयुग्मे तथैव।
स्वर्णाद्धातुर्मृत्तिकान्तं तृणान्तं वृक्षान्मूलं जीवकूटः स जीवः॥१६॥

मेष, कर्क, तुला, मकर धातु राशियाँ हैं। वृष, सिंह, वृश्चिक, कुंभ मूल राशियाँ हैं। तथा मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन जीव राशियाँ हैं। स्वर्णादि समस्त धातु, पाषाण, मृत्तिका धातु के अन्तर्गत आते हैं। वृक्ष, तृण आदि पृथ्वी में उगने वाले पदार्थ मूल हैं। एवं प्राणी—मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जीव के अन्तर्गत हैं। राशियों के इस विभाग का उपयोग क्या ? यदि दशा या गोचर फल से लाभ की संभावना हो और राशि धातुद्योतक हो तो धातु का लाभ कहना; यदि हानि की संभावना हो तो धातु की हानि कहना। यदि जिस राशि से लाभ की संभावना हो वह मूलद्योतक राशि हो तो मूल—वृक्ष, तृण, पुष्प, फल, खेती, अन्न आदि का लाभ कहना; यदि हानि की संभावना हो तो इन वस्तुओं से हानि होगी। इसी प्रकार राशि से जीव-लाभ (संततिप्राप्ति, विवाह द्वारा पति या पत्नी लाभ,

पशु–गाय, भैंस, घोड़े आदि का लाभ) या जीव-हानि कहना। उदाहरण के लिये मेष में बृहस्पति धातु राशि में होने से स्वर्ण, रत्न, द्रव्य आदि का लाभ विशेष करेगा, धनु का बृहस्पति पुत्रलाभ आदि।

जिस प्रकार एक ग्रह की महादशा में नवों ग्रहों की अन्तर्दशायें होती हैं, उसी प्रकार एक राशि को तीन भागों में विभक्त करने से जो तीन द्रेष्काण १०-१० अंशों के होते हैं, उनकी क्रमशः कर्म, भोग, विनाश संज्ञा होती है। बृहज्जातक के नवम अध्याय की टीका में रुद्रभट्ट कहते हैं कि गोचर फल के लिये राशि को तीन सम भागों में विभक्त करना, उनकी संज्ञा क्रमशः (i) कर्म (ii) भोग (iii) विनाश होती है। कर्म क्या? कृषि, गोरक्षा, वाणिज्यादि सम्पादन कार्य। भोग क्या? विविधान्नपान-नृत्तगीतस्रक्चन्दन-वनितादि अनुरूप। नाश क्या? वाक्पारुष्य ताडनच्छेदन भेदनोत्सादनादि। इन तीनों प्रकार के फलोपभोग के लिये–तीन प्रकार की वस्तु। धातु मूल जीव से होती है। धातु धाम्याधाम्य लोहास्थि तैलभेद से बहुत प्रकार के होते हैं। मूल तृणोलप-गुल्मलता वनस्पति वानस्पत्यादि भेद से बहुत प्रकार के हैं। जीव जरायुजाण्डज स्वेदजादि भेद से बहुत प्रकार के होते हैं। यहाँ राशि में प्रथम द्रेष्काण से कर्म, द्वितीय से भोग, तृतीय से विनाश यह भेद है। एक द्रेष्काण में तीन नवांश होते हैं–चर, स्थिर और उभय–इनसे धातु, मूल, जीव समझना। प्रत्येक नवांश नौ ग्रहों की युति या दृष्टि भेद से नौ प्रकार के फल उत्पन्न कर सकता है। इसलिये एक ही राशि का प्रभाव ८१ प्रकार का हो सकता है–अर्थात् ८१ प्रकार की वस्तुओं का निर्देश हो सकता है। ग्रह के उच्चनीचादि भेद से, तत्संबन्धी वस्तु की उत्कृष्टता, मध्यमता या अधमता होती हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही राशि में कर्मभोग विनाशात्मक तीन द्रेष्काण होने से और एक द्रेष्काण में चरस्थिरोभयात्मक तीन नवांश धातु मूल जीव के द्योतक होने से एक राशि में (i) कर्मधातु (ii) कर्ममूल (iii) कर्मजीव (iv) भोगधातु (v) भोगमूल (vi) भोगजीव (vii) नाशधातु (viii) नाशमूल और (ix) नाशजीव ये ९ विभाग हुए।

राशियों की जाति

मीनालिवृषभा विप्राश्चापाजहरयो नृपाः।
कुम्भयुग्मतुला वैश्याः शूद्राः स्त्रीमृगकर्कटाः ॥२०॥

मीन, वृश्चिक और वृष ब्राह्मण हैं। धनु, मेष और सिंह क्षत्रिय वर्ण हैं। कुंभ, मिथुन और तुला वैश्य हैं तथा कन्या, मकर और कर्क शूद्र हैं। राशियों का

जो वर्ण (जाति) ऊपर दिया गया है उसमें अन्य आचार्यो से मतभेद है। प्रपञ्चसार चतुर्थ पटल का चौथा श्लोक है :–

स्युः कर्कटो वृश्चिक-मीन-राशी
विप्राः नृपाः सिंहकधन्विमेषाः।
तुला सकुंभः मिथुनं च वैश्याः
कन्या वृषोऽथो मकरश्च शूद्राः॥

किन्तु मुहूर्तचिन्तामणि में दिया गया मतविशेष प्रचलित है :—

'द्विजा झषालि-कर्कटास्ततो नृपा विशोंऽघ्रिजाः'

अर्थात् कर्क, वृश्चिक, मीन ब्राह्मण; तदनन्तर सिंह, धनु, मेष क्षत्रिय, उसके बाद कन्या, मकर, वृषभ वैश्य और अन्त में तुला, कुंभ और मिथुन शूद्र।

राशियों की जाति का प्रयोजन? एक तो इसका उपयोग मेलापक में होता है। वर कन्या की अपेक्षा श्रेष्ठ वर्ण का होना चाहिये या दोनों का एक ही वर्ण होना श्रेयस्कर माना जाता है। इसके अतिरिक्त जन्मकुंडली में जिस राशि या ग्रह से लाभ या हानि परिलक्षित हो उस जाति या व्यक्ति से लाभ या हानि होती है—इस सिद्धान्तानुसार उस जाति वाले व्यक्ति से लाभ या हानि की संभावना होती है। शत्रुस्थान में जो राशि या ग्रह हो उस राशि या ग्रह वाले व्यक्ति से शत्रुता होती है। ग्रहों की जाति आगे के अध्याय में बताई गई है॥ २०॥

कालविशेष में राशियों का अन्धत्व आदि

सदा निशान्धाः क्रियगोमृगेशा मध्यन्दिने कर्कटयुग्मकन्याः।
पूर्वाह्णकाले बधिरौ तुलाली धन्वी मृगाख्यश्च तथाऽपराह्णे ॥२१॥

मृगाननश्चापधरश्च पङ्गू सन्धिद्वये नाशकरौ भवेताम्।
स्याद्दृक्षसन्धिः कटकालिमीनभान्तं प्रगण्डान्तमिति प्रसिद्धम् ॥२२॥

उपर्युक्त श्लोक २१ में कई पुस्तकों में 'सदा निशान्धाः' के स्थान में 'महा-निशान्धाः' पाठ है। इस पाठ के अनुसार मेष, वृष तथा सिंह अर्द्ध रात्रि में अंधे होते हैं। मिथुन, कर्क, कन्या मध्य दिन (मध्याह्न) में अंधे होते हैं। तुला तथा वृश्चिक पूर्वाह्न में (प्रातःकाल के बाद, मध्याह्न के पहिले) बधिर (बहरे) होते हैं और धनु तथा मकर अपराह्न में (मध्याह्न के बाद सायंकाल के पहिले) बधिर होते हैं। सन्धिद्वय (प्रभात जब रात्रि का अन्त तथा दिन का प्रारंभ होता है तथा सायंकाल जब दिन का अन्त तथा रात्रि का प्रारंभ होता है) में धनु और मकर पंगु (लंगड़े) और नाश करने वाले होते हैं।

प्रयोजन ? यदि ज्योतिष के व योग जो अन्धत्व, बधिरत्व तथा पंगुत्व के कहे गये हैं, वे उपर्युक्त राशियों में यथाक्रम घटित हों तो अवश्य फलित होते हैं।

ऋक्ष संधि कर्क, वृश्चिक तथा मीन के अंत में होती है। इसे गण्डान्त कहते हैं। जहाँ युगपत् राशि और नक्षत्र हो उसे ऋक्ष संधि कहते हैं यथा आश्लेषान्तं कर्क, ज्येष्ठान्तं वृश्चिक, रेवत्यन्तं मीन। वास्तव में शुद्ध शब्द खण्डान्त है। मेष से कर्क तक सृष्टि खंड, सिंह से वृश्चिक तक स्थिति खंड एवं धनु से मीन तक संहार खण्ड। इस खण्डान्त काल को आधी घड़ी माना है 'कर्काल्यण्डज-भान्त-तोऽर्धघटिका।

सारावली का प्रसिद्ध श्लोक है :—

कुलीर-मीनालि-गृहान्त-सन्धि वदन्ति गण्डान्तमिति प्रसिद्धम्।
जातो न जीवति मातुरपथ्यो भवेत् स्वकुलहन्ता
यदि जीवति गण्डान्ते बहुगजतुरगो भवेद् भूपः ॥ २१-२२ ॥

राशियों का वर्ण (रक्त, श्वेत आदि)

रक्तगौरशुककान्तिपाटलाः पाण्डुचित्ररुचिनीलकाञ्चनाः।
पिङ्गलः शबलबभ्रु पाण्डुरास्तुम्बुरादिभवनेषु कल्पिताः ॥२३॥

बारह राशियों का वर्ण क्रमशः नीचे बताया जाता है। (१) रक्त (२) श्वेत (३) तोते के रंग सदृश (हरा) (४) पाटल (ईषत् श्यामता को लिये हुए ललाई) (५) पाण्डु (ईषत् पीलापन लिये हुए श्वेत) (६) चित्ररुचि (विविध वर्ण) (७) नील (८) सुनहरी (९) पिंगल (पीलापन लिये हुए) (१०) शबल (धब्बेदार रंग-विरंगा, चितकबरा) (११) बभ्रु (नेवले के सदृश रंग) (१२) पाण्डुर (पीताभश्वेत) ॥ २३ ॥

राशियों से द्योतित वस्तु

वस्त्राद्यं शालिमुख्यं, वनफलनिचयः, कन्दली, मुख्यधान्यम्,
त्वक्सारं, मुद्गपूर्वं, तिलवसनमुखं, त्विक्षुलोहादिकं च।
शस्त्राश्वं, काञ्चनाद्यं, जलजनिकुसुमं, तोयजातं समस्तम्,
व्या ग याहुः क्रियादिष्वबलबलयुतेष्वल्पताधिक्यभाञ्जि ॥२४॥

किस राशि से द्योतित कौन सी वस्तुएँ हैं, यह कहते हैं :—

(१) मेष—वस्त्र (२) वृषभ—शालि (चावल) (३) मिथुन—वनफल निचय (अर्थात् इनका प्राचुर्य) (४) कर्क—केला (५) सिंह—मुख्य धान्य (गेहूँ आदि)

(६) कन्या—ऐसे पदार्थ—त्वचा है सार जिनकी—जैसे बांस। (७) तुला—मूंग, तिल वगैरह तथा बारीक वस्त्र। (८) वृश्चिक—ईख, लोहा आदि। (९) धनु—शस्त्र और अश्व। (१०) मकर—सोना आदि। (११) कुंभ—जल में उत्पन्न होने वाले पुष्प यथा कमल (१२) मीन—जल में उत्पन्न समस्त पदार्थ (मखाना, सिंघाड़ा आदि)।

कतिपय टीकाकारों ने 'वस्त्राद्यं शालिमुख्यं' इन दोनों को मेष का पदार्थ मान लिया है और इस कारण वन्यफल को वृष का और इस प्रकार किसी राशि की कही हुई वस्तु किसी में ले गये हैं। कन्दली का अर्थ भी कतिपय टीकाकारों ने मृग-विशेष किया है 'कदली कन्दली चीनश्चमूरुप्रियकावपि, समुरुश्चेति हरिणाः' यह अमरकोष का वाक्य ठीक है, परन्तु शालि, वनफल, मुख्यधान्य आदि के साथ कन्दली का अर्थ केला हमें विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है : जैसा विक्रमोर्वशीय में कहा है :—

आरक्तराजिभिरियं कुसुमैर्नवकन्दली सलिलगर्भैः।
कोपादन्तर्बाष्पे स्मरयति मां लोचने तस्याः॥

मेषादि के अन्तर्गत कौन से पदार्थ आते हैं यह बतलाने के बाद कहते हैं कि यदि मेषादि राशि निर्बल हो तो इनकी (पदार्थों की) अल्पता होती है और यदि राशि बलवान् हो तो इनका (पदार्थों का) आधिक्य होता है ॥२४॥

धराजशुक्रज्ञशशीनसौम्यसितारजीवार्कजमन्दजीवाः।
क्रमेण मेषादिषु राशिनाथस्तवंशपाश्चेति वदन्ति सन्तः ॥२५॥

इसमें राशियों के स्वामी बतलाये हैं :—(१) मेष—मंगल (२) वृष—शुक्र (३) मिथुन—बुध (४) कर्क—चन्द्रमा (५) सिंह—सूर्य। (६) कन्या—बुध (७) तुला—शुक्र (८) वृश्चिक—मंगल (९) धनु—बृहस्पति (१०) मकर—शनि (११) कुंभ—शनि (१२) मीन—बृहस्पति ॥ २५ ॥

राशियों के मूल त्रिकोण और उच्च

मूलत्रिकोणा हरितावुरुक्रिया वधूधनुस्तौलिघटा दिवाकरात्।
सितासितार्क्काङ्गिरसां नखांशकास्त्रिकोणमादौ परतः स्वमन्दिरम् ॥२६॥

वृषादिभागत्रयमुच्चमिन्दोर्मूलत्रिकोणं परतस्तु सर्वम्।
मेषादिगा द्वादशभागसंज्ञाः कुजस्य कोणं परतः स्वभं स्यात् ॥ २७ ॥

कन्यार्द्धमुच्चं, शशिजस्य कोणं दशांशकाः, स्वर्क्षफलं शरांशाः ।
कुम्भस्त्रिकोणं, फणिनायकस्य तुङ्गं नृयुग्मं, रमणी गृहं स्यात् ॥२८॥

यहां कौन-सी राशि किस ग्रह की मूल त्रिकोण और किस ग्रह की उच्च राशि होती है यह बतलाया है। कभी-कभी एक ही राशि अंशभेद से मूल त्रिकोण और उच्च दोनों होती है, ऐसी स्थिति में किन अंशों में मूल त्रिकोण, किनमें उच्च, यह नीचे स्पष्ट कर दिया है। किसी-किसी राशि में कुछ अंश मूल त्रिकोण बाकी के स्वराशि माने जाते हैं यह भी नीचे स्पष्ट कर दिया गया है :—

	उच्च	मूलत्रिकोण	स्वराशि
सूर्य	मेष	०°-२०° सिंह	२०°-३०° सिंह
चन्द्र	वृष ०°-३°	३°-३०° वृष	कर्क
मंगल	मकर	०°-१२° मेष	१२°-३०° मेष
बुध	कन्या ०°-१५°	१५°-२५° कन्या	२५°-३०° कन्या
बृहस्पति	कर्क	०°-२०° धनु	२०°-३०° धनु
शुक्र	मीन	०°-२०° तुला	२०°-३०° तुला
शनि	तुला	०°-२०° कुंभ	२०°-३०° तुला
राहु	मिथुन	कुंभ	कन्या

किसी ग्रह की मूल त्रिकोण स्थिति, स्वराशि स्थिति की अपेक्षा अच्छी समझी जाती है। ऊपर श्लोक २५ में जो राशि स्वामी बतलाये गये हैं और २६-२८ श्लोकों में (किसी एक ही राशि को दो भागों में—अंशानुसार मूल त्रिकोण तथा स्वराशि में या तीन भागों में (यथा कन्या का पूर्वार्द्ध उच्च, तदनंतर मूल त्रिकोण और शेष स्वराशि) विभाजित कर दिया गया है, इनमें विरोध नहीं है। जहाँ भी सिंह राशि का विचार किया जायेगा उसका स्वामी सूर्य ही माना जायेगा। कोई ग्रह में या भाव मेष के किसी अंश या वृश्चिक में हो इन राशियों का स्वामी मंगल होगा, मिथुन और समस्त कन्या का स्वामी बुध होता है। राहु को कन्या का स्वामी कहने का एतावन्मात्र प्रयोजन है कि कन्या में राहु स्थित हो तो उसे (राहु को) अच्छा कहेंगे। समस्त धनु तथा मीन का स्वामी बृहस्पति है। वृष और समस्त तुला का शुक्र और मकर तथा समस्त कुंभ का शनि। एक राशि का एक ही स्वामी होता है, दो नहीं।

केतु का उच्च, मूल त्रिकोण तथा स्वराशि नहीं दिये गये हैं। केतु सदैव राहु से सप्तम राशि में रहता है। इस कारण केतु का उच्च धनु, मूल त्रिकोण

सिंह तथा मीन स्वराशि समझना। पुनः पिष्टपेषण किया जाता है कि जहाँ मीन राशि (जिस भाव में मीन हो) का विचार करना हो वहाँ भावेश—मीन राशीश बृहस्पति ही माना जायेगा, केतु नहीं।

ऊपर जो ग्रहों की मूल त्रिकोण और स्वराशि के अंश कहे गये हैं, उनमें और अन्य आचार्यों में मतभेद है। उदाहरण के लिये फलदीपिका अध्याय १ श्लोक ७ के अनुसार कन्या के १५°-२०° तक बुध का धनु के १० अंश तक बृहस्पति का मूल त्रिकोण, तुला के ५ अंश तक शुक्र का मूल त्रिकोण होता है।

विद्यामाधव का भी यही मत है :—

सिंहे विंशतिरादितो गवि परे सर्वेंशकास्तुङ्गतो
मेषे द्वादश पञ्च योषिति परे तुङ्गाद्धयाङ्के दश।
जूके पञ्च घटे तु विंशतिरमी मूलत्रिकोणाह्वयाः
सूर्यादेः क्रमशो ग्रहस्य कथिताः शेषाः स्वराश्यंशकाः॥

सारावली अध्याय ५ श्लोक २१-२४ में भी यही बात कही गई है :—

विंशतिरंशाः सिंहे त्रिकोणमपरे स्वभवनमर्कस्य।
उच्चं भागत्रितयं वृष इन्दोश्च त्रिकोणमपरेंऽशाः॥
द्वादश भागा मेषे त्रिकोणमपरे स्वभं तु भौमस्य।
उच्चबलं कन्यायां बुधस्य तिथ्यंशकैः सदा चिन्त्यम्॥
परतस्त्रिकोणजातं पञ्चभिरंशैः स्वराशिजं परतः।
दश भागा ईज्यस्य च त्रिकोणमपरे स्वभं चापे॥
शुक्रस्य तु त्रिकोणं पञ्चभिरपरे स्वभं जूके।
कुंभे त्रिकोणनिजभे रविजस्य यथा रवेः सिंहे॥

शंभुहोराप्रकाश के मत में और वैषम्य है :—

धनुर्धरे गुरोर्दिश (१०) स्त्रिकोणजा परे (२०) स्वभम्।
घटे भृगोः शरेन्दवः (१५) त्रिकोणका परे (१५) स्वभम्।
घटे शनेस्त्रिकोणजा नखाः (२०) परे (१०) स्वगेहजाः॥
बुधस्य तुङ्गजाः स्त्रियां शरेन्दवः (१५) परे (५) शराः।
स्वभं परे त्रिकोणजा दिश(१०)स्तु संस्मृता बुधैः॥

इसी प्रकार राहु और केतु की उच्च राशियाँ कौन सी हैं और मूल त्रिकोण कौन-सी—इस सम्बन्ध में भी प्राचीनों में मतभेद है। पराशर का बृहत्पाराशर, जो इस समय उपलब्ध है, वह प्रायः क्षेपकों से परिपूर्ण है और जो कुछ पराशर के नाम से प्रचलित है, वह स्थान-स्थान में सन्देह उपस्थित करता है अतः उसे विश्वसनीय और प्रामाणिक मानने में हमें शंका है। किन्तु शुद्ध क्षेपक रहित

पाठ के अभाव में जो कुछ उपलब्ध है उसी का आश्रय लेना पड़ता है। उसमें राहु केतु के उच्च तथा मूल त्रिकोण के विषय में कहा गया है :–

राहोस्तु वृषभं केतो वृश्चिकं तुङ्गसंज्ञकम्।
मूलत्रिकोण-कर्कं च युग्मचापं तथैव च।
कन्या च स्वगृहं प्रोक्तं मीनं च स्वगृहं स्मृतम्॥

वृद्धकारिका के अनुसार मंगल और केतु वृश्चिक के स्वामी हैं तथा शनि और राहु कुंभ के।

"कुजसौरी केतुराहू राजानावलिकुंभयोः"

इसी आधार पर महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद जी द्विवेदी ने अपने जैमिनि पद्यामृत के प्रथम प्रवाह के १४वें श्लोक में लिखा है :–

अवनिसूनु - कबन्ध - नभश्चरौ
निगदिताविह वृश्चिक - नायकौ।
शनि-शिरो - द्युचरौ फलशेश्वरा
वितरनाथ - कथा तु यथा तथा॥

दैवज्ञाभरणम् प्रथम प्रकाश श्लोक २३-२४ के मतानुसार–

राहोरुच्चगृहं वृषः शशिगृहं मूलत्रिकोणं तथा
मेषो मित्रगृहं ध्वजस्य च पुनः तत्सप्तमं तावृशम्।
यत्रस्थौ तु तमोध्वजौ तदधिपौ तौ तस्य नाथवत्-
कन्या-सिंह-धनुर्झषाः फणिगृहा इत्याहुरन्ये बुधाः॥
केचित्कन्यागृहं राहोः केतोरिच्छन्ति तद् गृहम्।
यस्मिन्नुदयते केतुः तस्मिन्नेव गृहः स्मृतः॥

सारावली अध्याय १२ श्लोक १० में लग्न में यदि मेष, वृष या कर्क में राहु हो तो प्रशस्त है :–

अज-वृष-कर्कि-विलग्ने रक्षति राहुः समस्तपीडाभ्यः।
पृथ्वीपतिः प्रसन्नः कृतापराधं यथा पुरुषम्॥

इस प्रकार राहु केतु की स्वराशि, उच्च राशि तथा मूल त्रिकोण राशि के मत-मतान्तर हैं, ऐकमत्य नहीं है–यह पाठकों को अवगत कराने का प्रयत्न किया गया है॥ २६-२८॥

ग्रहों की उच्च तथा नीच राशियाँ

मेषो वृषो मकरषष्ठकुलीरमीनाः
तौली च तुङ्गभवनानि तदस्तनीचाः॥
नित्याङ्गनाहरिमयामनुसारनीर-
सङ्ख्या दिवाकरमुखादतितुङ्गभागाः॥ २९॥

नीचे कौन-सा ग्रह किस राशि में उच्च होता है और उच्च राशि में भी किस अंश में परमोच्च होता है, तथा किस राशि में नीच होता है और नीच राशि में भी किस अंश में परम नीच होता है, यह बताया जाता है।

ग्रह	उच्च राशि	परमोच्च अंश	नीच राशि	परमनीच अंश
सूर्य	मेष	१०°	तुला	१०°
चन्द्रमा	वृष	३°	वृश्चिक	३°
मंगल	मकर	२८°	कर्क	२८°
बुध	कन्या	१५°	मीन	१५°
बृहस्पति	कर्क	५°	मकर	५°
शुक्र	मीन	२७°	कन्या	२७°
शनि	तुला	२०°	मेष	२०°

किसी भी ग्रह की अपनी उच्च राशि में स्थिति बली और प्रशस्त मानी जाती है। नीच राशि में स्थिति निर्बल और निकृष्ट होती है। परन्तु परमोच्चांश और परमनीचांश का क्या उपयोग? इसके दो उपयोग हैं। उदाहरण से स्पष्ट किया जाता है।

(१) सूर्य का मेष में होना प्रशस्त है परन्तु अपने परमोच्चांश १०° पर हो तो परम प्रशस्त होता है। बृहज्जातक के अध्याय ८ श्लोक ५ की टीका में रुद्र-भट्ट कहते हैं कि ग्रह यदि अपने परमोच्चांश में हो तो उसकी दशा सम्पूर्णा अर्थात् पूर्ण शुभफलकरी होती है। यदि ग्रह अपनी उच्च राशि में तो हो, किन्तु परमोच्चांश में न हो तो उसकी दशा पूर्ण (सम्पूर्णा से ईषत्-न्यून शुभ फलकरी) होती है। इसी प्रकार ग्रह यदि अपनी नीच राशि में हो तो निकृष्ट किन्तु अपने परमनीचांश में हो तो अत्यन्त निकृष्ट फल समझना। गार्गि ने कहा है :—

सर्वैर्बलैरुपेतस्य परमोच्चगतस्य च।
सम्पूर्णाख्या दशा ज्ञेया धनारोग्य-विवर्द्धिनी॥
स्वोच्च-राशिगतस्याथ किंचिद्बलयुतस्य च।
पूर्णा नाम दशा ज्ञेया धनवृद्धिकरी शुभा॥
सर्वैर्बलैरुपेतस्य नीचराशिगतस्य च।
रिक्ता नाम दशा ज्ञेया धननाशस्य कारिणी॥
यः स्यात् परमनीचस्थस्तथा चारिनवांशके।
तस्यानिष्टफला नाम दशानर्थविवर्धिनी॥

(२) अब परमोच्चांश तथा परमनीचांश का फलित ज्योतिष में दूसरा उपयोग बतलाते हैं : भगण-राशिचक्र में ग्रह का परमनीचांश से १८०° परम उच्चांश तक (यथा सूर्य का तुला के १० अंश से मेष के १० अंश तक) आरोह भाग (चढ़ना) कहलाता है; क्योंकि वह नीच (निम्न) स्थान से उच्च (ऊंचे) स्थान को जा रहा है। आरोही ग्रह का शुभफल है। इसके विपरीत अपने परम उच्चांश से १८०° परम नीचांश तक (यथा सूर्य का मेष के १० अंश से तुला के १० अंश तक) अवरोह (उतरना) भाग कहलाता है; क्योंकि ग्रह अपने उच्च (ऊंचे) स्थान से नीच (नीचे) स्थान की ओर जा रहा है। अवरोही ग्रह का अशुभ फल है। वही वराहमिहिर ने कहा है (अध्याय ८, श्लोक ६) :–

भ्रष्टस्य तुङ्गादवरो हि संज्ञा
मध्या भवेत्सा सुहृदुच्चभांशे।
आरोहिणी निम्नपरिच्युतस्य
नीचारिभांशेष्वधमा भवेत्सा॥

कल्याण वर्मा का कथन है (सारावली अध्याय ४०, श्लोक ८) :–

तुङ्गाच्च्युतस्य हि दशा सुहृदुच्चांशेऽवरोहिणी मध्या।
नीचाद्रिपुनीचांशे ग्रहस्य चारोहिणी कष्टा॥

अर्थात् जो ग्रह अपने परमोच्चांश को पार कर अवरोही हो गया हो उस की दशा अधमा होती है किन्तु अवरोही होने पर भी यदि अपने उच्च नवांश या मित्र नवांश में हो तो मध्या अर्थात् न प्रशस्त न निकृष्ट होती है। जो ग्रह अपने परम नीचांश को पार करें वह आरोही होता है उसकी दशा प्रशस्त होती है किन्तु आरोही होने पर भी यदि ग्रह अपने नीच नवांश या शत्रु नवांश में हो तो कष्टकारक होती है। अर्थात् दशाफल के उत्तम या अधम होने का एक हेतु हुआ–आरोह, अवरोह; अन्य हेतु हुआ—नवांश स्थिति। दोनों का तारतम्य, फलादेश में कर लेना चाहिये। रुद्रभट्ट कहते हैं :–

"सम्पूर्णायां दशायाम् आरोग्यधनयोः समृद्धिः। पूर्णायामारोग्यधनयोः सद्भावः। रिक्तायामारोग्यधनयोरभावः, रोगदारिद्र्यबाहुल्यमिति यावत्। अनिष्टफलायां देहविषये वा धनविषये वा कष्टफलप्रायत्वं, नात्यन्ताभाव इत्यर्थः। अवरोहिण्यामारोग्यधनयोः क्रमावरोहणम्। मध्यायामवरोहणेऽपि किञ्चिद् वृद्धिः। आरोहिण्यामारोग्यधनयोः क्रमोत्कर्षः। अधमायाम् उत्कर्षे किञ्चिद् अपकर्षः। मिश्रफलायां त्वारोग्यधनसमृद्ध्योर्व्याधिनैर्धन्ययोश्च देशकालवशान्मिश्रत्वम्।"

राशियों के दश वर्ग

लग्नं होरा दृकाणं स्वरनवदशकद्वादशांशाः कलांशाः
त्रिंशत्षष्ट्यंशकाख्या व्ययदुरितचयश्रीकरा मानवानाम् ।
होरा राश्यर्धमोजे दिनकरशशिनोरिन्दुमार्त्तण्डहोरे
युग्मे राशौ दृगाणा निजतनयतपःस्थानपानां भवन्ति ।।३०।।

लग्नादिसप्तमांशेशास्त्वोजे राशौ यथाक्रमम् ।
युग्मे लग्ने स्वरांशानामधिपाः सप्तमादयः ।।३१।।

चापाजसिंहराशीनां नवांशास्तुम्बुरादयः ।
वृषकन्यामृगाणां च मृगाद्या नव कीर्तिताः ।।३२।।

नृयुक्तुलाघटानां च तुलाद्याश्चांशका नव ।
कर्किवृश्चिकमीनानां कर्कटाद्या नवांशकाः ।।३३।।

चरे चाद्यंशको ज्ञेयः, स्थिरे मध्यनवांशकः ।
अन्त्यांशको द्विस्वभावे वर्गोत्तम इति स्मृतः ।।३४।।

लग्नादिदशमांशेशास्त्वोजे, युग्मे शुभादिकाः ।
द्वादशांशाधिपतयस्तत्तद्राशिवशानुगाः ।।३५।।

ओजे कलांशप्रमुखास्तदीशा विरञ्चिशौरीशदिवाकराश्च ।।
युग्मे विलग्ने सति भास्कराद्या विलोमतः षोडशभागनाथाः ।।३६।।

आरार्किजीवशशिनन्दनशुक्रभागा-
स्त्वोजे समीरपवनाष्टकशैलबाणाः ।
युग्मे समीरगिरिपन्नगपञ्चबाणाः
त्रिंशांशकास्सितविदार्यशनिक्ष्माजाः ।।३७।।

षष्ट्यंशकानामधिपास्त्वयुग्मे
घोरांशकाद्यासुरदेवभागाः ।
य इन्दुरेखादिशुभाशुभांशाः
क्रमेण युग्मे तु यथाविलोमात ।।३८।।

घोरांशको राक्षसदेवभागौ कुबेरयक्षोगणकिन्नरांशाः ।
भ्रष्टः कुलघ्नो गरलाग्निसंज्ञौ मायांशकः प्रेतपुरीशभागः ।।३९।।

अपांपतिर्देवगणेशभागः कालाहिभागावमृतांशचन्द्रौ ।
मृद्वंशकः कोमलपद्मभागौ लक्ष्मीशवागीशदिगम्बरांशाः ॥४०॥
देवार्द्रभागौ कलिनाशसंज्ञः क्षितीश्वराख्यः कमलाकरांशः ।
मन्दात्मजो मृत्युकरस्तु कालो दावाग्निघोराधमकण्टकांशाः ॥४१॥
सुधाऽमृतांशौ परिपूर्णचन्द्रो विषप्रदिग्धः कुलनाशभागः ।
मुख्यास्तु वंशक्षयपातकांशौ कालस्तु सौम्यो मृदुशीतलांशौ ॥४२॥
दंष्ट्राकरालेन्दुमुखाः प्रवीणः कालाग्निदण्डायुधनिर्मलाख्याः ।
शुभाकरोऽशोभनशीतलांशौ सुधापयोधिभ्रमणेन्दुरेखाः ॥४३॥

पहिले इन श्लोकों का अर्थ बतलाया जाता है । फिर इसकी व्याख्या की जायेगी। इसमें राशि का विभाग बतलाया है ।

किसी भी राशि को—यदि अंशों को—अविभाजित रखा जाये तो राशि होती है । यदि १५-१५ अंश के दो भाग कर दिये जायें—०°-१५° एक भाग तथा १५°-३०° तक दूसरा भाग तो १५ अंश के एक भाग को होरा कहते हैं । यदि राशि के ३० अंश के मान को तीन बराबर खंडों में विभाजित कर दिया जाये तो (i) ०°-१०° एक खण्ड हुआ (ii) १०°-२०° दूसरा खण्ड तथा (iii) २०°-३०° तीसरा खण्ड । प्रत्येक दस अंश के खण्ड को द्रेष्काण कहते हैं ।

यदि राशि को—३० अंशों को ७ से विभाजित किया जाये तो प्रत्येक खण्ड, प्राय: ४°-१७′-८″ का हुआ । यह सप्तमांश कहलाता है । यदि राशि मान के ३० अंशों को नौ समान भाग में विभाजित किया जाये तो एक विभाग ३°-२०′ का हुआ । यह नवांश या नवमांश कहलाता है । यदि प्रत्येक राशि को १० बराबर भागों में विभाजित किया जाये तो—एक भाग ३ अंश का हुआ । यह दशांश या दशमांश कहलाता है । यदि राशि को बारह बराबर भागों में बांटें तो प्रत्येक भाग २°-३०′ का हुआ यह द्वादशांश कहलाता है ।

यदि राशि को १६ भागों में विभाजित किया जाये तो प्रत्येक भाग १°-५२′-३०″ का हुआ । इस भाग को षोडशांश कहते हैं । यदि राशिमान को ३० भागों में बराबर विभाजित किया जाये तो प्रत्येक भाग १ अंश का हुआ । यह त्रिशांश कहलाता है । यदि राशि को ३० अंशों के ६० समान भाग किये जायें तो प्रत्येक भाग आधे अंश का हुआ । इसे षष्ट्यंश (साठवाँ भाग) कहते हैं ।

यही (i) लग्न (राशि), (ii) होरा, (iii) द्रेष्काण, (iv) सप्तमांश, (v) नवमांश, (vi) दशमांश, (vii) द्वादशांश, (viii) षोडशांश, (ix) त्रिशांश तथा (x) षष्ट्यंश दशवर्ग कहलाते हैं। वर्ग का अर्थ हुआ विभाग।

राशि

यदि राशि को अविभाजित रखा जाये तो वह राशि ही कहलायेगी, इसलिये इसकी व्याख्या की कोई आवश्यकता नहीं है।

होरा

१२ राशियों को–प्रत्येक को २ बराबर खण्डों में विभाजित करने से २४ खंड हुए। ओज–अर्थात् ऊनी राशियों में ०°-१५° तक प्रथम होरा का स्वामी सूर्य हुआ और १५°-३०° तक दूसरी होरा का स्वामी चन्द्रमा हुआ। सम राशियों में प्रथम होरा ०°-१५° तक के भाग का स्वामी चन्द्रमा हुआ और १५°-३०° तक के भाग का स्वामी सूर्य।

होरा चक्र

राशि/विभाग	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
०-१५°	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४
१५-३०°	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५

यहाँ ५ का अर्थ सिंह और उसका स्वामी सूर्य हुआ तथा ४ का अर्थ कर्क तथा उसका स्वामी चन्द्रमा समझना। यह जातकपारिजात के लेखक का मत है और प्रायः यही मत ज्योतिष के अन्य ग्रंथों में प्राप्त होता है। परन्तु प्राचीन मत यह नहीं था। जैमिनिसूत्र पर जो वृद्ध कारिका हैं, वह जैमिनि पद्यामृत के अन्त में दी गई हैं। उसमें (पृष्ठ ९७ पर) कारिका है :–

राशेरर्धं भवेद्धोरा ताः चतुर्विंशतिः स्मृताः ।
मेषादि तासां होराणां परिवृत्तिद्वयं भवेत् ॥

बृहत्पाराशर में भी यह कारिका उपलब्ध होती है। पं० रामयत्न ओझा अपनी पुस्तक फलितविकास पृष्ठ १५-१६ पर लिखते हैं :–

'वराहमिहिर ने यह भी लिखा है कि पहले पहली होरा राशीश की, दूसरी एकादशेश की होती थी यह भी किसी का मत है। सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों की ही होरा हो यह बात वराहमिहिर के—

'होरेशर्क्षबलाश्रितैः शुभकरो दृष्टः शशी तद्गतः ।'

इस मत के विचार से नहीं निकलती। जो ग्रह सूर्य की होरा में हो वह सिंह में समझा जाये और जो चन्द्रमा की होरा में हो वह कर्क में समझा जाये—यह बात भी काल्पनिक है–किसी प्रमाण से नहीं है। इस श्लोक में ऋक्ष दल होरा का नाम लिखा है। वर्तमान पद्धति इसके विरुद्ध है। इससे प्रसिद्ध होराक्रम असंगत जान पड़ता है। ······ज्योतिर्विदाभरण नाम की पुस्तक-जो वराह-मिहिर के समकालीन जान पड़ती है–के राजसत्ताध्याय में लिखा है :–

'शस्तस्तिमिस्त्री जितुमादि होरा
स्थिरांश-गुर्वंशवतीह लग्ने।
चरेतरेऽग्वंशुमदंशुजारै-
स्त्रायारिगैर्भूमिभुजोभिषेकः ॥'

इसका अर्थ यह है कि चर से अतिरिक्त अर्थात् स्थिर या द्विस्वभाव लग्न हो, उसमें मीन, कन्या, मिथुन और मेष की होरा हो, स्थिर राशि का या बृहस्पति का नवांश हो; राहु, सूर्य, शनि और मंगल लग्न से तृतीय, एकादश और षष्ठ में हों तो राजा का अभिषेक करना।

इससे भी राशि का होरा होना ही सिद्ध होता है। ग्रह की होरा हो–यह रीति इसके बाद शुरू हो गई, इससे भी ज्ञात होता है।"

पंडित श्री रामयत्न ओझा का उपयुक्त लेखांश, इस संदर्भ में बहुत महत्व-पूर्ण होने के कारण दिया गया है। हमें इस प्रसंग में विद्वानों का ध्यान और भी एक ओर आकृष्ट करना है। प्रायः ज्योतिष की जो षड्वर्ग या सप्तवर्ग जन्म-कुंडलियाँ बनती हैं उनमें होरा कुंडली के नीचे लिखा या छपा रहता है 'होरायां वै संपदाद्यं सुखं च'। अथवा

'होरालग्नात् धनस्थाने शुभा धनसमृद्धिदाः।
विनाशकारकाः पापा मिश्रैर्मिश्रफलं वदेत् ॥

अर्थात् होराकुण्डली में होरा लग्न से धन (द्वितीय) स्थान में शुभ ग्रह धन-समृद्धि करते हैं, पाप ग्रह धन विनाश करते हैं। मिश्रैः–कुछ शुभ ग्रह हों, कुछ पाप ग्रह हों तो मिला-जुला फल करते हैं। सम्प्रति जो होराकुण्डली बनाने की प्रक्रिया है उसमें सात ग्रहों में से कुछ को सूर्य की होरा–५ लिख कर उसमें रख देते हैं; अन्य ग्रहों को, जो चन्द्रमा की होरा में होते हैं–४ लिखकर उसमें रख देते हैं। लग्न में सूर्य की होरा हुई तो ५ ऊपर लिख देते हैं। चन्द्रमा की होरा हुई तो ४ ऊपर लिख देते हैं। अब कहिये, होरा-लग्न से धन स्थान

कैसे देखा जाये। होरा लग्न तभी ठीक होगा जब बारहों राशियों की होरा हो और होरा लग्न से द्वितीय स्थान (राशि) में शुभ ग्रह हो या पाप ग्रह हो—उससे निष्कर्ष निकाला जाये। अतः प्राचीनों के मतानुसार होराचक्र निम्नलिखित होगा :—

शुद्ध होराचक्र

राशि/अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
०°-१५°	१	३	५	७	९	११	१	३	५	७	९	११
१५°-३०°	२	४	६	८	१०	१२	२	४	६	८	१०	१२

द्रेष्काण

एक राशि के ३ भाग हुए। प्रत्येक भाग १० अंश का। ग्रंथकार के मत से १२ राशियों का विभाग निम्नलिखित से होता है :—

द्रेष्काण चक्र

राशि/अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
०°-१०°	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१०°-२०°	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
२०°-३०°	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८

१, २, ३ आदि संख्या मेष, वृष, मिथुन आदि की द्योतक हैं। इस परिपाटी के अनुसार मेष के जो तीन द्रेष्काण हुए उनके नाम हुए—मेष, सिंह, धनु। वृष के तीन द्रेष्काण हुए वृष, कन्या, मकर इत्यादि। अर्थात् प्रथम द्रेष्काण उसी राशि का, द्वितीय द्रेष्काण उस राशि से पंचम और तृतीय द्रेष्काण उससे नवम राशि का। ग्रंथकार ने यह मत दिया है। किन्तु वराहमिहिर ने बृहज्जातक अध्याय १ श्लोक १२ में लिखा है कि किसी-किसी के मत से प्रथम द्रेष्काण विचारणीय राशि का, द्वितीय द्रेष्काण उस (विचारणीय) राशि से द्वादश का और तृतीय उस विचारणीय राशि से एकादश का। अन्य मत से जिस राशि के द्रेष्काण का विचार करना है, उस राशि और उससे पंचम तथा नवम कौन-सी राशियाँ हैं

यह देखिये । प्रथम द्रेष्काण—चर राशिपति का, द्वितीय स्थिर राशिपति का, तृतीय द्वंद्व राशिपति का, उदाहरण के लिये वृश्चिक राशि के ३ द्रेष्काणों का विचार करना है। वृश्चिक, मीन, कर्क——ये तीन त्रिकोण राशियाँ हुईं । प्रथम कर्क (चर) की, द्वितीय वृश्चिक (स्थिर) की, तृतीय मीन (द्वंद्व) की ।

परन्तु हमारे विचार से वृद्धकारिका में जो क्रम दिया गया है वह सर्वश्रेष्ठ और प्राचीन है । जैमिनि पद्यामृत पृष्ठ ९७ ९८ कारिका है :—

राशित्रिभागे द्रेष्काणास्ते च षट् त्रिंशदीरिताः ।
परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादेः क्रमशो भवेत् ॥

बृहत्पाराशर में भी उपर्युक्त श्लोक प्राप्त होता है ।

पं० रामयत्न ओझा ने भी फलितविकास के पृष्ठ १८-१९ पर इसी मत की पुष्टि की है। इस प्रकार १२ राशियों में द्रेष्काण-क्रम निम्नलिखित हुआ :

शुद्ध द्रेष्काण चक्र

राशि अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
०°-१०°	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०
१०°-२०°	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११
२०°-३०°	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२

यथा मेष के तीन द्रेष्काण—मेष, वृष, मिथुन । वृष के तीन द्रेष्काण—कर्क, सिंह, कन्या आदि ।

सप्तमांश

३० अंशों को ७ से विभाजित किया जाये तो लब्धि ४°-१७′-८″ आती है । शेष ४ विकला रह जाती है । इसमें एक भाग ४°-१७′-८$\frac{४}{७}$″ का हुआ ।

सप्तमांश चक्र

	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
४°-१७'-८ ४/७"	१	८	३	१०	५	१२	७	२	९	४	११	६
८°-३४'-१५ १/७	२	९	४	११	६	१	८	३	१०	५	१२	७
१२-५१-२५ ५/७	३	१०	५	१२	७	२	९	४	११	६	१	८
१७- ८ ३४ २/७	४	११	६	१	८	३	१०	५	१२	७	२	९
२१-२५-४२ ६/७	५	१२	७	२	९	४	११	६	१	८	३	१०
२५-४२-५१ ३/७	६	१	८	३	१०	५	१२	७	२	९	४	११
३०- ०- ०	७	२	९	४	११	६	१	८	३	१०	५	१२

०° से ४°-१७'-८ ४/७" तक प्रथम भाग। ४°-१७'-८ ४/७" से ८°-३४'-१७ १/७" तक द्वितीय भाग। इसी प्रकार आगे समझना। किसी राशि में कोई ग्रह किस सप्तमांश में है—यह ज्ञात करने का सहज प्रकार यह है कि ओज राशियों में—मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुंभ में सप्तमांश उसी राशि से प्रारंभ होता है; यथा मेष में मेष से, मिथुन में मिथुन से इत्यादि। और सम राशियों में—वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन में तत्तद् राशि की सप्तम राशि से। उदाहरण के लिये वृष राशि में, वृष से सप्तम वृश्चिक से, कर्क में कर्क से सप्तम मकर से इत्यादि।

नवमांश

३० अंशों को ९ से विभाजित करने से एक भाग ३°-२०' का होता है। सब वर्गों में, नवांश का सर्वाधिक महत्व है। बहुत से आचार्य नवांश को उतना ही महत्व देते हैं जितना कि राशि को। इसी ग्रंथ के अध्याय १८ श्लोक ७१ में नवांश को राशि से अधिक महत्व दिया गया है। किसी भी राशि में प्रथम नवांश ०° से ३°-२०' तक, द्वितीय नवांश ३°-२०' से ६°-४०' तक, यह अगले पृष्ठ के चक्र से स्पष्ट है :—

नवांश चक्र

	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
३°-२०′	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४
६°-४०′	२	११	८	५	२	११	८	५	२	११	८	५
१०°- ०′	३	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२	९	६
१३°-२०	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७
१६°-४०′	५	२	११	८	५	२	११	८	५	२	११	८
२०°- ०′	६	३	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२	९
२३°-२०′	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०
२६°-४०,	८	५	२	११	८	५	२	११	८	५	२	११
३०°- ०′	९	६	३	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२

जब जो राशि हो—वही नवांश हो तो उसमें स्थित ग्रह वर्गोत्तम कहलाता है, यथा ०° से ३°-२०′ तक मेष राशि, मेष नवांश वर्गोत्तम हुआ। या सिंह के १३°-२०′ से १६°-४०′ तक सिंह राशि सिंह नवांश होने से वर्गोत्तम हुआ। इसको स्मरण रखने का सुगम उपाय है कि चर राशियों का प्रथम नवांश, स्थिर राशियों का मध्यम नवांश और द्विस्वभाव राशियों का अन्तिम नवांश वर्गोत्तम होता है।

दशमांश

किसी राशि को दस समान भागों में विभाजित किया तो प्रत्येक भाग ३ अंश का हुआ। ग्रंथकार के मत से और प्रायः यही मत सम्प्रति प्रचलित है—ओज, मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु तथा कुंभ राशियों में दशमांश उसी राशि से प्रारंभ किया जाता है, किन्तु युग्म राशियों में—वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन में—उस राशि से नवम राशि से प्रारंभ होता है। आगे के चक्र से स्पष्ट होगा :—

दशमांश चक्र

	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
०°- ३°	१	१०	३	१२	५	२	७	४	९	६	११	८
३°- ६°	२	११	४	१	६	३	८	५	१०	७	१२	९
६°- ९°	३	१२	५	२	७	४	९	६	११	८	१	१०
९°-१२°	४	१	६	३	८	५	१०	७	१२	९	२	११
१२°-१५°	५	२	७	४	९	६	११	८	१	१०	३	१२
१५°-१८°	६	३	८	५	१०	७	१२	९	२	११	४	१
१८°-२१°	७	४	९	६	११	८	१	१०	३	१२	५	२
२१°-२४°	८	५	१०	७	१२	९	२	११	४	१	६	३
२४°-२७°	९	६	११	८	१	१०	३	१२	५	२	७	४
२७°-३०°	१०	७	१२	९	२	११	४	१	६	३	८	५

यहाँ ओज राशियों में दशमांश उसी राशि से गिना जाये और युग्म राशियों में नवम राशि से गिना जाये यह क्यों ? जैसे, सप्तमांश या नवमांश में मेष से प्रारंभ कर मीन तक आवृत्तियाँ की जाती हैं उसी प्रकार दशमांश में भी क्रमश: राशियों की आवृत्तियाँ होनी चाहियें। मेष में—मेष से मकर तक, वृष में कुंभ से वृश्चिक तक, मिथुन में धनु से कन्या तक, कर्क में तुला से कर्क तक, सिंह में सिंह से वृष तक और कन्या में मिथुन से मीन तक, तुला में पुनः मेष से मकर तक इत्यादि। आगे लिखे चक्र से स्पष्ट होगा :—

शुद्ध दशमांश चक्र

	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मीं.
०°- ३°	१	११	९	७	५	३	१	११	९	७	५	३
३°- ६°	२	१२	१०	८	६	४	२	१२	१०	८	६	४
६°- ९°	३	१	११	९	७	५	३	१	११	९	७	५
९°-१२°	४	२	१२	१०	८	६	४	२	१	१०	८	६
१२°-१५°	५	३	१	११	९	७	५	३	१	११	९	७
१५°-१८°	६	४	२	१२	१०	८	६	४	२	१२	१०	८
१८°-२१°	७	५	३	१	११	९	७	५	३	१	११	९
२१°-२४°	८	६	४	२	१२	१०	८	६	४	२	१२	१०
२४°-२७°	९	७	५	३	१	११	९	७	५	३	१	११
२७°-३०°	१०	८	६	४	२	१२	१०	८	६	४	२	१२

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित विश्वपंचांग में इसी दशमांश चक्र की पुष्टि की गई है।

द्वादशांश

इसमें प्रत्येक राशि के १२ भाग किये जाते हैं। प्रत्येक भाग २°-३०′ का होता है। प्रत्येक राशि में उसी से द्वादशांश प्रारंभ किया जाता है–मेष में मेष से, वृष में वृष से, मिथुन में मिथुन से इत्यादि।

द्वादशांश चक्र

	म.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
२°-३०′	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
५°- ०′	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१
७°-३०′	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२
१०°- ०′	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३
१२°-३०′	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
१५°- ०′	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
१७°-३०′	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६
२०°- ०′	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७
२२°-३०′	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
२५°- ०′	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९
२७°-३०′	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
३०°- ०′	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११

षोडशांश

प्रत्येक राशि (३० अंशों) को १६ से विभाजित किया तो एक भाग का मान १°-५२′-३०′ हुआ। मेष से प्रारंभ कर मीन तक और पुनः मेष से कर्क तक, यह १६ विभाग मेष के हुए। मेष का अंतिम विभाग कर्क पर समाप्त हुआ है। इसलिये वृष का प्रथम विभाग सिंह से प्रारंभ हुआ। सिंह से कर्क तक १२ और पुनः सिंह से वृश्चिक तक यह १६ विभाग वृष के हुए। वृष का अंतिम विभाग वृश्चिक पर समाप्त हुआ है, इस कारण मिथुन का प्रथम विभाग

धनु से प्रारंभ कर, धनु से वृश्चिक तक १२; पुनः धनु, मकर, कुंभ, मीन इस प्रकार मीन पर समाप्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सूर्य विषम राशियों में क्रम से और समराशियों में उत्क्रम से (अर्थात् सूर्य, शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा इस क्रम से) चार आवृत्ति में, इन षोडश भागों के स्वामी होते हैं।

किस भाग का कौन अधिप होता है। ज्योतिष की दृष्टि से तो मेष भाग का मंगल, वृष का शुक्र, मिथुन का बुध ··· मीन का बृहस्पति अधिप हुआ। यही कार्य में आता है कि ग्रह कैसे वर्ग में है—अपने वर्ग में, उच्च वर्ग में, मित्र के या शत्रु के या नीच वर्ग में। इसी के अनुसार फलादेश में तारतम्य किया जाता है। अब ब्रह्मा, विष्णु, शिव या सूर्य का जो आधिपत्य कहा वह शुद्ध शास्त्रीय विषय है। होरा आदि के कौन अधिप होते हैं, यह अन्य शास्त्रों से, जिज्ञासुओं के विनोद के लिये लिखा जाता है :—

(i) सूर्य होरेश देवता, चन्द्र होरेश पितृगण (ii) चर, स्थिर, द्विस्वभाव राशियों के अधिप क्रमशः नारद, अगस्त्य और दुर्वासा होते हैं। (iii) सप्तमांशाधिपति, विषम राशियों में क्षार, क्षीर, दधि, आज्य, इक्षुरस, मद्य तथा शुद्ध जल होते हैं। मम राशियों में—शुद्ध जल, मद्य, इक्षुरस, आज्य, दधि, क्षीर, क्षार (iv) नवांशाधिपति—चर आदि में देव, नर, राक्षस इस क्रम से होते हैं। (v) दशमांश पति विषम राशियों में दश दिक्पाल क्रमशः इन्द्र, यम, अग्नि, राक्षस, वरुण, मारुत, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्त होते हैं। समराशियों में ये ही उत्क्रम से अर्थात् अनन्त ब्रह्मा, ईशान, कुबेर आदि इस कम से। (vi) द्वादशांशाधिपति गणेश, अश्विनीकुमार, यम, सर्प—ये चार तीन आवृत्ति से होते हैं। इनका उल्लेख केवल शास्त्रीय दृष्टि से कर दिया गया है। फलित-ज्योतिष में इनका कोई प्रयोजन नहीं है।

षोडशांश चक्र

	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
१°-५२'-३०"	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९
३°-४५'- ०"	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०
५°-३७'-३०"	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११
७°-३०'- ०"	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२
९°-२२'- ३०"	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१
११°-१५'- ०"	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२
१३°- ७'-३०"	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३
१५°- ७'- ०"	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४
१६°-१५'-३०"	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५
१८°-४५'- ०"	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६
२०°-३७'-३०"	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७
२२°-३०'- ०"	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८
२४°-२२'-३०"	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९
२६°-१५'- ०"	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०
२८°- ७'-३०"	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११
३०°- ०'- ०"	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२

त्रिशांश

त्रिशांश का अर्थ है तीसवाँ भाग। प्रत्येक भाग १ अंश का हुआ। पहिले ग्रंथकार का मत दिया जाता है, फिर प्राचीन मत दिया जायेगा। विषम राशियों में प्रथम पांच अंश का स्वामी मंगल, ५° से १० का शनि, १०° से १८° तक का स्वामी बृहस्पति, १८° से २५° का स्वामी बुध और २५° से ३०° तक का स्वामी शुक्र होता है। पराशर के मत से, इनके अधिप क्रमशः वह्नि वायु, शक्र, धनद और जलद होते हैं।

विषम राशि त्रिशांश चक्र

अंश	मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु तथा कुंभ
०°–५°	१
५°–१०°	११
१०°–१८°	९
१८°–२५°	३
२५°–३०°	७

यद्यपि मंगल मेष और वृश्चिक इन दो राशियों का स्वामी है किन्तु विषम राशि में त्रिशांश देखना हो तो यह भाग, मंगल की विषम राशि मेष को जाता है। इसीलिये ऊपर शनि बृहस्पति, बुध तथा शुक्र की विषम राशियाँ लिखी हैं; क्योंकि त्रिशांश लग्नकुण्डली बनाने में राशि १, २, ३ आदि की आवश्यकता होती है।

समराशियों में ०°-५° का स्वामी, ५°-१२° का बुध १२°-१८° का बृहस्पति, १८°-२५° का शनि तथा २५°-३०° का मंगल होता है। पराशर के मत से इनके स्वामी क्रम से जलद, धनद, शक्र, वायु और वह्नि होते हैं।

समराशि त्रिशांश चक्र

अंश	वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन
०°– ५°	२
५°–१२°	६
१२°–२०°	१२
२०°–२५°	१०
२५°–३०°	८

यहाँ शुक्र, बुध आदि की सम राशियाँ लिखी हैं क्योंकि यह सम राशि त्रिशांश चक्र है।

विशेष वक्तव्य

त्रिशाश विभाजन के विषय में कुछ विशेष वक्तव्य है। नाम तो है त्रिशांश-तीसवाँ भाग–फिर पाँच विभाग ही क्यों? और पाँचों विभाग के अंश समान क्यों नहीं? वराहमिहिर के समय में ही यवन ज्योतिष, भारतीय ज्योतिष की छाती पर चढ़ चुका था। नाम तो रखा त्रिशांश ही किन्तु हद्दा की भाँति एक नयी वस्तु प्रविष्ट कर दी। पं० रामयत्न ओझा अपनी पुस्तक फलितविकास पृष्ठ २३ पर लिखते हैं :–

"त्रिशांश की बात विलक्षण है। नाम तो त्रिशांश है परन्तु हिस्से पाँच ही हैं।

कुज-रविज-गुरुज्ञ-शुक्र-भागाः
पवन-समीरण-कौर्पिजूकलेयाः।
अयुजि युजि तु भे विपर्ययस्थाः
शशिभवनालिझषान्तमृक्षसन्धिः॥

इसको यदि पंचमांश कहा जाय तो कोई हानि नहीं; क्योंकि पंचमांशेश ही इसके स्वामी हैं। अंश किसी ने घटा बढ़ा दिया है—जैसा यवन मत में लिखा है :—

ओजर्क्षे पंचमांशेशाः कुजार्कीगुरुज्ञभार्गवाः ।
समभे व्यत्ययात् ज्ञेया द्वादशांशाः स्वभात् स्मृताः ॥

प्राचीन ऋषिप्रणीत रीति ने त्रिशांश के प्रत्येक राशि की तीस हिस्से किये हैं। त्रिशांशवश कइयों ने सूक्ष्म वस्तु का विचार लिखा है। यह एक-एक अंश का होता है। इस प्रथा को जब वराहमिहिर ने छोड़ा और रिश्वत खाकर ग्रीक वालों का मत लिया, उस समय यदि नाम बदलते तो लोग भड़क उठते। इसी कारण नाम नहीं बदला यह अनुमान होता है।

ऊपर एक ऐसे महान् विद्वान् का लेखांश दिया है जो ज्योतिष के मूर्द्धन्य विद्वान् थे और स्वर्गीय महामना पंडित मदनमोहन मालवीय ने उन्हें काशी के ज्योतिष विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया था। उन्होंने जो लिखा है, उसके अतिरिक्त भी हमें कुछ वक्तव्य है।

जयपुर के महाराजा संस्कृत कॉलेज के ज्योतिष विभाग के पूर्व अध्यक्ष पंडित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित, लघुपाराशरी की प्राचीन उद्योत टीका (जो नवलकिशोर प्रेस से सन् १९४१ में प्रकाशित हुई) के पृष्ठ ३७ पर "पाराशरीये"—(बृहत्पाराशर के) लिखकर 'किस हेतु या निमित्त से मत्यु संभावित है'—इस संदर्भ में कुछ श्लोक दिये हैं :—

लग्नेश्वरो रन्ध्रपतिश्च युक्तो वृषे वृषांशे वृषभदृकाणे ।
स्थितौ भवेतां यदि तौ वृषेण घातान्निमित्तौ मरणस्य वेद्यौ ॥

वृषे युग्मांशगौ तौ चेद्भल्लूकेन मृतिर्नृणाम् ।
वृषे कर्कांशगौ तौ चेन्नक्रादथ जले मृतिः ॥

वृषे सिंहांशगौ तौ चेद् व्याघ्राद्याघाततो मृतिः ।
वृषे कन्यांशगौ तौ चेत् कपिना नात्र संशयः ॥

वृषे तुलांशगौ तौ चेद् व्याघ्राद् भीतिं वदेत्तदा ।
वृषे कौर्प्यांशगौ तौ चेद् भुवतौ चिन्ताव्ययो भवेत् ॥

वृषे चापांशगौ तौ चेन्महिषेण मृतिं वदेत् ।
वृषे मृगांशगौ तौ चेन्महिषेण मृतिं वदेत् ॥

वृषे कुंभांशगौ तौ चेग्गोलांगूलान्मृतिं वदेत् ।
वृषे झषांशगौ तौ चेद्जवस्ताद् भयं भवेत् ॥

एवं संचिन्त्य मतिमान् भ्रात्रादीनां मृतिं वदेत् ।

अब यहाँ वृष राशि में वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ तथा मीन के नवांशों का उल्लेख किया है। वृषभ में तुला, वृश्चिक तथा धनु के नवांश होते नहीं। अतः अंश से नवांश अभिप्रेत नहीं है। अंश से अंश १ अंश का अभिप्रेत है। ऐसी स्थिति में एक-एक अंश का त्रिशांश मानने से काम चलेगा। इसी प्रकरण में—उद्योत टीका में पाराशरीय अन्य श्लोक दिये हैं, जिनमें सिंह राशि में मकर, कुंभ तथा मीन के अंशों का उल्लेख किया है। सिंह में मकर, कुंभ या मीन के नवांश होते नहीं। धनु राशि में मकर, कुंभ तथा मीन के अंशों का उल्लेख किया है। धनु में ये नवांश होते नहीं। विस्तार भय से मूल श्लोक नहीं दिये जा रहे हैं। अतः हम शुद्ध त्रिशांश चक्र दे रहे हैं।

वक्तव्य–प्रत्येक अपूर्ण चक्र को अगले पृष्ठ से संबद्ध समझना चाहिए।

शुद्ध त्रिशांश चक्र

अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
१ तक	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७
२ ,,	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८
३ ,,	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९
४ ,,	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०
५ ,,	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११
६ ,,	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२
७ ,,	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१

अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
८तक	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२
९ ,,	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३
१० ,,	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४
११ ,,	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५
१२ ,,	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६
१३ ,,	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७
१४ ,,	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८
१५ ,,	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९
१६ ,,	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०
१७ ,,	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११
१८ ,,	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२
१९ ,,	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१
१० ,,	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२
२१ ,,	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३
२२ ,,	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४
२३ ,,	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५
२४ ,,	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६
२५ ,,	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७
२६ ,,	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८

अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
२७ तक	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९
२८ ,,	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०
२९ ,,	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११
३० ,,	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२

षष्ट्यंश

षष्ट्यंश कहते हैं साठवें भाग को। ३० अंश (एक राशि) को ६० से विभाजित किया तो प्रत्येक भाग ½ (आधे) अंश का होता है। जिस राशि में षष्ट्यंश देखना हो उससे ही प्रारंभ करना चाहिये। यथा मेष में मेष से, वृष में वृष से इत्यादि।

षष्ट्यंश चक्र

क्र०सं०	अंश तक	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
१	०°-३०′	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
२	१°- ०′	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१
३	१°-३०′	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२
४	२°- ०′	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३
५	२°-३०′	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
६	३°- ०′	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
७	३°-३०′	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६
८	४°- '०	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७
९	४°-३०′	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८

क्र०स०	अंश तक	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
१०	५°- ०'	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९
११	५°-३०'	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१२	६°- ०'	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
१३	६°-३०'	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१४	७°- ०'	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१
१५	७°-३०'	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२
१६	८°- ०'	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३
१७	८°-३०'	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
१८	९°- ०'	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
१९	९°-३०'	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६
२०	१०°- ०'	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७
२१	१०°-३०'	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
२२	११°- ०'	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९
२३	११°-३०'	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२४	१२°- ०°	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
२५	१२°-३०'	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
२६	१३°- ०	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१
२७	१३°-३०'	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२

क्र०सं०	अंश तक	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
२८	१४°- ०'	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३
२९	१४°-३०'	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
३०	१५°- ०'	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
३१	१५°-३०'	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६
३२	१६°- ०'	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७
३३	१६°-३०'	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
३४	१७°- ०'	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९
३५	१७°-३०'	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
३६	१८°- ०'	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
३७	१८°-३०'	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
३८	१९°- ०'	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१
३९	१९°-३०'	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२
४०	२०°- ०'	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३
४१	२०°-३०'	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
४२	२१°- ०'	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
४३	२१°-३०'	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६
४४	२२°- ०°	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७
४५	२२°-३०'	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८

क्र०सं०	अंश तक	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
४६	२३°- ०'	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९
४७	२३°-३०'	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
४८	२४°- ०'	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
४९	२४°-३०'	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
५०	२५°- ०'	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१
५१	२५°-३०'	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२
५२	२६°- ०'	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३
५३	२६°-३०'	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
५४	२७°- ०'	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
५५	२७°-३०'	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६
५६	२८°- ०'	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७
५७	२८°-३०'	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
५८	२९°- ०'	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९
५९	२९°-३०'	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
६०	३०°- ०'	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११

इस प्रकार पाठकों ने अवलोकन किया कि प्रत्येक राशि में ६० षष्ट्यंश होते हैं। इनके नाम क्रमश: निम्नलिखित हैं :—

१ घोर, २ राक्षस ३ देव, ४ कुबेर, ५ यक्ष, ६ किन्नर, ७ भ्रष्ट, ८ कुलघ्न, ९ गरल, १० अग्नि, ११ माया, १२ प्रेतपुरीश, १३ वरुण, १४ इन्द्र, १५ काल, १६ अहि, १७ अमृत, १८ चन्द्र, १९ मृदु, २० कोमल, २१ पद्म, २२ लक्ष्मीश,

२३ वागीश, २४ दिगंबर, २५ देव, २६ आर्द्र, २७ कलिनाश, २८ क्षितीश्वर, २९ कमलाकर, ३० मन्दात्मज, ३१ मृत्युकर, ३२ काल, ३३ दावाग्नि, ३४ घोर ३५ अधम, ३६ कंटक, ३७ सुधा, ३८ अमृत, ३९ परिपूर्ण चन्द्र, ४० विषप्रदग्ध, ४१ कुलनाश, ४२ मुख्य, ४३ वंशक्षय, ४४ पातक, ४५ काल, ४६ सौम्य, ४७ मृदु, ४८ शीतल, ४९ दंष्ट्राकराल, ५० इन्दुमुख, ५१ प्रवीण, ५२ कालाग्नि, ५३ दंडायुध, ५४ निर्मल, ५५ शुभाकर, ५६ अशोभन, ५७ शीतल, ५८ सुधापयोधि, ५९ भ्रमण, ६० इन्दुरेखा ।

विषम राशियों में उपर्युक्त नाम क्रम से होते हैं यथा, १ घोर, २ राक्षस,⋯६० इन्दुरेखा । समराशियों में ये नाम उत्क्रम से होते हैं, यथा—समराशि में १ इन्दुरेखा, २ भ्रमण, ३ सुधापयोधि, ४ शीतल,⋯५८ देव, ५९ राक्षस, ६० घोर । इनमें घोर, राक्षस, यक्ष, भ्रष्ट, कुलघ्न, गरल, अग्नि, यम, अहि, दिगंबर, मन्दात्मज, मृत्युकर, काल, दावाग्नि, घोर, अधम, कंटक, विषदग्ध, कुलनाश, वंशक्षय, पातक, काल, दंष्ट्राकराल, दण्डायुध, अशोभन और भ्रमण अशुभ हैं । शेष शुभ हैं । षष्ट्यंशों के जो नाम यहाँ दिये गये हैं वे यत्र तत्र बृहत्पाराशर में दिये गये नामों से भिन्न हैं । सर्वार्थचिन्तामणि में षष्ट्यंशों के जो नाम दिये गये हैं वही प्रायः जातकपारिजात में हैं । अंतर केवल यह है कि ऊपर जो पाँचवाँ नाम यक्ष है वह उसमें राक्षस है ।

फलदीपिका अध्याय ३ श्लोक ५ में षष्ट्यंशों के नाम नहीं दिये गये हैं, केवल यह लिखा है कि ओज राशियों में १, २, ८, ९, १०, ११, १२, १५, १६, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३९, ४०, ४२, ४३, ४४, ४८, ५१, ५२ और ५७वें षष्ट्यंश क्रूर होते हैं, अन्य सौम्य । और युग्म राशियों में उपर्युक्त षष्ट्यंश सौम्य होते हैं अन्य क्रूर ॥३०-४३॥

दशवर्ग में संज्ञा-विशेष

मूलत्रिकोणस्वगृहोच्चभागवर्गोत्तमानां दशवर्गजानाम् ।
संयोगजातोत्तमनामपूर्वा वैशेषिकांशा इति ते वदन्ति ॥४४॥

उत्तमं तु त्रिवर्गैक्यं चातुर्वर्गन्तु गोपुरम् ।
वर्गपञ्चकसंयोगं सिंहासनमिहोच्यते ॥४५॥

वर्गद्वयं पारिजातं षण्णां पारावतांशकः ।
सप्तमं देवलोकः स्यादष्टमं च तथा भवेत् ॥४६॥

ऐरावतं तु नवकं फलं तेषां पृथक् पृथक् ।।
विलग्नहोराद्रेष्काणनवांशद्वादशांशकाः ।।४७।।
त्रिशांशकश्च षड्वर्गः शुभकर्मसु शस्यते ।
सप्तांशयुक्तः षड्वर्गः सप्तवर्गोऽभिधीयते ।।४८।।
जातकेषु च सर्वेषु ग्रहाणां बलकारणम् ।।३।।

जो ग्रह अपने मूल त्रिकोण, स्वगृह, उच्चभाग, वर्गोत्तम आदि में दश वर्ग में हो—उसके जितने विशिष्ट वर्गों में हों उसके अनुसार उत्तम आदि संज्ञा होती है। २ वर्गो में विशिष्ट हो तो पारिजात, ३ वर्गों में सुस्थित हो तो उत्तम,४ विशिष्ट वर्गो में हो तो गोपुर, ५ उत्कृष्ट वर्गों में हो तो सिंहासन, ६ श्लाघ्य वर्गो में हो तो पारावत, ७ स्वोच्चादि वर्गो में देवलोक, ८ ऐसे ही वर्गों में हो तो ब्रह्मलोक, ९ विशिष्ट वर्गो में हो तो शक्रवाहन और दसों स्वोच्चादि श्लाघ्यतम वर्गों में हो तो श्रीधाम संज्ञक होता है। इन पारिजात, उत्तम······श्रीधाम आदि के पृथक् पृथक् फल हैं।

अन्य मत से नौ विशिष्ट वर्गों में होने से ऐरावत और दस वर्गों में स्थित होने से वैशेषिक संज्ञा होती है। यहाँ यह स्मरण दिलाया जाता है कि यदि हम प्रचलित परिपाटी के अनुसार, प्रत्येक राशि में केवल सूर्य और चन्द्र की होरा मानें (अन्य ग्रहों की नहीं) तो सूर्य और चन्द्र दोनों, शुक्र और शनि के नैसर्गिक शत्रु होते हैं, और दश वर्गो में होरा भी है, इस कारण शुक्र और शनि कभी दश विशिष्ट वर्गों में हो ही नहीं सकते।

फलदीपिका में आठ विशिष्ट योग होने से सुरलोक संज्ञा कही है और ९ विशिष्ट वर्गों में स्थिति को ऐरावत। यहाँ एक महत्वपूर्ण विवेचन जो इस सम्बन्ध में मंत्रेश्वर ने किया है उससे पाठकों को अवगत कराना आवश्यक है। क्या सब वर्गों को समान महत्व दिया जाये? विद्वान् पाठक जानते हैं कि जो राशि या नवांश का महत्व है वह अन्य वर्गो का नहीं। मंत्रेश्वर कहते हैं कि किसी ग्रह की विशिंष्टता के अनेक हेतु हैं (१) स्वराशि स्थिति, (२) मूलत्रिकोण स्थिति, (३) उच्चराशि स्थिति, (४) केन्द्रस्थिति, (५) त्रिकोणस्थिति, (६) उत्तमभवनस्थिति, (७) वर्गोतमांश स्थिति। इनके साथ-साथ सप्तवर्ग स्थिति या दशवर्ग स्थिति। सप्तवर्ग या दशवर्ग में राशि आ ही जाती है तब स्वराशि, उच्च राशि, मूल त्रिकोण राशि का पृथक् उल्लेख क्यों किया? इस लिये ग्रह अधिमित्र राशि में होने से अच्छा ही समझा जायेगा किन्तु स्वराशि, मूल त्रिकोण राशि या स्वोच्च राशि का अपना अलग ही महत्व है। पुनश्च

ग्रह यदि केन्द्र त्रिकोण या उत्तम भवन यथा एकादश में होगा तभी पूर्ण शुभ फल करेगा, त्रिक आदि दुःस्थान में नहीं । अस्तु, प्रकृत विषय पर आइये । क्या दश वर्गों में प्रत्येक वर्ग का समान महत्व है ? नहीं। मंत्रेश्वर फलदीपिका अध्याय ३ में कहते हैं कि दशवर्गों में से यदि दशमांश, षोडशांश और षष्ट्यंश हटा दें तो बाकी के सप्तवर्ग कहलाते हैं। यदि सप्तमांश को भी हटा दें तो षड्वर्ग कहलाते हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि फलादेश में जो राशि का महत्व है वही नवांश का । मंत्रेश्वर के मत से यदि राशि का महत्व शत-प्रतिशत है तो अन्य वर्गों (होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश, नवांश, द्वादशांश, त्रिशांश) का प्रत्येक का पचास प्रतिशत और दशमांश, षोडशांश तथा षष्ट्यंश–प्रत्येक का पच्चीस प्रतिशत । नवांश के विषय में ऊपर पहिले ही कहा जा चुका है कि उसका महत्त्व राशि के समान ही कुछ विद्वानों ने माना है ।

दश वर्ग के प्रसंग में जो पारिजात, उत्तम आदि संज्ञा कही हैं—उनके विषय में जन्मपत्रिकाविधानम् के पृष्ठ ५३ पर लिखते हैं कि 'अत्र स्वद्रेष्काण-स्वनवांशस्वभवनादिग्रहाणां यदि वर्गत्रयं तदोत्तमांशो ज्ञेयः। एवं वर्गचतुष्टये गोपुरांशः······वर्गदशके वैशेषिकांशः । उत्तमोऽयं पक्षः । मूलत्रिकोणादि-गानामुत्तमांशादि-कल्पनेति मध्यमपक्षः । शुभग्रहवर्गगतानां तत्कल्पनेति हीन-पक्षः ।

अर्थात् जब ग्रह स्वराशि, स्वद्रेष्काण, स्वनवांश में हो तभी उत्तम संज्ञा का वास्तविक अधिकारी होता है । ये तीन वर्ग प्रधान हैं । इन तीन वर्गों के साथ-साथ चौथा वर्ग भी विशिष्ट हो तो गोपुर, पाँचवाँ भी विशिष्ट हो तो सिंहासनांश आदि । यदि राशि मात्र में बलवान् हो (द्रेष्काण तथा नवांश में नहीं) और अन्य वर्गों में अच्छा हो तो क्रमशः उत्तम, गोपुर आदि संज्ञा, मध्यम पक्ष है । और केवल शुभ राशि, शुभ वर्गों में होने से उत्तम, गोपुरादि संज्ञा हीन पक्ष है ।

आगे पाठक देखेंगे कि उत्तम, गोपुर, सिंहासन आदि की बहुत प्रशंसा की गई है । इन संज्ञा वाले ग्रहों की बड़ी महिमा गाई गई; बड़ा उत्कृष्ट शुभ फल कहा गया है । वह सब तभी चरितार्थ होगा जब ग्रह स्वराशि, स्वद्रेष्काण, स्वनवांश में होने के साथ-साथ अन्य विशिष्ट वर्गों में हों । इसी कारण सर्वार्थ-चिन्तामणि में अध्याय १ श्लोक २२-२४ में कहा है कि :—

क्रूरषष्ट्यंशगाः सर्वे नाशयन्ति खचारिणः ।
परिपूर्णबलैर्युक्ता स्वोच्चमूलत्रिकोणगाः ॥
स्वर्क्षकेन्द्रोत्तमांशस्था मित्रक्षेत्रत्रिकोणगाः ।
सप्तवर्गोद्भवाः स्वांशाः स्वाधिमित्रांशकान्विताः ॥
वर्गास्तु ये दश प्रोक्ताः पूर्वाचार्यैर्महर्षिभिः ।
भवन्ति वर्गसंयोगे पारिजातादिसंज्ञकाः ॥
दुःस्थारि-नीच-मूढस्था ग्रहा बलविवर्जिताः ।
मरणावस्थगाश्चेत्तु पारिजातादिनाशकाः ॥

अर्थात् पारिजात, उत्तम आदि जो संज्ञायें कही हैं—उनका वैशिष्ट्य, उत्तम-फलप्रदत्व नष्ट हो जाता है यदि वह ग्रह दुःस्थान में हो, अस्त आदि दोषों से दूषित हो। वास्तव में स्ववर्ग में होने से पारिजातादि संज्ञा का पूर्ण प्रभाव होता है और वह भी उस स्थिति में जब ग्रह अपनी राशि, अपने द्रेष्काण, अपने नवांश में हो। अधिमित्र राशि, अधिमित्र द्रेष्काण, अधिमित्र नवांश में होने से सामान्य शुभ फल होता है, प्रकर्ष शुभ फल नहीं होता। इसी कारण सर्वार्थ-चिन्तामणि के टीकाकार, अधिमित्रादि वर्गस्थिति के विषय में कहते हैं :—"अयं पक्षो नादरणीयः। मुख्यपक्षस्तु स्वत्र्यंशे, स्वनवांशके स्वभवन इति ग्राह्यः।" पाठकों का विशेष ध्यान मूल श्लोक ४४ (देखिये पृष्ठ ५७) के शब्दों की ओर आकृष्ट किया जाता है कि वैशेषिकांश (उत्कृष्ट अंशस्थिति-जनित वैशिष्ट्य) तभी होता है, जब ग्रह अपनी (स्व), मूल त्रिकोण या उच्च भाग में हो अर्थात् इन राशियों में हो और स्व या उच्च वर्गों में (राशि के अतिरिक्त अन्य ९ वर्गों में) हो। मान लीजिये ग्रह स्व या उच्च वर्गों में नहीं है, किन्तु अधिमित्र वर्गों में हैं तो भी अच्छा फल करेगा किन्तु उतना विशिष्ट नहीं जितना स्ववर्गों में। यह फलितज्योतिष का सिद्धान्त है। बहुत वार प्राचीन आचार्य किसी सिद्धान्त का पृथक् प्रतिपादन नहीं करते किन्तु उनकी किसी भी, कहीं भी कही गई उक्ति से निष्कर्ष निकाला जाता है। यही तर्क का वैभव है—यही बुद्धि का चमत्कार है, यही पांडित्य है, तभी तो कहा है : "अनुक्तमप्यूहति पंडितो जनः" अर्थात् पंडित, जो नहीं कहा गया है, उसको भी समझ लेता है। प्रकृत विषय पर आइये। वराह-मिहिर बृहज्जातक के अध्याय १३ श्लोक १ में लिखते हैं :—

अहनि निशि च चन्द्रे स्वेऽधिमित्रांशके वा ।
सुर-गुरु-सित-दृष्टे वित्तवान् स्यात् सुखी च ॥

अर्थात् यदि दिन में जन्म हो, चन्द्रमा अपने या अधिमित्र के नवांश में हो और बृहस्पति से दृष्ट हो तो धनी और सुखी हो। यदि रात्रि का जन्म हो,

चन्द्रमा अपने या अधिमित्र के नवांश में हो और शुक्र से दृष्ट हो तो यही फल।

वराहमिहिर ने स्वनवांश को महत्त्व दिया। स्वनवांश का निर्देश पहले किया, तदनन्तर अधिमित्र नवांश का उल्लेख किया। इसलिये निष्कर्ष यह निकला कि स्वभाग विशिष्ट होता है। अधिमित्र भाग भी अच्छा ही है किन्तु स्व के समान विशिष्ट नहीं।

इसलिये अधिमित्र वर्गों में भी ग्रह को पुष्ट समझना परन्तु उतना बलयुक्त नहीं जितना अपने वर्ग में। ज्योतिषियों का एक सम्प्रदाय और भी है। वे देखते हैं कि कोई भी ग्रह कितने शुभ वर्गों में है, कितने पापवर्गों में? शुभ वर्ग और पापवर्ग क्या? शुभ वर्ग अर्थात् बुध, चन्द्र, शुक्र, बृहस्पति के वर्ग अर्थात् यदि द्रेष्काण, सप्तमांश, नवांश आदि में वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, धनु या मीन में हो तो शुभ वर्ग। मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर या कुंभ के द्रेष्काणादि में हो तो पापवर्ग। इसका एक अपवाद है। पापवर्ग में होते हुए भी ग्रह यदि उच्च वर्ग में हो यथा मंगल मकर में हो तो वह शुभ ही समझा जाता है। शुभवर्ग में होते हुए भी ग्रह यदि अपने नीचवर्ग में हो यथा बुध मीन में या शुक्र कन्या में हो तो अच्छा नहीं होता। पाठकों को ध्यान में रखना चाहिये कि पापग्रह भी यदि शुभ वर्गों में हो और शुभ वर्गों में स्थित शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो सौम्य हो जाता है और शुभ ग्रह भी यदि पापवर्गों में हो और पापवर्ग स्थित पापग्रहों से दृष्ट हो तो शुभ फल नहीं दिखाता।

षड्वर्ग और सप्तवर्ग

लग्न (राशि), होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश तथा त्रिशांश—यह षड्वर्ग हैं। केवल ग्रहों का ही शुभ वर्ग नहीं देखना। भावों का षड्वर्ग देखना चाहिये। शुभ कर्म (मुहूर्तविषयक सिद्धान्त कहते हैं) के समय यदि लग्न स्पष्ट; शुभ राशि, शुभ होरा, शुभ द्रेष्काण, शुभ नवांश, शुभ द्वादशांश, शुभ त्रिशांश में हो तो प्रशस्त है। यही मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है :—

······गेहं होराऽथ दृक्कनवमांशकसूर्यभागाः, त्रिशांशकश्च षडिमे कथितास्तु वर्गाः। सौम्ये शुभं भवति चाशुभमेव पापैः॥

यदि उपर्युक्त षड्वर्गों में सप्तमांश भी जोड़ दिया जाये तो सप्तवर्ग कहलाता है। षड्वर्गों का बहुत प्राधान्य है। उससे कम सप्तमांश का। उससे कम

दशमांश, षोडशांश तथा षष्ट्यंश का। रुद्रभट्ट अपने विवरण में एक प्राचीन उद्धरण देते हैं :–

मूलाधारो दृगाणः स्यात् पितृचिन्ता रविस्तथा।
स्वाधिष्ठाने तु होरा स्यान्मातृचिन्ता तथा शशी॥
मणिपूरे नवांशे च भ्रातृचिन्ता कुजोऽपि च।
अनाहते च त्रिंशांशो वाणीचिन्ता बुधस्तथा॥
विशुद्धौ द्वादशांशे स्यात् पुत्रचिन्ता तथा गुरुः।
आज्ञायां क्षेत्रमुद्दिष्टं जायाचिन्ता सितस्तथा॥
द्वादशान्ते शनैश्चारी नाशचिन्ता च कीर्तिता।
तत्रस्थैस्तदधीशैश्च बलाबलवशात् फलम्॥

तत्र षड्वर्गाणां वेदाङ्गत्वं प्रदर्शयति—द्रेष्काणः पादौ, होरा वस्त्रं, नवभागः पाणियुगलं, त्रिंशांशकश्चक्षुषी, द्वादशांशको नासापुटं, क्षेत्रं श्रवणयुगलम्। अन्यदप्यर्थान्तरमत्र सूचितम्। नवांशका नव प्राणात्मकाः।

"प्राणोऽपानः समानश्चोदान-व्यानौ च वायवः।
नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः॥"

धनञ्जयव्यतिरिक्ता नव प्राणा नवांशकाः। द्वादशांशकास्तु मनोबुद्धीन्द्रियदशमात्मकाः। दशभिःप्राणैः द्वादशभिरिन्द्रियैरपि एकविंशतिविधं सूक्ष्मशरीरमुत्पद्यते। तथा चोक्तं भगवत्पादाचार्येण—

इह तावदक्षदशकं मनसा सह बुद्धितत्त्वमथवा युगपाः।
इति लिङ्गमेतदमुना पुरुषाः सह सङ्गतो भवति जीवः॥

इति। स्थूलशरीरं तु त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्रमयं तद्राशिसंज्ञम् इति। तत्र जातके लग्नराशेरर्धं फलम् अर्धं चन्द्रस्य। प्रश्नेऽप्युदयारूढयोस्तद्वत्। अतो लग्नचन्द्रयोर्बलवतः होराशास्त्रेण निरूपणीयमिति सूचितम्॥

रुद्रभट्ट के इतने विस्तृत उद्धरण देने के तीन प्रयोजन हैं। प्रथम यह कि प्राचीन आचार्यों ने षड्वर्ग को कितना महत्त्व दिया है, इससे पाठक अवगत हो जायें। द्वितीय यह कि जन्मकुण्डली में पचास-प्रतिशत महत्त्व जन्मलग्न को देना, बाकी ५० % चन्द्र लग्न को। इसी लिये उत्तर भारत में यह परिपाटी है कि जन्म कुण्डली के नीचे चन्द्रकुण्डली दी जाती है। प्रश्न में आधा महत्व प्रश्नलग्न को

देना आधा महत्व आरूढ लग्न को। दक्षिण भारत में अब भी आरूढ लग्न का प्रचार है किन्तु उत्तर भारत में बहुत कम ज्योतिषी आरूढ लग्न की ओर ध्यान देते हैं। तृतीय प्रयोजन यह है कि जन्मलग्न और चन्द्रलग्न में जो बलवान् हो उसके षड्वर्ग से विचार करना ॥ ४४-४८½ ॥

भावों के नाम

कल्पोदयाद्यतनुजन्मविलग्नहोरा वागर्थभुक्तिनयनस्वकुटुम्बभानि।
वृश्चिक्यविक्रमसहोदरवीर्यधैर्यकर्णास्तृतीयभवनस्य भवन्ति संज्ञाः।४९।

पातालवृद्धिहिबुकक्षितिमातृविद्यायानाम्बुगेहसुखबन्धुचतुष्टयानि।
धीदेवराजपितृनन्दनपञ्चकानि रोगांगशस्त्रभयषष्ठरिपुक्षतानि ।।५०।।

जामित्रकामगमनानि कलत्रसम्पद्
द्यूनास्त-सप्तमगृहाणि वदन्ति चार्याः।
रन्ध्रायुरष्टरणमृत्युविनाशनानि
धर्मो गुरुः शुभतपोनवभाग्यभानि ।।५१।।

व्यापारमेषूरणमध्यमानं ज्ञानं च राजास्पदकर्मसंज्ञाः।
एकादशोपान्त्यभवायलाभा रिष्फव्ययद्वादशकान्त्यभानि ।।५२।।

कुल बारह राशियाँ हैं और वही बारह राशियाँ बारह भाव कहलाती हैं। राशि और भाव में अन्तर यह है कि बारह राशियों में मेष पहली, वृष दूसरी, मिथुन तीसरी, कर्क चौथी, सिंह पाँचवीं, कन्या छठी, तुला सातवीं, वृश्चिक आठवीं, धनु नवीं, मकर दसवीं, कुंभ ग्यारहवीं, मीन बारहवीं राशि होती हैं। इस प्रकार भचक्र की आवृत्ति पूरी हो जाती है। इन राशियों का क्रम स्थिर है। इनमें कभी परिवर्तन नहीं होता। मेष के बाद सदैव वृष, वृष के बाद मिथुन इत्यादि। अब भाव किसे कहते है? जैसे सूर्य प्रातःकाल पूर्व में हो, मध्याह्न में मध्य आकाश में, सायंकाल पश्चिम में, मध्य रात्रि को पृथ्वी के नीचे—इसी प्रकार, पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण जो राशि प्रातःकाल पूर्व में उदित होती है मध्याह्न में मध्य आकाश में आ जाती है, सायंकाल पश्चिम में, मध्य रात्रि में ठीक पृथ्वी के नीचे फिर प्रातः पूर्वीय क्षितिज पर होती है। प्रायः एक-एक अंश (राशि का ३०वाँ भाग) आगे बढ़ता रहता है। आज प्रातः यदि मेष का १ अंश पूर्व में उदित हुआ है तो कल २° अश उदित होंगे। ३०वें दिन मेष३का ३०वाँ अंश उदित होगा। ३० अंश पर मेष समाप्त होता है। इसलिये १ले दिन वृष का १ला अंश उदित होगा। इस प्रकार प्रातः १ अंश प्रतिदिन आगे

बढ़ता रहता है। अब प्रथम भाव वह राशि होती है, जो जन्म के समय पूर्व में उदित हो रही हो। यदि जन्म के समय पूर्व में मेष राशि उदित हो तो मेष प्रथम भाव, वृष द्वितीय, मिथुन तृतीय भाव—इस प्रकार १२ भाव १२ राशियों में पड़ते हैं।

मान लीजिये सिंह राशि जन्म के समय पूर्वीय क्षितिज पर थी तो सिंह प्रथम भाव, कन्या द्वितीय भाव, तुला तृतीय भाव, वृश्चिक चतुर्थ भाव हुआ। धनु पंचम भाव, मकर षष्ठ भाव, कुंभ सप्तम भाव, मीन अष्टम भाव हुआ। मेष नवम भाव, वृष दशम भाव, मिथुन एकादश भाव, कर्क द्वादश भाव।

मान लीजिये वृश्चिक लग्न है अर्थात् जन्म के समय वृश्चिक राशि उदित हो रही थी, तो वृश्चिक पहला भाव (भाषा में इसको घर भी कहते हैं) या घर, धनु दूसरा भाव या घर, मकर तीसरा, कुंभ चौथा, मीन पाँचवाँ, मेष छठा, वृष सातवाँ, मिथुन आठवां, कर्क नवाँ, सिंह दसवाँ, कन्या ग्यारहवाँ तथा तुला बारहवाँ भाव या घर हुआ। भाव की गणना सदैव पूर्वीय क्षितिज पर उदित होने वाली राशि से प्रारंभ होती है। बहुत-से ज्योतिषियों का मत है कि उदित होने वाली समस्त राशि को भाव नहीं मानना; किन्तु मान लीजिये मेष के २० अंश उदित हो रहे हैं तो २०वें अंश को भाव मध्य मान कर १५-१५ अंश दोनों ओर तक प्रथम भाव हुआ। मेष के २०° अंश से १५ अंश घटाये तो ५ अंश मेष के हुए। यह प्रथम भाव प्रारंभ हुआ। मेष का २० अंश प्रथम भाव मध्य हुआ। २० अंश मेष (प्रथम भाव मध्य) में १५ अंश जोड़े तो ५ अंश वृष पर प्रथम भाव समाप्ति हुई। इसी प्रकार ३०-३० अंश का एक-एक भाव हुआ। और वृष के ५ अंश से मिथुन के ५ अंश तक द्वितीय भाव। मिथुन के ५ अंश से कर्क के ५ अंश तक तृतीय भाव, इसी प्रकार १२ भावों की कल्पना करते हैं और कहते हैं कि उपर्युक्त प्रकार से भाव का आरंभ, मध्य और अवसान निश्चित करना चाहिये। एक तीसरा सम्प्रदाय है कि लग्न स्पष्ट करना, तथा दशम स्पष्ट (यवन मतानुसार करना—दशम स्पष्टसारिणी से) करना, फिर दशम स्पष्ट और लग्न स्पष्ट में जितने अंश, कला का अन्तर है, उसे ६ से विभाजित करना। जो भजनफल आवे उसे दशम स्पष्ट में जोड़ना—यह दशम भाव का अन्त, ग्यारहवें भाव का प्रारंभ होता है। इसी प्रकार ग्यारहवें भाव के प्रारंभ में यह छठा भाग जोड़ना—यह ग्यारहवें भाव का मध्य हुआ। इसी प्रकार १२वाँ भाव बनाना। इसकी विस्तृत आलोचना हमने अपनी टीका में आगे (देखिये ११वें अध्याय में) की है। भाव बनाने की पद्धति, जो वर्तमान समय में प्रचलित है, सुगम ज्योतिष-प्रवेशिका में समझाई है। उसको वहाँ अवलोकन करें।

यहाँ हम केवल यह निर्देश करना चाहते हैं कि जो लग्न उदित हो, उसी लग्न राशि से प्रारंभ कर, आगे की राशियों को क्रमशः आगे के भाव मानने चाहियें; अन्यथा फलादेश में महान् भ्रम हो जायेगा। यथा नीचे एक जन्म-कुण्डली दी जाती है :

एक सज्जन का जन्म चूरू (राजस्थान) अक्षांश २८-१९ उत्तरीय देशान्तर ७५-०१ पूर्वीय में बुधवार २० अगस्त की रात्रि। २१ अगस्त को प्रातः (अंग्रेज़ी तारीख मध्य रात्रि के १२ बजे बदल जाती है) १ बजकर २४ मिनट पर भारतीय स्टैण्डर्ड समय के अनुसार हुआ। ग्रह स्पष्ट निम्नलिखित हैं :—

ग्रह	स्पष्ट	गति
सूर्य	४- ३-४९- ५	०-५७-४७
चन्द्र	६- १-५९-२५	१३-२१-१६
मंगल	२-११-२७-३०	०-३९- ०
बुध	३-२५-१७-१	१-५९- ०
गुरु	६-२६-२५-५९	०- ६- ०
शुक्र	४- ०- २-४०	१-१४- ०
शनि	३-२१-१३-४०	०- ८- ०
राहु	१- ४-४५- ४	०- ३-११
केतु	७- ४-४५- ४	०- ३-११

सायन लग्न २-२५°-४७′; सायन दशम स्पष्ट ११-१०°-१६′। अयनांश २३°-७′-२६″। निरयन लग्न स्पष्ट २-२°-३९′-३४″।

हमारे विचार से (और ऐसी प्रचलित परिपाटी भी है) मिथुन प्रथम भाव, इसमें मंगल, भावेश बुध, कर्क द्वितीय भाव, इसमें शनि और बुध, भावेश चन्द्र; सिंह तृतीय भाव इसमें सूर्य और शुक्र, भावेश सूर्य; कन्या चतुर्थ भाव इसमें भावेश बुध; तुला पंचम भाव इसमें चन्द्र और बृहस्पति, भावेश शुक्र, वृश्चिक षष्ठ भाव इसमें केतु, भावेश मंगल; धनु सप्तम भाव, भावेश बृहस्पति, मकर अष्टम भाव, अष्टमेश शनि, कुंभ नवम भाव, नवमेश शनि; मीन दशम भाव, दशमेश बृहस्पति, मेष एकादश भाव, एकादशेश मंगल; वृष द्वादश भाव द्वादश में राहु, द्वादशेश शुक्र को मानेंगे। इस प्रणाली से भाव और भावेश,

गणना प्रचलित है। देखिये "लघुपाराशरी," तथा "त्रिफला-ज्योतिष"। ये दोनों पुस्तकें मोतीलाल बनारसीदास पुस्तक प्रकाशक, चौक वाराणसी से प्राप्य हैं।

परन्तु यदि प्रचलित भावमध्य, भावप्रारंभ, भाव-अवसान पद्धति के अनुसार भावचक्र बनाया जाये तो भावमध्य निम्नलिखित राशियों और कलाओं में पड़ता है:—

प्र०	२- २-३९-३४	(मिथुन)	द्वि०	२-२७-२९-१४	(मिथुन)
तृ०	३-२२-१८-५४	(कर्क)	च०	४-१७- ८-३४	(सिंह)
पं०	५-२२-१८-५४	(कन्या)	ष०	६-२७-२९-१४	(तुला)
स०	८- २-३९-३४	(धनु)	अ०	८-२७-२९-१४	(धनु)
न०	९-२२-१८-५४	(मकर)	द०	१०-१७- ८-३४	(कुंभ)
ए०	११-२२-१८-५४	(मीन)	द्वा०	०-२७-२९-१४	(मेष)

भावमध्य विविध राशियों में पड़ने के अनुसार, इस पद्धति में—प्रथम भावेश लग्नेश बुध हुआ, द्वितीय भावेश धनेश भी बुध हुआ, तृतीय भावेश सहजेश चन्द्रमा हुआ, चतुर्थेश सूर्य हुआ, पंचमेश बुध, षष्ठेश शुक्र, सप्तमेश बृहस्पति, अष्टमेश भी बृहस्पति, नवमेश दशमेश शनि, एकादशेश बृहस्पति और द्वादशेश मंगल हुआ।

सूर्य एक भाव का स्वामी हुआ, चन्द्रमा एक का, मंगल एक का, बुध तीन का, बृहस्पति तीन का, शुक्र एक का और शनि दो भावों का स्वामी हुआ। विद्वान् विचार करें—क्या हमारा भारतीय ज्योतिष यह सिखलाता है कि बुध तीन भावों का स्वामी हो, बृहस्पति तीन भावों का और मगल तथा शुक्र दोनों केवल एक-एक भाव के स्वामी? क्या मिथुन लग्न के लिये आप बृहस्पति को सप्तमेश अष्टमेश मानेंगे? क्या चन्द्रमा तृतीयेश होगा? क्या सूर्य को केन्द्रेश कह सकते हैं? क्या बुध पंचमेश होगा? क्या शुक्र की षष्ठेश संज्ञा करेंगे? क्या मंगल को व्ययेश माना जायेगा? यह तो इसी प्रकार हुआ कि मित्र को शत्रु मान लिया जाये, शत्रु को मित्र, बहिन को पत्नी, पत्नी को बहिन, पिता को भाई, भाई को पिता! कैसी अनर्गल स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि उपर्युक्त कुण्डली में सूर्य को चतुर्थेश मानकर सूर्य से चतुर्थ भाव का विचार किया जाये, मंगल को व्ययेश मानकर उससे व्यय का? अब नीचे भाव आरंभ, भाव मध्य, भाव अवसान स्पष्ट दिये जाते हैं—उनसे क्या अनर्गलता उत्पन्न होती है, उसका विवेचन किया जायेगा।

भाव स्पष्ट

	प्र०	सं०	द्वि०	सं०	तृ०	सं०	च०	सं०
राशि	२	२	२	३	३	४	४	५
अंश	२	१५	२७	९	२२	४	१७	११
कला	३९	४	२९	५४	१८	४३	८	४३
विकला	३४	२४	१४	४	५४	४४	३४	४४

	पं०	सं०	ष०	सं०	स०	सं०	अ०	सं०
राशि	५	६	६	७	८	८	८	९
अंश	२२	९	२७	१५	२	१५	२७	९
कला	१८	५४	२९	४	३९	४	२९	५४
विकला	५४	४	१४	२४	३४	२४	१४	४

	न०	सं०	द०	सं०	ए०	सं०	द्वा०	सं०
राशि	९	१०	१०	११	११	०	०	१
अंश	२२	४	१७	४	२२	९	२७	१५
कला	१८	४३	८	४३	१८	५४	२९	४
विकला	५४	४४	३४	४४	५४	४	१४	२४

अब जो चलित कुंडली की प्रथा (यवन-प्रथानुसार–जिसको भारतीयों ने अनुकरण कर अपना बना लिया है) प्रचलित है, तदनुसार इस कुण्डली की चलित कुण्डली दी जाती है।

चलित कुण्डली
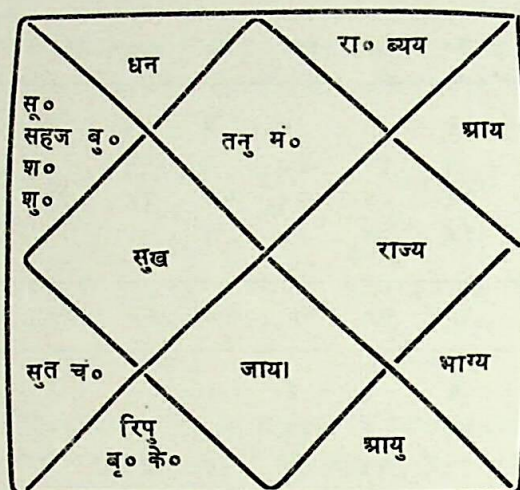
इस चलित कुंडली में जो ग्रह जिस भाव के प्रारंभ के बाद और अवसान के पहले हो उसमें रखा जाता है। फलतः सूर्य, बुध, शुक्र तथा शनि का योग मानेंगे ? चन्द्रमा और बृहस्पति पृथक्-पृथक् भावों में चले गये ? जन्मकुण्डली में जो तुला में चन्द्र बृहस्पति का त्रिकोण में योग है, वह मानेंगे या यह कहेंगे कि इनकी युति नहीं है। विद्वान् विचार करें। हमें अपनी प्राचीन हिन्दू ज्यौतिष पद्धति पर दृढ़ रहना चाहिये और यवन-संस्कृति से इसमें जो भ्रष्टता आ गई है उसका निराकरण करना चाहियें। पाश्चात्य ज्यौतिष में राशिकुण्डलियाँ बनाने की प्रथा नहीं है। केवल भावकुंडलो बनाई जाती है। हमारे देखने में हजारों पाश्चात्य देशीय कुण्डलियाँ आई हैं। अमेरिका, योरोप आदि देश-वासियों की उनकी कुण्डलियाँ सहस्र से अधिक हमने वनाई हैं—केवल भाव-कुण्डली। राशिकुण्डली वह मानते ही नहीं—तब जैसा ग्राहक चाहता है वैसा ही सामान बना कर देना पड़ता है।

भारतीय ज्योतिष में राशिकुंडली की प्रथा है। इसलिये हमारा केवल यह वक्तव्य है कि लग्नराशि को प्रथम भाव, बाद की राशियों को क्रमशः द्वितीय, तृतीय आदि भाव मानने चाहियें। अब प्रकृत विपय पर आइये। एक ही भाव को अनेक नाम से निर्दिष्ट किया जाता है। मा, अम्मा, माता, जननी,

अम्बा–सब का अर्थ एक ही है, इसी प्रकार निम्नलिखित भावों के कुछ नामान्तर जातकपारिजातकार ने दिये हैं, वह बतलाये जाते हैं :—

प्रथम भाव–तनु, कल्प, उदय, आद्य, जन्म, विलग्न, होरा ।
द्वितीय–वाक्, अर्थ (धन), भुक्ति, नयन, स्व, कुटुम्ब ।
तृतीय–दुश्चिक्य, विक्रम, सहोदर, वीर्य, धैर्य, कर्ण (कान) ।
चतुर्थ–पाताल, हिबुक, क्षिति, मातृ-विद्या, यान, गेह, सुख, बन्धु, चतुष्टय ।
पञ्चम–धी, देव, राज, पितृ, पंचक ।
षष्ठ–रोग, अंग, शस्त्र, भय, षष्ठ, रिपु, क्षत ।
सप्तम–जामित्र, काम, गमन, कलत्र, सम्पत्, द्यून, अस्त ।
अष्टम–रन्ध्र, आयु, अष्ट, रण, मृत्यु, विनाश ।
नवम–धर्म, गुरु, शुभ, तप, नव, भाग्य ।
दशम–व्यापार, मेपूरण, ज्ञान, राज, आस्पद, कर्म ।
एकादश–उपान्त्य, भव, आय, लाभ ।
द्वादश–रिष्फ, व्यय, अन्त्य ।

प्रत्येक भाव के कुछ पर्याय ग्रंथकार ने दिये हैं और पर्याय अपनी बुद्धि से समझना। जैसे द्वितीय भाव को अर्थ कहा, अर्थ से धन आदि अन्य पर्याय भी समझना। पंचम को धी कहा, इससे बुद्धि, प्रतिभा, मेधा आदि भी पंचम के नामान्तर हुए। षष्ठ में रिपु कहा, उससे शत्रुस्थान कहा जाये तो रिपु और शत्रु का एक ही अर्थ है, इसलिये षष्ठ स्थान का द्योतक हुआ। जाया, भार्या, पत्नी आदि कलत्र के पर्याय हैं। अतः इन शब्दों से सप्तम स्थान समझना। दक्षिण भारत में नवम भाव से पिता का विचार किया जाता है, इस कारण दक्षिण में लिखे गये ग्रंथों में पितृ स्थान नवम भाव का निर्देश करता है। उत्तर भारत में दशम से पिता का विचार किया जाता है, इसलिये पितृस्थान से दशम लेना चाहिये ॥ ४९-५२ ॥

भावों की केन्द्रादि संज्ञा

मेषूरणोदयकलत्ररसातलानि
स्युः केन्द्रकण्टकचतुष्टयसंज्ञितानि ।
लग्नात्त्रिकोणभवनं नवपञ्चमं च
स्यात्त्रित्रिकोणमुदयान्नवमं वदन्ति ॥५३॥

तनुसुखमदनाज्ञा राशयः केन्द्रसंज्ञाः
पणफरभवनानि स्वायपुत्राष्टमानि ।
व्ययरिपुगुरुदुश्चिक्यानि चापोक्लिमानि
प्रभवति चतुरस्रं मृत्युबन्धुद्वयं च ॥५४॥

दुश्चिक्यायारिमानान्युपचयभवनान्याहुराचार्यमुख्याः
शेषाः पीडर्क्षसंज्ञा नवधनजलधीकामरन्ध्रान्त्यहोराः ।
एते भावास्तदीशेन्दुजसितगुरुभिः संयुता वीक्षिता वा
नान्यैर्युक्ता न दृष्टा यदि शुभफलदा जन्मतः पृच्छतो वा ॥५५॥

अब ज्यौतिष के कुछ पारिभाषिक शब्दों के अर्थ समझायें जाते हैं । प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम भावों को केन्द्र कहते हैं । केन्द्र को ही कण्टक और चतुष्टय भी कहते हैं । पंचम और नवम भावों को त्रिकोण कहते हैं । नवम को त्रिकोण भी कहते हैं । (त्रि क्यों कहा ? क्योंकि मतान्तर से प्रथम भाव केन्द्र भी है, त्रिकोण भी । और इस मत से लग्न प्रथम त्रिकोण, पंचम दूसरा त्रिकोण और नवम तीसरा त्रिकोण हुआ) । प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम भाव केन्द्र कहलाते हैं । द्वितीय, पंचम, अष्टम और एकादश पणफर । तृतीय, षष्ठ, नवम तथा द्वादश आपोक्लिम ।

चतुर्थ और अष्टम भाव को चतुरस्र कहते हैं । लग्न से तृतीय, षष्ठ, दशम तथा एकादश स्थान उपचय कहलाते हैं । लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, सप्तम, अष्टम, नवम तथा द्वादश भावों को पीडर्क्ष कहते हैं । बहुत-से ज्योतिष ग्रंथों में इन ८ स्थानों को अनुपचाय स्थान भी कहते हैं ।

जन्मकुण्डली में या प्रश्नकुण्डली में किसी भाव का शुभाशुभ फल देखना हो तो विचारणीय भाव अपने स्वामी, बुध, बृहस्पति, शुक्र से युत या वीक्षित हों, और अन्य ग्रहों से युत या वीक्षित न हों तो शुभ फलद होते हैं । विशेष विवेचन ११वें अध्याय में देखिये ।

इस सन्दर्भ में ग्रंथकार ने 'त्रिक' किसे कहते हैं यह नहीं बतलाया है । परन्तु ज्योतिष में विशेषकर दक्षिण भारत के ग्रंथों में 'त्रिक' का बहुत प्रयोग होता है इसलिये 'त्रिक' अर्थ जान लेना चाहिये । 'त्रिक' कहते हैं षष्ठ, अष्टम और द्वादश भाव को ॥ ५३-५५ ॥

राशियों का मान

नखा जिना विंशतिरष्टयुक्ता रदाङ्गलोका वियदर्णवाख्याः ।
मेषादिमानं क्रमशो वदन्ति तुलादिषट्कस्य विलोमतस्ते ॥५६॥

इसमें राशियों का मान बताया है। मेष और मीन का २०, वृष और कुंभ का २४, मिथुन और मकर का २८, कर्क और धनु का ३२, सिंह और वृश्चिक का ३६ तथा कन्या और तुला का मान ४०। बृहज्जातक अध्याय १ श्लोक १७ 'पूर्वार्द्धे विषयादयः कृतगुणा मानं प्रतीपं च तत्' में भी वराहमिहिर ने यही मान बताया है। सत्याचार्य ने भी लिखा है :—

चतुरुत्तरोत्तराः स्युर्विंशतिभागा भवन्ति मेषाद्ये।
मानमिहार्द्धे पूर्वे मीनाद्ये चोत्क्रमादर्द्धे॥

यह किसी अक्षांश की पलभा पर आधारित उदयमान नहीं है। किस अक्षांश पर उदयमान—प्रत्येक राशि का कितना होगा—यह पहले श्लोक १३ की व्याख्या में समझा चुके हैं। रुद्रभट्ट लिखते हैं "ह्रस्वदीर्घादिपरिज्ञाने अस्य प्रमाणस्योपयोगः नोदयलग्नादौ" अर्थात् राशियों के ह्रस्व दीर्घ परिज्ञान के लिये इसका उपयोग है, उदय लग्न का गणित करने के लिये। उचित भी है। सत्याचार्य, वराहमिहिर, वैद्यनाथ—तीनों का स्थान (जन्मस्थान या निवास करने के स्थान) भिन्न-भिन्न थे—वे किसी एक ही स्थल का, राशियों का उदयमान कैसे देते। और न किसी स्थल-विशेष का उदयमान यह हो सकता। ह्रस्व, दीर्घ का—कौनसी राशि कितनी ह्रस्व है या कितनी दीर्घ, इसका उपयोग प्रश्न में, तथा जन्मकुण्डली में शरीर का कौन-सा अवयव ह्रस्व है या दीर्घ, या कितना ह्रस्व है या कितना दीर्घ, यह ज्ञात करने के लिये, इसका उपयोग किया जाता है। यह विषय हम पीछे समझा चुके हैं, इसलिये पिष्टपेषण नहीं किया जाता॥ ५६॥

राशियों के शुभाशुभ अंश

तनुः शरा रारिखराः किरीटिनो घना गुरुर्हयनखा नरा नुकाः।
शशाङ्कभागा यदि तुम्बुरादिके मुहूर्तजन्मादिषु मृत्युसूचकाः॥५७॥
पुत्रो बर्दुदिव्यजनाधिको धनी विराटयो गोत्रवयो धिको धुनाः।
मेषादिके पुष्करभागसंज्ञका मुहूर्तजन्मादिषु शोभनप्रदाः॥५८॥

मुहूर्त (शुभ कार्य प्रारंभ करने के समय) या जन्म के समय यदि चन्द्रमा किसी राशि-विशेष के अंश-विशेष में हो तो मृत्युसूचक है। ग्रंथकार ने मृत्युसूचक कहा है, किन्तु हमारे विचार में इसे अनिष्ट मात्र समझना चाहिये। किस राशि में किस अंश में चन्द्रमा के रहने से अनिष्ट होता है, यह यहाँ बताया जाता है :—

मेष	८वाँ अंश	तुला	४था अंश
वृष	५ ,,	वृश्चिक	२३वाँ ,,
मिथुन	२२ ,,	धन	१८ ,,
कर्क	२२ ,,	मकर	२०वाँ ,,
सिंह	२१ ,,	कुंभ	२० ,,
कन्या	१ ला ,,	मीन	१० ,,

अब जन्म या मुहूर्त के समय किस राशि, किस अंश में चन्द्रमा शुभ होता है यह कहते हैं—इन भागों को पुष्कर कहते हैं।

मेष	२१वाँ अंश	तुला	२४वाँ अंश
वृष	१४ ,,	वृश्चिक	११ ,,
मिथुन	१८ ,,	धनु	२३ ,,
कर्क	८ ,,	मकर	१४ ,,
सिंह	१९ ,,	कुंभ	१९ ,,
कन्या	९ ,,	मीन	९ ,,

सर्वार्थचिन्तामणि में कहा है :—

कुंभे विंशतिभागे स्यान्मृत्युं बद्यान्निशाकरः।
एकविंशतिभागस्तु सिंहे तत्त्वैस्तु गोवृषे॥
अष्टमे मेषचन्द्रस्तु त्रयो विंशतिकोऽलिगः।
द्वाविंशतिः कुलीरे तु तुलायां वेदभागकः॥
विंशतिर्मकरे चन्द्रः कन्यायां प्रथमांशकः।
धन्विन्यष्टादशो भागो मीने दशमभागयुक्॥
द्वाविंशतिनृयुग्मे तु चन्द्रोऽप्येवं मृतिप्रदः।
ये ये निशाकरांशास्तु मृत्युभागा विवक्षिताः।
तावद्भिर्वत्सरैर्जातो मृत्युमेति न संशयः॥

किस राशि के किस अंश में चन्द्रमा के रहने से मृत्युसंज्ञक होता है यह कहने के बाद सर्वार्थचिन्तामणिकार कहते हैं कि किस वर्ष में मृत्यु होती है। मेष के ८वें अंश में चन्द्रमा हो तो ८वें वर्ष में, वृष के २५वें अंश में चन्द्रमा हो तो २५वें वर्ष में इत्यादि।

कल्याणवर्मा अपनी सारावली में भी इसी मत का प्रतिपादन करते हैं :—

कुंभे विंशति शशांको भागो मृत्युं तथैकविंशाख्ये।
सिंहे च पंचमेशे क्रूरेण वृषे मृतिर्मरणभागे॥

अलिनि त्रिविंशयुक्ते मेषे च तथाष्टमे दिशति मृत्युम् ।
कर्कटके द्वाविंशे तुलिनि चतुर्थे मृगे विंशे ।।
कन्यायां प्रथमेंशे धनुर्धरेऽष्टादशे झषे दशमे ।
मिथुने च द्वाविंशे शशिप्रसूतस्य मरणकरः ।।
ये भुक्ताः शशिनोंशाः जन्मनि वर्षैर्गतैस्तु तावद्भिः ।
मरणं हि जन्मभाजामप्यन्तकबद्धरक्षाणाम् ।।

सारावली में वृष का ५वाँ अंश अनिष्ट कहा है। जातकपारिजात में वृष का कौन-सा अंश मृत्यु भाग है, इसके लिये 'शर' शब्द का प्रयोग किया है। अंकानां वामतो गतिः—इस पद्धति से शर का अर्थ २५ हुआ—श से ५, र से २। और यही अर्थ कई टीकाकारों ने किया है। किन्तु जातकपरिजातकार ने श्लोक ५७ में अंशों का निर्देश करने में सर्वत्र कटपयादि का प्रयोग नहीं किया है। 'कटपय' क्या ? नीचे समझाते हैं :—

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
प	फ	ब	भ	म					
१	२	३	४	५					
य	र	ल	व	श	ष	स	ह		
१	२	३	४	५	६	७	८		

मेष में किस अंश में चन्द्रमा घातक होता है, इसके लिये लिखा तनु। तनु से ०६ अर्थात् ६ संख्या आई। किन्तु सब टीकाकारों ने ८ लिखा है। क्यों ? तनु शब्द मूर्ति का बोधक है और शिव की मूर्ति "क्षितिजलपवनहुताशन-यजमानाकाशसोमसूर्याख्याः" इस परिभाषा से ८ का बोधक होता है। इस न्यायानुसार शर या इषु से ५ संख्या ली जाती है क्योंकि कामदेव के ५ बाण प्रसिद्ध हैं।

अब सर्वार्थचिन्तामणि के पाठ की ओर ध्यान दीजिये। यहाँ वृष के मृत्यु-भाग के लिये "तत्त्वैः" शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ विद्वानों ने २५

किया है। किन्तु तत्त्व ५ भी होते हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। इस लिये हमने वृष के ५वें भाग को मृत्यु भाग लिखा है, जिससे सर्वार्थचिन्तामणि तथा सारावली से सामञ्जस्य हो जाये। विशेषकर इसलिये कि जातकपारिजात के प्रणेता—सर्वार्थचिन्तामणिकार वेंकटाद्रि के पुत्र थे। और स्वयं वैद्यनाथ ने लिखा है "संगृह्य सारावलि–मुख्यतंत्रं करोम्यहं जातकपारिजातम्"। ऐसी स्थिति में यह समझ में कम आता है कि अन्य राशियों के मृत्यु भाग तो वैद्यनाथ ने वही लिखे, जो सर्वार्थचिन्तामणि और सारावली में दिये गये हैं और केवल वृष में ५ की जगह २५ लिखे। 'शर' और 'तत्त्व' के अर्थ तो आप २५ कर भी लीजिये परन्तु सारावली के 'पंचमे' को आप २५ कैसे करेंगे ?

बृहत्प्राजापत्य तथा फलदीपिका ने जो विविध राशियों में चन्द्रमा के मृत्यु भाग दिये हैं, वे सर्वथा भिन्न हैं। वे निम्नलिखित हैं :–

मेष २६, वृष १२, मिथुन १३, कर्क २५, सिंह २४, कन्या ११, तुला २६, वृश्चिक १४, धनु १३, मकर २५, कुंभ ५, मीन ५।

बृहत्प्राजापत्य—

चन्द्रो रम्यो लयो मित्रे भूरि कार्यं चिरं भयम्।
गोपमात्रा मनोरम्यं मृत्युभागं विधोरजात्॥

फलदीपिका—

चान्द्रं रूपं लोकशूरो धरज्ञः कुड्ये चित्रं भाग्यलोके सुखानाम्।
मेने राज्यं मृत्युभागाः प्रदिष्टा मेषादीनां वर्णसंख्यैर्हिमांशोः॥

कतिपय अन्य ग्रंथों में चन्द्रमा के अतिरिक्त अन्य ग्रहों तथा लग्न और मान्दि (गुलक) के भी, किस राशि में किस अंश में मृत्यु भाग होता है यह अगले पृष्ठ पर दिया जाता है।

	सू.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	रा.	के.	मा.	ल.
मेष	२०	१९	१५	१९	२८	१०	१४	८	२३	१
वृष	९	२८	४	२९	१५	४	१३	१८	२४	९
मिथुन	१२	२५	१३	२१	१४	७	१२	२०	११	२२
कर्क	६	२३	१२	२७	१७	९	११	१०	१२	२२
सिंह	८	२९	८	६	१९	१२	२४	२१	१३	२५
कन्या	२४	२८	१८	४	१३	१६	२३	२२	१४	२
तुला	१६	१४	२०	१३	४	३	२२	२३	८	४
वृश्चिक	१७	२१	१०	१०	६	१८	२१	२४	१८	२३
धन	२२	२	२१	१७	२७	२८	१०	११	२०	१८
मकर	२	१५	२२	११	१२	१४	२०	१२	१०	२०
कुंभ	३	११	७	१५	२९	१३	१८	१३	२१	२४
मीन	२३	६	५	२८	१९	१५	८	१४	२२	१०

राशियों के वासदेश

क्रमात्पाटलकर्नाटचरचोलवसुन्धराः ।
पाण्ड्यकेरलकोल्लासमलयावनिसैन्धवाः ॥५९॥
उदक्पाञ्चालयवनकोशलक्षितिसंज्ञकाः ।
मेषादिसर्वराशीनां वासदेशाः प्रकीर्तिताः ॥६०॥

इसमें बारहों देश के क्रमशः वासदेश (रहने के देश के भाग या प्रदेश) बताये गये हैं :–(१) पाटल, (२) कर्नाट, (३) चर, (४) चोल, (५) पांडु, (६) केरल, (७) कोल्लास, (८) मलय, (९) सैन्धव, (१०) उत्तर पांचाल, (११) यवन, (१२) कौशल ।

चोल, केरल, मलय, सैन्धव, पांचाल और कोशल प्रदेश प्रसिद्ध हैं। अन्य प्रदेशों के नाम में इतना परिवर्तन हो गया है, कि किस प्राचीन प्रदेश का अर्वाचीन नाम क्या है—यह निश्चय करना कठिन है ॥ ५९-६० ॥

राशियों का प्लवत्व-निरूपण

स्वाम्याशाख्यं यत्तदापप्लवत्वं भानुक्रान्तादम्बुसंज्ञोऽभिजित्स्यात् ।
होरातन्त्रे पारिजाताभिधाने संज्ञाध्यायः कीर्तितो राशिशीलः ॥६१॥

इति श्रीनवग्रहकृपया वैद्यनाथविरचिते जातकपारिजाते
राशिशीलाध्यायः प्रथमः ।

जिस राशि के स्वामी की जो दिशा (ग्रहों की दिशा, आगे अध्याय २ श्लोक २३ में बतलाई है) वह उसका दिशा प्लव कहलाता है जैसे मेष और वृश्चिक का स्वामी मंगल है। मंगल की दिशा दक्षिण है। तो मेष और वृश्चिक की प्लवदिशा दक्षिण हुई। सारावली अध्याय ३ श्लोक ३९ में कहा है :—

भवनाधिप-दिङ्नाम प्लव इति यवनैः प्रयत्नतः कथितः ।
तत्प्लवगो विनिहन्यात् अचिरेण महीपतिः शत्रून् ॥

अब अभिजित् किसे कहते हैं यह बतलाते हैं। सूर्य जिस राशि में हो उससे चतुर्थ राशि अभिजित् कहलाती है। अभिजित् नक्षत्र की कल्पना की गई है। बहुत से ग्रंथों में अभिजित् मिलाकर २८ नक्षत्र माने हैं। अष्टोत्तरी दशा में (अभिजित् सहित) २८ नक्षत्र मानकर दशा लगाई जाती है। पञ्चशलाका, सप्तशलाका, सर्वतोभद्र चक्र आदि में अभिजित् को नक्षत्र मान, वेध विचार किया जाता है। उत्तरांषाढ़ और श्रवण के बीच में अभिजित् है।

अभिजित् काल या मुहूर्त उसे कहते हैं, जब सूर्य लग्ने दशम (ठीक दशम मध्य में) हो। इसी को ग्रंथकार ने कहा है कि सूर्य से चतुर्थ अभिजित् होता है। चाहे सूर्य से चतुर्थ लग्न हो यह कहिये या चाहे यह कहिये कि लग्न से दशम सूर्य हो, एक ही बात है। सूर्य लग्न से दशम राशि में प्रायः २ घंटे रहता है। इसलिये मध्याह्नकाल को भी अभिजित् कहते हैं। यथा मुहूर्तचिन्तामणि में यात्राप्रकरण में ५८वाँ श्लोक है :—

उषःकालो विना पूर्वां गोधूलिः पश्चिमां विना ।
विनोत्तरां निशीथः सन् याने याम्यां विनाभिजित् ॥

यहाँ अभिजित् का प्रयोग मध्याह्न के अर्थ में किया गया है। किन्तु सर्व कार्यों के लिये (दक्षिण दिशा की यात्रा के अतिरिक्त) अभिजित् मुहूर्त श्रेष्ठ माना गया है—वह दो घड़ी का समय जब सूर्य आकाश के मध्य में हो।

इस प्रकार ग्रंथकार राशिशील (राशियों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य विषय बतलाने वाले) नामक प्रथम अध्याय को सम्पूर्ण करते हैं।

किस राशि में कौन-सा अंश किस-किस दशवर्ग में पड़ता है, यह ज्ञात करने के लिये, जातकपारिजातानुसार दशवर्गसारिणी आगे के पृष्ठों में दी जा रही है ॥ ६१ ॥

मेष में दशवर्ग

अं० क०	राशि	हो०	द्रे०	सं०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
०°-३०'	१	५	१	१	१	१	१	१	१	१
१°	१	५	१	१	१	१	१	१	१	२
१°-३०'	१	५	१	१	१	१	१	१	१	३
२°	१	५	१	१	१	१	१	१	१-२	४
२°-३०'	१	५	१	१	१	१	१	१	२	५
३°	१	५	१	१	१	१	२	१	२	६
३°-३०'	१	५	१	१	१-२	२	१	२	२	७
४°	१	५	१	१	२	२	१	२	२-३	८
४°-३०'	१	५	१	१-२	२	२	१	२	३	९
५°	१	५	१	२	२	२	१	२	३	१०
५°-३०'	१	५	१	२	२	३	११	२	३	११
६°	१	५	१	२	२	३	११	२	३-४	१२
६°-३०'	१	५	१	२	२	३	११	३	४	१
७°	१	५	१	२	२-३	३	११	३	४	२
७°-३०'	१	५	१	२	३	३	११	३	४	३
८°	१	५	१	२	३	४	११	३	५	४
८°-३०'	१	५	१	२	३	४	११	३	५	५
९°	१	५	१	२-३	३	४	११	३	५	६

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रि०	द०	षो०	ष०
९°–३०'	१	५	१	३	३	४	११	४	५-६	७
१०°	१	५	१	३	३	४	११	४	६	८
१०°–३०'	१	५	५	३	४	५	९	४	६	९
११°	१	५	५	३	४	५	९	४	६	१०
११°–३०'	१	५	५	३	४	५	९	४	६-७	११
१२°	१	५	५	३	४	५	९	४	७	१२
१२°–३०'	१	५	५	३	४	५	९	५	७	१
१३°	१	५	५	३-४	४	६	९	५	७	२
१३°–३०'	१	५	५	४	४-५	६	९	५	७-८	३
१४°	१	५	५	४	५	६	९	५	८	४
१४°–३०'	१	५	५	४	५	६	९	५	८	५
१५°	१	५	५	४	५	६	९	५	८	६
१५°–३०'	१	४	५	४	५	७	९	६	९	७
१६°	१	४	५	४	५	७	९	६	९	८
१६°–३०'	१	४	५	४	५	७	९	६	९	९
१७°	१	४	५	४	५-६	७	९	६	९-१०	१०
१७°–३०'	१	४	५	४-५	६	७	९	६	१०	११
१८°	१	४	५	५	६	८	९	६	१०	१२
१८°–३०'	१	४	५	५	६	८	३	७	१०	१

अं० क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष
१९°	१	४	५	५	६	८	३	७	१०-११	२
१९°-३०'	१	४	५	५	६	८	३	७	११	३
२०°	१	४	९	५	६	८	३	७	११	४
२०°-३०'	१	४	९	५	७	९	३	७	११	५
२१°	१	४	९	५	७	९	३	७	११-१२	६
२१°-३०'	१	४	९	५-६	७	९	३	८	१२	७
२२°	१	४	९	६	७	९	३	८	१२	८
२२°-३०'	१	४	९	६	७	९	३	८	१२	९
२३°	१	४	९	६	७	१०	३	८	१	१०
२३-३०'	१	४	९	६	७-८	१०	३	८	१	११
२४°	१	४	९	६	८	१०	३	८	१	१२
२४°-३०'	१	४	९	६	८	१०	३	९	१-२	१
२५°	१	४	९	६	८	१०	३	९	२	२
२५°-३०'	१	४	९	६	८	११	७	९	२	३
२६°	१	४	९	६-७	८	११	७	९	२	४
२६°-३०'	१	४	९	७	८	११	७	९	२-२	५
२७°	१	४	९	७	८-९	११	७	९	३	६
२७°-३०'	१	४	९	७	९	११	७	१०	३	७
२८°	१	४	९	७	९	१२	७	१०	३	८

अं–°क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रि०	द०	षो०	ष०
२८°–३०	१	४	९	७	९	१२	७	१०	३-४	९
२९°	१	४	९	७	९	१२	७	१०	४	१०
२९°–३०	१	४	९	७	९	१२	७	१०	४	११
३०°	१	४	९	७	९	१२	७	१०	४	१२

वृष में दशवर्ग

०°–३०'	२	४	२	८	१०	२	२	१०	५	२
१°	२	४	२	८	१०	२	२	१०	५	३
१°–३०'	२	४	२	८	१०	२	२	१०	५	४
२°	२	४	२	८	१०	२	२	१०	५-६	५
२°–३०'	२	४	२	८	१०	२	२	१०	६	६
३°–	२	४	२	८	१०	३	२	१०	६	७
३°–३०'	२	४	२	८	१०-११	३	२	११	६	८
४°	२	४	२	८	११	३	२	११	६-७	९
४°–३०'	२	४	२	८-९	११	३	२	११	७	१०
५°	२	४	२	९	११	३	२	११	७	११
५°–३०'	२	४	२	९	११	४	६	११	७	१२
६°	२	४	२	९	११	४	६	११	७-८	१
६°–३०'	२	४	२	९	११-१२	४	६	१२	८	२

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
७°	२	४	२	९	१२	४	६	१२	८	३
७°–३०'	२	४	२	९	१२	४	६	१२	८	४
८°	२	४	२	९	१२	५	६	१२	९	५
८°–३०'	२	४	२	९	१२	५	६	१२	९	६
९°	२	४	२	९-१०	१२	५	६	१२	९	७
९°–३०'	२	४	२	१०	१२	५	६	१	९-१०	८
१०°	२	४	२	१०	१२	५	६	१२	१०	९
१०°–३०'	२	४	६	१०	१	६	६	१	१०	१०
११°	२	४	६	१०	१	६	६	१	१०	११
११°–३०'	२	४	६	१०	१	६	६	१	१०-११	१२
१२°	२	४	६	१०	१	६	६	१	११	१
१२°–३०'	२	४	६	१०	१	६	१२	२	११	२
१३°	२	४	६	१०-११	१	७	१२	२	११	३
१३°–३०'	२	४	६	११	१-२	७	१२	२	११-१२	४
१४°	२	४	६	११	२	७	१२	२	१२	५
१४°–३०'	२	४	६	११	२	७	१२	२	१२	६
१५°	२	४	६	११	२	७	१२	२	१२	७
१५°–३०'	२	५	६	११	२	८	१२	३	१	८
१६°	२	५	६	११	२	८	१२	३	१	९

अ०-क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
१६°-३०'	२	५	६	११	२	८	१२	३	१	१०
१७°	२	५	६	११	२-३	८	१२	३	१-२	११
१७°-३०'	२	५	६	११-१२	३	८	१२	३	२	१२
१८°	२	५	६	१२	३	९	१२	३	२	१
१८°-३०'	२	५	६	१२	३	९	१२	४	२	२
१९°	२	५	६	१२	३	९	१२	४	२-३	३
१९°-३०'	२	५	६	१२	३	९	१२	४	३	४
२०°	२	५	६	१२	३	९	१२	४	३	५
२०°-३०'	२	५	१०	१२	४	१०	१०	४	३	६
२१°	२	५	१०	१२	४	१०	१०	४	३-४	७
२१°-३०'	२	५	१०	१२-१	४	१०	१०	५	४	८
२२°	२	५	१०	१	४	१०	१०	५	४	९
२२°-३०'	२	५	१०	१	४	१०	१०	५	४	१०
२३°	२	५	१०	१	४	११	१०	५	५	११
२३°-३०'	२	५	१०	१	४-५	११	१०	५	५	१२
२४°	२	५	१०	१	५	११	१०	५	५	१
२४°-३०'	२	५	१०	१	५	११	१०	६	५-६	२
२५°	२	५	१०	१	५	११	१०	६	६	३
२५°-३०'	२	५	१०	१	५	१२	८	६	६	४

अं०–क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
२६°	२	५	१०	१-२	५	१२	८	६	६	५
२६°–३०′	२	५	१०	२	५	१२	८	६	६-७	६
२७°	२	५	१०	२	५-६	१२	८	६	७	७
२७°–३०′	२	५	१०	२	६	१२	८	७	७	८
२८°	२	५	१०	२	६	१	८	७	७	९
२८°–३०′	२	५	१०	२	६	१	८	७	७-८	१०
२९°	२	५	१०	२	६	१	८	७	८	११
२९°–३०′	२	५	१०	२	६	१	८	७	८	१२
३०°	२	५	१०	२	६	१	८	७	८	१

मिथुन में दशवर्ग

अं०–क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
०°–३०′	३	५	३	३	७	३	१	३	९	३
१°	३	५	३	३	७	३	१	३	९	४
१°–३०′	३	५	३	३	७	३	१	३	९	५
२	३	५	३	३	७	३	१	३	९-१०	६
२°–३०′	३	५	३	३	७	३	१	३	१०	७
३°	३	५	३	३	७	४	१	३	१०	८
३°–३०′	३	५	३	३	७-८	४	१	४	१०	९
४°	३	५	३	३	८	४	१	४	१०-११	१०
४°–३०′	३	५	३	३-४	८	४	१	४	११	११

अं-क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं	द०	षो०	षं
५°	३	५	३	४	८	४	१	४	११	१२
५°-३०'	३	५	३	४	८	५	११	४	११	१
६°	३	५	३	४	८	५	११	४	११-१२	२
६°-३०'	३	५	३	४	८	५	११	५	१२	३
७°	३	५	३	४	८-९	५	११	५	१२	४
७°-३०'	३	५	३	४	९	५	११	५	१२	५
८°	३	५	३	४	९	६	११	५	१	६
८°-३०'	३	५	३	४	९	६	११	५	१	७
९°	३	५	३	४-५	९	६	११	५	१	८
९°-३०'	३	५	३	५	९	६	११	६	१-२	९
१०°	३	५	३	५	९	६	११	६	२	१०
१०°-३०'	३	५	७	५	१०	७	९	६	२	११
११°	३	५	७	५	१०	७	९	६	२	१२
११°-३०'	३	५	७	५	१०	७	९	६	२-३	१
१२°	३	५	७	५	१०	७	९	६	३	२
१२°-३०'	३	५	७	५	१०	७	९	७	३	३
१३°	३	५	७	५-६	१०	८	९	७	३	४
१३°-३०	३	५	७	६	१०-११	८	९	७	३-४	५
१४°	३	५	७	६	११	८	९	७	४	६

अं०-क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं	द०	षो०	ष०
१४°-३०	३	५	७	६	११	८	९	७	४	७
१५°	३	५	७	६	११	८	९	७	४	८
१५°-३०'	३	४	६	६	११	९	९	८	५	९
१६°	३	४	७	६	११	९	९	८	५	१०
१६°-३०'	३	४	७	६	११	९	९	८	५	११
१७°	३	४	७	६	११-१२	९	९	८	५-६	१२
१७°-३०'	३	४	७	६-७	१२	९	९	८	६	१
१८°	३	४	७	७	१२	१०	९	८	६	२
१८°-३०	३	४	७	७	१२	१०	३	९	६	३
१९°	३	४	७	७	१२	१०	३	९	६-७	४
१९°-३०'	३	४	७	७	१२	१०	३	९	७	५
२०°	३	४	११	७	१२	१०	३	९	६	६
२०°-३०'	३	४	११	७	१	११	३	९	७	७
२१°	३	४	११	७-८	१	१२	३	९	७-८	८
२१°-३०'	३	४	११	८	१	१२	३	१०	८	९
२२°	३	४	११	८	१	१२	३	१०	८	१०
२२°-३०'	३	४	११	८	१	१२	३	१०	८	११
२३°	३	४	११	८	१	१२	३	१०	९	१२
२३°-३०'	३	४	११	८	१-२	१२	३	१०	९	१

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
२४°	३	४	११	८	२	१२	३	१०	९	२
२४°—३०′	३	४	११	८	२	१२	३	११	९-१०	३
२५°	३	४	११	८	२	१२	३	११	१०	४
२५°—३०′	३	४	११	८	२	१	७	११	१०	५
२६°	३	४	११	८-९	२	१	७	११	१०	६
२६°—३०′	३	४	११	९	२	१	७	११	१०-११	७
२७°	३	४	११	९	२-३	१	७	११	११	८
२७°—३०′	३	४	११	९	३	१	७	१२	११	९
२८°	३	४	११	९	३	२	७	१२	११	१०
२८°—३०′	३	४	११	९	३	२	७	१२	११-१२	११
२९°	३	४	११	९	३	२	७	१२	१२	१२
२९°—३०′	३	४	११	९	३	२	७	१२	१२	१
३०°	३	४	११	९	३	२	७	१२	१२	२

कर्क में दशवर्ग

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
०°—३०′	४	४	४	१०	४	४	२	१२	१	४
१°	४	४	४	१०	४	४	२	१२	१	५
१°—३०′	४	४	४	१०	४	४	२	१२	१	६
२°	४	४	४	१०	४	४	२	१२	१-२	७

अं०-क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
२°-३०'	४	४	४	१०	४	४	२	१२	२	८
३°	४	४	४	१०	४	५	२	१२	२	९
३°-३०'	४	४	४	१०-११	४-५	५	२	१	२	१०
४°	४	४	४	११	५	५	२	१	२-३	११
४°-३०'	४	४	४	११	५	५	२	१	३	१२
५°	४	४	४	११	५	५	२	१	३	१
५°-३०'	४	४	४	११	५	६	६	१	३	२
६°	४	४	४	११	५	६	६	१	३-४	३
६°-३०'	४	४	४	११	५-६	६	६	२	४	४
७°	४	४	४	११	६	६	६	२	४	५
७°-३०'	४	४	४	११	६	६	६	२	४	६
८°	४	४	४	११	६	७	६	२	५	७
८°-३०'	४	४	४	११	६	७	६	२	५	८
९°	४	४	४	११-१२	६	७	६	२	५	९
९°-३०'	४	४	४	१२	६	७	६	३	५-६	१०
१०°	४	४	४	१२	६	७	६	३	६	११
१०°-३०'	४	४	८	१२	७	८	६	३	६	१२
११°	४	४	८	१२	७	८	६	३	६	१
११°-३०'	४	४	८	१२	७	८	६	३	६-७	२

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
१२°	४	४	८	१२	७	८	६	३	७	३
१२°–३०'	४	४	८	१२	७	८	१२	४	७	४
१३°	४	४	८	१२-१	७	९	१२	४	७	५
१३°–३०'	४	४	८	१	७-८	९	१२	४	७-८	६
१४°	४	४	८	१	८	९	१२	४	८	७
१४°–३०	४	४	८	१	८	९	१२	४	८	८
१५°	४	४	८	१	८	९	१२	४	८	९
१५°–३०'	४	५	८	१	८	१०	१२	५	९	१०
१६°	४	५	८	१	८	१०	१२	५	९	११
१६°–३०'	४	५	८	१	८	१०	१२	५	९	१२
१७°	४	५	८	१	८-९	१०	१२	५	९-१०	१
१८°–३०'	४	५	८	१-२	९	१०	१२	५	१०	२
१८°	४	५	८	२	९	११	१२	५	१०	३
१८°–३०'	४	५	८	२	९	११	१२	६	१०	४
१९°	४	५	८	२	९	११	१२	६	१०-११	५
१९°–३०'	४	५	८	२	९	११	१२	६	११	६
२०°	४	५	८	२	९	११	१२	६	११	७
२०°–३०'	४	५	१२	२	१०	१२	१०	६	११	८
२१°	४	५	१२	२	१०	१२	१०	६	११-१२	९

अ०–क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
२१°–३०′	४	५	१२	२-३	१०	१२	१०	७	१२	१०
२२°	४	५	१२	३	१०	१२	१०	७	१२	११
२२°–३०′	४	५	१२	३	१०	१२	१०	७	१२	१२
२३°	४	५	१२	३	१०	१	१०	७	१	१
२३°–३०′	४	५	१२	३	१०-११	१	१०	७	१	२
२४°	४	५	१२	३	११	१	१०	७	१	३
२४°–३०′	४	५	१२	३	११	१	१०	८	१-२	४
२५°	४	५	१२	३	११	१	१०	८	२	५
२५°–३०′	४	५	१२	३	११	२	८	८	२	६
२६°	४	५	१२	३-४	११	२	८	८	२	७
२६°–३०′	४	५	१२	४	११	२	८	८	२-३	८
२७°	४	५	१२	४	११-१२	२	८	८	३	९
२७°–३०′	४	५	१२	४	१२	२	८	९	३	१०
२८°	४	५	१२	४	१२	३	८	९	३	११
२८°–३०′	४	५	१२	४	१२	३	८	९	३-४	१२
२९°	४	५	१२	४	१२	३	८	९	४	१
२९°–३०′	४	५	१२	४	१२	३	८	९	४	२
३०°	४	५	१२	४	१२	३	८	९	४	३

सिंह में दशवर्ग

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
०°–३०'	५	५	५	५	१	५	१	५	५	५
१°	५	५	५	५	१	५	१	५	५	६
१°–३०'	५	५	५	५	१	५	१	५	५	७
२°	५	५	५	५	१	५	१	५	५-६	८
२°–३०'	५	५	५	५	१	५	१	५	६	९
३°	५	५	५	५	१	६	१	५	६	१०
३°–३०'	५	५	५	५	१-२	६	१	६	६	११
४°	५	५	५	५	२	६	१	६	६-७	१२
४°–३०'	५	५	५	५-६	२	६	१	६	७	१
५°	५	५	५	६	२	६	१	६	७	२
५°–३०'	५	५	५	६	२	७	११	६	७	३
३°	५	५	५	६	२	७	११	६	७-८	४
६°-३०	५	५	५	६	२	७	११	७	८	५
७°	५	५	५	६	२-३	७	११	७	८	६
७°–३०'	५	५	५	६	३	७	११	७	८	७
८°	५	५	५	६	३	८	११	७	९	८
८°-३०	५	५	५	६	३	८	११	७	९	९
९°	५	५	५	६-७	३	८	११	७	९	१०

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
९°-३०'	५	५	५	७	३	८	११	८	९-१०	११
१०°	५	५	५	७	३	८	११	८	१०	१२
१०°३०	५	५	९	७	४	९	९	८	१०	१
११°	५	५	९	७	४	९	९	८	१०	२
११°-३०'	५	५	९	७	४	९	९	८	१०-११	३
१२°	५	५	९	७	४	९	९	८	११	४
१२°-३०'	५	५	९	७	४	९	९	९	११	५
१३°	५	५	९	७-८	४	१०	९	९	११	६
१३°-३०'	५	५	९	८	४-५	१०	९	९	११-१२	७
१४°	५	५	९	८	५	१०	९	९	१२	८
१४°-३०	५	५	९	८	५	१०	९	९	१२	१०
१५°	५	५	९	८	५	१०	९	९	१२	१०
१५°-३०'	५	४	९	८	५	११	९	१०	१	११
१६°	५	४	९	८	५	११	९	१०	१	१२
१६-°३०'	५	४	९	८	५	११	९	१०	१	१
१७°	५	४	९	८	५-६	११	९	१०	१-२	२
१७°-३०'	५	४	९	८-९	६	११	९	१०	२	३
१८°	५	४	९	९	६	१२	९	१०	२	४

अं० क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	पो०	ष०
१८°–३०'	५	४	९	९	६	१२	३	११	२	५
१९°	५	४	९	९	६	१२	३	११	२-३	६
१९°–३०'	५	४	९	९	६	१२	३	११	३	७
२०°	५	४	९	९	६	१२	३	११	३	८
२०°–३०'	५	४	१	९	७	१	३	११	३	९
२१°	५	४	१	९	८	१	३	११	३-४	१०
२१°–३०'	५	४	१	९-१०	७	१	३	१२	४	११
२२°	५	४	१	१०	७	१	३	१२	४	१२
२२°–३०'	५	४	१	१०	७	१	३	१२	४	१
२३°	५	४	१	१०	७	२	३	१२	५	२
२३°–३०'	५	४	१	१०	७-८	२	३	१२	५	३
२४°	५	४	१	१०	८	२	३	१२	५	४
२४°–३०'	५	४	१	१०	८	२	३	१	५-६	५
२५°	५	४	१	१०	८	२	३	१	६	६
२५°–३०'	५	४	१	१०	८	३	७	१	६	७
२६°	५	४	१	१०-११	८	३	७	१	६	८
२६°–३०'	५	४	१	११	८	३	७	१	६-७	९
२७°	५	४	१	११	८-९	३	७	१	७	१०
२७°–३०'	५	४	१	११	९	३	७	२	७	११

अं०-क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
२८°	५	४	१	११	९	४	७	२	७	१२
२८°-३०'	५	४	१	११	९	४	७	२	७-८	१
२९°	५	४	१	११	९	४	७	२	८	२
२९°-३०'	५	४	१	११	९	४	७	२	८	३
३०°	५	४	१	११	९	४	७	२	८	४

कन्या में दशवर्ग

०°-३०'	६	४	६	१२	१०	६	२	२	९	६
१°	६	४	६	१२	१०	६	२	२	९	७
१°-३०'	६	४	६	१२	१०	६	२	२	९	८
२°	६	४	६	१२	१०	६	२	२	९-१०	९
२°-३०'	६	४	६	१२	१०	६	२	२	१०	१०
३°	६	४	६	१२	१०	७	२	२	१०	११
३°-३०	६	४	६	१२	१०-११	७	२	३	१०	१२
४°	६	४	६	१२	११	७	२	३	१०-११	१
४°-३०'	६	४	६	१२-१	११	७	२	३	११	२
५°	६	४	६	१	११	७	२	३	११	३
५°-३०'	६	४	६	१	११	८	६	३	११	४
६°	६	४	६	१	११	८	६	३	११-१२	५

अं०–फ०	राशि	हो	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
६°–३०'	६	४	६	१	११	८	६	४	१२	६
७°	६	४	६	१	११-१२	८	६	४	१२	७
७°–३०'	६	४	६	१	१२	८	६	४	१२	८
८°	६	४	६	१	१२	९	६	४	१	९
८°–३०'	६	४	६	१	१२	९	६	४	१	१०
९°	६	४	६	१-२	१२	९	६	४	१	११
९°–३०'	६	४	६	२	१२	९	६	५	१-२	१२
१०°	६	४	६	२	१२	९	६	५	२	१
१०°–३०'	६	४	१०	२	१	१०	६	५	२	२
११°	६	४	१०	२	१	१०	६	५	२	३
११°–३०'	६	४	१०	२	१	१०	६	५	२-३	४
१२°	६	४	१०	२	१	१०	६	५	३	५
१२°–३०'	६	४	१०	२-३	१	१०	१२	६	३	६
१३°	६	४	१०	३	१	११	१२	६	३	७
१३°–३०'	६	४	१०	३	१-२	११	१२	६	३-४	८
१४°	६	४	१०	३	२	११	१२	६	४	९
१४°–३०'	६	४	१०	३	२	११	१२	६	४	१०
१५°	६	४	१०	३	२	११	१२	६	४	११
१५°–३०'	६	५	१०	३	२	१२	१२	७	५	१२

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रि०	द०	षो०	ष०
१६°	६	५	१०	३	२	१२	१२	७	५	१
१६°–३०′	६	५	१०	३	२	१२	१२	७	५	२
१७°	६	५	१०	३	२-३	१२	१२	७	५-६	३
१७°–३०′	६	५	१०	३-४	३	१२	१२	७	६	४
१८°	६	५	१०	४	३	१	१२	७	६	५
१८°–३०′	६	५	१०	४	३	१	१२	८	६	६
१९°	६	५	१०	४	३	१	१२	८	६-७	७
१९°–३०′	६	५	१०	४	३	१	१२	८	७	८
२०°	६	५	१०	४	३	१	१२	८	७	९
२०°–३०′	६	५	२	४	४	२	१०	८	७	१०
२१°	६	५	२	४	४	२	१०	८	७-८	११
२१°–३०′	६	५	२	४-५	४	२	१०	९	८	१२
२२°	६	५	२	५	४	२	१०	९	८	१
२२°–३०′	६	५	२	५	४	२	१०	९	८	२
२३°	६	५	२	५	४	३	१०	९	९	३
२३°–३०′	६	५	२	५	४-५	३	१०	९	९	४
२४°	६	५	२	५	५	३	१०	९	९	५
२४°–३०′	६	५	२	५	५	३	१०	१०	९-१०	६
२५°	६	५	२	५	५	३	१०	१०	१०	७

अं०–क०	रा०	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
२५°–३०'	६	५	२	५	५	४	८	१०	१०	८
२६°	६	५	२	५-६	५	४	८	१०	१०	९
२६°–३०'	६	५	२	६	५	४	८	१०	१०-११	१०
२७°	६	५	२	६	५	४	८	१०	११	११
२७°–३०'	६	५	२	६	५	४	८	११	११	१२
२८°	६	५	२	६	५	५	८	११	११	१
२८°–३०'	६	५	२	६	५	५	८	११	११-१२	२
२९°	६	५	२	६	५	५	८	११	१२	३
२९°–३०'	६	५	२	६	५	५	८	११	१२	४
३०°	६	५	२	६	५	५	८	११	१२	५

तुला में दशवर्ग

अं०–क०	रा०	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
०°–३०'	७	५	७	७	७	७	१	७	१	७
१°	७	५	७	७	७	७	१	७	१	८
१°–३०'	७	५	७	७	७	७	१	७	१	९
२°	७	५	७	७	७	७	१	७	१-२	१०
२°–३०'	७	५	७	७	७	७	१	७	२	११
३°	७	५	७	७	७	८	१	७	२	१२
३°–३०'	७	५	७	७	७-८	८	१	८	२	१

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
४°	७	५	७	७-८	८	८	१	८	२-३	२
४°-३०'	७	५	७	८	८	८	१	८	३	३
५°	७	५	७	८	८	८	१	८	३	४
५°-३०'	७	५	७	८	८	९	११	८	३	५
६°	७	५	७	८	८	९	११	८	३-४	६
६°-३०'	७	५	७	८	८	९	११	९	४	७
७°	७	५	७	८	८-९	९	११	९	४	८
७°-३०'	७	५	७	८	९	९	११	९	४	९
८°	७	५	७	८	९	१०	११	९	५	१०
८°-३०'	७	५	७	८	९	१०	११	९	५	११
९°	७	५	७	८-९	९	१०	११	९	५	१२
९°-३०'	७	५	७	९	९	१०	११	१०	५-६	१
१०°	७	५	७	९	९	१०	११	१०	६	२
१०°-३०'	७	५	११	९	१०	११	९	१०	६	३
११°	७	५	११	९	१०	११	९	१०	६	४
११°-३०'	७	५	११	९	१०	११	९	१०	६-७	५
१२°	७	५	११	९	१०	११	९	१०	७	६
१२°-३०'	७	५	११	९-१०	१०	११	९	११	७	७
१३°	७	५	११	१०	१०	१२	९	११	७	८

अं०-क०	रा०	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रि०	द०	षो०	ष०
१३°-३०'	७	५	११	१०	१०-११	१२	९	११	७-८	९
१४°	७	५	११	१०	११	१२	९	११	८	१०
१४°-३०'	७	५	११	१०	११	१२	९	११	८	११
१५°	७	५	११	१०	११	१२	९	११	८	१२
१५°-३०'	७	४	११	१०	११	१	९	१२	९	१
१६°	७	४	११	१०	११	१	९	१२	९	२
१६°-३	७	४	११	१०	११	१	९	१२	९	३
१७°	७	४	११	१०	११-१२	१	९	१२	९-१०	४
१७°-३०'	७	४	११	१०-११	१२	१	९	१२	१०	५
१८°	७	४	११	११	१२	२	९	१२	१०	६
१८°-३०'	७	४	११	११	१२	२	३	१	१०	७
१९°	७	४	११	११	१२	२	३	१	१०-११	८
१९°-३०'	७	४	११	११	१२	२	३	१	११	९
२०°	७	४	११	११	१२	२	३	१	११	१०
२०°-३०'	७	४	३	११	१	३	३	१	११	११
२१°	७	४	३	११	१	३	३	१	११-१२	१२
२१°-३०'	७	४	३	११-१२	१	३	३	२	१२	१
२२°	७	४	३	१२	१	३	३	२	१२	२
२२°-३०'	७	४	३	१२	१	३	३	२	१२	३

अं०—क०	रा० हो० द्रे			स०	न०	द्वा० त्रिं० द०			षो०	ष०
२३°	७	४	३	१२	१	४	३	२	१	४
२३°–३०′	७	४	३	१२	१-२	४	३	२	१	५
२४°	७	४	३	१२	२	४	३	२	१	६
२४°–३०′	७	४	३	१२	२	४	३	३	१-२	७
२५°	७	४	३	१२	२	४	३	३	२	८
२५°--३०′	७	४	३	१२	२	५	७	३	२	९
२६°	७	४	३	१२-१	२	५	७	३	२	१०
२६°–३०′	७	४	३	१	२	५	७	३	२-३	११
२७°	७	४	३	१	२-३	५	७	३	३	१२
२७°–३०′	७	४	३	१	३	५	७	४	३	१
२८°	७	४	३	१	३	६	७	४	३	२
२८°–३०′	७	४	३	१	३	६	७	४	३-४	३
२९°	७	४	३	१	३	६	७	४	४	४
२९°–३०′	७	४	३	१	३	६	७	४	४	५
३०°	७	४	३	१	३	६	७	४	४	६

वृश्चिक में दशवर्ग

०–३०′	८	४	८	२	४	८	२	४	५	८
१°	८	४	८	२	४	८	२	४	५	९

अं०—क०	राशि	हो०	द्रें०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष
१°—३०′	८	४	८	२	४	८	२	४	५	१०
२	८	४	८	२	४	८	२	४	५-६	११
२°—३०′	८	४	८	२	४	८	२	४	६	१२
३°	८	४	८	२	४	९	२	४	६	१
३°—३०′	८	४	८	२	४-५	९	२	५	६	२
४°	८	४	८	२	५	९	२	५	६-७	३
४°—३०′	८	४	८	२-३	५	९	२	५	७	४
५°	८	४	८	३	५	९	२	५	७	५
५°—३०′	८	४	८	३	५	१०	६	५	७	६
६°	८	४	८	३	५	१०	६	५	७-८	७
६°—३०	८	४	८	३	५	१०	६	६	८	८
७°	८	४	८	३	५-६	१०	६	६	८	९
७—३०′	८	४	८	३	६	१०	६	६	८	१०
८°	८	४	८	३	६	११	६	६	९	११
८°—३०′	८	४	८	३	६	११	६	६	९	१२
९°	८	४	८	३-४	६	११	६	६	९	१
९°—३०′	८	४	८	४	६	११	६	७	९-१०	२
१०°	८	४	८	४	६	११	६	७	१०	३
१०°—३०′	८	४	१२	४	७	१२	६	७	१०	४

अं०—क०	रा०	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
११°	८	४	१२	४	७	१२	६	७	१०	५
११°–३०	८	४	१२	४	७	१२	६	७	१०-११	६
१२°	८	४	१२	४	७	१२	६	७	११	७
१२°–३०'	८	४	१२	४	७	१२	१२	८	११	८
१३°	८	४	१२	४-५	७	१	१२	८	११	९
१३°–३०'	८	४	१२	५	७-८	१	१२	८	११-१२	१०
१४°	८	४	१२	५	८	१	१२	८	१२	११
१४°–३०'	८	४	१२	५	८	१	१२	८	१२	१२
१५°	८	४	१२	५	८	१	१२	८	१२	१—
१५°–३०'	८	५	१२	५	८	२	१२	९	१	२
१६°	८	५	१२	५	८	२	१२	९	१	३
१६°–३०'	८	५	१२	५	८	२	१२	९	१	४
१७°	८	५	१२	५	८-९	२	१२	९	१-२	५
१७°–३०'	८	५	१२	५-६	९	२	१२	९	२	६
१८°	८	५	१२	६	९	३	१२	९	२	७
१८°–३०'	८	५	१२	६	९	३	१२	१०	२	८
१९°	८	५	१२	६	९	३	१२	१०	२-३	९
१९°–३०'	८	५	१२	६	९	३	१२	१०	३	१०
२०°	८	५	१२	६	९	३	१२	१०	३	११

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
२०°–३०'	८	५	४	६	१०	४	१०	१०	३	१२
२१°	८	५	४	६	१०	४	१०	१०	३-४	१
२१°–३०'	८	५	४	६-७	१०	४	१०	११	४	२
२२°	८	५	४	७	१०	४	१०	११	४	३
२२°–३०'	८	५	४	७	१०	४	१०	११	४	४
२३°	८	५	४	७	१०	५	१०	११	५	५
२३°–३०'	८	५	४	७	१०-११	५	१०	११	५	६
२४°	८	५	४	७	११	५	१०	११	५	७
२४°–३०'	८	५	४	७	११	५	१०	१२	५-६	८
२५°	८	५	४	७	११	५	१०	१२	६	९
२५°–३०'	८	५	४	७	११	६	८	१२	६	१०
२६°	८	५	४	७-८	११	६	८	१२	६	११
२०°–३०'	८	५	४	८	११	६	८	१२	६-७	१२
२७°	८	५	४	८	११-१२	६	८	१२	७	१
२७°–३०'	८	५	४	८	१२	६	८	१	७	२
२८°	८	५	४	८	१२	७	८	१	७	३
२८°–३०'	८	५	४	८	१२	७	८	१	७-८	४
२९°	८	५	४	८	१२	७	८	१	८	५
२९°–३०	८	५	४	८	१२	७	८	१	८	६
३०°	८	५	४	८	१२	७	८	१	८	७

अं०-फ०	रा०	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
१०°	९	५	९	११	३	१२	११	१२	२	४
१०°-३	९	५	१	११	४	१	९	१२	२	५
११°	९	५	१	११	४	१	९	१२	२	६
११°-३०'	९	५	१	११	४	१	९	१२	२-३	७
१२°	९	५	१	११	४	१	९	१२	३	८
१२°-३०'	९	५	१	११	४	१	९	१	३	९
१३°	९	५	१	११-१२	४	२	९	१	३	१०
१३°-३०'	९	५	१	१२	४-५	२	९	१	३-४	११
१४°	९	५	१	१२	५	२	९	१	४	१२
१४°-३०'	९	५	१	१२	५	२	९	१	४	१
१५°	९	५	१	१२	५	२	९	१	४	२
१५°-३०'	९	४	१	१	५	३	९	२	५	३
१६°	९	४	१	१	५	३	९	२	५	४
१६°-३०'	९	४	१	१	५	३	९	२	५	५
१७°	९	४	१	१	५-६	३	९	२	५-६	६
१७°-३०'	९	४	१	१-२	६	३	९	२	६	७
१८°	९	४	१	२	६	४	९	२	६	८
१८°-३०'	९	४	१	२	६	४	३	३	६	९
१९°	९	४	१	२	६	४	३	३	६-७	१०

धनु में दशवर्ग

अं०-क०	रा०	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
०°-३०'	९	५	९	९	१	९	१	९	९	९
१°	९	५	९	९	१	९	१	९	९	१०
१°-३०'	९	५	९	९	१	१	१	९	९	११
२°	९	५	९	९	१	८	१	९	८-१०	१२
२°-३०'	९	५	९	९	१	९	१	९	१०	१
३°	९	५	९	९	१	१०	१	९	१०	२
३°-३०'	९	५	९	९	१-२	१०	१	१०	१०	३
४°	९	५	९	९	२	१०	१	१०	१०-११	४
४°-३०'	५	५	९	१०	२	८-१०	१	१०	११	५
५°	९	५	९	१०	२	१०	१	१०	११	६
५°-३०'	९	५	९	१०	२	११	११	१०	११	७
६°	९	५	९	१०	२	११	११	१०	११-१२	८
६°-३०'	९	५	९	१०	२	११	११	११	१२	९
७°	९	५	९	१०	२-३	११	११	११	१२	१०
७°-३०'	९	५	९	१०	३	११	११	११	१२	११
८°	९	५	९	१०	३	१२	११	११	१	१२
८°-३०'	९	५	९	१०	३	१२	११	११	१	१
९°	९	५	९	१०-११	३	१२	११	११	१	२
९°-३०'	९	५	९	११	३	१२	११	१२	१-२	३

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
१९°–३०'	९	४	१	२	६	४	३	३	७	११
२०°	९	४	१	२	६	४	३	३	७	१२
२०°–३०'	९	४	५	२	७	५	३	३	७	१
२१°	९	४	५	२	७	५	३	३	७-८	२
२१°–३०'	९	४	५	२-३	७	५	३	४	८	३
२२°	९	४	५	३	७	५	३	४	८	४
२२°–३०'	९	४	५	३	७	५	३	४	८	५
२३°	९	४	५	३	७	६	३	४	९	६
२३°–३०'	९	४	५	३	७-८	६	३	४	९	७
२४°	९	४	५	३	८	६	३	४	९	८
२४°–३०'	९	४	५	३	८	६	३	५	९-१०	९
२५°	९	४	५	३	८	६	३	५	१०	१०
२५°–३०'	९	४	५	३	८	७	७	५	१०	११
२६°	९	४	५	३-४	८	७	७	५	१०	१२
२६°–३०'	९	४	५	४	८	७	७	५	१०-११	१
२७°	९	४	५	४	८-९	७	७	५	११	२
२७°–३०'	९	४	५	४	९	७	७	६	११	३
२८°	९	४	५	४	९	८	७	६	११	४
२८°–३०'	९	४	५	४	९	८	७	६	११-१२	५

अं०—क०	रा०	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रि०	द०	षो०	ष०
२९°	९	४	५	४	९	८	७	६	१२	६
२९°–३०'	९	४	५	४	९	८	७	६	१२	७
३०°	९	४	५	४	९	८	७	६	१२	८

मकर में दशवर्ग

०°–३०'	१०	४	१०	५	१०	१०	२	६	१	१०
१°	१०	४	१०	५	१०	१०	२	६	१	११
१°–३०'	१०	४	१०	५	१०	१०	२	६	१	१२
२°	१०	४	१०	५	१०	१०	२	६	१-२	१
२°–३०'	१०	४	१०	५	१०	१०	२	६	२	२
३°	१०	४	१०	५	१०	११	२	६	२	३
३°–३०'	१०	४	१०	५	१०-११	११	२	७	२	४
४°	१०	४	१०	५	११	११	२	७	२-३	५
४°–३०'	१०	४	१०	५-६	११	११	२	७	३	६
५°	१०	४	१०	६	११	११	२	७	३	७
५°–३०'	१०	४	१०	६	११	१२	६	७	३	८
६°	१०	४	१०	६	११	१२	६	७	३-४	९
६°–३०'	१०	४	१०	६	११-१२	१२	६	८	४	१०
७°	१०	४	१०	६	१२	१२	६	८	४	११

अं०—क्र०	रा० हो० द्रे०			स०	न०	द्वा० त्रिं० द०			षो०	ष०
७°–३०'	१०	४	१०	६	१२	१२	६	८	४	१२
८°	१०	४	१०	६	१२	१	६	८	५	१
८°–३०'	१०	४	१०	६	१२	१	६	८	५	२
९°	१०	४	१०	६-७	१२	१	६	८	५	३
९°–३०'	१०	४	१०	७	१२	१	६	९	५-६	४
१०°	१०	४	१०	७	१२	१	६	९	६	५
१०°–३०	१०	४	२	७	१	२	६	९	६	६
११°	१०	४	२	७	१	२	६	९	६	७
११°–३०'	१०	४	२	७	१	२	६	९	६-७	८
१२°	१०	४	२	७	१	२	६	९	७	९
१२°–३०'	१०	४	२	७	१	२	१२	१०	७	१०
१३°	१०	४	२	७-८	१	३	१२	१०	७	११
१३°–३०'	१०	४	२	८	१-२	३	१२	१०	७-८	१२
१४°	१०	४	२	८	२	३	१२	१०	८	१
१४°–३०'	१०	४	२	८	२	३	१२	१०	८	२
१५°	१०	४	२	८	२	३	१२	१०	८	३
१५°–३०'	१०	५	२	८	२	४	१२	११	९	४
१६°	१०	५	२	८	२	४	१२	११	९	५
१६°–३०'	१०	५	२	८	२	४	१२	११	९	६

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
१७°	१०	५	२	८	२-३	४	१२	११	९-१०	७
१७°–३०′	१०	५	२	८-९	३	४	१२	११	१०	८
१८°	१०	५	२	९	३	५	१२	११	१०	९
१८°–३०′	१०	५	२	९	३	५	१२	१२	१०	१०
१९°	१०	५	२	९	३	५	१२	१२	१०-११	११
१९°–३०′	१०	५	२	९	३	५	१२	१२	११	१२
२०°	१०	५	२	९	३	५	१२	१२	११	१
२०°–३०′	१०	५	६	९	४	६	१०	१२	११	२
२१°	१०	५	६	९	४	६	१०	१२	११-१२	३
२१°–३०′	१०	५	६	९-१०	४	६	१०	१	१२	४
२२°	१०	५	६	१०	४	६	१०	१	१२	५
२२°–३०′	१०	५	६	१०	४	६	१०	१	१२	६
२३°	१०	५	६	१०	४	७	१०	१	१	७
२३°–३०′	१०	५	६	१०	४-५	७	१०	१	१	८
२४°	१०	५	६	१०	५	७	१०	१	१	९
२४°–३०′	१०	५	६	१०	५	७	१०	२	१-२	१०
२५°	१०	५	६	१०	५	७	१०	२	२	११
२५°–३०′	१०	५	६	१०	५	८	८	२	२	१२
२६°	१०	५	६	१०-११	५	८	८	२	२	१

अं०-क०	रा०	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रि०	द०	षो०	ष०
२६°-३०'	१०	५	६	११	५	८	८	२	२-३	२
२७°	१०	५	६	११	५-६	८	८	२	३	३
२७°-३०'	१०	५	६	११	६	८	८	३	३	४
२८°	१०	५	६	११	६	९	८	३	३	५
२८°-३०'	१०	५	६	११	६	९	८	३	३-४	६
२९°	१०	५	६	११	६	९	८	३	४	७
२९°-३०'	१०	५	६	११	६	९	८	३	४	८
३०°	१०	५	६	११	६	९	८	३	४	९

कुम्भ में दशवर्ग

अं०-क०	रा०	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रि०	द०	षो०	ष०
०°-३०'	११	५	११	१२	७	११	१	११	५	११
१°	११	५	११	१२	७	११	१	११	५	१२
१°-३०'	११	५	११	१२	७	११	१	११	५	१
२°	११	५	११	१२	७	११	१	११	५-६	२
२°-३०'	११	५	११	१२	७	११	१	११	६	३
३°	११	५	११	१२	७	१२	१	११	६	४
३°-३०'	११	५	११	१२	७-८	१२	१	१२	६	५
४°	११	५	११	१२	८	१२	१	१२	६-७	६
४°-३०'	११	५	११	१२-१	८	१२	१	१२	७	७

अं०-क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
५°	११	५	११	१	८	१२	१	१२	७	८
५°-३०'	११	५	११	१	८	१	११	१२	७	९
६°	११	५	११	१	८	१	११	१२	७-८	१०
६°-३०	११	५	११	१	८	१	११	१	८	११
७°	११	५	११	१	८-९	१	११	१	८	१२
७°-३०'	११	५	११	१	९	१	११	१	८	१
८°	११	५	११	१	९	२	११	१	९	२
८°-३०'	११	५	११	१	९	२	११	१	९	३
९°	११	५	११	१-२	९	२	११	१	९	४
९°-३०'	११	५	११	२	९	२	११	२	९-१०	५
१०°-३०	११	५	११	२	९	२	११	२	१०	६
१०°	११	५	३	२	१०	३	९	२	१०	८
११°	११	५	३	२	१०	३	९	२	१०	८
११°-३०'	११	५	३	२	१०	३	९	२	१०-११	९
१२°	११	५	३	२	१०	३	९	२	११	१०
१२°-३०'	११	५	३	२	१०	३	९	३	११	११
१३°	११	५	३	२-३	१०	४	९	३	११	१२
१३°-३०'	११	५	३	३	१०-११	४	९	३	११-१२	१
१४°	११	५	३	३	११	४	९	३	१२	२

अं०-क०	रा० हो० द्रे०			स०	न०	द्वा० त्रिं० द०			षो०	ष०
१४°-३०'	११	५	३	३	११	४	९	३	१२	३
१५°	११	५	३	३	११	४	९	३	१२	४
१५°-३०'	११	४	३	३	११	५	९	४	१	५
१६°	११	४	३	३	११	५	९	४	१	६
१६°-३०'	११	४	३	३	११	५	९	४	१	७
१७°	११	४	३	३-४	११-१२	५	९	४	१-२	८
१७°-३०'	११	४	३	४	१२	५	९	४	२	९
१८°	११	४	३	४	१२	६	९	४	२	१०
१८°-३०'	११	४	३	४	१२	६	३	५	२	११
१९°	११	४	३	४	१२	६	३	५	२-३	१२
१९°-३०'	११	४	३	४	१२	६	३	५	३	१
२०°	११	४	३	४	१२	६	३	५	३	२
२०°-३०'	११	४	७	४	१	७	३	५	३	३
२१°	११	४	७	४	१	७	३	५	३-४	४
२१°-३०'	११	४	७	४-५	१	७	३	६	४	५
२२°	११	४	७	५	१	७	३	६	४	६
२२°-३०'	११	४	७	५	१	७	३	६	४	७
२३°	११	४	७	५	१	८	३	६	५	८
२३°-३०'	११	४	७	५	१-२	८	३	६	५	९

अं०—क०	रा०	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
२४°	११	४	७	५	२	८	३	६	५	१०
२४°–३०'	११	४	७	५	२	८	३	७	५-६	११
२५°	११	४	७	५	२	८	३	७	६	१२
२५°–३०'	११	४	७	५	२	९	७	७	६	१
२६°	११	४	७	५-६	२	९	७	७	६	२
२६°–३०'	११	४	७	६	२	९	७	७	६-७	३
२७°	११	४	७	६	२-३	९	७	७	७	४
२७°–३०'	११	४	७	६	३	९	७	८	७	५
२८°	११	४	७	६	३	१०	७	८	७	६
२८°–३०'	११	४	७	६	३	१०	७	८	७-८	७
२९°	११	४	७	६	३	१०	७	८	८	८
२९°–३०'	११	४	७	६	३	१०	७	८	८	९
३०°	११	४	७	६	३	१०	७	८	८	१०

मीन में दशवर्ग

०°–३०'	१२	४	१२	७	४	१२	२	८	९	१२
१°	१२	४	१२	७	४	१२	२	८	९	१
१°–३०'	१२	४	१२	७	४	१२	२	८	९	२
२°	१२	४	१२	७	४	१२	२	८	९-१०	३

अं०—क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
२°–३०'	१२	४	१२	७	४	१२	२	८	१०	४
३°	१२	४	१२	७	४	१	२	८	१०	५
३°–३०'	१२	४	१२	७	४-५	१	२	९	१०	६
४°	१२	४	१२	७	५	१	२	९	१०-११	७
४°–३०'	१२	४	१२	७-८	५	१	२	९	११	८
५°	१२	४	१२	८	५	१	२	९	११	९
५°–३०'	१२	४	१२	८	५	२	६	९	११	१०
६°	१२	४	१२	८	५	२	६	९	११-१२	११
६°–३०'	१२	४	१२	८	५	२	६	१०	१२	१२
७°	१२	४	१२	८	५-६	२	६	१०	१२	१
७°–३०'	१२	४	१२	८	६	२	६	१०	१२	२
८°	१२	४	१२	८	६	३	६	१०	१	३
८°–३०'	१२	४	१२	८	६	३	६	१०	१	४
९°	१२	४	१२	८-९	६	३	६	१०	१	५
९°–३०'	१२	४	१२	९	६	३	६	११	१-२	६
१०°	१२	४	१२	९	६	३	६	११	२	७
१०°–३०'	१२	४	४	९	७	४	६	११	२	८
११°	१२	४	४	९	७	४	६	११	२	९
११°–३०'	१२	४	४	९	७	४	६	११	२-३	१०

अं०—क०	रा०	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
१२°	१२	४	४	९	७	४	६	११	३	११
१२°—३०'	१२	४	४	९	७	४	१२	१२	३	१२
१३°	१२	४	४	९-१०	७	५	१२	१२	३	१
१३°—३०'	१२	४	४	१०	७-८	५	१२	१२	३-४	२
१४°	१२	४	४	१०	८	५	१२	१२	४	३
१४°—३०'	१२	४	४	१०	८	५	१२	१२	४	४
१५°	१२	४	४	१०	८	५	१२	१२	४	५
१५°—३०'	१२	५	४	१०	८	६	१२	१	५	७
१६°	१२	५	४	१०	८	६	१२	१	५	७
१६°—३०'	१२	५	४	१०	८	६	१२	१	५	८
१७°	१२	५	४	१०	८-९	६	१२	१	५-६	९
१७°—३०'	१२	५	४	१०-११	९	६	१२	१	६	१०
१८°	१२	५	४	११	९	७	१२	१	६	११
१८°—३०'	१२	५	४	११	९	७	१२	२	६	१२
१९°	१२	५	४	११	९	७	१२	२	६-७	१
१९°—३०'	१२	५	४	११	९	७	१२	२	७	२
२०°	१२	५	४	११	९	७	१२	२	७	३
२०°—३०'	१२	५	८	११	१०	८	१०	२	७	४
२१°	१२	५	८	११	१०	८	१०	२	७-८	५

अं०-क०	राशि	हो०	द्रे०	स०	न०	द्वा०	त्रिं०	द०	षो०	ष०
२१°-३०'	१२	५	८	११-१२	१०	८	१०	३	८	६
२२°	१२	५	८	१२	१०	८	१०	३	८	७
२२°-३०'	१२	५	८	१२	१०	८	१०	३	८	८
२३°	१२	५	८	१२	१०	९	१०	३	९	९
२३°-३०'	१२	५	८	१२	१०-११	९	१०	३	९	१०
२४°	१२	५	८	१२	११	९	१०	३	९	११
२४°-३०'	१२	५	८	१२	११	९	१०	४	९-१०	१२
२५°	१२	५	८	१२	११	९	१०	४	१०	१
२५°-३०'	१२	५	८	१२	११	१०	८	४	१०	२
२६°	१२	५	८	१२-१	११	१०	८	४	१०	३
२६°-३०'	१२	५	८	१	११	१०	८	४	१०-११	४
२७°	१२	५	८	१	११-१२	१०	८	४	११	५
२७°-३०'	१२	५	८	१	१२	१०	८	५	११	६
२८°	१२	५	८	१	१२	११	८	५	११	७
२८°-३०'	१२	५	८	१	१२	११	८	५	११-१२	८
२९°	१२	५	८	१	१२	११	८	५	१२	९
२९°-३०'	१२	५	८	१	१२	११	८	५	१२	१०
३०°	१२	५	८	१	१२	११	८	५	१२	११

नोट—मेष में चतुर्थ वर्ग में नवांश के नीचे २ लिखा है इसका अर्थ यह हुआ कि ३·२० तक मेष है तदुपरान्त वृष। इसी प्रकार सप्तमांश ४-१७-१-८, पर बनता है और षोडशांश १-५२-३० पर

अध्याय २

ग्रहस्वरूपगुणाध्याय

प्रथम अध्याय में राशियों के गुण, प्रकृति, स्वभाव आदि का वर्णन किया है। द्वितीय अध्याय में ग्रहों के स्वरूप, गुण, धर्म, जाति, दिशा, प्रकृति आदि का परिचय दिया है। फलितज्योतिष का आधार राशि, ग्रह और भाव हैं। इनका पूर्ण परिचय हो जाने से किस जन्मकुण्डली में कौन-सा ग्रह कब, कैसा प्रभाव उत्पन्न करेगा इसका ऊहापोह दैवज्ञ कर सकता है। राशियाँ ऐसी हैं, जैसे किसी नगर के विविध भाग; और ग्रह ऐसे हैं, जैसे किसी नगर के विविध अधिकारी। किसी नगर का विद्यालय (राशि) टूटा फूटा है या विद्यालय का अध्यक्ष (ग्रह) कमज़ोर है और अस्पताल में पड़ा है तो विद्या का प्रचार कैसे होगा। (पंचम भाव का स्वामी नीच राशि में या त्रिक में हो तो विद्या की समुन्नति कैसे होगी?) एक ही मनुष्य (ग्रह) अपने घर में, मित्र के घर में, शत्रु के घर में, देवालय या राजा के महल में, मित्रों के साथ, शत्रुओं के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार के आचरण करता है। यही ग्रहों का भी स्वभाव है। चन्द्रमा जैसा कर्क में फल करेगा वैसा वृश्चिक में नहीं। चन्द्रमा यदि बृहस्पति के साथ हो तो अन्य फल और चन्द्रमा यदि सूर्य के साथ हो तो कुछ अन्य फल। दूसरा उदाहरण लीजिये—बृहस्पति का धन दिलाने का मार्ग कुछ और है और मंगल का कुछ और। ग्रह अपने दोष (वात, पित्त, कफ) सम्बन्धी रोग करता है, अपनी दिशा से लाभ या हानि कराता है। जिन वस्तुओं का वह कारक होता है, उन सम्बन्धी वृद्धि या ह्रास करता है। यही सब हृदयंगम कराने के लिये राशि, ग्रह, और भावों का परिचय ग्रंथकार ने इस ग्रंथ में कराया है। ग्रहों का परिचय इस अध्याय में है। एक बार राशि और ग्रहों का पूर्ण परिचय हो जाने से, किस परिस्थिति में क्या फल होगा, यह तर्क और बुद्धिगम्य हो जाता है।

आत्मा, चित्त आदि के कारक

कालस्यात्मा भास्करश्चित्तमिन्दुः सत्त्वं भौमः स्याद्वचश्चन्द्रसूनुः।
देवाचार्यः सौख्यविज्ञानसारः कामः शुक्रो दुःखमेवार्कसूनुः॥ १॥

कोटि-कोटि अखिल ब्रह्माण्डों की समष्टि को भगवान् का स्वरूप माना है—यह बड़े पैमाने पर। और छोटे पैमाने पर भचक्र (सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के

परिभ्रमण मार्ग) को कालस्वरूप कहा है। श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अध्याय २२-२५ तथा विष्णुपुराण के द्वितीय अंश के अध्याय ७-१२ में, असंख्य तारों और नक्षत्रों में, भगवान् विष्णु के भिन्न-भिन्न अवयवों का अवस्थान दिया है। इस विषय के विस्तृत परिचय के लिये देखिये हमारी सुगम ज्योतिष-प्रवेशिका प्रथम प्रकरण —आकाश-परिचय।

'यत्पिंडे तद्ब्रह्माण्डे' या यह कहिये 'यद् ब्रह्माण्डे तत्पिंडे' एक ही बात है। 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' आदि सिद्धान्तों पर मनुष्य का छोटा-सा शरीर अपरिमित ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। जैसे आँख, कान, नाक आदि अवयवों का सम्मिलित रूप शरीर कहलाता है, वैसे ही सूर्य, चन्द्र आदि विविध ग्रह और नक्षत्रमंडल— सम्मिलित रूप से 'कालपुरुष' का नाम ग्रहण करते हैं। शरीर की विविध ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के भिन्न-भिन्न गुण कर्म हैं। यही हाल ग्रहों का है। इसी का विश्लेषण इस श्लोक में किया है।

काल (कालपुरुष की, इस कारण ब्रह्माण्ड रूप, मनुष्य की भी) की आत्मा सूर्य है, चित्त (मन) चन्द्रमा है, सत्त्व मंगल है, वाणी बुध है, सुख और विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) बृहस्पति है, काम (समस्त भोग) शुक्र है, दुःख शनि है। यह सब अपौरुषेय वेद पर आधारित है। 'सूर्यात्मा जगतस्तस्थुषश्च,' 'चन्द्रमा मनसो जातः' आदि श्रुतिवाक्य हैं।

सूर्य जन्मकुण्डली में बलवान् होने से आत्म-प्रभाव विशेष होता है। चन्द्रमा बलवान् होने से मनःप्रभाव उत्कृष्ट कोटि का होता है। प्रभाव से ही सब कार्य सिद्ध होते हैं। रुद्रभट्ट इस संदर्भ में कहते हैं कि आत्मा और मन परस्पर एक दूसरे के आश्रित होने से—सूर्य और चन्द्रमा—इन दोनों में, एक के बली होने से, दूसरा भी बली हो जाता है; क्योंकि बृहत्संहिता में कहा है :—

> आत्मा सहैति मनसा मन इन्द्रियेण
> स्वार्थेन चेन्द्रियगणः क्रम एवमेषः।
> योगोऽयमेव मनसः किमगम्यमस्ति
> यस्मिन् मनो व्रजति तत्र गतोऽयमात्मा॥

मन की प्रधानता से ही सब प्रवृत्तियाँ होती हैं। इसी कारण जन्मकुण्डली में यदि चन्द्रमा कमजोर हो तो अन्य ग्रहो से प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। (इसी कारण मंत्रेश्वर ने फलदीपिका अध्याय ४ श्लोक ११ में कहा है—'चान्द्रं बल तु निखिलग्रहवीर्यबीजम्')।

रुद्रभट्ट अपने विवरण में एक प्राचीन श्लोक उद्धृत करते हैं :—

> चन्द्रार्कौ बलयुक्तौ कुजादयः प्रोक्तमार्गबलहीनाः।
> शुभफलदास्ते सर्वे दशासु योगेषु सञ्चिन्त्याः॥

एक अन्य टीकाकार निम्नलिखित प्राचीन श्लोक उद्धृत करते हैं :—

अमृतकिरणवीर्याद् वीर्यमाश्रित्य सर्वे
विदधति फलमेते खेचराः साध्वसाधु ।
निज-निज-विषयेषु व्याप्रियन्ते यथामू-
न्यलमिह मनसैवाधिष्ठितानीन्द्रियाणि ॥

जन्मकुण्डली में ग्रहों के बलवान् होने से ही तत् तत् भाव बलवान् होते हैं—आत्मा आदि बलवान् होते हैं, दुर्बल होने से दुर्बल होते हैं। किन्तु शनि के विषय में विपरीत है। शनि बली होने से दुःख अधिक नहीं होता, कम होता है। शनि दुर्बल होने से दुःख कम नहीं होता प्रत्युत अधिक होता है। सिद्धान्त यह है कि तत् तत् ग्रह बलवान् होने से तत् तत् सम्बन्धी सुख होता है। दुःख से सम्बन्धित सुख क्या? दुःख का अभाव ही सुख है। इसीलिये सारावली अध्याय ४ श्लोक २ में कहा है :—

आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः ।
दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतं शनेः स्मृतम् ॥

ऊपर कहा गया है कि मंगल से सत्त्व का विचार करना। सत्त्व क्या? 'अविकारिकरं सत्त्वं व्यसनाभ्युदयागमे।' वीर्य (पराक्रम) शौर्य आदि सत्त्व से होते हैं। जैसे सिंह में सत्त्व अधिक होता है इसी कारण वह वन का राजा कहलाता है। एकाकी रहता है (दरबारियों के साथ नहीं), वन में वास करता है (महल में नहीं), राजा के चिह्न मुकुट, छत्र, चँवर उसके नहीं होते, नीतिशास्त्र भी नहीं जानता (राजा नीतिशास्त्र का वेत्ता होता है) तथापि केवल सत्त्व की अधिकता के कारण वह 'जंगल का राजा' इस शब्द को चरितार्थ करता है।

एकाकिनि वनवासिन्यराजलक्ष्मण्यनीतिशास्त्रज्ञे ।
सत्त्वोच्छ्रयान्मृगपतौ राजेति गिरः परिणमन्ति ॥

वाणी का विचार बुध से करना चाहिये; सुख और ज्ञान का बृहस्पति से। बुध बलवान् होने से वाग्मी होता है। साथ ही बृहस्पति भी बलवान् हो तो शास्त्रज्ञान युक्त, पाण्डित्यपूर्ण वाणी होगी; बृहस्पति बलहीन होने से बलवान् बुध जातक को प्रगल्भ करेगा, पंडित नहीं। बृहस्पति बलवान् हो, बुध बलहीन हो तो पंडित होने पर भी मुख दुर्बल होगा। यह सब तारतम्य करना चाहिये। एक टीकाकार के अनुसार बृहस्पति से जो सुख का विचार कहा सो सुख से धन और पुत्र भी लेना क्योंकि—

धनस्य सुखपरसाधनत्वात् सुखशब्देन धनमपि गृह्यते ।
सुखशब्देन पुनरपत्यमप्युच्यते । पुत्रजन्मविपत्तिभ्यां न परं सुखदुःखयोः ।

शुक्र से काम और भोग का विचार करना चाहिये । काम और भोग भक्ति और ज्ञान में घोर बाधक हैं, इस कारण भगवद्गीता में इन सब को आसुरी सम्पत् कहा है । इसी कारण शुक्र को असुरों (दैत्यों) का गुरु कहा है । बृहस्पति देवताओं का गुरु है; क्योंकि भक्ति, ज्ञान आदि को भगवद्गीता में दैवी संपत् कहा है :—

दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।

आगे के अध्यायों में देखेंगे कि बलवान् शुक्र होने से कितने प्रकृष्ट धनयोग कहे हैं । शनि दुर्बल होने से कितनी पीड़ा देते हैं, साढ़े साती में कैसे-कैसे दुःख होते हैं, इससे सब सुपरिचित हैं, इसलिये इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं ।

यवन ने कहा है :–

सम्पदो गुरुसंयोगे शनियोगे विपत्तयः ।
चिन्तितव्यं सदा पुंसां सर्वभावानुसारतः ॥

ग्रहों का राजत्व आदि निरूपण

दिनेशचन्द्रौ राजानौ सचिवौ जीवभार्गवौ ।
कुमारो वित् कुजो नेता प्रेष्यस्तपननन्दनः ॥ २ ॥

सूर्य और चन्द्र राजा, बृहस्पति और शुक्र राजमंत्री, बुध राजकुमार, मंगल नेता (यहाँ नेता शब्द से सेना का नेता या सेनापति से तात्पर्य है) तथा शनि नौकर है ।

रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं कि सूर्य राजा है, चन्द्रमा रानी है । इसी सिद्धान्त पर जातकादेश मार्ग के अष्टकवर्ग अध्याय के श्लोक १४ और १९ में कहा गया है कि सूर्याष्टकवर्ग में जिस दिशा में अधिक शुभ रेखा (दक्षिण भारत में इन्हें शुभ विन्दु कहते हैं) हो उस दिशा में स्थित राजा से लाभ होता है और चन्द्राष्टकवर्ग में जिस दिशा में अधिक शुभ रेखा हो उस दिशा में स्थित रानी की सेवा से अभ्युदय प्राप्ति होती है ।

सूर्य और चन्द्र को राजा (या राजा और रानी) कहने से यह भी व्यञ्जित है कि सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु तथा मकर पर सूर्य का आधिपत्य है और उत्क्रम से कर्क, मिथुन, वृष, मेष, मीन तथा कुंभ पर चन्द्रमा का । सूर्य ने अपने अव्यवहित सान्निध्य वाली राशि कन्या, चन्द्रमा ने उत्क्रम से अपने समीप वाली राशि मिथुन बुध को दे दी । इसी प्रकार सूर्य ने तुला, चन्द्रमा ने वृष शुक्र को प्रदान कर दी । सूर्य ने आगे की वृश्चिक, चन्द्रमा ने वृष से पिछली मेष

मंगल को; सूर्य ने धनु, चन्द्रमा ने मीन बृहस्पति को तथा सूर्य ने क्रम से अपनी छठी मकर तथा चन्द्रमा ने उत्क्रम से अपनी छठी कुंभ राशि शनि को दे दी । यही सारावली अध्याय ३ श्लोक ९ में कहा है :

द्वादशमण्डलभगणं तस्यार्धे सिंहतो रविर्नाथः ।
कर्कटकात्प्रतिलोमं शशी तथान्येऽपि तत्स्थानात् ॥

सारावली में श्लोक १० में आगे कहते हैं कि सूर्य के आधे भाग (सिंह, कन्या······धनु, मकर) में जिनके ग्रह होते हैं, वे शूर, तेजस्वी और साहसी होते हैं । ये सूर्य के गुण हैं । चन्द्रमा के आधे भाग में जिनके ग्रह होते हैं वे मृदु, सौम्य और सौभाग्यशाली होते हैं :–

भानोरर्धे विहगैः शूरास्तेजस्विनश्च साहसिकाः ।
शशिनो मृदवः सौम्याः सौभाग्ययुताः प्रजायन्ते ॥
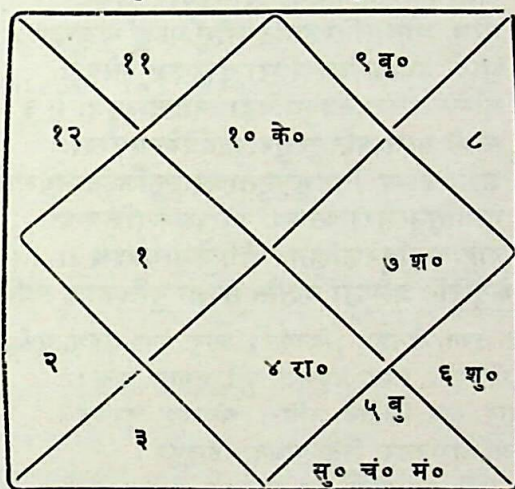
ऊपर एक कुण्डली दी गई है । इनका जन्म २० अगस्त, १९२५ को जामनगर में हुआ । मकर लग्न है । सब ग्रह सिंह से मकर तक (सूर्य के आधिपत्य वाली ६ राशियों में) हैं । सब ग्रहों में राहु केतु नहीं लिये जाते हैं ।

भट्टोत्पल कहते हैं 'जगत् के पालनकारक शनि को भृत्य क्यों कहा ?" भृत्य भी अपने कर्म का पालक है । राजा, मंत्री, भृत्य आदि की संज्ञा जो ग्रहों को दी गई है इसका प्रयोजन यह है कि जन्मकुण्डली या प्रश्नकुण्डली में जो ग्रह बलवान् और उपचय में हो उस ग्रह से राजा आदि जिसका निर्देश किया गया

है वह कार्यसाधक होता है अन्यथा हानिकारक होता है । पाश्चात्य ज्योतिष में सूर्य को अधिकारीवर्ग, राज्यसंचालक विशिष्ट व्यक्तियों का प्रतीक माना है, चन्द्रमा को जनता का । जनता जिनका चुनाव करती है, यथा नगरपालिका, विधानसभा, लोकसभा आदि के चुनाव में, वहाँ जन्मकुण्डली में चन्द्रमा बली होने से सफलता मिलती है । जहाँ राज्याधिकारियों की कृपा पर पदप्राप्ति या पदोन्नति निर्भर होती है, वहाँ सूर्य बलवान् होना चाहिये । यह पाश्चात्य ज्योतिष का सिद्धान्त है ।

ग्रहों के अन्य नाम

सूर्य, चन्द्र, कुज (मंगल) आदि नाम प्रसिद्ध हैं । इन प्रसिद्ध नामों के अतिरिक्त कुछ अन्य नाम बताये जाते हैं ।

हेलिः सूर्यस्तपनदिनकृद्भानुपूषारुणार्काः
सोमः शीतद्युतिरुडुपतिग्लौमृगाङ्केन्दुचन्द्राः ।।
आरो वक्रक्षितिजरुधिराङ्गारकक्रूरनेत्राः
सौम्यस्तारातनयबुधविद्बोधनाश्चेन्दुपुत्रः ।। ३ ।।
मन्त्री वाचस्पतिगुरुसुराचार्यदेवेज्यजीवाः
शुक्रः काव्यः सितभृगुसुताच्छास्फुजिद्दानवेज्याः ।
छायासूनुस्तरणितनयः कोणशन्यार्किमन्दाः
राहुः सर्पासुरफणितमःसैंहिकेयागवश्च ।। ४ ।।
ध्वजः शिखी केतुरिति प्रसिद्धा वदन्ति तज्ज्ञा गुलिकश्च मान्दिः ।। ४½ ।।

सूर्य : हेलि, तपन, दिनकृत् (दिनकर), भानु, पूषा, अरुण, अर्क ।
चन्द्रमा : शीतद्युति, सोम, उडुपति, ग्लौ, मृगांक, इन्दु ।
मंगल : आर, वक्र, क्षितिज, रुधिर, अंगारक, क्रूरनेत्र ।
बुध : सौम्य, तारातनय, वित्, बोधन, इन्दुपुत्र ।
बृहस्पति : मंत्री, वाचस्पति, गुरु, सुराचार्य, देवेज्य, जीव ।
शुक्र : काव्य, सित, भृगुसुत, अच्छ, आस्फुजित्, दानवेज्य ।
शनि : छायासूनु, तरणितनय, कोण, आर्कि, मन्द ।
राहु : सर्प, असुर, फणि, तम, सैंहिकेय ।
केतु : ध्वज, शिखी ।
मान्दि : गुलिक ।

किसी-किसी टीकाकार ने अपनी टीका में मान्दि और गुलिक इन दोनों को दो पृथक् उपग्रह लिखा है । परन्तु वास्तव में मान्दि और गुलिक पर्याय शब्द हैं । मान्दि, गुलिक, शनैश्चरात्म, दिनेशपौत्र, मन्दसूनु, ये सब पर्याय हैं ।

ऊपर जो ग्रहों के अन्य नाम दिये गये हैं, उनके अतिरिक्त नाम भी ग्रंथों में प्रयुक्त हुए हैं। यथा सूर्य के लिये सहस्रकिरण, कमलिनीबान्धव, भास्कर, मार्तण्ड आदि। चन्द्रमा के लिये नक्षत्रपति, निशाभर्ता, शिशिरकिरण, शशी, शशलाञ्छन, कुमुदबन्धु आदि शब्दों का भी प्रयोग ग्रंथकारों ने किया है। अन्य ग्रहों के लिये भी अन्य शब्द प्रयुक्त हुए हैं। शब्द के अर्थ से कौन-सा ग्रह अभिप्रेत है यह समझना चाहिये॥ ३-४½॥

सूर्य आदि के उपग्रह

उपग्रहा भानुमुखग्रहांशाः कालादयः कष्टफलप्रदाः स्युः॥ ५॥
क्रमशः कालपरिधिधूमार्द्धप्रहराह्वयाः।
यमकण्टककोदण्डमान्दिपातोपकेतवः॥ ६॥

नौ ग्रहों के नौ उपग्रह निम्नलिखित हैं :–

(१) सूर्य–काल, (२) चन्द्रमा–परिधि, (३) मंगल–धूम, (४) बुध–अर्धयाम, (५) बृहस्पति–यमघंट, (६) शुक्र–कोदण्ड, (७) शनि–गुलिक, (८) राहु–पात, (९) केतु–उपकेतु।

कोदण्ड के ही नाम चाप, कार्मुक आदि हैं। गुलिक के ही नाम मान्दि, मन्दात्मज आदि हैं। यहाँ गणित द्वारा मान्दि आदि कहाँ हैं, या यह कहिये मान्दि स्पष्ट कैसे करना–यह नहीं बताया गया है। अन्य उपग्रहों (काल, परिधि आदि) की अपेक्षा मान्दि का उल्लेख ज्योतिषशास्त्र में अधिक किया गया है। मान्दि स्पष्ट कैसे करना–यह जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका) के पृष्ठ ९८-१०० पर हमने सविस्तर समझाया है।

बृहत्पाराशर (पूर्वार्द्ध) के अध्याय २ में कहा है :–

रविवारादि शन्यन्तं गुलिकादि निरूप्यते।
दिवसानष्टधा कृत्वा वारेशाद्गणयेत् क्रमात्॥
अष्टमांशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः।
रात्रिरप्यष्टधा भक्ता वारेशात्पंचमादितः॥
गणयेदष्टमः खण्डो निष्पत्तिः परिकीर्तितः।
शन्यंशे गुलिकः प्रोक्तो गुर्वंशः यमघण्टकः॥
भौमांशे मृत्युरादिष्टो रव्यंशे कालसंज्ञकः।
सौम्यांशेऽर्द्धप्रहरकः स्पष्टकर्मप्रदेशकः॥

यहां शनि का अंश गुलिक, बृहस्पति का यमघण्टक, मंगल का मृत्यु, सूर्य का काल, बुध का अर्द्ध प्रहर कहा है। चन्द्रमा तथा शुक्र के अंशों का नाम नहीं कहा।

मान लीजिए रविवार को दिन का जन्म है। और दिनमान ३२ घड़ी है। तो सूर्योदय के ४ घड़ी बाद जो लग्न स्पष्ट हुआ (दिनमान को ८ से भाग देने पर जो घड़ी पल आयें, वह एक खंड माना जाता है) वह काल स्पष्ट हुआ, सूर्योदय के ८ घड़ी बाद जो लग्न स्पष्ट आये वह परिधि स्पष्ट, १२ घड़ी बाद मृत्यु स्पष्ट (जातकपारिजात के अनुसार धूम स्पष्ट), १६ घड़ी के बाद अर्ध प्रहर, २० घड़ी बाद यमघंटक जातकपारिजात के मतानुसार २४ घड़ी इष्ट पर कोदण्ड, २८ घड़ी बाद जो लग्न स्पष्ट वह मान्दि स्पष्ट होता है। मान्दि-स्पष्ट कहिए, गुलिकस्पष्ट कहिए एक ही बात है। यह उपग्रह स्पष्ट करने का प्रकार दिन में जन्म होने से होता है। जो वारेश (रविवार का सूर्य, सोमवार का चन्द्रमा आदि) उससे गिनना चाहिए। मान लीजिए बृहस्पतिवार को दिन का जन्म है और दिनमान ३० घड़ी है तो सूर्योदय से ३¾ घड़ी बाद जो लग्न स्पष्ट हो वह यमघण्टक स्पष्ट, ७½ घड़ी बाद (सूर्योदयादिष्टम् ७-३० पर) जो लग्न स्पष्ट हो वह कोदण्ड स्पष्ट, १० घड़ी ४५ पर जो लग्न स्पष्ट हो वह मान्दि स्पष्ट होगा। कुल ७ वार होते हैं। एक-एक खण्ड एक-एक ग्रह का उपग्रह है। आठवें अंश का कोई स्वामी नहीं होता।

यदि रात्रि के समय जन्म हो तो प्रक्रिया में कुछ भेद है। पहले यह देखिए कि रात्रिमान कितना है? मान लीजिए २८ घड़ी है। ८ से भाग देने पर एक-एक खंड ३½ घड़ी का हुआ। अब देखिए कि किस वार को जन्म है। भारतीय मत में, आज सूर्योदय से प्रारंभ कर कल सूर्योदय तक, आज का ही वार माना जाता है। अंग्रेजी पद्धति में रात्रि को १२ बजे, तारीख और वार बदल जाते हैं, भारतीय पद्धति में नहीं। अब यदि रविवार की रात्रि का जन्म है तो संध्या (सूर्यास्त के बाद) ३½ घड़ी बाद जो लग्न स्पष्ट होगा, वह सूर्य से पंचम--सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति–बृहस्पति का खंड होने के कारण यमघंटक स्पष्ट होगा। सूर्यास्त के ७ घड़ी बाद कोदण्ड का तथा १०½ घड़ी बाद मान्दि स्पष्ट।

रात्रि में जन्म होने से वारेश से पाँचवें से खंड का प्रारंभ करते हैं। निम्न-लिखित सारिणी से स्पष्ट होगा कि किस वार को, दिन में जन्म होने से कब, और रात्रि में जन्म होने से कब, काल स्पष्ट आदि कैसे निकालना चाहिए।

दिन में काल, परिधि आदि का विभाग

वार	१ खं	२ खं	३ खं	४ खं	५ खं	६ खं	७ खं	८ खं
रवि	का०	प०	धू०	अ०	य०	को०	गु०	निरीश
सोम	प०	धू०	अ०	य०	को०	गु०	का०	,,
मंगल	धू०	अ०	य०	को०	गु०	का०	प०	,,
बुध	अ०	य०	को०	गु०	का०	प०	थू०	,,
गुरु	य०	को०	शु०	का०	प०	धू०	अ०	,,
शुक्र	को०	शु०	का०	प०	धू०	अ०	य०	,,
शनि	शु०	का०	प०	धू०	अ०	य०	को०	,,

संकेत: का०=काल; प०=परिधि; अ०=अर्द्ध प्रहर; य०=यमघंटक; को०=कोदण्ड; गु०–गुलिक; निरीश=जिसका कोई स्वामी नहीं।

रात्रि में काल, परिधि आदि का ज्ञान

रात्रि	१ खं०	२ खं०	३ खं०	४ खं०	५ खं०	६ खं०	७ खं०	८ खं०
रवि	य०	को०	गु०	का०	प०	धू०	अ०	निरीश
सोम	को०	गु०	का०	प०	धू०	अ०	य०	,,
मंगल	गु०	का०	प०	धू०	अ०	य०	को०	,,
बुध	का०	प०	धू०	अ०	य०	को०	गु०	,,
बृह०	प०	धू०	अ०	य०	को०	गु०	का०	,,
शुक्र	धू०	अ०	य०	को०	गु०	का०	प०	,,
शनि	अ०	य०	को०	गु०	का०	प०	धू०	,,

इनके अतिरिक्त पराशर ने (देखिए बृहत्पाराशर पूर्वार्द्ध का अध्याय २) धूम आदि अप्रकाश ग्रह संज्ञा से धूम, व्यतीपात, परिवेष, इन्द्रधनु, ध्वज—इन पाँच की चर्चा और की है।

नखलिप्ताधिके धूमे कृतिलिप्ता विहीनका:।
केतौ कार्या गुरोर्वाक्यादृक्षपादावसानका:॥
चत्वारो राशयो भानौ युक्तं भागास्त्रयोदश।
धूमो नाम महादोष: सर्वकर्मविनाशक:॥
धूमो मण्डलत: शुद्धो व्यतीपातोऽत्र दोषद:।
स षड्भेऽत्र व्यतीपाते परिवेषस्तु दोषकृत्॥
परिवेषश्च्युतश्चक्रादिंद्रचापश्च दोषद:।
अत्यष्ट्यंशयुते चापे केतुखेटो परं विषम्॥
एकराशियुते केतौ सूर्य: स्यात् पूर्ववत्सम:।
अप्रकाशग्रहाश्चैते दोषा: पापग्रहा: स्मृता:॥

यहां धूम, व्यतीपात आदि गणित का आधार सूर्य स्पष्ट है। सूर्य स्पष्ट में ४ राशि, १३ अंश, २० कला जोड़ने से धूम होता है। धूम स्पष्ट को १२ राशियों में कम कीजिये, व्यतीपात स्पष्ट होगा। व्यतीपात स्पष्ट में ६ राशि जोड़िये परिवेष स्पष्ट होगा। परिवेष स्पष्ट को १२ राशियों में कम कीजिए, इन्द्रचाप स्पष्ट होगा। इन्द्रचाप में १६ अंश, ४० कला जोड़िये, ध्वज स्पष्ट होगा। ध्वज स्पष्ट में एक राशि जोड़िये, जो सूर्य स्पष्ट है, वही आ जावेगा। भावार्थबोधिनी फलदीपिका पृष्ठ ६००-६०५ में उदाहरण सहित समझाया गया है। अवलोकन करें॥ ५-६॥

ग्रहों के वर्ण (स्वरूप)

भानु: श्यामललोहितद्युतितनुश्चन्द्र: सिताङ्गो युवा
दूर्वाश्यामलकान्तिरिन्दुतनय: संरक्तगौर: कुज:।
मन्त्री गौरकलेवर: सिततनु: शुक्रोऽसिताङ्ग: शनि-
रानीलाकृतिदेहवानहिपति: केतुर्विचित्रद्युति:॥ ७॥

इसमें ग्रहों का वर्ण (रंग) बताया है। सूर्य रक्तश्याम है। इसका अर्थ श्यामरक्तमिश्रित कान्ति वाला नहीं है। रुद्रभट्ट इसकी टीका में लिखते हैं, 'उच्चे रक्त: नीचे श्याम:' अर्थात् ऊपर लाल नीचे श्याम। चन्द्रमा सफेद (सित) शरीर वाला युवा है। बुध का रंग दूर्वा (दूब की तरह) श्याम है। मंगल रक्त-गौर है। रुद्रभट्ट लिखते हैं, 'उच्चे रक्त: नीचे गौर:'—ऊपर लाल नीचे गौरवर्ण।

बृहस्पति गौर शरीर है। शुक्र सित (सफेद) शरीर का है। बृहज्जातक में शुक्र को 'श्यामः शुक्रो' कहा है। शनि असित (कृष्ण वर्ण) है। राहु का अतिनील वर्ण है। केतु विचित्रद्युति वाला अर्थात् अनेक वर्ण मिश्रित शरीर वाला है। जन्मकुंडली या प्रश्नकुण्डली में लग्नस्थ या बलवान् ग्रह से रंग का निर्णय किया जाता है। यही रंग बताने का प्रयोजन है। ७।

ग्रहों का शुभाशुभत्वादिनिरूपण

प्रकाशकौ शीतकरप्रभाकरौ
ताराग्रहाः पञ्च धरासुतादयः।
तमःस्वरूपौ शिखिसिंहिकासुतौ
शुभाः शशिज्ञामरवन्द्यभार्गवाः ॥ ८ ॥
क्षीणेन्दुमन्दरविराहुशिखिक्षमाजाः
पापस्तु पापयुतचन्द्रसुतश्च पापः।
तेषामतीव शुभदौ गुरुदानवेज्यौ
क्रूरौ दिवाकरसुतक्षितिजौ भवेताम् ॥ ९ ॥
शुक्लादिरात्रिदशकेऽहनि मध्यवीर्य
शाली द्वितीयदशकेऽतिशुभप्रदोऽसौ।
चन्द्रस्तृतीयदशके बलवर्जितस्तु
सौम्येक्षणाविसहितो यदि शोभनः स्यात् ॥ १० ॥

चन्द्रमा और सूर्य ये दो प्रकाश करने वाले ग्रह हैं। मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ताराग्रह हैं। राहु और केतु अंधकार स्वरूप हैं।

चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र शुभग्रह हैं। क्षीण चन्द्रमा, शनि, सूर्य, राहु, मंगल पापग्रह हैं। पापग्रह के साथ बैठा हुआ बुध पाप है। इनमें बृहस्पति और शुक्र अत्यन्त शुभ हैं। शनि और मंगल (देहली-दीपकन्याय से अतीव) क्रूर है। शुक्ल पक्ष के प्रारंभ के १० दिन में चन्द्रमा मध्य बली होता है। बाद के १० दिन में (शुक्ल पक्ष की दशमी से कृष्ण पक्ष की पंचमी तक) अति शुभप्रद (पूर्ण बली) होता है। बाद के १० दिन में (कृष्ण पक्ष की पंचमी से अमावस्या तक) चन्द्रमा बलहीन होता है किन्तु शुभग्रह के साथ या शुभग्रह से दृष्ट चन्द्रमा हो तो शोभन (अच्छा) होता है।

यह इन श्लोकों का शब्दार्थ है। अब व्याख्या की जाती है। वैसे तो सातों ग्रहों में (राहु केतु में नहीं) प्रकाश होता है, अन्यथा वह रात्रि में दृष्टिगोचर कैसे होते? परन्तु सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश पृथ्वी पर प्रकट रूप से

दृष्टिगोचर होता है, जिसे धूप और चाँदनी कहते हैं, इस कारण सूर्य और चन्द्रमा को प्रकाशक कहा है। चन्द्रमा जब अपने मार्ग में पृथ्वी के परिभ्रमण मार्ग (भचक्र) को काटता हुआ उत्तर को जाता है, तब पृथ्वी के मार्ग को जहाँ काटता है उसे राहु और जहाँ उस मार्ग को काटता हुआ दक्षिण को जाता है, उसे केतु कहते हैं। राहु, केतु का न शरीर है, न पिंड, न परिमाण, न वज़न। यह बिन्दु मात्र है। इसीलिए इन्हें अन्धकारस्वरूप कहा है; क्योंकि जब पिंड ही नहीं तो प्रकाश किस में होगा। एक मत से केवल क्षीण चन्द्र (कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी और अमावस्या का चन्द्र) पाप है। सूर्य यदि उच्चराशि का या स्वराशि का हो तो केवल क्रूर होता है, पाप नहीं। सूर्य की अपेक्षा मंगल पाप है; मंगल की अपेक्षा शनि अधिक।

वराहमिहिर ने अध्याय २ श्लोक ५ में कहा है "क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः"। यही मत अन्य आचार्यों ने अपनाया है। क्षीण चन्द्र की परिभाषा रुद्रभट्ट के मतानुसार ऊपर दी जा चुकी है, किन्तु भट्टोत्पल कृष्ण पक्ष की अष्टमी के आधे भाग से शुक्ल पक्ष की अष्टमी के आधे भाग तक चन्द्रमा को क्षीण मानते हैं और शुक्ल पक्ष की अष्टमी के आधे भाग से कृष्ण पक्ष की अष्टमी के आधे भाग तक पूर्ण अर्थात् जब कृष्ण पक्ष में सूर्य से २७०° पर चन्द्रमा आ जाये और शुक्ल पक्ष में सूर्य से ९० अंश तक रहे तब तक क्षीण चन्द्र, बाकी में पूर्ण चन्द्र। यह विचार चन्द्रमा के साधारण शुभाशुभत्व विचार के लिये है। किन्तु वही भट्टोत्पल कहते हैं कि आयुर्दाय विचार में—केवल कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के बाद अमावस्या के अन्त तक क्षीण चन्द्र मानना।

'कृष्णाष्टम्यार्द्धच्छुक्लाष्टम्यर्द्ध यावत् क्षीणश्चन्द्रः परतः पूर्ण आयुर्दायविधौ कृष्णपक्षत्रयोदश्यांतात्प्रभृति यावदमावास्यान्ते सूर्यमण्डलान्निोद्‌गतस्तावत् क्षीण ति।

किन्तु यवनेश्वर चन्द्रमा को कभी भी पाप नहीं मानते। सदैव शुभ ही मानते हैं। कहते हैं :—

मासे तु शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्तेराद्ये शशी मध्यबलो दशाहे।
श्रेष्ठो द्वितीयेऽल्पबलस्तृतीये सौम्यैस्तु दृष्टो बलवान्सदैव॥

जातकपारिजातकार ने चन्द्रमा के शुभत्व, पापत्व निरूपण में श्लोक ९ में वराहमिहिर का मत और श्लोक १० में यवनेश्वर का मत दे दिया है।

बुध के विषय में कहते हैं :—

क्रूरग्रहोर्कः कुजसूर्यजौ च पापौ शुभाः शुक्रशशांकजीवाः।
सौम्यस्तु सौम्यो व्यतिमिश्रितोऽन्यैर्वर्गैस्तु तुल्यप्रकृतित्वमेति॥

ग्रहों के शुभत्व तथा पापत्व निरूपण का प्रयोजन क्या ? जन्म-कुण्डली में पापग्रह बलवान् हों तो जातक पापात्मक होता है; शुभ ग्रह बलवान् हो तो सौम्य स्वभाव ।

सप्तम भाव के शुभत्व पापत्व से जातक की पत्नी की प्रकृति स्वभाव आदि का पता चलता है । दशम भाव से यह ज्ञात होता है कि जातक शुभकर्मा होगा या पापकर्मा । एकादश भाव से पता चलता है कि शुभ मार्ग से आय होगी या पाप मार्ग से । बारहवें घर से यह निश्चित होता है कि शुभ मार्ग में धन व्यय होगा या पाप मार्ग में । शुभ ग्रह जिस भाव में बैठते हैं, या जिस भाव को देखते हैं, उस भाव सम्बन्धी शुभ फल की वृद्धि करते हैं । पाप ग्रह जिस भाव में बैठते हैं, उस भाव सम्बन्धी क्लेश को बढ़ाते हैं । आगे शुभ और पाप का वारंवार उल्लेख आयेगा । इसलिए नैसर्गिक शुभग्रह कौन, पाप ग्रह कौन यह यहाँ अच्छी तरह समझ लेना चाहिए । शुभत्व दो प्रकार का होता है—एक तो नैसर्गिक जैसे बृहस्पति और शुक्र । दूसरा शुभत्व भावाधीश वश होता है, जैसे लग्नेश, पंचमेश, नवमेश शुभ । इसी प्रकार पापत्व दो अर्थों में आता है । एक तो नैसर्गिक—जैसे मंगल, शनि पापी । दूसरा भावाधीशवश—जैसे षष्ठेश, अष्टमेश पापी । इन श्लोकों में नैसर्गिक शुभत्व, पापत्व का विवेचन किया गया है । भावाधीशता के कारण नहीं ॥ ८-१० ॥

ग्रहों का उदय प्रकार

रव्यारराहुमन्दाश्च पृष्ठेनोद्यन्ति सर्वदा ।
शिरसा शुक्रचन्द्रज्ञा जीवस्तूभयतो व्रजेत् ॥ ११ ॥

अध्याय १, श्लोक १४ में राशियों की शीर्षोदय, पृष्ठोदय, उभयोदय संज्ञा कही है । अब ग्रहों को इन भागों में बाँटते हैं ।

(i) सूर्य, मंगल, राहु, शनि पृष्ठोदय हैं । (ii) शुक्र, चन्द्रमा तथा बुध शीर्षोदय हैं । (iii) बृहस्पति उभयोदय है ।

शीर्षोदय आदि का भेद राशियों के सन्दर्भ में कह चुके हैं । इसलिए पुनः व्याख्या नहीं की जा रही है ॥११ ॥

ग्रहों का स्वरूप

दिवाकरज्ञौ विहगस्वरूपौ सरीसृपाकारयुतः शशाङ्कः ।
पुरन्दराचार्यसितौ द्विपादौ चतुष्पदौ भानुसुतक्षमाजौ ॥ १२ ॥

सूर्य और बुध का पक्षियों के सदृश स्वरूप है । चन्द्रमा सरीसृप सदृश है । सरीसृप कुटिल गति से रेंगने वाले कीड़े को कहते हैं, यथा बिच्छू, सांप । बृहस्पति

तथा शुक्र द्विपद (दो पैर वाले यथा मनुष्य) हैं। मंगल और शनि चतुष्पद (चौपाये) हैं। श्लोक २६ की टीका भी देखें ॥ १२ ॥

ग्रहों के संचार देश

जन्वाशयौ चन्द्रसुरारिवन्द्यौ बुधालयग्रामचरौ गुरुज्ञौ।
कुजाहिमन्दध्वजवासरेशा भवन्ति शैलाटविसञ्चरन्तः ॥ १३ ॥

अब ग्रहों के संचार स्थान (जहाँ वे चलते हैं) कहते हैं। शुक्र और चन्द्रमा जल में या जल के पास संचार करते हैं। बृहस्पति और बुध पंडितों के घरों में रहते हैं। मंगल, राहु, शनि, केतु पर्वत और वनों में भ्रमण करते हैं।

ग्रहों की वय

बालो धराजः शशिजः कुमारस्त्रिंशद्गुरुः षोडशवत्सरःसितः।
पञ्चाशदर्को विधुरब्दसप्ततिः शताब्दसङ्ख्याः शनिराहुकेतवः ॥ १४ ॥

मंगल बाल (बच्चा) है, बुध कुमार (थोड़ी उम्र का लड़का) है। बृहस्पति ३० वर्ष का, शुक्र १६ साल का, सूर्य ५० वर्ष का, चन्द्रमा ७० साल का और शनि, राहु तथा केतु १०० वर्ष के हैं।

शुक जातक में लिखा है :—

बालवयस्को भौमः कुमारवेषो बुधो गुर्स्त्रिशत्।
शुक्रः षोडशवर्षो रविश्च पंचाशवब्दश्च ॥
चन्द्रः सप्ततिवर्षः शतवर्षः शनिराहुकेतोः स्यात्।
येषां प्रसूतिसमये सबसत्फलदायकः खेटः ॥
बलसहितः स्वावस्था कालस्वरूपं विशेषतः कुर्यात्।

अर्थात् अपनी-अपनी अवस्था में ग्रह अपना-अपना फल करते हैं।

पाश्चात्य ज्योतिष के अनुसार जातक पर ४ वर्ष की उम्र तक चन्द्रमा का अधिकार; ४ से १४ तक बुध; १४ से २२ तक शुक्र; २२ से ४१ तक सूर्य; ४१ से ५६ तक मंगल; ५६ से ६८ तक बृहस्पति; ६८ के बाद शनि का विशेष प्रभाव। इसका उपयोग कैसे करना? मान लीजिए जन्मकुण्डली में मंगल खराब पड़ा है, बृहस्पति अच्छा है। तो ४१ से ५६ वर्ष तक की उम्र अच्छी नहीं जायेगी। ५६ से ६८ वर्ष तक का समय अभ्युदय कारक है। किसी ग्रह का सर्वांगीण विचार कर यह निश्चय करना चाहिए कि वह शुभ फल करेगा या अशुभ।

ग्रहों का शाखाधिपत्य तथा धातु, मूलादि संज्ञा

शाखाधिपा जीवसितारबोधना धातुस्वरूपद्युचरौ कुजारुणौ।
मूलप्रधानौ तुहिनाकरार्कजौ जीवौ सितार्यौ तु विमिश्र इन्दुजः ॥ १५ ॥

(i) ऋग्वेद का अधिपति बृहस्पति है, यजुर्वेद का शुक्र, सामवेद का मंगल तथा अथर्ववेद का बुध । प्रयोजन यह है कि ब्राह्मण की कुण्डली में यह देखना कि ग्रह के बलानुसार वह किस वेद में निष्णात होगा। उपनयन—वेदारंभ के समय सम्बन्धित ग्रह जब बली हो तब उसके वार तथा होरा में वेदाध्ययन प्रारंभ करना। रुद्रभट्ट ने यह भी लिखा है कि यदि यह निश्चय हो जाये कि चोर ब्राह्मण है तो इससे यह भी निश्चय करना कि ऋग्वेदी है या यजुर्वेदी आदि ।

(ii) सूर्य और मंगल धातुस्वरूप हैं। चन्द्रमा और शनि मूल प्रधान हैं। बृहस्पति और शुक्र जीव हैं। बुध मिश्रित है अर्थात् धातु, मूल, जीव, तीनों है ।

पराशर के मतानुसार राहु, मंगल, शनि तथा चन्द्र धातुसंज्ञक हैं। सूर्य और शुक्र मूल ग्रह हैं, अन्य जीव हैं—

राह्वार-पङ्गु-चन्द्राश्च विज्ञेया धातुखेचराः ।
मूलग्रहौ सूर्यशुक्रावपरा जीवसंज्ञकाः ॥

कोई ग्रह यदि शुभ पड़ा हो तो धातु या मूल या जीव से लाभ कराता है। धातु से या मूल से या जीव से ? जिसका वह अधिष्ठाता है । हानि के विषय में भी इसी प्रकार समझना ॥ १४ ॥

ग्रहों की अवस्था

ग्रह किस अवस्था में है, इस पर बहुत अधिक मात्रा में उसकी शुभाशुभता निर्भर होती है। यह भी निर्भर होता है कि वह कितनी मात्रा में शुभ फल करेगा या अशुभ ।

दीप्तः प्रमुदितः स्वस्थः शान्तः शक्तः प्रपीडितः ।
दीनः खलस्तु विकलो भीतोऽवस्था दश क्रमात् ॥ १६ ॥
स्वोच्चत्रिकोणोपगतः प्रदीप्तः स्वस्थः स्वगेहे मुदितः सुहृद्भे ।
शान्तस्तु सौम्यग्रहवर्गयातः शक्तोऽतिशुद्धः स्फुटरश्मिजालैः ॥ १७ ॥
ग्रहाभिभूतस्त्वतिपीडितः स्यादरातिराश्यंशगतोऽतिदीनः ।
खलस्तु पापग्रहवर्गयोगान्नीचेऽतिभीतो विकलोऽस्तयातः ॥ १८ ॥

ग्रहों की १० अवस्था होती हैं :–(१) दीप्त, (२) प्रमुदित, (३) स्वस्थ, (४) शान्त, (५) शक्त, (६) प्रपीड़ित, (७) दीन, (८) खल,(९) विकल तथा (१०) भीत।

यदि ग्रह अपनी उच्च या मूल त्रिकोण राशि में हो तो दीप्त कहलाता है। अपनी राशि में स्थित स्वस्थ, अपने मित्र की राशि में मुदित, सौम्य (शुभ) ग्रहों के वर्ग में शान्त। जिसकी किरणें अच्छी तरह प्रकाश करें (अर्थात् अस्त न हों) और अतिशुद्ध हों (अतिशुद्ध कहने का अभिप्राय है यह नहीं कि कल परसों ही अस्तस्थिति से निवृत्त हुआ हो। कोई भी ग्रह चन्द्रमा की भांति, सूर्य से जितना अधिक दूर हो, विशेष प्रकाशमान होता है वह शक्त कहलाता है। किसी ग्रह से अभिभूत अर्थात् पराजित ग्रह की अतिपीड़ित संज्ञा होती है। जो ग्रह अपने शत्रु की राशि या नवांश में हो वह अतिदीन होता है। शत्रु की राशि तथा शत्रु का नवांश दोनों गर्हित हैं। किसी एक (शत्रुराशि या शत्रुनवांश) में हो तो निन्दित हो जाता है किन्तु यदि शत्रु की राशि, शत्रु के नवांश दोनों में हो तो अतिनिन्दित। इसका एक अपवाद है। मान लीजिये कि ग्रह जिस राशि में है, उसी नवांश में भी है। तो राशीश और नवांशेश एक ही ग्रह हुआ। अब यह राशीश नवांशेश ग्रह का शत्रु है तो दुष्ट फल उतना नहीं होगा; क्योंकि ग्रह वर्गोत्तम हो गया।
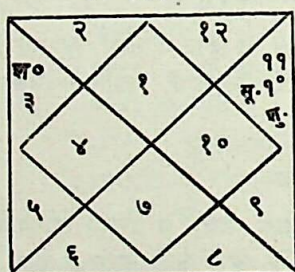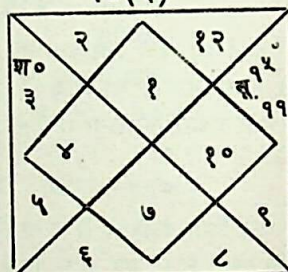
उदाहरण कुण्डली १८ (१) में सूर्य तुलानवांश, कुंभ राशि में है। तुला का स्वामी शुक्र, कुंभ का स्वामी दोनों सूर्य के शत्रु हैं, इस कारण दुष्ट फल। कुण्डली १८ (२) में सूर्य कुंभ राशि कुंभनवांश में हैं। कुंभ का स्वामी शनि सूर्य का शत्रु है, परन्तु सूर्य वर्गोत्तम है, इस कारण उतना दुष्ट फल नहीं होगा।

इसके अतिरिक्त, यह इन श्लोकों में नहीं कहा गया है किन्तु दोनों ही उदाहरण कुंडलियों में सूर्य अच्छे (लाभ) स्थान में है, अपने भाव (पंचम) को देखता है। ये दोनों गुण हैं। शनि पापग्रह है; पंचम (पुत्र) स्थान को देखता

है। यह अवगुण है। इस प्रकार अपने दृष्टिकोण को केवल श्लोकों में कही हुई बात तक ही सीमित नहीं रखना चाहिये। इस ग्रंथ में या फलितज्योतिष में जो भी, कहीं कहा गया है, वह सभी ध्यान में रख कर पर्यालोचन करना चाहिये। अस्तु। अब प्रकृत विषय पर आइये।

जो ग्रह पापवर्गों में (पाप ग्रह के वर्गों में) हो वह खल संज्ञक होता है। यदि ग्रह अपनी नीच राशि में हो तो अतिभीत (डरा हुआ) कहलाता है। अस्त (सूर्य सान्निध्य के कारण जो रात्रि में भी दिखाई न दे) ग्रह विकल संज्ञक होता है।

यहाँ ग्रह की १० अवस्था कही गई हैं। बृहत्पाराशर में केवल ९ अवस्था दी गई हैं :—(i) उच्च राशि में दीप्त, (ii) अपनी राशि में स्वस्थ, (iii) अधिमित्र ग्रह की राशि में मुदित, (iv) मित्र ग्रह की राशि में शान्त, (v) सम ग्रह (जो न मित्र हो न शत्रु हो) की राशि में दीन, (vi) शत्रु ग्रह की राशि में दुःखित, (vii) पाप ग्रह से युति होने से विकल, (viii) पाप ग्रह की राशि में स्थित होने से खल, (ix) सूर्य के साथ अर्थात् अस्त होने से कोपी। गुणा करने से केवल ८ संज्ञा कही हैं :–(i) उच्चराशि में दीप्त, (ii) स्वराशि में स्वस्थ, (iii) मित्र के घर में, शुभ वर्ग में शान्त, (iv) रश्मिपूर्ण अर्थात् पूर्ण प्रकाशमान शक्त, (v) अस्त होने से विकल, (vi) नीच राशि में दीन, (vii) पराजित ग्रह खल, (viii) ग्रह से पीड़ित (अर्थात् पाप ग्रह से युत) पीड़ित।

सारावली अध्याय ५ में ग्रह की ९ अवस्था कही गई हैं :–(i) उच्च राशि में दीप्त, (ii) अपनी राशि में स्वस्थ, (iii) मित्र की राशि में मुदित, (iv) शुभ वर्गों में शान्त, (v) स्फुट रश्मि वाला (प्रकाशमान किरण युक्त) शक्त, (vi) अस्त ग्रह विकल, (vii) ग्रहाभिभूत (ग्रह युद्ध में पराजित) पीड़ित, (viii) पाप वर्गों में खल, (ix) नीच राशि में भीत।

बृहत्पाराशर तथा सारावली में ग्रह जिस अवस्था में हो उसके अनुसार विस्तृत फल दिया गया है। उदाहरण के लिये दीप्त ग्रह का फल धराधिपत्य मदयुक्त हाथियों की सवारी इत्यादि। परन्तु सार मात्र ग्रहण करना चाहिये। अलंकार, अतिशयोक्ति, अर्थवाद से फलित ज्योतिष परिपूर्ण है। दीप्त, स्वस्थ, मुदित, शान्त तथा शक्त ग्रह का शुभ फल है। प्रपीड़ित, दीन, विकल, खल तथा भीत का दुष्ट फल है।

एक ग्रह उच्च राशि या मूल त्रिकोण राशि या स्वराशि में होकर भी अस्त, पापवर्ग तथा युद्ध में पराजित हो सकता है। इसी प्रकार नीच राशि स्थित ग्रह स्फुट रश्मियों से युक्त, स्वनवांश, शुभ ग्रहों के वर्ग में हो सकता है। इसलिए

किसी एक संज्ञा मात्र से निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिये। सर्वांगीण विचार आवश्यक है ॥ १६-१८ ॥

ग्रहों के वर्ण

वर्णास्ताम्रसितारक्तहरितापीतकर्बुराः ।
कृष्णकान्तिरिनादीनां नष्टादौ च प्रकीर्तिताः ॥ १९ ॥

पहले श्लोक ७ में ग्रहों के वर्ण (रंग) का निर्देश कर चुके हैं। अब पुनः वर्णों का निर्देश करते हैं। इसमें क्या भेद है? इस श्लोक में कैसी वस्तु नष्ट हुई या खोई यह निर्णय करने के लिए, प्रश्नकुंडली के सन्दर्भ में ग्रहों के वर्ण कहे हैं :—

सूर्य—ताम्र (तांबे का सा) वर्ण। चन्द्रमा—सफेद। मंगल—लाल। बुध—हरा। बृहस्पति—पीला। शुक्र—कर्बुर (रंग-बिरंगा, चितकबरा) शनि—काला।

ग्रहों के द्रव्य और अधिदेवत

ग्रहों के द्रव्य बताने का प्रयोजन है कि तत् तत् ग्रह जन्मकुण्डली में शुभ या अशुभ होने से तत् तत् द्रव्य का लाभ या हानि होती है। ग्रह की अरिष्ट शान्ति के लिये तत् तत् द्रव्य का धारण या दान भी श्रेयस्कर होता है।

द्रव्याणि ताम्रमणिकाञ्चनशुक्तिरौप्य-
मुक्तान्ययश्च दिननाथमुखग्रहाणाम् ।
वह्न्यम्बुषण्मुखहरीन्द्रशचीविरञ्चि-
मुख्या दिवाकरमुखादधिदेवताः स्युः ॥ २० ॥

सूर्य—ताम्र (तांबा); चन्द्रमा—मणि; मंगल—सोना; बुध—शुक्ति; बृहस्पति—चाँदी; शुक्र—मोती, शनि—लोहा।

मणि प्रायः माणिक के अर्थ में प्रयुक्त होता है। शुक्ति सीप को कहते हैं। शास्त्रान्तर से ग्रहों के रत्न और धातुओं का निर्देश कर रहे हैं।

सूर्य—माणिक तथा तांबा और सोना; चन्द्रमा—मोती तथा चाँदी; मंगल—तांबा, सोना, मूगा; बुध—पन्ना, सोना, कांसा; बृहस्पति—पुखराज, सोना; शुक्र—हीरा, चाँदी; शनि—नीलम, लोहा; राहु—गोमेद, सीसा; केतु, लहसनिया, लोहा। एक मत से सोना सभी ग्रहों के लिए प्रशस्त है। इस ग्रंथ में ग्रहों के रत्न आगे

श्लोक २१ में कहे गए हैं। हमने अन्य ग्रंथों के अनुसार ग्रहों के धातु और रत्न दोनों एक साथ यहाँ दे दिए हैं।

किस ग्रह का कौन-सा रत्न, कौन-सा धातु है इस विषय में विविध मत हैं। बृहज्जातक अध्याय २, श्लोक १० में कहा है :—

ताम्रं स्यान्मणिहेमयुक्तिरजतान्यर्काच्च मुक्तायसी।

सूर्य का तांबा, चन्द्रमा का मणि, मंगल का सोना, बुध का कांसा, बृहस्पति की चांदी, शुक्र का मोती, शनि का लोहा।

वादरायण का वचन है :—

अर्कस्य ताम्रं मणयो हिमांशोर्भौमस्य हेमेन्दुसुतस्य शुक्तिः।
जीवस्य रौप्यं स्वगृहे स्थितस्य तस्यैव हेम्नोशनसश्च मुक्ता।
तीक्ष्णांशुदेहप्रभवस्य सीसं कृष्णायसं च प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥

भट्टोत्पल लिखते हैं "प्रयोजनं सूतिकागृहे बलवद्गृहे द्रव्यसत्ताहृतनष्टादि-चिन्तायां द्रव्यनाशादिपरिज्ञानं तच्छुभदशायां तस्मिन्नुपचयस्थे तदाप्तिः उक्त-विपरीते हानिः॥

इसी श्लोक में, किस ग्रह का कौन-सा अधिदेवता है यह भी बताया गया है। प्रयोजन ? जन्मकुंडली में जो ग्रह पीड़ित हो उस ग्रह की पूजा, उपासना करने से अरिष्ट शान्ति होती है। सारावली अध्याय ३, श्लोक ४१ में लिखा है :—

जन्मोदयगृहवर्णां तदधिपतेः पूजिता प्रतिमा।
हन्ति हरेरिह शत्रूनिन्द्रध्वजिनीव देवरिपून्॥
पूर्वादिग्रहदेवांस्तन्मंत्रैः समभिपूज्य तमाशाम्।
कनकगजवाहनादीन्प्राप्नोति नृपोरितः शीघ्रम्॥

अर्थात् जिस दिशा में यात्रा करनी हो, उस दिशा के अधिदेवता की पूजा कर, यात्रा करने से समृद्धि होती है।

ग्रहों के अधिदेवता निम्नलिखित हैं :—

सूर्य—अग्नि; चन्द्रमा—जल; मंगल—कार्त्तिक स्वामी; बुध—विष्णु; बृहस्पति—इन्द्र; शुक्र—शची; शनि—ब्रह्मा।

यही अधिदेवता वराहमिहिर ने बृहज्जातक अध्याय २, श्लोक ५ में कहे हैं। इनकी व्याख्या करते हुए रुद्रभट्ट कहते हैं कि इन्द्र शब्द से 'इदि परमैश्वर्ये' इत्यस्माद्धातोर्निष्पन्नेन परमेश्वर उच्यते। अर्थात् इन्द्र से परमेश्वर समझना। आगे कहते हैं 'शचीशब्देन शक्तिविशेषवाचकेन शक्तिसामान्यलक्षणमाया मूल-प्रकृतिरुच्यते'। अर्थात् शची से मूलप्रकृति माया समझना। यहाँ सूर्य का अधिदेवता अग्नि, इसकी व्याख्या में लिखते हैं कि अग्नि से अग्नि तथा रुद्र दोनों

विवक्षित हैं। चन्द्रमा का अधिदेवता जल है, इस कारण जल की पूजा से तात्पर्य है कि धारा-शंखाभिषेकादि करना। किसका ? क्रूर क्षेत्र में शिव का, शुभ क्षेत्र में विष्णु का, युग्म राशि में दुर्गा का। मंगल के अधिदेवता अग्निज—अग्नि से उत्पन्न कार्त्तिक स्वामी हैं। अतः स्थिर राशि में हो तो घर में षष्ठीपूजन विहित है, चर राशि में हो तो स्कन्दमन्दिर में। स्कन्द, सुब्रह्मण्य आदि कार्त्तिकस्वामी के नाम हैं। दक्षिण भारत में स्कन्दपूजन का विशेष प्रचार है। इनके अनेक मन्दिर हैं। कार्त्तिक स्वामी को संक्षेप में केवल स्वामी भी कहते हैं। बृहस्पति के लिये इन्द्रपूजन में आयुष्मत्यादिदूर्वाहोम पर्यन्त का विधान है। इसके अन्तर्गत विप्र-पूजा भी है। बृहस्पति के पूजन में भी यदि क्रूर क्षेत्र में हो तो शिवपूजन, शुभ क्षेत्र में हो तो विष्णुपूजन, युग्म राशि में दुर्गापूजन, क्रूर युग्म में काली-पूजा। क्षेत्र से तात्पर्य दो राशि से है। शची शब्द से, यदि शुक्र बलहीन हो तो यक्षी, चामुण्डा आदि का पूजन करना। 'क' (ब्रह्मा—शनि का अधिदेवता) से ब्रह्मा का, ब्राह्मणों का, प्रेष्यजनों का, अन्य देवताओं का ग्रहण करना। चोरी आदि के प्रश्न में जिस ग्रह से चोर इंगित हो उस देवता सम्बन्धी नाम वाला व्यक्ति चोर है, यह भी अनुमान किया जाता है। भट्टोत्पल कहते हैं, 'तथा चौर नामानयने बलवद् ग्रहोक्तदेवतापर्यायनाम' ॥ २० ॥

ग्रहों के रत्न

माणिक्यं दिननायकस्य विमलं मुक्ताफलं शीतगो-
र्माहेयस्य च विद्रुमं मरकतं सौम्यस्य गारुत्मकम् ।
देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शनेः
नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेदवैडूर्यके ॥ २१ ॥

अब ग्रहों के रत्न कहते हैं। सूर्य का माणिक, चन्द्रमा का विमल (साफ़, उज्ज्वल, जो धब्बेदार न हो) मोती, मंगल का मूंगा, बुध का पन्ना, बृहस्पति का पुखराज, शुक्र का हीरा, शनि का नीलम, राहु का गोमेद, केतु का लहसनियाँ। हम इनका उल्लेख ऊपर श्लोक २० की व्याख्या में कर चुके हैं। प्रयोजन भी कहा जा चुका है ॥ २१ ॥

ग्रहों के वस्त्रादिनिरूपण

स्थूलाम्बरं नूतनचारुचेलं कृशानुतोयाहतमध्यमानि ।
दृढांशुकं जीर्णमिनादिकानां वस्त्राणि सर्वे मुनयो वदन्ति ॥ २२ ।
प्रागादिका भानुसितारराहुमन्देन्दुविद्देवपुरोहिताः स्युः ।
शुक्रारचन्द्रज्ञसुरेज्यमन्दा वसन्तमुख्यर्त्वधिपा दृगाणैः ॥ २३ ॥

देवतोयतटवह्निविहाराः कोशगेहशयनोत्करदेशाः ।
भानुपूर्वनिलयाः परिकल्प्या वेश्मकोणनिलयावहिकेतू ॥ २४ ॥

(१) अब किस ग्रह का सम्बन्ध किस प्रकार के वस्त्र से है वह कहते हैं :—

सूर्य का मोटा कपड़ा, चन्द्रमा का नया, सुन्दर, मंगल का जला हुआ, बुध का जलहत (गीला, या पानी पड़ने से जो खराब हो गया है), बृहस्पति का मध्यम (साधारण), शुक्र का दृढ़ (मजबूत), शनि का पुराना।

बृहज्जातक अध्याय २, श्लोक १२ में इसका उल्लेख है। वहाँ चन्द्रमा का अभुक्त (जो वस्त्र काम में न लिया गया हो, अर्थात् नवीन) कहा है। मंगल का दग्ध। इसकी टीका में भट्टोत्पल लिखते हैं, जिसका एक प्रान्त जल गया हो। बृहस्पति का मध्य। मध्य की व्याख्या में लिखते हैं न नया, न पुराना। रुद्रभट्ट कहते हैं कि ग्रह के बलानुसार भी किस कोटि का वस्त्र है, यह विचार करना यथा बलवान् बृहस्पति 'पीत वर्ण रूषित पट्ट वस्त्रादि', बलवान् शनि से 'कृष्ण वर्ण रूषित पट्टवस्त्र'। प्रसव के समय वस्त्रों का ज्ञान, चोरी आदि के प्रश्न में बलवान् ग्रह से वस्त्र ज्ञान, इसका प्रयोजन है, ऐसा रुद्रभट्ट लिखते हैं। हमारे विचार से लाभस्थान में कोई ग्रह पड़ा हो और कपड़े का व्यापारी सलाह ले कि 'कैसे वस्त्र का व्यापार करूँ ?' तो भी इससे निर्णय में सहायता मिलती है।

(२) अब ग्रहों की दिशायें कहते हैं। (१) सूर्य—पूर्व, (२) शुक्र—पूर्व-दक्षिण अर्थात् आग्नेय, (३) मंगल—दक्षिण, (४) राहु—दक्षिण-पश्चिम अर्थात् नैर्ऋत्य, (५) शनि—पश्चिम, (६) चन्द्रमा—पश्चिमोत्तर अर्थात् वायव्य, (७) बुध—उत्तर, (८) बृहस्पति—पूर्वोत्तर अर्थात् ईशान।

यह दिशा बताने का प्रयोजन क्या ? (i) जो ग्रह बलवान् हो उससे सूतिका गृह का द्वार किस दिशा में है, यह जानना। (ii) चोरी के प्रश्न में चोर किस दिशा में चुरा कर ले गया, यह ज्ञात करना। (iii) जिस दिशा में यात्रा करना है, उस दिशा के अधिदेवता का पूजन करना। (iv) बली ग्रह अपनी दिशा में लाभ कराता है। सारावली अध्याय ५, श्लोक ३६ में कहा है :—

आशाबलसमुपेतो नयति स्वदिशं नभश्चरः पुरुषम् ।
नीत्वा वस्त्रविभूषणवाहनसौख्यान्वितं कुरुते ॥

(३) अब किस ग्रह से कौन सी ऋतु समझना यह कहते हैं :—

(१) वसन्त—शुक्र, (२) ग्रीष्म—मंगल, (३) वर्षा—चन्द्र, (४) शरद्—बुध (५) हेमन्त—बृहस्पति (६) शिशिर—शनि।

अन्य आचार्यों ने सूर्य की भी ग्रीष्म ऋतु कही है। नष्टजातकप्रकरण में कहा है, 'ग्रीष्मोऽर्कलग्नेति'। फलादेश में जैसे ग्रह की राशि, नक्षत्र, काल, होरा

आदि का उपयोग किया जाता है, वैसे ही ऋतु का भी। लग्न में कोई ग्रह न हो तो द्रेष्काण से विचार करना।

(४) अब ग्रहों के स्थान कहते हैं :—सूर्य—देवालय (मन्दिर); चन्द्रमा—जलाशय; मंगल—अग्निस्थान; बुध—विहार (आमोद-प्रमोद) का स्थान; बृहस्पति—कोश (जहाँ द्रव्य रखा जाता हो, खजाना, बैंक, घर में जहाँ द्रव्य रखा जाता हो); शुक्र—शयनागार (जहाँ स्त्रियों के साथ केलि की जाती हो); शनि—जहाँ कूड़ा-करकट फेंका जाता हो। जातकादेशमार्ग में, अष्टकवर्ग प्रकरण में, किसी ग्रह के अष्टकवर्ग में किस दिशा में अधिक या कम रेखा हैं—इस विचार से घर में किस दिशा में पाकशाला, शयनागार आदि बनाना, इसका सुन्दर निर्देश है। पाठक अवलोकन करें।

रुद्रभट्ट लिखते हैं कि चन्द्रमा की राशि तथा बल के अनुसार निश्चय करे कि समुद्र, नदी, बावड़ी, कुआँ या नाली किस प्रकार का जलाशय। इसी प्रकार अग्निस्थान—श्रौतस्मार्तादि के लिए हवन की अग्नि है, या रसोई की या श्मशान की यह निश्चय करे। हमारे विचार से जहाँ एक ग्रह से एक ही प्रकार की वस्तुओं का निर्देश हो—वहाँ उत्तम, मध्यम, अधम किस प्रकार की वस्तु है, इसका निर्णय ग्रह के बलाबलानुसार करना—यह ज्योतिष का मूल सिद्धान्त है।

स्थान का निर्देश चोरी गई वस्तु या चोर के स्थान का पता लगाने में सहायक होता है।। २२-२४ ।।

ग्रहों के प्रदेश विभाग

लङ्कादिकृष्णासरिदन्तमारः
सितस्ततो गौतमिकान्तभूमिः ।
विन्ध्यान्तमार्यः सुरनिम्नगान्तं
बुधः शनिः स्यात्तुहिनाचलान्तः ।। २५ ।।

इस श्लोक में प्रत्येक ग्रह का किस प्रदेश से सम्बन्ध है या किस प्रदेश पर अधिकार है, यह कहते हैं। इस श्लोक में मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि के प्रदेशों का उल्लेख है :—

(१) मंगल—लंका से कृष्णा नदी के अन्त तक। (२) बुध—विंध्याचल से गौतमी तक (३) बृहस्पति—गौतमी से विंध्याचल तक। (४) शुक्र—कृष्णा नदी से गौतमी नदी तक। (५) शनि—गंगा से हिमाचल तक।

इस श्लोक से प्रतीत होता है कि ग्रंथकार को दक्षिण भारत के सम्बन्ध में विशेष जानकारी थी, उत्तर भारत के विषय में कम। सूर्य चन्द्र के कोई प्रदेश

ही पृथक् नहीं दिए हैं। ऊपर श्लोक २४ में 'देवतोयतट' कह कर सामान्य निर्देश कर दिया है।

ग्रहों के प्रदेशों का निर्देश ज्योतिष में दो विचारों के लिए विशेष उपयोगी होता है। एक तो यह कि जन्मकुंडली में जो ग्रह बली हो, उस देश में या उस देश से संबंधित कार्य और व्यापार में लाभ हो। जो ग्रह जन्मकुंडली में निर्बल हो उससे सम्बन्धित देश में या उस देश से सम्बन्धित कार्य या व्यापार में हानि हो। दूसरा प्रयोजन यह कि जब कोई ग्रह नीच, अस्तंगत, ग्रह युद्ध में पराजित, सूर्य चन्द्र ग्रहण के समय या अन्य किसी कारण से पीड़ित हो तो उस प्रदेश में चोर, दस्युओं का उपद्रव, लड़ाई आदि से रक्तपात, अतिवृष्टि या अनावृष्टि से फसल नष्ट होना, राज्यक्रान्ति आदि विप्लवों से कष्ट हो। बृहत्संहिता में वराह-मिहिर ने पचासों जनपदों और जनपदवासियों का उल्लेख किया है; यथा—सुह्मजनाः, अपरान्ता जना, सिंहपुरकाः, कुक्कुराः, कोटिवर्षाः, शूलिकाः, प्रत्यन्ताः, जांगलाः, आवगाणाः, माण्डव्याः, उज्जिहानाः, गौरग्रीवाः इत्यादि इत्यादि। इन पचासों में किन्हीं-किन्हीं का तो नाम भी अब सुनाई नहीं देता। किस ग्रह के पीड़ित होने से किस प्रदेश में उपद्रव या पीड़ा होती है, इसके लिए पाठक बृहत्संहिता का अवलोकन करें॥ २५ ॥

ग्रहों की जाति और गुण

विप्रौ जीवसितौ दिनेशरुधिरौ भूपालकौ वैश्यराड्
इन्दुः शूद्रकुलाधिपः शशिसुतो मन्दोऽवराणां पतिः।
आदित्यामरमन्त्रिशीतकिरणाः सत्त्वप्रधानग्रहाः
शुक्रज्ञौ सरजोगुणौ शनिधरापुत्रौ तमःस्वामिनौ॥ २६ ॥

बृहस्पति और शुक्र ब्राह्मण हैं। सूर्य तथा मंगल क्षत्रिय हैं। वैश्यों का स्वामी चन्द्रमा है। शूद्रकुल का स्वामी बुध है। इनसे हीन अर्थात् चारों वर्णों से निकृष्ट (अंत्यजों) का स्वामी शनि है। परन्तु पराशर के मत से चन्द्रमा और बुध दोनों वैश्य हैं, शनि शूद्र।

गुरुशुक्रौ विप्रवर्णौ कुजार्कौ क्षत्रियौ द्विज।
शशिसौम्यौ वैश्यवर्णौ शनिः शूद्रो द्विजोत्तम॥

बृहज्जातक के मत को लेकर, जातकपारिजातकार ने अपना मत दिया है। जातकपारिजात में शनि को 'अवर' जाति का अधिपति कहा है। किसी-किसी पुस्तक में 'मन्दोऽवराणां पतिः' के स्थान में 'मन्दोऽन्त्यजानां पतिः' यह भी पाठ है। इसी प्रकार बृहज्जातक की किसी पुस्तक में 'असितोऽन्तराणाम्'यह पाठ है,

किसी में 'असितोऽन्त्यजानाम् ।' रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं कि यदि शनि बलवान् हो तो ब्राह्मण क्षत्रिय से उत्पन्न संकर जाति देवपार्षद आदि समझना। यदि शनि मध्यम बली हो तो क्षत्रिय वैश्य से उत्पन्न संकर जाति फल्लात आदि। यदि शनि हीन बली हो अर्थात् नीच राशि या शत्रु राशि में हो तो चाण्डाल आदि समझना। इसी प्रकार, शनि की तरह, राहु तथा केतु से समझना। कृष्णीय में कहा है कि ब्राह्मण वृहस्पति तथा शुक्र हैं। सूर्य और मंगल क्षत्रिय, चन्द्रमा और बुध वैश्य। शनि शूद्र और संकर जाति का द्योतक है।

विप्रौ भृगुजेन्द्रगुरू क्षत्रियभावौ दिवाकरोर्वीजौ।
वैश्यौ बुधचन्द्रमसौ शनैश्चरः शूद्रसंकरकृत्॥

रुद्रभट्ट कहते हैं कि बृहज्जातक में 'शुक्रगुरु' कहा, इसलिए शुक्र से मध्यम ब्राह्मण, गुरु से उत्तम ब्राह्मण। जैसी राशि में ग्रह बैठा हो और जिन अन्य ग्रहों से सम्बन्ध करता हो, उनसे भी तत् तत् जाति में श्रेणी, किस प्रकार का गुण विशिष्ट या अवगुण युक्त यह ऊहापोह करना चाहिए। 'कुजार्कौ' वराह मिहिर ने कहा, इसलिए मंगल से मांडलिक (छोटी रियासत का राजा), सूर्य से सार्वभौम (सम्राट्) समझना। रुद्रभट्ट पुनः कहते हैं कि जातिविभाग निर्देश से सामादि उपायों का भी निर्देश किया है। शुक्र गुरु ब्राह्मण हैं अतः साम (समझाना) इनका उपाय है। सूर्य मंगल क्षत्रिय हैं, इनका उपाय दण्ड है। चन्द्रमा वैश्य है, इसका उपाय दान है। बुध और शनि को उपाय भेद है क्योंकि ये अन्त्यवर्ण के अधिष्ठाता हैं। संग्राम विजय में कहा है :—

साम्नो भृग्वङ्गिरसौ दण्डाधीशौ दिवाकरोर्वीजौ।
दानाधिपः शशांको भेदस्य बुधार्कपुत्रौ च॥

ग्रहों के साम, दण्ड, दान, भेद आदि उपायों के अधिष्ठाता होने के निर्देश का प्रयोजन क्या? कोई व्यक्ति आपके पास जन्मकुंडली लेकर आता है कि उस का अमुक व्यक्ति से झगड़ा चल रहा है, अब वह उसको समझा कर काम निकाले (साम), या फौजदारी मुकदमा करके (दण्ड), या पैसा देकर (दान) या चालाकी (भेद) से? तो अब जिस ग्रह की दशा, अन्तर्दशा चल रही है, षष्ठ स्थान से सम्बन्धित जो ग्रह हैं, जातक की कुण्डली में कौन-से ग्रह बलवान् हैं, इनकी समीक्षा कर उसे उपाय बताइए।

ग्रहों को चार विभागों में विभाजित करने से यह भी बोध होता है कि बृहस्पति और शुक्र द्विपद (दो पैर वाले) हैं, सूर्य और मंगल चतुष्पद (चौपाये), चन्द्रमा सरीसृप (रेंगने वाला) तथा बुध और शनि पक्षी। कृष्णीय में कहा है:—

सूर्यात्मजेन्दुपुत्रौ पक्षिसमानौ सरीसृपश्चन्द्रः ।
द्विपदौ भृगुदेवगुरू चतुष्पदौ भूमिपुत्रार्कौ ॥

भट्टोत्पल कहते हैं कि ग्रहों की जाति निर्देश का प्रयोजन क्या ? चोरी गई या नष्ट वस्तु के सम्बन्ध में यह पता लगाना कि किस वर्ण का चोर है, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि ? जब जो ग्रह आकाश में पीड़ित होता है, तब उस ग्रह सम्बन्धी जाति वाले पृथ्वी में पीड़ित होते हैं यह दूसरा प्रयोजन है। आपकी कुण्डली में जो ग्रह लाभ करने वाला है, उस जाति के व्यक्ति या व्यक्तियों से लाभ होता है। जो ग्रह हानिकारक है उस वर्ण के व्यक्ति से हानि होती है। बली ग्रह (विशेषकर यदि वह चतुर्थ या एकादश में बैठा हो या उसका स्वामी हो) से सम्बन्धित जाति वाले से मित्रता होती है। हानिप्रद ग्रह की जाति वाले से हानि होती है। षष्ठ या षष्ठेश मे सम्बन्धित ग्रह वाले व्यक्तियों से शत्रुता होती है, यह ग्रहों की जाति निर्देश के अन्य प्रयोजन हैं। यही भट्टोत्पल कहते हैं और अपनी टीका में एक प्राचीन श्लोक उद्धृत करते हैं :—

अजये जयेथ तुष्टावप्रीतौ वित्तनाशने लाभे ।
तेभ्यस्तेभ्यः कुर्यु र्गुणांश्च दोषांश्च पक्षांस्तान् ॥

अब ग्रहों के सात्त्विक, राजसिक आदि गुण कहते हैं। सात्त्विक, राजसिक, तामसिक भोजन, प्रकृति, लक्षण आदि श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १४, १६, १७ में विस्तार से कहे गए हैं। पाठक वहाँ अवलोकन करें।

सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति सत्त्वगुणसूचक हैं "सात्त्विकं शौचमास्तिक्यं शुभ-कर्मरतिर्मतिः"। बुध और शुक्र रजोगुणसूचक हैं :— 'राजसं बहुभाषित्वं मानक्रुद्दम्भमत्सराः'। मंगल और शनि तमोगुणसूचक हैं :—'तामसं भयम-ज्ञानं निद्रालस्यं विषादिता"।

वराहमिहिर ने स्वल्पजातक (इसे लघुजातक भी कहते हैं) में लिखा है कि सूर्य जिस ग्रह के त्रिशांश में हो उस ग्रह के अनुसार जातक में सत्त्वगुण, रजोगुण या तमोगुण की प्रधानता होती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक जीवधारी में सात्त्विक, राजसिक, तामसिक तीनों गुण होते हैं। बिना तीनों गुणों के प्रकृति टिक नहीं सकती। केवल किस प्रकार का गुण सर्वोपरि विशेष है यह निश्चय किया जा सकता है।

वराहमिहिर ने कहा है कि सूर्य जिसके त्रिशांश में हो उसके अनुसार सात्त्विक आदि गुण की विशेषता होती है, किन्तु देवकीर्ति कहते हैं कि जन्म-कुण्डली में जो ग्रह बली हों उनके अनुसार गुण का निश्चय करना। यवन-मतानुसार मंगल सत्त्वगुणी है; किन्तु सब प्राचीन ग्रंथकारों ने सत्याचार्य का ही

मत माना है कि मंगल तामसिक है। प्रत्यक्ष अनुभव में भी यही आता है। संक्षेप में तीनों गुणों के लक्षण निम्नलिखित हैं :—

यः सात्त्विकस्तस्य दयास्थिरत्वं सत्यार्जवं ब्राह्मणदेवभक्तिः।
रजोऽधिकः काव्यकलाक्रतुस्त्रीसंसक्तचित्तः पुरुषोऽतिशूरः॥
तमोधिकः वञ्चयिता परेषां मूर्खोऽलसः क्रोधपरोऽतिनिद्रः।
अब आगे ग्रहों की नरादि संज्ञा तथा महाभूताधिपत्य कहते हैं॥ २६॥

ग्रहों की नरादि संज्ञा तथा महाभूताधिपत्य

नराकारा भानुक्षितिजगुरवः शुक्रशशिनौ
वधूरूपौ षण्ढप्रकृतिपुरुषौ मन्दशशिजौ।
वियत्क्षोणीतेजपवनपयसामेव पतयः
सुराचार्यज्ञारद्युमणिसुतदेवारिसचिवाः॥ २७॥

सूर्य, मंगल तथा बृहस्पति पुरुष ग्रह हैं। चन्द्रमा और शुक्र स्त्री ग्रह हैं। बुध और शनि नपुंसक हैं। रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं कि बुध स्त्रीनपुंसक है, शनि पुरुषनपुंसक है। स्त्रीनपुंसक वह होता है, जिसका गुह्य अंग स्त्री के अंग के सदृश न हो किन्तु अन्य अंगों का—स्तनादि का आविर्भाव स्त्री के सदृश हो। पुरुषनपुंसक वह होता है जिसका गुह्य पुरुष के अंग के सदृश न हो किन्तु अन्य लक्षण मूंछ आदि पुरुष सदृश हों। कहा भी है :—

चन्द्रशुक्रौ स्त्रियौ ज्ञेयाविन्दुजः स्त्रीनपुंसकः।
पुमांसः कुजजीवार्का रविजः पुन्नपुंसकः॥

यहाँ राहु तथा केतु की पुरुष, स्त्री संज्ञा नहीं दी गई है। किन्तु फलदीपिका अध्याय २, श्लोक २७ में कहा है कि राहु स्त्रीग्रह है, केतु नपुंसक। रुद्रभट्ट कहते हैं कि सूर्य, मंगल, बृहस्पति पुरुष हैं, इससे यह समझना कि सूर्य पिता, मंगल भ्राता और बृहस्पति पुत्र है। चन्द्रमा और शुक्र स्त्री हैं, इससे यह भी समझना कि चन्द्रमा माता, शुक्र पत्नी है।

पंच महाभूत होते हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश। ग्रहों और महाभूतों का सम्बन्ध निम्नलिखित है।

(I) पृथ्वी—बुध, (ii) जल—शुक्र, (iii) तेज—मंगल, (iv) वायु—शनि, (v) आकाश—बृहस्पति।

भट्टोत्पल लिखते हैं कि इसका प्रयोजन यह है कि जब जिस ग्रह की महादशा होती है तब उस ग्रह की छाया जातक पर रहती है, जैसा बृहज्जातक अध्याय ८ में कहा है :

छायां महाभूतकृतां च सर्वेऽभिव्यञ्जयन्ति स्वदशामवाप्य ।
क्ष्मम्ब्वग्निवाय्वम्बरजान् गुणांश्च नासास्य दृक्त्वक्छ्रवणानुमेयात् ॥

किस ग्रह की कैसी छाया होती है ? वाहट ने कहा है :

खादीनां पञ्च पञ्चानां छाया विविधलक्षणाः ।
नाभसी निर्मला नीला सस्नेहा सप्रभेव च ॥
वातजा रुधिरा श्यामा भस्मरूक्षा हतप्रभा ।
विशुद्धरक्ता त्वाग्नेयी दीप्ताभा दर्शनप्रिया ॥
शुद्धवैडूर्यविमला सुस्निग्धा तोयजा शुभा ।
स्थिरा स्निग्धा घनश्यामा शुद्धा श्वेता च पार्थिवी ॥

वराहमिहिर ने भी बृहत्संहिता में छायालक्षण दिया है :—

छाया शुभाशुभफलानि निवेदयन्ती
लक्ष्म्या मनुष्यपशुपक्षिषु लक्षणज्ञैः ।
तेजोगुणान् बहिरपि प्रतिभासयन्ती
दीपप्रभा स्फटिकरत्नघटस्थितेव ॥

स्निग्धद्विजत्वङ्नखरोमकेशच्छाया सुगन्धाथ मही समुत्था ।
तुष्ट्यर्थलाभाभ्युदयान् तनोति करोति चाहन्यहनि प्रवृद्धिम् ॥

स्निग्धा सिता सहरिता नयनाभिरामा
सौभाग्यमार्दवसुखाभ्युदयान् करोति ।
सर्वार्थसिद्धिजननी जननीव चाप्या
छायां शुभां तनुभृतां फलमादधाति ॥

चण्डा धृष्या पद्महेमाग्निवर्णा युक्ता तेजोविक्रमैः सप्रतापैः ।
आग्नेयी च प्राणिनां स्याज्जयाय क्षिप्रं सिद्धिं वाञ्छितार्थस्य धत्ते ॥

मलिनपरुषकृष्णा पापगन्धानिलोत्था
जनयति वधबन्धव्याध्यनर्थार्थनाशान् ।
स्फटिकसदृशरूपा भाग्ययुक्ताप्युदारा
निधिरिव गगनोत्था श्रेयसे स्वच्छवर्णा ॥

फलितज्योतिष शास्त्र में ग्रहों की छाया (महाभूत-जनित) बताने का प्रयोजन क्या ? जातक के स्वरूप को देख कर यह निर्णय किया जाये कि किस ग्रह

की इस पर छाया है और तदनुसार फलादेश किया जाये। रुद्रभट्ट कहते हैं कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश के गुण और तत् तत् गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द लक्षण यथाक्रम नासा (गन्ध), आस्य (मुंह, जिह्वा-रस,) दृक् (नेत्र-रूप), त्वक् (स्पर्श), श्रवण (कान-शब्द) से अभिव्यञ्जित होते हैं। बुध की दशा में, बलवान् बुध की राशि में बैठे अन्य ग्रह की दशा में, बलवान् बुध से दृष्ट या युक्त ग्रह की दशा में सुगन्धित वस्तुओं की उपलब्धि होती है। इसी प्रकार शुक्र की दशा में जिह्वानुमेय गुणों का संभव निर्देश करना चाहिए इत्यादि। जब जातक के शरीर से सुगन्धि निकले या चन्दनानुलेपन सुरभि द्रव्यवान् हो उसकी पार्थिवी बुध की छाया समझना। जब मधुराम्लादि मृष्ट रसभोगी हो तो चन्द्र या शुक्र की आप्या (जल सम्बन्धी) छाया होती है।, हमारा अनुभव है कि मुख की कान्तिवृद्धि भी हो जाती है। जब जातक रूपवान् दर्शनीय, तेजोयुक्त हो तो सूर्य या मंगल की आग्नेयी छाया समझना। जब जातक का शरीर स्पर्श में मृदु हो या जातक स्वयं स्त्रीस्तनस्पर्शाद्यभिरत हो तो शनैश्चर की वायवी छाया होती है। जब जातक के शब्द अन्यों को कर्णसुखकर हों या जातक स्वयं गाने-बजाने के सुनने में विशेष अभिरत हो तो बृहस्पतिकृत नाभसी छाया समझना।

जातकपारिजातकार ने केवल पांच महाभूतों का उल्लेख किया है, किन्तु बृहज्जातक अध्याय २, श्लोक ६ में वराहमिहिर ने कुछ विशेष कहा है। भूगण का अधिष्ठाता बुध, पयोगण का शुक्र, शिखिगण का मंगल, मरुद्गण का शनि, खगण का बृहस्पति। रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं—"भूगणस्तु पृथिवीगन्धघ्राणेन्द्रियोपस्थप्राणान्नमयकोशाः। पयोगणः खल्वप्रसनेन्द्रियपाय्वपान–प्राणमयकोशाः। शिखिगणस्तावद् वह्निरूपचक्षुरिन्द्रियपादव्यानमनोमयकोशाः। मरुद्गणः वायुस्पर्शत्वगिन्द्रियाण्युदानविज्ञानमयकोशाः। खगणो ह्याकाशशब्दश्रोत्रेन्द्रियवाक्समानानन्दमयकोशाः।"

यहाँ सूर्य और चन्द्रमा के महाभूत क्यों नहीं कहे गये? रुद्रभट्ट कहते हैं कि सूर्य का वह्नि, चन्द्रमा का जल प्रसिद्ध है यह पहले बृहज्जातक अध्याय २ के श्लोक ५ में कह चुके हैं। जातकपारिजात में भी इसी अध्याय के श्लोक २० में कह चुके हैं।

ग्रहों का कक्षाक्रम

कक्षायां क्रमशो दिनेशतनयाज्ज्योतिर्भचक्राश्रिताः।
छायासूनुगुरुक्षमाजदिनकृच्छुक्रेन्दुपुत्रेन्दवः॥ २७३॥

इस श्लोक में ग्रहों का कक्षाक्रम कहा है। सब ग्रह भचक्र में भ्रमण करते हैं। किसी का मार्ग पृथ्वी से अत्यन्त दूर, किसी का उतना दूर नहीं। सबसे दूर शनि की कक्षा है, फिर बृहस्पति की, फिर मंगल की, तदनन्तर सूर्य, उसके बाद शुक्र, उसके बाद बुध, तदनन्तर चन्द्रमा। चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी के सबसे समीप है। हमारे वैज्ञानिक चन्द्रमा पर उतरने में समर्थ हो चुके हैं। चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण करता है। पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य के चारों ओर भ्रमण करते हैं। सूर्य भ्रमण नहीं करता है। कक्षा बतलाने का प्रयोजन क्या ?

देखिए अध्याय ९, श्लोक १२७ तथा अध्याय १० श्लोक ३४। इस द्वितीय अध्याय के श्लोक ३६ में भी काल होरा का उल्लेख है, जो ग्रहों के कक्षा क्रम से निर्धारित की जाती है। १, २७½

ग्रहों का धातु, मज्जा, रुधिर आदि पर अधिकार

मज्जास्नायुवसाऽस्थिशुक्ररुधिरत्वग्धातुनाथाः क्रमाद्
आरार्कीज्यदिनेशशुक्रशशभृत्तारासुताः कीर्तिताः ॥ २८ ॥

निम्नलिखित ग्रहों का अस्थि आदि पर अधिकार है :—

(i) सूर्य (हड्डी), (ii) चन्द्रमा—खून, (iii) मंगल—मज्जा, (iv) बुध—चर्म, (v) बृहस्पति—मेद, (चरबी), (vi) शुक्र—वीर्य, (viii) शनि—स्नायु। हड्डी के अन्दर मज्जा होती है। चर्म शरीर का ऊपरी आवरण है। स्नायु नसों तथा शिरासंततियों को कहते हैं। पाश्चात्यज्योतिष में स्नायुमंडल का स्वामी बुध को माना है और मंगल का रक्त से सम्बन्ध है ॥ २८ ॥

ग्रहों के रस (षट्रस) आदि

लवणकटुकषायस्वादुतिक्ताम्लमिश्राः
शशिरविशनिजीवारासुरेज्यज्ञनाथाः ।
अयनदिवसपक्षर्त्वब्दमासक्षणेशा
रविकुजसितसौम्या मन्दजीवेन्दवश्च ॥ २९ ॥

ग्रहों के रस कहते हैं :—

सूर्य—कटु; चन्द्र—लवण (नमकीन); मंगल—तिक्त; बुध—मिला जुला अर्थात् कुछ खट्टा; कुछ मीठा आदि, बृहस्पति—मधुर (मीठा); शुक्र—खट्टा; शनि—कषाय

(कसैला)। प्रयोजन ? जन्मकुंडली में द्वितीय स्थान में जैसा ग्रह हो या द्वितीय स्थान को जैसा ग्रह देखे उस ग्रह सम्बन्धी रस वाले भोजन में जातक की विशेष रुचि होती है। प्राय: संधिगत लग्न में इससे लग्न स्थिर करने में सहायता मिलती है।

अब ग्रहों का काल—समय की अवधि कहते हैं—

(i) सूर्य–अयन (६ मास), (ii) चन्द्रमा–क्षण (२ घड़ी) (iii) मंगल–दिन, (iv) बुध–ऋतु (२ मास), (v) बृहस्पति–१ मास, (vi) शुक्र–पक्ष, (१५ दिन), (vii) शनि—१ वर्ष। इनका प्रश्नकुंडली विचार में उपयोग किया जाता है। मेरा कार्य कब सिद्ध होगा ? यदि यह प्रश्न किया जाये तो पहले यह देखिए कि ग्रहस्थिति से सिद्धि होती दिखाई देती है या नहीं। यदि सफलता दिखाई दे तो यह देखिए कि प्रश्नलग्न नवांश का स्वामी कौनसा ग्रह है। यह ग्रह प्रश्न लग्न नवांश से कितनी दूर है। उतने ही अयन (यदि सूर्य नवांशेश हो), क्षण (यदि चन्द्र नवांशेश हो), दिन (यदि मंगल नवांशेश हो)······इस क्रम से यह निश्चय करना कि कार्यसिद्धि कब होगी ॥२९॥

ग्रहों की दृष्टि

पादेक्षणं भवति सोदरमानराश्यो-
र्र्धं त्रिकोणयुगलेऽखिलखेचराणाम् ॥
पादोनदृष्टिनिचयश्चतुरस्रयुग्मे
सम्पूर्णदृग्बलमनङ्गगृहे वदन्ति ॥ ३० ॥
शनिरतिबलशाली पाददृग्वीर्ययोगे
सुरकुलपतिमन्त्री कोणदृष्टौ शुभः स्यात्।
त्रितयचरणदृष्ट्या भूकुमारः समर्थः
सकलगगनवासाः सप्तमे दृग्बलाढ्याः ॥ ३१ ॥
अथोर्ध्वदृष्टी दिननाथभौमौ दृष्टिः कटाक्षेण कवीन्दुसून्वोः।
शशाङ्कगुर्वोः समभागदृष्टिरधोऽक्षिपातस्त्वहिनाथशन्योः ॥ ३२ ॥

सभी ग्रहों की अपने स्थान (जिस राशि में वे बैठे हैं) से सातवें स्थान पर पूर्ण दृष्टि होती है। अपने से चतुर्थ और अष्टम स्थान पर भी मंगल की (सातवें स्थान के अतिरिक्त) पूर्ण दृष्टि होती है किन्तु अन्य ग्रहों की चतुर्थ और अष्टम पर तीन चरण (एक रुपये में पचहत्तर पैसे) दृष्टि होती है। बृहस्पति की अपने स्थान से (जिस राशि में वह बैठा है) पंचम और नवम स्थान पर, (सातवें स्थान के अतिरिक्त) पूर्ण दृष्टि होती है, किन्तु अन्य ग्रहों की

अपने से पंचम और नवम पर केवल आधी दृष्टि (एक रुपये में पचास पैसे) होती है। शनि की सप्तम स्थान पर (जिस राशि में, जन्मकुंडली में शनि बैठा है, उससे सातवीं राशि पर) तो पूर्ण दृष्टि होती ही है, इसके अतिरिक्त तृतीय तथा दशमें (जिस राशि में वह बैठा है, उससे तृतीय और दशम) पर भी पूर्ण दृष्टि होती है, किन्तु अन्य ग्रहों की जिस राशि में वे बैठे हैं उससे तृतीय और दशम पर एक चौथाई (एक रुपये में पच्चीस पैसे) दृष्टि होती है।

राहु केतु की दृष्टि के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है। उनका शरीर (पिंड) नहीं है, देदीप्यमान ग्रह नहीं हैं, केवल छायाग्रह हैं। उनकी दृष्टि नहीं होती। जिस स्थान में बैठे हैं या जिस ग्रह के साथ बैठे हैं, वैसा फल करते हैं। ज्योतिष के एक सम्प्रदाय के अनुसार, जिस भाव में बैठे हैं, उसके भावेश का सा फल भी करते हैं। मूल लघुपाराशरी में कहा है "यद् यद् भावगतौ वापि यद् यद् भावेशसंयुतौ"। भैरवदत्त ने अपनी उद्योत टीका में यद् यद् का अर्थ किया है "यस्य यस्य ग्रहस्य"—अर्थात् जिस जिस ग्रह के भाव में। किन्तु सज्जनरञ्जनी टीका में 'यद् यद् भावगतौ' की 'यस्मिन् यस्मिन् भावे प्राप्तौ'। दोनों ही सम्प्रदाय प्रचलित हैं। मान लीजिए राहु धनु में अष्टम में है। वृषभ लग्न है। बृहस्पति तृतीय में है। राहु सूर्य के साथ है। तो सूर्य के साथ होने से राहु कुछ फल सूर्य का-सा करेगा, यह दोनों मत वाले मानते हैं। इसमें ऐकमत्य है। कोई भेद नहीं है। भेद है इस बात में कि राहु अष्टम में है, इसलिए सज्जनरञ्जनी संस्कृत टीका के अनुसार अष्टम भाव का फल करेगा। भैरवदत्त की संस्कृत टीका उद्योत के अनुसार 'यस्य यस्य···' का अर्थ लेने से, राहु बृहस्पति के भाव में है, तो बृहस्पति का-सा-फल करेगा—अर्थात् बृहस्पति का कर्कराशिस्थ होने का फल, बृहस्पति के तृतीयस्थ होने का फल, बृहस्पति का अष्टमेश होने का फल (इसके अन्तर्गत अष्टम स्थान फल का सन्निवेश हो गया) तथा बृहस्पति का एकादशेश होने का फल। यही दोनों अर्थों में भिन्नता है। यही द्वैमत्य है।

अब राहु तथा केतु की दृष्टि के सम्बन्ध में विचार कीजिए। उद्योत टीका में "पश्यन्ति सप्तमं सर्वे" इसका अर्थ "रव्यादयो ग्रहाः" लिख दिया है। सूर्य आदि सात ग्रह लिये जायें या सात से अधिक—इसका निर्देश नहीं किया है। सज्जनरञ्जनी टीकाकार लिखते हैं कि सबका अर्थ सूर्यादि सात ग्रह और राहु इन आठ ग्रहों की सप्तम दृष्टि पूर्ण होती है। केतु की दृष्टि नहीं होती, क्योंकि केतु का सिर नहीं है (सिर—ग्रीवा से ऊपर के भाग में ही नेत्र होते हैं)।

'अथात्र सर्वशब्दोपादानाद्राह्वन्तानां दृष्टिरुक्ता न तु केतोरिति भावः तत्कथमिति चेत्केतोर्दृगभावात्। तदुक्तं यामलादौ—'शिरोमात्रं विधुं तुद इति।

'पुच्छकेतुरुदीरित' इति राहोः शिरोमात्रेऽपि दृक्सद्भावात्केतोस्तदभावादिति ।'

वास्तव में, यह क्लिष्ट कल्पना है कि राहु का शिर है, सिर में आँखें रहती हैं, इसलिए राहु की दृष्टि है। केतु का सिर नहीं है, इस कारण दृष्टि भी नहीं है। मनुष्य की भाँति ग्रहों के आँख, कान, नाक नहीं होते।

सुश्लोकशतक में (देखिए त्रिफला (ज्योतिष) पृष्ठ ९-१०) भी "सर्वे ग्रहाः" लिखा है। सात ग्रह या अधिक इसकी विवेचना नहीं की है। बहुत से ज्योतिषी राहु की दृष्टि मानते हैं। और निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं :—

सुतमदननवान्ते पूर्णदृष्टिस्तमस्य
युगलदशमगेहे चार्द्धदृष्टिं वदन्ति ।
सहजरिपुविपश्यन् पाददृष्टिं मुनीन्द्राः
निजभवनमुपेतो लोचनान्धः प्रविष्टः ॥

यह श्लोक मुद्रित बृहत्पाराशर के संस्करणों में प्राप्त होता है। आजकल बृहत्पाराशर के जो संस्करण प्राप्त होते हैं, वे कहाँ तक प्रामाणिक हैं, यह कहना कठिन है।

परन्तु राहु, केतु की दृष्टि नहीं होती, अधिकांश मत यही है। सुश्लोकशतक श्लोक १९ में लिखा है कि तमोग्रह जिस ग्रह का सम्बन्धी है, जिसके साथ हो, और जिस ग्रह से सप्तम हो, उसका फल करता है (विशेष विवरण के लिए देखिए त्रिफला ज्योतिष पृष्ठ ३६-३७।) इस प्रकार राहु, केतु के सम्बन्ध में विविध मत हैं।

यहाँ एक प्रश्न उठता है। इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। बृहस्पति जिस स्थान को एक चरण दृष्टि से देखेगा उसको एक चतुर्थांश शुभ फल प्रदान करेगा, जिसको तीन चरण दृष्टि से देखेगा उसको तीन चौथाई शुभ फल और जिसको पूर्ण दृष्टि से देखेगा, उसको पूर्ण शुभ फल। यह सर्वसम्मत पक्ष है। इसमें कोई मतभेद नहीं है। किन्तु जहाँ 'योग' का प्रसंग है कि 'यदि चन्द्रमा को बृहस्पति देखे' तो इस सन्दर्भ में क्या बृहस्पति की एक चरण या तीन चरण दृष्टि चन्द्रमा पर होने से योग घटित होता है, यह मान लेंगे या चन्द्रमा पर बृहस्पति की पूर्ण दृष्टि होने से ही योग माना जाये अन्यथा नहीं? हमारे विचार से पूर्ण दृष्टि होने से ही योग माना जाना चाहिए अन्यथा नहीं।

दूसरी शंका जो प्रायः अरबी ज्योतिष और पाश्चात्य ज्योतिष के प्रभाव से (हमारे संस्कृत के मध्यकालीन ग्रंथ—श्रीपतिपद्धति, केशवीयजातक आदि पर

भी मिस्र आदि के ज्योतिष सिद्धान्तों का प्रभाद पड़ा है) बहुत से पाठक उठाते हैं, वह यह है कि दृष्टि अंश से अंश तक मानी जाये या राशि से राशि तक। उदाहरण के लिए यदि बृहस्पति १ अंश तुला में है और चन्द्रमा २९ अंश मेष में तो बृहस्पति की चन्द्रमा पर पूर्ण दृष्टि मानी जाये या बृहस्पति से चन्द्रमा २०८ अंश पर है इस कारण त्रैराशिक से दृष्टि आवे वह मानी जाये। इसी प्रकार यदि लग्न में मेष में २९ अंश का बृहस्पति हो और षष्ठ स्थान में कन्या का चन्द्रमा १° अंश पर हो तो दोनों में बृहस्पति से चन्द्रमा १२२° पर होगा, परन्तु चन्द्र क्या बृहस्पति दृष्ट माना जाये ?

हमारे विचार से भारतवर्ष के मध्यकालीन युग में जो अंशात्मक दृष्टि का विचार प्रचलित हो गया—यह अरब, मिस्र, यवन आदि देशों की विद्या का प्रभाव है। आर्ष पद्धति राशि से राशि दृष्टि विचार की थी। मेष में किसी अंश पर बृहस्पति हो, तुला में किसी अंश पर चन्द्रमा हो, बृहस्पति की चन्द्रमा पर पूर्ण दृष्टि होगी। मेष के किसी अंश में बृहस्पति हो, कन्या के किसी अंश में चन्द्रमा हो, बृहस्पति की चन्द्रमा पर दृष्टि नहीं होगी।

जैमिनि सूत्र में भी राशि से राशि दृष्टि मानी गई है। अभिपश्यन्त्यृक्षाणि ॥१।१ ।२॥पार्श्वभे च॥१।१।३॥ तन्निष्ठाश्च तद्वत् ॥ १।१।४॥

प्राचीन यवन मत के अनुसार भी जिस राशि में ग्रह बैठा हो उससे द्वितीय, षष्ठ, एकादश, द्वादश—इन चार राशियों को और इन चार राशियों में बैठे ग्रह को नहीं देखता।

> द्वौ पश्चिमौ षष्ठमथ द्वितीयं संस्थानराशेः परिहृत्य राशिम्।
> शेषान् ग्रहः पश्यति सार्वकालमिष्टेषु चैषां विहिता दृगिष्टा ॥

इस उद्धृत श्लोक में राशि का प्रयोग किया है। राशि से राशिदृष्टि देखनी चाहिए, इस सिद्धान्त का पिष्टपेषण इसलिए किया जा रहा है कि पाश्चात्य ज्योतिष-शिक्षा से प्रभावित बहुत से अर्वाचीन शिक्षासम्पन्न अंशात्मक दृष्टि को ही भारतीय ज्योतिष का सिद्धान्त मानने लग गए हैं। देखिए बृहज्जातक अध्याय २, श्लोक १३ की टीका में भट्टोत्पल भी राशि से राशि-दृष्टि गणना में लेनी चाहिए, यही कहते हैं :—

"यस्मिन्राशौ स्थितस्तस्माद्यस्तृतीयो ग्रहो दशमश्च तथा तृतीयदशमस्थौ यौ तौ पादेन चतुर्थभागदृष्ट्याऽवलोकयन्ति एवं त्रिकोणस्थौ नवमपंचमस्थान-गतावर्धदृष्ट्या। ……।"

आगे जातकपारिजातकार कहते हैं कि कौन से ग्रह की किस प्रकार की दृष्टि है। मनुष्य कैसे देखता है:–ऊपर की ओर या नीचे की ओर या सामने या बगल की ओर। चाहे आप बायीं ओर देखें या दाहिनी ओर देखें बगल में देखने को कटाक्ष

दृष्टि कहते हैं । जब मनुष्य लज्जान्वित होता है या अपराधी होता है,या आपका काम नहीं करना चाहता है, तो उसकी अधोदृष्टि (नीचे की ओर आँखें) होती हैं। जब साधारण रूप से दो व्यक्ति एक-दूसरे से बात करते हैं तो उनकी सम दृष्टि (साधारण या स्वाभाविक या सामने) होती है। जब स्त्रियाँ कनखियों से देखती हैं, तो उसे कटाक्ष कहते हैं । जब हम ऊपर की ओर देखते हैं तो ऊर्ध्व दृष्टि कहलाती है ।

सूर्य और मंगल की ऊर्ध्व दृष्टि है। बुध और शुक्र कटाक्ष से देखते हैं। चन्द्रमा और बृहस्पति की समदृष्टि है और शनि की अधोदृष्टि। प्रायः लग्न में जैसा ग्रह होता है, जातक की वैसी दृष्टि होती है। लग्न में ग्रह न हो तो लग्नेश से विचार करना चाहिए। ॥ ३०-३२ ॥

ग्रहों का स्थानबल

स्वोच्चत्रिकोणस्वसुहृद्वृगाण-
राश्यंशवैशेषिकवर्गवन्तः ।
आरोहवीर्याधिकबिन्दुकास्ते
खेचारिणः स्थानबलाधिकाः स्युः ॥ ३३ ॥
नीचारिपापखगयोगनिरीक्ष्यमाणा-
स्तद्वर्गसन्धिलघुबिन्दुरंशकाश्च ।
आदित्यरश्मिपरिभूतपराजितास्ते
दृष्ट्यादिशपत्यसहिताश्च न शोभनाः स्युः ॥ ३४ ॥

यदि कोई ग्रह शुभफलकारक और बलवान् होता है तो शुभ फल पूर्ण करता है, अशुभफल कम। यदि कोई ग्रह दुष्टफलकारक है और बलवान् है तो पाप फल कम करता है, दुर्बल है तो अधिक । इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ग्रंथकार ने आगे अध्याय ७ श्लोक ५८ में किया है। वैसे भी इस ग्रंथ में तथा ज्योतिष के अन्य फलित ग्रंथों में बार-बार 'बली तथा दुर्बल', ग्रहों के सम्बन्ध में इन दो विशेषणों का उल्लेख प्राप्त होता है। इस कारण ग्रंथकार इन श्लोकों में और आगे के श्लोकों में यह समझाते हैं कि किस परिस्थिति में ग्रह को बली समझना और किस में दुर्बल ।

प्राचीन आचार्यों ने बल को भी ६ भागों में विभाजित किया है (i) स्थान-बल, (ii) दिग्बल, (iii) कालबल, (iv) चेष्टाबल (v) नैसर्गिक बल (vi) अयन बल । किसी-किसी आचार्य ने अयनबल को चेष्टाबल के अन्तर्गत मान लिया है और दृक् (दृष्टि) बल को पृथक् छठे प्रकार का बल माना है।

बलों का गणित कैसे करना चाहिए इसके लिये केशवीय जातकपद्धति, श्रीपतिपद्धति, आदि पद्धतियों का अवलोकन करना चाहिए। इन पद्धतियों में मतभेद है। उन सबकी विस्तार भय से यहाँ व्याख्या करना संभव नहीं है। यहाँ ग्रंथकार ने संक्षेप में कुछ ऐसे उपयोगी सिद्धान्त दे दिए हैं जिनका अनुसरण करके, बिना विस्तृत गणित के पाठक इस निष्कर्ष पर पहुँच सकें कि ग्रह बली है या निर्बल और कितना बली है, या कितना निर्बल ? इन सब सिद्धान्तों को स्मरण रखना चाहिए। यदि आप इन सिद्धान्तों को स्मरण नहीं रखेंगे तो जन्मकुण्डली का फलादेश करते समय आप यह निश्चय नहीं कर सकेंगे कि ग्रह बली है, इसका शुभ फल कहा जाये या दुर्बल है, इसका अनिष्ट फल कहा जाये। सूर्यादि सब ग्रहों के शास्त्र में शुभ फल कहे हैं, अशुभ भी। लग्नेश आदि बारहों भावेशों के शुभ फल भी कहे हैं अशुभ फल भी। तब जिस ग्रह की दशा, अन्तर्दशा हो उसका शुभ फल कहा जाये या अशुभ फल ? इसका निर्णय ग्रह की बलवत्ता पर ही निर्भर होता है। ग्रह बलवान् है तो शुभ फल, निर्बल है तो अशुभ फल। सर्वप्रथम स्थान बल का निर्देश करते हैं :—

निम्नलिखित ८ परिस्थितियों में ग्रह बली होता है :—

(i) अपनी उच्च राशि में, (ii) अपनी मूल त्रिकोण राशि में, (iii) अपनी राशि में, (iv) अपने द्रेष्काण में, (v) अपने नवांश में, (vi) पारिजातादि जो दशवर्ग अध्याय १ श्लोक ४४-४६ में कहे हैं—उनमें से जितने अधिक वर्गों में—पारिजात, उत्तम, गोपुर, सिंहासन आदि में हो उत्तरोत्तर बली होता है। यदि ग्रह अपनी राशि, द्रेष्काण, नवांश में हो तो बहुत श्रेष्ठ, किन्तु यदि अपनी राशि द्रेष्काण आदि में न होकर अपने मित्र ग्रह की राशि, द्रेष्काण आदि में हो तो भी बली, परन्तु उतना अधिक बली नहीं, जितना अपनी राशि आदि में। मित्र ग्रह—कौन किसके हैं, यह आगे श्लोक ४१-४६ में कहेंगे। वहाँ मित्र ग्रहों को भी दो भागों में बाँटा है (क) अधिमित्र, (ख) मित्र। अधिमित्र ग्रह की राशि द्रेष्काण में होना, मित्र ग्रह की राशि द्रेष्काण आदि में होने की अपेक्षा अधिक उत्तम है।

ऊपर बली होने के ६ हेतु कहे हैं। अब अन्य हेतु कहते हैं :—

(vii) आरोह वीर्ययुक्त (इसकी व्याख्या आगे की जायेगी)।

(viii) जिस राशि में ग्रह बैठा है, उस राशि में, उस ग्रह के अष्टकवर्ग में अधिक बिन्दु हों। अष्टकवर्ग विवेचन विस्तृत विषय है। उसका सांगोपांग निरूपण आगे दसवें अध्याय में किया गया है, उसका अवलोकन करें।

ऊपर (vii) में आरोह वीर्ययुक्त हमने लिखा है। मूल में 'आरोह वीर्य' शब्द आया है। एक टीकाकार ने लिखा है कि जो ग्रह भाव मध्य के समीप हो

वह आरोह वीर्य युक्त होता है और एक वचन उद्धृत किया है 'आरोहवीर्याः प्रभवन्ति भावसमानपर्यन्तमतश्च्युताः स्युरित्युक्तेः। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने अपने अनुवाद में लिखा है 'जो ग्रह लग्न में हो'। ये दोनों अर्थ हमें मान्य नहीं हैं। आरोह वीर्य का अर्थ है—जो ग्रह अपने परम नीच काम त्याग कर अपने परमोच्च अंश की ओर जा रहा हो। यथा तुला के १०° से मेष के १०° तक यदि सूर्य हो तो उसका आरोह वीर्य। वृश्चिक के ३° से वृष के ३° तक चन्द्रमा का आरोह वीर्य। कर्क के २८° से मकर के २८° तक मंगल का आरोह वीर्य इत्यादि। बृहज्जातक अध्याय ८ श्लोक ६ में वराहमिहिर ने भी लिखा है :—

भ्रष्टस्य तुंगादवरोहिसंज्ञा मध्या भवेत्सा सुहृदुच्चभागे।
आरोहिणी निम्नपरिच्युतस्य नीचारिभांशेष्वधमा भवेत्सा ॥

सारावली अध्याय ४४, श्लोक ८ में कल्याण वर्मा भी कहते हैं :—

तुंगाच्च्युतस्य हि दशा सुहृदुच्चांशेऽवरोहिणी मध्या।
नीचाद्रिपुनीचांशे ग्रहस्य चारोहिणी कष्टा ॥

स्वयं वैद्यनाथ दीक्षित ने इसी ग्रंथ के अध्याय १८, श्लोक ४ में 'आरोहवीर्य का उसी अर्थ में प्रयोग किया है जो हमने यहाँ दिया है।

अब तक तो यह बताया गया कि ग्रह किन-किन परिस्थितियों में बली होता है। अब ग्रहों की निर्बलता के हेतु कहते हैं। कोई ग्रह (i) अपनी नीच राशि में हो, (ii) शत्रु राशि में हो, (iii) पापग्रह के साथ हो, (iv) पापग्रह से दृष्ट हो, (v) पाप ग्रहों के वर्ग में हो (vi), भावसंधि में हो (मूल में केवल संधि शब्द आया है, किन्तु अध्याय १८, श्लोक ५ में भावसंधि स्थित ग्रह की दशा अनिष्ट कही है, इस कारण यहाँ संधि का अर्थ हमने भाव संधि लिया है), (vii) अपने अष्टक वर्ग में, जिस राशि में वह बैठा हो, उसमें थोड़े बिन्दु हों (देखिए अध्याय १०), (viii) दुरंश में हो अर्थात् पापग्रह के अंशों में हो। (पापवर्ग पहले कह चुके अब पुनः दुरंश कहा, इसलिए दुरश के दो अर्थ हो सकते हैं। (क) निन्दित नवांश में हो। अंश का अर्थ नवांश भी लिया जाता है। मंगल यदि कर्क नवांश में हो तो कर्क का स्वामी चन्द्रमा शुभ ग्रह है, इस कारण मंगल पापवर्ग या पाप नवांश में नहीं हुआ किन्तु अपने नीच नवांश में होने के कारण दुरंश में हुआ। (ख) दूसरा अर्थ दुरंश का हुआ कि दुष्ट षष्टि अंश में हो)। (ix) सूर्य के सान्निध्य के कारण अस्त हो। (x) युद्ध में पराजित हो। युद्ध में पराजित की व्याख्या आगे श्लोक ३७ में की है। (xi) शुभ दृष्टि आदि बल से हीन हो—अर्थात् उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।

किसी भी ग्रह में, बल के लक्षण जितने अधिक होंगे उतना बली अधिक होगा। निर्बलता के लक्षण जितने अधिक होंगे, उतना अधिक निर्बल होगा।

कुछ लक्षण बलवत्ता के हों, कुछ निर्बलता के तो बुद्धि से तारतम्य कर निष्कर्ष निकालना चाहिए कि कैसा है ॥ ३३-३४ ॥

दिग्बल

विलग्नपातालवधूनभोगा बुधामरेज्यौ भृगुसूनुचन्द्रौ।
मन्दो धरासूनुदिवाकरौ चेत् क्रमेण ते दिग्बलशालिनः स्युः ॥ ३५ ॥

बुध और बृहस्पति लग्न में बली होते हैं। लग्न स्पष्ट यदि बृहस्पति के स्पष्ट के तुल्य हो तो पूर्ण बली। सप्तम में बुध या बृहस्पति हो तो सर्वथा बलहीन। बीच में अनुपात (त्रैराशिक) से बल निकालना चाहिए। चन्द्रमा और शुक्र, लग्न से चतुर्थ में पूर्ण बली, लग्न से दशम में दिग्बल शून्य। शनि सप्तम स्पष्ट के तुल्य हो तो पूर्ण बली, लग्न स्पष्ट के तुल्य हो तो सर्वथा निर्बल। मध्य में अनुपात से। सूर्य और मंगल दशम में पूर्ण बली, चतुर्थ में सर्वथा दिग्बलहीन। जातकपद्धति में दिक्बल का गणित कैसे किया जाता है? मान लीजिए जो लग्न स्पष्ट है वही बृहस्पति स्पष्ट है तो बृहस्पति को ६०षष्ठ्यंश बल मिला। यदि बृहस्पति स्पष्ट सप्तम स्पष्ट के तुल्य है तो बृहस्पति को शून्य बल। यदि बृहस्पति लग्न स्पष्ट से ६० अंश दूर है तो ४० षष्टि-अंश, यदि १२० अंश दूर है तो २० षष्टि-अंश। मध्य में अनुपात से बल निकाला जाता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का दिग्बल—कहाँ उसको पूर्ण बल (६० षष्टि अंश) प्राप्त है—कहाँ शून्य, यह विचार रखते हुए अनुपात (त्रैराशिक) से निकालते हैं। इस बल का नाम दिग्बल क्यों रखा? लग्न पूर्व है, सप्तम पश्चिम, दशम दक्षिण, चतुर्थ उत्तर। पूर्व में बुध; बृहस्पति बली; दक्षिण में सूर्य, मंगल; पश्चिम में शनि; उत्तर में चन्द्र और शुक्र। इस कारण इसे दिक् (दिशा) बल कहा ॥ ३५ ॥

काल बल

निशीन्दुमन्दावनिजाः परेऽह्नि स्वकीयहोरासममासवासराः।
सितादिपक्षद्वयगाः शुभाशुभा बुधः सदा कालजवीर्यशालिनः ॥ ३६ ॥

कालबल के सम्बन्ध में ग्रंथकार ६ नियमों का निर्देश करते हैं कि किसी ग्रह को कालबल कब प्राप्त होता है :—

(i) चन्द्रमा, मंगल और शनि रात्रि में बलवान् होते हैं। सूर्य, बृहस्पति, शुक्र दिन में। बुध सदैव।

(ii) प्रत्येक ग्रह अपने वर्ष में, अपने मास में, अपने दिन में, अपनी होरा में बलवान् होता है। इसकी व्याख्या आगे की जायेगी।

(iii) शुभग्रह शुक्ल पक्ष में बलवान् होते हैं; पापग्रह कृष्ण पक्ष में।

ऊपर (ii) में चार प्रकार के बल कहे गए हैं—वर्षबल, मासबल, दिनबल, होरा बल। दिन बल प्रसिद्ध है। मंगलवार को जन्म हो तो मंगल को दिनबल प्राप्त होगा। अन्य छः ग्रहों को दिनबल के अन्तर्गत ० (शून्य)। बुधवार को जन्म हो तो बुध को दिनबल प्राप्त होगा अन्य ग्रहों को दिनबल के अन्तर्गत ० (शून्य) इत्यादि। होराबल के लिए यह देखना चाहिये कि किस ग्रह की होरा में जन्म है। दिन रात्रि में एक-एक घंटे की २४ होरा होती हैं। कितने घड़ी पल तक किस ग्रह की होरा होती है यह आगे अध्याय ९, श्लोक १२७ में समझाया गया है। अवलोकन करें। जिस ग्रह की होरा में जन्म हो उसको १ रूप (६० षष्टि-अंश, होराबल प्राप्त होता है अन्य को इस होराबल के अन्तर्गत ० (शून्य)।

वर्षपति और मासपति से क्या तात्पर्य? केशवीयजातक तथा श्रीपतिपद्धति आदि में सृष्टि के आरंभ से कितने दिन व्यतीत हुए। इसका विचार अहर्गण निकाल कर ३६० (सूर्य सिद्धान्त में वर्ष का मान ३६० दिन दिया है, मास का मान ३० दिन) का भाग देकर कौन-सा वर्ष चल रहा है यह निकाल कर जिस वर्ष में जन्म हो उस वर्ष के प्रथम दिन जो वार हो उस वार का स्वामी वर्षपति मान कर उसे वर्षपतिबल प्राप्त होता है। अवशिष्ट (३६० से भाग देने पर जो शेष बचे) उसमें ३० का भाग देकर मास निकाला जाता है और जो ग्रह जन्म के समय मासपति होता है, उसे मासबल प्राप्त होता है। परन्तु हमारे विचार से वर्षपति और मासपति निकालने की यह क्लिष्ट कल्पना है।

बृहज्जातक अध्याय २, श्लोक १९ में वराहमिहिर ने लिखा है कि 'स्वदिवससमहोरामासगैः कालवीर्यम्'—इसकी टीका में रुद्रभट्ट लिखते हैं:

"संवत्सरस्यादौ यस्य प्रथमवारो भवति स तस्य संवत्सरस्याधिपतिः। मासस्याप्येवमाधिपत्यम्।" अर्थात् जिस संवत्सर में जन्म हो, उस संवत्सर के प्रारंभ के दिन जिस ग्रह का वार हो उसको वर्ष बल होता है। इसी मास के प्रारंभ में (मास का आरंभ शुक्ल प्रतिपद से लेना) जो वार हो उस वार सम्बन्धी ग्रह को मासबल प्राप्त होता है।

हमको यही पक्ष मान्य है ॥ ३६ ॥

चेष्टा बल

जैत्रा वक्रसमागमोपगसितज्ञारार्किरेज्यासिताः
दिग्व्याशायनगेन्दुतिग्मकिरणौ चेष्टाबलांशाधिकाः ॥३६½ ॥

अब चेष्टा बल कहते हैं। (i) जो—मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र या शनि युद्ध में विजयी होते हैं—अर्थात् उपर्युक्त दो ग्रहों में यदि युद्ध हो तो उन दोनों में जो ग्रह जयी होता है, वह बली होता है। सूर्य, चन्द्र का किसी ग्रह से युद्ध नहीं होता—केवल पाँच ताराग्रहों का युद्ध हो सकता है। (ii) इन पाँच ग्रहों में जो—एक, दो, तीन, चार या पाँचों—जो वक्री हो, या वक्री हों, वे बली होते हैं। (iii) इन पाँच ग्रहों में कोई—एक या अधिक जिसका चन्द्रमा से समागम हो वह बली होता है। (iv) सूर्य और चन्द्रमा उत्तरायण में (जब जिसकी क्रान्ति उत्तर हो) वह बली होता है।

सूर्य की सायन मेषसंक्रान्ति से सायन तुलासंक्रान्ति तक अर्थात् लगभग २१ मार्च से २२ सितम्बर तक उत्तर क्रान्ति रहती है। चन्द्रमा की प्रायः सायन मेष में प्रवेश करने से सायन तुला प्रवेश तक उत्तर क्रान्ति रहती है।

निसर्ग बल

सौम्यक्षेपयुता महीसुतमुखाश्चेष्टाबलाढ्याः क्रमात्
नैसर्गस्य बलाधिकाः शनिकुजज्ञाचार्यशुक्रेन्द्विनाः ॥ ३७ ॥
क्रमेण दृक्स्थाननिसर्गचेष्टादिक्कालवीर्याणि च षड्बलानि ।
सुधाकरेष्विन्दुशरेन्दुशैलभेदानि तानि प्रवदन्ति सन्तः ॥ ३८ ॥
स्वरूपषष्ट्यंशविषष्टिकांशा मृगादिवीर्योपगषड्बलाढ्याः ।
क्रमेण तद्योगभवं ग्रहाणां बलं हि पूर्णं त्रिपदं दलं वा ॥ ३९ ॥

अब निसर्ग बल कहते हैं। शनि से अधिक बली मंगल, मंगल से अधिक बली बुध, बुध से अधिक बली बृहस्पति, बृहस्पति से अधिक बली शुक्र, शुक्र से अधिक बली चन्द्रमा और चन्द्रमा से अधिक बली सूर्य होता है।

इसी निसर्ग बल को पद्धतिकारों ने इस प्रकार कहा है। सूर्य का ६० षष्ठ्यंश, चन्द्रमा का ५१·४३, शुक्र का ४२·८५, बृहस्पति का ३४·२८, बुध का २५·७०, मंगल का १७·१४ तथा शनि का ८·५७ षष्टि-अंश बल होता है।

अब किस बल के कितने भेद हैं यह कहते हैं। दृक् बल का १ भेद। शुभ ग्रहों की दृष्टि अधिक हो, पापग्रहों की दृष्टि न्यून हो तो शुभ दृष्टियोग में से पाप दृष्टियोग घटाना। शेष + (धन) दृक् बल। यदि पाप दृष्टिशुभ दृष्टि से अधिक हो पापदृष्टि में से शुभदृष्टि घटाना। शेष–(ऋण) दृष्टिबल। जब शेष–(ऋण) होता है तो उसे अन्य पाँचों (स्थान, दिक् आदि) के योग में

घटाने पर जो शेष रहता है वह ग्रह का षड्-बल पिंड कहलाता है। दृष्टि बल की गणना कैसे की जाती है ? जातकपद्धति का मत कहा जाता है।

(क) यदि कोई ग्रह शुभ ग्रह से पूर्ण दृष्ट है तो १५ षष्ट्यंश, यदि शुभ ग्रह से त्रिपाद दृष्टि से दृष्ट है तो ११·२५ बल, यदि शुभ ग्रह से आधी दृष्टि से दृष्ट है तो ७·५ षष्ट्यंश, यदि एक चरण दृष्टि से दृष्ट है तो ३·७५ षष्ट्यंश बल। शुभ ग्रह की दृष्टि + (धनात्मक) होती है। पद्धतिकारों की दृष्टि में भी गणित लगाया है। यथा बृहस्पति की १२०° पर पूर्ण दृष्टि (अर्थात् जिस राशि में बृहस्पति बैठा है उससे पाँचवीं राशि में–स्वयं जिस अंश पर है, उससे १२० अंश पर) तथा १५०° पर (स्व राशि से छठी राशि पर) कोई दृष्टि नहीं अर्थात् ० (शून्य) तो यदि, मान लीजिए सूर्य बृहस्पति से १३५° पर है (१२०° तथा १५०° के ठीक बीच में) तो सूर्य पर बृहस्पति की आधी दृष्टि हुई। हम इस गणित के पक्ष में नहीं हैं। विवेचना पहले की जा चुकी है। इसी प्रकार यदि किसी ग्रह पर पापग्रह की दृष्टि है तो—१५ षष्टि-अंश, पापग्रह की त्रिपाद दृष्टि है तो —११·२५, पापग्रह की आधी दृष्टि है तो —७·५ और यदि पाप-ग्रह की एक चरण दृष्टि है तो—३·८७५।

सूर्य, मंगल, शनि पापग्रह हैं, बृहस्पति तथा शुक्र शुभ हैं। बहुत से क्षीण चन्द्र को पाप, बली चन्द्र को शुभ मानते हैं। अन्य मत से चन्द्रमा सदैव शुभ है। एक मत से पापयुत बुध को पाप, शुभयुत बुध को शुभ मानते हैं। अन्य मत से बुध सदैव शुभ है। देखिए ११वें अध्याय का हमारा भाष्य।

स्थान बल—इसके ग्रंथकार ने इसके ५ भेद कहे हैं। परन्तु श्रीपति जातक पद्धति के अनुसार स्थानबल के १२ भेद हैं। केशवीयजातक पद्धति के टीकाकार ११ भेद मानते हैं। यथा—

(i) उच्च बल। ग्रह यदि अपने परमोच्च में हो तो १ रूप (१ रूप में ६० षष्टि-अंश होते हैं) यदि अपने परमनीच में हो तो ० (शून्य)।

(ii) ग्रह अपने मूल त्रिकोण में हो तो ४५ षष्ट्यंश, स्वराशि में हो ३० षष्टि-अंश, अधिमित्र राशि में २२·५, मित्र में १५, सम में ७·५, शत्रु की राशि में हो तो ३·७५ और अधिशत्रुराशि में हो तो १·८७५.

(iii) ग्रह यदि अपनी होरा में हो तो ३०, अधिमित्र की होरा में २२·५, मित्र की होरा में १५, सम की होरा में ७·५, शत्रु की होरा में ३·७५ और अधिशत्रु की होरा में १·८७५ षष्टि-अंश।

(iv) ग्रह यदि अपने द्रेष्काण में हो तो ३०, अधिमित्र के द्रेष्काण में हो तो २२·५, मित्र के द्रेष्काण में १५, सम के द्रेष्काण में ७·५, शत्रु के द्रेष्काण में ३·७५ और अधिशत्रु के द्रेष्काण में हो तो १·८७५ षष्टि-अंश।

(v) ग्रह यदि अपने सप्तमांश में हो तो ३०, अधिमित्र के सप्तमांश में २२·५, मित्र के सप्तमांश में १५, सम के सप्तमांश में ७·५, शत्रु के सप्तमांश में ३·७५ और अधिशत्रु के सप्तमांश में १·८७५ षष्टि-अंश।

(vi) ग्रह यदि अपने नवांश में हो तो ३०, अधिमित्र के नवांश में २२ ५, मित्र के नवांश में १५, सम के नवांश में ७·५, शत्रु के नवांश में ३.७५ और अधिशत्रु के नवांश में १·८७५ षष्टि-अंश बल प्राप्त करता है।

(vii) ग्रह यदि अपने द्वादशांश में हो तो ३०, अधिमित्र के द्वादशांश में २२·५, मित्र के द्वादशांश में १५, सम के द्वादशांश में ७·५, शत्रु के द्वादशांश में ३·७५ और अधिशत्रु के द्वादशांश में १.८७५ षष्टि-अंश।

(viii) ग्रह यदि अपने त्रिशांश में हो तो ३०, अधिमित्र के त्रिशांश में २२·५, मित्र के त्रिशांश में १५, सम के त्रिशांश में ७·५, शत्रु के त्रिशांश में ३·७५ और अधि शत्रु के त्रिशाश में १·८७५ षष्टि-अंश बल प्राप्त करता है।

ऊपर जो सप्तवर्गज बल गणना बताई गई इसके गणित प्रकार में श्रीपतिपद्धति और केशवीय जातक पद्धति के टीकाकारों में महान् भेद है।

उदाहरण के लिए सर्वप्रथम राशिबल निकालना है।

३६(१)

८ श.
के. ६
बु. ९ सू. मं.
५ बृ.
७
४
१० शु.
११
१
३
२
१२ रा.
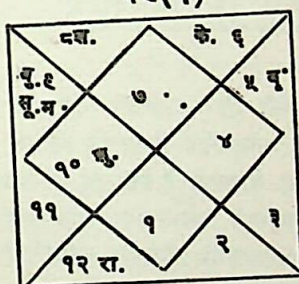
स्पष्ट ग्रह

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु	श.	रा.	के.
८	६	८	८	४	९	७	११	५
८	१	२२	२६	२८	२५	३	२९	२९
३४	१७	२३	४१	७	४१	१५	२	२
३८	११	३६	३	५२	२५	३४	३	३

यह कुंडली शाके १७७६ में श्री जीवनाथ शर्मा विरचित "जन्मपत्रिका-विधानम्" (फलित ज्योतिष के उत्कृष्ट ग्रंथ) से केशवीय जातक पद्धति के अनुसार उत्तर भारत की प्रथा प्रदर्शन करने के लिए यहाँ प्रस्तुत की गई है :—

पंडित जीवनाथ जी लिखते हैं कि सूर्य बृहस्पति राशि में है। बृहस्पति सम (ग्रह) की राशि में है अतः सूर्य को ७·५ ग्रह बल प्राप्त हुआ। सूर्य अपनी होरा में है—अर्थात् सूर्य की होरा में, सूर्य (होरा-पति) सम की राशि में अतः

सूर्य को ७·५ बल प्राप्त हुआ। सूर्य धनु द्रेष्काण में है। धनु का स्वामी बृहस्पति सम राशि में है। इसलिए सूर्य को ७·५ द्रेष्काण बल। सूर्य शनि के सप्तमांश में है। शनि अपने सम (मंगल शनि का स्वाभाविक शत्रु है, तात्कालिक मित्र अतः परिणाम में सम हुआ) की राशि में है, इस कारण सप्तमांश बल ७·५ इत्यादि। जन्मपत्रिका-विधानम् का पृष्ठ ६१ देखें। ग्रंथ संस्कृत में है। यहाँ उसका अनुवाद, पाठकों की सुविधा के लिए हिन्दी में दिया गया है।

निष्कर्ष यह है कि ग्रह जिस राशि में हैं, उस राशि का स्वामी स्व, अधिमित्र·· आदि किस की राशि में है, यह देखकर बल निर्णय करते हैं। अन्य टीकाकारों ने भी यही प्रणाली अपनाई है। केशवीय पद्धति की अन्य टीकायें भी अवलोकन करें। परन्तु श्रीपति के अनुसार बल-गणना में यह पद्धति नहीं अपनाई जाती। उदाहरण से स्पष्ट किया जाता है।

३६(२)

२
बु.१२मं.
१
११
३
रा.
श
शु.
सू.
४
१० च.
५
७
के.९
बृ.
६
८

स्पष्ट ग्रह

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	रा.	के.
०	९	११	११	८	०	०	२	८
१७	१४	२७	२४	१	१४	२७	०	०
४३	२९	५३	१३	२५	२	५५	४	४
३०	३९	९	४४	१	५६	४१	४२	४२

यह उदाहरण कुण्डली श्री वी० सुब्रह्मण्य शास्त्री जी की श्रीपतिपद्धति की अंग्रेजी व्याख्या से दी गई है। दक्षिण भारत में सप्तवर्गज निकालने की जो प्रथा दी गई है, उसी के अनुसार व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि सूर्य मंगल की राशि में है, मंगल सूर्य का अधिमित्र है इसलिए सूर्य को २२·५ षष्टि-अंश गृह बल प्राप्त हुआ। सूर्य चन्द्रमा की होरा में है। चन्द्रमा सूर्य का अधिमित्र है, इस कारण सूर्य को २२.५षष्टि-अंश बल प्राप्त हुआ। सूर्य अपने द्रेष्काण में है, इसलिए सूर्य को ३० षष्टि-अंश बल प्राप्त हुआ।

श्रीपति पद्धति के अनुसार उसका राशिपति, होरापति, द्रेष्काणपति—जिसका विचार करना है—वह अधिमित्र है···या अधिशत्रु है साक्षात् यही

नोट :—एक रूप में ६० षष्टि-अंश होते हैं। एक रूप के ६०वें भाग को विरूप भी कहते हैं।

विचार किया जाता है। इनकी प्रणाली के अनुसार मेरा बल निकालने के लिए यह देखिए कि 'मैं' अपने घर में हूँ या मित्र के या शत्रु के घर में हूँ। यह मत देखिए कि मैं जिसके घर में हूँ उस घर का 'स्वामी' अपने घर में है, या अपने मित्र के या अपने शत्रु के घर में। जिज्ञासु पाठक दिवाकर दैवज्ञ कृत केशवीय जातक की संस्कृत टीका, तथा श्रीपतिपद्धति (मूल संस्कृत) का अवलोकन करें।

(ix) स्थानबल के अन्तर्गत नवाँ केन्द्रादि बल है। ग्रह यदि केन्द्र में हो तो १ रूप; पणफर में हो तो ३७ आधार रूप, आपोक्लिम में हो तो चौथाई विरूप।

(x) स्थानबल के अन्तर्गत दसवाँ बल द्रेष्काण बल कहलाता है। पुरुष ग्रह यदि प्रथम द्रेष्काण (०° से १०° तक) हो तो १५ षष्ट्यंश, द्वितीय या तृतीय द्रेष्काण में हो तो ० (कुछ नहीं), नपुंसक ग्रह यदि द्वितीय द्रेष्काण (१०° से २०°) में हो तो १५ षष्टि-अंश। प्रथम या तृतीय द्रेष्काण में हो तो कोई बल नहीं। स्त्री ग्रह यदि अन्तिम द्रेष्काण (२०° से ३०° तक) में हो तो १५ षष्टि-अंश। प्रथम और द्वितीय द्रेष्काण में हो तो कोई बल नहीं।

सूर्य, मंगल तथा बृहस्पति पुरुष ग्रह हैं। बुध और शनि नपुंसक ग्रह। चन्द्रमा और शुक्र स्त्री ग्रह हैं।

(xi) सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति तथा शनि जो कोई भी ऊनी राशि (१, ३, ५, ७, ९, ११) में हो उसे १५ षष्टि-अंश। यदि पूरी (२, ४, ६, ८, १०, १२) राशि में हो तो कुछ बल नहीं। चन्द्रमा और शुक्र यदि पूरी राशि में हो तो १५ षष्टि-अंश, यदि ऊनी राशि में हो तो कुछ बल नहीं।

(xii) इसी प्रकार सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति और शनि यदि ओजराशि (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु या कुंभ) के नवांश में हों तो १५षष्टि-अंश। युग्म राशि (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर या मीन) के नवांश में कुछ नहीं। चन्द्रमा और शुक्र यदि युग्म राशि के नवांश में हों तो १५ षष्टि-अंश। ओज राशि के नवांश में हों तो कुछ नहीं।

श्रीपतिपद्धति के टीकाकारों ने (xi) और (xii) जो ऊपर पृथक्-पृथक् दिए गए हैं—इनमें पृथक्-पृथक् १५-१५ षष्टि-अंश बल माना है। इसके अनुसार, उदाहरण के लिए उदाहरण कुण्डली ३९(२) (देखिए पृष्ठ १५८) में चन्द्रमा मकर राशि, वृष नवांश में है, इसलिए चन्द्रमा को युग्म राशि बल १५ षष्टि-अंश तथा युग्म नवांश बल—१५ षष्टि—अंश=कुल ३० षष्टि-अंश युग्मायुग्म बल प्राप्त हुआ।

परन्तु केशवीय जातकपद्धति के टीकाकारों के अनुसार उदाहरण कुण्डली ३९(१) में (देखिए पृष्ठ १५७) सूर्य को धनु राशि मिथुन नवांश–ओज राशि, ओज नवांश में होने पर भी १५ षष्ट्यंश बल पंडित जीवनाथ जी ने लिखा है। इनके मत से ग्रह चाहे ओज राशि में हो, चाहे ओज नवांश में हो, चाहे राशि और नवांश दोनों में ओज में हो १५ षष्ट्यंश बल मिलेगा। इसी प्रकार चन्द्रमा और शुक्र यदि किसी कुण्डली में युग्म राशि, युग्म नवांश––दोनों में युग्म में हो तो भी १५ षष्टि-अंश ही बल प्राप्त होगा। यही दोनों पद्धतियों में अन्तर है।

इन्हीं स्थान बल के १२ भेदों को जातकपारिजातकार ने सामूहिक रूप से (i) उच्च बल, (ii) सप्त वर्गजबल, (iii) केन्द्रादि बल, (iv) द्रेष्काण बल, तथा (v) युग्मायुग्म बल—इन पांच भागों में विभक्त कर ५ भेद कहे हैं।

निसर्ग बल—एक प्रकार का। यह ऊपर श्लोक ३७ की व्याख्या में समझाया जा चुका है।

दृग्बल—वास्तव में जिस ग्रह के दृग्बल का विचार किया जा रहा है। उस पर जितने ग्रहों की पूर्ण या कम दृष्टि पड़ रही हो, उनमें शुभ दृष्टि बल का योग कर शुभ दृष्टि बल और पाप दृष्टि बल का योग कर पापदृष्टि का परिमाण कम और शुभ दृष्टि बल अधिक होने + (धनात्मक) तथा पाप दृष्टि अधिक होने से — (ऋणात्मक) माना जाता है, परन्तु ग्रंथकार ने परिणाम में + या — होने से एक ही प्रकार का माना है।

दिग्बल—ग्रंथकार ने एक प्रकार का कहा है। अन्य ग्रंथकारों ने भी एक ही प्रकार का माना है।

कालबल—इसके सात भेद होते हैं। यह ग्रंथकार ने कहा है। परन्तु काल बल का निर्देश करते समय, (ऊपर श्लोक ३६ में) ग्रंथकार ने केवल ६ भेद ही दिए हैं। इसका विवरण, संक्षेप में पद्धतियों के अनुसार दिया जाता है :—

(i) **नतोन्नतबल**—सूर्य, बृहस्पति, शुक्र को मध्य दिन में ६० षष्टि-अंश बल प्राप्त होता है। मध्य रात्रि में ० (शून्य)। बीच में अनुपात से। चन्द्र, मंगल तथा शनि को मध्य रात्रि में ६० षष्टि-अंश बल प्राप्त होता है, मध्य दिन में ० (शून्य)। बीच में अनुपात से। बुध को सदैव ६० षष्टि-अंश बल मिलता है। इसे नतोन्नत बल कहते हैं।

(ii) दिवारात्रि त्रिभाग बल निकालने के लिए दिन (दिनमान) के ३ भाग किए जाते हैं। इसी प्रकार रात्रि (रात्रि मान) के ३ भाग किये जाते हैं। इस प्रकार दिन-रात्रि के ६ खंड हुए। दिन के प्रथम खंड का स्वामी बुध, द्वितीय खण्ड का सूर्य, तृतीय खण्ड का शनि। रात्रि के प्रथम खण्ड का स्वामी

चन्द्रमा, द्वितीय का शुक्र, तृतीय का मंगल। जिस खंड में जन्म हो, उसके स्वामी को ६० अंश मिलता है। बृहस्पति को सदैव ६० अंश बल प्राप्त होता है। अन्य ग्रहों को ० (कुछ नहीं)। बृहत्पाराशर (उत्तर खण्ड) अध्याय २, श्लोक १८-१९ में यही लिखा है। केशवीय जातक बलसाधनाध्याय ४, श्लोक ८ में दिन रात्रि के ६ खंडों के यही स्वामी दिए हैं।

किन्तु उपर्युक्त नतोन्नत बल और दिवारात्रि त्रिभाग बल के तुलनात्मक अध्ययन से प्रकट है कि नतोन्नतबल में शुक्र को दिन में बली कहा और दिवा-रात्रि त्रिभाग बल में शुक्र को रात्रि में बली कहा। इसी प्रकार नतोन्नतबल में शनि को रात्रि में बली कहा और दिवारात्रि त्रिभाग बल में शनि को दिन में बली कहा। यह परस्पर विरोध क्यों ?

बृहज्जातक अध्याय २, श्लोक १९ में वराहमिहिर ने केवल नतोन्नतबल कहा है, दिवारात्रि त्रिभाग बल नहीं कहा है।

"निशि शशिकुजसौराः सर्वदा ज्ञोऽह्नि चान्ये"

केवल यह कहा है। रुद्रभट्ट इसकी टीका में लिखते हैं :—

"निशि शशिकुजसौरा इत्यत्र क्रमो विवक्षितः। शशी पूर्वभागस्य, तेन तदानीं मृष्टभोजनं संभवति। कुजो मध्यभागस्य, तेन तदानीं मारणविद्वेषणादि क्रूरकर्माणि कुर्वन्ति। अन्त्यभागस्य शनैश्चरः, तस्मिन्बलवति तदानीमुपासना-शास्त्रार्थविचिन्तादिकं च संभवति। हीनबले तदानीमतिनिद्रा। सर्वदा ज्ञः। बुधे बलवति सर्वदा विद्याभ्यासश्चिन्तनीयः। अन्यथा सर्वदा परिहासशीलः द्यूतादिभिर्वा। अन्ये दिवा। तत्र प्रातःकालस्य सूर्यः, तेन तदानीं देववन्दनादिकं सम्भवति, हीनबले अध्वगमनं च। मध्यन्दिनस्य जीवः, तेन तदानीं वैश्व-देवातिथिपूजा स्वभोजनं च सम्भवति। अन्त्यभागस्य शुक्रः, तेन तदानीं पुराण-काव्यनाटकादिकं च संभवति।"

अर्थात् रात्रि में चन्द्रमा, मंगल, शनि बलवान् होते हैं—इसमें क्रम विवक्षित है। रात्रि के प्रथम त्रिभाग में चन्द्रमा बलवान् होता है, इसलिए उस समय मृष्ट (प्रसाधित, रुचिकर) भोजन संभव होता है। रात्रि के द्वितीय त्रिभाग का अधिपति मंगल है इस कारण उस समय मारण, विद्वेषणादि क्रूर कर्म किए जाते हैं। रात्रि के अन्तिम त्रिभाग का स्वामी शनि है। यदि जन्मकुण्डली में शनि बलवान् हो तो उस समय उपासना, शास्त्रविचिन्तनादि होता है। यदि शनि बलहीन हो तो गाढ निद्रा। बुध सदैव बलवान् होता है। यदि जन्मकुण्डली में बुध बलवान् हो तो जातक सर्वदा विद्याभ्यासशील होता है। यदि बुध बलहीन हो तो सर्वदा परिहासशील (हँसी, मजाक करना)। द्यूत आदि (जुआ, ताश में पैसे लगाना) करता है। प्रातःकाल (दिन के प्रथम त्रिभाग का) स्वामी सूर्य है।

इसलिए उस समय देववन्दना (पूजा, भगवान् का दर्शन आदि) होती है। यदि सूर्य बलहीन होता है तो जातक रास्ता चलता (पैदल चलता) है। मध्याह्न (दिन के मध्य त्रिभाग) का स्वामी बृहस्पति है। इसलिए, उस समय वैश्वदेव, अतिथिपूजा तथा भोजन होता है। दिन के अन्तिम त्रिभाग का स्वामी शुक्र है। उस समय पुराण, काव्य, नाटकादि पठन में समय यापन होता है।

फलदीपिका अध्याय ४, श्लोक १ में श्रीसुब्रह्मण्य शास्त्री ने जो अंग्रेजी अनुवाद सहित संस्करण प्रकाशित किया है (जनवरी १९३७ में), उसमें काल बल के सन्दर्भ में पाठ है 'निश्यारेन्दुसितः' रात्रि में मंगल, चन्द्र तथा सित (शुक्र) बलवान् होते हैं। इसी पुस्तक से मूल पाठ हमारी भावार्थबोधिनी फलदीपिका में भी लिया गया है। किन्तु सन् १९३५ में सरकार ग्रंथमालान्तर्गत कलकत्ता से जो फलदीपिका का मूल पाठ प्रकाशित हुआ उसमें पाठ है 'निश्यारेन्द्वसितः' अर्थात् रात्रि में मंगल, चन्द्र तथा असित (शनि) बलवान् होते हैं।

दिवारात्रि त्रिभाग बल की व्याख्या में मतमतान्तर पाठकों के ज्ञान और विद्वानों के विनोद के लिए दिये गये हैं।

(iii) कालबल का तृतीय भेद पक्षबल है। चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र को शुक्ल पक्ष में बल मिलता है। जब सूर्य और चन्द्रमा एक दूसरे से ठीक १८० अंश पर हों तो ६० षष्टि अंश—जब सूर्य चन्द्रमा की अंशात्म युति (अमावस्या के अंत में) तब ० (शून्य)। मध्य में अनुपात से। सूर्य, मंगल, शनि को कृष्ण पक्ष में बल मिलता है। जब सूर्य और चन्द्रमा की अंशात्मक युति हो तब ६० षष्टि-अंश। जब सूर्य और चन्द्रमा ठीक १८०° दूर हों तब ० (शून्य)। मध्य में अनुपात से।

(iv) वर्षबल। जो ग्रह वर्षेश होता है, उसे १५ षष्टि-अंश बल मिलता है। अन्य को कुछ नहीं।

(v) मासबल। जो ग्रह मासेश (महीने का अधिपति) होता है, उसे ३० षष्टि-अंश। अन्य को कुछ नहीं।

(vi) दिनबल। जन्म के दिन जिस ग्रह का वार हो उसे ४५ षष्टि-अंश बल प्राप्त होता है। अन्य को कुछ नहीं। सूर्योदय से सूर्योदय तक एक ही वार माना जाता है। बहुत से आचार्य वार प्रवृत्ति दक्षिणोत्तर मध्यरेखा से मानते हैं। केशवीय जातकपद्धति का अवलोकन करें। परन्तु हम जन्मस्थान पर सूर्योदय से ही वार प्रवृत्ति मानते हैं।

(vii) होराबल। जिस ग्रह के होरा (होरा एक-एक घंटे बाद बदलती है। अन्यत्र समझाया गया है) में जन्म हो, उसे ६० षष्टि अंश बल प्राप्त

होता है। अन्य को कुछ नहीं। मुहूर्तमार्तण्ड में होरा ज्ञात करने का भिन्न प्रकार दिया है। परन्तु हम उस पक्ष में नहीं हैं।

चेष्टाबल—अन्य आचार्यों ने चेष्टाबल के अन्तर्गत तीन प्रकार के बल कहे हैं, परन्तु जातकपारिजातकार ने ५ भेद कहे हैं।

(i) ग्रहों की उत्तर क्रान्ति होती है या दक्षिण। उत्तर या दक्षिण कैसी और कितनी क्रान्ति है, इस आधार पर प्रत्येक ग्रह को जो बल प्राप्त होता है, वह अयन बल कहलाता है। वराहमिहिर ने बृहज्जातक अध्याय २, श्लोक २० में कहा है :—

उदगयने रविशीतमयूखौ
वक्रसमागमगाः परिशेषाः।
विपुलकरा युधि चोत्तरसंस्था-
श्चेष्टितवीर्ययुताः परिकल्प्याः ॥

इसके अनुसार सूर्य और चन्द्रमा उत्तर क्रान्ति होने से बलवान् होते हैं। परन्तु श्रीपतिपद्धति अध्याय ३ में कहा है कि चन्द्रमा की दक्षिण क्रान्ति होने से उसे बल प्राप्त होता है। बृहत्पाराशर उत्तरखण्ड अध्याय २, श्लोक २४ में भी चन्द्रमा और शनि दक्षिण क्रान्ति होने से बली कहे गए हैं। सारावली अध्याय ४, श्लोक ३७ में 'याम्यं शशिरविपुत्रौ'—अर्थात् दक्षिण क्रान्ति होने से चन्द्रमा और शनि को अयन बल प्राप्त होता है, यह उल्लेख है। बृहज्जातक के "उदगयने रविशीतमयूखौ" की एक संस्कृत टीकाकार व्याख्या करते हैं : 'उश्च दक् च एतयोः समाहारः उदक्। उरित्युत्तरायणं दगिति दक्षिणायनं च निर्दिश्यते। उदगयने उत्तर-दक्षिणायनयोः क्रमेण रविशीतमयूखौ सूर्यचन्द्रौ अस्तु। प्रचलित जातकपद्धतियों के अनुसार अयन बल गणित का प्रकार निम्न-लिखित है :—

(१) सूर्य, मंगल, बृहस्पति तथा शुक्र की उत्तर क्रान्ति यदि २४° हो तो ६० षष्टि अंश। यदि इन चार ग्रहों की दक्षिण क्रान्ति २४° हो तो शून्य (कुछ नहीं)। मध्य में अनुपात से।

(२) चन्द्रमा और शनि की यदि दक्षिण क्रान्ति २४° हो तो ६० षष्टि-अंश बल। यदि उत्तर क्रान्ति २४° हो तो ० (शून्य)। मध्य में अनुपात से।

(३) बुध की शून्य क्रान्ति (न उत्तर, न दक्षिण) हो तो ३० षष्टि-अंश। फिर चाहे उत्तर क्रान्ति हो चाहे दक्षिण क्रान्ति $\frac{30}{24}$ प्रति अंश के हिसाब से षष्टि-अंश ३० में जोड़ दिए जाते हैं। फलतः यदि बुध की उत्तर क्रान्ति २४°

हो तो भी ६० षष्टि अंश अथवा दक्षिण क्रान्ति २४° हो तो भी ६० षष्टि अंश अयन बल माना है।

आचार्यों ने ग्रहों की परमा क्रान्ति २४° (उत्तर या दक्षिण) मानी है, परन्तु यह शुद्ध नहीं है।

सूर्य और चन्द्रमा कभी वक्री नहीं होते। अन्य ताराग्रह (मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि) कभी वक्री होते हैं, कभी मार्गी। इस कारण मंगल आदि ५ ताराग्रहों को वक्र बल प्राप्त होता है—कब, किस परिस्थिति में, कितना—यह आगे कहा जायेगा। सूर्य और चन्द्रमा वक्री नहीं होते इसलिए यह वक्र-बल के अधिकारी नहीं हैं। तब इनको वक्र-बल के बदले में क्या मिलता है ? सूर्य को जितना अयन बल मिलता है, उसको दुगुना कर दिया जाता है। चन्द्रमा को जो पक्षबल प्राप्त होता है, उसको दुगुना कर दिया जाता है।

अन्य ग्रहों को कब, कितना वक्र बल प्राप्त होता है ? पराशर ने कहा है :—

षष्टि वक्रगते वीर्यमनुवक्रगते दलम्।
पादं विकलभुक्तेः स्याद्बलमेव समागमे॥
पादं मन्दगतेस्तस्य दलं मन्दतरस्य च।
शीघ्रभुक्तेस्तु पादोनं दलं शीघ्रतरस्य तु॥

वक्र बल कहते हैं : "जो ग्रह वक्री है उसका बल ६० षष्टि-अंश और जो सरल सीधी गति है उसका ३० षष्टि-अंश बल लेना। जो सूर्य के साथ है उस का १५ षष्टि-अंश बल, जो चन्द्रमा के साथ है उसका ३० षष्टि-अंश (इसे समागम कहते हैं—आगे व्याख्या करेंगे)। जो मन्द गति है उसका बल १५ षष्टि-अंश, पूर्व से अल्प गति होवे उसका ७·५ षष्टि-अंश, शीघ्र ग्रह गति का बल ४५ षष्टि-अंश तथा अतिशीघ्र गति का ३० षष्टि-अंश"।

यह बंबई से प्रकाशित बृहत्पाराशर उत्तर खण्ड अध्याय २ में वक्र-बल गणित का प्रकार बताया है, व्याख्या के अनुसार ऊपर लिखा गया है।

प्रचलित प्रणाली ग्रहों का मध्य स्पष्ट, ग्रह स्पष्ट, शीघ्रोच्च चेष्टा केन्द्र आदि निकाल कर वक्र बल निकालने की है। इसके लिए केशवीय जातक का अवलोकन करें। यहाँ विस्तार भय से प्रक्रिया नहीं दी जा रही है।

(iii) चन्द्र समागम में जो ताराग्रह (सूर्य नहीं) चन्द्रमा के साथ होता है, उसे ३० षष्टि-अंश बल प्राप्त होता है। पृष्ठ १६३ पर जो बृहज्जातक का श्लोक दिया गया है, उसमें भी समागम शब्द आया है। इसकी टीका में रुद्रभट्ट लिखते हैं 'समागमं प्राप्ताश्चन्द्रसमीपस्था इति यावत्' अर्थात् जो ग्रह चन्द्र के समीप हो। भट्टोत्पल लिखते हैं, 'समागमगाश्चन्द्रेण सहिता बलिन एव, चन्द्रेण

सह संयोगो ग्रहाणां समागमशब्दवाच्यः"। परन्तु सम्प्रदायानुसार चन्द्र और किसी ताराग्रह का अंशात्मक योग हो, अर्थात् चन्द्रमा और ताराग्रह १ अंश के अभ्यन्तर में हों तभी समागम मानते हैं।

(iv) जब ग्रह विपुलकर (देदीप्यमान किरणों सहित) हो। वराह-मिहिर के बृहज्जातक अध्याय २ के श्लोक में 'विपुलकर' की टीका में लिखते हैं "शीघ्रकेन्द्रद्वितीयपदस्थग्रहस्य विपुलकरत्वं प्रायः संभवति"। बल का कितना परिमाण लेना यह नहीं लिखा।

(v) पाँचवां बल जो चेष्टाबल के अन्तर्गत लिया जाता है—जो बृहज्जातक अध्याय २, श्लोक में लिखा है वह युद्धबल है। यह पाँचों ताराग्रहों के बीच हो सकता है। श्रीपतिपद्धति अध्याय ३ में लिखा है कि जब दो ग्रहों की राशि, अंशकला बिल्कुल एक हो, तब उनमें युद्ध होता है। जो ग्रह उत्तर में होता है वह विजयी होता है। जो दक्षिण में होता है वह पराजित समझा जाता है, परन्तु रुद्रभट्ट अपनी टीका में लिखते हैं कि कदाचित् दक्षिण दिशा में रहने पर भी शुक्र जयी हो जाता है :

कदाचिद्दक्षिणस्थोऽपि जयी शुक्रः प्रकीर्त्यते।
वर्णरश्मिप्रभायोगादूह्यं चैतत् स्वया धिया॥

युद्धबल निकालने में गणित की आवश्यकता होती है। विस्तार भय से गणित प्रक्रिया यहाँ नहीं दी जा रही है। केशवीय पद्धति या श्रीपतिपद्धति का अवलोकन करें।

इस प्रकार ५ या अधिक रूप (१ रूप में ६० षष्टि-अंश होते हैं) बल होने से ग्रह बली होता है। यह बल—जिस ग्रह को जितने रूप, षष्टि-अंश, विषष्टि-अंश (एक षष्टि-अंश का साठवाँ भाग)—सबका योग कर बनाना चाहिए। किस ग्रह को ५ रूप बल प्राप्त होने से बली समझा जाये, किसको अधिक रूप मिलने से यह आगे श्लोक ४० में कहेंगे।

पूर्णबली—कौनसा ग्रह कितने रूप बल प्राप्त करने से होता है, उसी परिमाण से त्रिपाद (पौना) बली है, या आधा बली है यह निश्चय करना॥ ३६-३९॥

बल प्रमाण

अर्धाधिकं षट्कमिनस्य सूरेः शुक्रस्य पञ्चाधिकमर्धरूपम्।
सप्तेन्दुपुत्रस्य बलं षडिन्दोः सौरारयोः सायकरूपसंख्या॥ ४०॥

किस ग्रह को कितने रूप बल प्राप्त होने से बली कहा जाये, यह कहते हैं। छहों बलों के योग को षट्बल पिंड कहते हैं। यहाँ कितना षड्बल पिंड होने से ग्रह बली होता है यह कहा है।

सूर्य ६.५ (साढ़े छः); चन्द्रमा ६; मंगल ५; बुध ७; बृहस्पति ६.५; शुक्र ५.५; तथा शनि ५।

छहों प्रकार के बल जोड़ने पर कितने रूप प्राप्त होने पर ग्रह बली होता है यह तो कहा—किन्तु स्थान बली होने से क्या प्रभाव होता है, काल बली ग्रह क्या शुभ प्रभाव करता है, दिग्बली क्या, यह सब विवरण सारावली में दिया गया है। इसलिए षट् बल के प्रत्येक विभाग—स्थान, काल, दिक् आदि में कितना बल प्राप्त होने से ग्रह बली समझा जाये, यह बृहत्पाराशर उत्तर खण्ड अध्याय २ से दिया जाता है:—नीचे बल परिमाण षष्टि-अंशों में दिया जाता है।

	स्थान	काल	दिक्	चेष्टा	अयन
सूर्य	१६५	११२	३५	५०	३०
चन्द्र	१३३	१००	५०	३०	४०
मंगल	९६	६७	३०	४०	२०
बुध	१६५	११२	३५	५०	३०
गुरु	१६५	११२	३५	५०	३०
शुक्र	१३३	१००	५०	३०	४०
शनि	९६	६७	३०	४०	२०

स्थान, काल आदि के नीचे १६५ आदि संख्या षष्टि-अंशों की है। ६० षष्टि-अंशों का एक रूप होता है। ऊपर जो प्रत्येक बल में यह कहा कि कम से कम इतने षष्टि अंश स्थान बल में प्राप्त होने चाहिएं इसके दो प्रयोजन हैं। प्रथम प्रयोजन उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है—जैसे परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए यह कहा जाये कि योग में ५० प्रतिशत अंक प्राप्त होने चाहिएं किन्तु प्रत्येक प्रश्नपत्र में ४० प्रतिशत। दूसरा प्रयोजन सारावली अध्याय २८-४३ के निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट होगा।

जो ग्रह उच्च बल से युक्त होता है वह अत्यन्त अधिक वैभव करता है। मूल त्रिकोण गत ग्रह राजा का मंत्री या सेनापति बनाता है। यदि ग्रह स्वराशि का हो तो जातक को प्रमुदित (हर्षयुक्त, सुखी), धन, धान्य से युक्त सम्पत्ति-शाली बनाता है। यदि मित्र के घर में हो तो जातक को यशस्वी करता है। वह तेजस्वी, सुन्दर और स्थिर-सम्पत्ति वाला होता है। उसे राजा से धन प्राप्त होता है। यदि ग्रह होरा (राशि का आधा भाग) में बलवान् हो तो जातक

पराक्रमी होता है। द्रेष्काण में बली ग्रह जातक को गुणभाजन (गुणी) बनाता है। जो ग्रह अपने नवांश में बली हो वह जातक को प्रसिद्धि प्रदान करता है। सप्तमांश में बली ग्रह मनुष्य को साहसी, धनी और कीर्तियुक्त करता है। द्वादशांश में बली जातक को कर्मठ और परोपकारी बनाता है। त्रिशांश में बली हो तो जातक सुखी और गुणवान् होता है। अब दृग्बल कहते हैं। यदि ग्रह शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो जातक को धनी और विख्यात करता है। वह सुन्दर, सुखी होता है और प्रधान (पद पर प्रतिष्ठित) होता है। पुनः स्थान-बल कहते हैं।।

पुरुष या स्त्री राशि में बली ग्रह (कुछ ग्रह पुरुष राशि में बली, कुछ स्त्री राशि में यह बतलाया जा चुका है) जातक को जन-पूजित (सम्मानित) और कलाकुशल बनाता है। ऐसा जातक प्रसन्नचित्त, स्वस्थ और परलोक-भीरु (अर्थात् धार्मिक) होता है। अब स्थान बल में सामूहिक रूप से बली ग्रह का फल कहते हैं कि यदि स्थान बल में बली होता है तो जातक धीर, निश्चलचित, स्वतंत्र कार्य करने वाला, स्थिर-सम्पत्ति (सदैव धन और सम्पत्ति युक्त) होता है और उसके स्थायी मित्र (जो सदा मित्रता निभायें) होते हैं।

अब दिग्बलीग्रह का फल कहते हैं—दिग्बलीग्रह अपनी दिशा में ले जाता है और वहाँ वह वस्त्र, विभूषण, वाहन (सवारी) आदि प्राप्त कराता है और जातक सुखी होता है।

अब अयन बली ग्रह का फल कहते हैं। अयनबली ग्रह अपनी दशा में विविध धन लाभ कराता है। यदि ग्रह अपनी नीच राशि में न हो और अस्त न हो तो जातक कीर्तिमान् होता है।

अब चेष्टाबल कहते हैं। चेष्टाबल युक्त ग्रह क्वचित् राज्य दिलाता है, क्वचित् सम्मान प्राप्त कराता है, क्वचित् द्रव्य दिलाता है, क्वचित् यश। यह भिन्न-भिन्न प्रकार के फल करता है।

अब वक्री ग्रह का फल कहते हैं। वक्री ग्रह अत्यन्त बली होते हैं। शुभ ग्रह वक्री होने से राज्य प्रदान करते हैं। पाप ग्रह वक्री होने से दुःख प्रदान करते हैं और जातक को वृथा भ्रमण कराते हैं।

पुनः कहते हैं कि जो ग्रह युद्ध में जयी, चन्द्र समागम युक्त, स्वस्थ शरीर (अस्त नहीं) होता है वह समस्त शुभ फल प्रदान करता है, राज्य देता है। ऐसा जातक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है।

अब काल बल कहते हैं। जो ग्रह रात्रि-दिन सम्बन्धी बल से युक्त हो वह जातक के शौर्य की वृद्धि करता है। ऐसा जातक लक्ष्मीवान् होता है और शत्रुओं को परास्त करता है। जो ग्रह वर्षबल, मासबल, दिवसबल, होराबल से

युक्त हो वह अपनी दशा में धन और यश देता है। वर्षबली से अधिक शुभ फल मासबली का, मासबली से अधिक शुभ फल दिवसबली का और दिवसबली से अधिक शुभफल होराबली ग्रह का होता है।

जो ग्रह पक्षबल में बली हो वह शत्रुओं का नाश कराता है। रत्न, वस्त्र, हाथी (उत्कृष्ट वाहन) और सम्पत्ति प्राप्त कराता है। जातक को स्त्री, कनक (सोना), भूमि और कीर्ति का लाभ कराता है।

जो ग्रह सब (छहों) प्रकार के बल से युक्त हो, प्रकाशमान् किरणों से युक्त हो (अर्थात् अस्त न हो) वह जातक के मनोरथों से भी अधिक राज्य और सौख्य प्रदान करते हैं ॥ ४० ।

ग्रहों की मित्रता

अन्योन्यतः सोदरलाभमानपातालवित्तव्ययराशिसंस्थाः।
तत्कालमित्राणि खगा भवन्ति तदन्ययाता यदि शत्रवस्ते ॥ ४१ ॥
मित्राणि भानोः कुजचन्द्रजीवाः शत्रू सितार्को शशिजः समानः।
चन्द्रस्य मित्रे दिननायकज्ञौ समा गुरुक्ष्माजसितासिताः स्युः ॥ ४२ ॥
आरस्य मित्राणि रवीन्दुजीवाश्चान्द्री रिपुः शुक्रशनी समानौ।
सूर्यासुरेज्यौ सुहृदौ बुधस्य समाः शनीज्यावनिजास्त्वरीन्दुः ॥ ४३ ॥
सूर्यारचन्द्राः सुहृदस्तु सूरेः शत्रू सितज्ञौ रविजः समानः।
मित्रे शनिज्ञौ भृगुनन्दनस्येन्द्विनावरी जीवकुजौ समानौ ॥ ४४ ॥
मन्दस्य सूर्येन्दुकुजाश्च शत्रवः समः सुरेज्यः सुहृदौ सितेन्दुजौ।
तत्कालनैसर्गिकतश्च पञ्चधा पुनः प्रकल्प्यास्त्वतिमित्रशत्रवः ॥ ४५ ॥
द्वयोः सुहृत्त्वं त्वतिमित्रता भवेद् द्विधाऽरयस्ते तु सदाऽतिशत्रवः।
सुहृत्समत्वं सुहृदेव केवलं रिपुः समारिस्त्वरिमित्रतासमः ॥ ४६ ॥

ग्रहों में मित्रता दो प्रकार की होती है नैसर्गिक और तात्कालिक। नैसर्गिक मित्रता, शत्रुता, समता (अर्थात् न मित्रता न शत्रुता) निम्नलिखित है :—

	मित्र	सम	शत्रु
सूर्य	चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध	शुक्र, शनि
चन्द्र	सूर्य, बुध	मंगल, बृहस्पति शुक्र, शनि।	×
मंगल	सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति	शुक्र, शनि	बुध

बुध	सूर्य, शुक्र	मंगल, बृहस्पति, शनि	चन्द्र
बृहस्पति	सूर्य, चन्द्र, मंगल	शनि	बुध, शुक्र
शुक्र	बुध, शनि	मंगल, बृहस्पति	सूर्य, चन्द्र
शनि	बुध, शुक्र	बृहस्पति	सूर्य, चन्द्र, मंगल

(२) तात्कालिक मित्रता में, जिस ग्रह के मित्रों और शत्रुओं का विचार कर रहे हैं, उस ग्रह से जो द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, दशम, एकादश, द्वादश में स्थित ग्रह हो वह मित्र होता है। विचारणीय ग्रह के साथ (उसी राशि में) जो ग्रह हो या उससे पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम या नवम में हो वह ग्रह शत्रु होता है। इसमें कोई ग्रह सम नहीं होता। राशि से राशि तक गणना करनी चाहिए।

(३) अब दोनों प्रकार की मित्रता, शत्रुता आदि का सामञ्जस्य कर, जो परिणाम में मित्र, शत्रु आदि हो, उसे पंचधा (पाँच प्रकार की) मैत्री विचार कहते हैं। पंचधा या पाँच प्रकार का क्यों कहा है? नैसर्गिक के तीन प्रकार मित्र शत्रु, सम तथा तात्कालिक के दो प्रकार—इस प्रकार पांच प्रकार हुए। (i) जो दोनों प्रकार (नैसर्गिक तथा तात्कालिक) से मित्र हो वह अधिमित्र, (ii) जो दोनों प्रकार से शत्रु हो वह अधिशत्रु, (iii) जो एक प्रकार से मित्र हो, दूसरे प्रकार से शत्रु वह सम, (iv) जो नैसर्गिक में सम हो, तात्कालिक में मित्र वह परिणाम में मित्र, (v) जो नैसर्गिक में सम हो, तात्कालिक में शत्रु वह शत्रु। इस प्रकार पांच प्रकार के संबंध होते हैं, इस कारण भी पंचधा कहा। यह मित्रता, शत्रुता आदि का विषय प्रायः सभी ज्योतिष की पुस्तकों में दिया रहता है, इस कारण विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए देखिए हमारी सुगमज्यौतिषप्रवेशिका पृष्ठ, ३४-३७।

जन्मकुण्डलियों में सूर्यादि सातों ग्रहों के ही मित्रामित्र लगाने की प्रणाली है। मंत्रेश्वर के अनुसार राहु और केतु के मित्र बुध, शुक्र तथा शनि हैं, मंगल सम है। सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति शत्रु हैं। देखिए फलदीपिका पृष्ठ ५१ ॥ ४१-४६ ॥

ग्रहों का स्थिरत्वादि

रविः स्थिरः शीतकरश्चरः स्यादुग्रः कुजश्चन्द्रसुतस्तु मिश्रः ।
मृदुः सुरेज्यो भृगुजो लघुश्च शनिः सुतीक्ष्णः कथितो मुनीन्द्रैः ॥ ४७ ॥

सूर्य स्थिर है। चन्द्रमा चर है। मंगल उग्र है। बुध मिश्रित स्वभाव का है। बृहस्पति मृदु है। शुक्र लघु है। शनि सुतीक्ष्ण है। ग्रहों की जो यह प्रकृति बताई गई इसका प्रयोजन यह है कि लग्नेश, लग्न में स्थित, लग्न को देखने वाले ग्रह या ग्रहों की प्रकृति जातक में होती है। इसके अतिरिक्त जब जैसे ग्रह की महादशा, अन्तर्दशा होती है, तब वैसी प्रकृति जातक की हो जाती है। अन्य ग्रहों की प्रकृति, स्थिर, चल (चलायमान) आदि स्पष्ट है, परन्तु शुक्र के लिए लघु कहा, इसका क्या तात्पर्य? लघु शब्द के अनेक अर्थ हैं—हल्का, जो भारी न हो, अशक्त, मन्दप्रकृति, कोमल, प्रिय, मनोहर, सुन्दर, सुखद, रुचिकर, वांछनीय आदि ॥ ४७ ॥

बाधक ग्रह

क्रमाच्च रागद्विशरीरभानामुपान्त्यधर्मस्मरगास्तदीशाः।
खरेशमान्दिस्थितराशिनाथा ह्यतीव बाधाकरखेचराः स्युः ॥ ४८ ॥

यदि कोई ग्रह खर या मान्दि का स्वामी हो, और—

(i) जन्मलग्न चर (मेष, कर्क, तुला या मकर) हो, और ग्यारहवें घर में बैठा हो या ग्यारहवें घर का मालिक हो या

(ii) जन्मलग्न स्थिर (वृष, सिंह, वृश्चिक या कुंभ) हो और नवें घर में बैठा हो या नवें घर का मालिक हो, या

(iii) जन्मलग्न द्विस्वभाव (मिथुन, कन्या, धनु या मीन) हो और सातवें घर में बैठा हो, या सातवें घर का मालिक हो, तो बाधक कहलाता है। प्रत्येक भाव से इसका विचार करना चाहिए।

उदाहरण– कुण्डली में तृतीय भाव का विचार करना है। तृतीय भाव में तुला राशि है। यह चर राशि है। इससे एकादश सिंह है। इसमें बृहस्पति बैठा है। मान्दि धनु है। मान्दि-पति बृहस्पति तृतीय (तुलाचर) से एकादश है। इसलिए बृहस्पति तृतीय भाव के लिए अनिष्ट है।
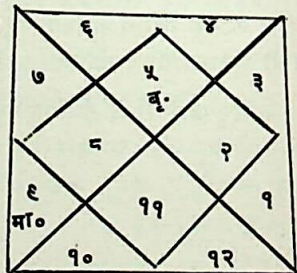
यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण उदित हो तो बृहस्पति-खर २२व, द्रेष्काण का स्वामी भी हो जायेगा।

बाधक ग्रह की दशा, अन्तर्दशा अनिष्ट होती है ॥ ४८ ॥

सूर्यादि ग्रहों से फल विशेष चिन्ता

भाव और भावेश से तो विचार किया ही जाता है। परन्तु प्रत्येक ग्रह भी अनेक विषयों, वस्तुओं आदि का कारक होता है। जन्मकुण्डली विचार में पिता का विचार करना है तो केवल दशम भाव, दशमेश का विचार न कीजिए अपितु सूर्य का भी विचार कीजिए। उत्तर भारत में दशम से पिता का विचार करते हैं, दक्षिण भारत में नवम से। यदि माता का विचार करना है तो केवल चतुर्थ तथा चतुर्थेश से विचार न कीजिए, अपितु चन्द्रमा से भी विचार कीजिए। इन नीचे के श्लोकों में यही बताया है—किस बात के शुभाशुभ के लिए, किस ग्रह से विचार करना।

> सूर्यादात्मपितृप्रभावनिरुजाशक्तिश्रियश्चिन्तयेत्
> चेतोबुद्धिनृपप्रसादजननीसम्पत्करश्चन्द्रमाः।
> सत्त्वं रोगगुणानुजावनिसुतज्ञातीर्धरासूनुना
> विद्याबन्धुविवेकमातुलसुहृत्त्वक्कर्मकृद्बोधनः॥ ४९॥
> प्रज्ञावित्तशरीरपुष्टितनयज्ञानानि वागीश्वरात्
> पत्नीवाहनभूषणानि मदनव्यापारसौख्यं भृगोः।
> आयुर्जीवनमृत्युकारणविपत्सम्पत्प्रदाता शनिः
> सर्पेणैव पितामहं तु शिखिना मातामहं चिन्तयेत्॥ ५०॥

(i) सूर्य से आत्मा (तथा अपने शरीर का भी), पिता, प्रभाव (पराक्रम) नीरोगता (उत्तम स्वास्थ्य), शक्ति मूल में आशक्तिः लिखा है। उसका अर्थ है आसमन्तात् शक्तिः—चारों ओर अपनी शक्ति अर्थात् प्रताप), लक्ष्मी (पराक्रम से उपार्जित) का विचार करे।

(ii) चित्त, बुद्धि, राजा की कृपा, माता तथा सम्पत्ति का कारक चन्द्रमा है।

(iii) मंगल सत्त्व (शारीरक बल तथा साहस), रोग, गुण (शौर्य, पराक्रम, कार्यक्षमता), छोटे भाई (तथा बहिन), जमीन, ज्ञाति (दायाद, चचेरे भाई आदि) का कारक है।

(iv) बुध से विद्या, बन्धु, विवेक, मामा, मित्र, शरीर की त्वचा, कर्म (कार्यपटुता, कार्य में संलग्नता)—इनका विचार करे।

(v) बृहस्पति से प्रज्ञा (बुद्धि), धन, शरीर पुष्टि, तनय (पुत्र) ज्ञान का विचार करना चाहिए।

(vi) शुक्र से पत्नी, सवारी, भूषण, मदन (काम, रति) व्यापार, सुख (भोग) का विचार करे।

(vii) शनि, आयु (कितना जियेगा), जीवन (जीविका), मृत्यु का का कारण, विपत्ति (दुःख, कठिनाइयाँ) तथा सम्पत्ति (जो परिश्रम से उपार्जित की जाये) का प्रदाता (देने वाला या कारक) है।

(viii) राहु से बाबा का विचार करे, और

(ix) केतु से नाना का ॥ ४९-५० ॥

ग्रहों का भाव कारकत्व

ऊपर किन विषयों, वस्तुओं या सम्बन्धियों का कारक कौन-सा ग्रह है, यह बताया। अब यह कहते हैं कि किस भाव का कौन-सा ग्रह कारक है। उस भाव से जिन-जिन बातों का विचार किया जाता है, उन-उन सब बातों का विचार, उस भावकारक से भी करना चाहिए। उदाहरण के लिए सूर्य प्रथम भाव का कारक है तो जो विचार आप लग्न या लग्नेश से करते हैं, उनका विचार सूर्य से भी कीजिए। द्वितीय भाव का कारक बृहस्पति है तो जिन बातों का विचार आप द्वितीय भाव या द्वितीय भाव के स्वामी से करते हैं, उनका विचार द्वितीय भाव से भी कीजिए। जब कोई भाव, भावेश तथा भावकारण तीनों बलवान्, शुभ स्थित, शुभ दृष्ट होते हैं तभी उस भाव सम्बन्धी पूर्ण शुभ फल होता है। यदि भावेश अच्छा है, भाव कारक दुर्बल है तो पूर्ण शुभ फल नहीं होगा। कारक का बहुत महत्त्व है। किस भाव का कौन-सा ग्रह कारक है यह कहते हैं।

द्युमणिरमरमन्त्री भूसुतः सोमसौम्यौ
गुरुरिनतनयारौ भार्गवो भानुपुत्रः।
दिनकरदिविजेज्यौ जीवभानुज्ञमन्दाः
सुरगुरुरिनसूनुः कारकाः स्युर्विलग्नात् ॥ ५१ ॥

पहले भाव का कारक सूर्य, दूसरे का बृहस्पति, तीसरे का मंगल, चौथे के चन्द्रमा और बुध, पाँचवें का बृहस्पति, छठे के मंगल और शनि, सातवें का शुक्र, आठवें का शनि, नवें के सूर्य और बृहस्पति, दसवें के सूर्य, बुध, बृहस्पति और शनि, ग्यारहवें का बृहस्पति और बारहवें का शनि—इस प्रकार प्रत्येक भाव के कारक होते हैं।

हमारी भावार्थबोधिनी फलदीपिका, पृष्ठ ३०-३४, ३९-४२, २८३-९१, २९७-९९, ३०१-०३, ३१८-१९, तथा जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका) के भाव-विचार-प्रकरण पृष्ठ, १६५-२०० में हमने कारकत्व और तदनुसार फलादेश का विवेचन किया है। वह विस्तार भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है। जिज्ञासु पाठक उन ग्रंथों का अवलोकन करें॥ ५१ ॥

स्थान विशेषों में ग्रहों की शुभाशुभप्रवता

कामावनीनन्दनराशियाताः सितेन्दुपुत्रामरवन्द्यमानाः।
अरिष्टदास्तेऽखिलजातकेषु सदाऽष्टमस्थः शनिरिष्टदः स्यात्॥ ५२॥

बुध चौथे घर में, बृहस्पति पाँचवें घर में और शुक्र सातवें घर में अरिष्ट करते हैं। अर्थात् इनका इष्ट प्रभाव नहीं होता प्रत्युत कष्टकारक होते हैं। शनि अष्टम में अच्छा फल देता है॥ ५२ ॥

मंत्रेश्वर के मत के लिए देखिए फलदीपिका, पृष्ठ ३०३

ग्रहों के स्वरूप

प्रतापशाली चतुरस्रदेहः श्यामारुणाङ्गो मधुपिङ्गलाक्षः।
पित्तात्मकः स्वल्पकचाभिरामो दिवाकरः सत्त्वगुणप्रधानः॥ ५३॥
सञ्चारशीलो मृदुवाग्विवेको शुभेक्षणश्चारुतरस्थिराङ्गः।
सदैव धीमांस्तनुवृत्तकायः कफानिलात्मा च सुधाकरः स्यात्॥ ५४॥

क्रूरेक्षणस्तरुणमूर्त्तिरुदारशीलः
पित्तात्मकः सुचपलः कृशमध्यदेशः।
संरक्तगौररुचिरावयवः प्रतापी
कामी तमोगुणरतस्तु धराकुमारः॥ ५५॥

दूर्वादलद्युतितनुः स्फुटवाक् कृशाङ्गः
स्वामी रजोगुणवतामतिहास्यलोलः।
हानिप्रियो विपुलपित्तकफानिलात्मा
सद्यः प्रतापविभवः शशिजश्च विद्वान्॥ ५६॥

बृहदुदरशरीरः पीतवर्णः कफात्मा
सकलगुणसमेतः सर्वशास्त्राधिकारी।
कपिलरुचिकचाक्षः सात्त्विकोऽतीव धीमान्
अलघुनृपतिचिह्नः श्रीधरो देवमन्त्री॥ ५७॥

असितकुटिलकेशः श्यामसौन्दर्यशाली
समततरुचिराङ्गः सौम्यदृक् कामशीलः ।
अतिपवनकफात्मा राजसः श्रीनिधानः
सुखबलसुगुणानामाकरश्चासुरेज्यः ॥ ५८ ।
काठिन्यरोमावयवः कृशात्मा दूर्वासिताङ्गः कफमारुतात्मा ।
पीनद्विजश्चारुपिशङ्गदृष्टिः सौरिस्तमो बुद्धिरतोऽलसः स्यात् ॥ ५९ ॥

अब ग्रहों का स्वरूप कहते हैं। जन्मकुंडली में लग्नस्थित लग्नद्रष्टा, लग्नेश ग्रह के अनुसार, नवांशपति तथा बलवान् ग्रह के अनुसार भी, जातक के स्वरूप निश्चय करने में इसका उपयोग किया जाता है। प्रश्नकुंडली में भी यह उपयोगी होता है। जन्मकुण्डली में किस स्वरूप के व्यक्ति से मित्रता या शत्रुता होगी, किस स्वरूप के व्यक्ति से लाभ या हानि होगी ? इस निर्णय में भी ये स्वरूप सहायक होते हैं :—

सूर्य प्रतापशाली, चौकोर शरीर वाला, श्यामता लिए हुए, ललाई वर्ण वाला, मधु पिंगल (शहद के रंग की भूरी आँखें) दृष्टि वाला होता है। इसमें पित्त (दोष) अधिक होता है, केश थोड़े होते हैं। यह सत्त्वगुण प्रधान है। चन्द्रमा संचारशाली (चलने-फिरने, घूमने, यात्रा का शौकीन), मृदु वाणी वाला, विवेकी (उचित अनुचित विचार की क्षमता और उसके अनुरूप व्यवहार करने वाला), सुन्दर नेत्र वाला, देखने में आकर्षक, मनोहर, स्थिर अंगों से युक्त, सदैव लक्ष्मी (तथा कान्ति) से युक्त, छोटा गोलाई लिए शरीर वाला होता है। इसमें कफ और वायु की अधिकता रहती है। मंगल की क्रूर दृष्टि है, युवा है (लग्न में मंगल होने से अधिक अवस्था में भी जवान लगता है), उदार प्रकृति का है। इसकी कमर पतली होती है, प्रकृति से चपल है और इसमें पित्त की अधिकता है। यह ललाइ लिये हुए गौर वर्ण का है; इसके अवयव (शरीर के भाग) रुचिर हैं। यह प्रतापी और कामी है। इसमें तमोगुण (क्रोध, ईर्ष्या आदि) विशेष हैं।

बुध का वर्ण नवीन दूर्वा (दूब) के सदृश है। वाणी स्पष्ट है; कृश शरीर है; रजोगुण वालों में प्रधान है, अत्यन्त हास्यप्रिय (हँसी, मज़ाक, मनोविनोद कौतुकप्रिय) है। यह हानिप्रिय (दूसरे की हानि कर उससे प्रसन्न होता है) है। इसमें वात, पित्त, कफ तीनों की प्रधानता है। यह तत्काल प्रताप, वैभव

युक्त है और विद्वान् है। बृहस्पति का बड़ा पेट है और शरीर भी विशाल है, पीला वर्ण है, इसमें सब सद्गुण हैं, सर्वशास्त्राधिकारी है (अर्थात् सब शास्त्रों में निष्णात है) इसमें कफ (दोष) अधिक है। इसके केश और नेत्र कपिल वर्ण के हैं। कपिल का अर्थ है—भूरा, आरक्त। यह अत्यन्त श्रीमान् (लक्ष्मी युक्त) है और धीमान् (बुद्धियुक्त) है। कफप्रधान है; सात्त्विक है; भारी है (लघु नहीं), यह राजचिह्नों (छत्र, चामर आदि) से युक्त है। अब शुक्र का स्वरूप कहते हैं। शुक्र के काले और कुटिल (घुंघराले) केश हैं। यह श्यामता लिए हुए अत्यन्त सौन्दर्यशाली है। यह समंततः (चारों ओर से समान विस्तार वाला शरीर) है; इसकी सौम्य दृष्टि है, कामवासना प्रधान है (लग्न या सप्तम में शुक्र होने से या जन्मकुण्डली में कहीं भी बलवान् शुक्र होने से जातकविशेष कामी होता है)। इसमें वात और कफ का आधिक्य है। रजोगुणी है; लक्ष्मी का निधान (अर्थात् प्रचुर धन वैभव सम्पन्न) है। शुक्र सुख, बल और गुणों का आकर (जहाँ कोई वस्तु प्रचुर मात्रा में हो) है।

अब शनि का स्वरूप कहते हैं। इसके अवयव (शरीर के विविध अंग) और रोम कठोर हैं, कृश शरीर है; दूर्वा के समान श्याम वर्ण है। इसमें वात और कफ की प्रधानता है। दाँत बड़े हैं। सुन्दर और पिशंग दृष्टि है। पिशंग ललाई लिये भूरे रंग को कहते हैं। शनि तमोगुण-प्रधान और आलसी है।

यहाँ एक विशेष सिद्धान्त की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जाता है। ग्रह के उच्च, मूल त्रिकोण, स्व, अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु, अधिशत्रु, नीच राशि में होने से—विविध राशियों तथा भावों में होने से, शुभ या पाप दृष्ट होने से ग्रहों के स्वभाव, प्रकृति, स्वरूप आदि में भेद हो जाता है। इस कारण एक ही ग्रह से प्रभावित दो जातकों में भिन्न-भिन्न फल दृष्टिगोचर होते हैं॥ ५३-५९ ॥

अर्केण मन्दः, शनिना महीसुतः
कुजेन जीवो गुरुणा निशाकरः।
सोमेन शुक्रोऽसुरमन्त्रिणा बुधो
बुधेन चन्द्रः खलु वध्यते सदा ॥ ६० ॥

मुद्रित संस्करणों में इस श्लोक के तीन विभिन्न पाठ हैं। काशी से प्रकाशित पुस्तक में 'वर्द्धते' छपा है। मराठी व्याख्या सहित श्री नवाथे की निर्णय सागर बम्बई में मुद्रित पुस्तक में 'बध्यते' पाठ है। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री द्वारा अनूदित ग्रंथ में वध्यते पाठ है। अस्तु वध्यते या बध्यते के बाधित होने का फल यदि एक

ही मान लिया जाय—तो भी वर्द्धते—वृद्धि को प्राप्त होना—और बध्यते—बाधित होना—इन दोनों का अर्थ परस्पर विरुद्ध हो जायेगा। एक दिन, दूसरा रात, एक सफेद दूसरा काला। अन्य फलित ग्रंथों में—इस भाव का कोई श्लोक देखने में नहीं आया, जिससे मूल ग्रंथ का शुद्ध पाठ दिया जा सके।

यदि बध्यते पाठ माना जाये तो अर्थ होगा—सूर्य से शनि, शनि से मंगल, मंगल से बृहस्पति, बृहस्पति से चन्द्र, चन्द्रमा से शुक्र, शुक्र से बुध, बुध से चन्द्रमा सदैव बाधित होते हैं अर्थात् सूर्य शनि के साथ हो या सूर्य की शनि पर दृष्टि हो तो शनि का फल बाधित हो जाता है। इस अर्थ में विप्रतिपत्ति यह है कि अन्य फलादेश के ग्रंथों के अनुसार बृहस्पति चन्द्र का योग या बुध शुक्र का योग अच्छा ही समझा जाता है—तब यह बाधित वाली बात क्यों ?

यदि वर्द्धते पाठ माना जाये तो अर्थ होगा कि सूर्य से (सूर्य के सहावस्थान या दृष्टि से) शनि की वृद्धि होती है, शनि से मंगल की, मंगल से बृहस्पति की, बृहस्पति से चन्द्र की, चन्द्र से शुक्र की, शुक्र से बुध की, बुध से चन्द्र की वृद्धि होती है। अस्तु ग्रंथकार का आशय स्पष्ट नहीं है। ६०॥

ग्रहों का विशेष स्थान बल

स्वोच्चस्वकीयभवनस्वदृगाणहोरा-
वारांशकोदगयनेषु दिनस्य मध्ये।
राशिप्रवेशसमये सुहृदंशकाद्यौ
मेषूरणे दिनमणिर्बलवानजस्रम् ॥ ६१॥

चन्द्रः कर्किणि गोपतौ निजदिनद्रेष्काणहोरांशके
राश्यन्ते शुभवीक्षणे निशि सुखे याम्यायने वीर्यवान्।
इन्दुः सर्वकलाधरो यदि बली सर्वत्र सन्धि विना
सर्वव्योमचरेक्षितस्तु कुरुते भूपालयोगं नृणाम् ॥ ६२॥

आरः स्ववारनवभागदृगाणवर्गे
मीनालिकुम्भमृगतुम्बुरुयामिनीषु।
वक्रे च याम्यदिशि राशिमुखे बलाढ्यो
मीने कुलीरभवने च सुखं ददाति ॥ ६३॥

कन्यानृयुग्मभवने निजवारवर्गे
चापे विना रविमहर्निशमिन्दुसूनुः।

सौम्यायने च बलवानपि राशिमध्ये
लग्ने सदा यदि यशोबलवृद्धिदः स्यात् ॥ ६४ ॥
मीनालिचापकटके निजवर्गवारे
मध्यन्दिनोदगयने यदि राशिमध्ये ।
कुम्भे च नीचभवनेऽपि बली सुरेज्यो
लग्ने सुखे च दशमे बहुवित्तदः स्यात् ॥ ६५ ॥
स्वोच्चस्ववर्गदिवसे यदि राशिमध्ये
शत्रुव्ययानुजगृहे हिबुकेऽपराह्ने ।
युद्धे च शीतकरसङ्गमवक्रचारे
शुक्रोऽरुणस्य पुरतो यदि शोभनः स्यात् ॥ ६६ ॥
मन्दस्तुलामकरकुम्भगृहे कलत्रे
याम्यायने निजदृगाणदिने दशायाम् ।
अन्ते गृहस्य समरे यदि कृष्णपक्षे
वक्रः समस्तभवनेषु बलाधिकः स्यात् ॥ ६७ ॥
मेषालिकुम्भतरुणीवृषकर्कटेषु
मेषूरणे च बलवानुरगाधिपः स्यात् ॥
कन्यावसानवृषचापधरे निशाया-
मुत्पातकेतुजनने च शिखी बली स्यात् ॥ ६८ ॥
प्रोक्तप्रकारप्रबलान्विता ये मूलं गतास्ते विबला भवन्ति ।
भावेषु योगेषु दशाफलेषु न सम्यगुक्तानि फलानि सन्ति ॥ ६९ ॥

सूर्यादि प्रत्येक ग्रह कब बली होता है यह कहते हैं :—

(i) सूर्य अपनी उच्च राशि में, अपनी राशि में, अपने द्रेष्काण अपनी होरा, अपने वार (रविवार), अपने नवांश में, जब उसकी क्रान्ति उत्तर हो (उत्तरायण हो) राशि में प्रवेश के समय (अर्थात् राशि के प्रथम १० अंशों में, मित्र के नवांश आदि में सूर्य बलवान् होता है—(अर्थात् अपनी राशि, द्रेष्काण, नवांश आदि में) उत्तमोत्तम । वैसा न हो, तो अपने मित्र की राशि आदि में हो तो भी उत्तम), लग्न से दशम घर में सूर्य सदैव बलवान् होता है ।

(ii) चन्द्रमा कर्क या वृष राशि में, सोमवार को अपने द्रेष्काण, होरा तथा नवांश में, राशि के अन्त में (अर्थात् २०° से ३०° तक), यदि चन्द्रमा पर

शुभ ग्रहों की दृष्टि हो, रात्रि में लग्न से चतुर्थ स्थान में, दक्षिणायन (जब क्रान्ति दक्षिण हो) चन्द्रमा बलवान् होता है। चन्द्रमा की यदि सब कलाएँ पूर्ण हों (अर्थात् पूर्णिमा को जन्म हो) और यदि सन्धि में न हो तो सब स्थानों में बली होता है और यदि सब ग्रह चन्द्रमा को देखते हों तो भूपाल योग (प्रबल राज योग) करता है। मूल में सन्धि शब्द आया है। कर्क का अंत सिंह का प्रारंभ, वृश्चिक का अंत, धनु का प्रारंभ, मीन का अन्त, मेष का प्रारंभ संधि कहलाता है। इसे गण्डान्त भी कहते हैं।

(iii) मंगल—मंगलवार को, अपने द्रेष्काण, अपने नवांश, अपने वर्गों में अपनी राशि आदि षड् वर्ग, सप्त वर्ग या दश वर्गों में, मीन, वृश्चिक, कुंभ, मकर और मेष राशि में, रात्रि के समय, जब वक्री हो, दक्षिण दिशा में, राशि के आदि में (०° से १०°तक) मंगल बलवान् होता है। दशम में, कर्क राशि में भी सुख देता है।

मूल में दक्षिण दिशा आया है। लग्न को पूर्व, दशम को दक्षिण, सप्तम को पश्चिम और चतुर्थ को उत्तर कहते हैं। यद्यपि कर्क मंगल की नीच राशि है, तथापि कर्क का मंगल यदि दशम में हो तो सुख देता है। यह विशेष बात है।

(iv) बुध—कन्या और मिथुन में, बुधवार को, अपने वर्ग में, धनु राशि में यदि रवि के साथ न हो, दिन-रात, उत्तरायण में, राशि के मध्य में (१०° से २०° तक) बुध बलवान् होता है। यदि लग्न में बलवान् बुध हो तो सदा यश और बल की वृद्धि करता है।

मूल में आया है 'चापे विना रविम्, अहर्निशम्'। इसका दो विद्वानों ने अपनी टीकाओं में अर्थ किया है कि धनु राशि में, रविवार के अतिरिक्त दिन-रात में। टीकाकार लिखते हैं 'रविवारे बुधो निर्बल इत्यर्थः।' परन्तु हमारे विचार से इसका अर्थ है यदि धनु राशि में सूर्य के विना हो। अहर्निशम्—दिन-रात बली होता है, यह काल बल विवेचन के प्रसंग में कहा जा चुका है। इसलिए रवि विना का अहर्निशम् से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि धनु राशि में सूर्य के साथ न हो यह विशेष उपयुक्त अर्थ है। रवि विना से, बुध अस्त न हो, यह भी अर्थ लिया जा सकता है। सूर्य से २८° से अधिक दूर बुध नहीं होता। इस कारण यदि बुध अस्त हो तो उतना अधिक गर्हित नहीं माना जाता। किन्तु बुध उदित हो अस्त न हो तो विशेष गुण है ही।

(v) बृहस्पति—मीन, वृश्चिक, धनु और कर्क राशि में, अपने वर्ग में, बृहस्पतिवार को, दिन के मध्य में, उत्तरायण में (जब बृहस्पति की क्रान्ति उत्तर

हो), राशि के मध्य में (१०° से २०° तक), कुंभ राशि में, अपनी नीच राशि मकर में भी बृहस्पति बलवान् होता है। लग्न, चतुर्थ और दशम में बहुत धन देता है।

(vi) शुक्र—अपनी उच्च राशि में, अपने वर्गों में, शुक्रवार को, राशि के मध्य भाग में (१०° से २०° तक), छठे, बारहवें, तीसरे घर में, चतुर्थ में, अपराह्ण में (दिन के अन्तिम तृतीय भाग में), अन्य ग्रह से जब युद्ध हो, चन्द्रमा के साथ जब समागम हो, जब वक्र हो, जब शुक्र सूर्य से आगे हो तो शोभित है—उत्तम है। एक टीकाकार ने अर्थ किया है कि जब वक्र हो तब सूर्य के आगे हो, यह अर्थ हमें सम्मत नहीं है, चन्द्र समागम पहले समझाया जा चुका है।

(vii) शनि—शनि तुला, मकर, कुंभ राशि में, सप्तम स्थान में, जब दक्षिण क्रान्ति हो, अपने द्रेष्काण में, शनिवार को, अपनी दशा में राशि के अन्तभाग में (२०° से ३०° तक), ग्रह युद्ध में, कृष्ण पक्ष में सभी घरों में—जब वक्री हो बलवान् होता है। कुछ टीकाकारों ने अर्थ किया है 'जब कृष्ण पक्ष में वक्री हो।' यह अर्थ हमें सम्मत नहीं है।

(viii) राहु—राहु, मेष, वृश्चिक, कुंभ, कन्या, वृष और कर्क राशि में तथा दसवें घर में बलवान् होता है।

(ix) केतु—केतु, कन्या, मीन, वृष तथा धनु राशि में रात्रि में, उत्पात या केतु के उदय के समय बलवान् होता है। उत्पातों के लिए देखिए बृहत्संहिता का उत्पाताध्याय ४६। केतु उदय के लिए देखिए इसी ग्रंथ का अध्याय ११।

इस प्रकार प्रत्येक ग्रह कब बलवान् होता है यह कहा। किन्तु जब कोई ग्रह किसी भाव के बिलकुल प्रारंभ में होता है तो उस भाव सम्बन्धी फल प्रदान करने में निर्बल होता है और भावफल, योगफल, दशाफल जो कहे गए हैं उनका अच्छी प्रकार से फल नहीं होता है।

केवल सूर्य कब बलवान् होता है, उसी प्रसंग में कहा कि मित्र ग्रह में भी उत्तम है। किन्तु यह सामान्य नियम कि अपने घर में उत्तमोत्तम और मित्र गृह में भी उत्तम, सभी ग्रहों को लागू होता है। एक शंका होती है कि पहले जब बल के–षड्बल विवेचन में विविध बलों की पूर्ण व्याख्या कर दी, तब यहाँ पुनः, प्रत्येक ग्रह कब बली होता है, यह क्यों कहा ? पुनः संक्षेप से कहने का हेतु यह है कि षड्बल गणित समय और परिश्रम साध्य और यहाँ जो बली ग्रह के लक्षण कहें वह जन्म कुंडली में देखने से ही स्पष्ट प्रतिभासित हो जाते हैं। ६१-६९।

ग्रहों का अधोमुखत्वादि

अधोमुखा दिनेशस्य पूर्वषट्कस्थिता ग्रहाः ।
अपरार्द्धस्थिताः भानोरूर्ध्वास्याः सुखवित्तदाः । ७० ।
भानामवस्थानगताः क्रमेण मन्दार्यभौमार्कसितज्ञचन्द्राः ॥
तेषामधःस्थानगतो बलीयान् राहुर्महीमण्डलमूर्ध्नि संस्थः ॥७१॥

स्थानविशेषे स्थितिक्रमविशेषे च ग्रहाणां विफलता ।

सभानुरिन्दुः शशिजश्चतुर्थे गुरुः सुते भूमिसुतः कुटुम्बे ।
भृगुः सपत्ने रविजः कलत्रे विलग्नतस्ते विफला भवन्ति ॥७२॥

अथ दोषापहरणम् ।

राहुदोषं बुधो हन्यादुभयोस्तु शनैश्चरः ।
त्रयाणां भूमिजो हन्ति चतुर्णां दानवार्चितः ॥ ७३ ॥

पञ्चानां देवमन्त्री च षण्णां दोषं तु चन्द्रमाः ।
सप्तदोषं रविर्हन्याद्विशेषादुत्तरायणे ॥ ७४ ॥

(१) भचक्र को दो विभागों में विभाजित किया है । (i) पूर्व षट्क (ii) अपरार्द्ध (दूसरा आधा) । जो ग्रह पूर्व षट्क में होते हैं उनकी अधोमुख संज्ञा है। जो अपरार्द्ध में होते हैं वे ऊर्ध्वास्य कहलाते हैं। आस्य मुख को कहते हैं। ऊर्ध्वास्य ग्रह सुख और धन देते हैं ।

सूर्य जिस राशि में हो उससे १, २, ३, १०, ११, १२ में स्थित ग्रह पूर्व षट्क में। सूर्य से ४, ५, ७, ८, ९ में स्थित अपरार्द्ध में । वास्तव में सूर्य जिस अंश में हो उससे दोनों ओर ९०-९० अंश तक पूर्व षट्क गिनना चाहिए । क्यों कि सूर्य से ९० अंश तक ग्रह होने से ग्रह उतना देदीप्यमान नहीं होता । यहीं वही सिद्धान्त है जो चन्द्रमा के सम्बन्ध में कि शुक्ल पक्ष की अष्टमी से कृष्ण पक्ष की अष्टमी तक चन्द्रमा बलवान् होता है। मंत्रेश्वर ने भी कहा है : 'ऊर्ध्वास्यतुंगभवनस्थित ·····' । देखिए फलदीपिका, पृष्ठ ३९९ ।

(२) इसमें ग्रहों का कक्षा बल कहा है । सबसे अधिक दूर शनि, फिर कम दूर बृहस्पति, बृहस्पति से कम दूर मंगल, फिर सूर्य, फिर शुक्र, तदनन्तर बुध, बुध से समीप चन्द्र । जो पृथ्वी के जितने अधिक समीप है वह उत्तरोत्तर बली

है। राहु भचक्र पर ही स्थित है। इस सिद्धान्त से राहु > चन्द्र > बुध > शुक्र > सूर्य > मंगल > बृहस्पति > शनि।

(३) अब किस स्थिति में ग्रह विफल होते हैं, यह कहते हैं। वास्तव में कोई ग्रह सर्वथा विफल तो कभी होता नहीं। अपना देय शुभ या अशुभ पूर्ण या आँशिक देता ही है तथापि विफल होता है, यह एक कहने का प्रकार है :

(i) सूर्य के साथ यदि चन्द्रमा हो (ii) बुध चतुर्थ में हो (iii) बृहस्पति पंचम में हो (iv) मंगल द्वितीय में हो (v) शुक्र छठे घर में हो (vi) सप्तम में शनि हो तो विफल होते हैं अर्थात् पूर्ण शुभ फल देने में असमर्थ होते हैं।

ऊपर श्लोक ६६ में शुक्र को छठे घर में, श्लोक ६७ में शनि को सातवें घर में अच्छा कहा। यहाँ श्लोक ७२ में विफल कहते हैं। परस्पर विरोध है।

(४) अब कहते हैं कि कौन सा ग्रह किस ग्रह या ग्रहों के दोष को हरता है। मूल में लिखा है 'हन्यात्' मारता है। यहाँ हरता है या मारता है इसका क्या अभिप्राय ? जैसे हम कहें कि खटाई भंग के नशे को मारती है। भंग का विशेष नशा हो जाने से गरम-गरम कॉफी पीने से नशा कम होता है। घी पिलाने से विष (जो सर्प आदि के काटने से शरीर में फैल गया हो) कम होता है। खट्टा संतरा, शराब के नशे को मारता है; इत्यादि।

कोई ग्रह किसी अन्य ग्रह के दोष को सर्वथा तो नहीं हटा सकता। अतः दोष को मारता है, इसका यही अर्थ लेना कि दोष को कम करता है।

राहु के दोष को बुध हरता है। राहु और बुध दोनों के दोष को शनि; राहु, बुध और शनि—तीनों के दोष को मंगल; राहु, बुध, शनि और मंगल चारों के दोष को शुक्र; राहु, बुध, शनि,मंगल और शुक्र, इन पाँचों के दोष को बृहस्पति; राहु, बुध, शनि मंगल, शुक्र और बृहस्पति इन छओं के दोष को चन्द्रमा और राहु, बुध, शनि, मंगल, शुक्र, बृहस्पति, चन्द्रमा इन सातों के दोष को सूर्य हरता है; विशेषकर यदि सूर्य उत्तरायण में हो (सूर्य की उत्तर क्रान्ति हो)। राहु दुःस्थानि में हो और बुध बलवान् हो तो राहु उतना दुष्ट प्रभाव नहीं दिखावेगा। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए। मंत्रेश्वर ने लिखा है :

निःशेषदोषहरणे शुभवर्धने च वीर्यं गुरोरधिकमत्यखिलग्रहेभ्यः।
तद्वीर्यपाददलशक्तिभृतौ ज्ञशुक्रौ, चान्द्रं बलं तु निखिलग्रहवीर्यबीजम् ॥
व्याख्या के लिए देखिए फलदीपिका पृष्ठ ६०। ७४।

ग्रहों का पीड़ा करने का प्रकार

सवाऽग्निरोगज्वरवृद्धिदीपनक्षयातिसारादिकरोगसङ्कुलम् ।
नृपालदेवावनिदेवकिङ्करैः करोति चित्तव्यसनं दिवाकरः ।। ७५ ।।
पाण्डुदोषजलदोषकामलापीनसादिरमणीकृतामयैः ।
कालिकासुरसुवासिनीगणैराकुलं च कुरुते तु चन्द्रमाः ।। ७६ ।।
पीनबीजकफशस्त्रपावकग्रन्थिरुग्व्रणदरिद्रजामयैः ।
वीरशैवगणभैरवादिभिर्भीतिमाशु कुरुते धरासुतः ।। ७७ ।।
गुह्योदराहृश्यसमीरकुष्ठमन्दाग्निशूलग्रहणीरुगाद्यैः ।
बुधादिविष्णुप्रियदासभूतैरतीव दुःखं शशिजः करोति ।। ७८ ।।
आचार्यदेवगुरुभूसुरशापदोषैः
शोकं च गुल्मरुजमिन्द्रगुरुः करोति ।
कान्ताविकारजनिमेहरुजा सुराद्यैः
स्वेष्टाङ्गनाजनकृतैर्भयमासुरेज्यः ।। ७९ ।।
दारिद्र्यदोषनिजकर्मपिशाचचौरैः क्लेशं करोति रविजः सह सन्धिरोगैः ।
कण्डूमसूरिरिपुकृत्रिमकर्मरोगैः स्वाचारहीनलघुजातिगणैश्च केतुः।।८०।।
करोत्यपस्मारमसूरिरज्जुक्षुद्दृक्कृमिप्रेतपिशाचभूतैः ।
उद्बन्धनेनारुचिकुष्ठरोगैर्विधुन्तुदश्चातिभयं नराणाम् ।। ८१ ।।

कोई ग्रह यदि जन्म कुण्डली में राशि, स्थान, दुष्ट भावेश, पाप दृष्ट आदि होने से क्या—किस प्रकार के रोग या पीड़ा करता है यह कहते हैं :—

(i) सूर्य अशुभ हो तो अग्नि रोग (अग्नि से जल जाना या ऊष्मा रोग) ज्वर वृद्धि, दीपन (पाचन सम्बन्धी), क्षय, अतिसार आदि अनेक रोग करता है एवं राजा, देवता, ब्राह्मण और भृत्यों से चित्त-व्यसन (मनोमालिन्य, दुःख) करता है । देवताओं से—इसका आशय है कि देव कार्यों में जो जातक ने अपराध किया हो, उसके दण्ड स्वरूप पीड़ा होती है ।

(ii) चन्द्रमा अशुभ हो तो पाण्डु दोष (पीलिया), जल दोष (जलोदर या जिस रोग को अंग्रेजी में ऑडीमा कहते हैं), कामला, पीनस आदि, स्त्रियों के संसर्ग से जो रोग होते हैं (यथा—सुजाक, आतशक) और कालिका, असुर, सुवासिनीगण से व्याकुलता करता है ।

(iii) मंगल अशुभ हो तो पीन बीज (अण्डकोश वृद्धि) कफ, शस्त्र, अग्नि ग्रंथि रुक् (शरीर की ग्लैण्डों का फूल जाना), व्रण, दरिद्रता के कारण उत्पन्न

रोग (विटैमिन, प्रोटीन आदि पोषक तत्त्वों के अभाव से जो रोग होते हैं) होते हैं तथा वीर, शैवगण, भैरव आदि से शीघ्र भय होता है।

(iv) बुध यदि अशुभ हो तो गुह्य अंगों में, पेट में, पीड़ा या रोग, वायु जनित रोग, कुष्ठ, मन्दाग्नि, शूल, संग्रहणी से कष्ट हो। बुधादि विष्णु प्रिय दासों से अत्यन्त दुःख हो।

(v) यदि वृहस्पति अशुभ हो तो आचार्य (यज्ञादि में जो आचार्य होते हैं), देव, गुरु, ब्राह्मण—इनके शाप दोष से शोक होता है। गुल्म रोग होता है।

(vi) यदि शुक्र अशुभ हो तो स्त्री संसर्ग से जो रोग होते हैं (सुजाक, आतशक आदि), मेह (प्रमेह, मधुमेह तथा अन्य मूत्र और वीर्य सम्बन्धी रोग) आदि रोग, असुरों से और अपनी इष्ट (अभिलषित) स्त्री से भय होता है।

(vii) यदि शनि अशुभ हो तो दारिद्र्यदोष, अपने कर्मों से, पिशाच तथा चोरों से क्लेश होता है। संधियों में (यथा वात दोष से घुटनों आदि में) पीड़ा होती है।

(viii) यदि जन्म कुण्डली में केतु अनिष्ट हो तो खुजली, दाद, मसूरिका, शत्रुकृत पीड़ा (या शत्रुकृत अभिचार से रोग), अपनी आचारहीनता से जो रोग या कष्ट संभावित हों तथा नीच जातियों से दुःख होता है।

(ix) यदि राहु अनिष्ट हो तो अपस्मार (मिरगी) मसूरि (शीतला) रज्जु (बन्धन), संक्रामक रोग, नेत्र रोग, कृमि जनित रोग, प्रेत, पिशाच, भूत जनित रोग (प्रायः जिसे प्रेतबाधा कहते हैं और अंग्रेजी में जिसे स्काईजोफ्रेनिया संज्ञा दी है। यह एक प्रकार का मानसिक रोग है जिसमें चित्तविभ्रमशंका, भय आदि से अकारण मस्तिष्क विकृत रहता है) उद्बन्धन (जेल जाना), अरुचि (मन्दाग्नि), कुष्ठ आदि से अतिभय होता है।

फलदीपिका अध्याय १४ (पृष्ठ २६५–२८४) में भिन्न-भिन्न ग्रह जनित कौन-कौन से रोग होते हैं—यह विस्तार से बताय गया है, तथा पृष्ठ ४५१–४८५ में किस ग्रह के अनिष्ट होने से क्या पीड़ा होती है यह कहा है। प्रश्न मार्ग के अध्याय १२ तथा १३ में रोगों पर ज्योतिष के मत से सुन्दर विवेचन है। १५वें अध्याय में देव, गुरु, पिता, सर्प, प्रेत बाधा, देवताओं का कोप डाकिनी, पिशाचिनी आदि जनित रोगों और पीड़ाओं की विस्तृत व्याख्या है। पाठक अवलोकन करें।

जिस ग्रह का कोप का कारण, देव, कालिका, सुवासिनी, वीर, शैवगण भैरव विष्णु प्रिय दास (वैष्णव तपस्वी), पिशाच, प्रेत, भूत आदि कहा उस

उसकी धर्मशास्त्र विहित परिपाटी से, शिव, काली, विष्णु आदि कृत रोग बाधा, तत्सम्बन्धी जप, पाठ, पुरश्चरण, व्रतोपवास नियम परिचर्या से पीड़ा निवृत्त होती है । ७५-८१ ।

अथ राशौ ग्रहफलपरिपाककालः ।

आद्यन्तमध्यभवनोपगता नभोगा-
श्चादित्यभूमितनयौ शनिशीतरश्मी ।
जीवासुरेन्द्रसचिवौ फलदाः क्रमेण
तारासुतः सकलकालफलप्रदः स्यात् ॥८२॥

ग्रंथकार ने यह नहीं लिखा किन्तु इस श्लोक में कथित फलपरिपाक काल का प्रायः गोचर में उपयोग किया जाता है । सूर्य और मंगल राशि के आदि भाग (०°–१०°) में फल दिखाते हैं । बृहस्पति और शुक्र राशि के मध्य भाग (१०°–२०°) में । चन्द्रमा और शनि राशि के अन्त भाग (२०°–३०°) में । बुध समस्त राशि (०°–३०°) में । ८२ ।

धातुज रोग और उपासना

यद्धातुकोपजनिताखिलरोगशान्त्यै
तन्नाथमाशु जपतर्पणहोमदानैः ।
सम्पूज्य रोगभयशोकविमुक्तचित्ताः
सर्वे नराः सुखयशोबलशालिनः स्युः ॥ ८३ ॥

अब शान्ति कहते हैं । जिस ग्रह के धातु कोप से रोग हुआ है उस रोग की शान्ति के लिए उस धातु के अधिष्ठाता ग्रह की जप, तर्पण, होम, दान आदि से पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार रोग, भय, शोक से विमुक्त चित्त होकर सुख, यश, बलशाली होते हैं । किस धातु (मज्जा, स्नायु, वसा, अस्थि, रुधिर, त्वक्, शुक्र) का कौनसा ग्रह अधिष्ठाता है, यह इसी अध्याय के श्लोक २८ में कहा है । हमारे विचार से जिस ग्रह जनित रोग या पीड़ा हो उस-उस ग्रह के अधिदेवता का पूजन, जप तर्पण, हवन, उसके निमित्त दान, रत्नधारण आदि भी करने चाहिएं । ग्रहों के अधिदेवता, इसी अध्याय के श्लोक २० में कहे गए हैं । ८३ ।

ग्रहों की अवस्था

ग्रहों की दो प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं । एक बाल्यादि अवस्था जो नीचे श्लोक ८४ में कही गयी है । दूसरी जागरूक आदि अवस्था जो श्लोक ८५ में कही गयी है ।

अथ ग्रहाणां बाल्याद्यवस्थानिरूपणम् ।

बालः कुमारोऽथ युवा च वृद्धो मृतश्च राशावयुजि क्रमेण ।
त्रिंशल्लवैर्व्यत्ययतः समे स्युरेकैकशोंऽशाः पुनरेव कार्याः ।। ८४ ।।

अथ जाग्रदाद्यवस्थाः ।

उच्चांशे स्वनवांशे च जागरूकं वदन्ति हि ।
सुहृन्नवांशकं स्वप्नं सुप्तं नीचारिभांशकम् ।। ८५ ।।

(१)	मेष, मिथुन, सिंह तुला, धनु, कुंभ	वृष, कर्क, कन्या वृश्चिक, मकर, मीन
०°–६°	बाल	मृत
६°–१२°	कुमार	वृद्ध
१२°–१८°	युवा	युवा
१८°–२४°	वृद्ध	कुमार
२४°–३०°	मृत	बाल

ओज राशियों में जो क्रम है, उससे उल्टा क्रम सम राशि में है। ग्रह कैसी राशि में है, कितने अंश पर है, इससे बाल, कुमार आदि का निर्णय किया जाता है ।

पराशर कहते हैं :—

फलं तु किंचिद्वितनोति बालश्चार्द्धं कुमारो यतते च पुंसाम् ।
युवा समग्रं खचरोऽथ वृद्धः फलं च दुष्टं मरणं मृताख्यः ।।

अर्थात् बाल ग्रह किंचित् (शुभ) फल देता है, कुमार आधा, युवा पूर्ण, वृद्ध दुष्ट फल और मृतग्रह मरण देता है ।

(२) ग्रह अपने उच्चांश और स्वनवांश में जागरूक (जगा हुआ) होता है; मित्र के नवांश में स्वप्नावस्था में, और नीच या शत्रु नवांश में सोया हुआ ।

तीन अवस्थाएं होती हैं जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति । जगा हुआ उत्तम, स्वप्नावस्था में मध्यम और सुषुप्ति अवस्था में ग्रह का अधम फल ।

ग्रहों का फल दानकाल

शीर्षोदयगतः खेटः पाकादौ फलदो भवेत् ।
पृष्ठोदयस्थः पाकान्ते सदा चोभयराशिगः ।। ८६ ।।

जो ग्रह शीर्षोदय राशि में हो वह अपनी दशा में प्रारंभ में फल देता है; पृष्ठोदय राशि स्थित ग्रह दशा के अन्त में, और उभयोदय राशि में स्थित ग्रह सदैव फल देता है । शीर्षोदय, पृष्ठोदय, उभयोदय राशियों का भेद अध्याय १ श्लोक १४ में बतलाया गया है ।

समस्तहोराफलसारसान्द्रविराजिते जातकपारिजाते ।
ग्रहक्रियारूपगुणप्रभेदः सङ्कीर्तितः खेटकृपाकटाक्षात् ।। ८७ ।।
इति नवग्रहकृपया वैद्यनाथविरचिते जातकपारिजाते
ग्रहनामस्वरूपगुणभेदाध्यायः ।। २ ।।

सम्पूर्ण होरा फल के सार से शोभित जातक पारिजात के इस अध्याय में ग्रहों की कृपा दृष्टि से ग्रह क्रिया रूप गुण प्रभेद कहा गया है ।

अध्याय ३

वियोनिजन्माध्याय

इस अध्याय का नाम वियोनिजन्माध्याय है। वियोनि का क्या अर्थ ? 'विविधा योनय: वियोनय:' । विविध योनि। योग शास्त्र में कहा गया है कि चौरासी हज़ार योनियाँ होती हैं। उनमें मनुष्य योनि एक है; ८३९९९ अन्य योनियाँ हैं। वर–कन्या मेलापक के ३६ गुण होते हैं। उसमें योनि को ४ गुण प्राप्त होते हैं। बहुत से स्त्री–पुरुष मूर्खतावश समझते हैं कि योनि गुण मिलाने का अर्थ है कि वर–कन्या की जननेन्द्रियों में साम्य और सामञ्जस्य है या नहीं। योनि–गुण चन्द्र नक्षत्र के आधार पर मिलाया जाता है। चन्द्र नक्षत्र के कारण जननेन्द्रिय का दैर्ध्य, विस्तार, ह्रस्वता आदि नहीं होता है। जननेन्द्रिय का आकार, प्रकार, जन्म लग्न से सप्तम जो राशि पड़ी हो, उस राशि में जो ग्रह हो या हों या उस राशि को जो ग्रह देखते हों, या उस राशि का स्वामी जिस राशि में पड़ा हो–इन सब पर निर्भर होता है, चन्द्र नक्षत्र पर नहीं और चन्द्र नक्षत्र के अनुसार गौ, वानर, गज, मूषक आदि योनियाँ कही गयी हैं–वे केवल जातक की मनोवृत्ति का निरूपण करने के लिये। किसी की मूषक (चूहा) योनि हो तो मार्जार (बिल्ली) योनि से कैसे मित्रता होगी ? नेवला साँप को मारकर टुकड़े-टुकड़े कर देता है। नकुल (नेवला) योनि वाला सर्प योनि वाले का शत्रु होता है। मेलापक प्रसंग में योनि शब्द का वही अर्थ है। और वियोनि का अर्थ है–विविध चौरासी हज़ार योनियाँ। जातक शास्त्र प्रधानतया मनुष्य (पुरुष, स्त्री) के लिये हैं, परन्तु प्रसंगवश अन्य योनियों के सम्बन्ध में भी यहाँ कहा है। परन्तु सब ८३,९९९ योनियों के सम्बन्ध में यहाँ नहीं कहा है। केवल पशु, पक्षी तथा वृक्षों के विषय में कहा है कि इनकी उत्पत्ति किन ग्रह स्थितियों में होती है।

वराहमिहिर के बृहज्जातक का अध्याय ३, 'वियोनिजन्माध्याय' है। उसी की शैली पर जातक पारिजातकार ने तृतीय अध्याय रखा। किन्तु बृहज्जातक का तीसरा अध्याय केवल वियोनि सम्बन्धी है, चतुर्थ अध्याय निषेक (गर्भाधान) सम्बन्धी और पंचम अध्याय प्रसूति सम्बन्धी किन्तु जातक पारिजातकार ने बृहज्जातक के उपर्युक्त तीनों अध्यायों का विषय, अपने इसी एक ही अध्याय में सन्निविष्ट कर दिया है और इस अध्याय को संज्ञा दी है 'वियोनिजन्माध्याय'।

श्लोक १ से ९ तक विविध योनियों के सम्बन्ध में कथन है। श्लोक १० से २२ तक निषेक के सम्बन्ध में कहा है। श्लोक २३ से ७९ तक प्रसूति के सम्बन्ध में और श्लोक ८० में इस अध्याय का उपसंहार है। इस अध्याय के 'श्लोक १, २, ३, ४, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, २१, २२, २३, २४, २५, ३८, ३९, ४०, ४३, ४४, ४६, ४७, ५८, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८ तथा ७९ वृहज्जातक के तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम अध्याय से लिये गये हैं।

क्रूरग्रहैः सुबलिभिर्विबलैश्च सौम्यैः क्लीबे चतुष्टयगते तदवेक्षणाद्वा।
चन्द्रोपगद्विरसभागसमानरूपं सत्त्वं वदेद्यदि भवेत्स वियोनिसंज्ञः॥ १॥

यदि क्रूर ग्रह बलवान् हों, शुभ ग्रह निर्बल हों और नपुंसक ग्रह केन्द्र में हों, या नपुंसक ग्रह लग्न को देखे और चन्द्रमा यदि मेष, वृष, कर्क, सिंह, वृश्चिक, धनु उत्तरार्ध मकर या मीन द्वादशांश का, जन्म के समय या प्रश्न के समय हो तो उसी प्रकार की योनि में जन्म होता है जैसी योनि के द्वादशांश में चन्द्रमा है। यदि चन्द्र का द्वादशांश मेष हो, तो मेंढा, भेड़, बकरी आदि; वृष हो तो गाय, बैल, भैंस आदि। कर्क हो तो केंकड़ा आदि, सिंह, गेंडा, गीदड़, बिल्ली आदि। वृश्चिक हो तो सर्प, बिच्छू आदि। धनु द्वादशांश का उत्तरार्ध हो तो घोड़ा, गधा, खच्चर आदि। मकर द्वादशांश का पूर्वार्ध हो तो हरिण आदि; उत्तरार्ध हो तो मगर-मच्छ आदि जल-जन्तु। मीन द्वादशांश हो तो मछली।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि चन्द्रमा का द्वादशांश (मनुष्येतर) राशि होना आवश्यक है। कौनसी द्विपद (दो पैर वाली अर्थात् मनुष्य) और कौनसी चतुष्पद, कीट, जल-जन्तु राशियाँ हैं यह अध्याय १ में बताया जा चुका है। जिस प्रकार के द्वादशांश में चन्द्रमा हो उसी प्रकार की योनि में जन्म कहा गया है। दूसरी बात यह है कि नपुंसक ग्रह केन्द्र में हो यह कहने के उपरान्त पुनः कहा 'अथवा नपुंसक ग्रह लग्न को देखे तो' इससे पूर्ण दृष्टि के अतिरिक्त पौनी, आधी या चौथाई दृष्टि भी इस श्लोक में लेना। मूल में सुबल और विबल यह दो शब्द आये हैं। रुद्रभट्ट कहते हैं कि सु (य, र, ल, व, श, ष, स) से ७ रूप षड्बल पिंड यह अर्थ लेना क्योंकि 'स' से ७ की संख्या ली जाती है। वि से ४ रूप षड्बल पिंड लेना क्योंकि 'व' चार का द्योतक है। कटपयादि संख्या में य से १, र से २ ल से ३, व से ४, स से ७ संख्या ली जाती है। अन्य आचार्य सुबलिभिः तथा विबलैः का केवल यह अर्थ लेते हैं कि केन्द्र में बली, पणफर में मध्यबली तथा आपोक्लिम में हीन बली। १।

पापा बलिनः स्वभागगाः पारक्ये विबलाश्च शोभनाः ।
लग्नं च वियोनिसंज्ञकं दृष्ट्वाऽत्रापि वियोनिमादिशेत् ॥ २ ॥

श्लोक १ में चन्द्र यदि मनुष्येतर (द्विपद के अतिरिक्त) द्वादशांश में हो तो वियोनि के २ योगक हैं । अब जन्म लग्न या प्रश्न लग्न में मनुष्येतर राशि हो तो वियोनि जन्म का अन्य योग कहते हैं। यदि पाप ग्रह वली हों और अपने नवांश में हों, तथा शुभ ग्रह निर्बल हों और दूसरों के (अर्थात् अपने में नहीं) नवांश में हों और लग्न वियोनि संज्ञक (द्विपद राशि के अतिरिक्त) हो तो भी वियोनि जन्म कहना । किस प्रकार का वियोनि ? चन्द्रमा जैसे द्वादशांश में हो, इसका श्लोक १ से अध्याहार करना । जब चन्द्रमा की वियोनि द्वादशांश स्थिति श्लोक १ तथा २ दोनों में आवश्यक है, तो यह श्लोक २ क्यों कहा ? क्योंकि श्लोक में नपुंसक ग्रह (i) केन्द्र में हो या (ii) केन्द्र को देखें यह कहा है, उसके स्थान में श्लोक २ में लग्न वियोनि संज्ञक हो तो भी यह योग होता है, यह उपादान करने के लिए, पुनः अन्य योग कहा है । २ ।

क्रियः शिरो वक्त्रगलो वृषोऽन्ये पादांसकं पृष्ठमुरोऽथ पार्श्वे ।
कुक्षिस्त्वपानोऽङ्घ्र्यथ मेढ्रमुष्कौ स्फिक्पुच्छमित्याह चतुष्पदाङ्गे ॥ ३ ॥

अध्याय १ के श्लोक ८ में मनुष्यों के अंग में द्वादश राशि न्यास बताया है । परन्तु जानवरों के पूंछ भी होती है, चतुष्पद के चार पैर भी । उनके शरीर में बारहों राशियों में किस राशि को किस अंग में मानना यह कहते हैं।

चतुष्पद के अंग में निम्न प्रकार से राशि न्यास होता है :—

(i) मेष–सिर (ii) वृष–चेहरा और गला–तथा गाय, बैल के गले में नीचे लटकनी वाली खाल (iii) मिथुन–आगे के दोनों पैर और कंधे (iv) कर्क–पीठ (v) सिंह–छाती, वक्ष स्थल (vi) कन्या–पार्श्व (वगल) (vii) तुला–कुक्षि (कोख) (viii) वृश्चिक–अपान (गुदा) (ix) धनु–पिछले दोनों पैर (x) मकर–लिंग और वृषण (xi) कुंभ–स्फिक् (कूल्हे) (xii) मीन–पूँछ ।

यह चौपायों के शरीर में राशिन्यास वर्णोपघातादि विज्ञान के लिये हैं । जन समाज को अधिक उपयोग चतुष्पद से ही है, इस कारण चतुष्पद के शरीर में ही राशिन्यास कहा । भट्टोत्पल कहते हैं कि उपलक्षण से पक्षियों में यही राशि न्यास मानना । अन्तर केवल यह है कि मिथुन राशि का न्यास चतुष्पद के आगे के दोनों पैरों में किया है, पक्षियों के दोनों पक्षों (डैने–पंख) में करना ।

यह शंका भी नहीं करनी चाहिये कि गाय भैंस के तो लिंग वृषण होते नहीं। उनका प्रसव स्थान ही लिंग स्थान है। गर्भाशय से सम्बद्ध (यथा स्त्रियों में)

नलिकायें (जिन्हें अंग्रेजी में फैलोपियन ट्यूब्स कहते हैं) ही वृषण स्थानीय हैं। ३।

लग्नांशकाद्ग्रहयोगेक्षणाद्वा वर्णान् वदेद्बलयुक्ताद् वियोनौ ।
दृष्ट्या समानान् प्रवदेत्तु संख्यां रेखां वदेत्स्मरसंस्थैश्च पृष्ठे ॥ ४॥

अब वियोनि के वर्ण को कहते हैं। बृहज्जातक में इस श्लोक की व्याख्या करते हुए भट्टोत्पल कहते हैं कि लग्न में जो ग्रह हो, उस ग्रह का पहले जो वर्ण कहा गया है (बृहज्जातक अध्याय २ श्लोक ५ में कहा है, सूर्य का ताँबे जैसा, चन्द्रमा का सफ़ेद, मंगल का अति लाल, बुध का हरा, बृहस्पति का पीला, शुक्र का अनेक वर्ण, शनि का काला) वैसा होता है। या जैसा ग्रह लग्न को देखता हो, वैसा वर्ण होता है। यदि लग्न में कोई ग्रह न हो, न कोई ग्रह लग्न को देखता हो तो लग्न का जो नवांश उदित हो रहा हो—उस नवांश राशि के समान वर्ण कहना। राशियों का वर्ण पहले अध्याय १ में कह चुके हैं। यदि लग्न अनेक ग्रहों से युत, दृष्ट हो तो अनेक वर्ण का वियोनि कहना—इन अनेक ग्रहों में जो बलवान् हो उसके वर्ण की बहुलता होती है। यदि स्वस्वामी से युत, दुष्ट नवांश राशि हो (लग्न में जो नवांश उदित हो उस नवांश का स्वामी अपनी राशि में हो या अपनी राशि को देखता हो) तो उसी वर्ण का वियोनि होता है। जो ग्रह वियोनि के जिस अंग में हो, उस अपने (ग्रह के) सदृश वर्ण का धब्बा करता है। यदि बलवान् ग्रह लग्न से सप्तम में हो तो जितने ग्रह सप्तम में हों, उतनी रेखा पीठ पर होती हैं। रुद्रभट्ट कहते हैं कि मूल में संख्या शब्द आया है इसका कोई-कोई अर्थ करते हैं कि उतनी संख्या के वियोनि हों।

यहाँ प्रायः वही सिद्धान्त कहा गया है जो मनुष्य के बच्चे के शरीर, रंग, रूप निश्चित करने के लिये बृहज्जातक में वराहमिहिर ने कहा है :

लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्यात् वीर्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वा ।
चन्द्रसमेतनवांशकवर्णः कादिविलग्नविभक्तभगात्रः ॥

यहाँ पाठकों को एक शंका हो सकती है। गाय प्रायः सफेद होती है, कोई-कोई लाल या काली या धब्बेदार। भैंस प्राय काली होती है, कोई-कोई भूरी। हाथी प्रायः काला होता है; सफेद हाथी केवल बर्मा या श्याम देश में पाया जाता है। जंगली कबूतर या चिड़िया जो घरों में आती रहती हैं—एक समान होती हैं। तब वियोनि के रंग, रूप निश्चय करने का—पीठ पर धारियों का जो नियम कहा, वह कैसे चरितार्थ होगा ? शंका बहुत उचित है। इसका समाधान

यही है कि यहाँ भी वही नियम लागू करना चाहिए, जो हम मनुष्य जातक में लागू करते हैं। लग्न में चन्द्रमा, बृहस्पति तथा शुक्र होने पर नीग्रो (हबशी) का बच्चा गोरा नहीं होता; लग्न में शनि और राहु होने पर भी अंग्रेज का बच्चा काला नहीं होता। रूप, रंग का निर्णय जाति, कुल (माता-पिता के रूप रंग) के अनुसार—तदनुरूप निश्चित किया जाता है। ४।

देहाम्बुगौ सुखाङ्गेशौ चतुष्पाज्जननं भवेत् ॥
देहेशे सुखपे वाऽहिकेतुयुक्ते पशोर्जनिः ॥ ५ ॥

यदि सुखेश (चतुर्थेश) और लग्नेश लग्न और चतुर्थ में स्थित हों तो चतुष्पाद (चार पैर वाले—हाथी, घोड़ा, गाय, बैल आदि) का जन्म होता है। लग्नेश या चतुर्थेश राहु या केतु से युत हों तो पशु का जन्म होता है।

यहाँ सर्वत्र वियोनि जन्म का योग होना आवश्यक है। अन्यथा मनुष्य जातक में भी उपर्युक्त योग पाये जाते हैं। ५।

अथ ग्रहविशेषेक्षणादिना पशुविशेषजनिः।

शुक्रेक्षिते गोजननं माहिष्यार्कियुतेक्षिते ॥
राहुकेतुयुते मेषः पापाढ्येऽन्यपशोर्जनिः ॥ ६ ॥

लग्न को शुक्र देखता हो तो गाय का जन्म, शनि से दृष्ट या युत लग्न हो तो भैंस का, राहु या केतु से युत लग्न हो तो मेष (भेड़, बकरे आदि) का; यदि पाप ग्रह से युत (या दृष्ट) हो तो अन्य पशु का जन्म होता है।

अथ स्थलाम्बुजनियोगकरी ग्रहस्थितिः।

खगे दृकाणे बलसंयुतेन वा ग्रहेण युक्ते चरभांशकोदये ॥
बुधांशके वा विहगाः स्थलाम्बुजाः शनैश्चरेन्द्वीक्षणयोगसंभवाः ॥७॥

इसमें पक्षियों के जन्म लेने के ३ योग कहे गये हैं। (i) यदि पक्षी द्रेष्काण लग्न में हो और बली ग्रह से युत हो (ii) यदि चर अंश उदित हो, बली ग्रह से युत हो या (iii) बुध का अंश उदित (लग्न में) हो बली ग्रह से युत हो तो—यदि उपर्युक्त (i), (ii) या (iii) शनि से दृष्ट हो तो जमीन पर रहने वाला पक्षी, किन्तु यदि शनि की बजाय चन्द्रमा से दृष्ट हो तो जल पक्षी उत्पन्न होता है। स्थल पक्षी—कबूतर, मोर आदि। जल पक्षी—हंस, बगुला आदि

जो पानी के किनारे रहते हैं। ऊपर मूल में 'चर अंश' यह शब्द आया है। श्लोक १ में द्विरस (द्वि=२×रस=६=१२) शब्द द्वादशांश का उल्लेख है इसलिये कतिपय विद्वान् अंश का अर्थ द्वादशांश करते हैं, परन्तु प्राचीन आचार्य भट्टोत्पल गुणाकर आदि अंश शब्द से नवांश ग्रहण करते हैं।

पक्षी–द्रेष्काण क्या ? जातक पारिजात में आगे अध्याय ५ में सिंह राशि के प्रथम द्रेष्काण (०°—१०°) को पक्षी–द्रेष्काण कहा है। किन्तु यह श्लोक ७ बृहज्जातक अध्याय ३ से लिया गया है, इसलिये वराह मिहिर के मतानुसार ही पक्षी-द्रेष्काण कौन से होते हैं यह निश्चय करना चाहिये। रुद्रभट्ट अपनी टीका में लिखते हैं कि मिथुन और तुला का मध्यम (१०°—२०°), सिंह तथा कुंभ का प्रथम (०°—१०°) पक्षी-द्रेष्काण होते हैं। यही भट्टोत्पल का मत भी है। रुद्रभट्ट यह विशेष कहते हैं—कि जहाँ-जहाँ वियोनि जन्म का प्रसंग हो, वहाँ-वहाँ श्लोक १ में 'क्रूरग्रहै···' में जो योग दिया है, वह अवश्य होना चाहिये। शनि की दृष्टि या युति से पक्षी—कारकता होती है क्योंकि कृष्णीय में कहा है।

सूर्यात्मजेन्दुपुत्रौ पक्षिसमानौ सरीसृपश्चन्द्रः।
द्विपदौ भृगुदेवगुरौ चतुष्पदौ भूमिपुत्रार्कौ॥

अब वृक्षों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहते हैं। मनुस्मृति में वृक्षों के विषय में कहा है कि 'अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः' अर्थात् वृक्षों में भी चेतना होती है, उन्हें भी सुख दुःख का अनुभव होता है। अतः वृक्षों को भी वियोनि के अन्तर्गत लिया गया है। ७।

होरेन्दुसूरिरविभिर्विबलैस्तरूणां
तोयस्थले तरुभुवोंऽशकृतः प्रभेदः।
लग्नाद्ग्रहः स्थलजलर्क्षपतिस्तु यावां-
स्तावन्त एव तरवः स्थलतोयजाताः॥ ८॥

लग्न, चन्द्र, सूर्य और बृहस्पति यदि निर्बल हों तो वृक्षों का जन्म कहे। यदि नवांश जल हो तो जलाश्रय वृक्ष (जो जलाशय के तट पर होते हैं) अन्यथा स्थलाश्रय वृक्ष। लग्न से लग्नेश जितनी राशि दूर हो उतनी संख्या वृक्षों की कहे। रुद्रभट्ट कहते हैं कि इस श्लोक में जल नवांश आदि से जलाश्रय तथा स्थलाश्रय वृक्ष का भेद किया है। इस कारण यदि लग्न की अपेक्षा नवांश वली हो तो नवांशपति स्थिति से वृक्ष संख्या निश्चय करना। पुनः वृक्ष संख्या निश्चय करने की व्याख्या में कहते हैं कि आयुर्दाय प्रसंग में हरण गुणादि जो प्रक्रिया कही गयी है, उसकी यथा संभव यहाँ भी योजना करना। ८।

ग्रह और विविध प्रकार के वृक्ष

अन्तःसारान् जनयति रविर्दुर्भगान् सूर्यसूनुः
क्षीरोपेतांस्तुहिनकिरणः कण्टकाढ्यांश्च भौमः।
वागीशज्ञौ सफलविफलान् पुष्पवृक्षांश्च शुक्रः
स्निग्धानिन्दुः कटुकविटपान् भूमिपुत्रस्तु भूयः ॥ ९ ॥
शुभोऽशुभर्क्षे रुचिरं कुभूमिजं करोति वृक्षं विपरीतमन्यथा।
परांशके यावति विच्युतः स्वकाद् भवन्ति तुल्यास्तरवस्तथाविधाः ॥१०॥

अब, सूर्य आदि प्रत्येक ग्रह किस प्रकार के वृक्ष उत्पादन करता है, यह कहते हैं। इसके पहले वाले श्लोक में लग्न नवांश से वृक्ष के विषय में कहा गया है, इस कारण भट्टोत्पल इस श्लोक में भी नवांशपति का अध्याहार करते हैं कि नवांशपति यदि सूर्य या अमुक ग्रह हो तो किस प्रकार का वृक्ष होता है।

हमारे विचार से ज्योतिष का सिद्धान्त यह है कि अंश पति बलवान् होने से उसी का फल विशेष होता है, क्योंकि बृहज्जातक अध्याय १९—दृष्टि फलाध्याय के श्लोक ७ में वराहमिहिर कहते हैं।

'वीर्यान्वितोंऽशकपतिर्निरुणद्धि पूर्वं
राशीक्षणस्य फलमंशफलं ददाति ॥

(i) सूर्य—अन्तःसारवृक्ष—गृह निर्माण में जिनकी लकड़ी काम में आती है—शीशम, साल आदि। (ii) चन्द्रमा—जिन वृक्षों में दूध था रस हो—जैसे गन्ना (वैसे तो सभी वृक्षों में रस होता है परन्तु रस प्रधान वृक्ष लेना। गन्ना, गन्ने के रस के लिये ही बोया जाता है)। (iii) मंगल—काँटेदार वृक्ष, कारस्कर, किंशुक, खदिर आदि। (iv) बुध—फल रहित, जिसमें पत्तों की प्रधानता और बाहुल्य हो जैसे अशोक, पान। (v) बृहस्पति—जिसके फल की प्रधानता हो आम, सेब आदि। (vi) शुक्र—जिसमें पुष्प की प्रधानता हो—गुलाब, चमेली, चम्पक, केवड़ा आदि। (vii) शनि—जो देखने में और मन को कुरूप लगे।

चन्द्रमा और मंगल के विषय में पुनः कहते हैं कि (बलयुक्त यदि) चन्द्रमा हो तो स्निग्ध (स्नेह—चिकनाईयुक्त, नारियल आदि) और बलवान् मंगल हो तो कड़वे भल्लातक (भिलावा) आदि के वृक्ष उत्पादन करता है। क्योंकि कहा है :—

अर्कस्य मूलं स्थलजं नालिकेरादिकं फलम्।
सप्तभूरुहनिष्पन्नचन्दनाद्यं प्रचक्षते ॥

अन्तर्जलयुतान्य++तिक्षीरयुतानि च ।
भक्षानि+नवान्याहुः सूचकः शीतरोचिषः ।।
मरिचाद्यं सर्षपाद्यं निर्यासं स्थलभूरुहम् ।
तालवेण्यादिकं चूतं पनसाद्यं कुजस्य तु ।।
कन्दसूरणपत्राढ्यं बृहतीतण्डुलीयकम् ।
वल्लीफलं बोधनस्य मूलं बहुरसान्वितम् ।।
स्थलाम्बुजानि सस्यानि कुसुम्भं तण्डुलं तथा ।
दुकूलमुख्यपट्टानि तूलानि च गिरां पतेः ।
कन्दाढ्यं पुष्पवस्तूनि नालिकेरादिकं भृगोः ।
तूलतन्तुयुतं गन्धद्रव्याणि च विनिर्दिशेत् ।।
प्रियङ्गुमुद्गनिष्पावश्यामाकाद्यं कषायकम् ।
हीनमूलं मालुषाद्यं मन्दस्य च विनिर्दिशेत् ।
विषवृक्षाण्यभोज्यानि दुर्भगानि फलानि च ।
उपेतग्रहतुल्यानि राहोरौड्डुवमीरितम् ।।

अब रम्य भूमि में असुन्दर वृक्ष, और अरम्य भूमि में सुन्दर वृक्ष कब होता है यह कहते हैं । ९ ।

यदि शुभ राशि में अशुभ ग्रह हो तो सुन्दर भूमि में असुन्दर वृक्ष होता है । अशुभ राशि में शुभ ग्रह हो तो कुत्सित वृक्ष । यदि शुभ राशि में शुभ ग्रह हो तो सुन्दर भूमि में सुन्दर वृक्ष । यदि अशुभ राशि में अशुभ ग्रह हो तो कुत्सित भूमि में कुत्सित वृक्ष ।

वृक्ष संख्या निर्णय का प्रकार पहले कह चुके हैं । पुनः कहते हैं । ग्रह अपने से जितने नवांश की दूरी पर गया हो, उतने, उस प्रकार के वृक्ष कहे । रुद्रभट्ट कहते हैं कि नवांश की महत्ता ज्ञापित करने के लिये पुनः नवांश का निर्देश किया है । ९-१० ।

निषेकप्रकरण

कुजेन्दुहेतु प्रतिमासमार्तवं गते तु पीडर्क्ष मनुष्णदीधितौ ।
अतोऽन्यथास्थे शुभपुङ्ग्रहेक्षिते नरेण संयोगमुपैति कामिनी ।। ११ ।।

मंगल और चन्द्रमा के हेतु से स्त्रियों को प्रतिमास आर्तव (रजोधर्म) होता है । जब स्त्री की जन्म राशि से चन्द्रमा अनुपचय—अर्थात् पहली, दूसरी, चौथी, पाँचवीं, सातवीं, आठवीं, नवीं, या बारहवीं राशि में हो—उस समय जो ऋतु धर्म हो, वह गर्भ धारण के योग्य होता है। जब पुरुष की जन्म राशि से

उपचय—तीसरे, छठे, दसवें, ग्यारहवें चन्द्रमा हो और उसे शुभ पुरुष ग्रह देखता हो—ऐसे समय पुरुष और स्त्री का संयोग हो तो गर्भ रहता है। यह इस श्लोक का अर्थ है। श्लोक बहुत महत्वपूर्ण है, इस कारण इसकी व्याख्या की आवश्यकता है।

आर्तव शब्द ऋतु से बना है। जैसे ऋतु काल में ही वृक्षों में रज (पराग) पुष्प और फल आते हैं, वैसे ही स्त्रियों के ऋतु काल में ही पुष्प, फल आदि होते हैं। वृक्षों में जो पराग है, या रज है वही स्त्रियों का रजोधर्म है। इसी रज से रजस्वला शब्द बना हैं। वृक्षों में जो पुष्प है, वही स्त्रियों में मासिक धर्म है। इसीलिये जो स्त्री रजस्वला हो उसे पुष्पवती या पुष्पिणी कहते हैं। वृक्षों में जो फल है, वही स्त्रियों में सन्तान है।

पपीता आदि वृक्षों में भी नर वृक्ष और मादा वृक्ष होते हैं। हवा चलने से नर वृक्ष के कण विशेष मादा वृक्षों पर पड़ते हैं, तब मादा वृक्षों में फल आते हैं। नर वृक्ष में फल नहीं आते किन्तु वे मादा वृक्षों को सगर्भा करते हैं।

भट्टोत्पल कहते हैं कि स्त्री की जन्म राशि से अनुपचय स्थित चन्द्रमा यदि मंगल से दृष्ट हो तो वह मासिक धर्म गर्भ स्थिति करा सकता है। अर्थात् चाहे स्त्री की अनुपचय राशि में चन्द्रमा हो, किन्तु मंगल से दृष्ट न हो तो वह मासिक धर्म गर्भ ग्रहण के योग्य नहीं होता। कल्याण वर्मा सारावली में कहते हैं कि चन्द्रमा जल है, मंगल अग्नि है—वही अग्नि पित्त रूप से स्त्रियों के जल रूप रक्त को क्षुभित करता है, तब स्त्री रजस्वला होती है। यदि चन्द्रमा स्त्री की जन्म राशि से उपचय (३, ६, १०, ११) में हो और उस समय स्त्री रजस्वला हो, तो वह मासिक धर्म विफल होता है अर्थात् उस मास में गर्भधारण नहीं होता। वह यह भी कहते हैं कि पुरुष की जन्म राशि से उपचय (३, ६, १०, ११) में चन्द्रमा हो और बृहस्पति या मित्र ग्रहों से दृष्ट हो तो गर्भ रहता है, विशेषकर यदि चन्द्रमा शुक्र से दृष्ट हो। किन्तु बादरायण केवल यह कहते हैं कि पुरुष की जन्म राशि से उपचय में चन्द्रमा गुरु दृष्ट हो तो (स्त्री के ऋतुकाल के समय जो ग्रह स्थिति कही गयी है, वह होने से) गर्भ रहता है। वराह मिहिर पुरुष जन्म राशि से उपचय चन्द्र का शुभपुंग्रहेक्षित होना कहते हैं। शुभ पुरुष ग्रह केवल बृहस्पति होता है, इसलिये चन्द्रमा बृहस्पति दृष्ट हो यह एक अर्थ हुआ। शुभ एवं पुरुष ग्रहों से वीक्षित हो यह दूसरा अर्थ हुआ। मणित्थ कहते हैं कि ऋतुकाल विराम के बाद जब स्त्री स्नान करले और चन्द्रमा उपचय में हो (यहाँ उपचय कहा है अनुपचय नहीं, यह ध्यान रहे) और बृहस्पति से दृष्ट हो तो अपने पति से समागम हो। सूर्य से दृष्ट चन्द्रमा हो तो राज पुरुष से संयोग हो, मंगल से दृष्ट हो तो व्यभिचारी पुरुष से, बुध से दृष्ट हो तो चपल बुद्धि वाले से, शुक्र से

दृष्ट हो तो रूपवान् कांत से (कान्त पति को भी कहते हैं सुन्दर पुरुष को भी), शनि से दृष्ट हो तो नौकर से समागम करे। अनेक पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो घर से निकल जावे और वेश्या हो जावे। किन्तु मणित्थ के इस कथन को हम प्रश्न कुंडली, या प्रथम रजोदर्शन विचार के लिये विशेष उपयुक्त मानते हैं।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि मंगल और चन्द्रमा, इनका जन्मकालीन, या प्रश्न के समय, युति, दृष्टि आदि से परस्पर षड्वर्ग सम्बन्ध हो तो स्त्री रजस्वला होती है। स्त्री की जन्म राशि से अनुपचय में चन्द्रमा हो, मंगल से (गोचरस्थ) चन्द्रमा का सम्बन्ध हो तो स्त्री गर्भाधानक्षम होती है। किन्तु यदि स्त्री बाल (अल्पवय की) वृद्ध (अधिक वय की) आतुर (रोगिणी), या वंध्या (बाँझ) हो तो ऐसा नहीं होता।

रजोदर्शन के समय चन्द्रमा का मंगल से सम्बन्ध हो, या ऋतुकाल (उस मास में जब चन्द्रमा स्त्री की जन्म राशि से अनुपचय में हो और गोचरस्थ चन्द्रमा जब मंगल से सम्बन्ध करे) के किसी भी समय—इसके सम्बन्ध में आचार्यों का यही मत है कि मासिक धर्म के समय का चन्द्रमा लेना। किन्तु पुरुष की जन्म राशि से उपचय चन्द्र गर्भाधान के समय लेना।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि स्त्री की जन्म राशि से जो अनुपचय चन्द्रमा का सम्बन्ध कहा, वह नवांश या द्वादशांश में भी लेना। चन्द्रमा एक राशि में प्रायः सवा दो दिन—१३५ घड़ी रहता है। इसका नवांश नवाँ भाग १५ घड़ी हुआ। इस नवांश १५ घड़ी का बारहवाँ भाग १ घड़ी १५ पल हुआ अर्थात् ७५ पल। मूल में 'मास' (म=५; स=७; अंकानां वामतो गतिः' इस सिद्धान्त से ७५ संख्या) से ७५ का बोध होता है। चन्द्रमा के इस नवांश के द्वादशांश ७५ पलों में स्त्री की जन्म राशि से अनुपचयस्थ चन्द्रमा का गोचर या जन्मकालीन, मंगल से षड्वर्गादि सम्बन्ध हो तो उस समय का प्रवृत्त रजस्राव, गर्भ-धारणक्षम होता है। गर्भधारण होता ही है, यह नहीं समझना, क्योंकि उदाहरण के लिये यदि स्त्री पुरुष समागमहीन हो तो गर्भ धारण कैसे होगा।

रुद्रभट्ट यह विशेष कहते हैं कि मूल में शुभ शब्द आया है, इसलिये 'शु' से शुक्र की दृष्टि भी, पुरुष की जन्म राशि से उपचयस्थ चन्द्र पर लेना और शुभ शब्द से (शु=शुभ; भ=नक्षत्र) से गर्भाधान के समय शुक्राधिष्ठित (शुक्र जहाँ हो) या शुक्र के नक्षत्र—भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ से त्रिकोणादि सम्बन्ध गर्भाधान के समय के लग्न तथा चन्द्र से लेना। ११।

यथाऽस्तराशिर्मिथुनं समेति तथैव वाच्यो मिथुनप्रयोगः।
असद्ग्रहालोकितसंयुतेऽस्ते सरोष इष्टैः सविलासहासः॥ १२॥

अब यह बताते हैं कि प्रश्न लग्न या आधान (जिस समय गर्भाधान किया गया) लग्न से यह ज्ञात करना कि स्त्री-पुरुष ने किस आसन से भोग किया। कामशास्त्र में ८४ आसनों का वर्णन है। वात्स्यायन ने भी अनेक आसनों का वर्णन किया है। भारतवर्ष के भी भिन्न प्रदेशों में पृथक्-पृथक् पद्धति हैं। इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि देशों में कुछ भिन्नता है। यह सब विचार कर निर्णय करना। इस श्लोक में कहा गया है कि सप्तम में जो राशि हो उस राशि की भाँति। अर्थात् सप्तम में द्विपद राशि हो तो द्विपद (मनुष्य) की भाँति, चतुष्पद राशि हो तो चतुष्पद की भाँति, कीट राशि हो तो कीट की भाँति इत्यादि। यदि सप्तम में पाप ग्रह हो, या सप्तम पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो रोषपूर्वक, यदि शुभ ग्रह सप्तम में हों या शुभ ग्रहों की सप्तम पर दृष्टि हो तो विलास हासयुत अर्थात् अन्योन्यानुरागयुत संभोग कहना। १२।

दशाध्यायी बृहज्जातक की प्राचीन संस्कृत टीका है। दक्षिण भारत में यह विशेष प्रचलित है। टीकाकार लिखते हैं कि सप्तम में जो राशि—उसकी प्रकृति के अनुसार सुरत कहना। यथा मेष हो तो कामित्व और वनिताप्रियत्व, वृष हो तो सौभाग्यत्व, मिथुन हो तो सुरतोपचारकुशलत्व, कर्क हो तो स्त्रीजितत्व, सिंह हो तो स्त्रीद्वेषित्व, कन्या हो तो सुरतप्रियत्व, तुला हो तो स्त्रीजितत्व, वृश्चिक हो तो स्त्रीहीनत्व, धनु हो तो पुरुषप्रधानत्व, मकर या कुंभ हो तो असुखावह सुरत, मीन हो तो स्त्रीजितत्व।

लग्न से सप्तम ओज राशि हो तो पुरुषकर्तृत्व, स्त्री राशि हो तो स्त्री-कर्तृत्व; पुरुष राशि में स्त्री ग्रह हो या स्त्री राशि में पुरुष ग्रह हो तो उभय कर्तृत्व। यदि प्रश्न कुण्डली में यह विचार करना हो कि किस वर्ण की स्त्री से सुरत किया तो सप्तमेश ग्रह से वर्ण विचार करना। सप्तमेश की उच्च आदि स्थिति से पुरुष (यदि पुरुष के विषय में प्रश्न हो) या स्त्री (यदि स्त्री के विषय में ज्ञात करना हो) का उत्कर्ष (पद, स्थिति आदि) का विचार करना।

रवीन्दुशुक्रावनिजैः स्वभागगैः गुरौ त्रिकोणोदयसंस्थितेऽपि वा।
भवत्यपत्यं हि विबीजिनामिमे करा हिमांशोर्विदृशामिवाफलाः ॥ १३॥

अब गर्भ संभावना ज्ञान कहते हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, शुक्र यदि अपने-अपने नवांश में हों तो गर्भ हुआ यह कहना। अथवा बृहस्पति यदि लग्न, पंचम या नवम में हों तो गर्भ कहना।

लघुजातक में, गर्भ है या नहीं, यह ज्ञात करने के लिये अन्य योग भी दिया है कि अपने गृहांश (राशि या नवांश) में बलवान् सूर्य और शुक्र पुरुष के

उपचय में हों या स्त्री के उपचय में बलवान् अपने गृहांश में चन्द्रमा और मंगल हों तो गर्भ रहता है।

वराहमिहिर कहते हैं कि जिस प्रकार अंधों के लिये चन्द्रमा की किरणें विफल हैं (अर्थात् सुन्दर चन्द्रिका उनके लिये नयनोल्लास करने में निष्फल है) इसी प्रकार विबीज (नपुंसक पुरुष या वंध्या स्त्री) के लिये ये योगफल उत्पन्न नहीं करते। १३।

दिवाकरेन्द्वोः स्मरगौ कुजार्कजौ गदप्रदौ पुङ्गलयोषितोस्तदा।
व्ययस्वगौ मृत्युकरौ युतौ तथा तदेकदृष्ट्या मरणाय कल्पितौ ॥१४॥

बृहज्जातक के इस श्लोक में ६ योग दिये गये हैं।

आधान अथवा प्रश्न कुण्डली में इसका विचार करना चाहिये।

(१) यदि सूर्य से सप्तम में मंगल, शनि हों तो अपने महीने में पुरुष को (पिता) रोगी करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि सूर्य से सप्तम में मंगल तथा शनि दोनों हों। मंगल या शनि कोई भी सूर्य से सप्तम हो तो अपने मास में पुरुष को रोगी करेगा।

अपने मास से क्या तात्पर्य? बृहज्जातक अध्याय ४ श्लोक १६ में लिखा है कि बच्चा माता के गर्भ में १० मास रहता है, उन दस मासों में क्रमशः १० मासाधिप कहे गये हैं :—१ शुक्र, २ मंगल, ३ बृहस्पति, ४ सूर्य, ५ चन्द्रमा, ६ शनि, ७ बुध, ८वें मास का अधिप लग्नेश, ९वें मास का पुनः चन्द्रमा, १०वें का पुनः सूर्य। इस सिद्धान्तानुसार सूर्य से सप्तम मंगल होगा तो द्वितीय मास में पिता को रोगी करेगा। यदि सूर्य से सप्तम में शनि हो तो छठे महीने में पिता को रोगी करेगा।

(ii) इसी प्रकार यदि चन्द्रमा से सप्तम में मंगल या शनि हो तो अपने मास में माता को बीमार करेगा।

(iii) यदि सूर्य की अगली बगली—पार्श्व को (सूर्य से द्वितीय तथा द्वादश) राशियों में मंगल, शनि हो—सूर्य से एक (मंगल या शनि) व्यय में हो अन्य द्वितीय में तो—इन दोनों में जो बलवान् हो, वह जिस मास का स्वामी हो, उस मास में पिता की मृत्यु होती है।

(iv) इसी प्रकार चन्द्रमा से द्वितीय तथा व्यय में मंगल, शनि हों (इनमें से एक व्यय में, अन्य द्वितीय में) तो मंगल तथा शनि इनमें जो बलवान् हो, वह जिस मास का अधिप हो, उस मास में माता की मृत्यु होती है।

(v) मंगल और शनि—इनमें से एक सूर्य से युत हो, अन्य सूर्य को देखे तो मंगल और शनि—इनमें जो बलवान् हो, वह जिस मास का अधिप है, उस मास में पिता की मृत्यु होती है।

(vi) मंगल और शनि इनमें से एक चन्द्रमा के साथ हो, अन्य चन्द्रमा को देखे तो इन दोनों पाप ग्रहों में जो बली हो, वह जिस मास का स्वामी हो, उस मास में माता की मृत्यु होती है।

इस श्लोक में वराहमिहिर ने गर्भाधान के प्रसंग में यह श्लोक कहा है। गर्भाधान का समय तो प्रायः लोगों को स्मरण नहीं रहता। इसलिये सम्प्रदायानुसार प्रश्न कुण्डली में भी इसका उपयोग किया जाता है। रुद्रभट्ट यह विशेष कहते हैं कि इसमें मंगल–शनि न्याय का प्रतिपादन किया गया है। सर्वत्र भाव, भावाधिप, शुभाशुभ कथन में इसका उपयोग करना चाहिये। इसका क्या तात्पर्य? किसी भाव से सप्तम में मंगल या शनि हो तो उस भाव को विगाड़ता है। किसी भाव के अगल-बगल की राशियों में मंगल या शनि—यह दोनों हों तो उस भाव को बिगाड़ते हैं। किसी भाव में मंगल हो और उसे शनि देखे या किसी भाव में शनि हो उसे मंगल देखे, तो उस भाव का ह्रास होता है। रुद्रभट्ट पुनः कहते हैं कि राहु शनि की भाँति है, केतु मंगल की भाँति। १४।

दिवाऽर्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ शनैश्चरेन्दू निशि तद्विपर्ययात् ॥
पितृव्यमातृष्वसृसंज्ञितौ च तावथौजयुग्मर्क्षगतौ तयोः शुभौ ॥ १५ ॥

निषिक्त (जिसका गर्भ में आधान हो गया हो) उसके माता-पिता, चाचा, मौसी के कारक कौन-कौन से ग्रह होते हैं, यह कहते हैं। इस श्लोक में कथित योगों का उपयोग जन्मकुण्डली विचार में भी किया जाता है।

(i) निषेक या जन्म यदि दिन (सूर्योदय से सूर्यास्त तक) में हो तो पिता संज्ञक सूर्य, मातृ संज्ञक शुक्र, शनि पितृव्य (चाचा या ताऊ–संस्कृत में पितृव्य का अर्थ है पिता का भाई) संज्ञक चन्द्रमा मातृष्वसा (माँ की बहिन–मौसी) संज्ञक है। यदि सूर्य ओज (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुंभ) राशि में हो तो पिता के लिये शुभ। यदि शनि ओज राशि में हो तो पितृव्य के लिये शुभ। शुक्र यदि सम (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन) राशि में हो तो माता के लिए शुभ, चन्द्रमा यदि सम राशि में हो तो मौसी के लिए शुभ। सूर्य यदि सम राशि में हो तो पिता के लिये अशुभ, शनि यदि सम राशि में हो तो पितृव्य के लिये अशुभ। शुक्र यदि ओज राशि में हो तो माता के लिये अशुभ, चन्द्रमा यदि ओज राशि में हो तो मौसी के लिये अशुभ।

(ii) निषेक या जन्म यदि रात्रि (सूर्यास्त से सूर्योदय तक) में हो तो शनि पितृसंज्ञक, सूर्य पितृव्य संज्ञक, चन्द्रमा मातृ संज्ञक, शुक्र मातृष्वसा संज्ञक होता है। ओज राशि में शनि हो तो पिता के लिए शुभ, सूर्य हो तो पितृव्य के लिये शुभ। समराशि में चन्द्रमा हो तो माता के लिये शुभ, शुक्र हो तो मौसी के लिए शुभ। समराशि में शनि हो तो पिता के लिये अशुभ, सूर्य हो तो पितृव्य के लिये अशुभ। ओज राशि में चन्द्रमा हो तो माता के लिए अशुभ, शुक्र हो तो मौसी के लिये अशुभ।

यह श्लोक बृहज्जातक अध्याय ४ से लिया गया है। भट्टोत्पल की टीका के अनुसार ऊपर अर्थ दिया गया है। मूल में दिवा और निशि—ये दो शब्द आये हैं, जिनका अर्थ दिन और रात्रि भट्टोत्पल ने किया है। मूल में ओज और युग्म राशि यह दो शब्द भी आये हैं, उनका अर्थ भट्टोत्पल के मतानुसार विषम (१, ३, ५, ७, ९, ११) और सम (२, ४, ६, ८, १०, १२) ऊपर किया गया है। परन्तु रुद्रभट्ट ने जो इस श्लोक की टीका की है, उसमें विभिन्नता है। वह लिखते हैं कि दिवा शब्द से 'दिवाराशयः' लेना। निशा शब्द से 'निशाराशयः' लेना। वराहमिहिर ने अध्याय १ श्लोक १० में लिखा है कि मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु तथा मकर निशा राशियाँ हैं। शेष सिंह, कन्या, तुला वृश्चिक, कुंभ तथा मीन दिवा (दिन में बली) राशियाँ हैं। जातकपारिजात अध्याय १ श्लोक १४ में भी यही कहा गया है। दूसरी विभिन्नता रुद्रभट्ट के विवरण में—ओज, युग्म के अर्थ में है। वह लिखते हैं **ओज युग्मयोर्लग्नादित्वं च संवादाय गृह्यते। स्फुटमिह भवति द्विविसंवादभावात्** '**इति प्रश्नजातकयोः संवादोऽवश्यमपेक्षणीय एव**। तथा पुनः कहते हैं कि दिवालग्न में जन्म हो, सूर्य सम राशि में समनवांश में स्थित हो या निशालग्न में जन्म हो, शनि समराशि, समनवांश में हो तो जातक पिता के विरुद्ध (पिता से विरोध करने वाला) होता है। इसी प्रकार दिवालग्न या निशालग्न के भेद से जातक पितृव्य, माता, माता की बहिन से विरोध करता है। दिवालग्न या निशालग्न से केवल यह निश्चय किया जाता है कि सूर्य और शनि में कौनसा पितृ कारक है, कौनसा पितृव्यकारक तथा चन्द्रमा और शुक्र में कौनसा मातृकारक कौनसा मातृष्वसा कारक। सूर्य, शनि यदि समराशि, समनवांश में हों, तो इन दोनों में जो ऐसा हो, वह जिसका कारक है (पिता या पितृव्य का) उससे जातक विरोध करता है। चन्द्रमा और शुक्र यदि विषम राशि, विषम नवांश में हों तो जो ग्रह ऐसा हो, वह जिसका कारक हो (माता या मातृष्वसा का) उससे विरोध करता है। इसी प्रकार स्त्रीजातक में समझना चाहिये।

रुद्रभट्ट पुनः कहते हैं कि यदि लग्न में पाप ग्रह हो, सप्तमेश बलवान् हो तो उनसे मैथुनादि करता है। मान लीजिए पुरुष की कुंडली है, लग्न में पाप ग्रह है, सप्तमेश बलवान् है, तृतीयेश शुक्र, चन्द्रमा से युत है तो जो रिश्ते में बहिन लगती हो उससे व्यभिचार करेगा। मान लीजिए स्त्री की कुण्डली है, लग्न में पाप ग्रह है, सप्तमेश बलवान् है, तृतीयेश सूर्य, शनि से युत है, तो रिश्ते में जो भाई लगता हो उससे व्यभिचार करेगी। तृतीयेश से उपर्युक्त स्थिति में भाई, बहिन लिये, नवमेश से मामा, मामी से व्यभिचार समझना। इस प्रकार किस रिश्तेदार से व्यभिचार होगा यह इससे समझना कि स्त्री की कुंडली में सूर्य, शनि की और पुरुष की कुंडली में शुक्र, चन्द्र की किस भवनेश से युति है। इस योग के लिए, लग्न में पाप ग्रह होना और सप्तमेश का बलवान् होना आवश्यक है। १५।

शीतज्योतिषि योषितोऽनुपचयस्थाने कुजेनेक्षिते
जातं गर्भफलप्रदं खलु रजः स्यादन्यथा निष्फलम्।
दृष्टेऽस्मिन् गुरुणा निजोपचयगे कुर्य्यान्निषेकं पुमान्
अत्याज्ये च समूलभे शुभगुणे पर्वादिकालोज्झिते।। १६।।

इस श्लोक में प्रायः वही बात दुहराई गयी है, जिसकी व्याख्या पहले श्लोक ११ में कर चुके हैं। स्त्री की जन्मकुंडली में जिस राशि में चन्द्रमा हो, उससे अनुपचय (१, २, ४, ५, ७, ८, ९, १०) में गोचरवश चन्द्रमा हो और उस गोचरस्थ चन्द्रमा को गोचरस्थ मंगल देखता हो तो ऐसा मासिक धर्म गर्भधारण करने योग्य होता है; अन्यथा निष्फल होता है। जब पुरुष की जन्मकुंडली में जिस राशि में चन्द्रमा हो, उससे उपचय (३, ६, १०, ११) राशि में गोचरस्थ चन्द्रमा हो और उसे गोचरस्थ बृहस्पति देखता हो, उस समय पुरुष निषेक (गर्भाधान) करे। गर्भाधान के समय त्याज्य नक्षत्र न हो, पर्व आदि न हो, शुभ गुणयुक्त मुहूर्त हो।

गर्भाधान के समय निम्नलिखित दोष नहीं होने चाहियें।

(i) गण्डान्त दोष—यह तीन प्रकार का है। (क) एक तिथि का अन्त हो रहा हो, दूसरी तिथि का प्रारंभ। (ख) एक नक्षत्र का अंत दूसरे का प्रारंभ (ग) एक लग्न का अंत दूसरे का प्रारंभ। प्रायः आश्लेषा का अंत मघा का प्रारंभ, ज्येष्ठा का अंत मूल का प्रारंभ, रेवती का अंत अश्विनी का प्रारंभ गण्डान्त माना जाता है। इसी प्रकार कर्क लग्न का अंत सिंह का प्रारंभ, वृश्चिक लग्न का अन्त धनु का प्रारंभ, मीन लग्न का अंत मेष का प्रारंभ गण्डान्त माना जाता

है। (ii) अपने जन्म नक्षत्र से सप्तम नक्षत्र। (iii) अपना जन्म नक्षत्र। (iv) अश्विनी, भरणी, मघा, मूल, रेवती नक्षत्र (v) ग्रहण (सूर्य ग्रहण या चन्द्र ग्रहण) का दिन। (vi) व्यतीपात और वैधृति योग परिघ योग का पूर्वार्द्ध। (देखिये सुगम ज्योतिष प्रवेशिका पृष्ठ २६-२७)। (vii) माता-पिता का श्राद्धदिन। (viii) जिस नक्षत्र या राशि या दिन में उत्पात हुआ हो। (उत्पात के लिये देखिये बृहत्संहिता का उत्पाताध्याय)। (ix) अपनी जन्म राशि या जन्म लग्न से जो अष्टम लग्न हो। (x) जिस लग्न में पाप ग्रह हो। (xi) जिस नक्षत्र में पाप ग्रह हो। (xii) जिस राशि में पापग्रह हो। (xiii) भद्राकरण। (xiv) षष्ठी तिथि (xv) पर्व—चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा जिस दिन सूर्य संक्रान्ति हो (xvi) रिक्ता तिथि—चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी तिथि। (xvii) संध्याकाल—प्रातः संध्या का समय तथा सायं संध्या का समय। (xviii) रविवार, मंगलवार, शनिवार। (xix) जब स्त्री को मासिक धर्म हो तब पहले चार रात्रि।

यह सब गर्भाधान के मूहूर्त में दोष हैं। इनमें से कोई नहीं होना चाहिये।

जातक पारिजातकार ने मूल में कहा है 'शुभगुणे'। अर्थात् गर्भाधान के काल में शुभता हो—गुण हों। इसलिये गर्भाधानकाल के शुभ गुण कौन से हैं, यह कहते हैं। गर्भाधान के लिये निम्नलिखित शुभ हैं :—

(i) नक्षत्र—रोहिणी, मृगशिर, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, उत्तराषाढ, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराभाद्र। (ii) गर्भाधान लग्न से केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह हों; लग्न से तीसरे, छठे, ग्यारहवें पापग्रह हों। (iii) पुरुष ग्रह लग्न को देखें। (iv) चन्द्रमा ओज (१, ३, ५, ७, ९, ११) राशि और नवांश में हो। (x) गर्भाधान लग्न और नवांश भी ओज हो—लग्न में चन्द्र, बुध, बृहस्पति हों यह वसिष्ठ कहते हैं। ओज राशि, अंश का विधान इसलिये कहा गया है कि पुत्र हो। समराशि, अंश में कन्या होती है।

उपर्युक्त विशद विवेचन के लिए विद्यामाधवीयम् तथा मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधारा टीका का अवलोकन करें। अनेक आचार्यों के मत में यत्र तत्र विभिन्नता है। १६।

स्त्रियों का ऋतुकाल

विभावरीषोडश भामिनीनामृतूद्गमाद्या ऋतुकालमाहुः।
नाद्याश्चतस्रोऽत्र निषेकयोग्याः पराश्च युग्माः सुतदाः प्रशस्ताः ॥१७॥

स्त्रियों के मासिक धर्म प्रारंभ से १६ रात्रि तक ऋतुकाल कहा गया है। प्रारंभ की चार रात्रि निषेक के योग्य नहीं है। बाद की १२ रात्रि में-युग्म (छठी, आठवीं, दसवीं बारहवीं, चौदहवीं तथा सोलहवीं) रात्रियाँ पुत्र देने वाली प्रशस्त हैं। प्रायः सभी प्राचीन ग्रंथकारों ने यही कहा है कि मासिक धर्म प्रारंभ होने के १६ दिन के अभ्यन्तर में गर्भ रहता है, परन्तु प्रसिद्ध लेडी डाक्टर मेरी स्टोप्स का मत है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों के अनुसंधान और अनुभव से यह सिद्ध है कि मासिक धर्म प्रारंभ होने से पूर्व-जो एक सप्ताह होता है, उसमें गर्भाधान विशेष संभावित होता है। आजकल विश्व में सर्वत्र, विशेषकर भारत में, परिवार नियोजन का महान् अभियान चल रहा है। यदि स्त्री को प्रारंभिक १६ दिन में ही गर्भधारण क्षमता हो, बाद के दिनों में न हो, तो यह परिवार नियोजन का अभियान बहुत सुगमता से सफल हो जावे। परन्तु ऐसा नहीं है। १७।

पुत्र या कन्या

पुत्रोऽल्पायुर्दारिका वंशकर्ता वन्ध्या पुत्रः सुन्दरीशो विरूपा।
श्रीमान् पापा धर्मशीलस्तथा श्रीः सर्वज्ञः स्यात्तुर्यरात्रात् क्रमेण ॥ १८ ॥

रजोदर्शनकाल से ३ रात्रि तक पत्नी अस्पृश्य रहती है। चौथे दिन शुद्धि होती है। परन्तु शास्त्रों में विधान है कि स्त्री समागम के लिये प्रारंभिक ४ रात्रियाँ वर्जित हैं। चौथी रात्रि से १६वीं रात्रि तक प्रत्येक रात्रि में (रात्रि के अन्तर्गत दिन भी समझना-वैसे दिन में समागम धर्मशास्त्र में निषिद्ध है) यदि गर्भ रहे तो सन्तान निम्नलिखित प्रकार की होती है:—

(४) अल्पायु पुत्र (५) कन्या (६) वंशविस्तार करने वाला पुत्र (७) वंध्या, कन्या अर्थात् ऐसी कन्या जो बाँझ हो (८) पुत्र (९) सुन्दरी-कन्या (१०) प्रभावशाली पुत्र-ऐसा पुत्र जो अनेक व्यक्तियों पर स्वामित्व करे (११) विरूपा (लावण्य रहित) कन्या (१२) श्रीमान् (जो आगे चलकर धनी हो) पुत्र (१३) पापा (पाप-कुत्सित आचरण वाली कन्या (१४) धर्मशील (धर्माचरण करने वाला पुत्र) (१५) लक्ष्मीवती (जो आगे चलकर धनस्वामिनी हो) कन्या (१६) सर्वज्ञ (अनेक शास्त्रवेत्ता) पुत्र।

पुत्र उत्पत्ति वाले योग

अष्टमाष्टमगे सूर्ये निषेकर्क्षात्सुतोद्भवः।
अथवाऽऽधानलग्नात्तु त्रिकोणस्थे दिनेश्वरे ॥ १९ ॥

अस्मिन्नाधानलग्ने तु शुभदृष्टियुतेऽथवा ॥
दीर्घायुर्भाग्यवान् जातः सर्वविद्यान्तमेष्यति ॥ २० ॥
ओजर्क्षे पुरुषांशकेषु बलिभिर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिः
पुञ्जन्म प्रवदेत्समांशकगतैर्युग्मेषु तैर्योषितः ।
गुर्वर्कौ विषमे नरं शशिसितौ वक्रश्च युग्मे स्त्रियम्
द्व्यङ्गस्था बुधवीक्षणाच्च यमलौ कुर्वन्ति पक्षे स्वके ॥ २१ ॥
विहाय लग्नं विषमर्क्षसंस्थः सौरोऽपि पुंजन्मकरो विलग्नात् ॥
प्रोक्तग्रहाणामवलोक्य वीर्यं वाच्यः प्रसूतौ पुरुषोऽङ्गना वा ॥२२॥

गर्भाधान के समय जो लग्न हो, उसके आधार पुत्र जन्म के (यदि गर्भ रहे तो पुत्र हो, कन्या नहीं) कतिपय योग कहते हैं। इन योगों का उपयोग प्रश्न कुण्डली में भी किया जाता है।

(१) (i) लग्न से तृतीय में सूर्य हो (ii) लग्न से त्रिकोण में—पंचम या नवम में सूर्य हो।

(२) यदि उपर्युक्त योग हो, अर्थात् लग्न से तृतीय, पंचम या नवम में सूर्य हो—लग्न में शुभ ग्रह हो, या लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो बच्चा (जो इस गर्भाधान के फलस्वरूप जन्म ले) भाग्यवान्, विद्वान् तथा दीर्घायु होता है।

अब पुत्र जन्म हो या कन्या जन्म हो इसके अन्य योग कहते हैं। श्लोक २१ से २५ तक बृहज्जातक अध्याय ४ से लिये गये हैं। अतः प्राचीन टीकाओं के आधार पर इनका विवेचन किया जाता है—

(३) (i) भट्टोत्पल कहते हैं यदि ओज (१, ३, ५, ७, ९, ११) राशि में, पुरुष नवांश (ओज नवांश ही पुरुष नवांश होते हैं—१, ३, ५, ७, ९, ११) में बली बृहस्पति, लग्न, सूर्य चन्द्रमा हों तो पुरुष का जन्म। यदि बृहस्पति, लग्न, सूर्य और चन्द्रमा समराशि (२, ४, ६, ८, १० १२) राशि, सम नवांश (वृष, कर्क आदि जो ऊपर कहा गया है) में हो तो कन्या का जन्म होता है। भट्टोत्पल कहते हैं कि ऐसी ग्रह स्थिति दुर्लभ है जब उपर्युक्त चारों ओज राशि, ओज नवांश में ही हों, या चारों समराशि, सम नवांश में ही हों—इस कारण जब मिली-जुली स्थिति में हो—कुछ ओज में कुछ युग्म में तो बाहुल्य किसका है—अधिकता किसकी है—ओज की या युग्म की इस आधार पर निर्णय करना।

(ii) वराहमिहिर पुनः कहते हैं कि ओज (ओज और विषम का एक ही अर्थ है) में यदि सूर्य बृहस्पति हों तो पुरुष। चन्द्रमा, शुक्र, मंगल यदि युग्म (सम और युग्म का एक ही अर्थ है) में हों तो स्त्री। भट्टोत्पल कहते हैं

कि 'बली' शब्द जो प्रथम चरण में कहा है, उसका अनुवर्तन यहाँ भी करना चाहिए अर्थात् बली बृहस्पति और सूर्य यदि ओज राशि में हों (चाहे कैसे भी नवांश में हों) तो पुरुष; बली चन्द्र, शुक्र और मंगल यदि समराशि में हों (चाहे, कैसे भी नवांश में हों) तो स्त्री।

रुद्रभट्ट कुछ विशेष कहते हैं। उनके अनुसार प्रथम दो चरणों में (जो अर्थ ऊपर (i) में दिया गया है) पुरुष जन्म या स्त्री जन्म किस प्रकार की ग्रह स्थिति से होता है, यह कह चुकने पर जो यह कहा कि 'गुर्वर्कौ विषमे' इसका अर्थ है कि बृहस्पति और सूर्य यदि विषम (१, ३, ५, ७, ९, ११ भावों में—प्रथम तृतीय आदि) भावों में हों तो पुरुष और चन्द्रमा तथा शुक्र समभावों में (लग्न से दूसरे, चौथे, छठे, आठवें, दसवें या बारहवें) हों तो स्त्री। रुद्रभट्ट पुनः कहते हैं कि बाद में—तृतीय चरण में जो 'वक्रश्च' (और मंगल) यह कह कर मंगल का जो पृथक् निर्देश किया इसका क्या तात्पर्य ? सूर्य बृहस्पति पुरुष ग्रह हैं, इस कारण गुर्वर्कौ कहकर दोनों का द्वन्द्व समास बनाया। चन्द्रमा और शुक्र दोनों स्त्री ग्रह हैं—इस कारण इन दोनों का भी द्वन्द्व समास बनाया। मंगल पुरुष ग्रह है—यदि लग्न से गिनने पर=२, ४, ६, ८, १०, १२ इन भावों में मंगल हो तो शोणिताधिक्य द्योतित करने के कारण कन्या का जन्म करेगा। किन्तु लग्न से प्रथम, तृतीय, पंचम, सप्तम, नवम, एकादश में मंगल हो तो पुरुष ग्रह होने के कारण पुत्र (पुरुष) उत्पन्न करेगा।

(iii) भट्टोत्पल कहते हैं कि यही ग्रह यदि द्व्यंग (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) में—अर्थात् किसी भी राशि में द्व्यंग (द्विस्वभाव) नवांश में हों और उन पर बुध की दृष्टि हो तो यमल (दो बच्चे) करेंगे—उपर्युक्त ग्रह, मिथुन, धनु (द्विस्वभाव किन्तु पुरुष) नवांश में हों तो दो पुत्र; उपर्युक्त ग्रह कन्या, मीन (द्विस्वभाव किन्तु स्त्री) नवांश में हो तो दो कन्या। पुनः व्याख्या करते हैं कि (क) सूर्य और बृहस्पति, मिथुन, धनु नवांश में हों, बुध से दृष्ट हों तो दो पुत्र। (ख) चन्द्रमा और शुक्र कन्या, मीन नवांश में हों, बुध से दृष्ट हों तो दो कन्या। यदि (क) और (ख) दोनों स्थिति हो तो एक पुत्र और एक कन्या। शंका उठाते हैं कि मूल में वराहमिहिर ने मिथुन, कन्या, धनु, मीन कहा है, तब इनके नवांश का उल्लेख क्यों किया। समाधान करते हैं कि इस प्रसंग में स्वयं वराहमिहिर ने स्वल्पजातक में 'द्विशरीरांशे' यह लिखकर नवांश का उल्लेख किया है।

रुद्रभट्ट के मतानुसार द्विशरीर (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) की राशि और ये ही नवांश हों—(क) उनमें सूर्य, बृहस्पति बुध से दृष्ट हों तो दो पुत्र; (ख)

इनमें चन्द्र शुक्र बुध से दृष्ट हों तो दो कन्या उपर्युक्त स्थिति (क) और (ख) दोनों हों तो एक पुत्र, एक कन्या।

रुद्रभट्ट के मतानुसार प्रश्नकुंडली में भी यह योग देखने चाहिएं।

(४) पुत्र जन्म होगा या कन्या जन्म इस प्रसंग में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र की स्थितिवश क्या प्रभाव पड़ता है, यह कह चुके हैं, परन्तु शनि की किस स्थिति से पुत्र होता है, किससे कन्या—यह नहीं कहा। इसलिए अब शनि के विषय में कहते हैं।

भट्टोत्पल कहते हैं कि पहले पुत्र जन्म या कन्या जन्म के जो योग कहे गए हैं, उनका अन्वेषण करना चाहिए कि वे घटित होते हैं या नहीं। वे यदि घटित होते हों तो तदनुसार फल कहे। वे यदि घटित न हों तो शनि सम्बन्धी जो योग कह रहे हैं, उसे लागू करना चाहिए। शनि लग्न को छोड़कर यदि अन्य विषम स्थान में हो—अर्थात् तृतीय, पंचम, सप्तम, नवम या एकादश में हो तो पुत्र जन्म कारक होता है; अन्यथा कन्या जन्म कारक।

वराहमिहिर इस प्रकार अनेक योग कहकर पुनः कहते हैं कि यदि दोनों प्रकार के योग—कुछ पुत्रजन्मकारक, कुछ कन्या जन्म कारक उपलब्ध होते हों तो ग्रहों का बलाबल विचार कर—किस योग के कारक ग्रह बलवान् हैं, इस तारतम्य से फलादेश करना चाहिए। रुद्रभट्ट इस श्लोक की व्याख्या में कुछ विशेष कहते हैं। उनका कथन है कि मूल में शब्द हैं 'सौरोऽपि' अर्थात् शनि भी। जब 'अपि' या 'भी' कहा जावे तो कोई अन्य भी अभिप्रेत होता है। वह अन्य यहाँ बुध है। अर्थात् बुध यदि द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम या द्वादश में हो तो कन्या जन्म कारक होता है। १९-२२।

नपुंसक जन्म के योग

अन्योन्यं यदि पश्यतः शशिरवी यद्यार्किसौम्यावपि
वक्रो वा समगं दिनेशमसमे चन्द्रोदयौ चेत्स्थितौ।
युग्मौजर्क्षगतावपीन्दुशशिजौ भून्यात्मजेनेक्षितौ
पुंभागे सितलग्नशीतकिरणाः षट्क्लीबयोगास्त्विमे ॥ २३ ॥

अब क्लीब योग कहते हैं कि किस प्रकार की ग्रह स्थिति में नपुसक का जन्म होता है। इस श्लोक में ६ क्लीब योग कहे गये हैं :—

(i) चन्द्रमा यदि समराशि में हो, और सूर्य विषम राशि में हो तथा दोनों में परस्पर दृष्टि हो।

(ii) शनि यदि समराशि में और बुध विषम राशि में हो तथा दोनों में परस्पर दृष्टि हो।

(iii) सूर्य सम राशि में हो और मंगल विषम राशि में हो तथा दोनों में परस्पर दृष्टि हो।

(iv) चन्द्रमा तथा लग्न दोनों विषम राशि में हों और मंगल समराशि में स्थित होकर दोनों (चन्द्रमा तथा लग्न) को देखे।

(v) चन्द्रमा समराशि में और बुध विषम राशि में हो और मंगल (चाहे समराशि में हो, चाहे विषम राशि में) चन्द्रमा और बुध दोनों को देखे।

(vi) लग्न, चन्द्रमा और शुक्र—यह तीनों किसी भी राशि (सम या विषम) में हों किन्तु यह तीनों विषम नवांश में स्थित हों (अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु या कुंभ नवांश में—इनमें से किसी एक नवांश में—एक साथ या पृथक्-पृथक्, इससे अन्तर नहीं पड़ता)।

बादरायण भी कहते हैं—

अन्योन्यं रविशशिनौ विषमाविषमर्क्षगौ निरीक्ष्येते।
इन्दुजरविपुत्रौ वा तथैव नपुंसकं कुरुतः॥
वक्रो विषमे सूर्यः समगश्चैवं परस्परालोकात्।
विषमर्क्षे लग्नेन्दू समराशिगतः कुजोऽवलोकयति॥
बुधचन्द्रौ विषमर्क्षसमर्क्षगौ तथैवोक्तौ।
ओजनवांशकसंस्था लग्नेन्दुसिता तथैवोक्ता॥

भट्टोत्पल कहते हैं कि पहिले कहे हुए पुत्र जन्म या कन्या जन्म के योग न हों, तब इन (नपुंसक) योगों को लागू करना चाहिये। यदि पूर्वकथित (पुत्र या कन्या के) योग हों और नपुंसक योग भी हों तो पूर्वकथित (पुत्र या कन्या के) योग बलवान् होते हैं। अर्थात् उनके अनुसार ही फलादेश करना चाहिए।

रुद्रभट्ट इस श्लोक की व्याख्या में कुछ विशेष कहते हैं। वह भी लिखा जाता है। क्लीव (नपुंसक) दो प्रकार के होते हैं। एक तो जिसमें पुरुषोचित या स्त्रियोचित व्यञ्जन (इन्द्रिय) न हो। दूसरे वह जो पुरुष धर्म या स्त्री धर्महीन हों। पुरुषपक्ष में—भोगक्षमता न हो, स्त्रीपक्ष में—कुच प्रादुर्भाव, रजस्वला आदि न हो। प्रथम प्रकार के नपुंसक उपर्युक्त योग (i), (ii) तथा (iii) में कहे गए हैं। द्वितीय प्रकार के नपुंसक उपर्युक्त योग (iv), (v) तथा (vi) में कहे गए हैं। वीर्य की अधिकता से पुरुष (पुत्र) होता है। रक्त की अधिकता से स्त्री (कन्या) होती है। शुक्र—शोणित का साम्य होने से नपुंसक (जन्म) होता है। यहाँ जो ग्रहों की परस्पर दृष्टि कही गई वह दृष्टि साम्य—एक-दूसरे से

सप्तम स्थिति के कारण नहीं हो सकती—क्योंकि दो ग्रहों की परस्पर सप्तम दृष्टि होने से दोनों विषम या दोनों समराशि में होंगे किन्तु योग (i), (ii) तथा (iii) में परस्पर जिन दो ग्रहों की दृष्टि का विधान किया है—वहाँ एक को सम में, अन्य को विषम में कहा है, इस कारण षष्ठाष्टम होने पर पद्धति ग्रंथों में अंश से अंश गिनने पर जो दृष्टि आवे वही लेनी होगी। अन्य बाद के ३ योगों में यह लागू नहीं होता इस कारण वहाँ पूर्ण दृष्टि योग (iv) तथा (v) में लागू हो सकती है। योग (vi) में केवल नवांश स्थिति कही गयी है; दृष्टि नहीं। इसी कारण योग (i), (ii) तथा (iii) में व्यञ्जन हीनता कही। नपुंसक भी दो प्रकार के होते हैं—पुरुष हिजड़े और स्त्री हिजड़ी। उपर्युक्त ग्रह स्थिति में—नपुंसक योग होने पर—यदि अपेक्षाकृत पुरुष ग्रह बलवान् होंगे तो हिजड़ा होगा, स्त्री ग्रह बलवान् होंगे तो हिजड़ी होगी।

पुनः कहते हैं कि जातक (जन्मकुण्डली) में भी इन योगों का उपयोग है—केवल गर्भाधान या प्रश्न कुंडली में ही नहीं। यदि केवल एक क्लीब योग हो तो पूर्ण स्पष्टता से फल नहीं कहा जा सकता। किन्तु यदि दो क्लीब योग हों तो योग पूर्ण रूप से घटित हो जाता है अर्थात् जातक क्लीब (स्त्री सहवास में अक्षम) होता है। योगकर्ता ग्रह बलहीन हो तो उसकी दशा या अन्तर्दशा में क्लीबत्व का अनुभव होता है—या जैसे अर्जुन ने क्लीब (बृहन्नला) का रूप धारण किया था—वैसी परिस्थिति होती है या अमुकजातक नपुंसक है, यह प्रवाद हो जाता है। यह सब विचार कर फलादेश करना चाहिए।

बृहज्जातक की दशाध्यायी टीका में टीकाकार कहते हैं :

एवं क्लीबयोगाः उक्ताः न केवलमाधानप्रश्नकालाभ्यां नपुंसकजन्मसूचकाः जातस्य जन्मकाले सन्ति चेत्संततिहानिकरा इति केचित्। (पृष्ठ ८९)

दो या अधिक बच्चों का एक साथ जन्म

युग्मे चन्द्रसितौ तथौजभवने स्युर्ज्ञारजीवोदया
लग्नेन्दू नृनिरीक्षितौ च समगौ युग्मेषु वा प्राणिनः।
कुर्युस्ते मिथुनं गृहोदयगतान्द्व्यंगांशकान्पश्यति
स्वांशे ये त्रितयं ज्ञगांशकवशाद्युग्मं त्वमिश्रैः समम्॥ २४॥

जुड़वाँ बच्चे दो प्रकार के होते हैं। माता के गर्भ से दो या अधिक बच्चे एक साथ उत्पन्न हों (एक दो घंटे का अन्तर प्रसवकाल में होने पर भी एक साथ ही उत्पन्न होना कहलाता है) या दो बच्चे ऐसे हों—जिनके शरीर जुड़े हुए हों। इस श्लोक में दो या अधिक बच्चे—जुड़वाँ बच्चे उत्पन्न होने के योग दिए

हैं। गर्भाधान या प्रश्न लग्न से इनका विचार किया जाता है। नीचे दिए गए पृथक्-पृथक् योग हैं।

(१) चन्द्रमा और शुक्र समराशि में हों तथा लग्न, मंगल, बुध, बृहस्पति विषम राशि में तो दो बच्चे हों एक लड़का, एक लड़की। (२) लग्न और चन्द्रमा समराशि में हों और उन दोनों को पुरुष ग्रह देखे तो दो बच्चे हों। (३) लग्न, मंगल, बुध और बृहस्पति—ये चारों बलवान् हों और सम राशियों में हों तो दो बच्चे हों। (४) मिथुन, कन्या, धनु और मीन को द्वि-अंग राशि कहते हैं। सभी ग्रह और लग्न द्वि-अंग नवांश में हों और उनको अपने (मिथुन या कन्या) नवांश में स्थित बुध देखे तो तीन बच्चे हों। विशेष यह है कि इस योग में यदि मिथुन नवांश स्थित बुध देखे तो दो लड़के, एक लड़की; यदि कन्या नवांश स्थित बुध देखे तो दो कन्या, एक पुत्र। पुनः कहते हैं कि अन्य ग्रह और लग्न यदि मिथुन या धनु नवांश में हों और बुध मिथुन नवांश में हों तो तीनों लड़के हों और यदि अन्य ग्रह और लग्न कन्या या मीन नवांश में हों और बुध कन्या नवांश में हो तो तीनों लड़कियाँ हों।

इस अन्तिम योग (४) के विषय में रुद्रभट्ट कहते हैं कि जन्मकुण्डली में यह योग हो और मिथुन नवांश में बुध हो तो जातक के अनेक स्त्रियाँ होती हैं—किन्तु वे स्त्रियाँ पुरुषाकृतिशील होती हैं और यदि कन्या नवांश का बुध हो तो अनेक स्त्रियाँ होती हैं और उन स्त्रियों को कन्या संतति विशेष होती है। २४।

अथ अधिकजननयोगः

धनुर्धरस्यान्त्यगते विलग्ने ग्रहैस्तदंशोपगतैर्बलिष्ठैः।
ज्ञेनार्किणा वीर्ययुतेन दृष्टे सन्ति प्रभूता अपि कोशसंस्थाः॥२५॥

धनु राशि का अंतिम नवांश उदित (लग्न) हो, सभी ग्रह बलवान् हों और (किसी भी राशि में) धनु नवांश में हो, तथा लग्न बुध और शनि से दृष्ट हो तो गर्भाशय में अनेक बच्चे होते हैं। किसी-किसी स्त्री को एक ही प्रसव में ७-८ बच्चे होना समाचार पत्रों में हमने पढ़ा है। भट्टोत्पल अपनी टीका में लिखते हैं कि ५, ७ या १० बच्चे गर्भिणी के पेट में हों। बृहज्जातक के एक हिन्दी टीकाकार लिखते हैं कि जो मासेश्वर पीड़ित हो, उस मास में गर्भपात होता है। गर्भ के दस महीनों में—किस मास का अधिप कौनसा ग्रह होता है, यह इसी अध्याय के श्लोक १४ की व्याख्या में बताया जा चुका है।

रुद्रभट्ट यह विशेष लिखते हैं कि यह योग यदि जन्मकुंडली में हो तो जातक विस्तृत परिवार वाला हो । २५ ।

द्विशरीरांशसंयुक्तान् ग्रहान् लग्नं च पश्यति ।
कन्यांशकगतश्चान्द्रिर्गर्भस्थं त्रितयं वदेत् ।। २६ ।।
युग्मांशकस्तु कन्यैका द्वौ पुमांसौ च गर्भजाः ।
युग्मांशगान्विलग्नं च गर्भस्थाः पुरुषास्त्रयः ।। २७ ।।
कन्यायुग्मांशकोपेतांस्तथा युग्मांशगो बुधः ।।
कन्यानवांशकः सौम्यस्तिस्रो गर्भगताङ्गनाः ।। २८ ।।
द्विस्वभावगतावर्कगुरू बुधनिरीक्षितौ ।
पुंयुग्म कुरुतस्तद्वत् शशिशुक्रमहीसुताः ।। २९ ।।
कुर्वन्ति स्त्रीयुगं तत्र बलाबलविशेषतः ।
स्त्रीनपुंसकदश्चान्द्रिः पु नपुंसकदोऽर्कजः ।। ३० ।।
निषेककाले चन्द्रार्कावन्योन्यं यदि पश्यतः ।
तथैव चन्द्रमन्दौ वा क्लीबजन्मप्रदौ तथा ।। ३१ ।।
निषेके भ्रातृलग्नेशयोगे यमलसम्भवः ।
लग्नेशे भ्रातृपक्षस्थे स्वोच्चे वा यमलोद्भवः ।। ३२ ।।
षष्ठेशो देहसम्बन्धी बुधः षष्ठगतो यदि ।
बुधक्षेत्रे च जननं यस्य स स्त्रीनपुंसकः ।। ३३ ।।
बुधस्थानेन शनिना पुंनपुंसकता भवेत् ।। ३३½ ।।

इन साढे आठ श्लोकों में जातकपरिजातकार ने प्रायः यही बात कही है, जो भट्टोत्पल आदि टीकाकारों ने, बृहज्जातक के पूर्वोद्धृत श्लोकों की टीका में लिख दी है ।

(१) यदि लग्न और सब ग्रह द्वि-शरीर (मिथुन, कन्या, धनु या मीन) नवांश में हों और कन्या नवांश स्थित बुध उनको देखे तो गर्भ में ३ बच्चे—२ कन्या, १ पुत्र ।

(२) यदि लग्न और सब ग्रह द्वि-शरीर (मिथुन, कन्या, धनु या मीन) नवांश में हों और मिथुन नवांश स्थित बुध उनको देखे तो गर्भ में ३ बच्चे—२ पुत्र, १ कन्या ।

(३) धनु और मिथुन नवांश में लग्न तथा अन्य ग्रह हों, मिथुन नवांश स्थित बुध उनको देखे तो ३ पुत्र।

(४) कन्या और मीन नवांश में लग्न और अन्य ग्रह हों, कन्या नवांश स्थित बुध उनको देखे तो ३ कन्या।

(५) द्वि-शरीर अंश में यदि सूर्य और बृहस्पति हों और बुध से (ग्रंथकार ने बुध का द्वि-शरीर अंश में स्थित होना नहीं लिखा है, परन्तु प्रकरण वही है) दृष्ट हो तो दो पुत्र।

(६) द्वि-शरीर अंश में यदि चन्द्र, शुक्र और मंगल हों और बुध से (ग्रंथकार ने बुध का द्वि-शरीर अंश में होना नहीं लिखा है. परन्तु प्रकरण वही है) दृष्ट हों तो दो कन्या।

ग्रंथकार कहते हैं इन योगों में ग्रहों का बलाबल अवश्य विचार करना चाहिए। अर्थात् पुरुष ग्रह बलवान् हैं या स्त्री ग्रह।

(७) बुध स्त्री नपुंसक है। शनि पुरुष नपुंसक है। अर्थात् बुध हिजड़ी है, शनि हिजड़ा।

(८) गर्भाधान के समय सूर्य और चन्द्रमा यदि परस्पर एक-दूसरे को देखते हों तो नपुंसक का जन्म होता है। इसी प्रकार यदि चन्द्रमा और शनि एक-दूसरे को देखते हों तो नपुंसक का जन्म होता है।

(९) गर्भाधान के समय लग्नेश और तृतीयेश का योग हो तो दो बच्चे (जुड़वाँ—एक ही प्रसव में) होते हैं।

(१०) गर्भाधान के समय लग्नेश तृतीय में हो या अपने उच्च स्थान में हो तो जुड़वाँ (दो बच्चे एक ही प्रसव में) होते हैं।

(११) यदि गर्भाधान के समय मिथुन या कन्या लग्न हो तथा लग्नेश और षष्ठेश का सम्बन्ध हो (लग्नेश षष्ठ में, षष्ठेश लग्न में, या लग्नेश षष्ठेश की युति या दोनों का परस्पर दृष्टि-सम्बन्ध) और बुध छठे स्थान में हो तो बच्चा स्त्री नपुंसक होता है। किन्तु यदि इस योग में बुध की बजाय शनि छठे घर में हो तो पुरुष-नपुंसक होता है।

इस योग को जन्मकुण्डली में भी देखना चाहिए।

(१२) यदि गर्भाधान के समय लग्नेश और तृतीयेश—दोनों का योग लग्न में हो तो यमल (दो बच्चे) होते हैं। २६-३३½।

पादजात, सर्पवेष्टित आदि योग

निषेकलग्नेशतृतीयनाथौ लग्नस्थितौ चेद्यमलोद्भवः स्यात्॥ ३३½॥

तृतीयनाथेन युते निषेके भोगीशयुक्ते यदि पादजातः ॥ ३४ ॥
सराहौ रन्ध्रपे लग्ने जातः स्यात् सर्पवेष्टितः ॥ ३५ ॥
रन्ध्रेश्वरे पापयुते विलग्ने जातो नगैर्वेष्टितदेहवान्स्यात् ।
केन्द्रे सराहौ गुलिकेन युक्ते लग्नेश्वरे वा निधनेशयुक्ते ॥३६ ॥
क्रूरग्रहाणां च दृगाणलग्ने जातो नगैर्वेष्टितदेहवान् स्यात् ।
लग्नत्रिभागेऽण्डजसर्पकोलास्तन्नाथयुक्तस्तु तथा त्रिभागः ।
शुभग्रहाणां च दृशा विहीने जातो नगैर्वेष्टितदेहवान् स्यात् ॥३७॥
शशांके पापलग्ने वा वृश्चिकेशत्रिभागगे ।
शुभैः स्वायस्थितैर्जातः सर्पस्तद्वेष्टितोऽपि वा ॥३८॥
चतुष्पादगते भानौ शेषैर्वीर्यसमन्वितैः ।
द्वितनुस्थैश्च यमलौ भवतः कोशवेष्टितौ ॥ ३९॥
छागसिंहवृषे लग्ने तत्स्थे सौरेऽथवा कुजे ।
राश्यंशसदृशे गात्रे जायते नालवेष्टितः ॥ ४० ॥
लग्ने सपापे बहुपापदृष्टे राहुध्वजाभ्यां सहितेऽथवाऽत्र ।
पापग्रहाणां तु विलग्नभे वा जातो नरो नालविवेष्टिताङ्गः ॥ ४१ ॥
क्रूरान्तरे लग्नगते सराहौ लग्ने कुजे वासरनाथदृष्टे ।
लग्ने शनौ भूमिसुतेन दृष्टे जातो नरो नालविवेष्टिताङ्गः ॥४२ ॥

प्रायः जब बच्चे का शरीर माता के शरीर के बाहर निकलता है तो पहले सिर निकलता है, फिर शरीर और सबसे अंत में पैर । कोई-कोई प्रसव ऐसा भी होता है, जब पहले पैर निकलते हैं, फिर शरीर और सिर सब के अंत में । ऐसे बच्चों को पादजात । (पाद=पैर+जात=उत्पन्न) कहते हैं ।

(१) यदि गर्भाधान के समय तृतीयेश राहु के साथ हो तो बच्चा पादजात हो ।

(२) यदि गर्भाधान के समय राहु लग्न में और लग्नेश दशम में हो तो बच्चा पादजात हो ।

(३) अब कुछ योग 'सर्पवेष्टित' के कहते हैं । ये गर्भाधान कुंडली में विचार करने चाहिएं । 'सर्पवेष्टित' क्या ? कुछ बच्चे जब पैदा होते हैं, तो नाल शरीर

के चारों ओर लिपटी रहती है, उसे 'सर्पवेष्टित' कहते हैं। किसी-किसी बच्चे के तो गले के चारों ओर नाल का एक हिस्सा इतना कसा हुआ होता है कि यदि शीघ्रता न की जावे तो बच्चा दम घुटकर मर जाता है और चतुर दाई, नर्स या डाक्टरनी न हुई तो बच्चा मर जाता है।

(१) यदि अष्टमेश राहु के साथ लग्न में हो तो सर्पवेष्टित हो।

(२) अष्टमेश पापग्रह के साथ लग्न में हो तो नालवेष्टित हो।

(३) यदि लग्न क्रूर ग्रह के द्रेष्काण में हो, लग्नेश गुलिक या अष्टमेश से युत हो, और केन्द्र में राहु हो तो नालवेष्टित हो।

(४) यदि लग्न में विहंग, व्याल या निगल द्रेष्काण हो (आगे अध्याय ५, श्लोक ५५ में बताया गया है कि कौन कौन से द्रेष्काण विहंग या व्याल या निगल होते हैं) और द्रेष्काण स्वामी द्रेष्काण में हो और शुभ ग्रहों की लग्न पर दृष्टि न हो तो नालवेष्टित होता है।

(५) यदि लग्न में मंगल का द्रेष्काण हो (मेष का प्रथम, कर्क का द्वितीय, सिंह का तृतीय, वृश्चिक का प्रथम, धनु का द्वितीय, मीन का तृतीय) उसमें चन्द्रमा हो, शुभ ग्रह लग्न से दूसरे और ग्यारहवें हो तो सर्प हो या सर्पवेष्टित हो। स्त्री के गर्भ से सर्प का जन्म तो सुना नहीं इस कारण सर्प स्वभाव मानना पड़ेगा।

यदि पाप ग्रह सम्बन्धी लग्न हो, मंगल का द्रेष्काण हो, लग्न से द्वितीय तथा एकादश में शुभ ग्रह हों तो भी यही योग होता है। रुद्रभट्ट यह विशेष लिखते हैं कि ऐसा जातक सँपेरे के कार्य में कुशल होता है।

(६) यदि सूर्य चतुष्पाद राशि में हो और अन्य ग्रह बलवान् होकर द्वि-शरीर राशि में हों तो गर्भाशय में एक ही कोथली में दो बच्चे होते हैं। मेष, वृष, धनु का उत्तरार्द्ध, मकर का पूर्वार्द्ध चतुष्पद राशियाँ हैं। मिथुन, कन्या, धनु तथा मीन द्वि-शरीर राशियाँ हैं। रुद्रभट्ट यह विशेष लिखते हैं कि यदि यह योग जन्मकुण्डली में हो तो जातक बहुत धनी होता है।

(७) यदि मेष, वृष या सिंह लग्न हो उसमें मंगल या शनि हो तो नवांश सदृश शरीर भाग में जातक नालवेष्टित होता है। रुद्रभट्ट कहते हैं कि बलवान् शनि यदि लग्न में हो तो तंत्रानुष्ठान व्यापार सहित होता है; यदि बलहीन शनि हो तो औरों की सेवा करता है। शूद्रादि की कुण्डली में यह योग हो तो जाल (यथा मछली पकड़ने का जाल) आदि बनाने का कार्य करता है। मंगल हो तो स्वर्णमेखला आदि बनाता है।

(८) यदि लग्न में पाप ग्रह हो या राहु या केतु हो और अनेक पाप ग्रहों से लग्न दृष्ट हो या लग्न पाप ग्रह की राशि में हो तो नालवेष्टित हो।

(९) लग्न क्रूर ग्रहों के बीच में हो, राहु से युत हो या लग्न में मंगल हो उसे सूर्य देखता हो तो नालवेष्टित हो।

यह सब योग गर्भाधान समय के हैं। इनका प्रयोजन यह है कि गर्भाधान लग्न निश्चित करना हो तो यह विचार करे कि इस अध्याय में कहे गए कोई दुर्योग तो नहीं हैं। ३३३—४२।

प्रसूतिकालज्ञापिका ग्रहस्थिति

***तत्काल इन्दुसहितो द्विरसांशको य-**
स्तत्तुल्यराशिसहिते पुरतः शशाङ्के।
यावानुदेति दिनरात्रिसमानभाग-
स्तावद्गते दिननिशोः प्रवदन्ति जन्म ॥ ४३ ॥
उदयति मृद्भांशे सप्तमस्थे च मन्दे
यदि भवति निषेकः सूतिरब्दत्रयेण।
शशिनि तु विधिरेष द्वादशाब्दैः प्रकुर्या-
न्निगदितमिह चिन्त्यं सूतिकालेऽपि युक्त्या ॥ ४४ ॥

इस श्लोक के टीकाकारों ने अनेक अर्थ किए हैं। मूल में जो शब्द आए हैं, उन्हीं के आधार पर यद्वा, यद्वा अर्थ करके भट्टोत्पल ने ३ अर्थ किए हैं। इसी श्लोक की व्याख्या करते हुए रुद्रभट्ट ने १७ प्रकार से आधान लग्न के आधार पर, जन्मकाल का समय निश्चित करना बताया है। उन सबका निदर्शन विस्तार भय से नहीं किया जाता है।

इस श्लोक में ३ बातें कही गई हैं (i) 'तत्काल' इन्दु (चन्द्रमा) से जन्म के समय चन्द्रमा कहाँ होगा यह निश्चित करना। (ii) जन्म दिन में होगा या रात्रि में यह ज्ञात करना। (iii) जन्म के समय इष्ट, घटी, पल क्या होगा? प्रथम दो चरणों में 'तत्काल' चन्द्र स्थिति से जन्मकालीन चन्द्र स्थिति का निश्चय करना बतलाया गया है। पहले, उसी की व्याख्या की जाती है। 'तत्काल' चन्द्र क्या? गर्भाधान के समय जो चन्द्र स्पष्ट हो या प्रश्नकाल के समथ जो चन्द्र स्पष्ट हो। प्रश्नकाल के समय का चन्द्र स्पष्ट करना सरल है। किन्तु गर्भाधान का समय कैसे निश्चय करना? वास्तव में गर्भाधान कब होता है? इसके लिए गर्भाधान की प्रक्रिया को वैज्ञानिक आधार पर समझ लेना चाहिए। प्रतिमास स्त्री के गर्भाशय में एक अण्ड आता है जिसे अंग्रेज़ी में ओवम कहते हैं। गर्भाशय के आभ्यन्तरिक भाग में दो नलिकाएँ होती हैं, जिन्हें अंग्रेज़ी में फ़ैलोपियन ट्यूब्स कहते हैं। एक मास में एक नलिका से गर्भाशय में ओवम आता है। दूसरे मास

*तत्कालमिन्दुसहितः इति पाठान्तरम्।

में दूसरी नलिका से। स्त्री पुरुष समागम के समय, पुरुष शरीर से निसृत करोड़ों पुरुष-अणु स्त्री के गर्भाशय में पहुँचते हैं। प्रसिद्ध बृटिश लेडी डाक्टर मेरी स्टोप्स ने लिखा है कि एक समागम में, स्त्री के गर्भाशय में इतने करोड़ पुरुष-अणु (जिन्हें अंग्रेजी में स्परमटोजा या संक्षेप में स्पर्म कहते हैं) पहुँचते हैं, कि उतनी संख्या से संसार की सभी विवाहित महिलाएँ गर्भवती हो सकनी हैं। यह स्पर्म अति चंचल होते हैं और गर्भाशय में इतस्ततः चलते रहते हैं। यदि (इन करोड़ों में से) किसी स्पर्म का स्त्री के ओवम से संयोग हो गया तो गर्भ रह जाता है। अन्यथा यह पुरुष अणु कुछ घंटों में मर जाते हैं। गर्भ धारण नहीं होता।

पुरुष नपुंसकता के प्रायः ३ हेतु होते हैं:—(i) समागम की शारीरक अक्षमता। (ii) पुरुष में अणुओं की पर्याप्त संख्या न होना। (iii) इनमें शिथिलता—अर्थात् गर्भाशय में तीव्र गति से इधर-उधर भ्रमण कर सकने की अक्षमता के कारण कोई स्पर्म—ओवम से संयोग नहीं कर सकता। इस संचार क्रिया को अंग्रेजी में मोबिलिटी कहते हैं। यह स्पर्म ४-५ घंटे तक गर्भाशय में गतिशील और जीवित रहते हैं तदनन्तर मर जाते हैं। कभी-कभी तो स्त्री-पुरुष समागम के समय, स्पर्म और ओवम का तत्काल ही समागम हो जाता है और गर्भ स्थापित हो जाता है और कभी-कभी तीन-चार घंटे बाद। प्रायः जो समागम के समय को गर्भाधान का समय लिया जाता है, वह स्थूल विचार है, क्योंकि समागम के समय और गर्भाधान के समय में कभी तो अन्तर नहीं होता और कभी अन्तर—३-४ घंटे तक का हो जाता है। तत्काल शब्द का यही अर्थ है। परन्तु समागम का समय तो ज्ञात हो भी सकता है। वास्तविक गर्भाधान का समय ज्ञात नहीं हो सकता। इसी कारण समागम के समय को ही गर्भाधान समय मानकर जो गणित किया जाता है, उसमें व्यभिचार हो जाता है।

जन्म राशि

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध का सामान्य अर्थ है कि तत्काल चन्द्रमा देखिए (किस राशि के) किस द्वादशांश में है। उतनी ही संख्या वाली राशि में (गर्भाधान के समय से दसवें महीने में) द्वादशांश के आगे जब चन्द्रमा हो तब प्रसव होगा। इसे दो उदाहरणों से स्पष्ट किया जाता है।

उदाहरण १—मान लीजिए चन्द्र स्पष्ट ४/२४°/३०′ अर्थात् सिंह राशि में चन्द्रमा २४°-३०′ है। वृष के द्वादशांश में चन्द्रमा हुआ। वृष सिंह से दशम है, इस कारण वृष से दशम—कुंभ राशि का जब चन्द्रमा होगा तब प्रसव होगा।

उदाहरण २—मान लीजिए चन्द्र स्पष्ट ५/२१°/१५′ है अर्थात् कन्या राशि में नवम द्वादशांश वृष में चन्द्रमा है। वृष कन्या से नवम है, इस कारण वृष से नवम, मकर राशि में जब चन्द्रमा होगा तब प्रसव होगा।

इस अर्थ की पुष्टि में भगवान् गार्गि का वाक्य भी है।

यावत्संख्ये द्वादशांशे शीतरश्मिर्व्यवस्थितः ।
तत्संख्यो यस्ततो राशिजन्मेन्दौ तद्गते भवेत् ।।

यहाँ एक शंका उठती है। उदाहरण १ में अपनी राशि में दशम द्वादशांश में—वृषभ द्वादशांश में चन्द्रमा है, तो वृषभ से दशम कुंभ क्यों लिया। साधारणतया मेष से गणना चक्र प्रारंभ होता है, इस कारण मेष से दशम—मकर क्यों नहीं लिया ? इसी प्रकार उदाहरण २ में वृषभ से नवम मकर क्यों गिना। भचक्र का प्रारंभ मेष से माना है—मेष से नवम धनु क्यों नहीं लिया ? शंका बहुत उचित है। भट्टोत्पल ने या रुद्रभट्ट ने जो अनेक अर्थ किए हैं, उनमें से एक में ऐसा ही विधान है।

सारावली में तो स्पष्ट यही कह दिया है कि—

यस्मिन् द्वादशभागे गर्भाधाने स्थितो निशानाथः ।
तत्तुल्यर्क्षे प्रसवं गर्भस्य समादिशेत् प्राज्ञः ।।

इस प्रकार प्राचीन आचार्यों के अनेक मत मतान्तर हैं। किसके अनुसार अर्थ किया जावे ? तब, हमने उपर्युक्त अर्थ क्यों किया ? क्योंकि भट्टोत्पल ने लिखा है कि यही व्याख्या साध्वी (उत्तम) है।

बृहज्जातक की दशाध्यायी टीका में कहते हैं—चन्द्रमा जिस राशि, जिस नवांश में हो—उनमें तारतम्य कीजिए कि राशि बली है या नवांश बली। जो बली हो उसी के द्वादशांश से विचार करना। नवांश का द्वादशांश क्या ? नवांश का बारहवाँ भाग। क्योंकि आगे बृहज्जातक अध्याय १९ श्लोक ९ में स्वयं वराहमिहिर ने अंशेश बलवान् होने से, राशीश की अपेक्षा अंशेश को प्रधानता दी है। रुद्रभट्ट ने भी जो १७ प्रकार कहे हैं उनमें से एक की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि मूल में 'शकोय' शब्द आया है, जिसकी कटपयादि से १—१५ संख्या प्राप्त हुई। एक नक्षत्र ६० घड़ी रहता है। नक्षत्र का चौथाई भाग (अर्थात् राशि का नवाँ भाग) एक नवांश होता है—अर्थात् पन्द्रह घड़ी। इस पन्द्रह घड़ी का बारहवाँ भाग १ घड़ी १५ पल हुआ। इस प्रकार चन्द्र की राशि का द्वादशांश न लेकर नवांश का द्वादशांश लेना इस अर्थ की पुष्टि की है।

जन्म नक्षत्र

चन्द्रमा किस द्वादशांश में निषेक के समय है, इस आधार पर जन्मकालीन चन्द्र का निर्णय किया गया है। देखिए ऊपर उदाहरण २ में निषेक के समय चन्द्र स्पष्ट कन्या के २१°—१५' मानकर जन्मकाल के समय चन्द्रमा मकर में होगा, यह कहा गया है। परन्तु मकरराशि में सवा दो नक्षत्र अर्थात् ९ नक्षत्र चरण होते हैं—उत्तराषाढ के चरण २, ३, ४; श्रवण के चरण, १, २, ३, ४ तथा धनिष्ठा के

चरण १, २ इन नौ नक्षत्र चरणों को हम निम्नलिखित प्रकार से लिख सकते हैं। (i) उ० षा० २, (ii) उ० षा० ३ (iii) उ०षा० ४ (iv) श्र० १ (v) श्र० २ (vi) श्र० ३ (vii) श्र० ४ (viii) ध० १ (ix) ध० २। तत्र किस भाग में—किस नक्षत्र चरण में जन्म होगा ?

याद रखिए प्रत्येक द्वादशांश में २°—३०′ (दो अंश तीन कला) होते हैं। इनको ९ से भाग देने पर १ भाग १६′ कला ४०′ विकला का हुआ। इस द्वादशांश के नौ भागों को हम निम्नलिखित प्रकार से लिख सकते हैं :—

(i) ०°—से ०°—१६′—४०″ (ii) ०°—१६′—४०″ से ०°—३३′—२०″ (iii) ०°—३३′—२०′ से ०°—५०′—०″ (iv) ०°—५०′—०″ से १°—६′—४०″ (v) १°—६′—४०″ से १°—२३′—४०″ (vi) १°—२३′—४०″ से १°—४०′—०″ (vii) १°—४०′—०″ से १°—५६′—४०″ (viii) १°—५६′—४०″ से २°—१३′—२०″ (ix) २°—१३′—२०″ से २°—३०′—०″ तक।

ऊपर चन्द्र स्पष्ट २१°—१५′ है। किसी भी राशि का नवाँ द्वादशांश २०° से २२°—३०′ तक होता है। २१°—१५″ में से २०° घटायें तो शेष १°—१५′ आए। अब ऊपर देखिए १°—१५′ किस विभाग में है। देखने से मालूम हुआ कि १°—६′—४०″ से १°—२३′—४०″ तक (v)वाँ विभाग है, इस प्रकार १°—१५′ (v)वें विभाग में हैं। मकर राशि का पाँचवां विभाग श्रवण का द्वितीय चरण बतलाया गया है। इस कारण श्रवण के द्वितीय चरण में जब चन्द्रमा होगा तब जन्म होगा। यही—द्वादशांश के नवांश से—जन्म का चन्द्र निर्णय करना, यह अभिप्राय है। इसी कारण कोई आचार्य द्वादशांश से, कोई द्वादशांश के नवांश से जन्मकालीन चन्द्र का निर्णय कहते हैं। इस प्रकार इन आपात विरुद्ध वचनों का सामञ्जस्य होता है।

श्रीसूर्योदयादिष्टम्

दूसरी बात जो इस श्लोक में बतायी गई है, वह यह कि दिन में जन्म होगा या रात्रि में। इसके निर्णय में कहते हैं कि यदि दिवा बली वाली राशि, गर्भाधान के समय में हो तो दिन में जन्म। रात्रि बली जो राशियाँ हैं-उनमें से कोई गर्भाधान के समय हो तो रात्रि में जन्म। दिवा बली राशियाँ कौनसी हैं और रात्रि बली कौनसी यह अध्याय १ श्लोक १४ में पहले कह चुके हैं।

जन्म का इष्ट घटी पल कैसे निकालना ? इसके लिए पहले निषेक (गर्भाधान) लग्न स्पष्ट करना चाहिए। अब देखिए कौनसा नवांश है ? यह नवांश दिवा बली है या रात्रि बली ? मान लीजिए दिनमान ३२ घड़ी है, रात्रि मान २८ घड़ी। निषेक लग्न ३—११°—४०′ (कर्क के ११°—४०′) है। लग्न

तुला नवांश में पड़ा । तुला दिवा बली है। इस कारण दिन में जन्म होगा । दिन में कब ? एक नवांश में ३°–२०′ अर्थात् २०० कला होती हैं । आधा नवांश बीत चुका है । तब त्रैराशिक से इष्ट घटी निकालिए ।

यदि २०० कला से ३२ घड़ी (दिनमान)

तो १ कला से $\frac{३२}{२००}$ घड़ी

और १°–४०′ अर्थात् १०० कला से $\frac{३२\times१००}{२००}$ घड़ी = १६ घड़ी श्रीसूर्योदयादिष्टम् हुआ ।

अब रात्रि जन्म का उदाहरण लीजिए । मान लीजिए निषेक लग्न ३–१८° –२०′ (कर्क के १८°–२०′) है । लग्न धनु नवांश में पड़ा । धनु रात्रि बली है। इसलिए रात्रि में जन्म होगा । रात्रि में कब ? धनु नवांश कर्क में १६°–४०′ से २०° तक होता है । १°–४०′ बीत चुका है । १°–४०′ बाकी है । तब रात्रि कितनी बीतने पर जन्म होगा । त्रैराशिक से निकालिये ।

यदि २०० कला से २८ घड़ी (रात्रिमान)

तो १ कला से $\frac{२८}{२००}$ घड़ी

और °१–४०′ अर्थात् १०० कला से $\frac{२८\times१००}{२००}$ = १४ घड़ी रात्रि बीतने पर । इसमें दिनमान के ३२ घड़ी जोड़ने से श्री सूर्योदयादिष्टम् हुआ ३२+१४ =४६ घड़ी ।

उदाहरणों में गणित प्रक्रिया की सुलभता के लिए—दिनमान तथा रात्रिमान में पूरी-पूरी घड़ी मान ली है । दिनमान तथा रात्रिमान की जितनी घड़ी, पल हों, उनके आधार पर गणित करके, श्री सूर्योदयादिष्टम् निकालना चाहिए । ४३ ।

पुनः कहते हैं कि निषेक के समय शनि का नवांश (मकर या कुंभ) उदित हो और शनि सप्तम में हो तो तीन वर्ष में (गर्भाधान के ३ वर्ष बाद) प्रसव हो। यदि निषेक के समय चन्द्रमा का नवांश (कर्क) उदित हो और चन्द्रमा सप्तम में हो तो बारह वर्ष में (गर्भाधान के १२ वर्ष बाद) प्रसव हो । वराहमिहिर कहते हैं कि निषेक प्रकरण में अधिक अंग होना या हीनांगता आदि के जो योग कहे गये हैं या पिता, पितृव्य, माता, मौसी सम्बन्धी जो शुभाशुभ योग कहे गये हैं, उनका युक्तिपूर्वक जन्मकुंडली में भी विचार करना चाहिए। युक्तिपूर्वक क्या ? जैसे मासेश के निर्बल या पीड़ित होने से अमुक मास में गर्भ स्राव हो इसका जन्मकुण्डली में विचार नहीं करना । भट्टोत्पल कहते हैं 'जन्मन्याधानप्रश्नकाले वा' इस सिद्धान्तानुसार प्रश्नकुण्डली में भी विचार करना ।

रुद्रभट्ट ने द्वादशाब्द का अर्थ १२ नाक्षत्रिक मास (एक आवृत्ति नक्षत्रों की चन्द्रमा २७ दिनों में पूर्ण करता है)—इस कारण २७×१२=३२४ दिन भी लिया है। ४४।

अथ संस्कार विहीन पुत्र जन्म योग

पितृकर्मेश्वरौ दुःस्थौ देहेशे बलसंयुते
विना सीमन्तकर्मादि जातः पुत्रो न संशयः
लाभे पापे पापगृहे न सीमन्तयुतो भवेत् ॥ ४५३ ॥

यदि नवमेश और दशमेश दुःस्थान में (छठे, आठवें, बारहवें–एक साथ या पृथक्-पृथक्) हों, लग्नेश बलवान् हो तो विना सीमन्त संस्कार के ही बालक का जन्म हो। यदि लग्न से एकादश में पाप राशि या पाप ग्रह हो तो भी यही फल होता है। सर्वार्थचिन्तामणि में भी यही कहा गया है। देखिये सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय २ श्लोक ५८।

जन्म के समय पिता अनुपस्थित हो

पितुर्जातः परोक्षस्य लग्नमिन्दावपश्यति।
विदेशस्थस्य चरभे मध्याद् भ्रष्टे दिवाकरे ॥ ४६ ॥
उदयस्थेऽथवा मंदे कुजे वाऽस्तं समागते।
स्थिते वाऽन्तः क्षपानाथे शशाङ्कसुतशुक्रयोः ॥ ४७ ॥

यदि लग्न को चन्द्रमा न देखे तो पिता जन्म के समय घर पर नहीं था, यह कहना। यदि सूर्यचर राशि में मध्य (दशमभाव) से भ्रष्ट हो तो पिता विदेश में था यह कहना।

बृहज्जातक में तीसरा अध्याय वियोनिजन्माध्याय, चौथा निषेकाध्याय, पाँचवाँ जन्मविधिनामाध्याय है। जातकपारिजातकार ने इन तीनों अध्यायों के विषय–अपने तीसरे अध्याय में ही सम्मिलित कर दिये हैं और बृहज्जातक के—इन तीन अध्यायों के कुल ५६ श्लोकों में से ४६ श्लोक यों के यों, बृहज्जातक से लेकर अपने तृतीय अध्याय में सन्निविष्ट कर दिए हैं।

इसलिए पाठकों का विशेष ध्यान आकृष्ट किया जाता है कि इस अध्याय के श्लोक ४५ से जन्मकुंडली के योग प्रारंभ होते हैं। इस श्लोक में दो बातों की व्याख्या की आवश्यकता है। भट्टोत्पल तथा रुद्रभट्ट दोनों कहते हैं कि ऊपर जो सूर्य का चर राशि में होना कहा गया, वह यदि सूर्य स्थिर राशि में हो और

'मध्य' से भ्रष्ट हो तो पिता स्वदेश में ही हो किन्तु घर पर न हो, और यदि सूर्य द्विस्वभाव राशि में हो, 'मध्य' से भ्रष्ट हो तो पिता न परदेश में हो, न स्वदेश में–बीच में कहीं हो।

'मध्य' से भ्रष्ट–इसके अर्थ में दोनों विद्वान् टीकाकारों में मतभेद है। दोनों 'मध्य' को दशम स्थान मानते हैं। परन्तु भट्टोत्पल लिखते हैं 'दशम स्थान से भ्रष्ट–एकादश, द्वादश में या नवम अष्टम में' किन्तु रुद्रभट्ट लिखते हैं–मध्य–दशम राशि–उससे भ्रष्ट–मध्याह्न के बाद नवम आदि राशि में। रुद्रभट्ट का अर्थ विशेष उपयुक्त है क्योंकि सूर्य जब द्वादश, या एकादश में होता है, तब मध्याह्न की ओर चढ़ता हुआ होता है–भ्रष्ट (गिरता हुआ, पतनोन्मुख) नहीं होता।

इन सभी योगों में चन्द्रमा का लग्न को न देखना आवश्यक है तथा सूर्य का 'मध्य' से भ्रष्ट होना।

अब श्लोक ४७ में पिता घर पर, जन्म के समय उपस्थित न हो, इसके अन्य पृथक्-पृथक् ३ योग कहते हैं।

(i) शनि यदि लग्न में हो या (ii) मंगल यदि सप्तम में हो या (iii) बुध और शुक्र के बीच में चन्द्रमा हो–तीनों एक राशि में हों–बुध और शुक्र–इन दोनों में से एक के अंश चन्द्रमा से कम, एक के अधिक। या बुध और शुक्र इनमें एक चन्द्रमा से द्वितीय हो अन्य द्वादश।

रुद्रभट्ट अपनी टीका में ३ बात विशेष कहते हैं। (क) इन योगों में सूर्य का मध्य से भ्रष्ट होना आवश्यक है। (ख) दशम के बाद नवम, अष्टम, सप्तम, षष्ठ, पंचम तथा चतुर्थ—इन स्थानों में सूर्य मध्य से भ्रष्ट (गिरता हुआ होता है); तृतीय, द्वितीय, लग्न, द्वादश, एकादश तथा दशम में सूर्य चढ़ता हुआ होता है। तब यह योग लागू नहीं होगा। (ग) पिता कहीं परोक्ष में है, इसका अर्थ यह भी है कि कोई ऐसा व्यक्ति है, जो भविष्य में इसका पिता होगा। अर्थात् ऐसा बच्चा अन्य का दत्तक पुत्र हो सकता है–अर्थात् किसी के गोद चला जावे। ४६-४७।

जारजात तथा अन्य योग

लग्ने वा यदि शीतांशौ शुभखेचरराशिगे।
औरसोऽयं भवेज्जातो गुरुवर्गसमन्विते ॥ ४८ ॥

यदि कोई स्त्री व्यभिचारिणी हो, और अपने पति के अतिरिक्त–अन्य किसी पुरुष से पुत्र उत्पन्न करे तो ऐसे पुत्र को जारज (जार से उत्पन्न) कहते हैं। इसे ही उर्दू में हरामजादा कहते हैं। तत्सम्बन्धी तथा अन्य योग कहते हैं।

(१) यदि लग्न या चन्द्रमा शुभ ग्रह की राशि में हो और बृहस्पति के वर्ग में हो तो जातक अपने पिता का औरस (अपने पिता से उत्पन्न) पुत्र होता है। बृहस्पति के वर्ग से षड्वर्ग, या सप्तवर्ग या दशवर्ग—या कोई भी एक वर्ग (सप्तमांश, नवांश आदि) बृहस्पति का समझा जावे, यह ग्रंथकार ने स्पष्ट नहीं किया है। आगे भी वर्ग शब्द आया है। परन्तु तात्पर्य अस्पष्ट है। ४८।

जीवो न भौमसंदृष्टः स्ववर्गे सार्कचन्द्रमाः।
क्षेत्रजोऽयं भवेज्जातः ससौम्यो वा बलान्वितः॥ ४९॥

(२) यदि बृहस्पति पर मंगल की दृष्टि न हो, चन्द्रमा और सूर्य अपने वर्ग में हों, या बलवान् होकर बुध के साथ हों तो जातक जारजात होता है। बलवान् होकर बुध के साथ कौन हो? बृहस्पति या सूर्य या चन्द्रमा? श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने अपने अनुवाद में लिखा है 'बृहस्पति बुध के साथ हो। श्री नवाथे ने अपनी मराठी टीका में भी यही लिखा है। काशी से प्रकाशित संस्कृत टीका में लिखते हैं 'सूर्येण सह चन्द्रमा स्ववर्गे विद्यमानो वा बुधयुक्तो वली च भवेत्'। इसी के हिन्दी टीकाकार लिखते हैं 'बलवान् सूर्य और चन्द्रमा अपने वर्ग में हों और बुध के साथ हों।' हमें श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री का अर्थ विशेष मान्य है। मूल में क्षेत्रज शब्द आया है। (क्षेत्र=खेत, ज=उत्पन्न हुआ)। स्त्री पति का खेत मानी गई है। यदि किसी के खेत में कोई अन्य पुरुष बीज बो दे तो भी जो फ़सल पैदा होगी, वह खेत के मालिक की समझी जावेगी। 'क' की स्त्री में 'ख' पुरुष द्वारा उत्पन्न पुत्र 'क' का क्षेत्रज पुत्र कहलाता है। ४९।

मन्दवर्गगते चन्द्रे मन्दयुक्ते तु पञ्चमे।
भानुभार्गवसंदृष्टे पुत्रः पौनर्भवो भवेत्॥ ५०॥

(३) धर्मशास्त्र में १२ प्रकार के पुत्र बताए गए हैं, औरस, कानीन, क्षेत्रज, पौनर्भव, दत्तक आदि। इस श्लोक में कहते हैं कि यदि चन्द्रमा शनि के वर्ग में हो और शनि लग्न से पाँचवें घर में स्थित होकर सूर्य और शुक्र से दृष्ट हो तो जातक पौनर्भव होता है। पुनः विवाहिता स्त्री का पुत्र पौनर्भव कहलाता है। ५०।

व्यये भास्करसंदृष्टे वर्गे भास्करचन्द्रयोः।
चन्द्रसूर्ययुते वाऽपि कानीनोऽयं भवेन्नरः॥ ५१॥

(४) यदि लग्न से व्ययभाव (बारहवाँ घर) सूर्य से दृष्ट हो, सूर्य और चन्द्रमा के वर्ग में हो या चन्द्र सूर्य से युत हो तो कानीन पुत्र होता है। यह इस श्लोक का शब्दार्थ है। परन्तु भावार्थ स्पष्ट नहीं है। व्ययभाव सूर्य, चन्द्र के वर्ग में हो, सूर्य से दृष्ट हो या सूर्य, चन्द्र से युत हो। यह एक अर्थ हुआ। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने अर्थ किया है, व्ययभाव पर सूर्य की दृष्टि या सूर्य और चन्द्रमा, चन्द्रमा और सूर्य के वर्ग में हों। इस अर्थ को सम्मत मानने में महती विप्रतिपत्ति यह है कि यदि व्ययभाव पर सूर्य की दृष्टि को स्वतंत्र योग मान लें तो करोड़ों जन्मकुण्डलियों में यह योग घटित होगा और वे कानीन हो जावेंगे। कानीन क्या? धर्म शास्त्र में जो १२ प्रकार के पुत्र कहे हैं, उनमें एक कानीन भी है। याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका में लिखा है कि कानीन पुत्र का शब्दार्थ कन्या का पुत्र होता है। यह दो अर्थ में प्रयुक्त होता है। (i) अविवाहित अवस्था में ही किसी कन्या के पुत्र हो जाये तो वह नाना का पुत्र (अर्थात् उस बच्चे का मालिक नाना) होता है। (ii) यदि किसी व्यक्ति के पुत्र न हो और वह अपनी कन्या के विवाह के समय अपने जामाता से यह तय कर ले कि इस कन्या का जो प्रथम पुत्र होगा, वह मैं ले लूंगा तो ऐसा दौहित्र भी नाना का कानीन पुत्र कहलाता है। एक हिन्दी टीकाकार ने अर्थ किया है 'बारहवां भाव सूर्य से देखा जाता हो, या सूर्य और चन्द्रमा के वर्ग में क्रम से चन्द्र और सूर्य युक्त हों तो जन्म लेने वाला, कानीन याने बिना ब्याही लड़की (कुमारी) का पुत्र होता है॥ यहाँ भी वही अर्थापत्ति उपस्थित होती है, जो श्रीसुब्रह्मण्यम् शास्त्री के अर्थ में ॥ ५१ ॥

चन्द्रदृष्टियुतो मान्दिर्भानुपुत्रसमन्वितः।
तद्वीक्षणयुतो वाऽपि दत्तपुत्रो भवेन्नरः ॥ ५२ ॥

(५) यदि मान्दि (गुलिक) चन्द्रमा से दृष्ट हो और शनि से दृष्ट या युत हो तो दत्तक पुत्र (जिसे व्यवहार में गोद लिया हुआ पुत्र कहते हैं) होता है ॥ ५२ ॥

शन्यङ्गारकसंयुक्ते सप्तमे वाऽथ पञ्चमे।
अन्यैरवीक्षिते खेटैः कृत्रिमं तु विनिर्दिशेत् ॥५३॥

(६) यदि मंगल या शनि लग्न से पंचम और सप्तम में हों और उन्हें कोई अन्य ग्रह न देखे हो जातक कृत्रिम पुत्र होता है। धर्मशास्त्र में जो बारह प्रकार के पुत्र कहे गए हैं, उनमें से एक कृत्रिम पुत्र होता है। किसी भी व्यक्ति को यह कहकर कि आज से तुम मेरे पुत्र हुए, अपना पुत्र बना लिया जाए, वह कृत्रिम पुत्र होता है। दत्तक (गोद लिए हुये) और कृत्रिम में भेद यह है कि दत्तक पुत्र

लेने में बच्चे के माता पिता की स्वीकृति लेनी पड़ती है, कृत्रिम (बनाये हुए) में नहीं ॥ ५३ ॥

परस्परक्षेत्रगतौ तु होरारसातलेशौ यदि जन्मलग्नात् ।
लग्नेश्वरो वा हिबुकेश्वरो वा ध्वजाहियुक्तो जननं परेण ॥ ५४ ॥

(७) (i) यदि लग्नेश चतुर्थ में हो और चतुर्थेश लग्न में हो (या) लग्नेश किंवा चतुर्थेश राहु या केतु से युत हो तो जातक जारजात होता है।

हमारे विचार से यह योग उचित नहीं है। लग्नेश चतुर्थेश का परस्पर स्थान विनिमय (एक दूसरे के घर में बैठना) उत्कृष्ट योग है। लग्नेश या चतुर्थेश राहु या केतु से युत लाखों कुण्डलियों में होते हैं। परन्तु वे अपने पिता के औरस पुत्र हैं, इसमें सन्देह लेश भी नहीं है ॥ ५४ ॥

लग्नं शशाङ्कं सुरराजमंत्री न वीक्षते नैकगृहस्थितौ वा ।
न जीववर्गेण युतौ तदानीं जातं वदेदन्यसमागमेन ॥ ५५ ॥

(८) यदि लग्न या चन्द्रमा बृहस्पति के वर्ग में न हो, न बृहस्पति लग्न में या चन्द्रमा के साथ हो, न बृहस्पति लग्न या चन्द्रमा को देखे, तो जातक जारजात होता है ॥ ५५ ॥

स्वातीद्वितीया रविवारयुक्ता ससप्तमी सोमजरेवती च ।
सद्वादशीभानुसुतश्रविष्ठा चैतेषु जातः परतो वदन्ति ॥ ५६ ॥

(९) जन्म के समय (i) रविवार द्वितीया तिथि, तथा स्वाती नक्षत्र हो या (ii) बुधवार, सप्तमी तिथि तथा रेवती नक्षत्र हो या (iii) रविवार, द्वादशी तिथि तथा धनिष्ठा नक्षत्र हो तो जातक जारजात होता है।

जातक पारिजातकार ने रविवार, द्वादशी तिथि तथा धनिष्ठा नक्षत्र—इन तीनों का योग ऊपर (iii) में लिखा है। किन्तु बलभद्र अपने होरारत्न में लिखते हैं कि यह श्लोक तातमिश्र से लिया गया है। वहाँ ऊपर (iii) के स्थान में शनिवार, द्वादशी तिथि तथा धनिष्ठा नक्षत्र इन तीनों का योग होने से जारजात योग लिखा है :

स्वाती द्वितीया रविवारयोगे सोमात्मजे सप्तमी रेवतीषु ।
स्याद् द्वादशीवासवमन्दवारे जारेण जातं प्रवदन्ति बालम् ॥

अब अन्य जारजात के योग कहते हैं ॥ ५६ ॥

भद्राख्यतिथियुक्तेषु त्रिपादर्क्षान्वितेषु च ।
मन्दार्कभौमवारेषु जातमन्योद्भवं विदुः ॥ ५७ ॥

(१०) यदि द्वितीया, सप्तमी या द्वादशी इनमें से कोई भी तिथि हो तथा 'त्रिपाद' नक्षत्र हो और रवि, मंगल या शनिवार को जन्म हो तो जारजात होता है । वा सूर्योदय से सूर्योदय तक रहता है। अंग्रेजी पद्धति की तरह रात्रि को १२ बजे नहीं बदलता । त्रिपाद नक्षत्र क्या ? जिस नक्षत्र के प्रथम तीन चरण पहली राशि में हों, चतुर्थ चरण अन्तिम राशि में अर्थात् पुनर्वसु, विशाखा या पूर्वाभाद्र ॥ ५७ ॥

न लग्नमिन्दु च गुरुर्निरीक्षते न वा शशाङ्कं रविणा समागतम् ।
सपापकोऽर्केण युतोऽथवा शशी परेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात् ॥५८॥

(११) यह श्लोक बृहज्जातक से लिया गया है । रुद्रभट्ट तथा भट्टोत्पल की टीकाओं में कुछ अन्तर है । इस कारण दोनों की टीका का सार पृथक्-पृथक् दिया जाता है ।

(क) रुद्रभट्ट कहते हैं कि यदि लग्न को या चन्द्रमा को बृहस्पति न देखता हो तो सोच विचार कर नितराँ अन्वेषण विमर्शन कर जारजात कहना। किस प्रकार सोच विचार कर ? क्या अन्वेषण, विमर्शन कर ? कि लग्न या चन्द्रमा बृहस्पति की राशि, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश या त्रिंशांश में तो नहीं है—क्योंकि यदि बृहस्पति की लग्न या चन्द्रमा पर दृष्टि न हो, न लग्न या चन्द्रमा बृहस्पति की राशि, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश या त्रिंशांश में हो तभी केवल उसी हालत में जारजात कहना । क्योंकि भगवान् गार्गि ने कहा है :—

गुरुक्षेत्रं गते चन्द्रे तद्युक्ते वान्यराशिगे ।
तद् द्रेष्काणे तदंशे वा न परैर्जात इष्यते ॥

मान लीजिए ऊपर लिखे विचार से जारजात योग आया किंतु तब भी—ऐसी हालत में भी यदि सूर्य और चन्द्रमा एक राशि में हों तो जारजात योग का खण्डन हो जाता है, अर्थात् जारजात योग नहीं होता ।

किन्तु सूर्य तथा चन्द्रमा के एक राशि में होने पर भी यदि निम्नलिखित ग्रह स्थिति हो तो जारजात ही होता है । वह निम्नलिखित ग्रहस्थिति क्या ?

चन्द्रमा जिस अंश में है, उसी अंश में मंगल या शनि हो (अर्थात् चन्द्रमा की अंशात्मक युति मंगल या शनि से हो) और सूर्य तथा चन्द्रमा एक ही राशि में हों—यह दोनों होने से जारजात होता है । रुद्रभट्ट पुनः कहते हैं कि इस योग में

(चन्द्रमा का अंशात्मक पापग्रह से योग और सूर्य चन्द्र की एक ही राशि में स्थिति दोनों के होने पर) यदि सूर्य चन्द्र पर —बृहस्पति की दृष्टि हो तो पत्नी अपने पति की अनुज्ञा से पर पुरुष गमन करती है। यदि लग्न में सूर्य हो, चन्द्रमा पाप ग्रह के साथ हो, बृहस्पति से दृष्ट न हो तो माता का ही दोष है (अर्थात् पति का नहीं)। यदि चन्द्रमा जिस पापग्रह के साथ है, वह पापग्रह अति बलवान हो तो अपवाद ही होता है। अर्थात् वास्तव में जारजात नहीं होता किन्तु बदनामी हो जाती है।

पुनः कहते हैं कि जारजात योग में किस प्रकार यह विचार करना कि किस प्रकार के व्यक्ति से व्यभिचार कर जातक की माता ने पुत्र उत्पन्न किया है। प्रसव के समय, लग्न से, नवमेश से (दक्षिण भारत में पिता का विचार नवम से किया जाता है) तथा बीज कारक सूर्य—से इन में जो बलवान् हो उसकी जाति तथा जो अन्य लक्षण दिये हैं–देखिए जातकपारिजात तथा बृहज्जातक का अध्याय २–उनसे जार का विचार करना। रुद्रभट्ट कहते हैं कि ऐसा जातक दूसरे के व्यापार से आजीविका उपार्जित करता है।

(ख) अब भट्टोत्पल ने क्या लिखा है वह कहते हैं—

(i) यदि लग्न और चन्द्रमा-चाहे एक राशि में हों चाहे पृथक्-पृथक् राशि में, यदि बृहस्पति दृष्ट न हों तो जातक जारजात होता है, किन्तु यदि लग्न या चन्द्रमा बृहस्पति के नवांश में न हों तभी ऐसा होता है क्योंकि यवनेश्वर ने कहा है :

अजीवभागेष्वनवीक्षिते वा जीवेन चन्द्रेऽथ विलग्नभे वा।
जातोऽपरोद्भूतमिति ब्रुवन्ति वाच्यो जनेनाथ बलावलोकात् ॥

(ii) यदि चन्द्रमा सूर्य के साथ हो और बृहस्पति से दृष्ट न हो तो जारजात होता है।

(रुद्रभट्ट और भट्टोत्पल के अर्थ एक दूसरे के बिलकुल विरुद्ध हैं)।

(iii) यदि चन्द्रमा किसी पापग्रह के साथ हो और सूर्य भी चन्द्रमा के साथ उसी राशि में हो तो चाहे बृहस्पति से दृष्ट हो, चाहे अदृष्ट हो जारजात योग होता है।

किन्तु इन योगों में यदि चन्द्रमा बृहस्पति के साथ हो या गुरु की राशि में हो या अन्य राशि में स्थित होकर भी चन्द्रमा बृहस्पति के द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश या त्रिशांश में हो तो जारजात नहीं कहना यह भगवान गार्गि के वचन के आधार पर कहते हैं ॥ ५८ ॥

गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते चान्यराशिगे।
तद्द्रेष्काणे तदंशे वा न परैर्जात इष्यते ॥ ५९ ॥

(१२) यह श्लोक भगवान् गार्गि से लिया गया है, जो भट्टोत्पल तथा रुद्रभट दोनों ने अपनी टीका में उद्धृत किया है। कहते हैं कि यदि चन्द्रमा बृहस्पति की राशि में हो या किसी भी राशि में बृहस्पति के साथ हो, या बृहस्पति के द्रेष्काण या अंश (नवांश) में चन्द्रमा हो तो जारज (जार–अन्य पुरुष से उत्पन्न) नहीं होता।

जातकोत्तम, सारावली आदि ज्योतिष ग्रंथों में, तथा गुणाकर, तातमिश्र आदि आचार्यों ने अनेक जारज योग कहे हैं। इनके अनेक अपवाद अर्थात् अन्य योग, जिनके होने से जारज योग नहीं होता भी दिये हैं। ब्रह्मा, सुब्रह्मण्य, सूर्य, यवन, वशिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अङ्गिरा, लोमश, पौलश, च्यवन, शौनक आदि ने ४४ अपवाद कहे हैं। विस्तार भय से आलोचना नहीं की जा रही है ॥ ५९ ॥

जन्म के समय पिता बन्धन में हो

क्रूरर्क्षगतावशोभनौ सूर्याद्द्यूननवात्मजस्थितौ।
बद्धस्तु पिता विदेशगः स्वे वा राशिवशात्तथा पथि ॥ ६० ॥

सूर्य से पंचम, सप्तम, या नवम में (एक साथ या पृथक्-पृथक्) मंगल और शनि क्रूर ग्रह की राशि में हो तो जातक का पिता, जातक के जन्म के समय बद्ध था। क्रूर ग्रह की राशि क्या? मेष, वृश्चिक, मकर, और कुंभ। भट्टोत्पल लिखते हैं कि यदि कृष्ण पक्ष का चन्द्रमा हो तो कर्क, और बुध यदि पाप युक्त हो तो मिथुन और कन्या भी क्रूर राशि समझना।

सूर्य यदि चर राशि में हो तो परदेश में, स्थिर राशि में हो तो स्वदेश में, द्विस्वभाव राशि में हो तो पिता मार्ग में बद्ध समझना। रुद्रभट कहते हैं कि सूर्य यदि निगल, पाश या भुजग द्रेष्काण में हो तो साक्षात् बद्ध (बन्धन में गिरफ्तार) समझना। सूर्य यदि इन द्रेष्काणों में से किसी में न हो तो किसी कार्य में लगा हुआ होने से रुका हुआ समझना। रुद्रभट्ट पुनः कहते हैं कि इस योग में उत्पन्न जातक, अपने पिताकृत दोष के कारण दण्डानुभव करता है ॥ ६० ॥

जन्मस्थान विवरण

पूर्णे शशिनि स्वराशिगे सौम्ये लग्नगते शुभे सुखे।
लग्ने जलजेऽस्तगेऽपि वा चन्द्रे पोतगता प्रसूयते ॥ ६१ ॥
आप्योदयमाप्यगः शशी सम्पूर्णः समवेक्षतेऽथवा।
मेषूरणबन्धुलग्नगः स्यात् सूतिः सलिले न संशयः ॥ ६२ ॥

उदयोडुपयोर्व्ययस्थिते गुप्त्यां पापनिरीक्षिते यमे।
अलिकर्कियुते विलग्नगे सौरे शीतकरेक्षितेऽवटे ॥ ६३ ॥
मन्देऽब्जगते विलग्नगे बुधसूर्येन्दुनिरीक्षिते क्रमात्।
क्रीडाभवने सुरालये जननं चोषरभूमिषूद्दिशेत् ॥ ६४ ॥
नृलग्नगं प्रेक्ष्य कुजः श्मशाने रम्ये सितेन्दू गुरुरग्निहोत्रे।
रविर्नरेन्द्रामरगोकुलेषु शिल्पालये ज्ञः प्रसवं करोति ॥ ६५ ॥
राश्यंशसमानगोचरे मार्गे जन्म चरे स्थिरे गृहे।
स्वर्क्षांशगते स्वमंदिरे बलयोगात्फलमंशकर्क्षयोः ॥ ६६ ॥

इन ६ श्लोकों में और आगे श्लोक ६९ तथा ७० में कुछ ग्रह-योग कहे हैं, जिन से यह निश्चय किया जाये कि कैसे स्थान में प्रसव हुआ। सम्प्रति जब नगरों में ९९ प्रतिशत प्रसव अस्पतालों में हो रहे हैं, तो ये योग लागू नहीं होंगे। तथापि शास्त्रीय दृष्टि से इनका महत्व है।

(१) इस श्लोक में दो पृथक् पृथक् योग कहे गए हैं। इनमें से कोई भी योग हो तो पानी के जहाज (या नौका) में जन्म कहे। कुछ टीकाकार यह भी अर्थ लेते हैं कि जल के मध्य में प्रसव हो।

(i) पूर्ण (पूर्णिमा का) चन्द्रमा कर्क में हो, लग्न में बुध तथा चतुर्थ में बृहस्पति।

(ii) लग्न में जलराशि (कर्क, मकर का उत्तरार्द्ध या मीन) तथा सप्तम में चन्द्रमा।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि इन योगों में उत्पन्न व्यक्ति समुद्र यात्रा आदि (समुद्र पार से व्यापार आदि) करता है।६१।

(२) अब जल में प्रसव होने के ३ अन्य योग कहते हैं।

(i) लग्न में जल राशि हो, चन्द्रमा भी जल राशि में हो।

(ii) सम्पूर्ण (पूर्णिमा का) चन्द्रमा लग्न को देखे और लग्न जल राशि में हो।

(iii) जल राशि का चन्द्रमा लग्न, चतुर्थ या दशम में हो।

भट्टोत्पल कहते हैं कि जल में प्रसूति का अर्थ जल के समीप भी प्रसूति लेना। रुद्रभट्ट यह विशेष कहते हैं कि मूल में 'आप्योदय' या 'आप्यगः' यह जो दो शब्द आये हैं, इनमें अप् (पानी) शब्द से केवल जल का ही—जल राशि का ही निर्देश नहीं करना; अप्(जल)तत्त्व शुक्र का भी है—और शुक्र का जल तत्त्व है इस कारण यहाँ शुक्र की राशि हो, तो भी यह योग घटित हो। पुनः कहते हैं कि जहाँ योग का प्रसंग हो वहाँ पूर्ण दृष्टि—अर्थात् सप्तम दृष्टि ही लेना—एक पाद, द्विपाद या त्रिपाद दृष्टि नहीं लेना, क्योंकि यदि आंशिक दृष्टि से भी दृष्ट

हो यह अर्थ लिया जा सकता हो, तो इस श्लोक में चन्द्रमा की लग्न पर एक चरण दृष्टि (चन्द्रमा चतुर्थ में होने से उसकी लग्न पर एक चरण दृष्टि होगी) या चन्द्रमा की लग्न पर तीन चरण दृष्टि (चन्द्रमा दशम में होने से उसकी लग्न पर तीन चरण दृष्टि होगी) का पृथक् निर्देश नहीं करते। इसलिए सिद्धांत यह है कि केवल यहाँ ही नहीं—इसी अध्याय में ही नहीं—अपितु सर्वत्र जहाँ राजयोग या रेकायोग, दरिद्रयोग आदि का प्रसंग हो वहाँ पूर्ण दृष्टि ही लेना। 'एवमुक्त्या अन्यत्रापि योगेषु दृष्टिप्रसंगे सप्तमदृष्टिरेव ग्राह्येति च ज्ञाप्यते।'

मन्त्रेश्वर ने भी फलदीपिका अध्याय ४ श्लोक ९ में कहा है :—

श्रेष्ठेति सा सप्तमदृष्टिरेव सर्वत्र वाच्या न तथाऽन्यदृष्टिः।
योगादिषु न्यूनफलप्रदेति विशेषदृष्टिर्न तु कैश्चिदुक्ता॥

व्याख्या के लिए देखिए हमारी फलदीपिका, पृष्ठ, ८९-९०।

रुद्रभट्ट लिखते हैं कि इस श्लोक में जो योग दिए हैं, यदि उनमें से कोई योग जन्मकुंडली में हो तो, जातक जलयान (नौका, जहाज) जल द्रव्य (जल में उत्पन्न पदार्थ, जल के पार जाने वाले या जल के पार से आने वाले पदार्थ) सम्पादन में चतुर होता है। इन योगों की याजना कूप (कुआँ) प्रश्न में भी करनी चाहिए। इस योग में जन्मे व्यक्ति द्वारा वापो, कूप, तालाब का निर्माण भी संभव होता है। यदि चन्द्रमा स्थल राशि में हो तो तैल, घृत आदि का क्रय विक्रय। स्थल राशि में कृषि प्रवृत्ति किन्तु चन्द्रमा यदि लग्न राशि में हो तो समुद्रयान॥ ६२॥

(३) (i) भट्टोत्पल ने अर्थ किया है कि लग्न और चन्द्रमा से बारहवें में शनि हो और उसको (शनि को) पापग्रह देखता हो तो कारागार (बन्धन) में प्रसव हो। लग्न और चन्द्रमा—दोनों से बारहवें घर में शनि तभी होगा जब लग्न में चन्द्रमा हो। किन्तु रुद्रभट्ट ने अर्थ किया है—'लग्न से द्वादश या चन्द्रमा से द्वादश या दोनों से द्वादश (यदि लग्न में ही चन्द्रमा हो तो) शनि हो और उसे—शनि को पापग्रह देखे तो यह योग हो सकता है।

(ii) यदि कर्क या वृश्चिक लग्न में शनि हो, उसे चन्द्रमा देखे तो खंदक (गड्ढे) में जन्म हो। रुद्रभट्ट कहते हैं कि इस योग में उत्पन्न जातक कुआँ, तालाब, बावड़ी (अर्थात् समस्त व्यापार जिसमें खुदाई होती है) के कार्य से आजीविका उपार्जन करता है॥ ६१-६३॥

(४) (i) यदि जलराशि (कर्क, मकर का उत्तरार्ध तथा मीन) में लग्न में शनि हो, उसे बुध देखे तो क्रीड़ा भवन (आमोद प्रमोद के स्थान) में जन्म हो।

(ii) यदि जल राशि में लग्न में शनि हो, उसे सूर्य देखे तो देवालय (मंदिर) में जन्म हो।

(iii) यदि जल राशि में लग्न में शनि हो उसे चन्द्रमा देखे तो ऊसर भूमि में जन्म हो।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि उपर्युक्त योग (i) में जन्म हो तो नृत्य गीत वाद्य आदि (नाटक, सिनेमा, खेल-कूद क्रिकेट, फुटबाल आदि) से आजीविका उपार्जन करता है। योग (ii) हो तो मंदिर सम्बन्धी कार्य से द्रव्य उपार्जन करता है। योग (iii) हो तो नमक आदि (ऊसर भूमि में नमक होता है—सम्प्रति सोड़ा, सीमेण्ट, चूना, कैमिकल्स आदि) से अर्थोपार्जन करता है। किन्तु इन उपायों से (जो ऊपर (i), (ii) तथा (iii) में कहे गए हैं) द्रव्य लाभ केवल उस स्थिति में कहना, जब उपर्युक्त ग्रह बलवान हों ॥ ६४ ॥

(५) यदि नृलग्न हो अर्थात् मिथुन, कन्या, तुला, धनु का पूर्वार्द्ध या कुंभ लग्न हो, उसमें शनि हो और उसे

(i) मंगल देखे तो श्मशान में।

(ii) चन्द्रमा या शुक्र देखें तो रम्य (रमणीक) स्थान में।

(iii) वृहस्पति देखे तो अग्निहोत्र के स्थान में।

(iv) सूर्य देखे तो राजभवन में, देवालय में या जहाँ गायें रहती हैं।

(इन तीनों में से किस स्थान में यह ग्रह के बलानुसार निश्चित करना चाहिए)

(v) बुध देखें तो शिल्प (चित्रकारी, संगतराशी आदि किसी भी कारीगरी का) काम जहाँ होता हो, वहाँ जन्म होता है।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि इसकी संभावना है कि उपर्युक्त योग (i) में जातक बहुत शवों का दाह करे; योग (ii) में रम्य प्रदेश में वास करे; योग (iii) में अग्निहोत्रादि कार्य में रत हो; योग (iv) में राजभवन, मन्दिर या गोशाला में वास करे और योग (v) में शिल्प भवन में रहा करे ॥ ६५ ॥

(६) प्रसव कहाँ और किस स्थान में हो, इसके सम्बन्ध में कुछ विशेष योग बतला चुकने के बाद अब सामान्य सिद्धांत कहते हैं कि प्रसूति कहाँ होगी, यह कैसे निर्णय करना। सर्वप्रथम कहते हैं कि राशि-अंश के समान (सदृश) स्थान में। कौन सी राशि ? कौन सा अंश जो राशि या नवांश लग्न में उदित हो रहा हो ? अर्थात् लग्न स्पष्ट जिस राशि और नवांश में पड़े। पुनः शंका होती है कि राशि और नवांश—दो दो कह दिए—दोनों से दो पृथक् पृथक् निर्देश आए तो निश्चयात्मक रूप से कैसे कहना ? राशि से जो स्थान इंगित हो जो नवांश से इंगित हो ? इसका निर्णय चतुर्थ चरण में स्वयं कहते हैं कि राशि और नवांश में जो अधिक बलवान् हो। यह सिद्धांत बहुत महत्वपूर्ण है। सर्वत्र फलादेश में इसको

स्मरण रखना चाहिए, इसका उपयोग करना चाहिए। नवांश का अत्यधिक महत्त्व है : कहीं कहीं तो राशि की अपेक्षा नवांश का अधिक फल मिलता है। नवांश के आधार पर ही कालचक्र दशा की योजना है।

विंशोत्तरी महादशा अन्तर्दशा में भी राशि की अपेक्षा नवांश स्थिति का विशेष महत्व है। देखिए इसी ग्रंथ के अध्याय १८ का श्लोक ७१। अस्तु अब प्रकृत विषय पर आइए। यदि राशि और नवांश–इन दोनों में जो बली हो वह––

(i) चर राशि में हो तो मार्ग में (अर्थात् घर में नहीं) प्रसव हो।

(ii) स्थिर राशि में हो तो घर में प्रसव कहना।

शंका उठाते हैं कि राशियों के तो चर, स्थिर, द्विस्वभाव––ये तीन भेद हैं और यहाँ चर, स्थिर––दो का ही फल कहा, द्विस्वभाव का फल नहीं कहा। यदि द्विस्वभाव में जन्म हो तो क्या ? कहते हैं कि द्विस्वभाव के पृथक् फल निर्देश की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि––

द्विस्वभाव का पूर्वार्द्ध स्थिर का और उत्तरार्द्ध चर का फल देता है। उपर्युक्त चर तथा स्थिर राशि या नवांश का साधारण फल कहने के बाद यह कहते हैं कि राशि या नवांश जो बलवान् हो वह—

(i) यदि अपनी राशि या नवांश में हो तो अपने घर में जन्म, (ii) बन्धु के गृह में हो तो बन्धु के घर में, (iii) शत्रु के घर में हो तो शत्रु के गृह में, (iv) मित्र के घर में हो तो मित्र के गृह में, (v) अन्य के घर में हो तो अन्य के गृह में इत्यादि ऊहापोह करके फल कथन करना चाहिए। यहाँ यह शंका उठती है कि स्वगृही-मित्रगृही, शत्रुगृही आदि का प्रसंग तो पहिले आया है। अध्याय २ में कौन ग्रह किसका मित्र, किसका शत्रु, किसका उदासीन होता है यह बताया गया है। परन्तु बन्धु से क्या तात्पर्य है। बन्धु और सम्बन्धी एक ही बात है। सम्बन्धी की विशद व्याख्या के लिए देखिए हमारी त्रिफला(ज्योतिष)पृष्ठ ८९।

माता से शिशु त्यक्त हो

आरार्कजयास्त्रिकोणगे चन्द्रेऽस्ते च विसृज्यतेऽम्बया।
दृष्टेऽमरराजमन्त्रिणा दीर्घायुः सुखभाक् च स स्मृतः॥ ६७॥
पापेक्षिते तुहिनगावुदये कुजेऽस्ते
त्यक्तो विनश्यति कुजार्कजयोस्तथाऽऽये।
सौम्येऽपि पश्यति तथाविधहस्तमेति
सौम्येतरेषु परहस्तगतोऽप्यनायुः॥ ६८॥

(१) (i) यदि शनि और मंगल एक राशि में हों और उनसे पाँचवें, सातवें या नवें घर में चन्द्रमा हो तो माता उस बच्चे को त्याग देती है।
(ii) उपर्युक्त योग में, चन्द्रमा यदि बृहस्पति से दृष्ट हो तो माता के त्याग देने पर भी बच्चा दीर्घायु और सुखी होता है।

यह टीका भट्टोत्पल ने की है। अब रुद्रभट्ट क्या कहते हैं, इसका विवरण दिया जाता है।

रुद्रभट्ट ने जो वराहमिहिर के इस श्लोक का पाठ दिया है, उसमें उपर्युक्त से कुछ भेद है। वहाँ द्वितीय चरण में पाठ है "चन्द्रेऽर्के विसृज्यतेऽम्बया।" रुद्रभट्ट कहते है कि मंगल तथा शनि (चाहे यह एक राशि में हो या भिन्न भिन्न राशि में—यहाँ मंगल कन्या में, शनि वृष में हो तो मकर स्थित ग्रह दोनों से त्रिकोण में होगा) दोनों से त्रिकोण में सूर्य हो तो पिता उस बच्चे का परित्याग कर दे। मंगल और शनि दोनों से त्रिकोण में चन्द्रमा हो तो माता परित्याग कर दे। किन्तु इस योग में चन्द्रमा यदि अमर राज मन्त्री (अमर-देवता, राज-राजा, मन्त्री-इन्द्र का बृहस्पति) से दृष्ट हो तो दीर्घायु तथा सुखी होता है। अमर राज मंत्री की व्याख्या में रुद्रभट्ट कहते हैं कि यदि अत्यन्त बली बृहस्पति से दृष्ट हो तो रसायन सेवनादि योग होता है (रसायन क्या ? काया कल्प की औषधियाँ, सिद्ध मकरध्वज, चन्द्रोदय आदि) मध्यवली बृहस्पति की चन्द्रमा पर दृष्टि हो तो राजत्व, अल्प बली बृहस्पति की दृष्टि हो तो मन्त्रित्व ॥६७॥
(२) यह श्लोक ६८ बृहज्जातक अध्याय ५ का १५वाँ श्लोक है। इसमें माता से बच्चा त्यक्त हो, इसके ४ योग और उनके फल दिये गये हैं। साधारणतः माता बच्चे का त्याग करती नहीं। केवल विशेष परिस्थिति में ऐसा होता है। माता मर जावे तो अपने आप माता और बच्चे का वियोग हो गया। या युद्ध के समय डाकू, लुटेरों के भय से माता को पलायन करना पड़े और त्वरा में बच्चा पीछे छूट जाये, या बच्चे को कोई चुरा ले, या किसी अविवाहित या विधवा स्त्री के बच्चा हो जावे और वह लोक लज्जा से बच्चे को छोड़ दे, इस प्रकार स्वेच्छा या अनिच्छा से बच्चे का परित्याग लोक में देखा गया है। वराहमिहिर कहते हैं कि (i) लग्न में चन्द्रमा पाप (सूर्य या शनि से) दृष्ट हो और लग्न से सप्तम में मंगल हो तो बच्चा माँ से त्यक्त होता है और बच्चा विनाश को प्राप्त होता है अर्थात् मर जाता है। (ii) लग्न में चन्द्रमा पाप (सूर्य) दृष्ट हो और लग्न से ग्यारहवें घर में 'शनि' मंगल में हो तो यही फल जो (i) में कहा गया है। रुद्रभट्ट कहते हैं कि शनि, मंगल ग्यारहवें हो, इसके अतिरिक्त यह कहा कि लग्नस्थ चन्द्रमा पाप दृष्ट हो, इससे, लग्न से सप्तम सूर्य हो यह विवक्षित है। काशी से प्रकाशित जातक पारिजात के संस्कृत तथा हिन्दी

के टीकाकारों ने व्याख्या की है "कि चन्द्रमा, मंगल और शनि से ग्यारहवें हों।" यह व्याख्या अशुद्ध है; क्योंकि भट्टोत्पल कहते हैं कि "भौमशन्योरायें लग्नादेकादशे स्थितयोः। रुद्रभट्ट भी यही कहते हैं और हेतुवाद उपस्थित करते हैं कि लग्न से ग्यारहवें घर में मंगल तथा शनि के होने से मंगल की चन्द्रमा पर एक चरण दृष्टि होगी और शनि की चन्द्रमा पर पूर्ण दृष्टि। बृहत्प्राजापत्य में भी लग्न गत चन्द्रमा से ग्यारहवें घर में मंगल, शनि का होना कहा है—

शुभदृष्टे निशानाथे लग्नस्थेऽस्तगते कुजे।
तस्माच्च गतयोरायं यद्वा मन्दारयोर्द्वयोः॥

सारावली अध्याय ९ श्लोक ३८ के अनुसार लग्न में पापग्रहों से दृष्ट (मूल में पापैः बहुवचन है। संस्कृत में बहुवचन ३ या अधिक के अर्थ में प्रयुक्त होता है) चन्द्रमा हो। लग्न से दशम में मंगल हो (मंगल की लग्न पर पूर्ण दृष्टि होगी) शनि एकादश में हो (शनि की भी लग्न पर पूर्ण दृष्टि होगी) तो माता से त्यक्त होता है :—

म्रियते पापैर्दृष्टे शशिनि विलग्ने कुजेऽस्तगे त्यक्तः॥
लग्नात् खलाभगतयोर्वसुधासुतमन्दयोरेवम्॥

(iii) यदि उपर्युक्त ग्रह स्थिति में चन्द्रमा सौम्यग्रह से दृष्ट हो तो द्रष्टा ग्रहों में जो ग्रह अपनी राशि नवांशादि स्थिति से बलवान् हो (वह ग्रह ब्राह्मणादि जिस वर्ण का अधिष्ठाता हो (देखिए जातक पारिजात अध्याय २ श्लोक २६) उस वर्ण वाले व्यक्ति के हाथ बच्चा पड़ता है—किन्तु भट्टोत्पल कहते हैं कि चन्द्रमा सौम्य और पापग्रह दोनों से दृष्ट हो तो अन्य के हाथों में पड़कर भी बच्चा जीवित नहीं रहता; किन्तु, इस योग में यदि चन्द्रमा

(iv) बृहस्पति से भी दृष्ट हो तो बच्चा जीवित रहता है क्योंकि भट्टोत्पल कहते हैं कि इससे अव्यवहित पूर्व श्लोक में वराहमिहिर, बृहस्पति से दृष्ट होने से बच्चा जीवित रहता है, यह कह चुके हैं। भट्टोत्पली टीका में, इसकी पुष्टि में सारावली का निम्न लिखित श्लोक उद्धृत करते हैं।

सर्वेष्वेतेषु योगेषु शशी सुरेज्यसंदृष्टः।
भवति तदादीर्घायुर्हस्तगतः सर्ववर्णेषु॥

रुद्रभट्ट तथा भट्टोत्पल ने इस प्रसंग में सारावली के ३ श्लोक उद्धृत किए हैं। प्रथम दो श्लोक तो सारावली की मुद्रित पुस्तकों में अध्याय ९ के श्लोक ३८ और ३९ हैं। परन्तु उपर्युक्त श्लोक मुद्रित संस्करणों में प्राप्य नहीं है। रुद्रभट्ट यह विशेष कहते हैं कि इस योग में उत्पन्न जातक सदा अपनी जन्म भूमि त्याग कर देता है॥ ६७-६८॥

प्रसव स्थान

अब प्रसव कैसे स्थान में हुआ—यह ज्ञात करने के लिये दो श्लोक देते है। दोनों ही श्लोक वृहज्जातक के हैं।

पितृमातृगृहेषु तद्बलात्तरुशालादिषु नीचगैः शुभैः।
यदि नैकगतैश्च वीक्षितौ लग्नेन्दू विजने प्रसूयते ।। ६९ ।।
मन्दर्क्षांशे शशिनि हिबुके मन्ददृष्टेऽब्जगे वा
तद्युक्ते वा तमसि शयनं नीचसंस्थैश्च भूमौ।
यद्वद्राशिर्व्रजति हरिजं गर्भमोक्षस्तु तद्वत्
पापैश्चन्द्रस्मरसुखगतैः क्लेशमाहुर्जनन्याः ।। ७० ।।

इस श्लोक में ५ योग कहे गये हैं।

यदि जन्म के समय (i) पितृकारक ग्रह बलवान् हों तो पिता के घर में जन्म कहना। (ii) मातृकारक ग्रह बलवान् हों तो माता के सम्बन्धी (नाना, मामा, मौसी आदि) के घर में जन्म हो। (iii) यदि सभी शुभग्रह (मूल में बहुवचन आया है। इस कारण ३ या अधिक शुभग्रह) नीच राशि में हों तो तरु (वृक्ष) शाला आदि के नीचे या पास में जन्म हो (iv) यदि एक राशिगत—३ या अधिक ग्रह लग्न तथा चन्द्रमा को न देखें तो विजन (जन रहित, निर्जन स्थान में जन्म हो। (v) यदि एक राशि गत ३ या अधिक ग्रह लग्न और चन्द्रमा को देखें तो जनाकीर्ण स्थान में प्रसव हो।

व्याख्या: ऊपर श्लोक का अनुवाद दिया गया है। अब भट्टोत्पल तथा रुद्रभट्ट अपनी अपनी व्याख्या में जो विशेष लिखते हैं, उससे परिचय कराया जाता है।

पितृकारक ग्रह कौन से हैं और मातृकारक कौन से यह वृहज्जातक अध्याय ४ श्लोक ५ (जातकपारिजात अध्याय ३ श्लोक १५) में कह चुके हैं। इन ग्रहों के अतिरिक्त नवमेश (दक्षिण भारत में नवम से पिता का विचार किया जाता है) तथा चतुर्थेश (चतुर्थ से माता का विचार करते हैं) का भी विचार करना, यह रुद्रभट्ट कहते हैं। रुद्रभट्ट पुनः कहते हैं कि 'स्वतुंगवक्रोपगतैस्त्रिसङ्गुणं द्विरुत्तमस्वांशगृहत्रिभागगैः' (बृहज्जातक अध्याय ७ श्लोक १० तथा जातकपारिजात अध्याय ५ श्लोक १९) में जो गुणा करने की परिपाटी बताई गई है, उसका अनुसरण कर पिता के कितने घर या मातृसम्बन्धी कितने घर यह संख्या निश्चित करना; क्योंकि वराहमिहिर ने 'गृहेषु' (घरों में) बहुवचन का प्रयोग किया है। पुनः कहते हैं कि माता-पिता भी अनेक हो सकते हैं—किसी का औरस पुत्र, किसी का दत्तक, किसी का कृत्रिम आदि; जैसे एक ही स्कन्द का

कार्त्तिकेय (कृत्तिका का पुत्र) शंकरनन्दन, पर्वतनन्दन, अग्निभू (अग्नि से उत्पन्न), षाण्मातुर (६ माताओं वाला) आदि विविध नामों से, अनेक पितृ मातृ सम्बन्ध स्थापित किए जाते हैं।

रुद्रभट्ट के अनुसार शुभग्रहों का नीच होना मानहानि मनस्तापादि सूचक है। (इससे यह निष्कर्ष निकला कि जन्मकुंडली में शुभ ग्रह नीच राशि में हों तो मानहानि, मनस्ताप आदि अशुभ फल होता है। मूल में भट्टोत्पली टीका में 'शाल' लिखा है। शाल का अर्थ शालवृक्ष, शाला (गोशाला, अश्वशाला आदि)। रुद्रभट्ट के विवरण में साल लिखा है। 'साल' का अर्थ है दीवार, फसील इनके पास। भट्टोत्पल कहते हैं कि आदि शब्द से कूप, नदी, बाग, पर्वत आदि अनावृत प्रदेश समझना, 'जन रहित' स्थान की व्याख्या करते हैं 'अटवी (वन, जंगल) आदि।

इस श्लोक में लग्न और चन्द्रमा अन्य ग्रहों से दृष्ट न हों, उसका फल जो कहा, उस सम्बन्ध में रुद्रभट्ट एक प्राचीन वचन उद्धृत करते हैं :—

योगे दृष्टिफलं योज्यं दृष्टौ योगफलं तथा ॥

जो फल युति का कहा गया है, उसकी योजना दृष्टि में भी करना और जो फल दृष्टि का कहा गया है उसको युति में भी लागू करना।

ज्योतिष के फलादेश में यह सिद्धांत बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस कारण पाठकों का इस ओर विशेष ध्यान आकृष्ट किया जाता है। इसे सदैव स्मरण रखें विस्मरण न करें।

इस प्रकरण में इस वचन का तात्पर्य यह हुआ कि लग्न और चन्द्रमा पर ग्रहों की दृष्टि न हो, किन्तु ग्रहों की चन्द्र और लग्न से युति हो तो निर्जन प्रदेश में जन्म होने वाला योग लागू न होगा।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि तरु, साल आदि के नीचे—जिसका इस योग में जन्म हो उसको वृक्ष विक्रय आदि से लाभ होता है, और निर्जन प्रदेश में जन्म के योग से निर्जन देश में निवास करता है ॥ ६९ ॥

(२) इस श्लोक में चार बातें कही हैं (i) प्रसूति के समय माता के पास प्रकाश था या नहीं (ii) प्रसूति के समय क्या माता भूमि पर लेटी हुई थी ? (iii) बच्चे का प्रसव कैसे हुआ? चेहरा आँखें ऊपर की ओर थीं, या नीचे की ओर या बगल की ओर (iv) क्या माता को प्रसव के समय विशेष कष्ट हुआ ? साधारण कष्ट तो सब को होता ही है।

यह श्लोक बृहज्जातक से लिया गया है। रुद्रभट्ट और भट्टोत्पल की टीकाओं में यत्र तत्र किंचित् अन्तर है। दोनों के ही मत दिये जा रहे हैं :—

(१) माता के पास प्रसूति के स्थान में अंधकार था इस विषय के, रुद्रभट्ट के

अनुसार इस श्लोक में ३ योग हैं। (१) शनि के राशि, नवांश में चन्द्रमा चतुर्थ में हो। (२) जल राशि में चन्द्रमा किसी भी भाव में हो, उस पर शनि की दृष्टि हो। (३) चन्द्रमा के साथ शनि हो। रुद्रभट्ट कहते हैं कि अंधकार में प्रसव के यह तीन योग हैं। पुनः कहते हैं कि अन्य (टीकाकारों) के मतानुसार इसमें ५ योग हैं। (१) शनि की राशि, नवांश में चन्द्रमा। (२) चतुर्थ में चन्द्रमा। (३) शनि से दृष्ट चन्द्रमा। (४) जल राशि में चन्द्रमा। (५) शनि के साथ चन्द्रमा। रुद्रभट्ट कहते हैं कि जिसकी जन्मकुंडली में अन्धकार में जन्म हो, उसको (बड़े हो जाने पर) यदि कमरे में दीपक हो--अर्थात् प्रकाश हो तो निद्रा नहीं आती।

रुद्रभट्ट यह भी कहते हैं कि अन्धकार में शयन के इन योगों को भोजन, सुरत आदि के प्रश्नों में भी लागू करना चाहिए।

भट्टोत्पल अपनी व्याख्या में कहते हैं कि अन्धकार के जन्म में वराहमिहिर ने, इस श्लोक में निम्नलिखित योग कहे हैं। (१) चन्द्रमा किसी भी राशि में शनि के—मकर या कुंभ नवांश में हो। (२) लग्न से चतुर्थ में चन्द्रमा हो। (३) चन्द्रमा कहीं भी हो, किन्तु शनि से दृष्ट हो। (४) जल राशि कर्क या मीन नवांश में चन्द्रमा हो। (५) चन्द्रमा शनि के साथ हो।

अन्धकार में शयन के जो योग कहे गये हैं, उनमें यदि चन्द्रमा को सूर्य देखे तो अन्धकार में शयन नहीं कहना, यह यवनेश्वर ने कहा है। कल्याण वर्मा सारावली में कहते हैं कि बलवान् सूर्य को मंगल देखे तो बहुत से दीपक थे, यह कहना। अर्थात् इन योगों से अन्धकार में शयन का योग खंडित हो जाता है।

(ii) रुद्रभट्ट कहते हैं कि शयन स्थानाधिप नीच हो या शुभग्रह नीचे हों तो भूमि पर शयन कहना। भट्टोत्पलभूमि की व्याख्या करते हैं कि जमीन पर तृण पुआल बिछा हो। कल्याण वर्मा सारावली में कहते हैं कि चन्द्रमा नीच राशि में लग्न या चतुर्थ में हो तो भूमि में शयन कहना। रुद्रभट्ट ने सारावली का जो उद्धरण दिया है, उसके अनुसार, लग्न में यदि नीच राशि का चन्द्रमा हो तो भूशयन कहना। रुद्रभट्ट कहते हैं कि सुरत आदि प्रश्न में भी इन योगों को लागू करना। पुनः कहते हैं कि जो इस योग में उत्पन्न हो उसे शय्या सुख नहीं होता।

(iii) अब प्रसव के समय, बच्चा किस पहलू (किस पोजीशन) से हुआ, इसका विवेचन करते हैं। वराहमिहिर ने केवल यह लिखा है कि पूर्वीय क्षितिज पर जैसी राशि हो, उसी प्रकार गर्भमोक्ष (बच्चे के शरीर का, माता के शरीर से बाहर निकलना) होता है। कल्याण वर्मा सारावली में कहते हैं कि शीर्षोदय लग्न हो तो बच्चे का सिर पहिले निकले, पृष्ठोदय लग्न हो तो पैर पहिले निकलें,

उभयोदय लग्न हो तो भुजा पहिले निकले। किन्तु १२ लग्नों में ५ पृष्ठोदय, ७ शीर्षोदय और १ उभयोदय कहे गए हैं। (देखिए जातकपारिजात का अध्याय १ श्लोक १४) और देखा यह आता है कि अधिकतर बच्चों के जन्म के समय सिर ही पहिले निकलता है। अतः भट्टोत्पल ने इसकी जो व्याख्या की है, वह हमें विशेष सम्मत है। भट्टोत्पल कहते हैं कि जन्म के समय शीर्षोदय लग्न हो तो बच्चे का चेहरा, आँखें ऊपर की ओर थीं, यदि पृष्ठोदय लग्न हो तो ऊपर की ओर बच्चे की पीठ थी, यदि उभयोदय लग्न हो तो चेहरा, आँखें बगल की ओर (बच्चा करवट स्थिति में) होती हैं। मणित्थ के वचनानुसार लग्नेश या नवांशेश वक्री हो, या लग्न में वक्री ग्रह हो तो गर्भ मोक्ष विपरीत अवस्था में हुआ। (साधारणतः सिर पहिले निकलता है। विपरीत—अर्थात् पैर पहिले)। (vi) पापग्रह चन्द्रमा से युत हों, या लग्न से चतुर्थ में या लग्न से सप्तम में पापग्रह हो तो प्रसव के समय, माता को विशेष कष्ट हुआ, यह कहना। रुद्रभट्ट यह विशेष कहते हैं कि चन्द्रमा शुभग्रहों के साथ हो या लग्न से चतुर्थ या सप्तम में शुभग्रह हों तो सुखपूर्वक प्रसव कहना। और मातृ कष्ट क जो योग कहे हैं, उनमें यदि जन्म हो तो माता के कारण द्रव्यक्षय आदि होता है। यदि चतुर्थ में पापग्रह हो, सप्तम में शुभग्रह हो तो जातक अपनी पत्नी की वजह से, माता से द्रोह करता है ॥ ७० ॥

प्रसूतिगृह में दीपज्ञान आदि

स्नेहः शशाङ्कादुदयाच्च वर्ती दीपोऽर्कयुक्तर्क्षवशाच्चराद्यः।
द्वारं च तद्वास्तुनि केन्द्रसंस्थैर्ज्ञेयं ग्रहैर्वीर्यसमन्वितैर्वा ॥ ७१ ॥
जीर्णं संस्कृतमर्कजे क्षितिसुते दग्धं नवं शीतगौ
काष्ठाढ्यं सुदृढं रवौ शशिसुते चानेकशिल्प्युद्भवम्।
रम्यं चित्रयुतं नवं च भृगुजे जीवे दृढं मन्दिरं
चक्रस्थैस्तु यथोपदेशरचनां सामन्तपूर्वां वदेत् ॥ ७२ ॥
मेषकुलीरतुलालिघटैः प्रागुत्तरतो गुरुसौम्यगृहेषु।
पश्चिमतश्च वृषेण निवासो दक्षिणभागकरौ मृगसिंहौ ॥ ७३ ॥
प्राच्यादिगृहे क्रियादयो द्वौ द्वौ कोणगताद्विमूर्त्तयः।
शय्यास्वपि वास्तुवद्वदेत् पादैः षट्त्रिनवान्त्यसंस्थितैः ॥ ७४ ॥
लग्नचन्द्रान्तरगतैर्ग्रहैः स्युरुपसूतिकाः।
बहिरन्तश्च चक्रार्द्धे दृश्यादृश्येऽन्यथा परे ॥ ७५ ॥

ये पाँचों श्लोक बृहज्जातक से लिये गये हैं। अतः प्राचीन संस्कृत टीकाओं के आधार पर ही इनकी व्याख्या की जाती है :—

(१) (i) चन्द्रमा से स्नेह कहना। स्निग्धता चिक्कणता को स्नेह कहते हैं। इसके अन्तर्गत घी, तेल आदि सभी आ जाते हैं। क्या जन्मकाल में चन्द्रमा पूण हो तो दिए में स्नेह पूर्ण था, यह कहना? यदि चन्द्रमा क्षीण हो तो दीप-पात्र में स्नेह कम था? सारावली में कहा है कि चन्द्रमा पूर्ण हो तो दिये में तेल पूरा भरा था, चन्द्रमा क्षीण हो तो तेल कम था। परन्तु इस अर्थ का भट्टोत्पल खंडन करते हैं। वे कहते हैं कि तब तो अमावास्या को जन्म हो तो अंधकार में ही सब का जन्म मानना पड़ेगा। इसलिये उचित अर्थ यह है कि यह देखिये कि चन्द्रमा राशि के आरंभ में व्यवस्थित है, या मध्य में या अन्त मे। राशि के प्रारम्भ में हो तो दीप-पात्र स्नेह से पूर्ण था, अन्त में चन्द्रमा हो तो दीप पात्र में थोड़ा ही स्नेह शेष था। मध्य में अनुपात से।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि दीपक मंगल (शुभ) होता है। इसलिए प्रकाश के लिए और शुभता के लिए––ये दो दीपक के प्रयोजन हैं। चन्द्रमा यदि अपनी चन्द्रमा की) होरा में हो तो घी आदि का दीपक कहना—गाय, भैंस, बकरी किसी भी जानवर के दूध से उत्पन्न घी होता है। यदि चन्द्रमा सूर्य की होरा में हो तो तिल, नारियल, सरसों, महुआ आदि बीजों से उत्पन्न तेल का दीपक था यह कहना। इस प्रकार स्नेह को दो भागों में इन्होंने विभाजित किया है। किस प्रकार का घी या किस प्रकार के तेल से दीपक प्रकाश दे रहा था यह राशि, अंश तथा चंद्रमा किससे युत या दृष्ट है, इनसे निश्चय करना। (इसके लिए देखिये जातक पारिजत का अध्याय १ तथा २ कि कौन सी राशि या कौन सा ग्रह किनका कारक है)।

भट्टोत्पल ने केवल यह कहा है कि चन्द्रमा राशि में कितना चल चुका है, इससे स्नेह के परिमाण का निश्चय करना। रुद्रभट्ट यह विशेष कहते हैं कि यदि नवांश, राशि की अपेक्षा विशेष बलवान् हो तो नवाँश में चन्द्रमा कितना चल चुका है, इससे निर्णय करना।

(ii) वराहमिहिर कहते हैं कि लग्न से दिये की बत्ती का निर्देश करना। यदि लग्न प्रारंभ ही हुआ हो तो बत्ती का किंचित् भाग ही जला था; यदि लग्न समाप्त हो रहा हो तो बत्ती प्राय: जल चुकी थी। मध्य में अनुपात से। भट्टोत्पल कहते हैं कि किसी किसी के मत से जैसा लग्न का वर्ण (सफेद, लाल आदि) उसी रंग की बत्ती थी–यह निर्देश करना और पुष्टि में मणित्थ का वचन उद्धृत करते हैं। रुद्रभट्ट अपनी व्याख्या में कहते हैं कि बत्ती का रंग लग्नस्थ ग्रह, लग्नेश, लग्न राशि या लग्न-नवांश में जो बली हो, उससे निश्चय करना। यदि कई समान बली हों तो कई रंग की––मिली-जुली बत्ती कहना।

(iii) सूर्य यदि चर राशि में हो तो दीपक चलायमान था; स्थिर राशि में हो

तो स्थिर था; द्विस्वभाव राशि में हो तो कदाचित् चलायमान, कदाचित् स्थिर । चलायमान क्या? जैसे कोई स्त्री हाथ में दिया लिये हो तो चलायमान । दिया स्थान विशेष में प्रतिष्ठित हो तो स्थिर ।

(iv) दीपक सूतिकागृह की किस दिशा में था ? सूतिका गृह को १२ भागों में विभाजित कीजिये । राशियों की दिशा जातक पारिजात अध्याय १ श्लोक १३ में कही गई हैं । सूर्याधिष्ठित राशि की जो दिशा हो उस दिशा में दीपक कहना । अथवा आठों पहरों में सूर्य भिन्न भिन्न दिशा में होता है । प्रातः पूर्व में, मध्याह्न में दक्षिण में, सायं पश्चिम में, मध्य रात्रि में उत्तर में, इस प्रकार दीपक की दिशा का निश्चय करे। यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिए कि दिन में दीपक का क्या प्रयोजन ? पहिले कह चुके हैं कि दीपक को शुभता के लिए भी सूतिकाग्रह में रखा जाता है ।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि सूर्य जिस राशि में हो उसके अनुसार सोने, चाँदी, काँसे, मिट्टी किसका दीपक बना था इसका भी औचित्यपूर्वक विचार करना ? औचित्य क्या ? जो उचित हो । यथा दरिद्र के घर में सोने का दिया अनौचित्य होगा ।

(v) सूतिकागृह में दरवाजा किस दिशा में था ? केन्द्र में जो ग्रह हो, उस ग्रह की जो दिशा हो (सूर्य की पूर्व, शुक्र की आग्नेय आदि, देखिए अध्याय २ श्लोक २३) उस ओर द्वार कहना । यदि कई ग्रह केन्द्र में हों तो जो बली ग्रह हो—उस बलवान् ग्रह की जो दिशा हो उस ओर द्वार कहना । यदि दो ग्रह बली हों तो दो दरवाजे, तीन ग्रह बली हों तो तीन दरवाजे, इत्यादि । यदि केन्द्र में कोई ग्रह न हो तो लग्न राशि—जिस दिशा की द्योतक हो, उस दिशा में द्वार होता है, यह वराहमिहिर ने भी स्वल्पजातक में कहा है । मणित्थ के मत से लग्न में जो द्वादशांश हो, उस द्वादशांश की दिशा में द्वार कहना ।। ७१ ।।

(२) इस श्लोक में सूतिकागृह का स्वरूप बतलाया गया है। रुद्रभट्ट कहते हैं कि गृह भावेश या गृह भाव में जो ग्रह हो उनमें जो बली हो उससे सूतिकागृह का निर्णय करना । किन्तु भट्टोत्पल कहते हैं कि जन्मकुंडली में जो ग्रह सबसे बली हो उससे यह निर्णय करना कि सूतिका गृह कैसा था । यदि शनि, ऐसा ग्रह हो तो जीर्ण (पुराना) मकान, जिसकी मरम्मत की गई हो, मंगल हो तो उस कमरे का एक भाग किंचित जला हुआ हो । चन्द्रमा हो तो नया; यवनेश्वर कहते हैं कि शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा हो तो, हाल ही में सफेदी (पोताई) किया हुआ । यदि सूर्य हो तो काष्ठ निर्मित किन्तु दृढ़ नहीं; बुध हो तो अनेक शिल्पों से युक्त; शुक्र बलवान हो तो रमणीक नया तथा चित्रकारी से युक्त; बृहस्पति हो तो काष्ठ का किन्तु दृढ़ (मजबूत) ।

जिस ग्रह से, उपर्युक्त निर्देशानुसार सूतिकागृह का लक्षण ऊपर बतलाया गया है—उस ग्रह के चारों ओर—केन्द्र पणफर आपोक्लिम आदि में जो ग्रह हों—उन ग्रहों के लक्षण युक्त (शनि से जीर्ण आदि जो ऊपर कहा गया है) अन्य गृह सूतिका—घर के आसपास, समीप या दूर होंगे—उनका लक्षण कहना। रुद्रभट्ट कहते हैं कि ग्रहों के दिशानुसार (सूर्य, पूर्व आदि) अन्य घर कहना। उसी ग्रह (जिससे सूतिकागृह का लक्षण कहा है) से अन्य ग्रह अत्यन्त समीप हो तो सूतिकागृह के पास, पणफर में हो तो कुछ दूर, आपोक्लिम में हो तो अधिक दूर। ग्रह यदि उच्च, वक्र, वर्गोत्तम, स्वराशि, स्वनवांश या स्वद्रेष्काण में हो तो अन्य घरों की संख्या को तिगुना, दुगुना कर घर की संख्या का निश्चय करना। (देखिये जातकपारिजात अध्याय ५ जहाँ कब तिगुना करना, कब दुगुना करना—इसका निर्देश किया गया है)। रुद्रभट्ट कहते हैं कि आसन्न भवन द्योतित करने वाले ग्रह लग्नेश के मित्र हैं। सम या शत्रु, इससे यह निश्चय करना कि पड़ोसी मित्र हैं, उदासीन या शत्रु तथा इन ग्रहों की जो जाति हो, उससे पड़ोसियों की जाति निश्चय करना। ग्रहों की जाति के लिए देखिए अध्याय २ श्लोक २६ इस प्रकार संकेत मात्र से प्राचीन आचार्य जो कह गये हैं—उसका अपनी बुद्धि से ऊहापोहकर विस्तृत फलादेश की पद्धति यहाँ समझाई गई है ॥ ७२ ॥

(३) सूतिकागृह का लक्षण पहले कह चुके हैं। अब सूतिका घर मकान किस दिशा में यह लग्नवश कहते हैं। मेष, कर्क, तुला, वृश्चिक, कुंभ पूर्व। मिथुन, कन्या धनु, मीन–उत्तर। बृष–पश्चिम। सिंह, मकर–दक्षिण। भट्टोत्पल कहते है कि इसी प्रकार नवाँश से विचार करना ॥ ७३ ॥

(४) अब सूतिकागृह के अन्दर किस दिशा में चारपाई थी, यह कहते हैं। मेष वृष–पूर्व मिथुन–आग्नेय। कर्क, सिंह—दक्षिण। कन्या–नैर्ऋत्य। तुला, वृश्चिक–पश्चिम। धनु–वायव्य। मकर, कुंभ–उत्तर। मीन–ईशान।

लग्न से षष्ठ, तृतीय, नवम, द्वादश जो राशियाँ हों, उनसे सूतिका की खाट के पाये समझना। तृतीय से सिरहाने की तरफ दाहिना पाया, द्वादश से सिरहाने की तरफ बाँया पाया। षष्ठ से पैरों की तरफ का दाहिना पाया, नवम से पैरों की तरफ का बाँया पाया। लग्न और द्वितीय से सिरहाने की ओर की पट्टी सप्तम, अष्टम से पैर के ओर की पट्टी चतुर्थ, पंचम से दाहिनी बाजू, दशम एकादश से बाँयीं बाजू। जहाँ द्वि-स्वभाव राशि पड़े वहाँ का भाग कुछ नत (झुका हुआ), जिस राशि में पापग्रह हो वह भाग दोष युक्त। किन्तु रुद्रभट्ट कहते हैं कि पापग्रह भी यदि अपनी, उच्च मूल त्रिकोण या मित्र क्षेत्री हो तो अशुभ फल नहीं करता। पापग्रह के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है। इसको सदैव स्मरण रखें, विस्मरण न करें। इस सिद्धान्त का उल्लेख

किया गया है सूतिका की शय्या के प्रसंग में । परन्तु जन्म-कुंडली विचार में इसका बहुत उपयोग है ।। ७४ ।।

(५) अब जहाँ प्रसव हुआ, वहाँ कितनी उपसूतिका थीं, यह कहते हैं। उपसूतिका क्या ? जिस स्त्री के बच्चा हुआ है, उसके समीप प्रसव के कमरे के अन्दर या बाहर स्त्रियाँ जो हों, वे उपसूतिका कहलाती हैं । लग्न से आरम्भ कर जिस राशि में चन्द्रमा हो—उस राशि तक, बीच में जितने ग्रह हों, उतनी उपसूतिका कहना। जितने ग्रह दृश्य चक्रार्ध में हों (किन्तु लग्न और चन्द्रमा के बीच में) उतनी उपसूतिका, सूतिकागृह में बाहर कहना; तथा जितने ग्रह अदृश्य चक्रार्ध में (किन्तु लग्न और चन्द्रमा के बीच में) हों उतनी उपसूतिका गृह के अन्दर कहना ।)

दृश्य चक्रार्द्ध क्या? लग्न के जितने अंश उदित हो चुके हैं, द्वादश, एकादश, दशम, नवम, अष्टम, सप्तम के जो अंश भोग्य हैं—यह दृश्य चक्रार्ध कहलाता है। लग्न के जितने भोग्य अश हैं, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम के भुक्त अश यह अदृश्यार्द्ध कहलाता है। पृथ्वी के ऊपर आकाश का जो भाग दिखलाई देता है वह दृश्य । पृथ्वी के नीचे आकाश का जो भाग दिखलाई नहीं देता वह अदृश्य ।

पुनः व्याख्याकार लिखते हैं कि जैसे भी ग्रह लग्न से प्रारम्भ कर चन्द्रमा तक बीच में हों उन ग्रहों के अनुसार स्त्रियों की जाति, रूप, वय आदि कहना । रुद्रभट्ट कहते हैं कि उच्च ग्रह के तिगुना कहना आदि जो परिपाटी है, उसका पालन करना । नीचादि ग्रह अनुपयोगी होता है ।। ७५ ।।

जातक का स्वरूप

लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्याद्वीर्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वा ।
चंद्रसमेतनवांशपवर्णः कादिविलग्नविभक्तभगात्रः ।। ७६ ।।

कन्दृक्श्रोत्रनसाकपोलहनवो वक्त्रं च होरादय-
स्ते कण्ठांसकबाहुपार्श्वहृदयक्रोडानि नाभिस्ततः ।
बस्तिः शिश्नगुदे ततश्च वृषणावूरू ततो जानुनी
जङ्घाङ्घ्रीत्युभयत्र वाममुदितैर्द्रेक्काणभागैस्त्रिधा ।।७७।।

तस्मिन्पापयुते व्रणं शुभयुते दृष्टे च लक्ष्मादिशेत्
स्वर्क्षांशे स्थिरसंयुते च सहजः स्यादन्यथाऽऽगन्तुकः ।।
मन्देऽश्मानिलजोऽग्निशस्त्रविषजो भौमे बुधे भूभवः
सूर्ये काष्ठचतुष्पदेन हिमगौ श्रृङ्ग्यब्जजोऽन्यैः शुभम् ।।७८।।

समनुपतिता यस्मिन् भागे त्रयः सबुधा ग्रहा
भवति नियमात्तस्यावाप्तिः शुभेष्वशुभेषु वा।
व्रणकृदशुभः षष्ठे देहे तरोर्भसमाश्रिते
तिलकवशकृद्दृष्टः सौम्यैर्युतश्च स लक्ष्मवान् ॥७९॥

अब इन चार श्लोकों में, जातक के स्वरूप (वर्ण, शरीर के अवयव, व्रण चिह्न आदि) के विषय में फल निर्देश प्रकार कहते हैं। ये चारों ही श्लोक बृहज्जातक से लिए गए हैं।

(१) (i) लग्न स्फुट जिस नवांश में पड़े उस नवांश स्वामी के सदृश्य शरीर होता है या जन्मकुंडली में विशेष बलवान (केन्द्रादि स्थिति के कारण) ग्रह हो, उसके सदृश शरीर हो।

(ii) चन्द्रमा जिस नवाँश में हो, उस नवाँश पति के सदृश शरीर का (वर्ण गौर स्वामी आदि होता है। भट्टोत्पल कहते हैं कि किसी किसी के मतानुसार चन्द्रमा जिस राशि में हो उस राशि के समान वर्ण होता है।
ग्रहों का स्वरूप जातक पारिजात अध्याय २ और राशियों का स्वरूप अध्याय १ में बतलाया जा चुका है।

भट्टोत्पल पुनः कहते हैं कि जातक का स्वरूप, देश, जाति, कुल आदि को ध्यान में रखकर कहना चाहिए। अंग्रेज के बच्चे गौर ही होंगे, हबशी के काले इत्यादि को ध्यान में न रखेंगे तो फलादेश ठीक न बैठेगा।

(iii) अब लग्न से बारहवें भाव तक प्रत्येक भाव से शरीर के किस अवयव का विचार करना यह कहते हैं। पहले अध्याय १ श्लोक ८ में मेष से मीन तक किस राशि से शरीर के किस भाग का विचार करना यह कह चुके हैं। उन्हीं १२ अंगों का विचार क्रमशः लग्न से बारहवें भाव तक किया जाता है। लग्न से सिर, द्वितीय से मुख, तृतीय से सीना, चतुर्थ से हृदय, पंचम से पेट, षष्ठ से कटि, सप्तम से वस्ति, अष्टम से जननेन्द्रिय तथा गुदा, नवम से जांघें, दशम से घुटने, एकादश से पिंडलियां द्वादश से पैर। उनकी विशेष व्याख्या के लिए देखिए अध्याय १ श्लोक ८।

राशियों की दीर्घता और ह्रस्वता अध्याय १ श्लोक ५६ में कह चुके हैं। ऊपर १२ भावों में-किस भाव से शरीर के किस अवयव का विचार करना, यह बता चुके हैं। पहले यह देखिए कि शरीर के किस अंग का विचार करना है। वह अंग जन्मकुण्डली के किस भाव में पड़ता है। उस भाव में कौन सी राशि पड़ती है। वह राशि दीर्घ है या ह्रस्व। सिद्धान्त यह है कि (i) जिस भाव में दीर्घ राशि पड़े, राशि का स्वामी दीर्घ राशि में बैठा हो वह अंग दीर्घ होता

है। (ii) जिस भाव में ह्रस्व स्वामी पड़े, उसका स्वामी ह्रस्व राशि में बैठा हो, वह अवयव ह्रस्व होता है ॥ ७६ ॥

(२) प्रत्येक राशि में १०-१० अंश के ३ विभाग तीन द्रेष्काण कहलाते हैं। देखिए अध्याय १२ श्लोक ३०। इस श्लोक में लग्न का कौन सा द्रेष्काण उदित है--प्रथम द्वितीय या तृतीय--इस भेद से १२ भावों का शरीर के १२ भावों में न्यास किया जाता है। शरीर के जिस अङ्ग का न्यास, जिस भाव में पड़े, उसमें शुभ ग्रह पड़े तो क्या फल और पापग्रह पड़े तो क्या फल यह आगे श्लोक ७८ में कहेंगे। इस श्लोक में द्रेष्काणानुसार, किस भाव से शरीर का कौन सा अङ्ग समझना, केवल यह कहा गया है।

प्रत्येक राशि में तीन द्रेष्काण होते हैं, इसलिए पहिले शरीर को तीन भावों में विभाजित किया (क) सिर से मुख तक (ख) कंठ से नाभि तक (ग) बस्ति से पैर तक।

१२ राशियों में १२×३-३६ द्रेष्काण होते हैं। इसलिए ऊपर जो (क) (ख) (ग) यह तीन भाग किए हैं, उनको-प्रत्येक को १२ भागों में विभाजित कर शरीर के अवयवों के ३६ उपविभाग किए। यहां भी यह परिपाटी है कि उदित भाव से बाँया अङ्ग और अनुदित भाग से दाहिना अङ्ग लेते हैं।

(क) सिर से मुख तक :

(i) लग्न का उदित भाग--सिर का वाम भाग; लग्न का अनुदित भाग सिर का दक्षिण भाग (ii) द्वितीय भाव--दाहिना नेत्र (iii) तृतीय भाव--दाहिना कान (iv) चतुर्थ भाव--नासिका का दाहिना भाग (v) पंचम भाव--दक्षिण के कपोल (vi) षष्ठ भाव--हनु (ठोड़ी) का दक्षिण भाग (vii) सप्तम का उदित भाग--मुख का वाम भाग,अनुदित भाग, दक्षिण भाग (viii) अष्टम भाव--हनु का वाम भाग, (ix) नवम भाव--वाम कपोल (x) दशम भाव--नासिका का वाम भाग (xi) एकादश भाव--बाँया कान (xii) द्वादश भाव--वाम नेत्र। यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण उदित हो तो बारह भावों का उपर्युक्त प्रकार से शरीर में न्यास करना।

(ख) कंठ से नाभि तक

(i) लग्न--कंठ (गला), उदित भाग से बाँया हिस्सा: अनुदित भाग से गले का दाहिना हिस्सा। (ii) द्वितीय भाव--दाहिना कंधा। (iii) तृतीय भाव--दाहिना बाहु (iv) चतुर्थ भाव--दाहिना पार्श्व (आगे पेट होता है, पीछे पीठ और दोनों ओर के बगल के हिस्से को पार्श्व कहते हैं)। (v) पंचम भाव--हृदय का दक्षिण

भाग (vi) षष्ठ भाव–उदर का दक्षिण भाग (vii) सप्तम–नाभि (उदित भाग नाभि का वाम भाग) अनुदित भाग नाभि का दक्षिण भाग। (viii) अष्टमभाग –उदर का वाम भाग। (ix) नवम भाव–हृदय का वाम भाग (x) वाया पार्श्व (xi) वाम बाहु (xii) वाँया कंधा।

यदि लग्न में द्वितीय द्रेष्काण उदित हो तो बारहों भावों का उपर्युक्त प्रकार से शरीर में न्यास करना।

(ग) बस्ति से पैर तक।

(i) लग्न–वस्ति इसका अर्थ पहले समझाया जा चुका है। उदितभाग वस्ती का बांया हिस्सा, अनुदित भाग दाहिना हिस्सा (ii) द्वितीय भाव–शिश्न और गुदा इनका दाहिना भाग (iii) तृतीय भाव–दक्षिण वृषण (अंडकोश) (iv) चतुर्थभाव —दक्षिण ऊरु (जाँघ) (v) पंचम भाव–दक्षिण घुटना (vi) षष्ठ भाव–दाहिनी पिंडली (vii) सप्तम भाव–उदित भाग–बाँया पैर (चरण), अनुदित भाग–दाहिना चरण (viii) अष्टम भाव–बांयी पिन्डली (ix) नवम भाव–वाम घुटना (x) दशम भाव–वाम ऊरु (xi) एकादश भाव–वाम वृषण (द्वादश भाव–शिश्न और गुदा–इनका बाँया भाग।

यदि लग्न में तृतीय द्रेष्काण उदित हो तो बारहों भावों का उपर्युक्त प्रकार से शरीर में न्यास करना।

रुद्रभट्ट इस श्लोक की व्याख्या में कुछ विशेष लिखते हैं। पाठकों को उससे परिचय कराया जाता है।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि लग्न में प्रथम द्रेष्काण उदित हो तो उपर्युक्त (क) के अनुसार, द्वितीय द्रेष्काण उदित हो तो उपर्युक्त (ख) के अनुसार, यदि तृतीय द्रेष्काण उदित हो तो (ग) के अनुसार अंग न्यास करना। यह व्याख्या करने के बाद पुनः कहते हैं कि अन्यमतानुसार—

(i) लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो (क) प्रथम द्रेष्काण (ख) द्वितीय द्रेष्काण (ग) तृतीय द्रेष्काण।

(ii) लग्न में यदि द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न का मध्य द्रेष्काण (क) लग्न का तृतीय द्रेष्काण (ख), तथा लग्न का प्रथम द्रेष्काण (ग)

(iii) लग्न में यदि तृतीय द्रेष्काण हो तो तृतीय द्रेष्काण (क) प्रथम द्रेष्काण (ख) तथा द्वितीय द्रेष्काण (ग)।

रुद्रभट्ट इसी मत के पोषक हैं और कहते हैं कि शीर्षोदय, पृष्ठोदय, उभयोदय तथा ऊर्ध्वमुख, अधोमुख, तिर्यङ्मुख आदि राशियों के भेद पहिले कह गए हैं। इस लिए लग्न बलवान हो तो (शीर्षोदय आदि भेद से) स्थान कल्पना करना, यदि द्रेष्काण स्वामी बलवान हो तो द्रेष्काणानुसार स्थान शरीर का भाग जो इस श्लोक में समझाया गया है निर्देश करना और यदि सूर्य बलवान् हो तो ऊर्ध्वमुख आदि भेद से यह सम्प्रदाय है ॥ ७७ ॥

(३) ऊपर जो द्रेष्काण भेद से शरीर के विभिन्न अवयवों में राशि न्यास किया, उसका प्रयोजन क्या ? वह प्रयोजन कहते हैं।

जो राशियों का न्यास शरीर में श्लोक ७७ में कहा गया है, उसके अनुसार जिस राशि में पापग्रह हो वह राशि शरीर के जिस भाग में हो शरीर के उस भाग में व्रण होता है। यदि पापग्रह पर शुभग्रह की दृष्टि हो, या पापग्रह शुभग्रह से युत हो तो व्रण नहीं होता। लहसन, मस्सा आदि होता है। यदि केवल शुभग्रह हो तो लहसन (लक्ष्म) करता है।

यदि व्रणादिकारक ग्रहस्वराशि स्वनवाँश में हो या स्थिर राशि या स्थिर नवाँश में हो तो व्रण आदि स्वयं ही या लक्ष्म आदि जन्म से ही शरीर में होते हैं। अन्यथा आगन्तुक बाहर से आए हुये, चोट प्रहार आदि लगने से होते हैं। कब? जब उस ग्रह की दशा या अन्तर्दशा हो। ५ ग्रह पाप ग्रह हो सकते हैं या होते हैं। शनि, मंगल, सूर्य पापयुत बुध, क्षीण चन्द्रमा। यदि व्रण कारक शनि हो तो पत्थर की चोट से या वात व्याधि से यदि मंगल हो अग्नि, शस्त्र या विष से, बुध हो तो ऊपर से भूमि पर गिरे, या मिट्टी का ढेला कोई मारे, सूर्य हो तो काष्ठ प्रहार से या चतुष्पद (चौपाया गाय भैंस आदि) से, क्षीण चन्द्रमा हो तो सींग वाले जानवर से या जल में उत्पन्न जानवर से घाव, चोट, चिह्न आदि होते हैं।

बृहस्पति शुक्र चन्द्रमा यदि क्षीण न हो तथा बुध यदि पाप युत न हो तो व्रण नहीं करते हैं।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि शुभग्रह बृहस्पति जहाँ बैठे हों, तदनुसार उस अंश में आभूषण आदि का योग करते हैं। हमारे विचार से केवल व्रण का ही नहीं, अपितु रोग का विचार भी इन श्लोकों में दिए गए सिद्धान्तानुसार करना चाहिए ॥ ७८ ॥

४ यह जातक पारिजात का श्लोक ७९ बृहज्जातक के अध्याय ५ का अंतिम श्लोक है। इसमें कुछ निर्देश किये गए हैं।

(i) शरीर के जिस अवयव सम्बन्धी राशिमें (ऊपर के श्लोकों में इनका विस्तृत विवेचन किया जा चुका है) बुध तीन ग्रहों सहित हो (अर्थात् बुध को मिलाकर

चार ग्रह) उसकी प्राप्ति अवश्य होती है। प्राप्ति क्या ? तीन शुभ ग्रहों के साथ बुध (इस परिस्थिति में बुध भी शुभ होगा) हो तो स्वर्ण, रत्न आदि के आभूषण की प्राप्ति (हमारे विचार से तत् तत् भाव सम्बन्धी शुभोपलब्धि) यदि बुध अन्य तीन पापग्रहों के साथ हो तो स्वयं भी पापग्रह हो जावेगा और चार पापग्रहों की युति जिस राशि दृष्काण में होगी तद्बोधक अवयव में व्रण होगा (हमारे विचार से तद्भाव सम्बन्धी सुख की हानि और कष्ट की वृद्धि)। यह फल प्राप्ति कब होगी ? इन चारों में जो एकत्र युति कर रहे हैं जो बलवान हो उसकी दशा में।

रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं कि चार ग्रह (बुध को मिलाकर) कहें, उनमें शुभ, पाप दोनों प्रकार के हों (२ शुभ २ पाप या+एक शुभ ३ पाप या ३ शुभ+एक पाप) तो अवश्य ही (क्योंकि वराहमिहिर ने मूल में ज़ोर देकर कहा है यह नियम है) फल प्राप्ति होती है। इन चारों में जो बलवान हो वह पाप हो तो व्रण, शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के ग्रह वली हों तो लक्ष्म (चिह्न लहसन आदि)। रुद्रभट्ट पुनः कहते हैं कि मूल में पतित शब्द आया है, इस कारण बुध तीन ताराग्रह के साथ हो तो निश्चय जातक पतित होता है। अन्य ग्रह सूर्य चंद्र के साथ हों तो रोग आदि से पतित हो।

अब तक अन्य योग कहते हैं। यदि लग्न से छठे घर में पापग्रह हों तो षष्ठ स्थानस्थित राशि जिस अंग का द्योतक है (यथा मेष से सिर ··मीन से पैर। देखिये जातक पारिजात अध्याय श्लोक ८) उस अंग में व्रण होता है। यदि यह षष्ठ–स्थान स्थित पापग्रह सौम्य ग्रह दृष्ट हो तो तिलक (चिह्न) या रोम होता है अर्थात् व्रण नहीं होता।

यदि इस लग्न में षष्ठ स्थान में पापग्रह न हो प्रत्युत शुभग्रह हों तो लहसन होता है। यदि शुभ और पाप दोनों की युति हो तो सपिप्लु लक्ष्मवान् अर्थात लहसन चिह्न भी, रोम भी, मस्सा आदि ॥ ७९ ॥

वियोनिजन्मविज्ञानं निषेकोदयजं फलम्।
जन्मकालपरिज्ञानं यत्तदाचार्यभाषितम् ॥ ८० ॥
इति नवग्रहकृपया वैद्यनाथविरचिते जातकपारिजाते
आधानजन्माध्यायस्तृतीयः। ३।

इस अध्याय में वियोनि जन्म विज्ञान, गर्भाधान लग्न से फलादेश, जन्म–कालीन लग्न से परिज्ञान जो आचार्य (वराहमिहिर ने बृहज्जातक) में कहा है—वह कहा गया है ॥ ८० ॥

तृतीय वियोनिजन्माध्याय की व्याख्या
समाप्त

अध्याय ४

अरिष्टाध्याय

अरिष्ट कहते हैं—कष्ट को, विशेषकर शरीर कष्ट को। अरिष्ट के अन्तर्गत मृत्यु भी आ जाती है। सर्वप्रथम कहते हैं कि १२ वर्ष तक (जब तक नवजात शिशु १२ वर्ष का न हो जावे) आयु का निश्चय करना संभव नहीं है।

आद्वादशाब्दान्तरयोनिजन्मनामायुष्कला निश्चयितुं न शक्यते।
मात्रा च पित्रा कृतपापकर्मणा बालग्रहैर्नाशमुपैति बालकः ॥१॥
आद्ये चतुष्के जननीकृताघैर्मध्ये तु पित्रार्जितपापसङ्घैः
बालस्तदन्त्यासु चतुःसमासु स्वकीयदोषैः समुपैति नाशम् ॥२॥

जब तक बच्चा १२ वर्ष का न हो जावे उसकी आयु निश्चित नहीं की जा सकती। माता और पिता के कर्मों से तथा बालग्रहों के कारण बच्चा नष्ट हो जाता है। जन्म से ४ वर्ष तक माता के पापों से, ४ से ८ वर्ष तक पिता के पापों से और ८ से १२ वर्ष तक की आयु तक बालक अपने दोषों से 'नाश को प्राप्त होता है। मंत्रेश्वर ने भी यही कहा है। देखिए फलदीपिका पृष्ठ २५०, २५१। मंत्रेश्वर यह भी कहते हैं कि दोष शांति के लिये १२ वर्ष तक, प्रतिवर्ष जन्म दिन पर जन्म नक्षत्र पड़े तब शान्ति-जप, होम आदि करना चाहिये और यथासंभव चिकित्सा आदि से बच्चे के जीवन की रक्षा करनी चाहिये। सर्वार्थ-चिन्तामणि में भी लिखा है :-

आद्वादशाब्दाज्जन्तूनामायुर्ज्ञातु न शक्यते।
जपहोमचिकित्साद्यैर्बालरक्षां तु कारयेत् ॥
पित्रोर्दोषैः मृताः केचित् केचिद् बालग्रहैरपि।
अपरेऽरिष्टयोगाच्च त्रिविधा बालमृत्यवः ॥

अब बालारिष्ट कहते हैं ॥ १-२ ॥

अरिष्टों के वयोनुसार नाम

वय और आयु-यह दो शब्द इस अध्याय में वारंवार आयेंगे। अतः इनका सम्यक् अर्थ समझ लेनना चाहिए। जब जितनी उम्र हो-जन्म से जितने वर्ष बीत

गये हों, उसे वय कहते हैं और जन्म से लेकर मृत्यु तक जितने वर्ष हों, उसे आयु कहते हैं। प्रायः लोग भाषा में आपकी क्या अवस्था है ? कहते हैं। परंतु अवस्था का वय के अर्थ में प्रयोग असम्मत है। इसी प्रकार, इस समय आपकी उम्र क्या है, इसके लिये आप की आयु क्या है, यह कहना अशुद्ध है।

अष्टौ बालारिष्टमादौ नराणां योगारिष्टं प्राहुराविंशतिः स्यात् ॥
अल्पं चाद्वात्रिंशतान्मध्यमायुरासप्तत्याः पूर्णमायुः शतान्तम् ॥ ३॥

जन्म से ८ वर्ष तक बालारिष्ट कहलाता है; ८ से २० वर्ष तक योगारिष्ट। जन्म से ३२ वर्ष तक अल्पायु, ३२ से ७० वर्ष तक मध्यायु, तथा ७० से १०० तक पूर्णायु। कतिपय आचार्यों ने ३२-६४-९६ यह आयु के तीन खण्ड किये हैं। कुछ अन्य ने ३६-७२-१०८ तथा कुछ अन्य आचार्यों ने ४०-८०-१२० जैमिनीयपद्यामृत के पृ० ६०-६४ अवलोकन करें। यह स्वर्गीय महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद जी रचित, जैमिनीय सूत्रों पर गद्यपद्यमयी टीका है। बहुत सुन्दर ग्रंथ है। निर्णय सागर से छपा है। विद्वान अवलोकन करें ॥ ३ ॥

विलग्नयातस्त्वपि देवमन्त्री विनाशरिःफारिगते शशाङ्के।
विलोकिते पापवियच्चरेण विभानुना मृत्युमुपैति बालः ॥ ४ ॥

जन्म लग्न से छठे, आठवें या बारहवें यदि चन्द्रमा हो और सूर्य के अतिरिक्त पापग्रह से देखा जाता हो (सूर्य दृष्ट हो तो पापदृष्ट नहीं मानना) तो चाहे बृहस्पति लग्न में भी हो, तो भी बालक मृत्यु को प्राप्त होता है। शास्त्रों में लग्नस्थ बृहस्पति की बहुत प्रशंसा की गई है। देखिये सारावली अध्याय १२ श्लोक १। बृहस्पति का ही नाम जीव है। किन्तु दुःस्थित चन्द्र यदि पाप दृष्ट हो तो लग्नस्थ बृहस्पति भी आयु रक्षा में असमर्थ होता है यह ग्रंथकार का अभिप्राय है। कश्यप कहते हैं :—

षष्ठाष्टरिःफगश्चंद्रः क्रूरैश्च सह वीक्षितः।
जातस्य मृत्युदः सद्यस्त्वष्टवर्षैः शुभेक्षितः ॥

अब अन्य योग कहते हैं ॥ ४ ॥

गण्डान्ततारासहिते मृगाङ्के पापेक्षिते पापसमन्विते वा।
बालो लयं याति समृत्युभागे चन्द्रे तथा पापनिरीक्षिते वा ।।५।।

(i) यदि चन्द्रमा गण्डान्त नक्षत्र में हो, पापयुत या पापदृष्ट हो (ii) अथवा चन्द्रमा मृत्यु भाग में हो और पापदृष्ट हो तो बालक मृत्यु को प्राप्त होता है। गण्डान्त अध्याय १ श्लोक २२ में बताया गया है। किस राशि में किस अंश में मृत्यु भाग होता है यह अध्याय १ श्लोक ५७ में निर्दिष्ट है। मन्त्रेश्वर के विचार के लिए फलदीपिका पृष्ठ २५४–२५५ का अवलोकन करें। सारावली अध्याय ३ श्लोक २१ भी गण्डान्त में जन्म के फल के लिए द्रष्टव्य है। ५।

पिता आदि का अरिष्ट विचार

ताताम्बिकासोदरमातुलाश्च मातामही मातृपिता च बालः।
सूर्यादिकैः पञ्चमधर्मयातैः क्रूरर्क्षगैराशु हताः क्रमेण ।। ६ ।।
रसातलस्थौ यदि भानुचंद्रौ शनिः स्मरस्थो मरणाय मातुः।
यदा यदा क्रूरखगो विलग्नादरातिगः सोदरनाशहेतुः ।। ७ ।।
क्रूरेक्षितौ चन्द्रविलग्नराशी सौम्यग्रहैर्वीक्षणयोगहीनौ।
केन्द्रच्युतो यद्यमरेशमन्त्री जातस्य माता समुपैति नाशम् ।। ८ ।।

(i) यदि लग्न से पांचवें या नवें घर में पापग्रह की राशि हो और पापग्रह की राशि में सूर्य हो तो पिता की मृत्यु, चन्द्रमा हो तो माता की, मंगल हो तो भाई की, बुध हो तो मामा की, बृहस्पति हो तो नानी की, शुक्र हो तो नाना की, शनि हो तो स्वयं बालक की मृत्यु होती है।

वृद्धगर्गजातक में इसी प्रकार का उल्लेख है, परन्तु कुछ भिन्नता है।

ताताम्बिकामातुलसोदराश्च
मातामही मातृपितुश्च सूनुम्।
सूर्यादिखेटाः खलु पंचमस्था
निघ्नन्ति सर्वे क्रमशः प्रसूतौ ।।

पंचम और नवम स्थान त्रिकोण हैं; शुभ स्थान हैं। जातक पारिजात के अनुसार पापग्रह को राशि मात्र में स्थित होने से सूर्यादि पिता आदि का नाश

कर देते हैं; वृद्धगर्गजातक में पापग्रह की राशि में स्थित होना भी नहीं कहा। पंचम में कोई भी ग्रह हो, किसी न किसी सम्बन्धी को मारता है। इन योगों में कोई तर्क नहीं है; अनुभव सिद्ध भी नहीं है। इस कारण हमारी इनमें आस्था नहीं है। ६।

(ii) यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनों लग्न से चतुर्थ में हों और लग्न से सप्तम शनि हो तो माता का मरण होता है। जब भी पापग्रह (मूल में क्रूर खग कहा है) लग्न से छठे स्थान में हो तो सोदर (भाई, बहन) के नाश का हेतु होता है। मूल में प्रथम पंक्ति में शनि का उल्लेख किया और द्वितीय पंक्ति में क्रूर खग का। इस कारण शनि की छठे स्थान में स्थिति होने से तर्क ठीक होगा क्योंकि छठे स्थान में बैठकर तृतीय को पूर्ण दृष्टि से देखेगा। अन्य क्रूर ग्रह षष्ठ स्थान में स्थित होने से तृतीय को पूर्ण दृष्टि से नहीं देखेगा। यदि तृतीय में पापग्रह (मंगल) हो और छठे घर में शनि तो प्रबल भ्रातृ नाशक योग बनेगा। वृद्धगर्ग जातक में कहा है।

लग्नाच्चतुर्थगः पापो यदि स्याद् बलवत्तरः।
तदा भ्रातृवधं कुर्यात् केन्द्रे ह्यपरो यदि(?)॥

भावकुतूहल में लिखा है:

यदा पापखेचारिणो जन्मकाले धरानन्दनाक्रान्तभावात्सहोत्थे।
तदैवाशुनाशं सहोत्थस्य धीरा मणीत्थादयः प्राहुराचार्यमुख्याः।

अब मातृ मरण का अन्य योग कहते हैं॥ ७॥

यदि लग्न और चन्द्रमा क्रूरग्रह दृष्ट हो और लग्न तथा चन्द्र न शुभग्रह से युत हों, न शुभग्रह से दृष्ट हों तथा बृहस्पति केन्द्र में न हो तो माता का नाश होता है। वृद्ध गर्गजातक में लिखा है:—

चन्द्रमा यदि पापानां त्रितयेन प्रदृश्यते।
मातृनाशो भवेत्तस्य शुभदृष्टे शुभं वदेत्॥ ८॥

अन्य अरिष्ट योग

अब माता तथा बच्चे के लिए अन्य अरिष्ट योग कहते हैं।

सभानुजे शीतकरे विलग्नाद् दिवाकरे रिःफगृहोपयाते।
धरासुते बन्धुगते तदानीं विपद्यते तज्जननी सगर्भा। ९॥
विलग्नचन्द्रौ शुभदृक्विहीनावशोभनव्योमचरान्तरस्थौ।
विनाशमेति प्रमदा सगर्भा वदन्ति सर्वे युगपत् पृथग्वा॥ १०॥

षष्ठावसानाष्टमभावगेषु क्रूरेषु सौम्यग्रहवर्जितेषु ।
पापान्तरस्थे भृगुजे गुरौ वा नारी सपुत्रा म्रियते तु सद्यः ॥११॥
लग्नास्तयातौ यदि पापखेचरौ शुभैरयुक्तौ शुभदृष्टिवर्जितौ ।
शस्त्रेण मृत्युं समुपैति गर्भिणी मासाधिपो नष्टकरो यदा वदेत् ॥१२॥

(i) यदि चन्द्रमा शनि के साथ हो, सूर्य लग्न से द्वादश हो, मंगल चतुर्थ में हो तो माता गर्भ के साथ विपत्ति को प्राप्त होती है ॥ ९ ॥

(ii) यदि लग्न और चन्द्रमा (एक साथ या पृथक् पृथक्) पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो और यह दोनों पापग्रहों के मध्य में हों तो स्त्री गर्भ सहित विनाश को प्राप्त होती है । यदि लग्न स्पष्ट वाले अंश के दोनों ओर पापग्रह हों, या लग्न से द्वितीय तथा द्वादश में पापग्रह हो तो लग्न पापग्रहों के मध्य में कहा जावेगा किन्तु लग्न स्पष्ट और पापग्रह के बीच में कोई शुभग्रह आ जाए तो पापमध्यता का निवारण हो जाएगा । चन्द्रमा के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए ॥ १० ॥

(iii) यदि लग्न से छठे, आठवें तथा बारहवें घरों में क्रूर ग्रह हों और इन स्थानों में शुभग्रह न हों तथा बृहस्पति या शुक्र पापग्रहों के मध्य में हो तो बच्चे सहित स्त्री माता, पुत्र (दोनों) तुरन्त मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

(iv) यदि लग्न और सप्तम दोनों में पापग्रह हों (एक या अधिक लग्न में एक या अधिक सप्तम में) और ये लग्न तथा सप्तम में स्थित पापग्रह शुभग्रह से युत या दृष्ट न हों और मासाधिप निर्बल हो तो स्त्री शस्त्र से मृत्यु को प्राप्त होती है । मासाधिप क्या ? गर्भ से लेकर दसवें मास तक (प्रसव के समय तक) प्रत्येक मास का एक ग्रह अधिष्ठाता होता है, यह आगे श्लोक में बताया गया है । बृहज्जातक का अध्याय ४ निषेकाध्याय है। उसमें श्लोक ६ निम्नलिखित है :—

उदयास्तगयोः कुजार्कयोर्निधनं शस्त्रकृतं तदा वदेत् ।
मासाधिपतौ निपीडिते तत्काले स्रवणं समादिशेत् ॥

इस कारण बहुत से विद्वान जातक पारिजात के इस योग को निषेक लग्न में लागू करते हैं । बृहज्जातक का चौथा अध्याय निषेकाध्याय है तथा छठा अध्याय सद्योमरणाध्याय । जातक पारिजात के इस चतुर्थ अध्याय में बहुत से योग बृहज्जातकोक्त योगों के आधार पर हैं । अतः जिज्ञासु पाठक बालारिष्ट के लिए बृहज्जातक के इन दोनों अध्यायों का अवश्य अवलोकन करें । बृहज्जातक के श्लोकों का तथा बृहज्जातक की भट्टोत्पली टीका में भगवान गार्गि, बादरायण,

यवनेश्वर आदि आचार्यों के प्राचीन जो वचन उदधृत किए हैं, उनकी तुलनात्मक समालोचना यहाँ ग्रंथ विस्तार भय से नहीं की जा रही है । सारावली के आधानाध्याय तथा अरिष्टाध्याय में भी अनेक योग दिए गए हैं वे द्रष्टव्य हैं। हमने अपनी पुस्तक त्रिफला (ज्योतिष) पृष्ठ १५९-१७६ तथा पृष्ठ २००-२०७ में अनेक योगों की विवेचना की है ।

सिद्धान्ततः निषेक के समय ग्रहस्थिति से जो ग्रह निष्कर्ष निकाला जाता है, वह जन्मकुंडली में भी लागू किया जाता है। और जो निष्कर्ष निषेक कुंडली या जन्म कुंडली से निकाले जाते हैं, वे प्रश्न कुंडली से भी । निषेक गर्भाधान को कहते हैं । गर्भाधान का समय प्रायः दम्पति को याद नहीं रहता तब निषेक लग्न के योगों का प्रयोजन क्या? प्रथम प्रयोजन तो यह कि जो शास्त्रीय विधि से सुमुहूर्त में निषेक करें, वे ज्योतिष के इन योगों से लाभ उठायें कि दूषित या अप्रशस्त लग्न में निषेक न किया जाये । द्वितीय प्रयोजन यह कि निषेक लग्न के लिए जो शुभ या अशुभ ग्रह स्थिति बतलाई गई है, उसे जन्म लग्न तथा प्रश्न लग्न पर भी लागू करना ॥ १२ ॥

जातक की माता के मरण योग

चन्द्राच्चतुर्थोपगतैरसद्भिर्वा नस्थितैः शोभनदृष्टिमुक्तैः ।
व्यापारगैर्वा यदि वासरेशाज्जातस्य माता निधनं प्रयाति ॥१३॥
शुक्राद्रवौ विक्रमगे बलाढ्ये मन्देक्षिते मन्दसमन्विते वा ।
क्षीणे शशाङ्के यदि वा सपापे माता सपुत्रा म्रियतेऽचिरेण ॥१४॥
लग्नादिने वाऽष्टमगे धराजे पापेक्षिते सौम्यदृशा विहीने ।
ताराधिपे वृद्धिकलाविहीने माता कृतान्तस्य पदं समेति ॥ १५ ॥
शुक्रात् कुजेऽहनि तपःसुतराशियाते
चन्द्रात्त्रिकोणगृहगे रविजे रजन्याम् ।
पापेक्षिते च शुभयोगदृशा विहीने
नाशं समेति जननी विबले शशाङ्के ॥ १६ ॥

(१) (i) चन्द्रमा से चतुर्थ या दशम में पापग्रह हो और उन पर शुभग्रह या शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो जातक के माता की मृत्यु होती है ।

(ii) यदि सूर्य से दशम में पापग्रह हों और उन्हें शुभग्रह न देखते हों, तो भी यही फल ॥ १३ ॥

(२) (i) शुक्र से सूर्य से तृतीय हो, सूर्य बलवान् हो और शनि के साथ हो या शनि से दृष्ट हो तो माता और बच्चे की शीघ्र मृत्यु होती है।

(ii) शुक्र से तृतीय क्षीण चन्द्रमा हो, या पापयुक्त चन्द्रमा शुक्र से तृतीय हो तो यही फल ॥ १४ ॥

(३) लग्न से अष्टम सूर्य या मंगल हो और इस (सूर्य या मंगल) पर पाप-ग्रह की दृष्टि हो तथा शुभग्रह की दृष्टि न हो और चन्द्रमा क्षीण हो तो माता यमराज के यहां जाती है ॥ १५ ॥

(४) (i) यदि दिन में जन्म हो, शुक्र से पांचवें या नवें मंगल हो, मंगल पाप दृष्ट हो, शुभ दृष्ट न हो, चंद्रमा निर्बल हो तो माता का नाश हो।

(ii) यदि रात्रि में जन्म हो, चन्द्रमा से पांचवें या नवें शनि हो, पापदृष्ट हो, शुभदृष्ट न हो तथा चन्द्रमा निर्बल हो तो माता का नाश हो।

इस अरिष्टाध्याय में कहीं कहीं लिखा है कि माता की शीघ्र मृत्यु हो और कहीं केवल यह लिखा है कि माता की मृत्यु हो। माता की मृत्यु हो इससे यही तात्पर्य है कि माता दीर्घजीवनी न हो, मातृ सुख अल्प हो। वैसे, कभी न कभी तो हरेक की माँ मरती ही है ॥ १६ ॥

गर्भ के महीनों के अधिपग्रह

कललघनाङ्कुरास्थिचर्माङ्गजचेतनताः
सितकुजजीवरविचन्द्रार्किबुधाः परतः।
उदयपचन्द्रसूर्यनाथाः क्रमशो गदिता
वदन्ति शुभाशुभं च मासाधिपतेः सदृशम् ॥ १७ ॥

गर्भ का समय दश मास माना गया है। प्रायः २८ दिन के बाद स्त्री रजस्वला होती है। इसी को मासिक धर्म कहते हैं। २८×१०=२८० दिन बाद या यह कहिए दस मास बाद बच्चे का जन्म होता है। प्रत्येक मास का अधिप कौन सा ग्रह होता है यह कहते हैं (१) प्रथम मास में शुक्र और रज का सम्मिश्रण तरल रूप में रहता है। इसे कलल कहा—मासाधिप शुक्र (२) द्वितीय मास में यह तरल स्थिति घनीभूत हो जाती है इसे घन कहा—मासाधिप मंगल। (३) तृतीय मास में कर, चरण आदि अंकुर रूप में निकलने लगते हैं। मासा-धिप बृहस्पति। (४) चतुर्थ मास में अस्थि (हड्डी) निर्माण होता है। इसे अस्थि कहा-मासाधिप सूर्य। (५) पांचवें मास में चर्म (शरीर की चमड़ी)

बनती है। इसे चर्म कहा– मासाधिप चन्द्रमा। (६) छठे मास में नख तथा रोम निकलते हैं। इसे अंगज कहा–मासाधिप शनि। (७) सातवें मास में चेतनता आती है, सुख दुःख का अनुभव होता है, इसे चेतनद कहा–मासाधिप बुध (८) अष्टम मास का अधिप निषेक लग्न का स्वामी। (९) नवम मास का अधिप चन्द्रमा (१०)दशम मास का अधिपति सूर्य।

निषेक लग्न या प्रश्न लग्न में जो ग्रह शुभ राशि, शुभ स्थान में हो. उस ग्रह सम्बन्धी मास में गर्भिणी स्वस्थ रहती है। गर्भ पुष्ट होता है। जो ग्रह पीड़ित नीच, शत्रु राशि में पापवीक्षित, दुःस्थान में रहता है उस ग्रह सम्बन्धी मास में गर्भिणी पीड़ा उठाती है। ग्रह अत्यंत वीक्षित हो तो गर्भस्राव आदि की भी आशंका होती है ॥ १७ ॥

निषेक लग्न से शुभता

शशाङ्कलग्नोपगतैः शुभग्रहैस्त्रिकोणजायार्थसुखास्पदस्थितैः।
तृतीयलाभर्क्षगतैश्च पापकैः सुखी च गर्भो रविणा निरीक्षितः ॥ १८ ॥

गर्भाधान के समय लग्न और चन्द्रमा दोनों (चन्द्रमा चाहे लग्न में हो या अन्यत्र) शुभग्रह से युत हों, तथा लग्न और चन्द्रमा से शुभग्रह द्वितीय, चतुर्थ, पंचत, सप्तम, नवम तथा दशम में हों और पापग्रह लग्न तथा चन्द्रमा से तृतीय तथा एकादश में हों; लग्न और चन्द्रमा सूर्य से दृष्ट हों तो गर्भ (गर्भस्थ बच्चा) सुखपूर्वक पुष्ट होता है ॥१८॥

जातक के पिता सम्बन्धी योग

व्ययस्थितेऽर्के ससुते विलग्नादपि क्षयेन्दौ मदनोपयाते।
पितुर्वियोगं प्रवदन्ति सद्यः शुभेक्षिते तु त्रिभिरब्दमानैः ॥ १९ ॥
चरोपगे चन्द्रमसि क्षपायां बुधेक्षिते दूरदिशं प्रयातः।
चरे शनौ भानुयुते निशायां विदेशगो याति पिता विनाशम् ॥ २० ॥

(१) यदि लग्न से बारहवें स्थान में सूर्य और शनि हों तथा लग्न से सप्तम में क्षीण चन्द्र हो तो शीघ्र ही पिता का वियोग हो। यदि शुभग्रह देखते हों तो तीन वर्ष में पिता का वियोग हो। ग्रंथकार ने यह योग दिया है। पितृकारक सूर्य यदि पापाक्रांत (शनि से युत) हो तो पिता को कष्ट तक

सम्मत है किन्तु व्यय में सूर्य होने से तथा सप्तम में चन्द्रमा होने से दोनों में कम से कम १२१° का अन्तर होगा और अधिक से अधिक १७९° अंश का। इस स्थिति में कृष्ण पक्ष की प्रतिपद से कृष्ण पक्ष की पंचमी तक जन्म संभावित नहीं हो सकता है केवल उस समय क्षीण चन्द्र हो सकता है। अतः यह योग व्यर्थ हो जाता है। किन्तु मूल में जो क्षयेन्दी आया है उसका अर्थ कृष्ण पक्ष का चंद्र लिया जावे तो अर्थ बैठ सकता है।

(२) यदि रात्रि का जन्म हो, चन्द्रमा, मेष, कर्क, तुला या मकर में हो तथा बुध से चन्द्रमा दृष्ट हो तो पिता दूर यात्रा में गया हुआ होता है॥ १९॥

(३) रात्रि का जन्म हो, चर राशि में सूर्य तथा शनि एकत्र हों तो विदेश में पिता नाश को प्राप्त होता है।

ग्रंथ में यह योग लिखे हैं इसलिए हमें इनकी व्याख्या करनी पड़ी है, परन्तु कितनी ही जन्मकुंडलियां हमने देखीं। रात्रि में जन्म है, सूर्य शनि एकत्र मेष में हैं परन्तु आज भी इस जातक के जन्म के ३३ बर्ष के बाद भी पिता जीवित हैं॥ २०॥

शैशव में मृत्यु योग

इस अध्याय में बालारिष्ट का विवेचन है। इसलिए निम्नलिखित योगों को शैशवावस्था में मृत्यु योग समझना चाहिये। यहां एक आवश्यक विषय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है। फलित ज्योतिष के ग्रंथ का प्रयोजन क्या? कि पाठक उन सिद्धांतों को समझकर, जन्मकुंडली का तदनुसार फलादेश करें। यदि आपका फलादेश ठीक बैठता है तो आप सफल ज्योतिषी हैं। यदि आपका फलादेश नहीं मिलता तो आप चाहे जितनी शास्त्र की दुहाई दें और पराशर होरा, बृहज्जातक सारावली, जातक पारिजात, सर्वार्थचिन्ता-मणि, फलदीपिका, जातकालंकार, जातकाभरण आदि के श्लोक पढ़ कर अपने मत को पुष्ट करने का प्रयत्न करें, आपकी कोई सुनाई नहीं होगी। समस्त शास्त्र कंठ होने पर भी आप अज्ञ समझे जावेंगे। जनता के समक्ष आपको फला-देश की कसौटी पर कसा जाना है। इसे याद रखिए। इसे विस्मरण न कीजिए।

जब यह ग्रंथ लिखे गए तब शीतला, मलेरिया, संग्रहणी, पोलियो (पक्षाघात) विसूचिका, डिप्थीरिया, सूखा (क्षय) आदि रोगों से लाखों बच्चे प्रतिवर्ष मरते थे। लाखों स्त्रियां प्रसव में कालकवलित होती थीं और लाखों प्रसव के बाद प्रसूत रोगों से। जब हम १९२७ में अर्थशास्त्र की बी. ए. परीक्षा के लिए

अध्ययन करते थे तब पुस्तकों में पढ़ा था कि भारत में किसी किसी स्थान पर एक सहस्र पैदा हुए बच्चों में मरने वालों (सद्यः या १ वर्ष की आयु के पहिले) की संख्या ५०० तक थी परन्तु डेनमार्क में १००० में से मृत बच्चों की संख्या केवल ७९ थी। जहाँ स्वास्थ्य पुष्टिकर भोजन, औषधि, डाक्टरों के इलाज आदि की सुविधा थी बहुत कम बच्चे मरते थे। यही हाल मनुष्यों तथा स्त्रियों का था। लाखों स्त्री पुरुष भारत वर्ष में मलेरिया, काला ज्वर, प्लेग, महामारी, इंफ्लुएंजा हैजा आदि में मरते थे। तब एक भारतीय की औसत आयु २७ वर्ष थी। अब औसत आयु ५२ वर्ष की हो गई है। शीतला, पोलियो, बी. सी. जी., डिप्थे-रिया रोगों से निवारण के लिए इंजेक्शन दिए जा रहे हैं। अपेक्षाकृत कम बच्चे मरते हैं। इसलिए देशकाल पात्र को ध्यान में रखकर, बुद्धि को काम में लावें। 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' वाली उक्ति को चरितार्थ न करें। यदि लकीर के फकीर बने रहेंगे तो आपका फलादेश ठीक नहीं बैठेगा। आप स्वयं उपाहासास्पद होंगे और ज्योतिष शास्त्र का उपहास करावेंगे। नीर क्षीर विवेचन कीजिए। नीर छोड़ दीजिए। क्षीर ग्रहण कीजिए।

क्षीणे शशिन्युदयगे यदि कण्टकस्थे
पापेऽथवा निधनगे म्रियतेऽथ बालः।
रन्ध्रारिगैरशुभखेटदृशा समेतैः
सौम्यैः कृतान्तनगरं समुपैति मासात् ॥२१॥

एकत्र मन्दावनिनन्दनार्का रन्ध्रस्थिता वा रिपुराशियाताः।
सौम्यैरयुक्ता अविलोकितास्ते जातस्य सद्यो मरणप्रदाः स्युः ॥२२॥

चन्द्रांशे सप्तमे भौमे सौम्यदृष्टिविवर्जिते।
सप्त सप्ततितारायामुपैति मरणं शिशुः ॥ २३ ॥

मन्दावनिजमार्तण्डैः पुत्रस्थानसमन्वितैः।
सप्तसप्ततिनक्षत्रे जातस्य मरणं वदेत् ॥ २४ ॥

धरासुते चन्द्रनवांशकस्थे लग्नांशके वा न च जीवदृष्टे।
सुधाकरे नन्दनराशियाते समेति याम्यं पदमाशु बालः ॥ २५ ॥

नीचं गते लग्नपतौ विलग्नान्नाशं गते वा रविजे तथाऽस्ते।
जातो मृतप्रायकलेवरः सन् कृच्छ्रेण वैवस्वतलोकमेति ॥ २६ ॥

आपोक्लिमस्थानगता नभोगा विधूतवीर्या यदि भानुमुख्याः।
मासद्वयं तस्य ऋतुत्रयं वा जातस्य चायुः कथयन्ति तज्ज्ञाः। २७।

लग्नारिरन्ध्रव्ययगे शशाङ्के पापेन दृष्टे शुभदृष्टिहीने ।
केन्द्रेषु सौम्यग्रहवर्जितेषु प्राणैर्वियोगं व्रजति प्रजातः ॥ २८ ॥

सौरे मदस्थे यदि वा विलग्ने जलोदयेऽब्जे यदि कीटगे वा ।
सौम्येषु केन्द्रोपगतेषु सद्यो जातस्य नाशं यवनोपदिष्टम् ॥ २९ ॥

भौमक्षेत्रगते जीवे नीचराशिगतेऽथवा ।
सन्ध्यात्रये च सञ्जातो मासान्मृत्युमुपैति सः ॥ ३० ॥

रन्ध्रे धरासूनुदिनेशसौरा जातस्तु मृत्युं समुपैति मासात् ।
केतुस्तु यस्मिन्नुदितोऽत्र जातो मासद्वयेनैव यमं प्रयाति ॥ ३१ ॥

पापावुदयास्तगतौ क्रूरेण युतश्च शशी ।
दृष्टश्च शुभैर्न यदा मृत्युश्च भवेदचिरात् ॥ ३२ ॥

क्षीणे हिमगौ व्ययगे पापैरुदयाष्टमगैः ।
केन्द्रेषु शुभाश्च न चेत् क्षिप्रं निधनं प्रवदेत् ॥ ३३ ॥

क्रूरेण संयुतः शशी स्मरान्त्यमृत्युलग्नगः ।
कण्टकाद्बहिःशुभैरवीक्षितश्च मृत्युदः ॥ ३४ ॥

शशिन्यरित्रिनाशगे निधनमाशु पापेक्षिते
शुभैरथ समाष्टकं दलमतश्च मिश्रेक्षिते ।
असद्भिरवलोकिते बलिभिरत्र मासं शुभे
कलत्रसहिते च पापविजिते विलग्नाधिपे ॥ ३५ ॥

अशुभसहिते ग्रस्ते चन्द्रे कुजे निधनाश्रिते
जननिसुतयोर्मृत्युर्लग्ने रवौ तु सशस्त्रजः ।
उदयति रवौ शीतांशौ वा त्रिकोणविनाशगै-
र्निधनमशुभैर्वीर्योपेतैः शुभैरयुतेक्षिते ॥ ३६ ॥

असितरविशशाङ्कभूमिजैर्व्ययनवमोदयनैधनाश्रितैः ॥
भवति मरणमाशु देहिनां यदि बलिना गुरुणा न वीक्षितैः ॥३७॥

सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेष्वशुभयुतो मरणाय शीतरश्मिः ।
भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा ॥३८॥

(१) यदि क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो और पापग्रह केन्द्र या अष्टम में हो तो बच्चा मर जाता है । (ii) यदि लग्न से छठे या आठवें घर में शुभग्रह हो उस

शुभग्रह को पापग्रह देखता हो तो बच्चा एक मास में यमपुरी को जाता है ॥ २१ ॥

(२) सूर्य, मंगल और शनि एकत्र लग्न से छठे या आठवें घर में हों और न शुभग्रह से युक्त हों, न शुभग्रह से दृष्ट हों तो बच्चा शीघ्र मर जाता है ॥२२॥

(३) यदि कर्क नवांश का मंगल लग्न से सातवें घर में हो और उसपर शुभग्रह की दृष्टि न हो जन्म नक्षत्र से ७७ वें नक्षत्र तक (२७–२७ नक्षत्रों का दो बार परिभ्रमण कर चन्द्रमा जब जन्मनक्षत्र से २३ वें नक्षत्र पर आवे तब तक) आयु प्राप्त करे और बच्चा मृत्यु को प्राप्त होता है। स्थूल गणना से २ महीने १७ दिन की आयु होती है ॥ २३ ॥

(४) यदि सूर्य, मंगल तथा शनि लग्न से पांचवें घर में हों तो वही फल जो ऊपर (३) में कहा गया है ॥ २४ ॥

(५) मंगल कर्क के नवांश में हो या मंगल लग्न नवांश में हो और उसपर बृहस्पति की दृष्टि न हो, चन्द्रमा लग्न से पंचम हो तो शीघ्र ही बालक मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ २५॥

(६) लग्नेश नीच राशि में हो, या लग्न से अष्टम स्थान में हो और शनि उसी प्रकार हो या सप्तम में हो तो जातक का मृत-प्राय कलेवर होता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। मूल में शब्द आये हैं 'तथैवाऽस्ते'। इसके दो अर्थ हो सकते हैं। जैसे लग्नेश वैसे ही हो (अर्थात् अष्टम में)। दूसरा अर्थ अस्त सप्तम को कहते हैं। इसलिए शनि सप्तम में हो। शुक जातक में लिखा है।

विलग्नाधिपतौ...निधने चार्कजो भवेत्।
कृच्छ्रेण जीवितं विद्याद् ऋणप्रायो विनश्यति ॥

अब आगे अन्य योग कहते हैं ॥ २६ ॥

(७) सूर्य आदि सब ग्रह निर्बल हों और आपोक्लिम (लग्न से तृतीय षष्ठ नवम या द्वादश) स्थानों में हों तो बच्चा २ मास जीता है या ६ मास। शुक जातक में भी कहा है :—

आपोक्लिमे स्थिताः सर्वे ग्रहा बलविवर्जिताः।
षण्मासं वा द्विमासं वा तस्यायुः समुदाहृतम् ॥ २७ ॥

(८) चन्द्रमा लग्न में, छठे, आठवें या बारहवें हो, उस पर पापग्रह की दृष्टि हो, शुभग्रह की दृष्टि न हो तथा केन्द्र में सौम्यग्रह न हों तो बच्चे की शीघ्र मृत्यु होती है। सारावली अध्याय १० का श्लोक ३० है:—

व्ययाष्टषष्ठोदयगे शशांके पापेन युक्ते शुभदृष्टिहीने।
केन्द्रेषु सौम्यग्रहवर्जितेषु प्राणैर्वियोगं व्रजति प्रजातः ॥२८॥

(९) यदि शनि लग्न या सप्तम में अथवा जल राशि में या वृश्चिक में चन्द्रमा लग्न में हो और शुभग्रह केन्द्र में हो तो बच्चा नष्ट हो जाता है यह यवनों ने कहा है ॥ २९ ॥

(१०) यदि बृहस्पति मेष, वृश्चिक या मकर में हो और संध्यात्रय में जन्म हो तो एक मास में बच्चे की मृत्यु हो जाती है। संध्यात्रय क्या ? प्रातःकाल सूर्योदय से ३ घड़ी पूर्व, मध्याह्न की ३ घड़ी (१½ घड़ी मध्याह्न के पूर्व से मध्याह्न के १½ घड़ी बाद) सायंकाल सूर्यास्त के तीन घड़ी।

जातक पारिजात की विभिन्न स्थानों में मुद्रित पुस्तकों में संध्यात्रय पाठ है। परन्तु सर्वार्थचिन्तामणि में 'सन्धित्रये' पाठ है। सन्धित्रय और गण्डान्त कर्क, वृश्चिक, मीन का अंतिम नवांश एक ही बात है।

नीचस्थे देवपूज्ये तु भौमक्षेत्रगतेऽपि वा।
सन्धित्रयेऽपि सञ्जातो मासान्मृत्युं प्रयच्छति ॥ ३० ॥

हमारे विचार से संध्यात्रये पाठ ठीक नहीं है क्योंकि प्रातः संध्या सायं संध्या में जन्मे अनेक दीर्घायु व्यक्ति हमने देखे हैं। मध्याह्न तथा मध्यरात्रि में जन्म अच्छा समझा जाता है क्योंकि पराशर ने इसे राजयोग माना है :—

निशार्द्धाच्च दिनार्द्धाच्च परं सार्द्धं द्विनाडिका।
शुभा तदुद्भवो राजा धनी वा तत्समोपि वा ॥

(११) (i) सूर्य मंगल तथा शनि एकत्र लग्न से अष्टम में हों तो एक मास में मृत्यु हो।

(ii) जिस नक्षत्र में धूमकेतु का उदय हो उस नक्षत्र में उत्पन्न बच्चा २ मास जीता है। केतु के उदय के लिए देखिए बृहत्संहिता अध्याय ४६ सारावली अध्याय १० के श्लोक ७ के दो पाठ हैं। उसमें मंगल की राशि में अष्टम में सूर्य, मंगल, शनि हों तभी बच्चे की मृत्यु लिखी है। अन्य पाठ के अनुसार शुक्र की राशि में अष्टम में सूर्य, मंगल, शनि उस स्थिति में नवजात शिशु का मरण लिखा है।

भौमा दिवाकरसौरारिच्छद्रे जातस्य भौमगृहे।
म्रियतेऽवश्यं स नरो यमकृतरक्षोऽपि मासेन ॥

सारावली के इस श्लोक में किसी किसी प्रति में भौमगृहे की जगह शुक्र गृहे भी पाठ है।

इसी अध्याय के श्लोक १२ में कहते हैं :—

केतुर्यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तस्मिन्प्रसूयते यो हि।
मासद्वयेन मरणं विनिर्दिशेत्तस्य जातस्य ॥ ३१ ॥

(१२) यदि एक पापग्रह लग्न में हों, एक सप्तम में हो, चन्द्रमा क्रूर ग्रह के साथ हो और शुभग्रह से दृष्ट न हो तो बच्चे की शीघ्र मृत्यु होती है। स्कन्द होरा में कहा है :—

यदा लग्नगतः पापस्तथैवास्तगतोऽपरः।
क्रूरयुक्तश्च चन्द्रश्चेच्छुभदृष्ट्या च वर्जितः॥
तदा जातस्य सद्यः स्यान्मरणं नान्यथा भवेत्।

सारावली अध्याय १० का ३९ वां श्लोक है —

द्यूनगतेऽर्के लग्ने यमे कुजे वा विपर्यये वाऽपि।
अन्यतरयुते वेन्दावशुभैर्दृष्टेऽचिरान्मृत्युः॥ ३२॥

(१३) यदि क्षीण चन्द्रमा लग्न से द्वादश में हो, पापग्रह लग्न तथा अष्टम में हो, केन्द्र में शुभग्रह न हो तो बच्चे की शीघ्र मृत्यु होती है॥ ३३॥

(१४) चन्द्रमा क्रूर ग्रह के साथ यदि लग्न से सप्तम, अष्टम या द्वादश में हो, तथा केन्द्र से बाहर (पणफर या आपोक्लिम) स्थिति शुभग्रहों से दृष्ट न हो तो मृत्यु करता है। अभिप्राय यह है कि चंद्रमा शुभग्रहों से दृष्ट हो या केन्द्र में शुभग्रह हों तो मृत्यु नहीं होती॥३४॥

(१५) यदि चंद्रमा लग्न से छठे या आठवें हो और पापग्रह से दृष्ट हो तो बच्चे की शीघ्र मृत्यु होती है। (ii) यदि ऊपर (i) में जो ग्रह स्थिति कही गई है अर्थात् चंद्रमा पापग्रह से तथा शुभग्रह से दोनों प्रकार के ग्रहों से दृष्ट हो तो ४ वर्ष की आयु हो। (iii) चंद्रमा छठे आठवें घर में हो, शुभग्रह से दृष्ट हो तो ८ वर्ष की आयु हो (iv) यदि चंद्रमा छठे, आठवें घर में हो और बलवान् पापग्रहों से दृष्ट हो, लग्नेश सातवें (लग्न से सप्तम) हो और पापग्रह से पराजित हो तो बालक एक मास जीवित रहता है।

यह श्लोक बृहज्जातक अध्याय ६ से लिया गया है। रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं कि लग्न से छठें या आठवें चंद्रमा हो, शुभग्रह से युक्त भी हो, किंतु पापग्रहों से दृष्ट हो तो एक मास आयु हो (यदि लग्नेश सप्तम स्थान में पापग्रह से पराजित हो तो)। यदि षष्ठ अथवा अष्टम में चन्द्रमा सौम्यग्रह के क्षेत्र (राशि) में हो या पापग्रह के क्षेत्र में होकर भी सौम्यग्रह युक्त हो तो मरण नहीं होता। यवनेश्वर ने कहा है :—

लग्नाच्छशी नैधनगोऽशुभर्क्षे षष्ठे तु वा पापनिरीक्षितश्च। सर्वायुराहन्ति शुभैरमिश्रे तदीक्षितेऽब्दाष्टकपर्ययेण" इति। जिसका कृष्ण पक्ष में दिन में जन्म हो या शुक्ल पक्ष में रात्रि में जन्म हो उसकी जन्म कुंडली में लग्न से छठे या आठवें चंद्रमा हो, शुभ और पाप दोनों प्रकार के ग्रहों से दृष्ट हो तो भी मरण नहीं होता क्योंकि मालव्य ने कहा है:—

पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां
कृष्णोऽथवाह्नि शुभाशुभदृश्यमानः ।
तच्चन्द्रमा रिपुविनाशगतोऽपि यत्ना-
दापत्सु रक्षति पितेव शिशुं न हन्ति ।।

भट्टोत्पल कहते हैं कि चन्द्रमा छठे या आठवें हों, किसी ग्रह से दृष्ट न हो तो अरिष्ट नहीं होता ।

कतिपय टीकाकार 'लग्नेश सप्तम में पापग्रह से पराजित हो, इसको पृथक् योग लेते हैं । षष्ठ या अष्टम स्थान स्थित चन्द्रमा हो. इस योग के साथ नहीं जोड़ते । ३५ ।

(१६) यदि चन्द्रग्रहण के समय जन्म हो, चन्द्रमा लग्न में पापग्रह के साथ हो तथा मंगल अष्टम में हो तो माता और बच्चे दोनों की मृत्यु हो । यदि इस प्रकार सूर्य हो अर्थात् सूर्य ग्रहण के समय जन्म हो, सूर्य पापग्रह के साथ लग्न में हो, अष्टम में मंगल हो तो शस्त्र से (अर्थात् आपरेशन शस्त्र क्रिया में) मृत्यु हो । कतिपय टीकाकारों ने ग्रस्ते' का अर्थ राहु के साथ लिया है परन्तु यह अर्थ हमें सम्मत नहीं है ।

(ii) सूर्य या चन्द्रमा लग्न में हो, लग्न से पंचम, अष्टम तथा नवम में पापग्रह हो; लग्न पर बलवान् शुभग्रहो की दृष्टि न हो, न बलवान शुभग्रह लग्न में हों तो माता तथा बच्चे की मृत्यु होती है । सारावली अध्याय १० श्लोक ३७ तथा ४२ में यही कहा है । वहां स्पष्ट 'ग्रहणोपगते' लिखा है, जिसका अर्थ ग्रहण के समय ही हो सकता है:—

ग्रहणोपगते चन्द्रे सक्रूरे लग्नगे कुजेऽष्टमगे ।
मात्रा सार्धं म्रियते चन्द्रवदर्के च शस्त्रेण ।।
लग्ने चन्द्रेऽर्के वा पापा बलिनस्त्रिकोणनिधनेषु ।
सौम्यैरदृष्ट युक्ताः सद्यो मरणाय कीर्तिता यवनैः ।।

यह सारावली का द्वितीय श्लोक केवल बच्चे के मरण का योग कहता है। यह ४२ वां श्लोक है । इसके पूर्व के ४१ वें श्लोक में 'जातस्य वधकृतः' लिखा है, इस कारण पूर्वापरप्रसंग से इसे माता के मरण का योग नही मानना चाहिए।

जातक पारिजात का श्लोक ३६ बृहज्जातक के छठे अध्याय का १०वाँ श्लोक है । रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं 'ग्रस्ते चन्द्रे राहुणा गृहीते पूर्णेन्दौ' इससे भी यही अर्थ निकलता है कि पूर्ण चन्द्र को ग्रहण लगा हो । पुनः कहते हैं कि चन्द्रमा को ग्रहण लगा हो और अशुभ ग्रह के साथ हो, लग्न में हो, मंगल अष्टम में हो तो यह योग होता है । या सूर्य ग्रहण का समय हो उस समय अमा-

वास्या का चन्द्रमा होने से क्षीण चन्द्र होगा और सूर्य अशुभ ग्रह के साथ लग्न में हो, यहां अशुभ ग्रह से शनि समझना चाहिए—क्योंकि मंगल अष्टम में हो यह भी कहा है, इसलिए अशुभ ग्रह शनि ही बचा जो ग्रस्त चन्द्र या ग्रस्त सूर्य के साथ लग्न में होने से उपर्युक्त योग करेगा। रुद्रभट्ट कहते हैं कि ग्रस्त चन्द्र के साथ शनि और लग्नस्थ ग्रस्त के साथ शनि या बुध भी कोई कोई लेते है। (क्योंकि पापयुक्त बुध भी पाप माना जाता है।) यह अर्थ भट्टोत्पल ने लिया है ॥३६ ॥

(१७) यदि लग्न में चन्द्रमा, अष्टम में मंगल, नवम में सूर्य द्वादश में शनि हो और बलवान बृहस्पति इनको न देखता हो तो बच्चा शीघ्र ही मौत को प्राप्त होता है। बृहस्पति जन्मकुंडली में कहीं भी बैठकर इन चारों स्थानों को पूर्ण दृष्टि से नहीं देख सकता इसलिए किसी स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखें, किसी को त्रिपाद दृष्टि से यही संभव है। सारावली अध्याय १० श्लोक में

लग्नान्त्यनवमनैधनसंयुक्ताश्चन्द्रसूर्यसौराराः ।
जातस्य वधं कुर्युः सद्यो गुरुणा न चेद् दृष्टाः ॥

लिखा है,जिसके अनुसार अर्थ होगा कि लग्न में चन्द्रमा, द्वादश में सूर्य, नवम में शनि, अष्टम में मंगल। यह पाठ अधिक उपयुक्त है। नवम में सूर्य, लग्न में चन्द्रमा होने से चन्द्रमा को पक्ष बल प्राप्त हो जायेगा। द्वादश में सूर्य लग्न में चंद्रमा होने से शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा होने पर भी पक्ष बल न्यून होगा—शनि की द्विपाद दृष्टि भी चंद्रमा पर होगी।

परन्तु जातक पारिजातकार ने यह श्लोक बृहज्जातक अध्याय ६ से लिया है और वही क्रम दिया है जो वराहमिहिर ने दिया है ॥ ३७ ॥

(१८) चंद्रमा यदि पापग्रह के साथ लग्न, पंचम, सप्तम, अष्टम, नवम या द्वादश में हों और बलवान बुध, बृहस्पति, शुक्र से युत या दृष्ट न हो तो बच्चे की मृत्यु हो जाती है। बलवान् तीनों ग्रहों (बुध, बृहस्पति, शुक्र) का विशेषण है। यह बृहज्जातक अध्याय ६ का ११ वां श्लोक है। रुद्रभट्ट कहते हैं कि यह श्लोक वराहमिहिर ने अरिष्टाध्याय के प्रायः अंत में दिया है, इसलिए बुध, बृहस्पति या शुक्र यदि बलवान् होकर चंद्रमा को देखें तो अन्य अरिष्ट योगों का भी परिहार हो जाता है।

भट्टोत्पल कहते हैं कि बलवान् कोई भी शुभग्रह (बुध, बृहस्पति या शुक्र) चंद्रमा को देखे तो दोष नहीं होता। यह भी कहते हैं कि उपर्युक्त अरिष्ट तभी होता है जब लग्न, पंचम आदि उपर्युक्त स्थानों पर क्षीण चन्द्र हो। शंका करते हैं कि मूल में क्षीण शब्द नहीं आया है—तब क्षीण चन्द्र हो तभी अरिष्ट होता है, अन्यथा नहीं, यह कल्पना क्यों ? स्वयं शंका करके, तदनन्तर स्वयं समाधान

करते हैं कि 'आगमान्तरदृष्टत्वात्' । क्योंकि सारावली (अध्याय १० श्लोक ९८) में कहा है :—

निधनास्तव्ययलग्नत्रिकोणगाः क्षीणचन्द्रसंयुक्ताः ।
पापा बलिनः शुभदैरदृश्यमाना गतायुषं प्रायः ।।

अब जातक पारिजातकार, १ वर्ष की आयु में मरण, २ वर्षाभ्यंतर मरण, तीन वर्ष की आयु हो, चौथे वर्ष में मृत्यु हो इस प्रकार कतिपय योग कहते हैं, जो नीचे दिए जाते हैं ।। ३८ ।।

१ से ६ वर्ष वय में मरण योग

योगे स्थानं गतवति बलिनश्चन्द्रे स्वं वा तनुगृहमथवा ।
पापैर्दृष्टे बलवति मरणं वर्षस्यान्तः किल मुनिगदितम् ।। ३९ ।।
वक्री शनिर्भौमगृहोपयातः केन्द्रेऽथवा शत्रुगृहे विनाशे ।
कुजेन सम्प्राप्तबलेन दृष्टो वर्षद्वयं जीवयति प्रजातम् ।। ४० ।।
बृहस्पतिर्भौमगृहेऽष्टमस्थः सूर्येन्दुभौमार्कजदृष्टमूर्तिः ।
अब्दैस्त्रिभिर्भार्गवदृष्टिहीनो लोकान्तरं प्रापयति प्रजातम् ।। ४१ ।।
षष्ठाष्टमे कर्किणि जन्मलग्नात् सौम्ये सुधारश्मिनिरीक्ष्यमाणे ।।
अब्दैश्चतुर्भिः समुपैति नाशं जातो नरः सर्वबलान्वितोऽपि ।। ४२ ।।
रविचन्द्रभौमगुरुभिः कुजगुरुसौरेन्दुभिः सहैकस्थैः ।
रविशनिभौमशशाङ्कैर्मरणं खलु पञ्चभिर्वर्षैः ।। ४३ ।।
यदा सुधारश्मिनवांशकस्थे निरीक्षिते शीतकरेण मन्दे ।।
लग्नाधिपे चन्द्रदृशा समेते जातस्य षड्वर्षमितं तदाऽऽयुः ।। ४४ ।।
लग्ने यद्द्रेक्काणो निगलाहिविहङ्गपाशधरसञ्ज्ञः ।।
मरणाय सप्तवर्षैः क्रूरयुतो न स्वपतिसंदृष्टः ।।४५।।
लग्ने रविशनिभौमाः शुक्रगृहे सप्तमे शशी क्षीणः ।।
दृष्टो न देवगुरुणा सप्तभिरब्दकैर्वा स्यात् ।।४६।।
दिवाकरेन्दुभूपुत्राः पुत्रस्थानसमन्विताः ।।
जातो यमपुरं याति नवमाब्दे न संशयः ।।४७।।
पापो विलग्नाधिपतिः शशांकादन्त्यस्थितः क्रूरनिरीक्षितश्चेत् ।।
चन्द्रांशकस्थे यदि वा तदीशो जातः शिशुर्याति लयं नवाब्दैः ।।४८।।

(१) यह ३९ वां श्लोक बृहज्जातक अध्याय ६ का है केरल से प्रकाशित पुस्तक में यह श्लोक १३ है और काशी से प्रकाशित संस्करण में श्लोक १२ है ! वराहमिहिर ने छठे अध्याय में अरिष्ट योग दिए हैं और इस अध्याय के (i) इस अंतिम श्लोक में कब मृत्यु होगी, यह कहते हैं। पहली बात तो यह कही कि एक वर्ष के अन्दर मृत्यु हो। किन्तु एक वर्ष के अन्दर कब ? कहते हैं कि अरिष्ट करने वाले जो ग्रह हों उनमें जो बलवान् हो वह जिस राशि में स्थित हो, उसमें चन्द्रमा जब गोचर से जावे (ii) या जन्मकालीन चन्द्रमा जिस राशि में हो, गोचर वश उसमें जाये (iii) अथवा जब चन्द्रमा गोचर वश लग्न में जाये।

यह योग उनमें लागू करना चाहिए जिनमें यह निर्देश है कि बच्चा शीघ्र मृत्यु को प्राप्त है। किन्तु चन्द्रमा तो २७-२८ दिन में भचक्र का एक पूरा चक्कर लगा लेता है और एक सौर वर्ष में करीब १३ चक्कर लगाता है, तब किसी महीने में जब चन्द्रमा उपर्युक्त ३ राशियों में गोचर वश जावे तब मरण कहना ? कहते हैं कि गोचर में जब चन्द्रमा बलवान् हों और पापग्रहों से दृष्ट हो। रुद्रभट्ट कहते हैं कि बलवान् चन्द्रमा पापदृष्ट हो, किन्तु साथ ही शुभदृष्ट भी हो तो मृत्यु नहीं करेगा। वर्ष में उपर्युक्त तीन राशियों में जो ऊपर (i) (ii) (iii) में कही गई हैं १३-१३ वार जाने से कुल ३९ बार (एक वर्ष में) ऐसा समय आवेगा— तब, जब चन्द्रमा बलवान् हो, पापदृष्ट हो, शुभदृष्ट न हो, मृत्यु करेगा।

पुनः कहते हैं कि चन्द्रमा के गोचर के इस सिद्धान्त को अन्य योगों में भी (शुभ फल देने वाले राज योग, धन योग आदि, या पापफल धन हानि, रोगशत्रु पीड़ा आदि) में भी लागू करना चाहिए अर्थात् चन्द्रमा जब योग कारक स्थिति राशि में जाये, जन्मकालीन स्थित चन्द्र राशि में जाय या जन्म लग्न में जाये तब शुभ दृष्ट हो तो शुभ फल, पापदृष्ट हो तो पाप फल।

हमारा अनुभव है कि वर्षाभ्यंतर में अरिष्ट देखना हो तो लग्न को प्रथम मास, द्वितीय भाव को द्वितीय मास, बारहवें भाव को बारहवां मास मानकर जो भाव पापयुक्त, पापदृष्ट होता है उसमें पीड़ा होती है।

भट्टोत्पल कहते हैं कि बालारिष्ट होने पर भी बच्चे बच जाते हैं। उनकी मृत्यु नहीं होती क्योंकि बालारिष्ट के साथ साथ यदि जन्मकुंडली में जीवयोग भी हों तो बच्चे की प्राणरक्षा हो जाती है। विद्वानों के सौकर्य के लिए कतिपय जीवयोग नीचे दिए जाते हैं :—

लग्नाधिपोऽतिबलवानशुभैरदृष्टः
केन्द्रस्थितैः शुभफलैरवलोक्यमानः।

मृत्युं विधूय विदधाति सुदीर्घमायुः
साधं गुणैर्बहुभिरूर्जितया च लक्ष्म्या ।।

सर्वानिमानतिबलः स्फुरदंशुजालो
लग्नस्थितः प्रशमयेत्सुरराजमंत्री ।
एको बहूनि दुरितानि सुदुस्तराणि
भक्त्या प्रयुक्त इव शूलधरे प्रणामः ।।

लग्नादष्टमवर्त्यपि गुरुबुधशुक्रदृकाणगश्चन्द्रः ।
मृत्युं प्राप्तमपि नरं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ।।

चन्द्रः सम्पूर्णतनुः सौम्यर्क्षगतः शुभेक्षितश्चापि ।
प्रकरोति रिष्टभंगं विशेषतः शुक्रसंदृष्टः ।।

बुधभार्गवजीवानामेकतमः केन्द्रमागतो बलवान्
यद्यक्रूरसहायः सद्योऽरिष्टस्य भंगाय ।।

रिपुभवनगतोऽपि शशी गुरु–सित–चन्द्रात्मजदृकाणस्थः ।
अगद इव भोगिवृष्टं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ।।

सौम्यद्वयान्तरगतः सम्पूर्णः स्निग्धमंडलः शशभृत् ।
निःशेषरिष्टहंता भुजगलोकस्य गरुड इव ।।

शशिभृत् पूर्णशरीरे शुक्ले पक्षे निशाभवे काले ।
रिपुनिधनस्थेऽरिष्टं प्रभवति नैवात्र जातस्य ।।

प्रस्फुरितकिरणजाले स्निग्धामलमंडले बलोपेते ।
सुरमंत्रिणि केन्द्रगते सर्वारिष्टं शमं याति ।।

सौम्यभवनोपयाताः सौम्यांशकसौम्यदृकाणस्थाः ।
गुरु–चन्द्र–काव्य–शशिजाः सर्वेऽरिष्टस्य हंतारः ।।

चन्द्राध्यासितराशेरधिपः केन्द्रे शुभग्रहे वापि ।
प्रशमयति रिष्टयोगं पापानि यथा हरिस्मरणम् ।।

पापा यदि शुभमार्गे सौम्यैर्दृष्टाः शुभांशवर्गस्थैः ।
निघ्नन्ति नदारिष्टं पतिं विरक्ता यथा युवतिः ।।

राहुस्त्रिषष्ठलाभे लग्नात् सौम्यैर्निरीक्षितः सम्यक् ।
नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तूलसंघातम् ॥

शीर्षोदयेषु राशिषु सर्वे गगनाधिवासिनः सूतौ ॥
प्रकृतिस्थैश्चारिष्टं विलीयते धृतमिवाग्निस्थम् ॥

तत्काले यदि विजयी शुभग्रहः शुभनिरीक्षितोऽवश्यम् ।
नाशयति सर्वरिष्टं मारुत इव पादपान्प्रबलः ॥

सर्वैर्गगनभ्रमणैर्दृष्टश्चन्द्रो विनाशयति रिष्टम् ।
आपूर्यमाणमूर्तिर्यथा नृपः स्वं नयद्वेषी ॥

यहां श्लोक ३९ की व्याख्या समाप्त करते हैं ॥३९ ॥

(२) अब जातक पारिजातकार कहते हैं कि यदि वक्री शनि मेष या वृश्चिक राशि में होकर केन्द्र (१, ४, ७, १०) छठे या आठवें घर में हो और बलवान् मंगल से दृष्ट हो तो बालक केवल २ वर्ष तक जीता है। हम पहले लिख चुके हैं कि केवल एक योग से जो फलादेश करेंगे, उनका फल ठीक नहीं बैठेगा। जन्मकुंडली का सर्वांगीण विचार करना चाहिए। बालारिष्ट के साथसाथ जीवयोग भी देखना चाहिए।
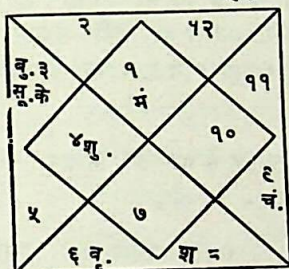
साथ में श्री गुलजारीलाल जी नन्दा की जन्मकुंडली दी जा रही है। ३।४ जुलाई १८९८ को १२-५३ बजे रात्रि में जन्म हुआ। वक्री शनि वृश्चिक राशि का अष्टम में है। बली मंगल से दृष्ट है। अब भगवत्कृपा से ७७ वें वर्ष में हैं। स्वस्थ हैं। सारावली अध्याय १० श्लोक ५ में भी यह योग दिया है परन्तु योग की पूर्णता के लिए यह भी कहा गया है कि चन्द्रमा केन्द्र में या छठे, आठवें होना चाहिए:—

वक्री शनिर्भौमगृहं प्रपन्नश्चन्द्रेऽष्ट षष्ठेऽथ चतुष्टये वा ।
कुजेन सम्प्राप्तबलेन दृष्टो वर्षद्वयं जीवयति प्रजातम् ॥ ४० ॥

(३) बृहस्पति, मेष या वृश्चिक राशि का लग्न से अष्टम हो तथा सूर्य, चंद्र मंगल एवं शनि दृष्ट हो, शुक्र से दृष्ट न हो, तो जन्म से ३ वर्ष के अभ्यन्तर में बच्चे की मृत्यु हो जाती है। यही योग सारावली अध्याय १० श्लोक ४ में दिया गया है। ४१।

(४) यदि लग्न से छठे, आठवें कर्क राशि का बुध हो और बुध को चन्द्रमा देखे तो बच्चा सर्व बलान्वित (अन्य सबल ग्रह) होने पर भी चार वर्ष की आयु में मर जाता है ॥ ४२ ॥

(५) यदि (i) सूर्य, मंगल, चन्द्रमा गुरु एकत्र हों या (ii) चन्द्र, मंगल बृहस्पति तथा शनि एकत्र हों या (iii) सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, शनि एकत्र हों तो केवल ५ वर्ष की आयु हो। आगे इन्हीं ग्रंथकार ने अध्याय ८ में चार ग्रह एकत्रित होने का फल कहा है, कि ५ वर्ष की अल्पायु है—ऐसा कुछ नहीं कहा है। अष्टम अध्याय के श्लोक १५, १६, और २३ का अवलोकन करें ॥ ४३ ॥

(६) यदि शनि कर्क नवांश में हो और चन्द्रमा से दृष्ट हो या लग्नेश पर भी चंद्रमा की दृष्टि हो तो छै वर्ष की आयु हो ॥ ४४ ॥

(७) यदि लग्न स्पष्ट निगल, अहि, विहंग या पाश द्रेष्काण में हो और उस द्रेष्काण में लग्न में—पापग्रह हो और लग्नेश की लग्न पर दृष्टि न हो तो ७ वर्ष की आयु हो। कौन कौन से द्रेष्काण निगल, अहि (सर्प), विहंग या पाश होते हैं, इसके लिये देखिए अध्याय ५ श्लोक ५५ ॥ ४५ ॥

(८) लग्न में सूर्य, मंगल, शनि हों सप्तम में क्षीण चन्द्रमा वृष या तुला का हो और उस पर बृहस्पति की दृष्टि न हो तो ७ या ८ वर्ष की आयु में मृत्यु हो। मूल में "शशी क्षीण:" पाठ है। सूर्य से सप्तम क्षीण चन्द्रमा हो नहीं सकता। इस कारण कृष्णपक्ष का चन्द्रमा यह अर्थ करना है। यही योग सारावली अध्याय १० श्लोक १०२ में भी दिया गया है ॥ ४६ ॥

(९) यदि सूर्य, चन्द्र, मंगल लग्न से पंचम स्थान में हों तो जातक की नवें वर्ष में मृत्यु होती है ॥ ४७ ॥

(१०) श्लोक ४८ में २ योग कहे गये हैं। (i) लग्नेश पापग्रह हो, तथा चन्द्रमा से बारहवें घर में हो और उसे (लग्नेश को) क्रूरग्रह देखता हो। (ii) लग्नेश पापग्रह हो, चन्द्रमा के नवांश में हो और क्रूरग्रह दृष्ट हो। इन दोनों योगों में ९ वर्ष की आयु हो। किन्तु सारावली अध्याय १० श्लोक १०५में निम्न लिखित योग है:—यदि लग्नेश पापग्रह हो, कर्क नवांश में स्थित होकर चन्द्रमा से बारहवें घर में हो और क्रूरग्रहों से दृष्ट हो तो नौ वर्ष की आयु में बच्चे की मृत्यु होती है।

लग्नाधिपतिः पापः शशिनोंशे रिःफगो यदि च चंद्रात्
क्रूरैर्विलोक्यमानो मारयति शिशुं नवभिरब्दैः ॥४८ ॥

१० से १६ वर्ष की वय तक मृत्यु योग

अब क्रमशः १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८ वर्ष तक की वय में मृत्यु योग कहते हैं:—

मृगांशकस्थिते मन्दे सौम्यदृष्टिसमन्विते ॥
जन्मप्रभृतिशत्रुत्वं तस्यायुर्दशवत्सरम् ॥४६॥
रविणा युक्तः शशिजः सौम्यैर्दृष्टो विनाशयति ॥
एकादशभिर्वर्षैर्जातं नृपतुल्यभोगसम्पन्नम् ॥५० ॥
चन्द्रलग्नाधिपः सूर्यः स्वपुत्रेण समन्वितः ॥
लग्नादष्टमराशिस्थो द्वादशाब्दे सितेक्षितः ॥५१॥
अल्यंशकस्थिते मन्दे सूर्येणैव निरीक्षिते ॥
पितृद्वेषसमायुक्तो द्वादशाब्दं च जीवति ॥५२॥
तुलांशकस्थिते मन्दे जीवदृष्टिसमन्विते ॥
त्रयोदशाब्दे मरणं जातस्य पितृवैरिणः ॥५३॥
कन्यांशकस्थिते मन्दे सौम्यदृष्टिसमन्विते ॥
चतुर्दशाब्दे मरणं जातः कोपी समेति च ॥५४॥
सिंहांशकस्थिते मन्दे राहुणा च निरीक्षिते ॥
शस्त्रपीडा भवेत्तस्य चायुः पञ्चदशाब्दकम् ॥५५॥
कर्कांशकस्थिते मन्दे जीवदृष्टिसमन्विते ॥
सर्पपीडा भवेत्तस्य षोडशाब्दान्मृतिं वदेत् ॥५६ ॥
यमांशकस्थिते मन्दे लग्ननाथेन वीक्षिते ॥
रणशूरो महाभोगी मृतः सप्तदशाब्दके ॥५७ ॥
परस्परक्षेत्रसमन्वितौ वा रन्ध्रेशलग्नाधिपती न सौम्यौ ॥
रिःफारिभे वा गुरुणा वियुक्ते त्वष्टादशाब्दे निधनं प्रयाति ॥५८ ॥
जीवांशकस्थिते मन्दे राहुणा च निरीक्षिते ।
देहाधिपे शुभादृष्टे जातः सद्यो विनश्यति ॥
तदीशस्तुङ्गभागश्चेदायुरेकोनविंशतिः ५६॥

(१) यदि शनि मकर नवांश में हो और बुध से दृष्ट हो तो जन्म से ही शत्रुत्व हो (अर्थात् बच्चा जब जन्म ले तभी से उससे लोग शत्रुता करें. क्योंकि

नवजात बच्चा तो क्या शत्रुता करेगा ?) और उसकी १० वर्ष की आयु हो। प्रायः पिता या माता पराश्रित या गरीब हो या जहां सौतेली मां या भाई, बहिन होते हैं, वहां जन्म से ही बच्चा शत्रुता का भाजन हो जाता है। ४८।

(२) यदि सूर्य और बुध एक साथ हो और शुभग्रहों से दृष्ट हो तो नृपति के समान भोग सम्पन्न जातक की ११ वें वर्ष में मृत्यु होती है। जातक पारिजात में बहुत सा विषय सारावली से लिया गया है। ऐसा ग्रंथकार ने अध्याय १ श्लोक ३ में कहा भी है कि यही योग सारावली अध्याय १० श्लोक १०१ में दिया गया है। प्रायः बुधादित्य अच्छा माना जाता है। शुभग्रह की दृष्टि और भी सुन्दर योग करेगी। परन्तु यहाँ ११ वर्ष की वय में मृत्यु कहा। क्या हेतु है ? बुद्धि या तर्क गम्य नहीं है।
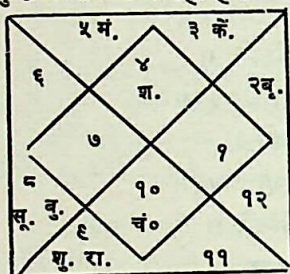
साथ में भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी जी की जन्मकुंडली दी जाती है। इनका जन्म १९ नवम्बर१९१७ को प्रयाग में हुआ। सूर्य, बुध एक साथ है; शुभग्रह बृहस्पति से पूर्ण दृष्ट हैं। अब ५८ वाँ वर्ष चल रहा है। भगवत्कृपा से स्वास्थ्य उत्तम है। यह योग घटित होता है। परन्तु ग्रंथकार ने जो फल कहा है, वह नहीं हुआ। ज्योतिषियों को फलादेश करते समय सूक्ष्म विचार करना चाहिए। आधुनिक परिस्थिति में बहुत से बालारिष्ट योगों का फल नहीं मिलता। ५०।

(३) चन्द्रमा यदि सिंह राशि में हो और सूर्य तथा शनि अष्टम में शुक्र से दृष्ट हों (शुक्र की अधिक से अधिक एक चरण दृष्टि हो सकती है) क्योंकि शुक्र सूर्य से अधिक से अधिक ४७° दूर हो सकता है तो १२ वर्ष की आयु हो।

होरेश्वरो निधनगे बलिभिश्च पापै-
र्दृष्टः करोति खलु मासि मृतिं चतुर्थे।
जन्मेश्वरो दिनकरः ससुतस्तथैव
दृष्टः सितेन नवमप्रतिमैश्च वर्षैः॥

सारावली अध्याय १० का श्लोक २९ है—

जन्माधिपतिः सूर्यः स्वपुत्रसहितोऽष्टमे भवति राशौ।
वर्षै राशिप्रमितैः मरणाय सितेन संदृष्टः॥ ५१॥

(४) शनि वृश्चिक नवांश में हो, सूर्य से दृष्ट हो तो पितृद्वेष हो अर्थात् पुत्र में पिता का शत्रुभाव हो) और बच्चे की १२ वर्ष की आयु हो। ५२।

गुणाकर ने कहा है :—

(५) यदि शनि तुला नवांश में हो और बृहस्पति से दृष्ट हो तो पितृद्वेषी हो और १३ वें वर्ष में (जातक की) मृत्यु हो। ५३।

(६) यदि शनि कन्या नवांश में हो और बुध से दृष्ट हो तो जातक क्रोधी और १४ वर्ष में मृत्यु हो। ५४।

(७) यदि शनि सिंह नवांश में हो और राहु से दृष्ट हो तो जातक को शस्त्र पीड़ा (तलवार आदि की चोट या आपरेशन में) हो और १५ वर्ष की आयु हो। ५५।

(८) यदि शनि कर्क नवांश में हो और बृहस्पति से दृष्ट हो तो सर्प पीड़ा (सर्प से काटा जाना) हो और १६ वर्ष में मृत्यु हो।
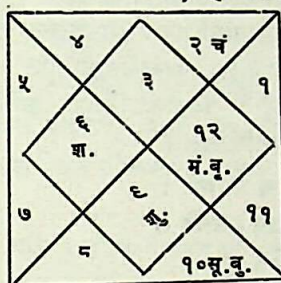
यह श्री नरहरिवामन रत्न-पारखी जी की जन्मकुंडली है। २७ जनवरी १८९३ को जबलपुर में जन्म हुआ। शनि स्पष्ट ५-२०°–२६′–५″ है। बृहस्पति स्पष्ट ११-२६°,–२९′, ४०″ है। शनि कर्क नवांश में है। बृहस्पति से दृष्ट सम्प्रति ८३ वाँ वर्ष चल रहा है।

गोटे गांव बम्बई में रहते हैं। भगवत्कृपा से स्वस्थ हैं। ग्रंथकार ने जो मूल में लिखा है, उसकी व्याख्या हमने अवश्य की है, परन्तु पाठक को बालारिष्ट योगों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में सावधान कर देना भी हमारा कर्तव्य है। ५६।

(९) यदि शनि मिथुन नवांश में हो और लग्नेश से दृष्ट हो तो जातक युद्ध में शूरवीर और महाभोगी हो किन्तु १७ वें वर्ष में मृत्यु हो। ५७।

(१०) ५८ वें श्लोक में २ योग कहे गए हैं। दोनों का फल १८ वें वर्ष में मृत्यु है। (i) यदि लग्नेश और अष्टमेश एक दूसरे की राशि में हो अर्थात् लग्नेश अष्टम में और अष्टमेश लग्न में (यदि लग्नेश २ राशियों का स्वामी हो या अष्टमेश २ राशियों का स्वामी हो तो अष्टमेश लग्न में न होकर लग्नेश की अन्य राशि में हो सकता है या लग्नेश अष्टमेश की अन्य राशि में हो सकता है, परन्तु यही अर्थ उचित है कि लग्नेश अष्टम में हो और अष्टमेश लग्न में।) और "सौम्यग्रह न हों।" मूल में शब्द आए हैं—'न सौम्यौ, जिसका कतिपय टीकाकार अर्थ करते हैं कि लग्नेश तथा अष्टमेश पापग्रह न हों। यदि यह अर्थ

करें तो केवल मकर लग्न वाली कुंडली में यह योग लागू होगा क्योंकि लग्नेश तथा अष्टमेश दोनों क्रूर होंगे। मेष लग्न में भी लग्नेश अष्टमेश क्रूर होता है, परन्तु दोनों स्थानों का एक ही स्वामी होने से क्षेत्र परिवर्तन नहीं हो सकता। अन्य टीकाकार न सौम्यौ का अर्थ करते हैं कि लग्न और अष्टम में सौम्यग्रह न हो। अथवा (ii) अष्टमेश तथा लग्नेश लग्न से द्वादश और षष्ठ में हों और साथ में १२ वें या छठे घर में बृहस्पति न हो। यहाँ भी न सौम्यौ का क्या अर्थ लिया जावे यह आपत्ति खड़ी होती है। इससे बढ़कर आपत्ति यह उपस्थित होती है कि जातक पारिजात में स्पष्ट कहा है 'गुरुणा वियुक्ते' अर्थात् बृहस्पति रहित हो लग्नेश या अष्टमेश बृहस्पति न हो और सर्वार्थचिन्तामणि में जो यही योग दिया गया है, उसमें लिखा है 'वागधिपेन युक्ते', वागधिप-बृहस्पति से युक्त हो। दोनों में परस्पर विरुद्ध निर्देश है। वागधिपेन युक्ते का वागधिपे न युक्ते यह अर्थ करने से जातक पारिजात तथा सर्वार्थचिन्तामणि का सामञ्जस्य हो जावेगा। परन्तु यह अर्थ लेने में आपत्ति यह होती है कि बृहस्पति की युति या दृष्टि तो आयु वृद्धिकर है तब आयु का ह्रास क्यों? विद्वान विचार करें। सर्वार्थ चिन्तामणि अध्याय १० का श्लोक ७१ निम्नलिखित है:—

परस्परक्षेत्रसमास्थितौ वा लग्नेशरंध्राधिपतौ न सौम्यौ।
रिःफारिगे वागधिपेन युक्ते त्वष्टादशाब्दे निधनं प्रयाति॥

यहाँ श्लोक ५८ की व्याख्या समाप्त होती है। ५८।

(११) यदि शनि धनु या मीन नवांश में हो, उस पर राहु की दृष्टि हो और लग्नेश पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो सद्यः विनाश को प्राप्त हो। किन्तु लग्नेश यदि अपने उच्च नवाँश में हो तो १९ वर्ष की आयु हो।

राहु, केतु की दृष्टि बहुत से विद्वान नहीं मानते। कुछ राहु की दृष्टि मानते हैं:—

सुतमदननवांते पूर्णदृष्टिं तमस्य
युगलदशमगेहे चार्धदृष्टिं वदन्ति।
सहजरिपुविपश्यन् पाददृष्टिं मुनीन्द्रा
निजभवनमुपेतो लोचनान्धः प्रदिष्टः॥

इस प्रकार मत मतान्तर है। ५९।

२० वर्ष से ३२ वर्ष की वय में मृत्युयोग

केन्द्रेषु पापेषु निशाकरेण सौम्यग्रहैरीक्षणवर्जितेषु
षष्ठाष्टमे वा यदि शीतरश्मौ जातः सुखी विंशतिवत्सरान्तम्॥६०॥

जावेन सहितः सूर्यो लग्नस्थः कीटराशिगः॥
अष्टमाधिपतौ केन्द्रे द्वाविंशत्यब्दके मृतिः ॥६१॥
मन्दोदये शत्रुराशौ सौम्यैरापोक्लिमोपगैः॥
षड्विंशत्यब्दके वा स्यात सप्तविंशतिवत्सरे ॥६२॥
रन्ध्रेशे जीवसंदृष्टे पापे पापनिरीक्षिते ।
रन्ध्रस्थे जन्मपे मृत्युरष्टाविंशतिवत्सरे ॥६३॥
चन्द्रो मन्दसहायस्तु सूर्यश्चाष्टमसंस्थितः॥
एकोनत्रिंशके वर्षे जातो यमपुरं व्रजेत् ॥६४॥
जन्मरन्ध्रपयोर्मध्ये निशानाथे व्यये गुरौ ॥
सप्तविंशतिवर्षे वा त्रिंशद्वयसि वा मृतिः ॥६५॥
अष्टमाधिपतौ केन्द्रे लग्नेशे बलवर्जिते॥
त्रिंशद्वर्षमितायुष्मान् द्वात्रिंशद्वत्सरे मृतिः ॥६६॥
क्षीणे शशाङ्के यदि पापयुक्ते रन्ध्राधिपे केन्द्रगतेऽष्टमे वा ॥
पापान्विते हीनबले विलग्ने द्वात्रिंशदब्दे निधनं प्रयाति ॥६७॥

यदि केन्द्रों में पापग्रह हों उन पर चन्द्रमा और शुभग्रहों की दृष्टि हो और चन्द्रमा छठे या आठवें हो तो सुखी हो। किन्तु २० वर्ष की आयु हो। सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय १० श्लोक ७२ में यही योग है। ६०।

(२) यदि बृहस्पति के साथ सूर्य लग्न में कीट राशि में हो और लग्न से अष्टम स्थान का स्वामी केन्द्र में हो तो २२ वें वर्ष में मृत्यु हो। एक टीकाकार ने इस श्लोक में 'कीटराशि' का अर्थ कर्क राशि किया है, परन्तु हमारे विचार से कीट राशि का अर्थ वृश्चिक होना चाहिए। क्योंकि राशियों के बलाबल प्रसंग में भगवान गार्गि ने कहा है: 'सप्तमे वृश्चिकः कीटो बलवान्परिकीर्तितः।'

सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय १० श्लोक ७३ में यही योग है। ६०।

(३) यदि लग्न में शत्रु राशि का शनि हो और शुभग्रह (सभी शुभग्रह) आपोक्लिम में हों तो २६ वें या २७वें वर्ष में मृत्यु हो। सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय १० श्लोक ७६ में यही योग दिया गया है। ६२।

(४) यदि अष्टमेश पापग्रह हो और पापग्रह से दृष्ट हो तथा बृहस्पति से भी दृष्ट हो और जन्मराशिपति (जिस राशि में जन्म के समय चन्द्रमा हो उस

का स्वामी) अष्टम में हो तो २८ वें वर्ष में मृत्यु हो। यह योग सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय १० श्लोक ८० से लिया गया है। ६३।

(५) यदि चन्द्रमा के साथ शनि और सूर्य जन्म लग्न से अष्टम हो तो २९ वें वर्ष में मृत्यु हो। एक टीकाकार ने इस श्लोक में 'चन्द्रो मन्दसहायस्तु' का अर्थ लिया है कि चन्द्रमा और शनि में स्थान सम्बन्ध या दृष्टि संबन्ध हो किन्तु यह अर्थ हमें सम्मत नहीं है। जातक पारिजातकार ने यह योग सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय १० श्लोक ७० से लिया है। ६४।

(६) यदि जन्मपति (चन्द्रमा जिस राशि में हो उसका स्वामी) और अष्टमेश इन दोनों के मध्य में हो और व्यय (जन्म लग्न से १२ वें घर) में बृहस्पति हो तो २७ या ३० वर्ष की वय में मृत्यु हो। 'मध्य में' का क्या अर्थ? यदि चन्द्रमा जिस राशि में है, उसकी अगल बगल की राशियों में जन्मपति तथा अष्टमेश हों अथवा एक ही राशि में या दो अव्यवहित राशियों में तीनों (जन्मपति, चन्द्रमा, अष्टमेश) इस प्रकार अवस्थित हों कि चन्द्रमा दोनों के बीच में हो। यह योग सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय १० का ७९ वां श्लोक है। ६५।

(७) यदि अष्टमेश लग्न में हो और लग्नेश बलहीन हो तो ३० वर्ष की आयु हो; ३२ वें वर्ष में मृत्यु हो। (३१ वाँ वर्ष कहाँ गया?) सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय १० का श्लोक ८१ निम्नलिखित है:—

अष्टमाधिपतौ केन्द्रे लग्ने तु बलवत्तरे।
त्रिंशद्वर्षाण्यसौ जीवेद् द्वात्रिंशज्जातकक्रमात् ॥

सर्वार्थचिन्तामणि के इस श्लोक में द्वितीय चरण का पाठ होना चाहिए' लग्नेशाद्बलवत्तरे ॥ ६६ ॥

(८) यदि क्षीण चन्द्रमा पापग्रह के साथ हो, अष्टमेश केन्द्र या अष्टम में हो लग्न बलहीन हो और उसमें पापग्रह हो तो ३२ वें वर्ष में मृत्यु हो। सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय १० श्लोक ८६ से यह योग लिया है, परन्तु वहां क्षीण चन्द्र का सूर्य के साथ होने का उल्लेख है:—वहाँ लिखा है :—

क्षीणे शशांके दिवसेशयुक्ते रंध्राधिपे केन्द्रगतेऽष्टमेऽपि।
पापान्विते लग्नगते विहीने द्वात्रिंशदब्दे निधनं प्रयाति ॥

अब आगे अन्य अल्पायु योग कहते हैं। ६७।

अन्य अल्पायु योग

षष्टाष्टमे व्यये पापे लग्नेशे दुर्बले सति।
अल्पायुरनपत्यो वा शुभदृग्योगवर्जिते ॥६८॥

क्रूरषष्ठ्यंशके वाऽपि रन्ध्रेशे भानुजेऽपि वा ॥
पापान्विते पापखेटे चाल्पमायुर्विनिर्दिशेत् ॥ ६९ ॥
व्ययार्थौ पापसंयुक्तौ शुभदृष्टिविवर्जितौ ॥
क्रूरषष्ठ्यंशसंयुक्तौ वाऽल्पमायुर्विनिर्दिशेत् ॥ ७० ॥

(१) यदि लग्न से छठे, आठवें, बारहवें घरों में पापग्रह हो, लग्नेश दुर्बल हो, इन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो जातक अल्पायु हो या अनपत्य (सन्तान-हीन) हो। ६८।

(२) यदि शनि या रन्ध्रेश (जो पाप ग्रह हों, शुभ ग्रह नहीं) पाप ग्रह के साथ साथ हो और क्रूर षष्टि-अंश में हो तो अल्पायु हो। ६९।

(३) लग्न से द्वितीय तथा व्यय में––दोनों में पापग्रह हों––क्रूर षष्टि-अंशों में हों, उन पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो अल्पायु हो।

षष्टि-अंशों के लिए देखिए अध्याय १ श्लोक ३८-४३। अल्पायु किस वर्ष की वय तक समझी जावे, इसके लिए देखिए इस अध्याय का श्लोक ७। यहाँ अल्पायु योग समाप्त होते हैं। इति द्वात्रिंशद्वत्सरान्तर्भूतबालारिष्टयोगारिष्ट-स्वल्पायुर्भेदाः समाप्ताः।

अरिष्ट भंग

ऊपर अरिष्ट कारक योग कहे–अर्थात् वे योग जिनके होने से शीघ्र मृत्यु हो, या अल्पवय में मृत्यु हो। अब चन्द्रमा, बृहस्पति या अन्य शुभ ग्रह, लग्नेश, चन्द्र राशीश, राहु आदि की विशेष स्थिति रहने पर अरिष्ट भंग हो जाता है अर्थात् अल्पवय में मृत्यु नहीं होती–उन्हीं योगों को कहते हैं:––

अत्यन्तसत्त्वे यदि लग्ननाथे
सौम्यान्विते तादृशदृष्टियोगे।
केन्द्रस्थिते पापदृशा विहीने
सद्भाग्ययुग् जीवति दीर्घमायुः ॥ ७१ ॥
चन्द्रः सम्पूर्णगात्रस्तु सौम्यक्षेत्रांशगोऽपि वा ॥
सर्वारिष्टनिहन्ता स्याद् विशेषाच्छुक्रवीक्षितः ॥ ७२ ॥
जीवभार्गवसौम्यानामेकः केन्द्रगतो बली ॥
पापकृद्योगहीनश्चेत्सद्योऽरिष्टस्य भङ्गकृद् ॥ ७३ ॥
स्वोच्चस्थः स्वगृहेऽथवापि सुहृदां वर्गे च सौम्यस्य वा
सम्पूर्णः शुभवीक्षितः शशधरो वर्गे स्वकीयेऽपि वा।

शत्रूणामवलोकनादिरहितः पापैरयुक्तेक्षितोऽ-
रिष्टं हन्ति सुदुस्तरं दिनमणिः प्रालेयराशिं यथा ॥ ७४ ॥
पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां
कृष्णेऽथवाऽहनि शुभाशुभदृष्टमूर्तिः ।
तं चन्द्रमा रिपुविनाशगतोऽपि नून-
मापत्सु रक्षति पितेव शिशुं प्रजातम् ॥ ७५ ॥
केन्द्रोपगोऽतिबलवान् स्फुरदंशुमाली
स्वर्लोकराजसचिवः शमयेदवश्यम् ।
एको बहूनि दुरितानि सुदुस्तराणि
भक्त्या प्रयुक्त इव शूलधरे प्रणामः ॥ ७६ ॥
लग्नेशो बलयुक्तश्चेत् त्रिकोणे वा चतुष्टये ॥
अरिष्टयोगजातोऽपि बालो जीवति निश्चयः ॥ ७७ ॥
यस्य जन्मनि तुङ्गस्थाः स्वक्षेत्रस्थानमाश्रिताः ॥
चिरायुषं शिशुं जातं कुर्वन्त्यत्र न संशयः ॥ ७८ ॥
राहुस्त्रिषष्ठलाभे लग्नात्सौम्यैर्निरीक्षितः सद्यः ॥
नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तूलसङ्घातम् ॥ ७९ ॥
अजवृषकर्किविलग्ने रक्षति राहुर्निरन्तरं बालम् ॥
पृथिवीपतिः प्रसन्नः कृतापराधं यथा पुरुषम् ॥८०॥
निशाकरः शोभनवर्गयुक्तः
शुभेक्षितः पूरितदीप्तिजालः ।
जातस्य निःशेषमरिष्टमाशु
निहन्ति यद्वद् गरलं गरुत्मान् ॥ ८१ ॥
चन्द्राधिष्ठितराशीशे लग्नस्थे शुभवीक्षिते ॥
भृगुणा वीक्षिते चन्द्रे स्वोच्चेऽरिष्टं हरेत्तदा ॥८१ ॥
लग्नाधिपोऽतिबलवानशुभैरदृष्टः
केन्द्रस्थितः शुभखगैरवलोक्यमानः ।
मृत्युं विधूय विदधाति स दीर्घमायुः
सार्धं गुणैर्बहुभिरर्जितराजलक्ष्म्या ॥ ८३ ॥

(१) यदि लग्नेश अत्यंत बलवान हो, शुभ ग्रह से युत और दृष्ट हो, केन्द्र में स्थित हो, उस पर पाप ग्रह की दृष्टि न हो, तो भाग्यशाली होता है और आयु दीर्घ होती है। ग्रह बलवान् कब होता है यह अध्याय २ में बताया जा चुका है। साधारणतः अपनी राशि अपने नवांश तथा अपने अन्य वर्गो में स्थित, केन्द्र में, शुभ युत, शुभ दृष्ट, पाप ग्रह से अयुत, पाप ग्रह से अरिष्टग्रह बलवान माना जाता है। ज्योतिष में अल्पायु, मध्यायु, दीर्घायु विशेष अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, यह ध्यान में रखना चाहिए। इस श्लोक में लग्नेश की बलवत्ता के कारण अरिष्ट भंग कहा गया है। यही योग सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय ११ श्लोक २ में कहे गए है। शब्द भी वही है। केवल २–३ शब्दों का हेर फेर है। ७१।

(२) चन्द्रमा सम्पूर्ण गात्र (पूरा प्रकाशमान विम्ब) हो, हाँ शुभ ग्रह की राशि या शुभ ग्रह के नवांश में हो (यदि शुभ ग्रह की राशि तथा शुभ ग्रह के दोनों में हो तो और भी उत्तम), तो सब अरिष्टों का नाश करता है, विशेषकर यदि शुक्र से दृष्ट हो। श्री गुलजारी लाल जी नन्दा की जन्मकुंडली। पूर्णिमा नवांश के आस पास का जन्म है। चन्द्रमा वृहस्पति की राशि में है। जन्म ३/४ जुलाई सन् १९९८ की रात्रि में श्री गुलजारी लाल जी नन्दा का जन्म हुआ। यह
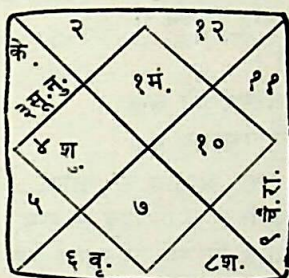
दो बार भारत के प्रधानमंत्री बने और अनेक वर्षों तक भारत सरकार के मंत्री पद पर प्रतिष्ठित रहे। वहुत विद्वान्, धार्मिक और भगवद्भक्त हैं। श्री नन्दा जी की जन्मकुंडली साथ में दी गई है। इस श्लोक में चन्द्रमा की वलवत्ता के कारण अरिष्ट भंग कहा गया है। ७२।

(३) वृहस्पति, शुक्र और बुध—यदि इनमें एक भी बलवान् होकर केन्द्र में हो, और पाप ग्रह से न युत हो, न दृष्ट हो तो सद्यः अरिष्ट भंग करता है। यहां शुभ ग्रह कृत अरिष्ट भंग कहा गया है। ७३।

(४) यदि चन्द्रमा अपनी उच्च राशि, स्व राशि, अपने या मित्रों के वर्ग में हो, सम्पूर्ण हो (पूर्णिमा के आसपास जन्म हो) शुभ ग्रह से दृष्ट हो, शत्रु से युत या दृष्ट न हो, पाप ग्रहों से युत या दृष्ट न हो तो सूर्य जैसे निविड़ कुहरे का नाश कर देता है। वैसे ही अरिष्ट का नाश कर देता है। यहां बलवान् चंद्रमा जनित अरिष्ट भंग योग कहा है। ७४।

(५) पहिले इसी अध्याय के ३५वें श्लोक में जो चन्द्रमा जनित अरिष्ट योग कहा है, उसका परिष्कार कैसे होता है, यह इस श्लोक में कहा है। यह

श्लोक मांडव्य का है, जो हम पहिले उद्धृत कर चुके हैं। मांडव्य के श्लोक में एकाध शब्द का हेर फेर कर जातकपारिजातकार ने यह श्लोक दे दिया है।

(i) यदि शुक्ल पक्ष का जन्म हो, रात्रि का जन्म हो और चन्द्रमा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो छठे या आठवें घर में होने पर भी पिता की भांति बच्चे की रक्षा करता है।

(ii) यदि कृष्ण पक्ष का जन्म हो, दिन का जन्म हो, चन्द्रमा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो चन्द्रमा छठे या आठवें घर में होने पर भी पिता की भांति बच्चे की रक्षा करता है।

मूल में शब्द आए हैं 'शुभाशुभदृश्यमानैः' जिसका कतिपय टीकाकार अर्थ करते हैं कि शुक्ल पक्ष रात्रि का चन्द्रमा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो और अनुक्रम से कृष्णपक्षदिन का चन्द्रमा पाप ग्रह दृष्ट हो तो बच्चे की रक्षा करता है। इस अर्थ की पुष्टि सर्वार्थचिन्तामणि और जातकाभरण के निम्नलिखित श्लोकों से होती है। सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय ११ का श्लोक ७ है---

शुक्ले च पक्षे यदि रात्रिजन्म चन्द्रोऽपि षष्ठाष्टमराशियुक्तः।
शुभेक्षितः सन्निह कृष्णपक्षे दृश्यः सपापैरवति प्रसूतम् ॥

जातकाभरण चन्द्रारिष्टभंगाध्याय का श्लोक ५ है।

वलक्षपक्षे यदि जन्म रात्रौ कृष्णे दिवाष्टारिगतोऽपि चन्द्रः।
क्रमेण दृष्टः शुभपापखेटैः पितेव बालं परिपालयेत्सः ॥

परन्तु यह अर्थ करने से जातकपारिजात के इसी अध्याय के श्लोक ३५ से विरोध पड़ता है क्योंकि शुक्ल या कृष्ण पक्ष के बिना भेद, दिन में जन्म है या रात्रि का, बिना इस तारतम्य के यह कहा गया है कि छठे या आठवें घर में चन्द्रमा यदि पाप दृष्ट न हो तभी बालारिष्ट नहीं होता। दोनों श्लोकों ३५ तथा ७५ का सामञ्जस्य केवल निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :—

(i) यदि शुक्ल पक्ष में दिन का जन्म हो, छठे या आठवें चन्द्रमा हो तो श्लोक ३५ का अर्थ लेना किन्तु यदि शुक्ल पक्ष रात्रि का जन्म हो तो श्लोक ७५ का।

(ii) यदि कृष्ण पक्ष में रात्रि का जन्म हो, छठे या आठवें चन्द्रमा हों तो श्लोक ३५ का अर्थ लेना किन्तु यदि कृष्ण पक्ष दिन का जन्म हो तो श्लोक ७५ का अर्थ लेना।

(६) यदि उज्ज्वल कान्तियुक्त (सूर्य से दूर) अति बलवान् बृहस्पति केन्द्र (लग्न में या लग्न से चतुर्थ, सप्तम या दशम) में हो तो वह अनेक अरिष्टों को

भंग कर देता है, जैसे भक्तिपूर्वक भगवान् शंकर को प्रणाम करने से अनेक सुदुस्तर पापों का नाश हो जाता है।

यह श्लोक सारावली अध्याय १२ का पहिला श्लोक है। वहां 'चक्र-धरे'— विष्णु को प्रणाम करने से, यहां 'शूलधरे'—शंकर को प्रणाम करने से पापों का जैसे नाश होता है, वैसे ही अरिष्ट भंग होना कहा है। सारावली में लग्नस्थ बृहस्पति की प्रशंसा की गई है। जातक पारिजातकार ने परिधि का विस्तार कर किसी भी केन्द्र में उपर्युक्त प्रकार से स्थित बृहस्पति की सराहना की है। ७६।

(७) यदि लग्नेश केन्द्र या त्रिकोण में हो और बलवान् हो तो अरिष्ट योग में उत्पन्न भी बालक निश्चित जीवित रहता है। ७७।

(८) जिसकी जन्म कुण्डली में ग्रह स्वराशि या उच्चराशि में हों, वह बच्चा निश्चय चिरायु होता है, इसमें सन्देह नहीं है। मूल में 'तुंगस्थाः' 'स्वक्षेत्रस्थान-माश्रिताः' का बहुवचन में प्रयोग है, इसलिए ३ या अधिक ऐसे ग्रह होने चाहिएं। ७८।

(९) राहु यदि लग्न से तीसरे, छठे, ग्यारहवें घर में हो और सौम्य ग्रहों से दृष्ट हो, तो तेज हवा जैसे रूई के ढेर को छिन्न भिन्न कर देती है, वैसे ही वह सब दुरितों (कठिनाइयों, अरिष्टों) का नाश कर देता है। यह सारावली अध्याय १२ का श्लोक ४ है। ७९।

(१०) यदि लग्न में मेष, वृष या कर्क का राहु हो तो निरन्तर बच्चे की रक्षा करता है, जैसे यदि राजा प्रसन्न हो तो अपराधी को भी क्षमा कर जीवन दान देता है। यह सारावली अध्याय १२ का श्लोक १० है। वहां द्वितीय चरण का पाठ है 'रक्षति राहुः समस्तपीडाभ्यः' राहु के विषय में जो जातकपारिजात में लिखा है, वही सर्वार्थचिन्तामणि, जातकाभरण, जातकादेशमार्ग, काल प्रकाशिका आदि में कहा गया है। शौनक, गुणाकर आदि का भी यह मत है। विस्तारभय से उनके उद्धरण नहीं दिए जा रहे हैं।

(११) जैसे गरुड़ (जहरीले साँपों का) विष नाश कर देता है, वैसे ही यदि चन्द्रमा शोभन (उच्च, स्व, शुभ) वर्गों में हो, शुभ ग्रह दृष्ट हो, पूर्ण हो (पक्ष बली) तो जातक के सब अरिष्टों का नाश कर देता है। सारावली अध्याय ११ श्लोक १४ में भी इसी प्रकार का योग है। सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय ११ का श्लोक २१ वही है, जो सारावली में है। थोड़ा सा भेद है :—

स्वोच्चस्थस्वगृहेऽथवापि सुहृदां वर्गेऽपि सौम्येऽथवा
सम्पूर्णः शुभवीक्षितः शशधरो वर्गे स्वकीयेऽथवा।

शत्रूणामवलोकने न पतितः पापैरयुक्तेक्षितो
रिष्टं हन्ति सुदुस्तरं दिनपतिः प्रालेयराशिं यथा ।।

सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय ११, श्लोक ८ में जो योग कहा गया है, वही जातकपारिजातकार ने श्लोक ८१ में लिखा है । शब्द भी प्रायः वही हैं । ८१ ।

(१२) इस श्लोक में २ योग दिए गए हैं: यह सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय ११ का १९ वाँ श्लोक है । वहां से लिया गया है ।

(i) चन्द्रमा जिस राशि में हो, उसका स्वामी लग्न में हो और शुभ ग्रह दृष्ट हो किंवा

(ii) चन्द्रमा अपनी उच्च राशि में हो और शुक्र से दृष्ट हो तो अरिष्ट हरण हो जाता है, अर्थात् बालारिष्ट नहीं होता । सारावली अध्याय १२ श्लोक १७ में कहा है ।

एको जन्माधिपतिः परिपूर्णबलः शुभैर्दृष्टः ।
हन्ति निशाकररिष्टं व्याघ्र इव मृगान् मत्तान् ।।

सारावली का इसी अध्याय का श्लोक १३ है :—

जन्माधिपतिर्लग्ने दृष्टः सर्वैर्विनाशयति रिष्टम् ।
घृष्टोषणविदलाभ्यां प्रत्येककृताञ्जनं शुक्लम् ।।

चन्द्रमा यदि सम्पूर्ण गात्र (पूर्णिमा का) हो या सौम्य क्षेत्र अंश में हो और शुक्र से दृष्ट हो तो अरिष्ट भंग करता है, ऐसा सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय ११, श्लोक ४ में कहा है ।

चन्द्रः सम्पूर्णगात्रस्तु सौम्यक्षेत्रांशगोऽपि वा ।
सर्वारिष्टनिहन्ता स्याद्विशेषाच्छुक्रवीक्षितः ।।

सारावली अध्याय ११ का श्लोक ४ भी है:—

चन्द्रः सम्पूर्णतनुः शुक्रेण निरीक्षितः सुहृद्भागे ।
रिष्टहराणां श्रेष्ठो वातहराणां यथा बस्तिः ।।

किसी किसी टीकाकार ने इस श्लोक ८२ में कहे गए, दोनों योगों को मिलाकर एक योग बना दिया है । हम इस पक्ष में नहीं हैं । ८२ ।

(१३) यह श्लोक वही है जो फलदीपिका अध्याय १३ का २१वां श्लोक है । देखिए फलदीपिका पृष्ठ २६२। यदि लग्न का स्वामी अतिबलवान् हो, अशुभ ग्रहों से दृष्ट न हो केन्द्र में स्थित हो, शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो मृत्यु का निवारण कर जातक को दीर्घायु करता है और जातक को सद्गुणी और विशिष्ट ऐश्वर्यवान् बनाता है । ८३ ।

अथ मध्यमायुः

अब मध्यमायु के योग कहते हैं। अल्पायु, मध्यायु, दीर्घायु किसे कहते हैं, यह पहिले इसी अध्याय के श्लोक ३ में कह चुके हैं।

बलहीने विलग्नेशे जीवे केन्द्रत्रिकोणगे।
षष्ठाऽष्टमव्यये पापे मध्यमायुरुदाहृतम् ॥ ८४ ॥

यदि लग्नेश बलहीन हो (प्रत्येक ग्रह के बलाबल निरूपण का विवेचन अध्याय २ में किया जा चुका है। परन्तु साधारणतः नीच या शत्रु राशि में दुःस्थान स्थित, पाप ग्रहों से दृष्ट, अस्त, (यदि चंद्रमा लग्नेश हो तो पक्ष बल रहित) ग्रह निर्बल समझा जाता है, बृहस्पति केन्द्र या त्रिकोण में हो, लग्न से छठे, आठवें, बारहवें घर में पाप ग्रह हो तो जातक मध्यायु होता है। यहां यह विवेक है कि लग्नेश का निर्बल होना, षष्ठाष्टमव्यय में पाप ग्रह होना अल्पायु करता है किंतु केन्द्रत्रिकोण का बृहस्पति आयु वृद्धि करता है, इस कारण परिणाम में मध्यायु कहा।

द्वात्रिंशद्वत्सरादुपरि सप्ततिपर्यन्तं मध्यमायुर्योगः

३२ वर्ष के ऊपर ७० वर्ष तक मध्यमायु होती है। यहाँ ग्रंथकार ने मध्यमायु का केवल एक योग दिया है। इस कारण अन्य ग्रंथों से मध्यमायु के कुछ योग दिए जाते हैं।

चतुरस्त्रगताः पापा लग्नात्कुर्वन्ति मध्यमायुष्यम्।
चन्द्रात्तथैव दिवसैः सौम्यैरनवीक्षिता न शुभयुक्ताः ॥
सौम्यैः पापांशकार्कस्थैः पापैः केन्द्रगतैस्तथा।
मध्यमायुरयं योगः सौम्यैः केन्द्रविवर्जितैः ॥
सुतदशमे सौम्यैः स्यान्निधने रव्यन्विते व्यये चन्द्रे।
गुरुशुक्रावेकगतौ जातस्तत्रैव मध्यायुः ॥
पापग्रहे रन्ध्रपतौ सचन्द्रे केन्द्रस्थिते वा यदि वा त्रिकोणे।
निरीक्षिते पापखगैर्नभस्थैर्जातस्त्वयस्त्रिंशदुपैति वर्षम् ॥
चन्द्रे कुजर्क्षे तनुगे प्रदृष्टे क्रूरग्रहैः शोभनखेचरेन्द्रैः।
केन्द्राद्बहिस्थैर्निधनं प्रयाति वर्षैस्त्वयस्त्रिंशसमानकस्तु ॥
लग्ने शनौ रात्रिकरेण युक्ते भौमे घटस्थे सुरसङ्ख्य (३३) वर्षैः ॥
गुरुशुक्रौ च केन्द्रस्थौ लग्नेशे पापसंयुते।
आपोक्लिमस्थे सन्ध्यायां जातस्यायू रविव्रयम् (३६)

पापमध्यगते सूर्ये लग्नस्थे शत्रुवेश्मनि ।
जातश्च रोगपीडार्त्तः परमायू रवित्रयम् (३६)
क्रूरान्तरे लग्नगते तदीशे युग्मस्थिते देवगुरौ रिपुस्थे ।
जातस्तु मृत्युं मुनिवह्नि ३७ वर्षैः प्रयाति शास्त्रज्ञपरैः प्रदिष्टम् ॥
अष्टमपतौ विलग्ने स्थिरराशौ जायते नरो यस्तु ।
चत्वारिंशद्वर्षैः (४०) मरणं रन्ध्रे न शुभयुक्ते ॥
लग्नेश्वरे रन्ध्रगते सपापे केन्द्राद्बहिस्थे यदि सौम्यखेटे ।
चत्वारिंशद्वत्सरे ४० मृत्युमेति जातः पुत्रो नान्यथा शास्त्रमेतत् ॥
सभूमिजे रन्ध्रपतौ विलग्ने राशौ स्थिरे वा यदि वा धराजे ।
रिःफेऽष्टमे मृत्युमुपैति जातस्त्वब्दैर्द्विचत्वारि ४२ समानकैर्वा ॥
केन्द्रे गुरौ कर्मणि सूर्यपुत्रे लग्ने चरे वेदयुगैः ४४ समानैः ॥
अष्टमाधिपतौ केन्द्रे भौमे लग्नं समाश्रिते ।
अर्कार्कजौ त्रिषष्ठस्थौ जीवेद्द्वचतुष्टयम् (४४) ॥
स्वोच्चे विलग्ने क्षितिनन्दने च जीवेऽस्तगे कर्मणि सूर्यपुत्रे ।
जातो धनाढ्यो बहुशास्त्रवेत्ता वेदाब्धि (४०)वर्षैर्निधनं प्रयाति ॥
जन्माधिपे रन्ध्रगते सपापे पापान्विते लग्नपतौ रिपुस्थे ।
बलान्विते वा शुभदृग्विमुक्ते पञ्चाब्धि (४५) वर्षैर्निधनं प्रयाति ॥
मेषे शशाङ्के तनुगे सुपूर्णे सौम्यैक्षिते भूपतिरत्र जातः ।
पापग्रहाणां च दशाविहीने नागाब्धि (४८) वर्षैर्निधनं प्रयाति ॥
वर्गोत्तमांशगे चन्द्रे लग्नस्थे पापवीक्षिते ।
सौम्यैर्बलविहीनैश्च द्वादशाब्दचतुष्टयम् (४८) ॥
लग्नेशे निधनांशस्थे लग्नांशे निधनेश्वरे ।
पापयुक्तस्तदा जातः पञ्चाशद्वर्षजीवितः ॥
द्विशरीरोदयजाते मन्दे चन्द्रे व्ययेऽष्टमे वाऽपि ।
जातस्तत्र मनुष्यो जीवेद्वर्षाणि द्विपञ्चाशत् (५२) ॥
शनैश्चरो लग्नगतः सहायस्त्वन्येन चन्द्रो व्ययभेऽष्टमाः स्युः ।
वेदान्तविज्ञानसुशीलवृत्तो जातस्तु मृत्युं नयनेषु ५२ वर्षैः ।
चापे गुरौ लग्नगतेऽष्टमस्थे भौमे सराहौ मुनिबाण ५७ वर्षे ।
रन्ध्रेश्वरे कामगते शशाङ्के पापान्विते षण्मृतिगेऽष्टबाणे (५८) ॥
शन्यंशे लग्नेशे निधनेशसमन्विते निशानाथे ।
षष्ठेऽष्टमे व्यये वा जीवेज्जातोऽष्टपञ्चाशत् (५८) ॥
षष्टाष्टमव्ययगतैर्ग्रहैः समस्तैर्नृपालयोगे च ।
अस्मिन् योगे जातः परमायुश्चाष्टपञ्चाशत् ॥५८॥

यस्य केन्द्रे पापयुक्ते लग्ने क्रूरविवर्जिते ।
षष्टिवर्षात् परं नास्ति पापैः पञ्चमसंस्थितैः ॥

लग्नेशे व्ययसंस्थे च क्षीणे पापयुतेऽपि वा ।
षष्टिवर्षात्परं नास्ति न लग्ने च बृहस्पतिः ॥

लग्नाधीशान्मृत्युषष्ठव्ययस्थाः पापाः सन्तो नैधनं वर्ज्यसंस्थाः ।
अस्मिन् योगे जायते यो मनुष्यस्तस्यायुः स्यात् षष्टिवर्ष ६० प्रदिष्टम् ।

सौरे विलग्ने, हिबुके शशाङ्के, कुजे कलत्रे, गगने दिनेशे ।
कवीज्यसौम्येष्विह तैर्युतेषु नरेश्वरो जीवति वर्षषष्ट्या ॥

लग्नाधिमाने विबुधारिपूज्ये बुधेज्यचन्द्रैः परिपश्यमाने ।
जातं नरं भूमिपतिं धनाढ्यं करोति षष्ट्या सुतमेन्द्रपूज्ये ॥

सिते विलग्ने बुधभास्करात्मजौ चतुष्टयस्थाः परमोच्चखेचराः ।
तृतीयलाभर्क्षगतास्तु योगे महीपतिः स्यान्निधनं च षष्ट्या ॥

सरन्ध्रगे देवगुरौ विलग्ने कुम्भे सपापे यदि केन्द्रराशौ ।
सर्वज्ञानां पुण्यवान् शास्त्रवेत्ता जातस्तु षष्ट्या ६० निधनं प्रयाति ॥

केन्द्रे समीपे तनुपे व्ययस्थे लग्नेश्वरे रन्ध्रगते हि वह्नौ ।
लोकान्तरं प्रापयति प्रजातं कुशीलवृत्तं कुलपांसनं तम् ॥

होराजन्माधिपती केन्द्रगतौ मृत्युनाथसंयुक्तौ ।
लग्नचतुष्टयहीने देवगुरौ पञ्चषष्टि ६५ वर्षान्तम् ॥

चन्द्रे विलग्ने स्वगृहे प्रयाते नीचे शनौ भास्करे सप्तमे च ।
अस्मिन् योगे मानुषो ज्ञातिमुख्यो जीवेत् षष्टिः पञ्चभिः सम्प्रयुक्ता ६५॥

होराजन्माधिनाथौ निधनमुपगतौ मृत्युनाथे च केन्द्रे
योगे जातो नरोऽस्मिन् जनयति न परं कीर्त्तिवित्तान्वितं च ।
षष्ट्यां षड्भिर्युतायां (६६) निधनमभिहितं नन्दकोक्ते तदिघ्नम्
वर्षे त्रिंशेऽथवास्यास्त्वखिलमिति खगैर्जायते पार्थिवेन्द्रः ॥

जीवे विलग्ने बुधसूर्ययुक्ते मीने शनौ द्वादशे शीतरश्मौ ।
जातो योगे चार्थवान् मृत्युभाक् च जीवेत् षष्ट्या षट्सहायो (६६)
मनुष्यः ॥

नक्षत्रनाथसहितः सविता नभस्थः सौरिर्विलग्नसहितो हिबुके सुरेज्यः ।
अस्मिन् योगे जायमानो मनुष्यः क्षोणीपतिर्नैधनमष्टषष्ट्या (६८) ॥

अर्ककुजमन्दयुक्ते बलवर्जिते देवराट्पूज्ये ।
चन्द्रो व्यये सुते वा सप्ततिवर्षाणि (७०) जीवति प्रायः ॥

नीचे मन्दे केन्द्रगे वा त्रिकोणे सौम्ये केन्द्रे भास्करे वा ससौम्ये ।
योगे जातः पण्डितो धर्मशीलो ज्ञानी प्राज्ञः सप्ततेर्वत्सराणाम् ॥
प्रबले केन्द्रगे सौम्ये निधने सौम्यवर्जिते ।
लग्नाधिपेन दृष्टश्चेत्पापैर्जीवति सप्ततिम् (७०) ॥
पञ्चमस्थे धरासूनौ नीचे मन्देऽस्तगे रवौ ।
अस्मिन् जातो मनुष्यस्तु सप्तत्यां ७० निधनं व्रजेत् । इति ॥ ८४ ॥

पूर्णायु के योग

अब पूर्णायु के योग कहते हैं। पूर्णायु ७० वर्ष के बाद समझी जाती है।

चतुष्टये शुभैर्युक्ते लग्नेशे शुभसंयुते ।
गुरुणा दृष्टिसंयोगे पूर्णमायुर्विनिर्दिशेत् ॥ ८५ ॥
केन्द्रान्विते विलग्नेशे गुरुशुक्रसमन्विते ।
ताभ्यां निरीक्षिते वाऽपि पूर्णमायुर्विनिर्दिशेत् ॥ ८६ ॥
उच्चान्वितैस्त्रिभिः खेटैर्लग्ने रन्ध्रेशसंयुते ।
रन्ध्रे पापविहीने च दीर्घमायुर्विनिर्दिशेत् ॥ ८७ ॥
रन्ध्रेस्थितैस्त्रिभिः खेटैः स्वोच्चमित्रस्ववर्गगैः ।
लग्नेशे बलसंयुक्ते दीर्घमायुर्विनिर्दिशेत् ॥ ८८ ॥
स्वोच्चस्थितेन केनापि खेचरेण समन्वितः ।
शनिर्वा रन्ध्रनाथो वा दीर्घमायुर्विनिर्दिशेत् ॥ ८९ ॥
त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः ।
लग्नेशो बलसंयुक्तः पूर्णमायुर्विनिर्दिशेत् ॥ ९० ॥
षट्सप्तरन्ध्रभावेषु शुभेषु सहितेषु च ।
त्रिषडायेषु पापेषु दीर्घमायुर्विनिर्दिशेत् ॥ ९१ ॥
रिःफशत्रुगताः पापा लग्नेशो यदि केन्द्रगः ।
रन्ध्रस्थानगता पापाः कर्मेशः स्वोच्चराशिगः ॥
योगद्वयेऽपि दीर्घायुरुपैति बहुसम्मतम् ॥ ९२ ॥
रन्ध्रेशस्थगृहाधीशो यस्मिन् राशौ व्यवस्थितः ।
तदीशो लग्ननाथश्च केन्द्रगो यदि तादृशम् ॥ ९३ ॥
द्विस्वभावं गते लग्ने तदीशे केन्द्रगेऽपि वा ।
स्वोच्चमूलत्रिकोणे वा चिरं जीवति भाग्यवान् ॥ ९४ ॥

द्विस्वभावं गते लग्ने लग्नेशात् केन्द्रगौ यदि ।
द्वौ पापौ यस्य जनने तस्यायुर्दीर्घमादिशेत् ॥ ६५ ॥
चरांशकस्था रविमन्दभौमाः
स्थिरांशकस्थौ गुरुदानवेज्यौ ।
शेषाश्च युग्मांशगता यदि स्यु-
स्तदा समुद्भूतनरः शतायुः ॥ ६६ ॥

(१) यदि लग्नेश केन्द्र में हो, शुभ ग्रह से युत हो, बृहस्पति से दृष्ट हो, (बृहस्पति जीव है, आयु प्रदान करने में इसकी विशेष महिमा है, इस कारण लग्नेश शुभग्रह युत हो, यह कह देने पर भी बृहस्पति की दृष्टि का पृथक् निर्देश किया। अन्य शुभ ग्रहों की लग्नेश पर दृष्टि, आयु वृद्धि करती है, परन्तु बृहस्पति की दृष्टि सर्वोपरि आयुवृद्धि कारक है, यह स्मरण रखना चाहिए।) और केन्द्रों में लग्न में तथा लग्न से चतुर्थ, सप्तम तथा दशम में शुभ ग्रह हो तो पूर्णायु हो ॥ ८५ ॥

(२) यदि लग्नेश केन्द्र में हो, बृहस्पति और शुक्र के साथ हो, या इन दोनों ग्रहों से दृष्ट हो तो पूर्णायु हो ॥ ८६ ॥

(३) काशी से जो पुस्तक प्रकाशित हुई है उसमें पाठ है 'लग्नरंध्रेश-संयुतैः' जिसके अनुसार कतिपय टीकाकारों ने अर्थ किया है, तीन ग्रह उच्च राशि के हों, लग्नेश और अष्टमेश से युक्त हों परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि 'लग्न रंध्रेशाभ्यां संयुतैः।' यह अर्थ करने से तीन ग्रह पृथक् पृथक् तीन राशियों में उच्चस्थ होंगे। इस कारण तीन उच्चस्थ ग्रह दो ग्रहों (लग्नेश, अष्टमेश) से संयुत नहीं हो सकते। इस कारण बंबई तथा बंगलौर से प्रकाशित जो जातकपारिजात के संस्करण हैं, उनके अनुसार पाठ दिया है, जिसके अनुसार अर्थ होता है कि तीन ग्रह अपनी उच्च राशि में हों और अष्टमेश लग्न में हो तथा अष्टम में पाप ग्रह न हों तो दीर्घायु होता है ॥ ८७ ॥

(४) यदि तीन ग्रह अपनी उच्च राशि, मित्र राशि या अपने वर्ग में स्थित होकर लग्न से अष्टम स्थान में हों और लग्नेश बलवान् हो तो जातक दीर्घायु हो। दो टीकाकारों ने अर्थ किया है कि तीन ग्रह अष्टम में हों या अपनी उच्च राशि में हों या अपनी मित्र राशि में हों या ··। हम इस अर्थ से सम्मत नहीं हैं। अष्टम में स्थित होकर उच्च, मित्र या स्ववर्ग स्थिति का निर्देश है ॥ ८८ ॥

(५) यदि शनि या अष्टमेश किसी भी उच्च राशि स्थित ग्रह से युति करे तो दीर्घायु हो। अष्टम आयु स्थान है, शनि आयुकारक है, इस कारण इन दोनों के उच्च स्थित ग्रह से युति का यह फल कहा है। कोई भी ग्रह यदि उच्चस्थ ग्रहों

से युत हो तो उस ग्रह (जो उच्च न हो) के शुभ फल में वृद्धि हो जाती है, यह सिद्धान्त ध्यान में रखना चाहिए। देखिए कहा है :

उच्चान्वितस्यापि रवेर्दशायां मनोविलासं लभते स्ववृत्त्या।
तीर्थाभिषेकं हरिकीर्तनञ्च प्रासादकूपादिपुराणशास्त्रम् ॥
केनापि स्वोच्चस्थवियच्चरेण युक्तस्य चन्द्रस्य दशाविपाके।
मनःप्रसादं मदनाभिरामं स्त्रीपुत्रभृत्यादिविनोदगोष्ठीम् ॥
॥ ८६ ॥

(६) पाप ग्रह लग्न से तीसरे, छठे, ग्यारहवे हों, शभ ग्रह लग्न से केन्द्रों में हों, लग्नेश बलवान् हो तो पूर्णायु हो ॥ ९० ॥

(७) लग्न से छठे, सातवें, आठवें शुभ ग्रह हों; लग्न से तीसरे, छठे, ग्यारहवें पाप ग्रह हों तो दीर्घायु हो ॥ ९१ ॥

(८) इस श्लोक में दो योग कहे गए हैं :—

(i) लग्नेश यदि केन्द्र में हो और लग्न से छठे, बारहवें पाप ग्रह हों या (ii) पाप ग्रह लग्न से अष्टम में हो और दशमेश अपनी उच्च राशि में हो। दोनों दीर्घायु योग हैं। ९२।

(९) अष्टमेश जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी और लग्नेश यदि केन्द्र में हों तो दीर्घायु। ९३।

(१०) यदि द्विस्वभाव लग्न हो (मिथुन, कन्या, धनु या मीन) और लग्नेश केन्द्र में हो, या अपनी उच्च या मूल त्रिकोण राशि में हो तो भाग्यशाली और दीर्घजीवी हो। ९४।

(११) यदि द्विस्वभाव लग्न हो और लग्नेश से केन्द्र में दो पाप ग्रह हों तो दीर्घायु हो। ९५।

(१२) यदि सूर्य, मंगल तथा शनिचर नवांश में हों और बृहस्पति तथा शुक्र स्थिर नवांशों में हों और शेष ग्रह द्विस्वभाव नवांशों में हों तो जातक की १०० वर्ष की आयु हो।

शुकजातक में इसी प्रकार का योग दिया है।

चरांशकस्थाः कविमन्दभौमाः स्थिरांशकस्थौ रविदेवपूज्यौ।
शेषौ तु युग्मांशकसंप्रयुक्तौ दीर्घायुरस्मिन् जनने नृपालः ॥

यहां शुक्र, शनि, मंगल चर नवांशों में हों, तथा सूर्य और बृहस्पति स्थिर नवांशों में, बाकी ग्रह द्विस्वभाव नवांशों में। इस कारण जातक पारिजात और शुक जातक में थोड़ी भिन्नता है। प्राचीन समय में श्लोकों को कण्ठस्थ करने की

परिपाटी थी। स्मरण शक्ति के आधार पर लिखने से पाठान्तर हो जाते थे। जातकपारिजात में जो श्लोक है, उसमें कुछ सिद्धांत परिलक्षित होता है। क्रूर ग्रहों को चर नवांश में कहा, शुभ ग्रहों को स्थिर नवांश में। शेष चन्द्रमा और बुध जो कभी शुभ होते हैं (शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा, तथा शुभ ग्रह युत बुध) कभी पाप (क्षीण चन्द्र तथा पाप युत बुध) द्विस्वभाव अंश में। राहु और केतु नैसर्गिक पापी अवश्य हैं, परन्तु शुभ स्थानों में, शुभ ग्रह के साथ बैठते हैं तो शुभफल दिखाते हैं, दुष्ट स्थान में पाप ग्रह के साथ बैठते हैं तो पाप फल, इस कारण इन को भी द्विस्वभाव अंश में कहा। ९६।

पूर्णायुषः प्रमाणम्

सप्तत्युपरिशतान्तं पूर्णमायुः

७० के ऊपर १०० वर्ष तक पूर्णायु होती है।

युगान्त आयु

मन्दांशकस्था रविजीवभौमा
धर्मस्थितास्तन्नवभागसंस्थाः।
बलान्विता लग्नगतो हिमांशु-
र्युगान्तमायुः श्रियमादधाति ॥ ९७ ॥

इस श्लोक में, युग के अन्त तक आयु हो, यह कहा है। युग के अन्त तक तो आयु होती नहीं, इस कारण युगान्त आयु को केवल अर्थवाद समझना। इस योग से अत्यन्त दीर्घ आयु होती है, यह अर्थ लेना।

सूर्य, मंगल और बृहस्पति शनि के नवांश (मकर या कुंभ नवांश में एक साथ या कोई मकर नवांश में, कोई कुंभ नवांश) में हों और लग्न राशि से नवम में हों, तथा नवांश कुंडली में वर्गोत्तम हों तथा बलवान् हों एवं चन्द्रमा लग्न में हो तो युगान्त आयु हो और लक्ष्मीयुक्त हो। होराप्रकाश में इसी प्रकार का योग कहा है। थोड़ा अन्तर है।

मन्दांशकस्था रविभौमजीवा धर्माश्रिताः कर्मयुता बलाढ्याः।
राश्यावसाने हिमगौ विलग्ने युगान्तमायुः श्रियमादधाति ॥ ९७ ॥

मुनित्वप्रदयोग

एकांशभागौ गुरुसूर्यपुत्रौ धर्मस्थितौ वा यदि कर्मसंस्थौ।
अर्कोदये सौम्यनिरीक्ष्यमाणौ मुनिर्भवेदत्र भवश्चिरायुः ॥ ९८ ॥

यदि बृहस्पति और शनि एक ही नवांश में होकर लग्न से नवम या दशम में हों और शुभ ग्रह से दृष्ट हों तथा सूर्य लग्न में हो तो जातक मुनि होता है, तथा दीर्घायु होता है। मुनि से तात्पर्य है तपस्वी। ९८।

अमितायु

अमित कहते हैं, उसको जिसकी माप या सीमा न हो। इतना तो कोई जीवित-नहीं रहता। इसलिए अमितायु को अर्थवाद समझना और अत्यन्त दीर्घायु समझना। रूस में अब भी स्त्री, पुरुष ऐसे हैं जिनकी १५० वर्ष से अधिक वय है।

गुरुशशिसहिते कुलीरलग्ने शशितनये भृगुजे च केन्द्रयाते।
भवरिपुसहजोपगैश्च शेषैरमितमिहायुरनुक्रमाद्विना स्यात् ॥६६॥

यह श्लोक बृहज्जातक के अध्याय ८ से लिया गया है। बृहज्जातक के इस अध्याय में गणितागत पिण्डायु, अंशायु आदि का विवेचन है। (जातक पारिजात में यह विषय पंचम अध्याय में कहा गया है) और अध्याय के अन्त में यह श्लोक यह बताने के लिए वराहमिहिर ने लिखा है कि यदि यह योग हो तो गणितागत आयु का फल प्राप्त नहीं होता, अपितु उससे अधिक आयु होती है। रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं कि इह (यहां जीवलोक में) कर्क लग्न हो, लग्न में चंद्रमा और बृहस्पति हों, बुध और शुक्र केन्द्र में हों तृतीय, षष्ठ तथा एकादश इन स्थानों में शेष ग्रह हों(यहां सूर्य, मंगल, शनि का अनुक्रम से तृतीय षष्ठ एकादश में होना आवश्यक नहीं है—कोई भी किसी स्थान में तृतीय, षष्ठ या एकादश में किसी एक, दो या तीनों स्थानों में हो) तो ऐसे योग में आयु की गणना (पिंडायु आदि के लिए जो कही गई है) न करना क्योंकि उसका (गणितागत आयु का) फल नहीं मिलता। सारावली अध्याय १२. श्लोक १४ तथा अध्याय ३९ श्लोक २२ में भी यही योग कहा गया है। ९९।

देवसादृश्यप्रद ग्रहस्थिति

त्रिकोणे पापनिर्मुक्ते केन्द्रे सौम्यविवर्जिते।
रन्ध्रे पापविहीने च जातस्त्वमरसन्निभः॥ १०० ॥
शन्यादिभौमपर्यन्तं लग्नादौ खेचराः स्थिताः।
वंशेषिकांशसंयुक्ता जातस्त्वमरसन्निभः॥ १०१ ॥

यदि त्रिकोण और अष्टम (लग्न से पंचम, अष्टम और नवम में पाप ग्रह न हों) और केन्द्र में शुभ ग्रह न हों तो जातक देवता के समान होता है। यहां

आयु का प्रसंग है, इसलिए देवता के समान (अमरसन्निभ—देवता अमर होते हैं, कभी मरते नहीं) आयु–अर्थात् दीर्घायु कहना । १०० ।

यदि लग्न से प्रारंभ कर भावों में शनि से प्रारंभ कर मंगल (शनि सर्वप्रथम मंगल सब के अंत में) तक सब ग्रह हों और अपने-अपने वैशेषिकांश में हों तो जातक की देवताओं के समान आयु हो । वैशेषिकांश के लिए देखिए अध्याय १ श्लोक ४४-४७ । १०१ ।

असंख्यायु आयु प्राप्ति

मेषान्त्यलग्ने सगुरौ भृगौ वा
निशाकरे गोगृहमध्यमांशे ।
सिंहासनांशे यदि वा धराजे
जातस्त्वसङ्ख्यातमुपैति मन्त्रैः ॥ १०२ ॥

मेष लग्न का अंतिम भाग उदित हो, उसमें बृहस्पति या शुक्र हो, चन्द्रमा वृष राशि के मध्य नवांश (१३° २०′ से १६° ४०′ के बीच में यहाँ वृष नवांश और चन्द्रमा उच्च राशि में वर्गोत्तम होगा) में हो तथा मंगल सिंहासनांश में हो (स्वराशि, स्वद्रेष्काण, स्वनवांश, स्वद्वादशांश, स्वत्रिशांश या स्वसप्तमांश में—अर्थात् मेष में ०°-२°-३०′ के बीच में) तो जातक मंत्रानुष्ठान आदि से असंख्यायु अर्थात् अत्यन्त दीर्घायु हो । असंख्यायु तो कोई हो नहीं सकता इस कारण अत्यंत दीर्घायु यह अर्थ लेना ॥ १०२ ॥

मुनिसमत्व

देवलोकांशके मन्दे भौमे पारावतांशके ।
सिंहासने गुरौ लग्ने जातो मुनिसमो भवेत् ॥ १०३ ॥

शनि देवलोकांश का हो, मंगल पारावतांश का, तथा बृहस्पति लग्न में सिंहासनांश का हो तो मुनि के समान हो। देवलोकांश आदि के लिए देखिए अध्याय १ श्लोक ४४-४७ ॥ १०३ ॥

युगान्त आयु

गोपुरांशे गुरौ केन्द्रे शुक्रे पारावतांशके ।
त्रिकोणे कर्कटे लग्ने युगान्तं स तु जीवति ॥ १०४ ॥

यदि कर्क लग्न हो, बृहस्पति गोपुरांश में केन्द्र में हो, शुक्र पारावतांश में त्रिकोण में हो तो जातक युगान्त तक जीवित रहता है। अर्थात् दीर्घायु होता है। १०४।

अथ ब्रह्मपदप्राप्तिः

चापांशे कर्कटे लग्ने तस्मिन् देवेन्द्रपूजिते।
त्रिचतुर्भिर्ग्रहैः केन्द्रे जातो ब्रह्मपदं व्रजेत् ।। १०५ ।।

अध्याय में विवेचित विषय

लग्ने सेज्ये भृगौ कामे कन्यायामुडुनायके।
चापे मेषांशके लग्ने जातो याति परं पदम् ।। १०६ ।।

कर्क लग्न हो, धनु का नवांश हो (अर्थात् १६°-४०' से २०° तक) और उसमें (कर्क राशि, धनु नवांश में) बृहस्पति हो, तीन या चार ग्रह केन्द्र में हों तो जातक को मृत्यु के बाद ब्रह्मपद प्राप्ति होती है। अर्थात् उसको मोक्ष प्राप्त होता है। १०५।

धनु लग्न हो, मेष का नवांश हो, (अर्थात् ०° से ३°-२०' तक धनु में) उसमें (धनु में ०° से ३°-२०' तक) बृहस्पति हो, लग्न से सप्तम शुक्र हो, कन्या राशि में चन्द्रमा हो तो जातक को परम पद ब्रह्म सायुज्य—मोक्ष) प्राप्त होता है। १०६।

अथ आयुषः सप्तविधता।

बालारिष्टं योगसञ्जातमल्पं
तेषां भङ्गान्मध्यमं दीर्घमायुः।
दिव्यं योगाभ्यासमन्त्रक्रियाद्यै-
रायुः सप्तैतानि सङ्कीर्तितानि ।।१०७।।

इति श्रीनवग्रहकृपया वैद्यनाथरचिते जातकपारिजाते
बालारिष्टाध्यायः चतुर्थः ।।४।।

इस अध्याय में (१) बालारिष्ट (२) योगारिष्ट (३) अल्पायु। (४) अरिष्टभंग (५) मध्यायु (६) दीर्घायु (७) तथा दिव्य आयु मंत्रानुष्ठान, योगसिद्धि से प्राप्त अत्यन्त दीर्घायु इन सात का विवेचन किया गया है। १०७।

(चतुर्थ अरिष्टाध्याय की व्याख्या समाप्त)

अध्याय ५

आयुर्दायाध्याय:

इस आयुर्दायाध्याय में ग्रंथकार ने निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया है:—

(i) निसर्गायु (ii) पिण्डायु (iii) लग्नायु (iv) अंशकायु (v) रश्मिजायु (vi) चक्रायु (vii) दशायु (viii) मनुष्येतर-पशु, पक्षी आदि की आयु (ix) (x) अरिष्ट दशा (xi) छिद्रग्रह (xii) द्रेष्काण स्वरूप (xiii) निर्याण समय (xiv) निर्माण हेतु (xv) हस्तादि विच्छेद योग (xvi) दुर्मरणयोग (xvii) निर्याण दिग्ज्ञान (xviii) मोहकाल (xix) शवपरिणाम (xx) मरणान्तर गतिज्ञान।

जिस प्रकरण का विवेचन किया है, उसके अतिरिक्त अवान्तर कतिपय विषयों का विवेचन भी यत्र तत्र किया गया है। जैसा कि इस अध्याय के नाम से ही स्पष्ट है, इसमें प्रधानतया आयु का विवेचन है। हिन्दी भाषा में भ्रम वश 'आयु का प्रयोग, बहुत से व्यक्ति 'वय' के स्थान में करते हैं। एक युवक १८ वर्ष का है तो उसकी वय १८ वर्ष की है। उसकी आयु तो ८० या ८५ जितने वर्ष वह जीवित रहेगा, उतनी होगी। इस अध्याय में आयु शब्द का प्रयोग बारंबार होगा। इस कारण आयु और वय के अर्थ में क्या भेद है, यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

बृहत्पाराशर में ४३ प्रकार की दशा बतलायी गयी है। बृहज्जातक अध्याय में ७ आयुर्दायाध्याय हैं। वहाँ से कुछ अंश जातक पारिजातकार ने लिया है। इस अध्याय के श्लोक ७, ९, ११, १७, १८, १९, २०, २१ बृहज्जातक से लिए गए हैं।

यहाँ इस अध्याय की टोका के प्रसंग में एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है। क्या निसर्गायु, पिण्डायु अंशायु आदि का फलादेश ठीक बैठता है? सन् १९२७ से अब तक अनेक जन्मकुंडलियों के देखने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इनका फल ठीक नहीं मिला। काशी के सुप्रसिद्ध हिन्दू विश्वविद्यालय के ज्योतिष विभागाध्यक्ष स्वर्गीय पंडित रामयत्न जी ओझा अपनी पुस्तक फलित विकास के प्रारम्भ में लिखते हैं "आयुष्य में योगज आयुष्य का ही विचार करना चाहिए। जातकोक्त सत्यायु, निसर्गायु, पिण्डायु, जीवायु इत्यादि

परम अशुद्ध वस्तु हैं । निसर्गायु की कल्पना किसी-किसी अंश में कभी ठीक हो जाती है ।"

इस कारण पिण्डायु आदि बनाने की प्रक्रिया जो मूल में कही गई है वह देना ही हम पर्याप्त समझते हैं । विशेष व्याख्या या उदाहरण से फल सिद्धि नहीं होती क्योंकि पिण्डायु आदि का फल मिलता नहीं । विशेष जिज्ञासु पाठकों को जातक पद्धति आदि ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिए ।

निसर्गपैंड्यांशकरश्मिचक्रनक्षत्र-दायाष्टकवर्गजानि ।
पराशराद्यैः कथितानि यानि संगृह्य तानि क्रमशः प्रवक्ष्ये ।। १ ।।

पराशर आदि प्राचीन आचार्यों ने निसर्गायु, पिण्डायु, अंशकायु, रश्मिजायु, चक्रायु, नक्षत्रायु, अष्टकवर्गजायु आदि जो अपने अपने ग्रंथों में कही हैं, उन्हीं का संग्रह करके क्रमशः कहता हूं ।।१।।

निसर्गायु में वर्ष संख्या

नखाः शशी द्वौ नवकं धृतिश्च
कृतिः खबाणा रविपूर्वकाणाम् ।
इमा निरुक्ताः क्रमशो ग्रहाणां
नैसर्गिके ह्यायुषि वर्षसंख्याः ।। २ ।।

निसर्ग आयु में प्रत्येक ग्रह की पूर्ण आयु संख्या निम्नलिखित होती है :

सूर्य २० वर्ष, चन्द्रमा १ वर्ष, मंगल २ वर्ष, बुध ९ वर्ष, बृहस्पति १८ वर्ष शुक्र २० वर्ष, शनि ५० वर्ष । सबका योग १२० वर्ष ।।२।।

पिण्डायु में वर्ष संख्या

नवेन्दवो बाणयमाः शरक्ष्मा
दिवाकराः पञ्चभुवः कुपक्षाः ।
नखाश्च भास्वत्प्रमुखग्रहाणां
पिण्डायुषोऽब्दा निजतुङ्गगानाम् ।। ३ ।।

यदि सूर्य आदि ग्रह अपने परमोच्च में हों तो उसकी परमायु वर्ष संख्या निम्नलिखित होती है ।

सूर्य १९ वर्ष, चन्द्रमा २५ वर्ष, मंगल १५ वर्ष, बुध १२ वर्ष, बृहस्पति १५ वर्ष, शुक्र २१ वर्ष, शनि २० वर्ष। ध्यान रहे कि ग्रह अपने परमोच्च में हों तो यह आयु होती है। परमोच्च कौन सा ग्रह किस राशि में किस अंश पर होता है, इसके लिए देखिए अध्याय १ श्लोक २९। यदि ग्रह अपने परमोच्च में न हों तो उसको कितने वर्ष प्राप्त होंगे, यह आगे बताया गया है॥ ३॥

अनुपात से वर्ष संख्या का गणित

निजोच्चशुद्धः खचरो विशोध्यो
भमण्डलात् षड्भवनोनकश्चेत्।
यथास्थितः षड्भवनाधिकश्चे-
लिलप्तीकृतः सङ्गुणितो निजाब्दैः॥ ४॥
तत्र खाभ्ररसचन्द्रलोचनैरुद्धृते सति यदाप्यते फलम्।
वर्षमासदिननाडिकादिकं तद्धि पिण्डभवमायुरुच्यते॥ ५॥
स्वोच्चोनस्फुटखेचरं यदि रसादल्पं भचक्रोद्धृतं
लिप्तीकृत्य निजायुरब्दगुणितं तच्चक्रलिप्ताहृतम्।
लब्धं वासरनायकादिखचरैर्दत्तायुरब्दादिकं
नीचार्द्धक्रमशो वदन्ति मुनयः पैण्डये च नैसर्गिके॥ ६॥

यदि ग्रह (मान लीजिए बुध को पिण्डायु में कितने वर्ष प्राप्त हुए यह गणित करना है) अपने परमोच्च में हो तो उपर्युक्त प्रकार से पूर्ण आयु मान मिलेगा; यदि ग्रह अपने परम नीच में हो तो पूर्ण आयु मान का आधा प्राप्त होगा। बीच में अनुपात से कितना प्राप्त होगा, यह गणित कर निकालिए।

इस साधारण बात की बड़ी लम्बी गणित परिपाटी से मूल श्लोक में प्रक्रिया की गई है।

हम इसे एक दूसरे प्रकार से हृदयंगम करते हैं। बुध परमोच्च (कन्या के १५°) पर हो तो १२ वर्ष; यदि परम नीच (मीन के १५ अंश पर) हो तो १२ का आधा ६ वर्ष। इसलिए यदि बुधदत्त आयु निकालनी हो तो।

कन्या के	१५° पर	१२ वर्ष	मीन के	१५° पर	६ वर्ष
तुला के	,,	११ ,,	मेष के	,,	७ ,,
वृश्चिक के	,,	१० ,,	वृष के	,,	८ ,,
धनु के	,,	९ ,,	मिथुन के	,,	९ ,,
मकर के	,,	८ ,,	कर्क के	,,	१० ,,

कुंभ के	१५° पर	७ वर्ष	सिंह के	१५° पर	११ वर्ष
मीन के	,,	६ ,,	कन्या	,,	१२ ,,

सिद्धान्त है कि परमोच्च से परम नीच तक क्रमशः ह्रास होता है तथा परम नीच से परमोच्च तक क्रमशः वृद्धि होती है। पिण्डायु में जिस ग्रह की जो वर्ष संख्या दी है, उसके आधार पर उपर्युक्त प्रकार से, अनुपात से, जिस राशि, अंश, कला, विकला पर ग्रह हो उसका देय वर्ष (मास, दिन, घड़ी, पल) में निकालिए। इसी प्रकार निसर्गायु में भी प्रत्येक ग्रह का देय (वर्ष आदि) निकाला जाता है ॥ ४-६ ॥

बृहज्जातकोक्त हरण

नीचेऽतोऽर्द्धं ह्रसति हि ततश्चान्तरस्थेऽनुपातो
होरा त्वंशप्रतिममपरे राशितुल्यं वदन्ति ।
हित्वा वक्रं रिपुगृहगतैर्हीयते स्वत्रिभागः
सूर्योच्छिन्नद्युतिषु च दलं प्रोज्झ्य शुक्रार्कपुत्रौ ॥ ७ ॥

क्षोणीपुत्रं वर्जयित्वा रिपुस्था-
स्त्र्यंशं नीचस्थानगास्ते तदर्धम् ।
अस्तं याताः शर्व एवार्द्धहानिं
कुर्युर्हित्वा शुक्रमार्तण्डपुत्रौ ॥ ८ ॥

उपर्युक्त श्लोक ७ बृहज्जातक अध्याय ७ का श्लोक २ है। इस श्लोक में चार बातें कही गई हैं :

(i) प्रथम तो वही जो ऊपर समझाया गया है कि परमोच्च में जिस गृह को जितने वर्ष प्राप्त होते हैं, परम नीच में उससे आधे। मध्य में अनुपात से।

(ii) कौन सा ग्रह कितनी आयु प्रदान करेगा यह (i) में ऊपर बता चुके हैं। अब लग्न कितनी आयु प्रदान करेगा, यह कहते हैं। लग्न में जितने नवांश बीत चुके हों, उतने वर्ष लग्न प्रदान करता है। वराहमिहिर कहते हैं कि अन्य (प्राचीन आचार्य) कहते हैं कि जो राशि लग्न में हो तत्तुल्य वर्ष लग्न प्रदान करता है। यह द्वितीय मत वास्तव में मणित्थ का है।

मान लीजिए लग्न स्पष्ट मीन के ७°-३०′ है। तो ११ राशि बीत चुकी। इसके ११ वर्ष और ७°-३०′ के तीन महीने। इस प्रकार लग्न प्रदत्त ११ वर्ष और तीन मास हुए।

यदि नवांश के अनुसार आयु का गणित करना हो तो ७°-३०′ पर दो नवांश (६°-४०′) बीत चुके। इसके २ वर्ष तृतीय नवांश के ५०′ कला बीत चुके। एक नवांश में २००′ होती हैं। २००′ कला में एक वर्ष तो ५० कला में ३ महीने।

इस प्रकार २ वर्ष ३ मास। कौन सी प्रक्रिया करनी है? टीकाकार समाधान करते हैं कि लग्नेश बली हो तो लग्न से, नवांशेश बली हो तो नवांश के आधार पर गणित करना।

(iii) 'वक्र' के अतिरिक्त अन्य ग्रह यदि शत्रु राशि में हों, तो उपर्युक्त जितने वर्ष (मास आदि) उस ग्रह के गणितानुसार देय हों, उसका तृतीयांश कम कर दिया जाता है। 'वक्र' का क्या अर्थ ? वक्र के दो अर्थ होते हैं। मंगल के अनेक नामों में से एक वक्र भी है। वक्री ग्रह को भी वक्र कहते हैं। सूर्य, चन्द्र कभी वक्री नहीं होते। अन्य पाँच मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि कभी मार्गी, कभी वक्री होते हैं। एक मत यह है कि यहाँ वक्र का अर्थ मंगल है। अन्य का मत है कि वक्र का अर्थ वक्री ग्रह है। वादरायण का मत 'मंगल' (इस अर्थ) का पोषक है। भट्टोत्पल वक्र का अर्थ वक्री ग्रह मानते हैं। रुद्रभट्ट 'मंगल' यह अर्थ लेते हैं।

इस अध्याय के आयुर्दाय गणित के सिद्धांत प्रतिपादन में जातकपारिजात-कार ने प्रायः यह परिपाटी अपनायी है कि बृहज्जातक अध्याय ७ आयुर्दायाध्याय के मूल श्लोक दे दिए हैं और यत्र तत्र उन मूल श्लोकों के बाद, तत् तत् अर्थ व्यक्त करने वाले श्लोक स्वयं निर्माण कर लिख दिए हैं; या किसी अन्य प्राचीन आचार्य का श्लोक दे दिया है। यहां जातक पारिजातकार ने श्लोक ७ तो बृह-ज्जातक का दे दिया है और उसके बाद श्लोक ८ वादरायण का। श्लोक ८ में वादरायण 'भूम्याः पुत्र' स्पष्ट लिखते हैं। किसी-किसी मुद्रित संस्करण में 'क्षोणी पुत्र' पाठ है। भूमि और क्षोणी एक ही बात है। क्षोणीपुत्र अर्थात् मंगल यह अर्थ जातकपारिजातकार ने लिया है।

(iv) यदि शुक्र तथा शनि के अतिरिक्त—अर्थात् चन्द्र, मंगल, बुध या बृहस्पति (सूर्य की गणना अन्य ग्रहों के अन्तर्गत इसलिए नहीं की गई क्योंकि सूर्य के सान्निध्य के कारण जब अन्य ग्रह दिखलायी नहीं देते तो वे ग्रह अस्त कहलाते हैं किन्तु सूर्य का इतना देदीप्यमान प्रकाश है कि अन्य कोई ग्रह कितने भी सूर्य के पास हो, सूर्य दिन में दिखलायी देगा ही। अस्त हो तो वह अपनी प्रदत्त आयु का आधा ही देता है अर्थात् उसकी प्रदत्त आयु में से आधा भाग कम कर दिया जाता है।

व्यवहार में कहते हैं कि सूर्योदय हो गया, सूर्य अस्त हो गया। यहाँ सूर्य अस्त का अर्थ है कि सूर्य पश्चिमीय क्षितिज के नीचे चला गया। फलित ज्योतिष में जब कहा जावे कि अमुक ग्रह अस्त है तो उसका अर्थ है कि वह ग्रह न रात्रि में दिखायी पड़ता है, न सूर्योदय के पूर्व, न सूर्यास्त के बाद। दिन में भी जब सूर्य

आकाश में रहता है आकाश में करोड़ों तारे विद्यमान रहते हैं, परन्तु सूर्य के चकाचौंध करने वाले प्रकाश में दिखलायी नहीं देते। इसी प्रकार कोई ग्रह यदि सूर्य के समीप हो तो वह दिखलायी नहीं देता, अस्त रहता है। सूर्य से कितनी दूर तक कौन सा ग्रह अस्त होता है या अस्त रहता है, इसके गणित में क्रान्ति और ग्रह के शर का भी विचार किया जाता है, परन्तु सामान्य विचार निम्नलिखित है :

(i) चन्द्रमा यदि सूर्य से १२° तक दूर हो (ii) मंगल जब सूर्य से १७° तक की दूरी में हो (iii) बृहस्पति यदि सूर्य से ११° तक हो (iv) शनि यदि सूर्य से १५° तक हो।

(v) बुध यदि मार्गी हो तो सूर्य से १४° तक; बुध यदि वक्री हो तो सूर्य से १२° तक; (vi) शुक्र यदि मार्गी हो तो सूर्य से १० तक; शुक्र यदि वक्री हो तो सूर्य से ८° तक।

शुक्र या शनि—इनको आयुर्दाय गणित में दोष शून्य माना गया है। फलित के जिन जिन प्रसंगों में अस्तग्रह को दोष युक्त माना गया है वहाँ वहाँ फल विचार में यदि शुक्र या शनि अस्त हो तो उसे सदोष मानकर फल कहना। किंतु आयुर्दाय गणित में शुक्र या शनि अस्त हो तो उसके देय भाग (वर्ष, मास आदि में) आधा कम नहीं करना। इन दो ग्रहों को यह विशेष प्रतिष्ठा क्यों दी गई, यह कहना कठिन है।

अथ व्ययादि हरण

सर्वार्द्धं त्रिचरणपञ्चषष्ठभागाः
क्षीयन्ते व्ययभवनादसत्सु वामम्।
सत्स्वर्धं ह्रसति तथैकराशिगाना-
मेकोंऽशं हरति बली तथाऽऽह सत्यः ॥ ९॥
एकर्क्षोपगतानां यो भवति बलाधिको विशेषेण।
क्षपयति यथोक्तमंशं स एव नान्योऽपि तत्रस्थः ॥ १०॥

अब व्ययादि हरण कहते हैं। व्ययादि क्या? यदि कोई ग्रह व्यय (बारहवें) में या एकादश में या दशम में, या नवम में, या अष्टम में या सप्तम में हो, उस ग्रह द्वारा प्रदत्त आयुर्दाय (आयु के वर्ष, मास में कितना भाग कम करना, यह नीचे स्पष्ट किया जाता है :—

यदि ग्रह	यदि ग्रह शुभ हो	यदि ग्रह पाप हो
व्यय में हो	$\frac{1}{2}$ (आधा)	१ (पूरा)
एकादश में हो	$\frac{1}{4}$ (चौथाई)	$\frac{1}{2}$ (आधा)
दशम ,,	$\frac{1}{6}$ ((छठा भाग)	$\frac{1}{3}$ (तिहाई)
नवम ,,	$\frac{1}{8}$ (आठवां भाग)	$\frac{1}{4}$ (चौथाई)
अष्टम में हो	$\frac{1}{10}$ (दसवां भाग)	$\frac{1}{5}$ (पांचवां भाग)
सप्तम ,, ,,	$\frac{1}{12}$ (बारहवां भाग)	$\frac{1}{6}$ (छठा भाग)

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि कौन सा ग्रह शुभ है, कौन सा पाप ? साधारणतः सूर्य, मंगल, शनि, पापयुक्त बुध तथा क्षीण चन्द्र पाप माने जाते हैं तथा बृहस्पति, शुक्र, बुध (यदि पापयुत न हो) और चन्द्रमा (यदि क्षीण न हो) तो शुभ माने जाते हैं। परन्तु इस श्लोक में जो व्ययादि हरण की प्रक्रिया बतायी गयी है, उसके लिये चन्द्र, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र को शुभ तथा सूर्य, मंगल एवं शनि को पाप मानना चाहिये ।।९।।

पुनः कहते हैं कि मान लीजिये किसी राशि में (जो लग्न से बारहवें ग्यारहवें, दसवें, नवें, आठवें या सातवें पड़ी हो) दो या अधिक ग्रह पड़े हों तो क्या सब—जो राशि विशेष में हैं—का हरण होगा ? कहते हैं 'नहीं' । सत्याचार्य का मत है कि किसी राशि में दो या अधिक ग्रह हों—तो उनमें जो सर्वाधिक वली हो, उसी के वल में से, इस श्लोक में उक्त हरण करना। उस राशि में बैठे अन्य ग्रहों के बल में से हरण नहीं करना ।१०।

क्रूरोदयहरण

साद्धोंदितोदितनवांशहतात्समस्ताद्
भागोऽष्टयुक्तशतसङ्ख्य उपैति नाशम् ।
क्रूरे विलग्नसहिते विधिना त्वनेन
सौम्येक्षिते दलमतः प्रलयं प्रयाति ।। ११ ।।

लिप्तीभूतैर्लग्नभागैर्निहन्या-
दायुर्द्दायं खेचराणां पृथक्स्थम्
व्योमाकाशत्विन्दुपक्षैर्भजेत्तत्
स्वायुर्दायाच्छोध्यमब्दादि लब्धम् ।। १२ ।।

एतत् क्रूरे लग्नके सौम्यदृष्टे तस्मिन्पापे तत्फलार्द्धं विशोध्यम् ।
एतद्दायेनांशसञ्ज्ञे विधेयं पिण्डायुर्वत् कर्म नैसर्गिके च ।। १३ ।।

यह श्लोक ११ बृहज्जातक अध्याय ७ का श्लोक ४ है। इसकी प्राचीन व्याख्याकारों ने दो प्रकार की व्याख्या की है। दोनों व्याख्याओं में क्या भेद है, जिससे गणित परिपाटी में क्या अन्तर हो जाता है, यह आगे समझाया जावेगा। पहले वह अर्थ लीजिये–जिसमें व्याख्याकारों में कोई मतभेद नहीं है।

पिछले श्लोकों में बतलाया गया है कि परमोच्च होने पर कोई ग्रह कितनी आयु प्रदान करता हैं–(i) परमोच्च से जितनी दूर हो उस अनुपात से आयु में से हरण करना (ii) ग्रह अपनी शत्रु राशि में हो तो कितना हरण करना (iii) यदि ग्रह अस्त हो तो कितना हरण करना (iv) अब इस श्लोक में कहते हैं कि यदि कोई पाप ग्रह लग्न में हो तो ग्रह प्रदत्त आयु में से कितना हरण करना। उदय का अर्थ है लग्न। क्रूर का अर्थ है पाप ग्रह। इसी लिये इस सिद्धान्त का नाम रखा क्रूरोदय हरण अर्थात् क्रूर (पाप)। यदि उदय (लग्न) में हो तो कितना हरण करना।

पहिले यह देखिये कि लग्न के कितने नवांश उदित हो चुके हैं और कौन सा नवांश उदित हो रहा है। मान लीजिये लग्न स्पष्ट ठीक १५° है तो ४ नवांश १३°-२०′ पर उदित हो चुके और पाँचवें नवांश का आधा (एक नवांश ३°-२०′ का होता है। आधा नवांश १°-४०′ का। इस कारण १३°२०′+ १°-४०′=१५° या साढे चार नवांश)। इस ४½ को आयु:पिंड (जो पूर्व श्लोकों में कथित प्रकार से प्रत्येक ग्रह प्रदत्त आयु आयी है—उस—सब ग्रहों द्वारा प्रदत्त आयु के योग को आयु:पिंड कहते हैं) से गुणा करने से जो गुणनफल आवे उसे १०८ का भाग देने से जो लब्धि आवे, उस लब्धि को आयु में से कम करन। यह संस्कार केवल तभी किया जाता है जब लग्न में क्रूर ग्रह हो। यदि लग्न में क्रूर ग्रह न हो तो यह संस्कार नहीं किया जाता है।

अब कुछ नवीन पाठक यह शंका उठा सकते हैं कि १५° अंश के तो पूरे ४½ नवाँश हो जाते हैं। परन्तु मान लीजिये लग्न स्पष्ट १५°-५७′ है तो इसके नवांश कैसे बनाना? इसका प्रकार यह है कि१५°-५७°′ की कला बना लीजिये। १५°×६०+५७′=९००′+५७′=९५७′ कला हुई। एक नवांश ३°—२०′ में (३°×६०+२०′=१८०′+२०′=२००′) दो सौ कला होती है। इसलिये कलाओं को २०० से भाग देने से $\frac{९५७}{२००}$ यह नवाँश हुए।

ऊपर कहा गया है कि लग्न में यदि पाप ग्रह हो तो यह संस्कार करना। अन्यथा नहीं। इस संस्कार के लिये किन ग्रहों को क्रूर ग्रह माना जावे? सूर्य, मंगल, शनि को। अब इस संदर्भ में कुछ आवश्यक बातें बतलायी जाती हैं–जो इस श्लोक के उत्तरार्द्ध में कही गयी हैं। (i) क्रूर ग्रह यदि लग्न में हो तो ऊपर जो गणित-प्रक्रिया बतलायी गयी है–उसके अनुसार प्रत्येक ग्रह प्रदत्त

आयुर्दाय में से (वर्ष, मास, दिन) कम करना यह कहा गया है कि यदि लग्न में दो पाप ग्रह हों तो केवल एक बार यह संस्कार कम करना या दो बार ? यदि लग्न में तीन पाप ग्रह हों तो क्या तीन बार यह संस्कार कम करना ? इसे स्पष्ट करते हैं।

मान लीजिये लग्न में मंगल है और ऊपर बतलायी हुई प्रक्रिया से आया कि प्रत्येक ग्रह प्रदत्त आयु में से $\frac{१}{१६}$ (सोलहवां) भाग कम करना तो लग्न में यदि मंगल है तो प्रत्येक ग्रह प्रदत्त आयु में से सोलहवां भाग कम करना। यदि मंगल और शनि दोनों हों तो क्या $\frac{१}{१६}+\frac{१}{१६}=\frac{१}{८}$ कम करना। यदि सूर्य, मंगल, शनि तीनों हों तो क्या $\frac{१}{१६}+\frac{१}{१६}+\frac{१}{१६}=\frac{३}{१६}$ कम करना ? भट्टोत्पल या रुद्रभट्ट ने अपनी टीका में इसे स्पष्ट नहीं किया है।

किन्तु बृहज्जातक की अंग्रेजी में व्याख्या करते हुए श्री बी० सूर्यनारायण राव ने क्रूरोदय हरण का उदाहरण देते हुए लिखा है कि यदि मंगल और शनि (मान लीजिये दो क्रूर ग्रह लग्न में हों) तो दो बार क्रूरोदय संस्कार करना—एक बार मंगल के कारण, दूसरी बार शनि के कारण।

किन्तु श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री अपने जातक पारिजात के अनुवाद में लिखते हैं (उदाहरण कुण्डली मेष लग्न है) सूर्य और शनि दो क्रूरलग्न में हैं। जो गणित प्रक्रिया उन्होंने दी है उसके अनुसार क्रूरोदय हरण $\frac{४\cdot३६}{१०८}$ वर्ष है। लिखते हैं कि बृहस्पति से यदि सूर्य, शनि दृष्ट हों तो हरण $\frac{४\cdot३६}{१०८}$ आया। इनमें प्रत्येक क्रूर ग्रह की लग्न स्थिति के कारण पृथक्-पृथक् क्रूरोदय हरण नहीं किया है। लग्नस्थ क्रूर ग्रह यदि किसी शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो सामान्यतः जितना क्रूरोदय हरण होता उसका आधा किया जाता है, यह विशेष नियम आगे कहा जावेगा। हमें सुब्रह्मण्य शास्त्री का मत मान्य है क्योंकि यह केशवीय पद्धति के निम्नलिखित श्लोक पर आधारित है।

दायांशद्युसदां पृथक् तनुलवा
विघ्नाः खषट् व्युद्धृताः
आप्त्योनास्तनुगे खले च यद् सद्
दृष्टेर्द्धं याथा परे।
निघ्न्यग्रोदयभावजेन तनुगो
ग्रौ चेद् बलिष्ठस्य तत्
साम्ये पुष्टफलेन नेति तनुपे-
स्मिन्नांशजेसौ क्रिया।।

लग्न के ऊपर १५° होने के कारण हमने ४½ नवांश लिखे हैं। कोई भी लग्न हो १५ अंश होने से ४½ नवांश लेना, यह प्राचीन आचार्यों का अधिकतर मत है। परन्तु कुछ प्राचीन आचार्यों के अनुसार मेष के १५° हो तो ४½ नवांश लेना। वृष के १५° हो तो (मेष के गत) ९+वृष के ४½=१३½ नवांश लेना। मिथुन के १५° अंश हों तो मेष और वृष के गत ९+९=१८+मिथुन के ४½=२२½ नवांश लेना इत्यादि। परन्तु इसमें आपत्ति यह है कि यदि मान लीजिये कि मीन का अष्टम नवांश २६°-५०' हो तो मेष से कुंभ तक ११×९=९९+मीन के ८=१०६ नवांश मत होने से यदि मीन लग्न हो और लग्न में क्रूर ग्रह हो तो $\frac{१०७}{१०८}$ भाग-करीब करीब सारा ही क्रूरोदय हरण में निकल जावेगा। मान लीजिये समस्त आयुःपिंड १०८ वर्ष आया। मीन के ८ नवाँश गत हो चुके हैं अर्थात् लग्न स्पष्ट ११-२६-४०' है। तो आयुःपिंड १०८× $\frac{१०७}{१०८}$ (क्रूरोदय हरण के कारण=१०७ वर्ष आयुःपिंड से कम कर दिये तो आयु १०८—१०७=१ वर्ष रह गयी। क्या जातक १ वर्ष ही जीयेगा ?

श्री बी० सूर्य नारायण राव ने यही मत लिया है, जो हमें मान्य नहीं है।

(ii) पाठकों का इस ओर विशेष ध्यान दिलाया जाता है। यहाँ सूर्य, मंगल, शनि तीन ही पाप ग्रह माने जाते हैं। राहु केतु का विचार क्रूरोदय हरण में नहीं किया जाता है। चन्द्रमा चाहे क्षीण भी हो, बुध चाहे पापयुक्त भी हो पाप नहीं माना जावेगा क्योंकि भट्टोत्पल कहते हैं :

अत्र क्रूरशब्देन क्षीणश्चन्द्रमा न ग्राह्यः।
तथा च बादरायणः

सूर्यारकशनीनामेकस्मिन् लग्नगे भवति हानिः।
विधिना त्वनेन सौम्येक्षिते बलं पातयेल्लब्धम् ॥

(iii) ऊपर, क्रूर ग्रह यदि लग्न में हो तो सब ग्रहों द्वारा प्रदत्त आयुर्दाय (वर्ष, मास आदि में कुछ कम करना—कितना कम करना यह आगे बतलाएंगे) कहा है।

क्रूरोदयहरण के २ सम्प्रदाय हैं : मान लीजिए मंगल लग्न में है और इस कारण $\frac{१}{१६}$ कम करना है तो यह सोलहवाँ भाग केवल मंगल प्रदत्त आयु में से कम करना या प्रत्येक ग्रह प्रदत्त आयु में से सोलहवाँ भाग कम करना ? दोनों मत हैं। जातक पारिजात के मत से, प्रत्येक ग्रह प्रदत्त आयु में से सोलहवाँ भाग कम करना क्योंकि ऊपर श्लोक १२ के द्वितीय चरण में लिखा है "खेचराणां पृथक्स्थम्"। अब दूसरा सिद्धान्त कहते हैं कि यदि लग्नस्थ क्रूर ग्रह शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो उस क्रूर ग्रह की लग्नस्थिति वश जितना हरण (कम करना)

करते–उसका उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि होने से केवल आधा कम करेंगे। इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। मान लीजिए आयुर्दाय ६२ वर्ष है। लग्न में मंगल है। इस कारण आगे बतलायी गयी प्रक्रिया के कारण लग्न में क्रूर होने से मंगल के कारण, मान लीजिए चार वर्ष कम करने हैं। किन्तु मंगल यदि बृहस्पति से दृष्ट है तो ४ का आधा केवल दो वर्ष ६२ में से कम करेंगे। मान लीजिए, लग्न में मंगल और शनि दो क्रूर हैं और दोनों के प्रत्येक के ४-४ वर्ष कम करने हैं–मंगल के कारण २ वर्ष, शनि के कारण २ वर्ष। अब यदि मंगल शनि शुभ ग्रह बृहस्पति से दृष्ट हैं, तो मंगल के कारण ४ वर्ष और शनि के कारण ४ वर्ष जो कम करते, सो केवल ४-४ का आधा, २ वर्ष मंगल के कारण तथा २ वर्ष शनि के कारण—कुल आठ वर्ष के स्थान में केवल २-२ वर्ष, कुल ४ वर्ष कम होंगे।

यहाँ दो शंकाएं उठती हैं:—

(क) शुभ ग्रह की दृष्टि के कारण क्रूरोदयहरण जितना होता उसका आधा हरण करना यह कहा। परन्तु लग्न में मान लीजिए मंगल है और वह बुध, बृहस्पति, शुक्र से दृष्ट है और मंगल को क्रूरोदय हरण ४ वर्ष प्राप्त हैं तो बुध (शुभ ग्रह की) दृष्टि के कारण ४ का आधा २ वर्ष, पुनः बृहस्पति की दृष्टि के कारण २ का आधा १ वर्ष, पुनः शुक्र की दृष्टि के कारण १ वर्ष का आधा छः मास इस प्रकार कुल केवल छः मास कम करेंगे?—नहीं। चाहे लग्नस्थ क्रूर-ग्रह को एक शुभ ग्रह देखे या अधिक, प्रत्येक के कारण आधा कम नहीं होता। कुल आधा ही कम होता है। लग्नस्थ में मंगल को यदि क्रूरोदयहरण ४ वर्ष प्राप्त हैं तो उसे बुध (१ शुभ) देखे, या बुध, बृहस्पति (दो शुभ) देखें या बुध, बृहस्पति तथा शुक्र (३ शुभ) देखें, ४ का आधा २ वर्ष कम होंगे।

(ख) दूसरी शंका यह है कि यदि लग्नस्थ क्रूर को शुभ ग्रह देखें तब तो हरण का आधा करना किन्तु यदि क्रूर ग्रह के साथ साथ शुभ ग्रह हो तो हरण का आधा करना या नहीं। इस विषय में यही कहना है कि रुद्रभट्ट, भट्टोत्पल आदि किसी आचार्य ने यह नहीं लिखा है कि क्रूर ग्रह के साथ यदि शुभ-ग्रह हो तो क्रूरोदय हरण का आधा करना। भट्टोत्पल ने अपनी टीका मे केवल यह विशेष लिखा है कि अस्मिन् सार्धोदिते कर्मणि लग्ने यदा पापसौम्यौ भवतः तदा यो लग्नोदितांशकसमीपवर्ती स एव ग्राह्यो नेतर इति। अर्थात् लग्न में पाप और शुभ दोनों प्रकार के ग्रह हों—एक पाप एक शुभ तो लग्न स्पष्ट (जो अंश उदित हो रहा हो उसी का ग्रहण करना।)

११(१)
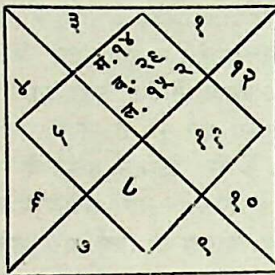
११(२)
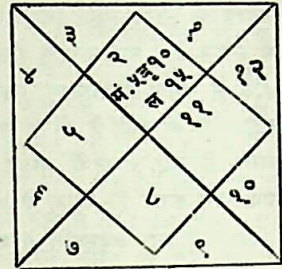
दोनों उदाहरण कुंडलियों में लग्न स्पष्ट १-१५ वृष के १५ अंश हैं। उदाहरण ११(१)में मंगल के १४ अंश हैं, वृहस्पति के २९ अंश। लग्न स्पष्ट का समीपवर्ती मंगल है। इस कारण क्रूरोदय हरण संस्कार होगा। उदाहरण ११ (२) में मंगल के ५ अंश हैं, वृहस्पति के १० अंश। लग्न स्पष्ट का समीपवर्ती बृहस्पति है। वृहस्पति शुभ ग्रह है। मंगल क्रूर है। वह दूरतर है। इस कारण क्रूरोदय संस्कार नहीं होगा।

(iv) केशवीय पद्धति में एक विशेष बात लिखी है वह बहुत उचित प्रतीत होती है। वे लिखते हैं कि क्रूरोदय हरण सामान्य सिद्धांत है किन्तु लग्न में क्रूर ग्रह स्वराशि का हो तो वह (क्रूर होने पर भी) अपने घर (लग्न-शरीर-शरीर स्थिति ही आयु है) के लिए अनिष्ट नहीं हो सकता, इसलिये मेष या वृश्चिक का मंगल, या सिंह का सूर्य, या मकर या कुंभ का शनि यदि लग्न में हो तो तज्जनित क्रूरोदय हरण नहीं करना चाहिए। वराहमिहिर ने सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि होरा स्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्योत्कटा। मंत्रेश्वर ने भी फलदीपिका में लिखा है 'पापोऽपि स्वगृहस्थश्चेत् भाववृद्धि करोत्यलम्।'

जो जो हरण संस्कार पिण्डायु के विषय में कहे गए हैं—वे संस्कार निसर्गायु में भी करने चाहिएं। अंशायुर्दाय में यह संस्कार नहीं किया जाता है। श्लोक ११ तो यों का यों जातकपारिजातकार ने बृहज्जातक से लिया है और श्लोक १२-१३ में वही बात अपने शब्दों में कही है, इसलिए इन दोनों श्लोकों की व्याख्या पिष्टपेषण मात्र होगी। ११-१३।

अंशायुर्दाय किसे कहते हैं और इसका गणित कैसे करना है यह आगे श्लोक १७–२१ में बतलाया गया है।

लग्नायुः साधन

आयुस्तथैतेषु बलाढ्यलग्ने
विहाय राशीन् कृतलिप्तिकेऽत्र ।
भक्ते द्विशत्या फलमब्दपूर्व
यत्स्याद्विलग्नायुषि तच्च योज्यम् ।। १४ ।।
लग्नराशिसमाश्चाब्दास्तन्मासाद्यनुपाततः ।
लग्नायुर्दायमिच्छन्ति होराशास्त्रविशारदाः ।। १५ ।।

अब लग्नायु: साधन अर्थात् लग्न के कारण, जातक को कितने वर्ष, आयु के प्राप्त हुए यह बताया जाता है । यदि लग्न बली हो तो लग्नायु: साधन करना । लग्न को बली कब समझना ? जब लग्न का बलपिंड (षट् बलों का योग) ६ रूपों से अधिक हो । श्लोक १४ श्रीपति पद्धति से लिया गया है ।

कहते हैं कि राशि संख्या को त्याग कर, लग्न के जितने अंश हों—उनकी कला बना लीजिए और उन कलाओं में २०० का भाग दीजिए । जो लब्धि आये उसे लग्नायु में जोड़ना चाहिए । १४ ।

लग्नायु के कितने वर्ष (मास, आदि) जोड़ने, इस सम्बन्ध में प्राचीनकाल से ही विसंवाद (मतभेद) चला आ रहा है । प्राचीनों का वाक्य है 'होरा त्वंशप्रतिममपरे राशितुल्य वदन्तीति । इस पद्धति के अनुसार लग्नायु जोड़ना। अर्थात् मान लीजिए वृष के १५° लग्न स्पष्ट है तो मेष का १ वर्ष, वृष का $\frac{१}{२}$-$१\frac{१}{२}$ वर्ष। वृष का आधा क्यों लिया? क्योंकि वृष के १५° गत (भुक्त) हुए हैं और १५° राशि मान ३०° का आधा है ।

मान लीजिए लग्न स्पष्ट ६-२२°-३०' है । ६ राशियों के ६ वर्ष २२°-३० (पौन राशि) का पौन वर्ष = ६ वर्ष ९ मास लग्नायु के जुड़े । लग्नायु जो भी आवे वह पिण्डायु बना रहे हैं तो सातों ग्रह प्रदत्त पिंडायु में जोड़ने से पिण्डायु सम्पादित होती है । यदि नैसर्गिकायु गणित कर रहे हों तो सातों ग्रह प्रदत्त नैसर्गायु में जोड़ने से नैसर्गिकायु सम्पादित होती है । कहने का तात्पर्य यह है कि चाहे पिण्डायु बनावें, चाहे नैसर्गिकायु—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि तथा लग्न—इन ८ द्वारा प्रदत्त आयु का योग करना पड़ता है ।

स्वयं जातकपारिजातकार दुविधा में है । ऊपर श्लोक १४ के अनुसार लग्न स्पष्ट ६-२२°—३०' होने से राशियों का त्याग कर, २२°-३० की कला बनायी तो २२+६०×३०'=१३२०'+३०'=१३५० कला में २०० का भाग दिया तो $\frac{१३५०}{२००}$...$६\frac{३}{४}$ वर्ष आये । इस उदाहरण में दोनों प्रकार से ६ वर्ष ९ मास

आते हैं। किन्तु एक अन्य उदाहरण लीजिए। मान लीजिये लग्न स्पष्ट १-१५° है। श्लोक १४ के अनुसार १५°×६०=९०० कला। इसको २०० से भाग दिया तो ९००/२००=४½ वर्ष आये। श्लोक १५ के अनुसार मेष का एक वर्ष, वृष का आधा=१½ वर्ष लग्नायु साधित हुई। स्वयं ग्रंथकार निश्चित नहीं कर पाये हैं कि प्रथम मत लिया जावे या द्वितीय मत। श्लोक १४ में एक मत दिया। श्लोक १५ में अन्य मत। यह उसी प्रकार हुआ कि कोई ज्वर का रोगी डाक्टर के पास जावे और डाक्टर को यह निश्चय न हो कि मलेरिया है या इन्फलुएन्जा। एक पुड़िया में मलेरिया के लिए कुनेन की टिकिया दे दे, अन्य में इन्फलुएन्जा की। ज्योतिष की अनेक पद्धतियों में मतभेद है। किसको सही कहा जावे, किसको गलत? १५।

षड्विध हरण

क्रूरोदयास्तरिपुनीचखगीपगानां
रिफायमाननवरन्ध्रकलत्रगानाम्।
कृत्वा यथाहरणषट्कमिनादिकानां
लग्नायुषा सह युते यदि तुल्यमायुः ॥ १६ ॥

अब तक ६ प्रकार के हरण, ग्रंथकार ने कहे हैं। वही इस श्लोक में कहे है कि श्लोक ७ से ११ तक (i) नीचार्द्धहरण (ii) शत्रुक्षेत्रहरण (iii) अस्तंगत हरण (iv) व्ययादि हरण, (v) ग्रहयोग के कारण हरण और (vi) क्रूरोदय हरण—यह छः प्रकार के हरण संस्कार कहे गए हैं॥ १६ ॥

जीवशर्मा का मत

स्वमतेन किलाह जीवशर्मा ग्रहदायं परमायुषः स्वरांशम् ॥१६½॥

श्लोक १७, १९, २०, २१ बृहज्जातक अध्याय ७ के श्लोक ९, १०, ११, १२ हैं, इस कारण इन श्लोकों की व्याख्या बृहज्जातक की प्राचीन टीकाओं के आधार पर की जाती है। वराहमिहिर लिखते हैं कि जीव शर्मा के मतानुसार आयुः साधन में प्रत्येक ग्रह प्रदत्त परमायु १२०/७° अर्थात् १७ वर्ष १ मास २२ दिन ८ घड़ी, ३४ पल (पलों के दशम लव छोड़ दिए गए हैं) होती है। अर्थात् पिंडायु, निसर्गायु आदि में, भिन्न भिन्न ग्रहों की जो पृथक् पृथक् वर्ष संख्या

कही गई है, वह नहीं। जीवशर्मा वराहमिहिर से भी प्राचीन थे। तभी तो उनका मत उद्धृत करते हैं।

जीवशर्मा का वचन है:—

सप्तदशैको द्वियमौ वसवो वेदाग्नयो ग्रहेन्द्राणाम्।
वर्षाण्युच्चस्थानां नीचस्थानामतोऽर्धं स्यात्॥
मध्येनुपाततः स्याद्यानयनं शेषमत्र यत्किञ्चित्।
पिण्डायुष इव कार्यं तत्सर्वं गणिततत्त्वज्ञैः॥

यहाँ यह शंका उठती है कि जीवशर्माकथित प्रकार से कब आयुः साधन् करना। यह निर्णय करने के लिए श्रीपति पद्धति के अध्याय ५ का श्लोक ३२ उद्धृत किया जाता है:—

लग्नसूर्यशशिनो बलशून्याः
स्युर्यदात्र परमायुरगांशम्।
सर्व एव खचरा गदतीदं
जीवशर्म गदितं ही तदायुः॥

सम्प्रदाय यह है कि सूर्य बली हो तो पिंडायु लेना, चन्द्रमा बली हो तो नैसर्गिकायु, लग्न बली हो तो अंशायु। अंशायु या अंशकायु—दोनों एक ही बात है। पिंडायु और निसर्गायु पहले कह चुके हैं। अंशायु आगे कहेंगे। यदि सूर्य, चन्द्र, लग्न तीनों बलहीन हों तो जीवशर्मोक्त आयु लेना।

अंशायु

ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्य बहुसाम्यं समुपैति सत्यवाक्यम्॥१७॥
सत्योक्ते ग्रहमिष्टं लिप्तीकृत्वा शतद्वयेनाप्तम्।
मण्डलभागविशुद्धेऽब्दाः स्युः शेषात्तु मासाद्याः॥ १८॥
स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसंगुणो
द्विरुत्तमस्वांशकभत्रिभागगैः।
इयान् विशेषस्तु भदन्तभाषिते
समानमन्यत् प्रथमेऽप्युदीरितम्॥ १९॥
किन्त्वत्र भांशप्रतिमं ददाति
वीर्यान्विता राशिसमं च होरा।
क्रूरोदये योऽपचयः स नात्र
कार्यं च नाब्दैः प्रथमोपदिष्टैः॥ २०॥

सत्योपदेशो वरमत्र किन्तु कुर्वन्त्ययोग्यं बहुवर्गणाभिः ।
आचार्यकं त्वत्र बहुघ्नतायामेकं तु यद् भूरि तदेव कार्यम् ।।२१।।

वराहमिहिर ने जीवशर्मा का मत दे दिया है किन्तु यह मत उनको सम्मत नहीं है, यह इससे प्रकट है कि उन्होंने लिखा है कि 'जीवशर्मा ने अपने मत से ऐसा कहा।' 'अपने मत से, इन शब्दों से व्यञ्जित होता है कि अन्य प्राचीन आचार्यों का यह मत नहीं है। जीवशर्मा का मत कहने के बाद सत्याचार्य के मत का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि सत्याचार्य का मत बहुत से साम्य रखता है। मूल में है 'बहुसाम्यं समुपैति सत्यवाक्यम्'। इसके दो अर्थ हैं। एक तो यह कि इनका मत बहुतों के मत से मेल खाता है। दूसरा अर्थ यह भी होता है कि जातकों कोजितनी आयुर्दाय होती है--जितना जीवनकाल होता है--वह बहुत ठीक होता है। साम्य क्या ? जितनी आयु गणितागत सत्याचार्य के मत से आयी--उतनी ही आयु पर जातक की इहलीला समाप्त हो गई। अर्थात् गणित सही उतरता है। १७।

अंशायु निकालने के लिए पद्धति क्या है? जिसकी ग्रह प्रदत्त आयु निकाल रहे हैं उसको स्पष्ट कीजिए। राशि, अंश, कला निकालिए। फिर इन राशि, अंश, कला--सबकी कला बना लीजिए। २०० से भाग दीजिए। यह वर्ष हुए। यदि वर्ष १२ से अधिक आयें तो १२ से भाग दीजिए। लब्धि का प्रयोजन नहीं है। जो शेष बचे वह वर्ष उसकी ग्रहप्रदत्त आयु हुई। जो भिन्न बचे उसके मास दिन घड़ी पल बना लीजिए। यह इसकी ग्रहप्रदत्त अंशकायु हुई। इसी प्रकार अन्य छः ग्रह प्रदत्त अंशायु बना लीजिए। सातों ग्रह प्रदत्त अंशकायु और लग्न प्रदत्त अंशकायु का योग अंशकायु होता है। लग्न प्रदत्त अंशकायु निकालने का प्रकार भिन्न है। वह भी आगे कहेंगे। इसमें भी कुछ संस्कार किए जाते हैं, जो आगे बतलावेंगे।

उदाहरण : मान लीजिए सूर्य स्पष्ट ७-२६°-१०' है। अर्थात् सूर्य वृश्चिक राशि में २६ अंश १० कला पर है। इसके अंश बनाये तो हुए ७ × ३० + २६ = २३६ अंश १० कला। अंशों की कला बनाइए। २३६ × ६० + १० = १४१६० + १०' = १४१६०'

अब इन १४१६०' में २ ० का भाग दिया तो आये ७०$\frac{१७०}{२००}$ क्योंकि ७० की संख्या १२ से अधिक है इसलिए १२ से भाग दिया तो लब्धि आयी ५। शेष बचे १०$\frac{१७०}{२००}$ वर्ष। $\frac{१७०}{२००}$ वर्ष के आए दस मास ६ दिन। इस प्रकार सूर्य प्रदत्त अंशकायु हुई १० वर्ष १० मास ६ दिन।

इसकी अंशकायु निकालने की एक सहज प्रक्रिया और है, जिसमें इतना द्रविड़ प्राणायाम नहीं करना पड़ता।

उदाहरण : सूर्य स्पष्ट ७-२६°-१०' है। कुंभनवांश में है। मकर नवांश पूरा हो चुका है। इसके रखिए १० वर्ष (क्योंकि मेष से मकर तक १० होता है। कुंभ नवांश २३°–२०' से २६°-४०' तक होता है। प्रत्येक नवांश में २०० कला होती है। इस नवांश में २३°-२०' के आगे २६°-१०'(स्पष्ट सूर्य) २°-५०' अंश चल चुका है अर्थात् १७० कला चल चुका है।

यदि २००' कला में   १ वर्ष

तो १' „ „ $\frac{१}{२००}$ वर्ष

तो १७० „ „ $\frac{१७०}{२००}$ वर्ष

=१० मास ६ दिन

मकर नवांश पार कर चुका है, इसके १० वर्ष ऊपर ले चुके हैं। इसलिए कुल सूर्य प्रदत्त आयु हुई १० वर्ष १० मास ६ दिन। इसी प्रकार सातों ग्रहों की अंशकायु निकालनी चाहिए और लग्न प्रदत्त आयु जोड़नी चाहिए।

इसका गणित नवांश पर आधारित है। इसलिए इसे अंशायु कहते हैं। दक्षिण भारत में नवांश को ही संक्षेप में अंश कहते हैं।

यहाँ एक बात की ओर विशेष ध्यान दिलाया जाता है। जिसकी ग्रह प्रदत्त अंशकायु निकालना हो उसकी नवांश स्थिति वश आयु प्राप्त होती है। एक राशि में ९ नवांश (नव+अंश) होते हैं। राशि के नौ भाग होने से ही नवांश कहलाता है। नौ भाग ०°-३°-२०' ३°-२०' से ६°-४०' इत्यादि प्रथम अध्याय में कह चुके हैं। ऊपर उदाहरण में सूर्य वृश्चिक के २६ अंश १० कला पर है। २३°-२०' से २६°-४०' तक अष्टम नवांश होता है, इसका कारण सूर्य अष्टम नवांश में है। किन्तु यह नवांश संख्या अंशायु गणित में नहीं ली जाती है। यह जिस राशि नाम वाले नवांश में ग्रह हो उस राशि की मेष, वृष इस क्रम से जो राशि संख्या हो, उसे आधार मानते हैं। प्रस्तुत उदाहरण में सूर्य कुम्भ नवाँश में है। वह मकर को पार कर चुका है। मकर की संख्या १० है। इस काणर सूर्य प्रदत्त आयु के १० वर्ष लिए। इस सिद्धांत को पाठक विस्मरण न करें। अन्यथा भ्रम हो जाने से अशुद्धि हो जावेगी। १८।

अब पहले पिण्डायु, निसर्गायु आदि के प्रसङ्ग में जो संस्कार, इसी अध्याय के श्लोक ७ से १० तक कहे गए हैं, वे सब भी अंशकायु में करने चाहिएं। किन्तु श्लोक ११ में जो क्रूरोदय हरण कहा गया है—अर्थात् लग्न में क्रूर ग्रह होने के कारण आयुर्दाय में कभी वह संस्कार अंशकायु में नहीं किया जाता है। इस ओर पाठकों का विशेष ध्यान आकृष्ट किया जाता है। इसके अतिरिक्त अंशकायु में कतिपय विशेष संस्कार किए जाते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों में ग्रह प्रदत्त आयुर्दाय में वृद्धि की जाती है तथा कुछ अन्य परिस्थितियों में ग्रह प्रदत्त आयुर्दाय में ह्रास (घटना) किया जाता है। वृद्धि कब और कितनी की जाती है, पहले इसे कहते हैं—

यदि ग्रह (जिसकी प्रदत्त आयुर्दाय का गणित कर रहे हैं) (i) अपनी उच्च राशि में हो या (ii) यदि ग्रह वक्री हो तो उसकी प्रदत्त आयुर्दाय हो उसे तिगुना करना। यदि ग्रह (i) अपनी राशि में हो या (ii) अपने नवांश में हो या (iii) अपने द्रेष्काण में हो या (iv) वर्गोत्तम हो तो ग्रह प्रदत्त आयुर्दाय को दुगुना करना चाहिए, यह सत्याचार्य ने विशेष नियम कहा है। १९।

अब सत्याचार्य के मत से ग्रह प्रदत्त आयु कितनी होती है यह कहा जाता है। लग्न स्पष्ट के आधार पर जैसे ग्रह स्पष्ट किस नवांश मेष, वृष आदि में है उसकी संख्या के अनुसार। इस आधार पर ग्रह प्रदत्त आयुर्दाय निकालने की रीति कही गई है, वैसे ही गणित करनी चाहिए। लग्न को उच्च वक्र, स्वराशि स्वराशि स्वद्रेक्काण वाली परिस्थिति जो किसी ग्रह को प्राप्त हो सकती है, प्राप्त नहीं हो सकती किन्तु यदि लग्न स्पष्ट वर्गोत्तम हो तो, लग्न प्रदत्त आयुर्दाय को दुगुना करना (जैसे ग्रह वर्गोत्तम होने से ग्रह प्रदत्त आयुर्दाय को दुगुना किया जाता है) या नहीं, इस सिद्धान्त पर प्राचीन किसी टीकाकार ने प्रकाश नहीं डाला है। परन्तु हमारे विचार से, सिद्धान्ततः जब वर्गोत्तम ग्रह प्रदत्त आयुर्दाय को दुगुना किया जाता है तो यदि वर्गोत्तम लग्न हो तो तद्दत्त आयुर्दाय को भी दुगुना करना चाहिए।

उच्च आदि परिस्थिति में तिगुना करना, स्वराशि आदि परिस्थिति में ग्रह प्रदत्त आयु को दुगुना करना। यही भदन्त ने विशेष कहा है। भदन्त सत्याचार्य का ही नाम है। और व्ययादि शत्रुक्षेत्रादि हरण के नियम पहले कहे गये हैं, वे अंशकायु गणित को भी लागू होते हैं (किन्तु क्रूरोदय हरण वाला नियम लागू नहीं होता, यह आगे श्लोक २० में कहा है)। १९

लग्नप्रदत्त आयुर्दाय गणितप्रक्रिया कैसे करना? जैसे ग्रह प्रदत्त आयुर्दाय गणित किया जाता है—नवांश स्थिति वश। यह पहिले समझाया जा चुका है। किन्तु

लग्न यदि बलवान् हो तो लग्न में जो राशि हो उसके आधार पर भी लग्न प्रदत्त आयुर्दाय होता है। यथा लग्न स्पष्ट ३°-१५°(कर्क के १५ अंश) हो तो ३½ वर्ष लग्न राशि प्रदत्त आयु हुई। लग्न ११-५° (मीन के ५ अंश) हो तो ११ वर्ष २ मास। लग्न यदि ७-२०° (वृश्चिक के २० अंश) हो तो ७ वर्ष ८ मास। पूरी राशि के वर्ष ३० अंश=१२ मास। जितने अंश भुक्त हों, उनके तैराशिक से मास बना लेने चाहियें।

यह केवल तभी होता है, जब लग्न बलवान् हो ? लग्न बलवान् हो कब समझा जावे। वराहमिहिर के अनुसार लग्न अपने स्वामी, बृहस्पति तथा बुध से युत, वीक्षित हो, अन्य ग्रह से युत वीक्षित न हो तो बलवान् होता है। क्योंकि बृहज्जातक अध्याय १ श्लोक १९ में उन्होंने कहा है :

'होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्योत्कटा'

अब यहाँ एक शंका होना, पाठकों को स्वाभाविक है। लग्न प्रदत्त आयुर्दाय (क) नवांश (लग्न नवांश) के आधार पर भी कहा और यदि लग्न बलवान् हो तो (ख) लग्न के आधार पर भी कहा। यदि लग्न बलवान् हो तो (क) के स्थान में (ख) आयुर्दाय होता है, या (क)+(ख)।

भट्टोत्पल (जातकपारिजात यह श्लोक २०, बृहज्जातक का अध्याय ७ का श्लोक ११ है) अपनी टीका में लिखते हैं "......लब्धमासादि तत्रैव योजयेद्।" रुद्रभट्ट अपनी टीका में लिखते हैं:—

'होरावीर्यान्विता होरास्वामिगुरुज्ञेत्याद्युक्तलक्षणवीर्यान्विता चेत् केवलं भांशप्रतिममेव न राशिसमं च आयुर्ददाति। वीर्यहीना चेत् भांशप्रतिममेव ददाति, वीर्यवती चेद् भांशसमं राशिसमं च आयुरेकीकृत्य ददातीत्यर्थः

इस कारण लग्न बलवान् हो तो लग्न प्रदत्त आयुर्दाय (क)+(ख) दोनों का योग लेना। यदि लग्न बलवान् न हो तो केवल (क) लेना।

इस श्लोक के उत्तरार्द्ध में दो बातें कही हैं (i) इस अंशायुर्दाय में क्रूरोदय हरण न करना। यह हम पहले ही समझा चुके हैं (ii) पिंडायु नैसर्गिकायु आदि के प्रसंग में जो प्रत्येक ग्रह की सम्पूर्ण दशा के पृथक्-पृथक् वर्ष कहे हैं, उन वर्षों का, अंशायु में कोई प्रयोजन नहीं है। २०।

वराहमिहिर बृहज्जातक अध्याय ७, श्लोक १२ में (जो जातक पारिजात का अध्याय ५ का श्लोक २१ है) कहते हैं कि मयादि कथित पिण्डायु आदि, जीवशर्मोक्त आयु तथा सत्याचार्य निर्दिष्ट अंशकायु, इन तीनों में सत्याचार्य का मत सर्वश्रेष्ठ है किन्तु वारंवार गणना करने के कारण ग्रह उच्च हो तो तिगुना,

स्वद्रेष्काण हो तो दुगुना करना, स्वनवांश में हो तो दुगुना करना--वर्गोत्तम हो तो दुगुना करना--इस प्रकार पुनः पुनः गणना करने के कारण 'अयोग्य' = सही फलादेश के प्रतिकूल हो जाता है। रुद्रभट्ट इसकी व्याख्या करते हुए उदाहरण देते हैं। कहते हैं---मान लीजिए शुक्र मीन राशि के अन्तिम नवांश में वक्री है। मीन राशि में--परमोच्च में मीन नवांश में शुक्र प्रदत्त आयु १२ वर्ष हुई। वर्गोत्तम होने से दुगुना किया जाता है। शुक्र मीन राशि मीन नवांश में वर्गोत्तम होता है, इस कारण १२×२=२४ वर्ष हुए। वक्री होने से तिगुना किया जाता है। यहां शुक्र वक्री है; तिगुना किया तो २४×३=७२ वर्ष आये। शुक्र अपनी उच्च राशि में है, इस कारण उच्च राशि स्थिति होने से तिगुना करना, इस नियमानुसार ७२ को तिगुना किया तो ७२×३=२१६--दो सौ सोलह वर्ष की केवल शुक्र प्रदत्त आयु आई। लोक में--मीन राशि, मीन नवांश में वक्री शुक्र तो अनेक कुण्डलियों में देखा जाता है, परन्तु २१६ वर्ष की आयु लोक में घटित नहीं होती। इस कारण बारंबार गणना करना अनुचित है। अनेक प्रकार की वृद्धि यदि किसी ग्रह को प्राप्त हो तो जो सब से अधिक वृद्धि हो वही केवल एक बार करना। जैसे उपर्युक्त शुक्र के उदाहरण में (i) तिगुना (ii) तिगुना (iii) दुगुना यह तीन अधिकार प्राप्त हैं तो केवल एक ही अधिकार--जो सबसे अधिक है--उसी का प्रयोग करना। उपर्युक्त उदाहरणों में तिगुना, दुगुने से अधिक है--इसलिए तिगुना करना और वह भी एक ही बार।

मान लीजिए मेष के प्रथम नवांश में मंगल है। तो स्वराशि, स्वद्रेष्काण, स्वनवांश, वर्गोत्तम--इसलिए २×२×२×२= १६ गुना न करना किंतु एक बार ही दुगुना करना। ऐसा ही सम्प्रदाय है।

स्वल्पजातक में भी वराहमिहिर ने यह स्पष्ट उल्लेख किया है :--

वर्गोत्तमे स्वराशौ स्वद्रेष्काणे स्वनवांशके सकृत् द्विगुणम्।
वक्रोच्चयोस्त्रिगुणितं द्विगुणित्वे सकृत् त्रिगुणम्॥

भट्टोत्पल कहते हैं कि वृद्धि एक ही बार करना, इस सिद्धान्त को ह्रास करने के नियम पर भी लागू करना चाहिए और 'चक्रपात' (जातकपारिजात अध्याय ५, श्लोक ९) के अतिरिक्त अन्य हरणों में अस्त वक्री हो तो, शत्रु क्षेत्री हो, नीच हो। इन अधिकारों में अनेक अधिकार यदि ह्रास करने से प्राप्त हों तो एक ही बार ह्रास करना और एक ही बार वह ह्रास करना जो सब से अधिक प्राप्त हो। यदि किसी कारण वृद्धि भी प्राप्त हो तथा ह्रास भी अन्य

कारण से प्राप्त हो तो एक ही वार जो सबसे अधिक वृद्धि का अधिकार हो—उसका प्रयोग करना और एक हानि जो सबसे अधिक ह्रास प्राप्त हो—उसको करना।

एक ही वार हानि करने के नियम के अन्तर्गत चक्रपात हरण नहीं लेना। वह तो करना ही है। आवश्यक उसके अतिरिक्त–जो अन्य हानियां प्राप्त हों नीच शत्रु क्षेत्री, अस्तंगत आदि–उनमें से एक ही जो सब से अधिक हो वह ह्रास करना।

भगवान गार्गि ने भी कहा है

राशितुल्यांशसंख्यानि ग्रहोऽब्दानि प्रयच्छति।
लग्नश्च सबलोऽन्यानि भुक्तराशिसमानि तु॥
मासाद्यानयनं कार्यमनुपातादतः परम्।
सर्वार्धत्रिचतुर्थांशान् वामं पञ्चचतुः समित्॥
हरन्ति पापाः स्वाद्याया तदर्धमितरे ग्रहाः।
व्ययाच्चक्रापहानिस्तु कथितेयं तथा ध्रुवम्॥
एकस्त्वेकर्क्षगेष्वेव करोति बलवान्ग्रहः।
शत्रुक्षेत्रगतस्त्र्यंशनीचेऽर्द्धं सूर्यगस्तथा॥
हान्तेस्वाद्यायाद् रविगौ न सितादित्यनन्दनौ।
न चावनिसुतश्चांशं शत्रुक्षेत्रगतस्तथा॥
ध्रुवापहानिः कर्तव्या ततोऽन्यासु बहुष्वपि।
प्राप्तास्त्वेकैव कर्त्तव्या या स्यात्तासु महत्तरा॥
तथैव गुणना कार्यास्त्वेकैव महती सकृत्।
द्वाभ्यां वर्गोत्तमे स्वांशे स्वद्रेष्काणे स्वके गृहे॥
त्रिभिर्वक्रगतस्याथ स्वोच्चराशिगतस्य च।
ग्रहदायो भवेत्येवं शोध्यक्षेपकृतस्तु यः॥

रश्मिजायु

दशगोशरबाणाद्रिवसुसायकरश्मयः।
दिननायकमुख्येषु निजतुङ्गगतेषु च॥२२॥
स्वोच्चोनमिष्टखचरं यदि षड्गृहोनं
चक्राद्विशोध्य कृतलिप्तकमंशुमानैः॥
हत्वा भचक्रकलिकाहृतमब्दपूर्वं
रव्यादिरश्मिजनितायुरिति ब्रवन्ति॥ २३॥

रवि के दश, चन्द्र के नौ, मंगल के पाँच, बुध के भी पाँच, गुरु के सात, शुक्र के आठ और शनि के पाँच—इस प्रकार उच्च में प्रत्येक ग्रह की रश्मियाँ बताई गई हैं। यह रश्मियाँ तब होती हैं जब प्रत्येक ग्रह अपने परमोच्च अंश में होते हैं।' यदि ग्रह अपनी परम नीच अवस्था में हों तो उसकी शून्य रश्मि होती है ॥२२॥

वही रश्मि निकालने का प्रकार इस श्लोक में बताया है। ग्रह में उसके उच्च को हीन करे। यदि यह १२ से कम हो तो रश्मिमान से गुणा कर २१६०० से भाग देने से वर्षादि प्राप्त होते हैं। यह आचार्य लोगों ने रश्मि मान बताया है। हमारे विचार से २१६०० से गुणा करके लम्बा हिसाब बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। पूर्ण उच्च में सूर्य को १० और पूर्ण नीच में ० तो मध्य में कितने मिलेंगे अनुपात से निकाल लीजिए। पूर्ण उच्च में चन्द्रमा को ९ और परम नीच में ० तो मध्य में अनुपात से कितने ? इसी प्रकार सभी ग्रहों के विषय में देखना चाहिए ॥ २३ ॥

रश्मि का हरण

स्वराशितुङ्गातिसुहृद्गृहस्थे वक्रोपगे तद्द्विगुणीकृतांशुः।
वक्रावसानेऽष्टमभागवर्ज्या सपत्नगे द्वादशभागहानिः ॥२४॥
अस्तङ्गतेषु द्युचरेषु चार्द्धं हित्वा शनिं दानवपूजितं च।
तद्रश्मियोगे ग्रहदत्तमायुर्महेन्द्रशास्त्रोदितमाहुरार्याः ॥ २५ ॥

इस श्लोक में रश्मि का कैसे संस्कार करना यह बताते हैं।

(क) यदि कोई ग्रह अपनी राशि में हो तो उसकी रश्मियों को दुगनी करना।

(ख) अपनी उच्च राशि में हो तो दुगनी करना।

(ग) अगर अतिमित्र राशि में हो तो उसे दुगनी करना।

(घ) यदि वक्र हो तो दुगनी करना।

(ङ) यदि ग्रह वक्र के अवसान में हो तो रश्मियों को अष्टमांश से हीन करना। किस अवस्था में वक्र के अवसान भाग में है, यह नहीं बताया गया है।

(च) यदि ग्रह अपनी शत्रु राशि में हो तो उसकी रश्मियों को $\frac{1}{12}$ कम करना।

(छ) यदि शनि और शुक्र को छोड़ कर बाकी कोई ग्रह अस्त हो तो उसकी रश्मियों को आधा करना। शुक्र और शनि को छोड़ कर अन्य ग्रहों के अस्त होने पर उनकी रश्मियाँ कम होती हैं।

यह महेन्द्र शास्त्र में आयु का गणितगत प्रकार है। इसमें यद्यपि महेन्द्र शास्त्र को आधार माना है परन्तु महेन्द्र शास्त्र में बहुत से आचार्यो ने प्रत्येक ग्रह की केवल ७ रश्मियां मानी हैं और यह भी कहा है कि अपने द्वादश भाग में हो तो रश्मियों को द्विगुणित करना चाहिए। अपनी राशि में हो तो तिगुनी करना। यह सब जातक पारिजातकार ने नहीं लिखा है। इस प्रकार जब आचार्यो में इतनी मत भिन्नता है तो कहाँ तक वह विश्वसनीय हैं यह कहना कठिन है ॥२४-२५॥

चक्रायु

रव्यादिसप्तग्रहतारकांश-
भुक्तावशेषाब्द-समूहमायुः।
सव्यापसव्योयगवाक्यजं वा
वदन्ति चक्रायुरिनादिकानाम् ॥ २६ ॥

सूर्यादि सात ग्रह – कौन कितने नवांश में हैं इसको विचार कर अवशिष्ट ग्रहों की जो आयु आये उस सबको जोड़ने से जो आयु आये उसे चक्रायुः कहते हैं अथवा सव्य और अपसव्य जो आयु हो उसे चक्रायुः कहते हैं। यह पाँचवाँ प्रकरण है जिसमें आयु विभाग का विचार यह है और सूक्ष्म रूप में कुछ प्रसिद्ध महादशाओं का उल्लेख किया गया है। उदाहरण के लिये अध्याय १७ में विस्तृत कालचक्र दशा का विस्तृत विवेचन है। उसी में यह बताया गया है कि कौन से नक्षत्र सव्य हैं और कौन से अपसव्य ॥२६॥

दशायु

आदित्यमुख्यनवखेचरयोगतारा
भुक्तावशिष्ट-घटिकाजनिवत्सराद्यम्
आयुर्दशाजनितमष्टकवर्गजातं
यत्प्रोक्तमेव सकलं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ २७ ॥

सूर्य इत्यादि ९ ग्रह जिस योगतारा में हों उसके अनुसार जो दशा पद्धति है वह दशायुः कहलाती है । सूर्य के ६ वर्ष, चन्द्रमा के १० वर्ष, मंगल के ७ वर्ष, राहु के १८ वर्ष, बृहस्पति के १६ वर्ष, शनि के १९ वर्ष, बुध के १७, केतु के ७ और शुक्र के २० वर्ष होते हैं ॥२७॥

अष्टक वर्ग आयु उसे बहुत से विद्वान कहते हैं ॥२७॥

आयुर्ग्रहण

विलग्नपे बलोपेते शुभदृष्टेंऽशसम्भवम् ।
रवौ पिण्डोद्भवं कुर्याच्चन्द्रे नैसर्गिकं क्रमात् ॥ २८ ॥
उच्चङ्गते रवौ चान्ये बलिष्ठाः केन्द्रकोणगाः ।
सर्वेषु स्वोच्चभावेषु बलिष्ठे शशहंसके ॥ २९ ॥
एवं चिरायुषां योगेष्वन्येषु गणितेषु च ।
चान्द्रयोगेषु तुर्ये तु चन्द्रे च बलसंयुते ॥ ३० ॥
महापुरुषयोगेषु वीर्योत्कटयुतेषु च ।
राजयोगेषु सर्वेषु पैण्डयमाह पराशरः ॥ ३१ ॥
लग्ने गुरौ कर्मगते च भानौ
चन्द्रे सुखे वाऽस्तगते बलाढ्ये ।
केन्द्रत्रिकोणोपचये च सौम्ये
पापेष्वथापोक्लिमगेषु पैण्डयम् ॥ ३२ ॥
पैण्डयं भानौ निसर्गप्रभवमुडुपतौ रश्मिजं सोमपुत्रे
भौमे भिन्नाष्टवर्गोदितमसुरगुरौ कालचक्रोद्भवायुः ।
देवाचार्ये दशायुर्दिनकरतनये सामुदायं बलिष्ठे
लग्ने यद्यंशकायुर्भवति बलयुते चाहुराचार्यमुख्याः ॥ ३३ ॥

यदि लग्नेश बलवान् हो और शुभ दृष्ट हो तो अंशायुः लेना । रवि बलवान् हो तो पिण्डायुः लेना । और अगर चन्द्रमा बली हो तो नैसर्गिक आयु लेना । यह श्लोक मणित्थ का है और वहाँ से दिया गया है । ॥२८॥

यदि रवि उच्च राशि में हो और अन्य बलवान् ग्रह केन्द्र त्रिकोण में हों या सभी ग्रह उत्तम भाव में हों, या बल युक्त शश योग, हंस योग हों तथा दीर्घायु के अनेक योगों में कई योग हों और गणितागत दीर्घायु के योग हों तथा

महापुरुषों के योग हों, चान्द्र योग में बलवान् चन्द्रमा चतुर्थ में हो, राज योग कर्त्ता अनेक योग हों और समस्त बलवान् राजयोगों में पिण्डायु ग्रहण करना। यह पराशर ने कहा है। ।।२९–३१।।

बृहस्पति लग्न में हो, सूर्य १० में हो, चन्द्रमा चतुर्थ या सप्तम में बलवान् हो तो ग्रह केन्द्र (१, ४, ७, १०) त्रिकोण (५, ९) या उपचय (३, ६, १०, ११) और पाप ग्रह आपोक्लिम (३, ६, ९, १२) तो पिण्डायु ग्रहण करनी चाहिये ।।३२।।

और भी लिखते हैं कि जन्म के समय सूर्य बलवान् हो तो पिण्डायु, चन्द्रमा बली हो तो निसर्गायु, मंगल बली हो तो अष्टक वर्गायु, बुध बली हो तो रश्मिज और शुक्र बली हो तो काल चक्रायु, बृहस्पति बलवान् हो तो दशायु, लग्न बली हो तो अंशायु, शनि बलवान् हो तो सब प्रकार की आयु का योग कर और उस संख्या में जितनी प्रकार की आयु ली गई है उसका भाग देकर जो आये उसको आयु मानना चाहिये ।।३३।।

आयुरब्दादिकं सर्वं निश्चलेन गुणीकृतम् ।
मातङ्गेन हृतं लब्धं सौरमानायुरुच्यते ।। ३४ ।।

जितनी आयु आये उसको ३६० से गुणा करके ३६५ से भाग देना तो आयु स्पष्ट हो जायगी। कहने का तात्पर्य यह है कि चान्द्र संवत्सर को सौर संवत्सर बनाना है ।।३४।।

आयु के अधिकारी

ये धर्ममार्गनिरता द्विजदेवभक्ता
ये पथ्यभोजनरता विजितेन्द्रियाश्च ।
ये मानवादधृतिसत्कुलशीलसीमा-
स्तेषामिदं कथितमायुरुदारधीभिः ।। ३५ ।।

ये पापलुब्धाश्चोराश्च देवब्राह्मणनिन्दकाः ।
सर्वाशिनश्च ये तेषामकालमरणं नृणाम् ।। ३६ ।।

धर्मे विकल्पबुद्धीनां दुःशीलानां च विद्विषाम् ।
ब्राह्मणानां च देवानां परद्रव्यापहारिणाम् ।। ३७ ।।

भयङ्कराणां सर्वेषां मूर्खाणां पिशुनस्य च ।
स्वधर्माचारहीनानां पापकर्मोपजीविनाम् ।। ३८ ।।

शास्त्रेष्वनियतानां च मूढानामपमृत्यवः ।
अन्येषामुत्तमायुः स्यादिति शास्त्रविदो विदुः ॥ ३९ ॥

जो धर्म मार्ग का अवलम्बन करते हैं, जो ब्राह्मण और देवताओं के भक्त हैं, जो जितेन्द्रिय हैं, जो मनुष्य धैर्य युक्त होकर कुल और शील की मर्यादा के अन्तर्गत रहते हैं उनके लिए विद्वानों ने उत्तम आयु कही है ॥३५॥

जो पापी और लोभी हैं, चोर, देवता तथा ब्राह्मण के निंदक हैं, सब कुछ खाने वाले हैं अर्थात् भक्ष्याभक्ष्य का जिनको विचार नहीं है ॥३६॥

जो धर्म में विकल्प बुद्धि हैं, दुःशील हैं और लोगों से द्वेष करते हैं, ब्राह्मणों और देवताओं से विमुख जो दूसरों का धन हरण करते हैं उन पर जातक की आयु के यह नियम लागू नहीं होते ॥३७॥

जो भयंकर हैं, सबके चुगलखोर हैं, अपने धर्म और आचार से हीन हैं और पाप कर्म से ही अपनी आजीविका चलाते हैं उन पर यह आयुर्दाय के नियम लागू नहीं होते हैं ॥३८॥

जो शास्त्रों में बुद्धि नहीं रखते ऐसे मूर्ख अपमृत्यु को प्राप्त होते हैं। औरों की उत्तम आयु होती है। शास्त्र को समझने वालों ने कहा है ॥३९॥

नानाजातीय प्राणियों की आयु

गृध्रोलूकशुकध्वाङ्क्षसर्पाणां च सहस्रकम् ।
श्येनवानरभल्लूकमण्डूकानां शतत्रयम् ॥ ४० ॥
पञ्चाशदुत्तरशतं राक्षसानां प्रकीर्तितम् ।
नराणां कुञ्जराणां च विंशोत्तरशतं विदुः ॥ ४१ ॥
द्वात्रिंशदायुरश्वानां पञ्चविंशत् खरोष्ट्रयोः ।
वृषमाहिषयोश्चैव चतुर्विंशतिवत्सराः ॥ ४२ ॥
विंशत्यायुर्मयूराणां छागादीनां च षोडश ।
हंसस्य पञ्चनवकं द्वादशाब्दाः पिकाः शुकाः ॥ ४३ ॥
तद्वत्पारावतानां च कुक्कुटस्याष्टवत्सराः ।
बुद्बुदानामण्डजानां सप्तसङ्ख्याः समाः स्मृताः ॥ ४४ ॥

इन श्लोकों में विविध पशु-पक्षी एवं मनुष्य की परमायु दी है।

(१) गिद्ध, उल्लू, तोता, कौआ, सर्प की १००० वर्ष की आयु होती है।

(२) बटेर, भालू, वानर, मेढक की आयु ३०० वर्ष है।
(३) मनुष्यों और हाथियों की आयु १२० वर्ष।
(४) राक्षस की १५० वर्ष।
(५) घोड़े की आयु ३२ वर्ष।
(६) गधा और ऊंट की आयु २५ वर्ष।
(७) बैल तथा भैंसे की आयु २४ वर्ष।
(८) मोर की २० वर्ष।
(९) बकरा, भेंड़ा की आयु १६ वर्ष।
(१०) हंस की आयु १४ वर्ष है।
(११) कोकिल और कबूतर की आयु १४ वर्ष।
(१२) मुर्गे की आयु ८ वर्ष।
(१३) बुलबुल की आयु ७ वर्ष की होती है ॥४०–४४॥

अरिष्टदशा

त्रिमण्डलेष्वथैकस्मिन् पापस्तिष्ठति दुर्बलः।
न सौम्यग्रहसंयुक्तस्तद्दशान्ते मृतिं वदेत् ॥ ४५ ॥
राशिसन्धिस्थखेटानां दशा रोगप्रदा भवेत्।
त्रिशद्भागमनुक्रान्तदशायां मरणं नृणाम् ॥ ४६ ॥
षष्ठाष्टमस्थो रिपुदृष्टमूर्त्तिः पापग्रहः पापगृहोपगश्चेत्।
स्वान्तर्दशायां मरणं नराणां वदन्ति युद्धे विजितस्य दाये ॥४७॥
पञ्चम्यारदशा मृत्युं दद्यात्षष्ठी गुरोर्दशा।
शनेश्चतुर्थी मृत्युः स्याद्दशा राहोस्तु पञ्चमी ॥ ४८ ॥
नीचारातिविमूढस्य विपत्प्रत्यरिनैधनाः।
दशा दद्युर्मृतिं तस्य पापयुक्ता विशेषतः ॥ ४९ ॥
तत्तद्भावार्थकामेशदशास्वन्तर्दशासु च।
तत्तद्भावविनाशः स्यात् तद्युक्तेक्षितकारकैः ॥ ५० ॥
अष्टमस्य त्रिभागांशपतिस्थितगृहं शनौ।
तदीशनवभागर्क्षं गते वा मरणं भवेत् ॥ ५१ ॥

त्रिमण्डल का अर्थ समझिए। लग्न से प्रथम ४ राशि एक मण्डल हुआ। पंचम से अष्टम तक दूसरा। नवम से बारहवें तक तीसरा। जैसा जातकादेश में लिखा है :

लग्नपञ्चमभाग्यादिभावेष्वेकत्र संस्थितैः ।
चतुराद्यैर्ग्रहैर्जाता दीर्घमध्याल्पजीविनः ।

तीनों मण्डलों में एक में भी दुर्बल पाप ग्रह हो और यह पाप ग्रह किसी सौम्य ग्रह से संयुक्त न हो तो उस ग्रह की दशा तक मृत्यु होती है ॥४५॥

दो राशि के संधि में जो ग्रह होता है उसकी दशा रोगकारक होती है। जो ग्रह तीसवें अंश में हो तो मनुष्य का मरण हो ॥४६॥

जो ग्रह पाप ग्रह की राशि में हो, षष्ठ या अष्टम भाव में रहता है, अपने शत्रु से देखा जाता हो उसकी अन्तर्दशा में यदि महादशानाथ पड़ा हो तो वह युद्ध में हारा हुआ है ॥४७॥

जब पाँचवीं दशा मंगल की हो, छठी दशा गुरु की हो, शनि की चतुर्थ दशा हो तो राहु की पाँचवी दशा हो, नीच शत्रु राशि में बैठा हुआ हो, विपत्, निधन प्रत्यरि की दशाएं विशेषकर पाप ग्रह से युक्त होने से विशेष मारक हो जाती हैं और अपनी दशा में अनिष्ट करती हैं। जिस-जिसका मृगशिर, चित्रा धनिष्ठा में जन्म होगा जिस-ज़िसका अश्विनी, भरणी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाफाल्गुनी में जन्म होगा उनको पाँचवीं दशा राहु की और छठी बृहस्पति की होगी। जो ग्रह नीच शत्रु ग्रही विमूढ—अर्थात् सूर्य सान्निध्य के कारण अस्तंगत हो गया हो। अपनी जन्म तारा से तीसरी तारा, पाँचवीं तारा और सातवीं तारा में जो हों उसको मृत्यु कराते हैं यह साधारण नियम है। पाप ग्रह विशेषतया ॥४८-४९॥

जिस ग्रह की मुख्य दशा चल रही हो और जिसके सप्तम और द्वितीय की दशा चल रही हो तो उस दशा में इन-इन वस्तुओं की हानि होगी (१) जो उसके भाव में हों। (२) जो उसको देखें (३) जो उस भाव का कारक हो।

फलदीपका में भी कहा है:—

द्वावर्थकामाविह मारकाख्यौ
तदीश्वरस्तत्र गतो बलाढ्यः ॥
हन्ति स्वपाके निधनेश्वरो वा
बलेश्वरो वाप्यतिदुर्बलश्चेत् ॥

पराशर का वचन है:—

जाया कुटुम्बकाधीशौ मारकौ परिकीर्तितौ ॥५०॥

जन्म कालिक अष्टम भाव में जो द्रेष्काण हो उसका स्वामी जहाँ स्थित हो वहाँ गोचर वश भ्रमण करता हुआ शनि पहुँचते हैं त ब अनिष्ट होता है। द्रेष्काणेश जिसके नवांश में हो उसमें जाने पर हानि मरण होता है ॥५१॥

छिद्रग्रह

रन्ध्रेश्वरो रन्ध्रयुक्तो रन्ध्रद्रष्टा खरेश्वरः ।
रन्ध्राधिपयुतश्चैव चतुःषष्ट्यंशनायकः ॥ ५२ ॥
रन्ध्रेश्वरातिशत्रुश्च सप्त छिद्रग्रहाः स्मृताः ।
तेषां मध्ये बली यस्तु तस्य दाये मृतिं वदेत् ॥ ५३ ॥

सात ग्रह छिद्र ग्रह कहे गये हैं। (१) अष्टम का स्वामी। (२) जो ग्रह अष्टम में बैठा हो। (३) जो ग्रह अष्टम को देखता हो। (४) खर—अर्थात् २२वें द्रेष्काण का स्वामी हो। (५) जो ग्रह अष्टमेश के साथ बैठा हुआ हो। (६) चन्द्रमा से गिरने पर जो ६४ में नवांश का मालिक हो। (७) ६४ में घर के मालिक का जो अतिशत्रु हो।

जो इन सातों में अत्यन्त प्रवल हो उसकी दशा में, अन्तर्दशा में मृत्यु होती है। मंत्रेश्वर ने कहा है :—

मन्दमान्द्यगुखरेशरन्ध्रपा-
स्तन्न वांशपतयोऽपि ये ग्रहाः ।
तेषु दुर्बलदशामृतिप्रदाः
कष्टभे चरति सूर्यनन्दने ॥
मृतीशनाथस्थितभांशकेशयोः
खरत्रिभागेश्वरयोर्बलीयसोः ।
दशागमे मृत्युपयुक्तभांशक-
स्त्रिकोणगे देवगुरौ तनुक्षयः ॥

प्रश्नमार्ग में कहा है:—

लग्नाद्वा यदि जन्मतो मृतिपतिर्मृत्युस्थतद्वीक्षकौ
मन्दः क्रूरदृगाणपो गुलिकपस्तैर्युक्तराश्यंशपाः ।
राहुश्चैषु सुदुर्बलो जनुषि यो भावेनभीष्टे स्थितः
पापालोकितसंयुतोऽस्य हि दशा वाऽन्तर्दशा मृत्युदा ॥
पापानां चेद्दशायामपहृतिरसतां चिन्तनीयोऽत्रमृत्यु –
र्गोमासर्क्षेश्वराणामपि निजजनिभाद्दोषदः पाककालः ।
द्वित्र्यादीनां दशानां युगपदवसतिर्यत्र कालः स कष्टः
सर्वासां वा दशानामवसतिरशुभा दोषदानां विशेषात् ॥५२-५३॥

फलदीपिका में भी कहा है:—

रन्ध्रस्थरन्ध्रेक्षकरन्ध्रनाथरन्ध्रदृगाणाधिपमान्दिभेशाः ।
दुःखप्रदास्तेष्वपि दुर्बलो यः स नाशकारी स्वदशापहारे ।।

तत्तद्भावाद्व्ययस्थस्य तद्भावाधीश्वरस्य वा ।
वीर्योपेतस्य खेटस्य पाके मृत्युर्न संशयः ।। ५४ ।।

उस-उस भाव के व्ययस्थ अर्थात् बारहवें में बैठे या व्यय के स्वामी उस भाव के व्यय के स्वामी यदि बलवान हो तो उस संबंधी—ग्रह संबंधी जातक की मृत्यु होती है । मंत्रेश्वर ने एक श्लोक लिखा है । या तो मंत्रेश्वर ने जातक पारिजात से लिया या जातक पारिजातकार ने फल-दीपिका से दिया —

"तत्तद्भावाद् व्ययस्थस्य तद्भावव्ययपस्य च ।
वीर्यहीनस्य खेटस्य पाके मृत्युमवाप्नुयात् " इति ।।

एक ने लिखा है कि ग्रह बली होता है तब मारता है । दूसरा कहता है जब ग्रह निर्बल होता है तब मारता है । यह परस्पर विरुद्ध बात है । हमारे विचार से ग्रह जब बली होगा तब मारेगा ।।५४।।

द्रेष्काण स्वरूप

कुलीरमीनालिगता दृगाणाः मध्यावसानप्रथमा भुजङ्गाः ।
अलिद्वितीयो मृगलेयपूर्वः क्रमेण पाशो निगडो विहङ्गः ।। ५५ ।।

कर्क राशि का मध्य द्रेष्काण, मीन का अन्तिम द्रेष्काण, वृश्चिक राशि का प्रथम द्रेष्काण ये पाश कहलाता है । मकर राशि का पहला द्रेष्काण निगद कहलाता है और सिंह राशि का पहला द्रेष्काण विहंग कहलाता है । ।।५५।।

विलग्नजन्मद्रेक्काणाद्यस्तु द्वाविंशतिः खरः ।
सुधाकरोपगांशर्क्षाच्चतुःषष्ट्यंशको भवेत् ।। ५६ ।।

लग्न के जिस द्रेष्काण में जन्म हो उससे २२वाँ द्रेष्काण खर कहलाता है यह खर द्रेष्काण जिस नवांश में हो उससे ६४वाँ नवांश होता है ।।५६।।

जीवदेहमृत्यु संज्ञा

लग्नं पञ्चहतं च मान्दिसहितं प्राणस्फुटं प्राणिनां
चन्द्रस्य स्फुटमष्टकेन गुणितं देहं समान्दिस्फुटम् ।

सप्तघ्नं गुलिकस्फुटं सह दिवानाथेन मृत्युर्भवेत्
तस्माज्जीवकलेवरैक्यविपुले जातश्चिरं जीवति ॥ ५७ ॥

इस श्लोक में लग्न प्राण मृत्यु, जीव देह आदि मालूम करने के सिद्धांत बताये गये हैं :—

(१) लग्न × ५ + स्पष्ट गुलिक = प्राण

(२) स्पष्ट चन्द्रमा × ८ + गुलिक = देह

(३) स्पष्ट गुलिक × ७ + सूर्य = मृत्यु

इनको निकाल लीजिए। इनका प्रयोजन क्या है ?

कहते हैं कि अगर मृत्यु < जीव + देह तो प्राणी की दीर्घायु होती है परन्तु मृत्यु > जीवन + देह तो प्राणियों की अल्पायु होती है। यहाँ पर मृत्यु, देह और जीव निकालने का यही प्रयोजन है। क्योंकि अगर मृत्यु, देह और जीव से कम है तो प्राणी दीर्घायु होगा और यदि मृत्यु, देह और जीव से अधिक है तो प्राणी अल्पायु होगा ॥५७॥

निर्याण समय

जीवमृत्युतनुयोगराशिगे गोचरेण रविजे धनक्षयः।
तन्त्रिकोणगृहगेऽथवा नृणां तन्नवांशकयुते मृतिं वदेत् ॥ ५८ ॥
भावत्रिकोणगे मन्दे भावनाशं वदेद्बुधः।
भावाधिपतिकोणे वा गुरौ प्राप्ते मृतिर्भवेत् ॥ ५९ ॥

पूर्वोक्त जीव, मृत्यु और देह का योग कीजिये। उस राशि में जब गोचर वश शनि पहुंचे तब धन नाश हो और उससे नवम, पंचम राशियों में जब शनि पहुँचे तो शरीर कष्ट हो। भाव से त्रिकोण शनि हो तो भाव का नाश होना दैवज्ञों ने कहा है। और भाव स्वामी से त्रिकोण में गुरु पहुँचने पर ऐसा होता है। इस योग के नवांश पर जब गोचर वश शनि पहुँचे तो मनुष्य का मरण होता है ॥५८-५९॥

लग्नार्कमान्दिस्फुटयोगराशेरधीश्वरो यद्भुवनोपगस्तु।
तद्राशिसंस्थे पुरुहूतवन्द्ये तत्कोणगे वा मृतिमेति जातः ॥ ६० ॥

स्फुटे विलग्ननाथस्य विशोध्य यमकण्टकम् ।
तद्राशिनवभागस्थे जीवे मृत्युर्न संशयः ॥ ६१ ॥
मान्दिस्फुटे भानुसुतं विशोध्य राश्यंशकोणे रविजे मृतिः स्यात् ।
धूमादिपञ्चग्रहयोगराशिद्रेक्काणयातेऽर्कसुते च मृत्युः ॥ ६२ ॥

सूर्य, लग्न और मान्दि जन्म कुण्डली में जहाँ पर हों उनका योग कर दीजिए और देखिए कि यह भाग कौन-सी राशि और अंश पर पड़ रहा है। गोचर वश जब बृहस्पति इस स्थान पर आये या इससे त्रिकोण पर आये तब मृत्यु होती है ॥६०॥

जन्म स्पष्ट में से यमकंटक को घटाइये। देखिये यह भाग किस राशि और किस नवांश में पड़ता है। गोचर वश जब बृहस्पति यहाँ आता है तब मृत्यु होती है ॥६१॥

स्पष्ट मान्दि में से स्पष्ट शनि को घटाइये जो शेष और नवांश पर जब शनि गोचर वश आये तब मृत्यु होती है। धूम आदि पाँच तरह के योग से जो राशि आती है, द्रेष्काण आये उसमें शनि के गोचर में जाने से मृत्यु होती है ॥ ६२ ॥

मान्दिस्फुटोदितनवांशगतेऽमरेज्ये
तद्द्वादशांशसहिते दिननाथसूनौ ।
द्रेक्काणकोणभवने दिनपे च मृत्यु-
र्लग्नेन्दुमान्दियुतभेंऽशगतोदये स्यात् ॥ ६३ ॥

स्पष्ट गुलिक के नवांश मे जब गुरु आये और स्पष्ट गुलिक के द्वादशांश में जब शनि आये और स्पष्ट गुलिक के द्रेष्काण में जब सूर्य आय तब लग्न+चन्द्र+गुलिक राशि अंशगत सूर्य में मृत्यु हो ॥ ६३ ॥

विलग्नमान्दिस्फुटयोगभांशं निर्याणमासं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
निर्याणचन्द्रो गुलिकेन्दुयोगो लग्नं विलग्नार्किसुतेन्दुयोगम् ॥६४॥

स्पष्ट लग्न और मान्दि स्पष्ट का योग कीजिए। जो राशि और नवांश आये उस पर से निर्याण तारीख निकालनी चाहिए। जैसे मेष राशि होने से एक

मास, वृष होने से दो मास आदि । इसी प्रकार से मान्दि स्पष्ट और चन्द्रमा के योग से जो राशि आये उससे निर्याण चन्द्रमा निकलता है। निर्याण लग्न निकालने का तरीका यह है —लग्न+चन्द्रमा+मान्दि ।।६४।।

गुलिकं रविसूनुं च गुणित्वा नवसङ्ख्यया ।
उभयोरैक्यराश्यंशगृहगे रविजे मृतिः ॥ ६५ ॥
षष्ठावसानरन्ध्रेशस्फुटैक्यभवनं गते ।
तत्त्रिकोणोपगे वाऽपि मन्दे मृत्युभयं नृणाम् ॥ ६६ ॥

मान्दि स्पष्ट+शनि इन्हें जोड़िए । इनके योग को नौ से गुणा कीजिए । जब इस राशि अंश पर शनि जायेगा तब मृत्यु होगी ।। ६५ ।।

अष्टमेष, षष्ठेश, द्वादशेश का योग कीजिए । जब इस राशि पर या इससे नवम पंचम राशि में शनि आये तब मनुष्य को मृत्यु-भय होता है ।। ६६ ।।

जीवे नन्दहते विरिञ्चिगुणितं मन्दं च मान्दिस्फुटम्
संयोज्यं पुनरङ्कवृद्धिमिनजं मन्दात्मजं योजयेत् ।
तद्देवेशपुरोहितस्फुटचयप्राप्तं नवांशं गते
जीवे गोचरगे यदा यदि नृणां निर्याणकालो भवेत् ॥ ६७ ॥

स्पष्ट गुरु निकालिए । उसको ४ से गुणा कीजिए । फिर स्पष्ट शनि और स्पष्ट मान्दि के योग को ४ से गुणा कीजिए और उसमें जोड़िए । उस योग राशि के नवांश मे जब बृहस्पति जायेगा तब मृत्यु होगी ।। ६७ ।।

भानुस्फुटे नवहते रविजं च मान्दिं
हत्वा ग्रहैस्तदिनराशिगणेषु योज्यम् ।
मान्दिं पुनश्च नवकेन हतं च युञ्ज्यात्
तद्राशिकांशगतपूषणि मृत्युकालः ॥ ६८ ॥

नौ से गुणा किए हुए स्पष्ट सूर्य को नौ से गुणा किए हुए स्पष्ट शनि और ४ से गुणा किए हुए स्पष्ट गूलिक में जोड़िए । फिर उसमें ४ से गुणा किये हुये गुलिक को जोड़िये । उस राशि में जब गोचर वश बृहस्पति जायेगा तब मृत्यु होगी अर्थात् निर्याण का मास ज्ञात होता है ।। ६८ ।।

सुतेशसंयुक्तनभश्चराणां दशाब्दसङ्ख्या दिननायकाप्ताः ।
तच्छेषिते मासि मृतिं नराणां वदन्ति लग्नेशयुतग्रहैर्वा ॥ ६९ ॥

सुतेश से युक्त ग्रहों की वर्ष संख्या में १२ का भाग दीजिए। बाकी बचे हुये मास में मनुष्य की मृत्यु होती है। लग्नेश से युक्त ग्रह से भी इसी तरह मनुष्य की मृत्यु होती है ॥६९॥

चन्द्रस्फुटे नवकसङ्गुणिते तु मान्दि
मन्दं च नन्दहतमिन्दुनियोजनीयम् ।
कृत्वा पुनर्नवहतार्किसुतं समेतं
यत्तन्नवांशकशशी मरणप्रदः स्यात् ॥ ७० ॥

स्पष्ट चन्द्रमा को ४ से गुणा कीजिए। शनि और गुलिक को ४ से गुणा कीजिये। पुनः जो योगफल आये उसमें ४ से गुणा कर फिर गुलिक को जोड़ दीजिये। जो नवांश आये वह मृत्यु का नवांश होगा अर्थात् चन्द्रमा उस नवांश में जायेगा तो क्षय होगा ॥७०॥

जातोऽह्नि चेदर्कशनिस्फुटैक्यतारादिनिर्याणदशा प्रकल्प्या ।
तारेशराहुस्फुटयोगतारापूर्वा दशाऽनिष्टकरा रजन्याम् ॥ ७१ ॥

(१) यदि दिन का जन्म हो तो सूर्य, शनि के स्पष्ट योग से जो नक्षत्र आये उस नक्षत्र में जिस ग्रह की दशा हो उससे निर्याण की दशा होगी।

(२) यदि रात में जन्म हो तो चन्द्रमा और राहु के योग से निर्णय करे तथा उस नक्षत्र से चन्द्रमा जो दशा प्रारम्भ करे उसमें मृत्यु जाननी चाहिये ॥७१॥

निर्याण हेतु

उदयाद्द्वाविंशतिकं द्रेक्काणं कारणं मृत्योः ।
तस्याधिपस्य निर्याणं सूचयेद्विधिवत्तमः ॥ ७२ ॥

अब निर्याण का हेतु कहते हैं। निर्याण किसे कहते हैं ? यहाँ निर्याण का अर्थ है इस संसार से चले जाना अर्थात् मृत्यु को प्राप्त होना। उदय लग्न से

२२वाँ द्रेष्काण मृत्यु का कारण होता है। इसलिये ज्योतिष का ज्ञाता यह ज्ञात करे कि लग्न से २२वाँ द्रेष्काण कौन सा है और उसका स्वामी कौन है। सारावली बृहज्जातक और फलदीपिका में भी यही कहा गया है। यथा

द्वाविंशः कथितस्तु कारणं द्रेष्काणो निधनस्य सूरिभिः।
तस्याधिपतिर्भवोऽपि वा निर्याणं स्वगुणैः प्रयच्छति ॥

—बृहज्जातक

उदयाद्द्वाविंशतितमद्रेक्काणो भवति कारणं मृत्योः।
तस्याधिपतिभवो वा निर्याणं सूचयेत् स्वगुणैः ॥

—सारावली

लग्नादष्टमराशेः स्वभावदोषोद्भवं वदेन्मृत्युम्।
निधनेशस्य नवांशस्थितराशिनिमित्तदोषजनितं वा ॥

—फलदीपिका

अब आगे विवेचन करते हैं ॥ ७२ ॥

ज्ञेया जन्मनि यन्नवांशकगतो मान्दिस्तदीयास्तके
राशौ तिष्ठति चेत् शुभस्तु बलवान् सौख्येन नूनं मृतिः।
भूपुत्रे समरेण सूर्यतनये चोरादिभिर्दानवैः
सर्पाद्यैश्च तथा रवौ नृपभयात्क्षीणोडुपे तोयजात् ॥ ७३ ॥

जन्म के समय यह देखिये कि मान्दि किस राशि के किस नवांश में है। उस नवांश राशि से सातवीं राशि कौन सी है। ध्यान रहे कि नवांश राशि से सप्तम राशि देखनी चाहिये। उस नवांश राशि से सप्तम सौम्य ग्रह बलवान् हो तो जातक की सुख से मृत्यु होती है। सुख से क्या ? अर्थात् किसी भी प्रकार की चिन्ता या उद्वेग या शरीर-कष्ट नहीं होता। यदि नवांश राशि से सप्तम में मंगल हो तो संग्राम में मृत्यु को प्राप्त हो, यदि शनि हो तो चोर आदि दानवों (दुष्टों) से और राहु हो तो सर्प से; सूर्य हो तो राज-दण्ड से, क्षीण चन्द्रमा हो तो जल से मृत्यु हो। मूल में राहु हो तो भी शनि का जो हेतु है वही हेतु बताया गया है। किन्तु राहु का अध्याहार निम्नलिखित प्रश्नमार्ग के श्लोक से किया जाता है—

मान्द्यारूढनवांशका भृगृहगाः सौम्याः सुमृत्युप्रदाः
पापास्तत्र गतास्तु दुर्मृतिकरा स्तेष्वर्क उर्वीपतेः।

क्षीणेन्दुः सलिले युधि क्षितिसुतः सूर्यात्मजो वञ्चना-
द्राहुः पन्नगदंशनान्मरणदो यद्वा विषस्पर्शनात् ॥

अब आगे कहते हैं वह पढ़िये ॥ ७३ ॥

रन्ध्रं येन निरीक्षितं बलवता तद्धातुकोपान्मृतिः
सूर्यादग्निजलायुधज्वरकफक्षुत्तृट्कृतैश्चामयैः ।
लग्नादष्टमधामपे तनुगते कालस्य यद्देहजैः
छिद्रांशे च चरस्थिरोभयगते देशान्तरे स्वे पथि ॥ ७४ ॥

अब यह बताते हैं कि किस धातु के कोप से मृत्यु होगी। प्रत्येक ग्रह के धातु पहले बताये जा चुके हैं। यथा सूर्य और मंगल के पित्त, बुध के त्रिदोष, बृहस्पति का कफ, चन्द्रमा के वात और कफ, शुक्र के भी यही और शनि का वात। अब यह देखिये कि रंध्र-स्थान को कौन सा ग्रह देखता है। सूर्य देखता हो तो अग्नि से, चन्द्रमा देखता हो तो जल से, मंगल देखता हो तो आयुध से, बुध देखता हो तो ज्वर से, बृहस्पति देखता हो तो कफ से, शुक्र देखता हो तो क्षुधा से और शनि देखता हो तो तृषा से मृत्यु होती है। ऊपर जो भिन्न-भिन्न वात-पित्त-कफ के स्वामी बताये गये हैं उसके अतिरिक्त प्रत्येक ग्रह के कुछ रोग बताये गये हैं उनके अन्तर्गत इन रोगों को समझना चाहिये।

पुनः कहते हैं कि अष्टम भाव का स्वामी लग्न में हो तो लग्न-राशि, कालपुरुष के जिस अंग में पड़ती है—यथा मेष में सिर इत्यादि—उसी शरीर के अंग में बीमारी होती है और उस रोग से जातक मरण को प्राप्त होता है।

यदि अष्टम भाव का नवांश, चर-राशि में हो तो परदेश में, स्थिर नवाँश में हो तो स्वदेश में, और द्विस्वभाव राशि में हो तो स्वदेश से अन्यत्र मार्ग में मृत्यु हो। नीचे लिखे इसी भाव के कुछ श्लोक दिये जाते हैं।

यो बलयुक्तो निधनं पश्यति तद्धातुकोपजो मृत्युः ।
तत्संयुक्तस्तनुजो बहुभिर्बलिभिर्बहुप्रकारः स्यात् ॥

—सारावली

दिनकरप्रमुखैर्निधनाश्रितैर्भवति मृत्युरिति प्रवदेत् क्रमात् ।
अनलतो जलतः करवालतो ज्वरबलेन रुजा क्षुधया तृषा ॥

—यवनजातक

वीर्यान्वितः पश्यति मृत्युभं यस्तद्धातुकोपान्मृतिमामनन्ति ।
तद्युक्तकालाख्यनरस्य गात्रे तस्मिन् प्रदेशे बहुभिर्बहूनाम् ॥

सूर्यादिभिर्निधनगैर्निधनं हुताशतोयायुधज्वरजमामयजं क्रमेण।
क्षुत्तृट्कृतं च चरभे परदेशगस्य तस्य स्थिरे स्वविषये पथि च द्विमुक्तौ ॥
—गुणाकर
॥७४॥

अब यदि न अष्टम में कोई ग्रह हो, न अष्टमेश लग्न में हो, न अष्टम को कोई ग्रह देखता हो तो किस धातु के कोप से मरण हो यह कहते हैं।

शून्यागारे रन्ध्रराशौ बलिष्ठै-
रादित्याद्यैर्वीक्षिते खेचरेन्द्रैः।
नो चेत् छिद्रस्थानयातैश्च नो चेत्
तद्द्रेक्काणस्वामिना मृत्युमेति ॥ ७५ ॥

यदि अष्टम में बलवान् आदित्य आदि देखते हों तो उनके देखने वाले ग्रहों के अनुसार मृत्यु होती है। अब अष्टम को कोई ग्रह न देखता हो और अष्टम में कोई ग्रह स्थित भी न हो तो मृत्यु का निर्णय किस तरह से करना?

अष्टम के द्रेष्काण स्वामी के अनुसार मृत्यु होती है। अष्टम में तीन द्रेष्काण होते हैं।

लग्न में प्रथम द्रेष्काण उदित हो तो प्रथम द्रेष्काण और अष्टम लग्न के तीन द्रेष्काण, द्वितीय स्थान के तीन द्रेष्काण इस प्रकार लग्न से जो २२वाँ द्रेष्काण हो वह मृत्यु का अधिष्ठाता होता है। उदाहरण के लिये किसी का लग्न के अन्तिम द्रेष्काण में जन्म हो तो अष्टम भाव का अन्तिम द्रेष्काण २२वाँ होगा। लग्न के द्वितीय द्रेष्काण में जन्म हो तो अष्टम का द्वितीय द्रेष्काण लग्न से २२वाँ द्रेष्काण होगा। यदि लग्न के अंश ०° से १०° तक है तो प्रथम द्रेष्काण में जन्म हुआ और २२वाँ द्रेष्काण, अष्टम का प्रथम द्रेष्काण हुआ ॥७५॥

रव्यादिखेटनिजधातुभवामयेन
जातस्तदीयखलकिंकरपीडया वा।
रन्ध्रे शुभग्रहयुते तु विलापहेतुं
सौख्येन मृत्युमुपयाति शुभोपयाते ॥ ७६ ॥

रवि आदि ग्रह अपने रोगों से और उनके उपग्रह (काल आदि) कष्ट देते हैं। अष्टम स्थान में यदि शुभ ग्रह हो तो सुखपूर्वक और पाप-ग्रह हो तो

विलाप पूर्वक मृत्यु होती है । सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु अशुभ ग्रह हैं इसलिये अष्टम में होने से बहुत कष्टकारक हैं। चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र सौम्य ग्रह हैं यह अष्टम में हों तो सुखपूर्वक मृत्यु कराते हैं ।।७६।।

तुलायां रुधिरे प्राप्ते वृषभस्थे दिवाकरे ।
चन्द्रे मन्दगृहं प्राप्ते विण्मध्ये मरणं भवेत् ॥ ७७ ॥
बलिना शनिना दृष्टे क्षीणेन्दौ निधनाश्रिते ।
गुदाक्षिरुक्पीडया वा मृत्युः शस्त्रकृतो भवेत् ॥ ७८ ॥
लग्नाच्छिद्रत्रिकोणस्थैरर्कारार्किनिशाकरैः ।
मृत्युः स्याच्छैलपातेन वज्रकुडयादिभिश्च वा ॥ ७९ ॥
भौमारुणौ यदि परस्परराशियुक्तौ
केन्द्रस्थितौ निधननायकखेचरेन्द्रात् ।
जातोऽवसानसमये क्षितिपालकोपात्
शूलादिकायुधवरैर्निधनं समेति ॥ ८० ॥

(१)यदि तुला में मंगल, वृष राशि में सूर्य और मकर किंवा कुंभ राशि में चन्द्रमा हो तो मनुष्य की मृत्यु विष्ठा के बीच होती है ।।७७।।

(२) यदि क्षीण चन्द्रमा अष्टम में हो और उसको बलवान् शनि देखता हो तो गुदा रोग से, नेत्ररोग से पीड़ा हो या शस्त्र से मृत्यु हो ।।७८।।

(३) लग्न से अष्टम स्थान में, लग्न से नवम और पंचम स्थान में, सूर्य, शनि, मंगल और चन्द्रमा चारों ग्रह हों तो शिलापात से, बिजली से, या दीवार के गिर जाने से उसकी मृत्यु हो ।

सारावली में भी एक इसी प्रकार का श्लोक है —
बलिना कुजेन दृष्टे क्षीणेन्दौ रन्ध्रगेऽर्कजे मृत्युः ।
गुल्ममहावेदनया क्रिमिदाहायुधकृतो भवति ॥
लग्नाच्छिद्रत्रिकोणेषु रव्यारार्किनिशाकरैः ।
मृत्युः स्याच्छैलपातेन शस्त्रकुञ्जादिपाशजः ॥ ७९ ॥

(४) यदि मंगल और सूर्य परस्पर एक दूसरे की राशि में हों और अष्टमेश से केन्द्र में हों तो मरण समय में राजा के कोप से, शूल इत्यादि से मृत्यु को प्राप्त होता है । सूर्य वृश्चिक में हो और मंगल सिंह में हो तभी यह योग हो सकता है । होरासार में लिखा है कि यदि मंगल और शनि और बाकी सब ग्रह रन्ध्रेश से युत केन्द्र में हों तब यह योग होता है ।

भौमार्कजौ यदि परस्परभागसंस्थौ
क्षेत्रेऽथवा निधनभेंशयुते च केन्द्रे ।
तस्यावसानसमये क्षितिपालकोपात्
शूलादिनायुधशर्तैनिधनं समेति ।।

—होरासार

हमें होरासार का पाठ विशेष उपयुक्त मालूम होता है ।।८०।।

चन्द्रे तनौ दिनकरे विबलेऽष्टमस्थे
लग्नाद्व्यये सुरगुरौ सुखगे च पापे।
जातस्य तस्य शयनाच्च्युतहेतुमृत्युः
शस्त्रेण वा निशि निषादकृतेन वा स्यात् ।। ८१ ।।
लग्नेशे निधनांशस्थे मूढे षष्ठगतेऽथवा ।
क्षुद्बाधया च मरणं बन्धुहीने महीतले ।।८२।।
आयुर्विलग्नाधिपती बलेन हीनौ धरासूनुरॠणेशयुक्तः ।
युद्धे मृतिं तस्य वदन्ति तज्ज्ञाः शस्त्रेण जातस्य मृतिं विशेषात् ।।८३।।
लग्नेश्वरे वाहननाथयुक्ते वागीश्वरेणापि युते त्वजीर्णात् ।
दारेश्वरे वाहनवित्तराशिनाथान्विते वा मरणं त्वजीर्णात् ।।८४।।
भुक्त्यंशपो भानुसुतेन युक्तो दुःस्थानगो वा विषभक्षणेन ।
सहाहिना वा शिखिना च तस्य मृत्युर्भवेद्रज्जुनिबन्धनेन ।।८५।।
पिशाचपीडाऽग्निजले विपत्स्याद्भौमाहिमन्दान्यतमेन युक्ते ।
क्षीणे शशाङ्के निधनस्थिते च दुःस्थे त्वपस्मारभयान्मृतिः स्यात् ।।८६।।

(१) जिस व्यक्ति की कुण्डली में चन्द्रमा लग्न में हो, सूर्य निर्बल होकर अष्टम स्थान में बैठे और व्यय में बृहस्पति हो तथा चतुर्थ में पाप-ग्रह हो उसकी शयन से च्युत होने के कारण अर्थात् चारपाई से नीचे गिरने की वजह से या शस्त्र से रात्रि में निषाद द्वारा मृत्यु होती है। होरासार का भी इसी प्रकार का श्लोक है —

लग्ने शशी दिनकरे विबलेऽष्टमस्थे
लग्नाद्व्यये सुखगतेऽपि च पापखेटे।
जातस्य हस्तनयनच्युतदेशमृत्युः
शस्त्रेण वा निशि निषादकृतेन वा स्यात् ।।८१।।

(२) लग्नेश यदि अष्टमेश के नवांश में हो अर्थात् लग्नेश लग्न से चौसठवें नवांश में हो या सूर्य के साथ अस्त होकर छठे स्थान में हो तो भूख से, बन्धु हीन भूमि में, मृत्यु को प्राप्त हो। यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि कई टीकाकारों ने यह अर्थ दिया है कि सूर्य जन्म लग्न से छठे हो, किवां अस्त हो, किवां छठे भाव में हो (इसको पृथक् और अस्त हो इसको पृथक्) योग माना है। किन्तु हम यह अर्थ नहीं लेते। षष्ठेश चौंसठवें नवांश में हो या अस्त होकर छठे भाव में हो तो यह योग होता है ॥८२॥

(३) यदि अष्टमाधिपति और लग्नेश निर्बल हो तथा मंगल षष्ठेश के साथ हो तो उस जातक की युद्ध में मृत्यु हो, विशेषकर शस्त्र से। श्री नवाथे ने अपनी मराठी टीका में रणेशयुक्तः पाठ दिया है और अर्थ किया है—"यदि अष्टमेश और लग्नेश बलहीन होकर मंगल या सप्तमेश से युक्त हो तो शस्त्र से युद्ध में मरता है।" किन्तु हम इस पाठ से सहमत नहीं हैं। हम इस पाठ से सहमत हैं कि अष्टमेश, लग्नेश बलहीन हो और मंगल तथा षष्ठेश से युक्त हो तो यह योग होता है। सर्वार्थचिन्तामणि में व्रणेशयुक्तः पाठ है ॥८३॥

(४) (i) यदि लग्नेश और चतुर्थेश दोनों गुरु से युक्त हो तो अजीर्ण से मृत्यु हो (ii) सप्तमेश, चतुर्थेश, द्वितीयेश एक साथ हो तो भी अजीर्ण से मृत्यु होती है ॥८४॥

(५) यदि लग्न से दशम का नवांश अधिपति शनि के साथ हो या दुःस्थान में हो अर्थात् छठे, आठवें, बारहवें हो तो विष खाने से मृत्यु हो। इसी प्रकार दशम के नवांश अधिपति राहु या केतु के साथ हो तो गले में फाँसी लगा कर मृत्यु हो। सर्वार्थचिन्तामणि में ऐसा योग आया है।

भुक्त्यङ्गपौ भानुसुतेन युक्तौ दुःस्थानगौ वा विषभक्षणेन।
राहुध्वजाभ्यां सहितौ च दुः स्थाबुद्बन्धनात्तस्य मृतिं वदन्ति ॥८५॥

(६) यदि मंगल, राहु दोनों शनि से युत हों तो पिशाच बाधा हो। अग्नि से या अगाध जल में डूबने से मृत्यु हो किन्तु क्षीण चन्द्रमा अष्टम स्थान में स्थित हो तो अकस्मात् (मिर्गी रोग) से मृत्यु हो ॥८६॥

रन्ध्रस्थानगते सूर्ये भौमे वा बलवर्जिते।
वित्ते पापग्रहैर्युक्ते पित्तरोगान्मृतिं वदेत् ॥८७॥

जलराशिगते चन्द्रे चाष्टमस्थेऽथवा गुरौ ।
पापग्रहेण संदृष्टे क्षयरोगान्मृतिं वदेत् ॥८८॥
अष्टमस्थानगे शुक्रे पापगृहनिरीक्षिते ।
वातरोगात्क्षयाद्वाऽपि प्रमेहाद्वा मृतिं वदेत् ॥८९॥
सूर्यस्थानगते सौम्ये पापगृहनिरीक्षिते ।
त्रिदोषान्मरणं विन्द्याज् ज्वररोगेण वा वदेत् ॥९०॥
मृत्युस्थानगते राहौ पापग्रहनिरीक्षिते ।
पिटकाद्युष्णरोगाद्वा सर्वदोषान्मृतिर्भवेत् ॥९१॥
पराभवगते राहौ पापग्रहनिरीक्षिते ।
मसूरिकादिरोगाद्वा पित्तभ्रंशान्मृतिं वदेत् ॥९२॥

(१) अष्टम स्थान में सूर्य या मंगल निर्बल हो और द्वितीय स्थान में पाप-ग्रह हो तो पित्त रोग (पित्त-दोष) से मृत्यु हो ॥८७॥

(२) चन्द्रमा या बृहस्पति अष्टम राशि में (जलचर राशि में) पाप-ग्रह से दृष्ट हो तो क्षय-रोग से मृत्यु हो॥८८॥

(३) अष्टम स्थान में शुक्र हो और उसे पाप ग्रह देखते हों तो वात रोग से, या क्षय से, या प्रमेह से मृत्यु हो। प्रमेह अनेक प्रकार से होता है। डाईबिटीस भी एक प्रकार का प्रमेह है ॥८९॥

(४) सूर्य के स्थान में बुध हो अर्थात् लग्न में मकर हो और अष्टम में बुध हो तथा उसे पाप-ग्रह देखता हो तो त्रिदोष से (वात-पित-कफ) या ज्वर से मृत्यु हो ॥९०॥

(५) अष्टम स्थान में राहु हो उसे पाप-ग्रह देखता हो तो फोड़े-फुंसी आदि से या उष्ण-रोग से (जिस रोग से शरीर में गर्मी हो जाये) या सर्प से मृत्यु हो ॥९१॥

(६) राहु आठवें में हो और पापग्रह से निरीक्षित हो तो मसूरिका आदि रोग किंवा पित्त कुपित हो जाने से मृत्यु हो ॥९२॥

हस्तादि विच्छेद योग

धर्मे शनौ चाथ गुरौ तृतीये करच्छिदः स्यान्निधने व्यये वा ।
कर्मस्थिताश्चेद्यदि राहुमन्दसौम्याः करच्छेदयुतोऽत्र जातः ॥९३॥

शुक्रेण दृष्टे यदि रन्ध्रनाथे सूर्ये शनौ वा फणिनाथयुक्ते ।
क्रूरादिषष्ट्यंशसमन्विते वा विच्छेदनं तच्छिरसो वदन्ति ।।६४।।
मन्दे विलग्ने मदने सराहौ कन्यान्विते भार्गवनन्दने च ।
क्षीणे शशाङ्के मदराशियुक्ते विच्छिन्नहस्तश्च पदेन सार्द्धम् ।।६५।।
भूसूनुलग्ने यदि वा तदंशे सूर्यान्विते कृष्णनिशाकरे तु ।
फणीशचन्द्रात्मजसंयुतेऽर्कराशौ यदा तद्ध्युदरप्रभेदम् ।।६६।।
मन्दोदये सौम्यदृशा विहीने सर्पार्कयुक्ते यदि कृष्णचन्द्रे ।
नाभिप्रवेशोदरभेदमाहुः शस्त्रेण जातस्य पराशराद्याः ।।६७।।

(१) (i) यदि नवम भाव में शनि और तीसरे में गुरु हो तो दोनों हाथ काटे जावें ।

(ii) यदि बारहवें घर में गुरु और अष्टम में राहु हो तो भी यही फल ।

(iii) यदि राहु, शनि और बुध दशम भाव में हो तो हाथ से रहित हो । सर्वार्थचिन्तामणि में भी ऐसा ही योग दिया है । थोड़ा सा अन्तर है—

घर्मे शनौ वा सगुरौ तृतीयकरच्छिदोऽर्के निधने व्यये वा
विधौ कलत्रे निधनान्विते वा कुजेन युक्ते यदि वा सजीवे ।

इस प्रकार ९३ से लेकर श्लोकों में तीन योग हैं ।।९३।।

(२) शुक्र से दृष्ट यदि अष्टमेश हो या सूर्य शनि से युक्त अष्टमेश हो और क्रूरादि से षष्टि-अन्त में हो तो आदमी का सिर काटा जाता है । इसमें तीन योग हैं। अष्टमेश शुक्र से दृष्ट हो या सूर्य, शनि, राहु से युक्त हो, वा क्रूरादि से षष्टि-अन्त हो तो सिर काटा जाये । सर्वार्थचिन्तामणि में इसी प्रकार का योग है ।

शुक्रेज्यदृष्टे दिवसाधिनाथे सारे शनौ वा फणिनाथयुक्ते ।

हमारे विचार से यह योग नहीं होना चाहिये । क्योंकि :

(क) शुक्र से दृष्ट रन्ध्रेश हो

(ख) या सूर्य, शनि, राहु से युक्त हो

(ग) या क्रूर ग्रह से

षष्टि-अन्त हो तो यह योग होता है। बहुतों की कुण्डली में यह योग होता है किन्तु उनका सिर नहीं काटा गया ।।९४।।

(३) एक अन्य योग जिसमें हाथ-पैर दोनों काटे जायें इसका दिया है ।

यदि शनि लग्न में, सप्तम में, राहु कन्या में शुक्र और सप्तम में क्षीण चन्द्रमा हो तो हाथ और पैर दोनों ही कट जाते हैं ।।९५।।

(४) यदि मंगल की राशि अथवा मंगल के नवांश में सूर्य हो और कृष्णपक्ष का चन्द्रमा, सूर्य-बुध से युक्त सिंह में हो तो जातक का पेट काटा जाता है।

सर्वार्थचिन्तामणि में थोड़ा सा पाठ भेद है—

फणीशचन्द्रात्मजसंयुतेऽर्करश्म्याभिभूते ह्युदरस्य भेदः ॥९६॥

(५) यदि लग्न में शनि हो उस पर सौम्यग्रहों की दृष्टि न हो और सूर्य, राहु और कृष्णपक्ष के चन्द्र से युत हो तो उस जातक की नाभि के नीचे शस्त्र से आपरेशन किया जाता है। यह पराशर प्रभृति ऋषियों ने कहा है। ॥९७॥

दुर्मरणयोग

षष्ठाष्टमव्यये चन्द्रे लग्ननाथेन वीक्षिते।
मन्दमान्द्यगुसंयुक्ते तस्य दुर्मरणं वदेत् ॥९८॥

जिस पुरुष की कुण्डली में चन्द्रमा, शनि, गुलिक, राहु से युक्त होकर छठे, आठवें, बारहवें हों और लग्नेश से दृष्ट हों उसका दुर्मरण होता है अर्थात् जातक की अपमृत्यु होती है ॥९८॥

मेषूरणस्थे यदि चित्रभानौ भौमे चतुर्थे न च सौम्ययुक्ते।
सौम्ये विलग्नोपगते तु मृत्युं गोश्रृङ्गतः शूलनिपाततो वा ॥९९॥

यदि सूर्य दशम में हो, मंगल चौथे में हो, शुभ ग्रह से युक्त न हो, बुध लग्न में हो तो जातक की मृत्यु गाय के सींग के मारने से या शूल के लगने से होती है। यहाँ पर शब्द आये हैं—'सौम्ये विलग्नोपयुते' जिसका अर्थ सब टीकाकारों ने दिया है कि चतुर्थ में बुध हो। किन्तु सूर्य दशम में और बुध लग्न में हो नहीं सकता अर्थात् बुध और सूर्य में इतना अन्तर सम्भव नहीं है। इसलिये सूर्य से चतुर्थ बुध हो यह सम्भव नहीं है। इसलिये यह श्लोक व्यर्थ हो जाता है ॥९९॥

दशमसुखसमेतैः पापदृष्टैश्च सौम्यै-
रुदयनिधनयातैः शूलपातान्मृतिः स्यात्।
शशिनि तनुगृहस्थे बन्धुगे भानुपुत्रे
कलहजनितदोषैरम्बरस्थे च भौमे ॥१००॥

इसमें दो योग दिये गये हैं।

(१) प्रथम, चतुर्थ, दशम और अष्टम में शुभ-ग्रह हो और पापदृष्ट हो तो जातक की मृत्यु भाले से होती है।

(२) चन्द्रमा यदि लग्न में हो, चतुर्थ में शनि और मंगल दशम में हो तो कलह में आदमी मारा जाता है ॥१००॥

लग्नं गते दिनकरे तरुणीगतेन्दौ
पापेक्षिते कलहतोयभयान्मृतिः स्यात् ।
लग्ने दिनेशशशिनौ द्विशरीरकेऽन्ये-
पापेक्षिता यदि बहूदकभृङ्गिदंष्ट्रात् ॥१०१॥

इस श्लोक में तरुणी शब्द आया है जिसका किसी ने अर्थ किया है कन्या और किसी ने अर्थ किया है सप्तम स्थान। हमें तरुणी का अर्थ कन्या विशेष उपयुक्त मालूम होता है।

(१) यदि लग्न में सूर्य हो और चन्द्रमा कन्या में हो और अशुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो कलह या पानी के भय से मृत्यु हो।

(२) यदि सूर्य और चन्द्र लग्न में हों और अन्य ग्रह द्विशरीर राशियों में हों और पाप-ग्रह से दृष्ट हों तो बहुत जल में रहने वाले जानवरों के सींग से मृत्यु हो।

होरासार में भी निम्नलिखित योग आया है—

अर्केन्दू लग्नगतौ द्विदेहलग्नेषु पापयुग्दृष्टौ ।
कुरुतः प्राणवियोगं जलमध्ये निश्चयं ब्रूयात् ॥१०१॥

तुहिनकिरणलग्नात् पापखेटोपयाते
नवमतनयराशौ पापखेटेक्षिते वा ।
भुजगनिगडपाशे रन्ध्रजन्मत्रिभागे
जननसमयलग्नान्मृत्युमुद्बन्धनेन ॥१०२॥

यदि चन्द्र लग्न से पंचम या नवम पाप-ग्रह हो या पाप-ग्रह देखते हों और अष्टम भाव का द्रेष्काण सर्प, निगड और पाश हो तो जातक की मृत्यु बंधन से होती है। कौन कौन से द्रेष्काण, निगड, पाश इत्यादि होते हैं। इसके लिये देखिये इसी अध्याय के श्लोक पचपन की व्याख्या ॥१०२॥

मीनोदये शशिरवी यदि पापयुक्तौ
पापेऽष्टमे च मरणं रमणीकृतं स्यात् ।
भौमे सुखे दिनकरे यदि वा मदस्थे
मन्देऽष्टमे शशिनि चान्नविशेषजन्यम् ॥१०३॥

इसमें दो योग कहे गये हैं।

(१) मीन लग्न हो और उसमें सूर्य-चन्द्र पाप-ग्रह से युक्त हो और अष्टम में पाप-ग्रह हो तो स्त्रीकृत मरण होता है। अर्थात् किसी स्त्री के कारण मनुष्य मरण को प्राप्त होता है।

(२) यदि मंगल चतुर्थ में हो, सूर्य सप्तम में, चन्द्रमा और शनि अष्टम में तो "फूड-पायजनिंग" अर्थात् अन्न-विशेष के खाने से मरण हो ॥१०३॥

मन्दे धने सुखगते शशिनि क्षमाजे
मानस्थिते व्रणकृतेन मृतिं समेति ।
बन्धुस्थितेऽवनिसुते धनगे शशाङ्के
भानौ नभस्थलगते तु गजाश्वयानात् ॥१०४॥

इसमें दो योग कहे गये हैं।

(१) यदि शनि द्वितीय भाव में हो, चन्द्रमा चतुर्थ में और मंगल दशम भाव में तो मनुष्य की मृत्यु किसी व्रण के कारण होती है।

(२) यदि मंगल चतुर्थ भाव में हो, चन्द्रमा द्वितीय में और सूर्य दशम में तो गज, अश्व या सवारी से मृत्यु होती है ॥१०४॥

रन्ध्रे शनौ वियति हीनबले शशाङ्के
भानौ सुखे निभृतकाष्ठहतेन मृत्युः ।
पापान्तरे जननलग्नपतौ सकेतौ
लग्नाष्टमे खलयुते सति मातृकोपात् ॥१०५॥

इसमें भी दो योग हैं।

(१) जिसके अष्टम भाव में शनि हो और दशम में हीन बली चन्द्रमा हो और चतुर्थ में सर्य हो तो ऐसे व्यक्ति की काष्ठ के ढेर में मृत्यु होती है।

(२) लग्नेश पाप-ग्रहों के मध्य में केतु-युक्त हो और पाप-ग्रह से युक्त लग्न में अष्टम स्थान में हो तो माता के कोप से मृत्यु होती है ॥१०५॥

सुखास्पदस्थैरशुभैर्ग्रहेन्द्रैस्त्रिकोणगैर्वाऽथ विलग्नराशौ।
रन्ध्रेश्वरे भूतनयेन सार्द्धमुद्बन्धनात्तस्य मृतिं वदन्ति ॥१०६॥

यदि लग्न से चतुर्थ और दशम भाव अथवा त्रिकोण (पाँचवाँ, नवम भाव) और अष्टमेश मंगल से युक्त होकर लग्न में हो तो उसकी मृत्यु बंधन से होती है ॥१०६॥

लग्ने रवौ सुते मन्दे रन्ध्रस्थे तुङ्गनायके।
धर्मे गते धरासूनौ वृक्षाशनिभयान्मृतिः ॥१०७॥

सूर्य लग्न में हो, शनि पंचम में, चन्द्रमा अष्टम में और मंगल नवम भाव में हो तो वृक्ष से या बिजली के गिरने से मृत्यु हो । होरासार में भी यह श्लोक आया है—

अर्कोदयेऽर्कपुत्रे सुतगे, रन्ध्रे विधौ कुजे भाग्ये ।
वृक्षाशनिकुड्यपातैर्योगे जातस्य निर्दिशेन्मरणम् ॥१०७॥

पापेष्वाज्ञाबन्धुराशिस्थितेषु
क्षीणे तारानायके शत्रुराशौ।
लग्नाच्छिद्रस्थानराशिं गते वा
यात्राकाले शत्रुदोषान्मृतिः स्यात् ॥१०८॥

यदि दशम और चतुर्थ स्थान में पाप-ग्रह हो, छठे या अष्टम भाव में क्षीण चन्द्रमा हो तो यात्रा के समय में शत्रु के द्वारा मृत्यु होती है ॥१०८॥

लग्नान्त्यगौ भानुधराकुमारौ दिनेशचन्द्रेन्दुसुता मदस्थाः।
सुरालयोद्यानवनप्रदेशे प्रवासभूमौ म्रियते तु जातः ॥१०९॥

यदि लग्न और बारहवें में शनि और मंगल हो तथा सूर्य, चन्द्र, बुध सप्तम में हो तो उस व्यक्ति की देव मन्दिर उद्यान, वन प्रदेश, अरण्य, स्वनिवास भूमि में मृत्यु होती है । होरासार में भी इसी प्रकार का श्लोक आया है—

अर्ककुजौ व्ययसंस्थौ, राहुः शशी सप्तमे, गुरुः केन्द्रे ।
जातस्य मृतिं विन्द्यात्प्रवासभूमौ सुरालयोद्याने ॥१०९॥

लग्नाष्टमे पापयुतेऽष्टमेशे रिःफोपयाते यदि केन्द्रगे वा ।
लग्नेश्वरे हीनबलेन युक्ते दुर्मार्गदोषात्प्रवदन्ति मृत्युम् ॥११०॥

लग्न से अष्टम में पाप-ग्रह हो, और अष्टमेश बारहवें हो अथवा केन्द्र में हो और लग्नेश्वर हीन बल से युक्त हो तो खराब रास्ते के दोष से मृत्यु होना कहा है ॥११०॥

भौमार्कजक्षेत्रगते शशाङ्के पापेक्षिते पापखगान्तरस्थे ।
कन्यागृहे वा हिबुकोपयाते मृतिं वदेदग्निजशस्त्रपातैः ॥१११॥

दो योग कहे गये हैं ।

(१) यदि मंगल या शनि राशि में चन्द्रमा हो, पापग्रह उसे देखता हो या पाप-ग्रह के बीच में चन्द्रमा हो तो उसकी अग्नि से या शस्त्र के कारण मृत्यु हो । यही योग तब भी होता है जब कि चतुर्थ में चन्द्रमा हो और उसी प्रकार देखा जाता हो ।

(२) या कन्या राशि में चन्द्रमा हो और पाप खगस्थ और पापान्तरस्थ हो । इसी प्रकार का श्लोक होरासार में आया है ।

भौमार्कजभवनेऽब्जे पापद्वयमध्यगे न सौम्ययुते ।
कन्यायां हिमगौ वा ज्वराग्निसम्पातशस्त्रदोषैर्वा ॥इति॥ ॥१११॥

यदि विषघटिकायामष्टमे पापयुक्ते
विषशिखिभवशस्त्रैर्जायते तस्य मृत्युः ।
बहुदिविचरयुक्ते लग्नपे साष्टमेशे
बहुजनमृतिकाले मृत्युमेति प्रजातः ॥११२॥

(१) यदि विषघटिका में जन्म हो और अष्टम स्थान पापयुक्त हो तो जहरीले या अग्नि वाले शस्त्र से जातक की मृत्यु हो ।

(२) लग्नेश अष्टमेश स युक्त हो और अनेक ग्रहों से युक्त हो तब बहुत लोगों की मृत्यु होती है यथा हैजा, प्लेग के समय ।

विषघटिका के लिये मुहूर्तमार्तण्ड का निम्नलिखित श्लोक देखिये—

पञ्चाश ५० ज्जिन २४ खाग्नय ३० श्च खकृता ४०
आखण्डला १४ मूर्च्छना २१
स्त्रिंश ३० द्विंश २० रदा ३२ खराम ३० नख २०
धृत्ये १८ काश्विनौ २१ विंशति २० ।
शक्रे १४ दौ १४ दश १० वासवा १४
रसशरा: ५६ सिद्धा २४ नखा २०
शा १० दिशो १०
धृत्य १८ ष्टी १६ जिन २४ खाग्नयो ३०
शिवत इमाभ्योऽग्रेऽब्धिनाड्यो विषम् ॥
नक्षत्रस्य गतैष्ययोगगुणितः स्वस्वध्रुवः षष्ठिहृत्
स्पष्टः स्यादत ऊर्ध्वमब्धिघटिका स्पष्टाः स्युरेवं कृताः ॥ इति ॥

होरासार में जो विषघटिका में पैदा होता है उसका निम्नलिखित फल दिया है —

विषघटिकायां जातो निधनं क्रूरैर्विषाग्निशस्त्रैर्वा ।
निधनेश्वरे विषांशे क्रूरयुते तन्निमित्तदोषेण ॥
यदि च बहुग्रहयुक्ते रन्ध्रेशे रन्ध्रभेऽत्र संयुक्ते ।
बहुजनमरणे काले निधनं जातस्य निश्चयं ब्रूयात् ॥ ११२ ॥

लग्नेशस्थनवांशस्य राशिकोपोद्भवामयैः ॥
मृत्युं तस्य वदन्त्येके हौरिका मुनिपुङ्गवाः ॥११३॥

लग्नेश जिस नवांश में स्थित हो उसे राशि जनित कोप से उत्पन्न रोग से जातक की मृत्यु हो ऐसा कुछ ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता श्रेष्ठ मुनि लोग कहते हैं ।

होरेशेंऽशगते तु तुम्बुरगृहे तापज्वराग्न्युद्भवै-
रूक्षे श्वासविकारशूलजनितैर्युग्मे शिरःशूलजैः ।
वातोन्मादभवैः कुलीरभवने सिंहे विषस्फोटकैः
कन्यायां जठराग्निगुह्यजनितैर्जातस्य मृत्युं वदेत् ॥११४॥
जूकेशोकचतुष्पदज्वरभवैः कीटेऽश्मशस्त्रादिभि-
श्चापे तीव्रमरुद्भवैर्मृगमुखे व्याघ्रादिशूलामयैः ।
कुम्भे व्याघ्रवधूकृतैरनिमिषे तोयातिसारैर्मृति
रंध्रस्यांशगता प्रचारधरणी जातस्य मृत्युप्रदा ॥११५॥

लग्नेश जिस राशि में है वह यदि

(i) मेष की राशि में हो तो तापज्वर या अग्निभय से

(ii) वृष के नवांश में हो तो श्वास विकार और शूल से

(iii) यदि मिथुन के नवांश में हो तो शिर की पीड़ा से

(iv) कर्क में हो तो वात और उन्मार्ग से

(v) सिंह में हो तो विस्फोट से

(vi) यदि कन्या में हो तो जठराग्नि और गुह्य रोग से

(vii) तुला में शोक से और चतुष्पद भय से तथा ज्वर से

(viii) वृश्चिक हो तो पत्थर से, शस्त्र से

(ix) धनु में हो तो अत्यन्त वायु से

(x) मकर में हो तो व्याघ्र आदि से, शूल-रोग से

(xi) कुंभ में हो तो व्याघ्र से और स्त्री से

(xii) मीन में हो तो ज्वर से या अतिसार से।

अष्टम भाव का नवांश (अर्थात् जन्म से ६४वां नवांश) जिस राशि में हो उस राशि की जो भूमि हो (अध्याय १ श्लोक १०-१२) उसी भूमि में जातक की मृत्यु होती है। इस सम्बन्ध में देखिये होरासार—

लग्नादष्टमराशेः स्वभावदोषोद्भवं विजानीयात् ।
निधनेशस्य नवांशस्थितराशिनिमित्तदोषजनितं वा ।।
मेषांशे मेषे वा ज्वरविषजठराग्निपित्तसंभूतः ।
येन ग्रहेण युक्ते दृष्टे वा तत्समानदोषेण ।।
वृषभे वृषभांशे वा त्रिदोषसाङ्कर्यशस्त्रदाहाद्यैः ।
ग्रहरहिते प्राप्तफलं ग्रहयुक्ते तत्समानदोषेण ।।
मिथुने मिथुनांशे वा कासश्वासोद्भवश्च शूलाद्वा ।
चन्द्रगृहे चन्द्रांशे वातान्मान्द्यादरोचकाद्वाऽपि ।।
स्फोटकशस्त्रविषाद्यैर्ज्वरैश्च सिंहे तदंशे वा ।
जठराग्निगुह्यकलहप्रपातनाद्यैश्च कन्यायाम् ।।
जूके तदंशके वा स्वबुद्धिदोषेण हन्यते पुरुषः ।
ज्वरसन्निपातदोषैर्मरणं ब्रूयाद्दशाफलयुतैर्वा ।।
वृश्चिकराशौ चांशे पाण्डुग्रहणीग्रहादिरोगहतः ।
विषशस्त्रजजलकाष्ठैश्चापांशे चापसंयुतैर्मर्त्यः ।।
मकरे मकरांशे वा स्थूलारुचिबुद्धिसंभवान्मृत्युः ।
पापयुते व्याघ्राद्यैः सर्पाद्यैर्वा न सन्देहः ।।
कुंभे कुंभांशे वा पापव्याघ्रशस्त्रभुजगाद्यैः ।

श्वासज्वरपक्षिकृतैर्ब्रूयान्मरणं समादिष्टम् ॥
मीने मीनांशे वा सर्पेण हतो ध्वान्तस्तत्रैव ।
नाव्जैर्वा जलमध्ये जलधरशब्देन पीडितो मृत्युः ॥११४-११५॥

निशि बलयुतराशौ लग्नयातेऽह्निकाले
यदि दिनबलयुक्ते जन्मलग्ने रजन्याम् ।
उदयगनवभागे स्वामियोगेक्षितानां
दिशि मृतिमुपयाति स्थानवीर्याधिकस्य ॥११६॥

यह देखिये कि जातक दिन में पैदा हुआ है क्या ? यदि हुआ हो तो रात्रि-बली राशि में उत्पन्न हुआ है ? अथवा यदि इससे विपरीत हो अर्थात् दिन बलिराशि में रात्रि के समय जन्मा हो तो लग्नगत-नवांशपति और उसको देखने वाले ग्रह और उसमें स्थित ग्रहों में से जो स्थान बली हो उसकी दशा में जातक मृत्यु को प्राप्त होता है। सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुंभ और मीन दिन-बली राशियां हैं। और वृष, मिथुन, कर्क, धनु, मेष और मकर रात्रि-बली राशियां हैं ॥११६॥

मोहकाल और शव परिणाम

होराशेषनवांशमानघटिका मोहः स्वभांशेक्षिते
पापैस्तद्द्विगुणीकृतस्त्रिगुणितः सौम्यैरवस्थात्मकः ।
क्रूरापश्चरसौम्यमिश्रतनुगैर्द्वाविंशतित्र्यंशकै-
र्नाशं याति शरीरमग्निजलसंमिश्रश्वमुख्यैः क्रमात् ॥११७॥

इसमें दो बाते कहते हैं

(१) लग्न से शेष नवांशपति से जितनी घड़ी तक समय मिले तो यदि नवांशपति की दृष्टि उस पर हो तो उतना मोहकाल होता है। यदि पाप-ग्रहों की दृष्टि हो तो दुगना और शुभ-ग्रहों की दृष्टि हो तो तिगुना करके मोहकाल बताना चाहिये ।

(२) अब मरने के बाद परिणाम क्या होगा ? जन्म लग्न से २२वाँ द्रेष्काण पाप हो तो अग्नि से जलाया जायगा और अगर शुभ हो तो मिट्टी में गाड़ा जायगा। यदि जलत्तर हो तो जल में प्रवाह किया जाय। यदि मिश्र हो तो कुत्ते, शृगाल वगैरह खा जायेंगे ॥११७॥

मरणानन्तर गतिज्ञान

देवमर्त्यपितृनारकालयप्राणिनो गुरुरिनक्षमासुतौ ।
कुर्यु रिन्दुभृगुजौ बुधार्कजौ मृत्युकालभवलग्नगा यदि ।।११८।।

मरने के बाद किस लोक को जीव जायगा । यदि लग्न में बृहस्पति हो तो देव लोक को । यदि सूर्य और मंगल हो तो (मरण-काल के समय इन सबका विचार करना चाहिये) मर्त्यलोक में जाता है । चन्द्रमा और शुक्र हो तो पितृ-लोक को जाता है और बुध और शनि हो तो नरक लोक को जाता है । होरा-सार का भी इसी प्रकार का श्लोक है—

जीवक्षेत्रोदये लग्ने सुरलोकं गमिष्यति ।
सूर्यभौमोदये क्षेत्रे मर्त्यलोकेषु जायते ।।
सौम्यपापयुते लग्ने मर्त्यलोकेषु जायते ।
बुधोदये तथा क्षेत्रे तिर्यग्जातिषु संविशेत् ।
मन्दराश्युदये क्षेत्रे जीवलोकं गमिष्यति ।।११८।।

भूश्चक्रं स्यात् तुम्बुराद्यं चतुष्कं
सिंहागाराद्यं भुवश्चक्रमाहुः ।
चापादिस्थं तत्सुवश्चक्रजन्यं
जीवो मृत्युक्षेत्रलोकं समेति ।।११९।।

मेष, वृष, मिथुन और कर्क ये चारों राशियाँ भूचक्र कहलाती हैं । सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक भुवश्चक्र कहलाते हैं । शेष धनु, मकर, कुंभ और मीन स्वर्लोक कहलाते हैं। इसलिये मृत्यु काल के समय जो लग्न हो उसके अनुसार मनुष्य तत्सत् हो जाता है ।।११९।।

रिःफाधीशे पापषष्टयंशयाते पापैर्दृष्टे नारकं लोकमेति ।
राहौ रिःफे मान्दिरन्ध्रेशयुक्ते शत्रुस्थानस्वामिदृष्टे तथा स्यात् ।।१२०।।
उच्चस्थे शुभखेचरे व्ययगते पापग्रहैः शोभनैः
सन्दृष्टे शुभवर्गके च विपुलं स्वर्गादिभोगं वदेत् ।

(१) बारहवें भाव का स्वामी पाप-षष्ठांश में हो और उसे पाप-ग्रह देखते भी हों तो नरक को जाता है ।

(२) बारहवें में यदि राहु गुलिक और अष्टमेश हो तो भी जातक पाप-लोक को जाता है ॥१२०॥

कर्मस्थानपतौ पुरन्दरगुरौ रिःफोपयातेऽथवा ।
सौम्यव्योमनिवासदृष्टिसहिते तस्यामरत्वं भवेत् ॥१२१॥

इसमें दो योग हैं ।

(१) यदि शुभ-ग्रह बारहवें में उच्च होकर स्थित हो और वह अच्छे वर्ग में हो और उसे शुभ ग्रह, पाप-ग्रह दोनों देखते हों तो उसे विपुल स्वर्ग लोक मिलता है ।

(२) यदि बृहस्पति दशमेश होकर बारहवें में हो और शुभ ग्रह की दृष्टि से युक्त हो तो जातक को अमर (देव) पद प्राप्त हो ॥१२१॥

बृहस्पतौ चापनवांशकस्थे बलान्विते कर्कटलग्नयाते ।
त्रिभिश्चतुर्भिः सह कण्टकेषु नभश्चरैर्ब्रह्मपदं प्रयाति ॥१२२॥

यदि बृहस्पति धनु के नवांश में होकर कर्क लग्न में हो और तीन या चार ग्रह केन्द्र में हों तो जातक मृत्यु के बाद ब्रह्मपद प्राप्त करता है ॥१२२॥

धनुर्विलग्ने यदि तुम्बुरांशके लग्ने गुरौ दानवपूजितेऽस्तगे ।
कन्यागते शीतकरे बलान्विते परं पदं लोकमुपैति शाश्वतम् ॥१२३॥

गुरु धनु लग्न में मेष के नवांश में हो, शुक्र सप्तम भाव में बलवान हो और चन्द्रमा कन्या में हो तो जातक मरण के बाद परम पद (मोक्ष को प्राप्त होता है ।) ॥१२३॥

निसर्गदायप्रमुखायुरब्दस्फुटक्रियामृत्युदशाप्रभेदाः ।
निर्याणकालप्रभवाश्च सर्वे सङ्कीर्तिता भानुमुखप्रसादात् ॥१२४॥

इति श्रीनवग्रहकृपया वैद्यनाथविरचिते जातकपारिजाते
आयुर्दायाध्यायः पञ्चमः ।

सूर्य आदि नव ग्रहों की कृपा से मैने निसर्ग आयु प्रगति की प्रतिक्रिया और मृत्यु दशा के विविध भेदों को इस अध्याय में समझाया है । निर्याण काल बताने वाले सब श्लोक इसमें हैं । इसलिये इसका नाम आयुर्दायाध्याय रखा गया है ।

प्रसंगवश बृहज्जातक के १५ श्लोक लिखे जाते हैं ॥१२४॥

मृत्युर्मृत्युगृहेक्षणेन बलिभिस्तद्धातुकोपोद्भव-
स्तत्संयुक्तभगात्रजो बहुभवो वीर्यान्वितैर्भूरिभिः ।
अग्न्यम्ब्वायुधजो ज्वरामयकृतस्तृट्क्षुत्कृतश्चाष्टमे
सूर्याद्यैर्निधने चरादिषु परस्वाध्वप्रदेशेष्विति ।
शैलाग्राभिहतस्य सूर्यकुजयोर्मृत्युः खबन्धुस्थयोः
कूपे मन्दशशाङ्कभूमितनयैर्बन्ध्वस्तकर्मस्थितैः ।
कन्यायां स्वजनाद्धिमोष्णकरयोः पापग्रहैर्दृष्टयोः
स्यातां यद्युभयोदयेऽर्कशशिनौ तोये तदा मज्जतः
मन्दे कर्कटगे जलोदरकृतो मृत्युर्मृगाङ्के मृगे
शस्त्राग्निप्रभवः शशिन्यशुभयोर्मध्ये कुजर्क्षे स्थिते ।
कन्यायां रुधिरोत्थशोषजनितस्तद्वत्स्थिते शीतगौ ।
सौरर्क्षे यदि तद्वदेव हिमगौ रज्ज्वग्निपातैः कृतः ।
बन्धाद्धीनवमस्थयोरशुभयोः सौम्यग्रहा दृष्टयो-
र्द्रेष्काणैश्च सपाशसर्पनिगडैश्छिद्रस्थितैर्बन्धतः ।
कन्यायामशुभान्वितेऽस्तमयगे चन्द्रे सिते मेषगे
सूर्ये लग्नगते च विद्धि मरणं स्त्रीहेतुकं मन्दिरे ॥
शूलोद्भिन्नतनुः सुखेऽवनिसुते सूर्येऽपि वा स्वे यमे
सप्रक्षीणहिमांशुभिश्च युगपत् पापैस्त्रिकोणाद्यगैः ।
बन्धुस्थे च रवौ वियत्यवनिजे क्षीणेन्दुसंवीक्षिते
काष्ठेनाभिहतः प्रयाति मरणं सूर्यात्मजेनेक्षिते ॥
रन्ध्रास्पदाङ्गहिबुकैर्लगुडाहताङ्गः प्रक्षीणचन्द्ररुधिरार्किदिनेशयुक्तैः ।
तैरेव कर्मनवमोदयपुत्रसंस्थैर्धूमाग्निबन्धनशरीरनिकुट्टनान्तः ॥६॥
बन्ध्वस्तकर्मसहितैः कुजसूर्यमन्दैर्निर्याणमायुधशिखिक्षितिपालकोपैः ।
सौरेन्दुभूमितनयैः स्वसुखास्पदस्थैर्ज्ञेयः क्षतकृमिकृतश्च शरीरघातः ॥७॥
खस्थेऽर्केऽवनिजे रसातलगते यानप्रपाताद्वधो
यन्त्रोत्पीडनजः कुजेऽस्तमयगे सौरेन्दिनाभ्युद्गमे ।
विण्मध्ये रुधिरार्किशीतकिरणैर्जूकाजसौरर्क्षगै-
र्यातैर्वा गलितेन्दुसूर्यरुधिरैर्व्योमास्तबन्ध्वाह्वयान् ॥८॥
वीर्यान्वितवक्रवीक्षिते क्षीणेन्दौ निधनस्थितेऽर्कजे ।
गुह्योद्भवरोगपीडया मृत्युः स्यात् कृमिशस्त्रदाहजः ॥९॥
अस्ते रवौ सरुधिरे निधनेऽर्कपुत्रे क्षीणे रसातलगते हिमगौ खगान्तः ॥
लग्नात्मजाष्टमतपःस्विनभौममन्दैश्चन्द्रैस्तु शैलशिखराशनिकुड्यपातैः ॥१०॥

द्वाविंशः कथितस्तु कारणं द्रेष्काणो निधनस्य सूरिभिः ।
तस्याधिपतिर्भुवोऽपि वा निर्याणं स्वगुणैः प्रयच्छति ॥११॥
होरानवांशकप्रयुक्तसमानभूमौ योगेक्षणादिभिरितः परिकल्प्यमेतत् ।
मीहस्तु मृत्युसमयेऽनुदितांशतुल्यः स्वेशेक्षिते द्विगुणितस्त्रिगुणः शुभश्च ॥१२॥

दहनजलविमिश्रैर्भस्मसंक्लेदशोषै-
निधनभवनसंस्थैर्व्यालवर्गैर्विडम्बः ।
इति शवपरिणामश्चिन्तनीयो यथोक्तः
पृथुविरचितशास्त्राद् गत्यनूकादि चिन्त्यम् ॥१३॥

गुरुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः ।
दिनकरशशिवीर्याधिष्ठितात् त्र्यंशनाथात्
प्रवरसमनिकृष्टास्तुङ्गह्रासादनके ॥१४॥

गतिरपि रिपुरन्ध्रत्र्यंशपोऽस्तस्थितो वा
गुरुरथ रिपुकेन्द्रच्छिद्रगः स्वोच्चसंस्थः ।
उदयति भवनेऽन्त्ये सौम्यभागे च मोक्षो
भवति यदि बलेन प्रोज्झितास्तत्र शेषाः ॥१५॥

अध्याय ६

जातकभङ्गाध्यायः

आगे सातवें अध्याय में राजयोगों का वर्णन किया गया है। अध्याय ११ तथा १५ में धन और लाभ के सुन्दर योग बताये गये हैं। किन्तु यदि जन्म कुण्डली में धननाश, दरिद्रता, राजयोग भंग आदि के दुर्योग हों तो राजयोगादि का फल नहीं होता, इस कारण अच्छे योगों का खण्डन किन दुर्योगों से होता है यह इस अध्याय में बताया गया है।

केचिद् योगा राजयोगस्य भङ्गाः केचिद्रेका नाम दारिद्र्ययोगाः।
केचित्प्रेष्याः के च केमद्रुमाख्यास्ते चत्वारो जातभङ्गाकराः स्युः ॥१॥

कोई कोई योग राजयोग का भंग करते हैं। कोई रेका नाम के दारिद्र्य योग हैं। अर्थात् रेका योग होने से मनुष्य धनी होने की संभावना होने पर भी दरिद्र रहता है। कोई कोई योग ऐसे हैं जिनके होने से मनुष्य प्रेष्य होता है। प्रेष्य कहते हैं छोटी कक्षा के भृत्य या दास को। प्रेष्य हीनता का द्योतक है। कई योग केमद्रुम (इसका लक्षण आगे आयेगा) हैं। केमद्रुम योग होने से जातक धनी नहीं होता ॥१॥

राजयोगभंगकारक दुर्योग

मेषे जूकनवांशके दिनकरे पापेक्षिते निर्धनः
कन्याराशिगते यदा भृगुसुते कन्यांशके भिक्षुकः।
नीचर्क्षे त्वतिनीचभागसहिते जातो दिवानायके
राजश्रेष्ठकुलाग्रजोऽपि विगतश्रीपुत्रदाराशनः ॥२॥

(१) यदि सूर्य मेष में किन्तु तुला नवांश में हो और पापग्रह में दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता है। मेष राशि में २०° से २३°-२०′ तक तुलानवांश होता है।

(२) यदि कन्या राशि, कन्या नवांश में शुक्र हो तो जातक भिक्षुक होता है। भिक्षुक का अर्थ भिक्षुक नहीं लेना, धनहीन होता है, यह समझना चाहिये। कन्या राशि में कन्या नवांश २६°-४० से ३०° तक होता है। शुक्र

यहाँ वर्गोत्तम होगा और वर्गोत्तम को अच्छा माना गया है। परन्तु यह सामान्य नियम का अपवाद है। जैसे मीन का शुक्र धनी करता है उसी प्रकार नीच राशि, नीच नवांश का शुक्र दरिद्र करता है। यदि तुला राशि में सूर्य १०° (परम नीच भाग), में हो, जातक श्रेष्ठ राज कुल में बड़ा बेटा होने पर भी (साधारणतः ज्येष्ठ पुत्र ही पिता की गद्दी पर बैठता है) श्री (लक्ष्मी, राज्य श्री), पत्नी पुत्र तथा भोजन से हीन होता है। हमारे विचार से तुला के १०वें अंश में सूर्य के होने से भोजन, पत्नी, पुत्र आदि सब से रहित हो ऐसा नहीं होता। हाँ, परम नीच सूर्य की निन्दा की गयी है। इसी प्रकार तुला नवांशस्थ सूर्य को बहुत हीन माना गया है।

होरासार—

स्वत्रिकोणगृहं केचित् स्वोच्चं याताः स्वमन्दिरम्।
अतिनीचो रविश्चैको न तेषां फलसंभवः॥
तुलायां दशमे भागे स्थितः कमलबोधनः।
सहस्रं राजयोगानां नाशयत्याशु जन्मनि॥
उच्चस्थोऽपि तुलांशे वा स्थितः कमलबोधनः।
सार्वभौमस्य पुत्रोऽपि नीचत्वमधिगच्छति॥

शुक्र के विषय में—यदि नीच नवांश में हो तो कहते हैं:—

सचिवो दानवेंद्रस्य नीचांशे समुपस्थितः।
सम्प्राप्तमतुलं राज्यं क्षिप्रं नाशयते ध्रुवम्॥

इसी प्रकार का मत सारावली तथा जातकाभरण का है। स्कन्द के अनुसार परम नीच चन्द्रमा चतुर्थ में या २८ अंश कर्क का मंगल यदि लग्न में हो, या १५ अंश मीन का बुध सप्तम में हो, ५ अंश मकर का बृहस्पति नवम में हो या २७ अंश का कन्या का शुक्र पंचम में हो या २० अंश का शनि धन में हो तो अत्यन्त दरिद्रता करता है।

तुलायां दशमं भागमाश्रित्य यदि तिष्ठति।
रविर्भिक्षोपजीवी स्याद्राजयोगेषु सत्स्वपि॥
तृतीयं भागमाश्रित्य वृश्चिकेऽम्बुनि तिष्ठति।
चन्द्रे याचितकं भुङ्क्ते जातोऽन्नं परवेश्मनि॥
अष्टाविंशमधिष्ठाय भागं कटकभे कुजे।
लग्नस्थे शाकभुक्त्वैव जातः कुक्षिम्भरिर्भवेत्।
मीने पंचदशं भागमाश्रित्य भवनं गते।
क्लेशदैः कर्मभिस्तैस्तैर्जातः सौम्ये नयेद्वपुः॥

मकरे पञ्चमं भागमाश्रित्य धिषणे शुभम् ।
अधितिष्ठति जातो यः सोयमुंछेन जीवति ।।
कन्यायां सप्तविंशेशे भार्गवे पंचमं गते ।
यो जातः पुरुषः सोयं शिलवृत्त्यैव जीवति ।।
अजमे विंशमाश्रित्य भागं धनगते शनौ ।
जातो यः पुरुषो नित्यं स श्ववृत्त्यैव जीवति ।।

मन्दाराहिसमन्वितेऽमरगुरौ शुक्रेन्दुपुत्रेक्षिते
जातः शूद्रकलेवरोऽपि निखिलां विद्यामुपैति श्रियम् ।
तारानाथविकर्तनौ गदगतौ सौरेण संवीक्षितौ
जातोऽसौ समुपैति नीचविहितोपायेन सञ्जीवनम् ।।३।।

(१) यदि बृहस्पति, शनि, मंगल और राहु से युत हो और शुक्र तथा बुध से दृष्ट हो, तो शूद्र शरीर होने पर भी (अर्थात् शूद्र कुल में जन्म लेने पर भी) सम्पूर्ण विद्या और श्री (लक्ष्मी)प्राप्त करता है।

(२) यदि लग्न से छठे घर में सूर्य और चन्द्र हों और शनि की उन पर दृष्टि हो तो नीच लोग जिन उपायों से जीवन चलाते हैं वही वृत्ति उसकी होती है अर्थात् छोटा काम करे या अप्रशस्त (निन्दित) कार्य से आजीविकोपार्जन करे ।

टिप्पणी—योगों में जहाँ जहाँ दृष्टि का उल्लेख किया गया हो वहाँ सर्वत्र पूर्ण दृष्टि होने से ही योग सम्पादित होता है । राशि से राशि दृष्टि गणना करनी चाहिये । भाव बना कर नहीं ।

जातक पारिजात के उपर्युक्त श्लोक के पूर्वार्द्ध में जो योग दिया गया है, वैसा ही सर्वार्थचिन्तामणि में भी हैः—

ध्वजाहिमन्दैः सहितेन्द्रपूज्ये शुक्रेक्षिते वा शशिसूनुदृष्टे ।
शूद्रोऽपि चेद्विप्रसमत्वमेति विद्यां स सर्वामधिगम्य जातः ।।

यदि बृहस्पति केतु या राहु और शनि के साथ हो और शुक्र या बुध से दृष्ट हो तो जातक शूद्र होने पर भी विप्रत्व को प्राप्त होता है और समस्त विद्याओं में निष्णात होता है ।। ३ ।।

केन्द्रस्थे वा विलग्ने दिनकरतनये सौम्यखेटैरदृष्टे
भूसूनोः कालहोरासमयजमनुजो भिक्षुको दासभूतः ।

सौम्यादृष्टेऽर्क्किदृष्टे शशिनि सरुधिरे मेषगे भिक्षुकः स्या-
दर्क्कीन्द्वर्क्कैः सकेन्द्रै र्जडतनुरधनश्चान्यभुक्ताशनः स्यात् ॥४॥

इसमें तीन योग कहे गये हैं।

(१) यदि शनि केन्द्र या लग्न में हो (केन्द्र शब्द में लग्न का भी सन्निवेश हो जाता है तथापि लग्न का उपादान करके लग्न स्थिति को योगफल में प्रधानता दी गई है) और शनि पर किसी ग्रह की दृष्टि न हो और जातक का जन्म मंगल की काल होरा में हो तो जातक भिक्षुक होकर अन्य के आश्रित दास होता है।

(२) चन्द्रमा मंगल के साथ मेष में हो, उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो और उन पर शनि की दृष्टि हो तो भिक्षुक हो।

(३) यदि केन्द्र में शनि, चन्द्र और सूर्य हों तो जातक बुद्धिहीन, निर्धन और भोजन के लिए अन्य जनों पर आश्रित रहता है।

सर्वार्थचिन्तामणिकार कहते हैं :—

निः श्रीर्विलग्नस्य निशाकरस्य लुब्धो दिनेशात्मजदृष्टियोगात् ।
शुभग्रहाणामवलोकनेन हीनाद् भवेदन्न समन्विताद्वा ॥
तत्कालहोराधिपते धराजे केन्द्रे शनौ चेद्यदि वा विलग्ने ।
शुभग्रहाणामवलोकहीने दासस्तु भिक्षाशनदेहशीलः ॥४॥

यहां चौथे श्लोक की व्याख्या समाप्त होती है।

मन्दे केन्द्रगते विलग्नगृहगे चन्द्रेऽन्त्यभे वाक्पतौ
जातो भिक्षुक एव शोकजलधौ मग्नो विदेशं गतः ।
धर्मस्थानपतौ तु रिःफगृहगे पापग्रहे केन्द्रगे
जातः पापरतः परान्नधनभुग् विद्याविहीनो भवेत् ॥५॥

इसमें दो योग कहे गए हैं :—

(१) यदि शनि केन्द्र में हो; चन्द्रमा लग्न में और बृहस्पति द्वादश में हो तो जातक भिक्षुक हो, शोकाकुल हो और विदेश चला जाये। पहिले विदेश जाना मन्द भाग्य का लक्षण समझा जाता था।

वराहमिहिर के मत से केवल मेष, वृष तथा कर्क का चन्द्रमा लग्न में शुभ फल करता है। अन्य किसी राशि का चन्द्र लग्न में अच्छा नहीं:—

मूकोन्मत्तजडान्धवधिरप्रेष्यः शशांकोदये
स्वर्क्षाजोच्चगते धनी बहुसुतः सस्वः कुटुम्बी धने ।

सर्वार्थचिन्तामणि में भी लिखा है :—

केन्द्रे शनौ लग्नगते शशांके जीवे व्यये भिक्षुक एव जातः ।।

(२) नवम भाव का स्वामी द्वादश में हो और पाप ग्रह केन्द्र में हो तो जातक पाप कार्यों मे रत होता है। दूसरे के अन्न और धन का भोक्ता तथा विद्याविहीन होता है।

हमारे विचार से अन्य योग भी देखने चाहिये। केवल नवमेश के द्वादशस्थ और पाप ग्रह के केन्द्रस्थ होने से इतना दुष्प्रभाव नहीं होता ।। ५ ।।

जीवे राहुयुतेऽथवा शिखियुते पापेक्षिते नीचकृन्
नीचे नीचसमीक्षिते सुरगुरौ विप्रोऽतिदुष्कर्मकृत् ।
निद्री चन्द्रविलग्नपौ सह दिवानाथेन मन्देक्षितौ
प्रेष्यः स्यादशुभैः शुभग्रहदृशा हीनैश्च मानस्थितैः ।।६।।

इस श्लोक में चार योग बताये गये हैं :—

(१) बृहस्पति राहु या केतु के साथ हो और पाप ग्रह से दृष्ट हो तो नीच कर्म करने वाला हो। यहाँ नीच कर्म से आशय है क्षुद्रता, नृशंसता के कर्म, धर्माचरण के प्रतिकूल, दया सौशील्यादि से रहित।

(२) यदि बृहस्पति नीच राशि में हो और नीच राशि स्थित ग्रह से दृष्ट हो तो ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी दुष्कर्मकारी होता है।

सर्वार्थचिन्तामणि में कहा है।

जीवे सकेतौ यदि वा सराहौ चाण्डालता पापनिरीक्षिते चेत् ।
नीचांशगे नीचसमन्विते वा जातो द्विजश्चेदपि तादृशः स्यात् ।।

द्वितीय पंक्ति में सर्वार्थचिन्तामणिकार कहते हैं कि बृहस्पति अपने नीच नवांश में हो या नीच ग्रह से युत हो तो द्विज होकर भी वैसा ही (चाण्डालकर्मा) होता है।

(३) यदि चन्द्रमा और लग्नेश सूर्य के साथ हों और शनि से दृष्ट हों तो निद्रालु (निद्राप्रिय, अधिक सोने वाला) होता है।

(४) यदि दशम भाव में पाप ग्रह हों और शुभ ग्रहों की उन पर दृष्टि न पड़ती हो तो प्रेष्य (छोटी कक्षा का भृत्य) होता है। इस श्लोक की अन्तिम दो पंक्तियाँ जातक रत्न में इस प्रकार कही गयी हैं :—

नीचौ चन्द्रविलग्नपौ सह दिवानाथेन मन्देक्षितौ
प्रेष्यः स्याच्छुभखेचरेण मिलितौ प्रेष्येण संजीवितः ।।

यहाँ छठे श्लोक की व्याख्या समाप्त होती है।

भाग्येशेऽन्त्यगते सहोदरगतैः पापैर्व्ययेशेऽर्थगे
दुर्भोजी परिबन्धनाविसहितो जातोऽन्यजायारतः ।
सर्वैर्नीचसपत्नभागसहितैः कर्मेतरस्थानगै-
र्विद्याबुद्धिकलत्रपुत्ररहितः कोपी सदा भैक्षकृत् ॥७॥

इस श्लोक में दो योग कहे गये हैं :—

(१) यदि भाग्येश (नवम भाव का स्वामी) द्वादश में हो, पाप ग्रह लग्न से तृतीय में हों और व्ययेश (बारहवें घर का मालिक) लग्न से दूसरे घर में हो तो दुर्भोजी होता है। दुर्भोजी का क्या अर्थ ? 'दुः' का प्रयोग कुत्सित अर्थ में होता है। भोजन में कठिनता हो या कुत्सित (अवैध—धर्माचार के विरुद्ध) भोजन करे। तथा बन्धन (गिरफ्तारी, कैद आदि) में पड़े; दूसरे की पत्नी या पत्नियों में आसक्त हो।

(२) सभी ग्रह यदि अपने नीच नवांश या शत्रुनवांश में स्थित होकर, दशम भाव के अतिरिक्त अन्य भावों में हों तो जातक विद्या, बुद्धि, पत्नी तथा पुत्र से रहित, क्रोधी और भिक्षा वृत्ति वाला (अर्थात् निर्धन) होता है। सर्वार्थचिन्तामणि में भी कहा है:—

भाग्येश्वरे रिःफगते तदीशे वित्तस्थिते भ्रातृगतैश्च पापैः ।
केमद्रुमेऽस्मिन् स भवेत्कुभोजी दुष्कर्मयुक्तोऽन्यकलत्रगामी ।
सर्वग्रहैर्नीचसपत्नभागैः कर्मान्यगैर्भिक्षुक एव जातः ॥७॥

अब आगे ८वाँ श्लोक कहते हैं।

लग्नस्वामिनि रिःफगे तु वियति क्रूरे सचन्द्रे कुजे
जातोऽसौ परदेशगः सुखधनत्यागी दरिद्रो भवेत् ।
होराजन्मपती न शोभनयुतावस्तंगतावन्त्यगे
भाग्येशे यदि नष्टदारतनयो जातः कुलध्वंसकः ॥८॥

इसमें २ योग बताये हैं :—

(१) यदि भाग्येश (नवम भाव का स्वामी) लग्न से द्वादश भाव में और दशम में चन्द्रमा और मंगल क्रूर ग्रह (सूर्य या शनि क्यों कि मंगल पहले ही कह चुके हैं। राहु और केतु भी क्रूर ग्रह हैं, इनको भी ले सकते हैं) के साथ लग्न से दशम भाव में हो तो परदेश वासी, सुख और धन से रहित दरिद्र होता है। श्री वी. सुब्रह्मण्य शास्त्री 'क्रूरे' का अर्थ क्रूर राशि करते हैं और लिखते हैं कि

साधारणतः सूर्य, मंगल तथा शनि राशियाँ मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर और कुंभ क्रूर राशियाँ हैं, किन्तु ओज राशि क्रूर और सम राशि सौम्य मानी गई है। इसलिये यहाँ क्रूर का अर्थ मेष, सिंह, कुंभ लेना। जातक पारिजात के मराठी टीकाकार भी क्रूर का अर्थ क्रूर राशि लेते हैं और क्रूर की टीका करते हैं— विषम राशि। किन्तु हमने क्रूर का अर्थ क्रूर ग्रह लिया है क्योंकि तभी सर्वार्थ-चिन्तामणि से निम्नलिखित श्लोक से सामञ्जस्य होगा:—

होरेश्वरे रिःफगते तु भाने क्रूरान्विते भौमयुते शशांके।
जातोऽभिशस्तः परदेशवासी भिक्षाशनी दुःखितदेहभाक् स्यात् ॥

(२) यदि जन्म लग्न का स्वामी और चन्द्रमा जिस राशि में हो, उसका स्वामी—दोनों शुभ ग्रहों से युत न हों या अस्त हों (सूर्य सान्निध्य के कारण) तथा भाग्येश लग्न से द्वादश भाव में हो तो जातक की स्त्री तथा पुत्रों का नाश हो जाता है और कुलध्वंसक (कुल को नाश करने वाला) होता है। सर्वार्थ-चिन्तामणि में भी कहा है:—

भाग्येश्वरे चान्त्यगते सपापे जन्मोदयेशौ रविगौ कुलघ्नः।
विनष्टपुत्रार्थकलत्रभाक् स्यात् शुभैर्न युक्तौ यदि वीक्षितौ वा ॥ ८ ॥

यहाँ अष्टम श्लोक की व्याख्या समाप्त हो जाती है।

सौम्यासौम्ययुतेषु केन्द्रभवनेष्विन्दौ तनुस्वामिना
दृष्टे मन्दनवांशके सति कुलध्वंसी विदारात्मजः।
कामे बोधनशुक्रयोः सुतगृहे जीवे सुखस्थे शुभे
पापे रन्ध्रगते च चन्द्रभवनाज्जाताः कुलध्वंसिनः ॥९॥

इसमें दो योग बताये गये हैं:—

(१) यदि लग्न से केन्द्र में शुभ और पाप ग्रह हों, चन्द्रमा लग्नेश से दृष्ट हो और चन्द्रमा शनि के नवांश में हो तो जातक, स्त्री पुत्र रहित, कुलध्वंसी होता है।

इस योग में, सर्वार्थचिन्तामणिकार के मत से चन्द्रमा चाहे शनि के नवांश में हो, चाहे शनि से युत हो यदि वह लग्नेश से दृष्ट हो और शुभ तथा पाप ग्रह केन्द्र में हों तो जातक पत्नीरहित और कुलध्वंसी होता है:—

शुभाशुभैः केन्द्रगतैः शशांकाल्लग्नेश्वरेणापि निरीक्षितश्चेत्।
सौरांशके वा यदि संयुतश्चेत् जातः कुलध्वंसकरो विदारः ॥

(२) यदि सप्तम स्थान में बुध और शुक्र हों, पञ्चम में बृहस्पति हो, चतुर्थ में पाप ग्रह हो और चन्द्रमा से अष्टम में पाप ग्रह हो तो जातक कुलध्वंसी

होता है। कुलध्वंसी क्या ? कुल को नाश करने वाला। कतिपय टीकाकार, योग (२) में जो ग्रह स्थिति बतायी गयी है—वह सब चन्द्र लग्न से लेते हैं। उनके मत से यदि चन्द्रमा से सप्तम में बुध और शुक्र हों, चन्द्रमा से पंचम में बृहस्पति हो और चन्द्रमा से चतुर्थ और अष्टम में पापग्रह हों तो जातक कुलध्वंसी होता है ॥९॥

चरावसाने शशिनि स्थिरादौ द्विदेहमध्ये बलवर्जिते च।
हीने विलग्ने यदि खेचरेन्द्रैर्विनाशमेति क्षितिपालयोगात् ॥१०॥

यदि चन्द्रमा चर राशि के अन्त में, या स्थिर राशि के आदि में या द्वि स्वभाव राशि के मध्य में हो, बलवर्जित हो और लग्न में कोई ग्रह नहीं हो तो राज योग का नाश होता है। मूल श्लोक में लग्न का खेचरेन्द्रों से हीन होना कहा है। हीन होना तभी कहा जाता है जब उत्तम वस्तु से रहित हो। दूसरे शुभ ग्रहों को ही खेचरेन्द्र=खेचर इन्द्र कहेंगे। इन्द्र शब्द श्रेष्ठता वाचक है यथा राजेन्द्र, मृगेन्द्र, नरेन्द्र। इसलिए लग्न में बलवान् शुभ ग्रह न हो यह अर्थ लेना। जब लग्न और चन्द्रमा दोनों नष्ट हों तो राजयोग का नाश हो जाता है। यह ज्योतिष का सिद्धान्त है। राजयोग भंग तभी होगा जब लग्न और लग्नेश दुर्बल हों और चन्द्रमा उपर्युक्त राशि भागों में स्थित होकर दुर्बल हो। स्थिर राशि के आदि में चन्द्रमा वाञ्छनीय नहीं है, किन्तु वृष के ३° पर स्थिर राशि के आदि में होते हुए भी परमोच्च होगा। यह सब विचार में रखना चाहिये। सारावली अध्याय ३८ श्लोक ३ में लिखा है:—

अन्त्याष्टमादिभागे चरराश्यादिषु शशी यदा क्षीणः।
एकेनापि न दृष्टो ग्रहेण भङ्गस्तदा नृपतेः ॥

अर्थात् चर के अन्त में, स्थिर के अष्टम भाग तथा द्विस्वभाव राशि के आदि भाग में यदा क्षीण चन्द्र हो और किसी भी ग्रह से दृष्ट न हो तो नृपति योग भंग होता है। यहाँ स्थिर और द्विस्वभाव के जो अवाञ्छनीय भाग बताये हैं उनका जातक पारिजात में कहे गये भागों से मेल नहीं खाता ॥१०॥

लग्नराशिनवभावनायका भानुशीतकरदेवपूजिताः।
शत्रुभागसहिताः स्वनीचभस्वामिभांशसहिताः परानुगः ॥११॥

यदि लग्नेश, चन्द्रेश (चन्द्रमा जिस राशि में हो उसका स्वामी) तथा नवमेश एवं सूर्य, चन्द्र तथा बृहस्पति अपने नीच नवांश में या जिस राशि में जो ग्रह नीच होता है, उस राशि स्वामी के नवांश में (यथा सूर्य शुक्र के नवांश में, चन्द्रमा

मंगल के नवांश में बुध बृहस्पति के नवांश में, शुक्र बुध के नवांश में, शनि मंगल के नवांश में) हो तो दूसरों का अनुचर हो अर्थात् मातहती करे ॥११॥

शशिनि गगनयाते कामगे दानवेज्ये
नवमभवनयाते पापखेटे कुलघ्नः।
भृगुजशशिजचन्द्राः केन्द्रगा जन्मलग्ने
तमसि विहितकर्मध्वंसको नीचतुल्यः ॥१२॥

इसमें दो योग कहे गये हैं:—

(१) यदि चन्द्रमा दशम में हो, शुक्र सप्तम में और नवम में पापग्रह हो तो जातक कुलघ्न होता है। अर्थात् उसका वंश आगे नहीं चलता। (देखिये अध्याय १३ श्लोक २०)

(२) यदि बुध, शुक्र तथा चन्द्र केन्द्र में हों और लग्न में राहु हो तो नीच तुल्य होता है। अर्थात् नीच आचार विचार वाला। सर्वार्थचिन्तामणि के मत से उपर्युक्त योग में चन्द्र, बुध तथा शुक्र का एक साथ केन्द्र में होना आवश्यक है:—

समन्विताः सौम्यशशांकशुक्राः केन्द्रस्थिता भोगिनि चेद्विलग्ने ।
चण्डालयोगः स भवेत्तदानीं जातो निजाचारसुकर्महीनः ॥

इस सम्बन्ध में जातकादेश के मत के लिये देखिये जातकादेशमार्गचन्द्रिका पृष्ठ १३५-१३६। इस ग्रंथ के योगप्रकरण विद्वानों के अवलोकनयोग्य हैं ॥१२॥

नीचे भृगौ मन्दनवांशके वा दुःस्थानगे भानुसुतेक्षिते च ॥
कामस्थिते शीतकरे सभानौ मात्रा सह प्रैष्यमुपैति नित्यम् ॥१३॥

यदि शुक्र नीच राशि में हो या शनि के (मकर या कुंभ) नवांश में हो, दुःस्थान स्थित (लग्न से षष्ठ, अष्टम या द्वादश में) हो, और शनि से दृष्ट हो तथा सूर्य और चन्द्रमा लग्न से सप्तम में हो तो जातक अपनी माता के साथ नौकरी करता है। अर्थात् उसकी माता नौकरानी होती है तथा वह स्वयं भी नौकरी करता है। मूल में प्रैष्य शब्द आया है, जो हीन नौकरी का द्योतक है।

सर्वार्थचिन्तामणि का श्लोक है:—

नीचे भृगौ मन्दनवांशके वा व्ययस्थिते चन्द्ररवी कलत्रे ।
निरीक्षितो भानुसुतेन चात्र जातः परप्रैष्यमुपैति नित्यम् ॥१३॥

नीचे गुरौ वासरनायके वा केन्द्रस्थिते पापयुते शिशुघ्नः ।
केन्द्रे सपापे शुभदृष्टिहीने रन्ध्रे गुरौ गोमृगजातिहन्ता ॥१४॥

इसमें दो योग कहे गये हैं :—

(१) बृहस्पति या सूर्य अपनी नीच राशि में स्थित होकर यदि केन्द्र में हो और पाप ग्रह के साथ हो तो जातक शिशुघ्न होता है। शिशु छोटे बच्चों को कहते हैं। उनका वध करने वाला शिशुघ्न कहलाता है।

(२) यदि केन्द्र में पापग्रह हो, और वह पाप ग्रह किसी शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तथा बृहस्पति अष्टम में हो तो गो, मृग आदि का शिकार करता है ॥१४॥

शशाङ्कसौम्यौ दशमोपयातौ पापेक्षितौ पापसमन्वितौ च ।
नीचांशगौ सौम्यदृशा विहीनौ जातस्तु नित्यं खलु पक्षिहन्ता ॥१५॥

यदि चन्द्रमा और बुध अपने-अपने नीच नवांश में होकर पापग्रह के साथ लग्न से दशम में हों और पाप ग्रह से दृष्ट भी हों और उन पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो जातक नित्य पक्षियों का शिकार करता है। इन योगों में जाति, काल, पात्र आदि का भी विचार कर लेना चाहिये। हिन्दू गाय का शिकार नहीं करते। बहुत से कुलों में आखेट या पक्षी का शिकार दैनिक चर्या का एक अंग है ॥१५॥

चन्द्रात्सुते लग्नपतौ धने वा सौम्येतरेष्वष्टमराशिगेषु ।
मानस्थिते शीतकरे तदानीं जातस्तु जीवत्यतिहेयवृत्त्या ॥१६॥

यदि लग्नेश चन्द्रमा से दूसरे या पाँचवें हो, और पाप ग्रह (चन्द्रमा से) अष्टम में हों तथा दशम में चन्द्रमा हो तो जातक हेय वृत्ति (नीचे दर्जे के काम से) जीवन यापन करता है। किसी किसी पुस्तक में अशीतकरे पाठ है और टीकाकारों ने सूर्य दशम में हो यह अर्थ किया है (देखिये श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री तथा श्री नवाथे की टीका)। किन्तु वह उचित पाठ नहीं है क्योंकि सर्वार्थ-चिन्तामणिकार ने स्पष्ट लिखा है कि चन्द्रमा दशम में हो।

चन्द्रात्सुतेऽर्थे यदि लग्ननाथे रन्ध्रस्थितैः सौम्यखगेतरैर्वा ।
मानस्थिते रात्रिकरे तदानीं जातस्तु जीवत्यतिहेयवृत्त्या ॥१६॥

नीचारिभांशौ भृगुदेवपूज्यौ तदंशके वासरनाथपुत्रे ।
जातोऽतिदुःखी सुतदारहीनः कृच्छ्रेण संजीवति भाग्यहीनः ॥१७॥

यदि बृहस्पति और शुक्र अपने-अपने नीच नवांश या शत्रु नवांश में हों और शनि बृहस्पति या शुक्र के नवांश में हो तो जातक स्त्री तथा पुत्र से हीन, दुःखी, भाग्य हीन होता है और कठिनता से जीवन यापन करता है। सर्वार्थचिन्तामणि में उपर्युक्त भाव का श्लोक है किन्तु उसमें शुक्र की चर्चा नहीं है :—

नीचारिभांशे यदि देवपूज्ये तदंशके वासरनाथपुत्रे ।
जातोऽतिदुःखी सुतदारहीनः कृच्छ्रादसौ जीवति भाग्यहीनः ॥१७॥

सर्वे पापाः केन्द्रनीचारिसंस्थाः सौम्यैर्दृष्टा रिःफरन्ध्रारियातैः ।
निघ्नन्त्येते राजयोगं ग्रहेन्द्रा नीचारातिक्रूरषष्ठ्यंशकाश्च ॥१८॥

सब पाप ग्रह केन्द्र में अपनी-अपनी नीच या शत्रु राशि में हों, और षष्ठ, अष्टम या द्वादश में स्थित सौम्य ग्रहों से दृष्ट हों (कहने का आशय एतावन्मात्र है कि पाप ग्रह नीच या शत्रु राशि के केन्द्र में हों और शुभ ग्रह त्रिक में हों) तो ऐसी ग्रहस्थिति राजयोगभंग करती है। जो ग्रह अपनी नीच राशि, अपनी शत्रु राशि या क्रूर षष्ट्यंश में हों वे भी राजयोगभंग कारक होते हैं। सारावली में भी कहा है :—

सर्वे क्रूराः केन्द्रे नीचारिगता न सौम्ययुतदृष्टाः ।
शुभदा व्ययरिपुरंध्रे तदाऽपि भङ्गो भवेन्नृपतेः ॥१८॥

केन्द्रस्थिता मन्दनिशाकरार्काः शुभैरदृष्टा यदि मद्यपायी ।
क्रूरारिषष्ठ्यंशकनीचभागा दुष्कर्मयुक्तोऽन्यकलत्रगामी ॥१९॥

इस श्लोक में दो योग कहे गये हैं :—

(१) यदि सूर्य, चन्द्र और शनि केन्द्र में हों और शुभ ग्रहों से दृष्ट न हों तो जातक मद्य पीने वाला होता है। यह प्राचीन समय की बात है जब कोई-कोई मद्य पान करता था। अब नगरों में पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के सम्पर्क से मद्यपान करने वाले इतने अधिक हो गये हैं कि बिना ग्रह योग के भी लाखों मद्यपायी हैं।

(२) यदि सूर्य, चन्द्र और शनि नीच भाग (नीच नवांश) तथा क्रूर षष्ट्यंशों में हो तो जातक दुष्कर्म करने वाला तथा परस्त्रीगामी होता है। (आगे इसी अध्याय का श्लोक ८१ भी देखिये) ॥१९॥

नीचे भृगौ धर्मगते सपापे द्विजप्रहर्ता यदि पापदृष्टे ।
व्यये शुभर्क्षेऽर्कसुतांशकस्थे भृगौ च दासीवरनन्दनः स्यात् ॥२०॥

इसमें दो योग कहे गये हैं :—

(१) यदि शुक्र अपनी नीच राशि में नवम में पाप ग्रह युक्त हो और पाप ग्रह से दृष्ट भी हो तो जातक ब्राह्मण पर प्रहार करने वाला हो।

(२) यदि शुक्र शुभ ग्रह की राशि में किन्तु शनि के नवांश में द्वादश में हो तो दासी पुत्र हो। मूल में शब्द आया है "दासीवरनन्दन :"— दासी का श्रेष्ठ पुत्र या श्रेष्ठ दासी का पुत्र। श्रेष्ठ क्या ? जो दासी सुन्दरी होती थी उसे रखैल बना कर धनिक लोग रख लेते थे। इस कारण श्रेष्ठ दासी का पुत्र भी कह सकते हैं। और दासी के गर्भ से वरिष्ठ का पुत्र—इस अर्थ में दासीवरनन्दन कह सकते हैं। कतिपय पुस्तकों में दासीवरनन्दन पाठ है। दासी का अन्य—स्व स्वामी के अतिरिक्त पर पुरुष से उत्पन्न-दासीवरनन्दन हुआ। कुछ टीकाकारों ने नन्दन का अर्थ 'पुत्र' नहीं लिया है। ऐसा जातक दासी में आसक्त उसको भोग का आनन्द देता है। द्वादश स्थान शयन का है — परस्त्रीरमण का है। इस कारण यह पाठान्तर विशेष उपयुक्त है ॥२०॥

रेकायोग

श्लोक २१ से २७ तक रेका योग और उसका फल कहा गया है। रेका योग एक प्रकार का अनिष्ट योग है। जिस प्रकार अनेक राजयोग, भाग्ययोग, धनयोग और दरिद्र योग हैं, उसी प्रकार रेकायोग भी अनेक हैं। कुछ जातक पारिजात में दिये गये है :—

> **लग्नेशे बलवर्जिते परिभवस्थानाधिपेनेक्षिते**
> **सूर्योच्छिन्नकरे पुरन्दरगुरौ रेकाख्ययोगो भवेत् ।**
> **बन्धुस्थानपसंयुतांशकपतौ तिग्मांशुलुप्तद्युतौ**
> **रिःफेशेन निरीक्षिते सति यदा योगस्तु रेकाह्वयः ॥२१॥**

इसमें दो रेका योग दिये हैं :—

(१) यदि लग्नेश बलहीन हो और अष्टमेश से दृष्ट हो और बृहस्पति सूर्य सान्निध्य के कारण अस्त हो।

(२) यदि वह ग्रह जिसके नवांश में चतुर्थेश हो। (सूर्य के समीप होने के कारण) अस्त हो और व्ययेश (बारहवें घर के स्वामी) से दृष्ट हो।

रेका योगों का अनिष्ट फल आगे श्लोक २६ और २७ में कहा है।
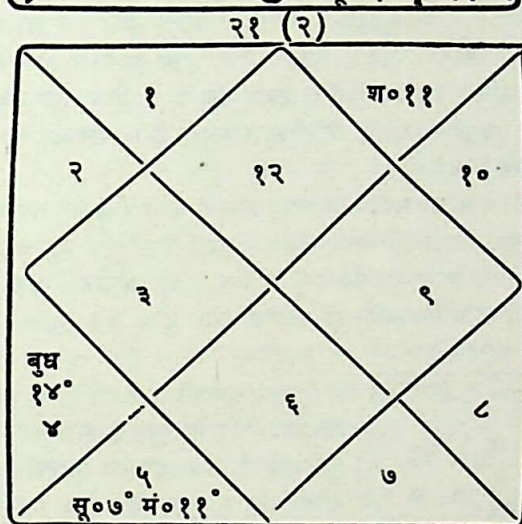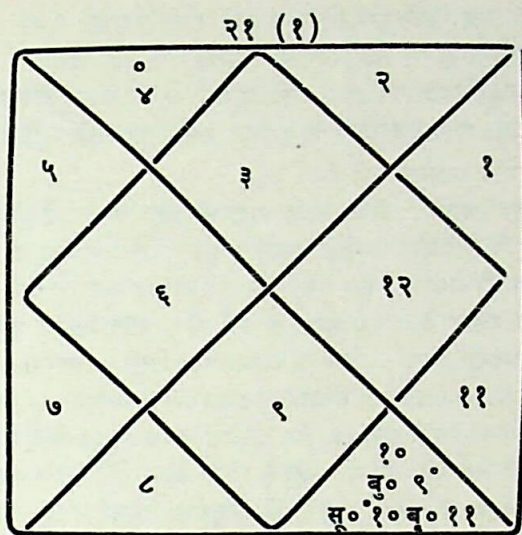
उदाहरण कुण्डली १ लग्नेश नैसर्गिक सम, तात्कालिक शत्रु अतः शत्रु शनि की राशि में, नीच नवांश में दुःस्थानस्थित और बलहीन है। अष्टमेश से दृष्ट है। बृहस्पति अस्त है। बुध के ९ अंश हैं। सूर्य के १० तथा बृहस्पति के ११ अंश। उदाहरण कुण्डली २ में चतुर्थेश बुध के कर्क में १४ अंश में हैं, वृश्चिक नवांश में है। अतः मंगल के नवांश में हुआ। मंगल के सिंह में ११ अंश हैं, सूर्य के ७ अंश इस कारण अस्त है। द्वादशेश शनि से मंगल दृष्ट है ॥२१॥

षष्ठस्वामिनिरीक्षिते सुखपतौ रन्ध्रेशयुक्ते तथा
मानेशे सुतगे विलग्नरमणे नीचं गते रेकभाक् ।
रन्ध्रारिव्ययराशिगा यदि शुभाः केन्द्रत्रिकोणोपगाः
पापा लाभगृहाधिपे च विबले रेकाभिशस्तो भवेत् ॥२२॥

इसमें २ योग बतलाये गये हैं :—

(१) यदि चतुर्थेश अष्टमेश से युक्त हो और षष्ठेश से दृष्ट हो तथा दशमेश पंचम में हो और लग्नेश अपनी नीच राशि में हो तो रेका योग होता है। एक टीकाकार ने इस एक योग को खंडित कर स्वतंत्र योग बना दिया है। मूल श्लोक के प्रथम चरण से एक योग और द्वितीय चरण से अन्य स्वतंत्र योग। परन्तु हमारे विचार से प्रथम और द्वितीय चरणों से सम्मिलित रूप से एक ही योग बनता है। मराठी टीकाकार श्री नवाथे ने अर्थ किया है कि यदि चतुर्थेश षष्ठेश से दृष्ट हो और दशमेश पंचम स्थान में अष्टमेश से युक्त हो। परन्तु यह अर्थ हमें मान्य नहीं है। 'रन्ध्रेशयुक्ते' प्रथम चरण में आया है इसलिये ग्रंथकार का आशय यही है कि चतुर्थेश अष्टमेश से युक्त हो। बाद में तथा भी कहा है। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री की टीका और भी विचित्र है। वह मानेश का अर्थ नवमेश लेकर लिखते हैं कि यदि नवमेश, अष्टमेश से युक्त पंचम में हो। मान, आस्पद आदि दशम स्थान के लिये ही प्रयुक्त होते हैं, इस कारण श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री की टीका भ्रमपूर्ण है। ग्रंथकार का वास्तविक आशय हम ऊपर दे चुके हैं।

(२) यदि शुभ ग्रह लग्न से अष्टम, षष्ठ या व्यय (अर्थात् सब शुभ ग्रह एक साथ अलग-अलग किसी भी प्रकार-त्रिक में हो) में हों तथा पाप ग्रह केन्द्र और त्रिकोण में हों (एक साथ या पृथक्-पृथक्-किसी भी प्रकार) तथा लाभाधिप-ग्यारहवें घर का स्वामी बलहीन हो तो रेका योग होता है।

२२(१)
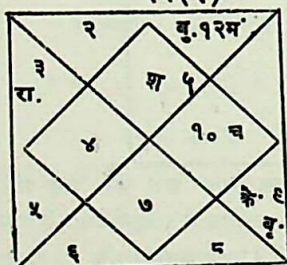
यहां कुण्डली २२ (१) में चतुर्थेश बुध, अष्टमेश शनि से युक्त है और षष्ठेश मंगल से पूर्ण दृष्ट है, तथा दशमेश बृहस्पति पंचम में है और लग्नेश बुध नीच है। हमारे विचार से योगों में दृष्ट शब्द से पूर्ण दृष्टि ही लेनी चाहिये। पाराशरी में सम्बन्ध के लिये पूर्ण दृष्टि ही ली जाती है। यह अवश्य है कि जहाँ शुभ दृष्टि के अभाव में क्रूरता या अशुभफल का निर्देश किया गया है वहाँ शुभ ग्रह की त्रिपाद, आधी या एक पाद दृष्टि भी क्रूरता या अशुभ फल का आंशिक निवारण

करती है। किन्तु योग विशेष तभी पूर्ण फल देते हैं जब कथित दृष्टि पूर्ण हो। ज्योतिष फलित शास्त्र है। इसमें सिद्धान्त समझना चाहिये। जड़ पकड़नी चाहिये—शाखा या पल्लव नहीं। विचारणीय रेका योग में सिद्धान्त बताये गये हैं :—

(i) चतुर्थेश की अष्टमेश से युति अच्छी नहीं। (ii) चतुर्थेश पर षष्ठेश की दृष्टि शुभ फलों (जो अन्य ग्रहों के कारण जन्मकुण्डली में हों) को न्यून करती है (iii) लग्नेश का नीचस्थ होना उत्कर्ष के लिये घातक है। (iv) दशमेश अपने स्थान दशम से अष्टम-पंचम में अच्छा नहीं क्योंकि कोई भी भावेश अपने स्थान से (जिसका वह स्वामी हो) अष्टम में अच्छा नहीं। इस सम्बन्ध में हमने अपना विचार अध्याय ११ श्लोक ७ की व्याख्या में व्यक्त किया है। वहाँ अवलोकन करें। ऊपर चार प्रकार की ग्रह स्थिति गर्हित बतायी गयी है। जब चारों किसी जन्म कुण्डली में युगपत् हों तो उसका रेका योग नाम रख दिया क्योंकि नीम पर करेला चढ़ा, यह कहावत चरितार्थ हो जाती है। अब मान लीजिये किसी कुंडली में चतुर्थेश षष्ठेश से युक्त है, अष्टमेश से दृष्ट है, दशमेश अष्टमेश में है, तथा लग्नेश नीच राशि में तो नही है किन्तु नीच नवांश में, दुःस्थान में, पापाक्रान्त, पाप दृष्ट है, तो ऐसी स्थिति में, इस श्लोक में जो रेका योग के लिये ग्रह स्थिति कही है वह तो लागू नहीं होती किन्तु जिन हेतुओं से रेका योग कहा गया है—चतुर्थेश की त्रिकेश से युति, चतुर्थेश पर त्रिकेश की दृष्टि, दशमेश की अवाञ्छनीय स्थिति, लग्नेश की दुर्बलता—वे होंगे। इसलिये चाहे इसका नाम रेका योग न कहें, किन्तु फल वही होगा, क्योंकि लक्षण यद्यपि वही नहीं हैं, किन्तु लक्षणों में साम्य है। अंग्रेजी में एक कहावत है—चाहे आप गुलाब को किसी अन्य नाम से पुकारें किन्तु गुलाब की सुगन्धि वही रहेगी। ज्योतिष का एक अन्य सिद्धान्त है 'योगे दृष्टि-फलं योज्यं दृष्टौ योगफलं तथा' अर्थात् जहाँ युति का उल्लेख किया गया है, वहाँ युति नहीं हो परन्तु दो ग्रहों की परस्पर पूर्ण दृष्टि हो तो उसका भी वही फल मानना (जो युति का फल कहा गया है) और जहाँ दो ग्रहों की परस्पर पूर्ण दृष्टि का फल कहा गया है वहाँ युति में वही फल लागू करना (जो परस्पर पूर्ण दृष्टि का कहा है। यह जो हमने इस श्लोक की व्याख्या में कहा है उस सिद्धान्त का उपयोग केवल इस श्लोक के अर्थ में ही नहीं, समस्त जातक पारि-जात में, समस्त जातक पारिजात में ही नहीं, समस्त ज्योतिष शास्त्र में करना चाहिये। वारंबार एक ही सिद्धान्त की पुनरावृत्ति, प्रत्येक श्लोक की व्याख्या में नहीं की जाती है। इस श्लोक का फलितार्थ केवल इतना है कि लग्नेश, चतुर्थेश

तथा दशमेश की दुःस्थिति हो या ये भावेश दोष युक्त हों तो राजयोग भंग होता है; शुभ फलों का ह्रास होता है। अशुभ फलों की वृद्धि होती है ॥२२॥

होरेशः खलसंयुतः सितगुरू चास्तं गतौ तद्वदेद्
बन्धुस्थानपतिः शुभेतरयुतश्चास्तं गतो रेकदः।
भाग्यस्थानपतौ विकर्तनकरच्छन्ने विलग्नाधिपे
नीचस्थे धनपे च नीचगृहगे रेकाभिधानो भवेत् ॥२३॥

इसमें ३ रेका योग कहे गये हैं।

(१) यदि लग्नेश की खल (पाप) ग्रह से युति हो और बृहस्पति तथा शुक्र अस्त हों तो रेका योग।

(२) चतुर्थेश पापग्रह के साथ हो और अस्त हो तो रेका योग।

(३) भाग्येश (नवम भाव का स्वामी) अस्त हो तथा लग्नेश और धनेश दोनों अपनी अपनी नीच राशियों में हों तो रेका योग। फलितार्थ या सिद्धान्त केवल इतना है कि लग्नेश, चतुर्थेश की पापग्रह से युति अपकर्षकारक है; लग्नेश चतुर्थेश, बृहस्पति तथा शुक्र का अस्त होना महान् दोष है; लग्नेश धनेश दोनों का नीच राशि में स्थित होना भाग्य हानि करता है। इनमें एक नीच हो तो गर्हित। दोनों नीच हों तो अत्यन्त गर्हित। श्री नवाथे तथा सुब्रह्मण्य शास्त्री ने मूल श्लोक के प्रथम तथा द्वितीय चरण को सम्मिलित कर दिया है, श्लोक के पूर्वार्द्ध को एक बना दिया है। यह वास्तव में उचित नही है क्योंकि प्रथम चरण के अन्त में 'तद्वदेद्' वह (रेका योग) कहना और द्वितीय चरण के अन्त में रेकदः (रेका योग देने वाला) कहा है। इस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय चरण में दो पृथक् योग हैं। तृतीय तथा चतुर्थ चरण में एक योग। इस प्रकार तीन पृथक् योग हैं। ॥२३॥

नीचस्था यदि वा दिनेशकिरणच्छन्नास्त्रयो लग्नपे
दुष्टस्थानगतेऽथवा गतबले योगस्तु रेकप्रदः।
होरावित्तनवास्पदायसुखधीकामानुजस्थाः खला-
स्तस्यायुर्नवभागरेकफलदा नीचारिपापेक्षिताः ॥२४॥

इसमें दो रेका योग कहे गये हैं।

(१) यदि लग्नेश दुष्ट स्थान में हो (अर्थात् लग्न से ६, ८ या १२ में हो) या निर्बल हो, और तीन ग्रह नीच स्थान में हों या सूर्य सान्निध्य के कारण अस्त हों तो रेका योग।

यदि खल ग्रह (पाप ग्रह—मूल में खलग्रहाः—बहुवचन का प्रयोग है। संस्कृत में बहुवचन का प्रयोग ३ या अधिक के लिये किया जाता है। इस कारण पाप ग्रह कम से कम ३ की संख्या में समझना) प्रथम द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, सप्तम, नवम, दशम या एकादश (यह आवश्यक नहीं कि पाप ग्रह एक साथ हों) में हों और ये पाप ग्रह नीच राशि में या शत्रु राशि में या पाप दृष्ट (अन्य पाप ग्रह से दृष्ट) हों तो आयु के नवम भाग में रेका योग का फल (अनिष्ट) होता है।

श्री नवाथे तथा श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने भिन्न अर्थ किया है। उनके मत से यदि उपर्युक्त ९ स्थानों में खल (पाप) ग्रह अन्य ग्रह से देखा जाये जो स्वयं नीचस्थ, शत्रु राशिस्थ किंवा पाप (नैसर्गिक पाप) हो। ऐसी स्थिति में जिस (ऊपर जो ९ भाव बताये गये—१, २, ३, ४, ५, ७, ९, १०, ११) भाव में उपर्युक्त खल ग्रह हों उस भाव सम्बन्धी रेका योग (अनिष्ट) फल होता है। हमें जो मत ग्राह्य है, वह प्रारंभ में हम दे चुके हैं। अन्य मतों का प्रदर्शन विद्वानों के विनोद के लिये है ॥ २४ ॥

एकद्विकत्रिकखलद्युचरा नराणां कल्पस्वविक्रमगताः परतस्तथैव ।
आदौ तु मध्यवयसि क्रमशस्तदन्त्ये रेकप्रदा रिपुखलग्रहनीचदृष्टाः ॥२५॥

(१) एक, दो, या तीन पाप ग्रह यदि प्रथम, द्वितीय या तृतीय भाव में हों या इसी तरह आगे चतुर्थ, पंचम आदि में हों और ये पाप ग्रह शत्रु ग्रह, पाप ग्रह नीच राशि स्थित ग्रह से दृष्ट हों तो जीवन के प्रथम, मध्य या अन्त भाग में क्रमशः रेका योग का फल होता है। अर्थात् केन्द्र में हो तो जीवन के प्रथम, तृतीय भाग में, पण फर में हो तो मध्य तृतीय भाग में, आपोक्लिम में हो तो अन्त तृतीय भाग में रेका योग का फल होता है। एक, दो या तीन यह जो मूल में कहा उससे आशय प्रतीत होता है—यदि केन्द्र में एक पाप ग्रह हो तो वही अनिष्ट प्रभाव के लिये पर्याप्त है, पणफर में दो पाप ग्रह हों तो वह अनिष्ट प्रभाव करते हैं, आपोक्लिम में तीन हों तब दुष्ट प्रभाव होता है। किन्तु इसमें एक विप्रतिपत्ति है। ऊपर श्लोक २४ में तो एक ही पापग्रह यदि निर्दिष्ट स्थान में 'नीचारिपापेक्षित' हो तो रेका योग मान लिया है। मूल में (२४वें श्लोक में खलाः—बहुवचन का प्रयोग है—इस कारण यदि वहाँ ३ पाप ग्रह हों तो भी—चाहे श्लोक २४ में एक पाप ग्रह मानें या तीन, श्लोक २५ में, एक, दो, तीन स्पष्ट कहा है ; इस कारण कितने पाप ग्रह होने से रेका योग होता है, इस सम्बन्ध में श्लोक २४ और २५ में सामञ्जस्य नहीं होता। यदि श्लोक २५ का यह अर्थ लिया जाये कि केन्द्र, पणफर, या आपोक्लिम में एक पाप ग्रह हो,

दो हों या तीन हों—क्योंकि केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम जीवन के तीन भाग के द्योतक हैं—प्रत्येक भाव के साथ पापग्रह सख्या अनुबद्ध नहीं करनी चाहिये । तो एतावन्मात्र अर्थ होगा कि एक पाप ग्रह, जितना अनिष्ट प्रभाव करेगा, उससे अधिक दो और उससे भी अधिक तीन ।

केन्द्रस्थ ग्रह जीवन के प्रथम भाग में फलद होते हैं (शुभ हों तो शुभ, अशुभ हों तो अशुभ), पणफरस्थ ग्रह जीवन के मध्य भाग में और आपोक्लिमस्थ ग्रह जीवन की स्थविरावस्था में यह ज्योतिष का बहु प्रचलित सिद्धान्त है । सारावली अध्याय ३ श्लोक ३२ में कहा है:—

केन्द्रात्परं पणफरमापोक्लिमसंज्ञितं तयोः परतः ।
बालयुवस्थविरत्वे क्रमेण फलदा ग्रहास्तेषु ॥

एक अन्य बात जो जातक पारिजात श्लोक २४ में कही है, वह यह कि १, २, ३, ४, ५, ७, ९, १०, ११ में विशेषावस्था में पाप ग्रह रेका योग करते हैं । साधारणतः तृतीय, षष्ठ तथा लाभ में पाप ग्रह अच्छे समझे जाते हैं किन्तु यहाँ तृतीय तथा लाभ में भी पाप ग्रह रेका योग करते हैं यह कहा है । यदि यह तर्क किया जाये कि ग्रंथकार ने यह सामान्य नियम नहीं कहा कि पाप ग्रह तृतीय तथा लाभ में रेका योग करते हैं किन्तु यह विशेष नियम कहा है कि नीचारि-पापेक्षित होने से रेका योगद होते हैं । विशेष नियम सामान्य का बाधक होता है । तो यहाँ शंका होती है कि अष्टम तथा द्वादश में पाप ग्रह नीचारिपापेक्षित होने से अत्यन्त अनिष्ट होगा तब इन दो भावों का श्लोक २४ में परिगणित स्थानों में उल्लेख क्यों नहीं किया ? इसका कोई समाधान उपलब्ध नहीं होता ।

केन्द्र पणफर और आपोक्लिम भेद से जो जीवन के आदि, मध्य या अन्त में अशुभ फल परिपाक का समय कहा है उसके सम्बन्ध में श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ऊपर श्लोक २४ से, १, २, ३, ४, ५, ७, ८, ९, ११ इन भावों का अध्याहार करते हैं और अपनी टीका में लिखते हैं कि ऊपर के श्लोक में जो नौ भाव बताये गये हैं उन्हीं में केन्द्र पणफर, आपोक्लिम का नियम लागू करना । अब तक श्लोक २१ से २५ तक रेका योग कहे गये हैं । अब रेका योग का फल कहते हैं:—		॥ २५ ॥

रेका योगफल

निर्विद्यो विधनो दरिद्रसहितो रेकोद्भवः कामुकः
क्रोधी दुःखितमानसोऽरुचिकरः सौभाग्यहीनः पटुः ।

भिक्षाशी मलिनो विवादनिरतो मात्सर्यरोषान्वितो
देवब्राह्मणदूषकः प्रतिदिनं दारात्मजैर्निन्दितः ॥२६॥
दुष्टात्मा कुनखी कुमार्गनिरतो दौर्भाग्ययोगान्वितो
बन्धूनामपकारदूषणपरः स्वल्पायुराभिक्षुकः ।
मूकोऽन्धो बधिरः प्रमत्तहृदयः कामातुरो रोषवान् ।
पङ्गुर्नेत्रविकारभावसहितो रेकोद्भवः स्यान्नरः ॥२७॥

रेका योग में उत्पन्न जातक विद्याविहीन, धनहीन, दरिद्र, कामुक (कामवासना प्रधान, नियत मात्रा में कामवासना स्वाभाविक है, यह न हो तो मनुष्य या तो योगी होगा या नपुंसक किन्तु मात्रा से अधिक कामवासना अवगुण ही नहीं, अपितु धननाश, शीलनाश आपत्ति, पराभव एवं मृत्यु का कारण—यथा रावण की कामुकता उसके वध का हेतु हुआ—भी हो सकता है) क्रोधी, दुःखी (असफलता, आपत्ति, विपत्ति, दरिद्रता आदि दुःख के कारण हैं, सर्वविदित है। जब रेका योग के कारण इन सब कारणों का समवाय होगा, तब मनुष्य दुःखी होगा) अरुचिकर (जिसके सहवास या मिलने से मन प्रसन्न न हो अपितु घृणा हो—उसके दुर्गुणों के कारण) सौभाग्यहीन, पटु (चालाक), भिक्षा माँगकर खाने वाला, मलिन (शरीर, वेष तथा स्वभाव से) मत्सरी, ईर्ष्या के कारण रोष करने वाला। (ऊपर क्रोध शब्द आ चुका है—एक प्रकार से यह पुनरावृत्ति है) देव तथा ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला (अर्थात् नास्तिक तथा अधर्मी) होता है। प्रतिदिन उसकी स्त्री तथा पुत्र उसकी निन्दा करते हैं—अर्थात् उसको कौटुम्बिक सुख और शान्ति नहीं होती) ॥ २६ ॥

दुष्टात्मा (जिसके स्वभाव में दुष्टता हो), कुनखी हो; लक्षण शास्त्र के अनुसार कु अर्थात् खराब नख होने से मनुष्य में बहुत से अवगुण होते हैं:—

'ताम्रस्निग्धोच्छिखोत्तुङ्गपर्वार्धोत्था नखाः शुभाः।
श्वेतैर्यतित्वमस्थानैर्नखैः पीतैः सरोगता ॥
पुष्पितैर्दुष्टशीलत्वं क्रौर्यं व्याघ्रोपमैर्नखैः ।
शुक्त्याभैः श्यामलैः स्थूलैः स्फुटिताग्रैश्च नीलकैः ॥
प्रद्योतरूक्षवक्रैश्च नखैः पातकिनोऽधमाः ।
तर्जन्यादिनखैर्भग्नैर्जातमात्रस्य तु क्रमात् ॥
अर्द्धत्र्यंशचतुर्थांशाष्टांशाः स्युः सहजायुषः ।
अंगुष्ठस्य नखे भंगे धर्मतीर्थरतो नरः ॥

यह भी लिखा है कि यदि अँगूठे का नाखून कछुए की पीठ की तरह उन्नत हो, ऊपर उठा हुआ हो, तो मनुष्य भाग्यहीन होता है:—

कूर्मोन्नतेंऽगुष्ठे नखे नरः स्यात् भाग्यवर्जितः ।

स्त्रियों के नाखूनों के विषय में लिखा है:—

बन्धुजीवारुणैस्तुङ्गैः नखैरैश्वर्यमाप्नुयात् ।
खरैर्वक्रैर्विवर्णाभैः श्वेतपीतैरनीशताम् ॥

स्कन्द पुराण का मत है:—

नखेषुबिन्दवः श्वेताः प्रायः स्युः स्वैरिणी स्त्रियः ।
पुरुषा अपि जायन्ते दुःखिताः पुष्पितैः नखैः ॥

गर्गसंहिता में लिखा है:—

श्लक्ष्णाः सुवर्णाः क्षतजप्रभाश्च वैडूर्यमुक्ताफलसन्निभाश्च ।
पुष्पान्विताः सौख्यकरा भवन्ति कुशेशयाभाश्च नखाः करेषु ॥

स्कन्द पुराण तथा गर्गसंहिता का पुष्पित नखों के विषय में थोड़ा मत भेद है। नाखूनों के विषय में शुभाशुभ लक्षणों के लिये देखिये हमारी पुस्तक हस्तरेखाविज्ञान (शरीर लक्षण सहित)* पृष्ठ ५५-६४।

अस्तु रेका योग के प्रसंग में जो कुनखी कहा, वह अनेक अवगुणों का उपलक्षण है। रेका योग में उत्पन्न जातक, कुमार्ग निरत (अर्थात् आचार हीन कार्य करने वाला, दोषयुक्त कार्यों में प्रवृत्त)। दौर्भाग्ययुक्त (पहिले सौभाग्य-हीन कहा धन आदि सुख साधनों से हीन, अब दौर्भाग्य—रोग, क्लेश, कलह, पराभव, आपत्ति, विपत्ति आदि कष्ट उठाने वाला)। बन्धु का अपकार (दुष्टता, हानि) करने वाला, उनका (बन्धुओं का) निन्दक, अल्पायु (दीर्घजीवी नहीं) चारों ओर माँगने वाला (याचना में जिसे ग्लानि न हो प्रत्युत याचना करना ही जिसका अभ्यास हो) मूक (शब्दार्थ गूंगा है किन्तु आशय है कि मुख दुर्बल, वाणी शक्ति की न्यूनता) बधिर (शब्दार्थ है बहरा परन्तु भावार्थ है जो हित की बात न सुने)। प्रमत्त हृदय (अहंकार के कारण जिसमें अविवेकिता हो। औचित्यानौचित्य विचार शून्य) कामातुर (इसकी व्याख्या पहिले कर चुके हैं)। रोषवान् (क्रोधी—यह पुनरावृत्ति है)। पंगु (शब्दार्थ लंगड़ा भावार्थ शरीर पूर्ण स्वस्थ न हो)। जिसके नेत्रों में विकार हो। यह सब रेका योग में उत्पन्न जातक के लिये अनिष्ट फल कहे हैं। यह सब दोष किसी एक व्यक्ति में नहीं होते। इस कारण रेका योग के कारण कौन सा भाग कितना विगड़ा है, यह विचार

---

* पुस्तक प्राप्ति स्थान मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी।

कर, जो भाव बिगड़ा या जो भाव बिगड़े हों तत्सम्बन्धी अनिष्ट फल कहना। इसके अतिरिक्त कोई भी दोष समान मात्रा में, दो जातकों में नहीं होता। कोई ग्रह रेका योग के लक्षण में आकर भी, नवांश या वर्गों में शुभस्थ हो, दिग्बल युक्त हो, शुभ युक्त या शुभ दृष्ट हो तो उसके दोष मार्जित हो जाते हैं यह सब भी बुद्धिमान दैवज्ञ को ध्यान में रखना चाहिये। शुभ वर्गों का ऊपर के श्लोकों में कहीं उल्लेख नहीं है किन्तु सारावली अध्याय १२, श्लोक ३ का आप्तवचन है:—

पापा यदि शुभ वर्गे सौम्यैर्वृष्टाः शुभांशवर्गस्थैः।
निघ्नन्ति तदारिष्टं पति विरक्ता यथा युवतिः॥

इसलिये जो भी इस अध्याय में या आगे के अध्यायों में कहे जायें—उसमें योग (शुभ योग या अशुभ योग) करने वाले ग्रह का बलाबल, शुभाशुभ ज्योतिष के सभी सिद्धान्तों की कसौटी पर कसकर कितना शुभ फल होगा या कितना अशुभ, यह निष्कर्ष निकालना चाहिए। प्रत्येक श्लोक में ग्रंथकर्ता सभी साधारण नियम विशेष नियम या अपवादों का निर्देश नहीं कर सकता। रेका योग में जो अनिष्ट कारक अशुभ योग बना रहे हों वह अपनी, दशा अन्तर्दशा में अनिष्ट फल दिखाते हैं। यह सिद्धान्त दशा अन्तर्दशा का फलादेश करते समय स्मरण रखना चाहिये॥ २७॥

अथ दरिद्र योग

अब २८ श्लोक से ३६ श्लोक तक दरिद्र योग बताते हैं। स्वभावतः जहाँ उग्र दरिद्र योग होंगे, वहाँ धन योग अपना पूर्ण फल कैसे दिखावेंगे? एक पात्र में जल रखिये—एक ओर से उसमें बरफ के टुकडे डालते जाइये। दूसरी ओर उस पात्र को जलती हुई सिगड़ी पर रख दीजिये। परिणाम? बर्फ़ के टुकड़े पात्रस्थ जल को शीतल करेंगे; नीचे धधकती हुई अग्नि उसे उष्ण करेगी। परिणाम में क्या आपको हिम शीतल जल प्राप्त होगा? नहीं। प्रायः लोग राज योग, धन योग आदि देखकर उत्कृष्ट फल कह देते हैं। रेका योग, दरिद्रयोग आदि की ओर ध्यान नहीं देते और फलादेश ठीक नहीं बैठता। इस कारण ग्रंथकार ने सातवें अध्याय में राज योग का वर्णन करने के पहिले छठे अध्याय में जातक के शुभ फल किन योगों से भंग होते हैं, उनका वर्णन जातकभंगाध्याय में किया है:—

भाग्येश्वरादतिबलो निधनेश्वरो वा
लग्नाधिपस्त्रिदशनाथगुरुर्यदि स्यात्।
केन्द्राद्बहिर्दिनकरस्य कराभितप्तो
लाभाधिपो यदि विहीनबलो दरिद्रः॥२८॥

यदि भाग्येश की अपेक्षा अष्टमेश अधिक बली हो या बृहस्पति लग्नेश होकर केन्द्र से अतिरिक्त स्थान में हो और सूर्य सान्निध्य के कारण अस्त हो और लग्नेश यदि हीन बली हो तो दरिद्र होता है। इस दरिद्र योग का सिद्धान्त यह है कि अष्टम स्थान भाग्य का व्यय स्थान है, 'भाग्यव्यंयाधिपत्येशो रन्ध्रेशो न शुभ-प्रदः।' अतः भाग्येश जितना शुभ फल करेगा, अष्टमेश, भाग्येश की अपेक्षा बलवान् होने के कारण उससे अधिक फल करे तो यह स्थिति होगी कि पात्र में नल से जितना जल आ सकता है उससे अधिक पात्र के छिद्रों से रिक्त होने के कारण पात्र नहीं भरेगा। बृहस्पति यदि लग्नेश होकर केन्द्र से अन्यत्र स्थान में हो (केन्द्र में शुभता अधिक होने के कारण। अन्य दोष होने पर भी शुभता ही शेष रहेगी—इस कारण केन्द्र से अन्यत्र हो) और अस्त हो। इससे न केवल बृहस्पति दोष युक्त और कमजोर हुआ अपितु लग्नेश भी (बृहस्पति लग्नेश होने के कारण) बिगड़ गया। बृहस्पति धनकारक है, भाग्य कारक है, लाभकारक है। पंचम का कारक भी, इस कारण लग्नेश धन भाग्य लाभ कारक के दोष युक्त होने से दरिद्र हो यह कहा। साथ ही लाभाधिप भी निर्बल होना कहा। धन प्रवेश के सब द्वार बन्द कर दिये। अब धन किस मार्ग से प्रविष्ट होगा। साथ ही लग्नेश भी अस्त होगया। अतः दोषसमवाय हुआ।

श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने इस श्लोक का विचित्र अर्थ किया है। उनके अर्थ से हम कथमपि सहमत नही हैं। तथापि लिख रहे हैं क्यों? केवल विद्या विनोद रसिकों को यह मालूम हो कि विद्वान् किसी का सिर, किसी का धड़, किसी का पैर लेकर किस प्रकार नयी सृष्टि का निर्माण कर देते हैं। श्री शास्त्री कहते है 'यदि बृहस्पति अष्टम या लग्न का स्वामी हो और नवमेश से अधिक बली हो और लाभाधिपति केन्द्र से अतिरिक्त स्थान में बैठ कर अस्त और निर्बल हो तो जातक दरिद्र होता है। श्री नवाथे ने भी यही अर्थ दिया है। लग्नेश का बली होना तो सर्वत्र प्रशस्त माना गया है। ऐसे विद्वानों ने किस प्रकार अर्थ का अनर्थ किया है, यह आश्चर्यजनक है ॥ २८ ॥

लाभारिव्ययरन्ध्रपुत्रगृहगा जीवारमन्देन्दुजा
नीचस्थानगता यदा रविकरच्छन्नास्तदा भिक्षुकः।
भाग्यस्थानगतो दिनेशतनयः सौम्येतरैरीक्षितो
लग्नस्थः शशिनन्दनो रवियुतो नीचांशगो भिक्षुकः ॥२९॥

इसनें दो योग दिये गये हैं:—

(१) यदि लाभ (११) अरि (६) व्यय (१२) रन्ध्र (८) पुत्र (५) इन स्थानों में बृहस्पति, मंगल, शनि, बुध अपनी-अपनी नीच राशि में हों और

अस्त हों तो जातक भिक्षुक होता है। आपात दृष्टि से इतने सरल श्लोक की व्याख्या की कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु वास्तव में इस श्लोक में कहे हुए योग का उदाहरण ही नहीं मिल सकता। इसमें कतिपय विप्रतिपत्तियाँ उपस्थित होती हैं। यदि यह माना जाये (जो कि उचित भी है) कि किसी एक ग्रह के नीच राशि गत होने से और अस्त होने से ही यह योग हो जायेगा, तो इसमें आपत्ति यह होती है। किसी एक योग मात्र से कोई भिक्षुक नहीं हो जाता। भिक्षुक जैसे अति दारिद्रय होने के लिये, उपर्युक्त चारों ग्रहों का नीच राशि गत तथा अस्त होना मानना ही पड़ेगा। अब विद्वानों को विदित है कि मंगल, बुध, बृहस्पति तथा शनि चारों ग्रह युगपत् अपनी-अपनी नीच राशि में हों और अस्त भी हों यह असंभव है। अधिक से अधिक नीच (मीन) राशि गत बुध और मेष (शनि की नीच) राशि गत शनि एक साथ अस्त हो सकते हैं। बृहस्पति मकर में नीच होता है। उसके आस पास सूर्य हो तो बुध सूर्य से २८° से अधिक दूर कभी नहीं होता। इस कारण बुध भी मकर में या मकर के आस पास होगा। जब बृहस्पति मकर में अस्त हो तब बुध अपनी नीच राशि में नहीं हो सकता। इसी तरह जब मंगल अपनी नीच राशि कर्क में हो तो बुध अपनी नीच राशि मीन में होकर दोनों ग्रह अस्त नहीं हो सकते। मेष का शनि, कर्क का मंगल, मकर का बृहस्पति, मीन का बुध हो तो बुध मीन के अंत में, शनि मेष के प्रारंभ में हो तो युगपत् अन्य — बृहस्पति मंगल अस्त नहीं हो सकते।

अब दूसरी समस्या उपस्थित होती है। मंगल, बुध, बृहस्पति तथा शनि नीच राशि में भी होने चाहियें तथा पंचम, षष्ठ, अष्टम, एकादश तथा द्वादश में भी। यह दोनों शर्तें एक साथ चारों (मंगल आदि जिन का इस श्लोक में प्रसंग है) ग्रहों को लागू नहीं हो सकतीं। यदि मेष लग्न हो तो केवल बुध की नीच राशि द्वादश में पड़ती है। अन्य ग्रहों की नीच राशियाँ निर्दिष्ट भावों (५, ६, ८, ११, १२) के अतिरिक्त स्थानों में पड़ती हैं। यदि वृष लग्न हो तो केवल बुध और शनि की, मिथुन लग्न हो तो केवल बृहस्पति और शनि की, कर्क लग्न हो तो किसी ग्रह की नीच राशि निर्दिष्ट भाव में नहीं।

यदि सिंह लग्न हो तो केवल मंगल, और बृहस्पति की नीच राशियाँ इन भावों में जाती हैं। कन्या लग्न हो तो मंगल, बृहस्पति, शनि की, तुला लग्न हो तो केवल बुध की, वृश्चिक लग्न हो तो केवल बुध और शनि की। धनु लग्न हो तो मंगल और शनि की, मकर लग्न हो तो उपर्युक्त चारों ग्रहों में से किसी की नीच राशि ५, ६, ८, ११, १२ भावों में नहीं पड़ती। कुंभ या मीन लग्न हो तो केवल मंगल और बृहस्पति की नीच राशियाँ निर्दिष्ट भावों में पड़ती हैं। इस प्रकार इस श्लोक में कथित योग पूर्ण रीति से किसी कुंडली में नहीं बैठ सकता।

अधिक से अधिक काम चलाऊ यह नतीजा निकाला जा सकता है कि यदि मंगल, बुध, बृहस्पति या शनि में से कोई अपनी नीच राशि में हो और अस्त होकर ५, ६, ८, ११, १२ इन भावों में से किसी में बैठा हो तो दरिद्रता का योग बनाता है। परन्तु जैसा हमने ऊपर कहा है, इस योग से अत्यन्त दरिद्रता न होगी। (२) यदि शनि भाग्य स्थान में हो और पापग्रहों से दृष्ट हो तथा लग्न में सूर्य और नीच नवांश का बुध हो तो जातक भिक्षुक होता है। मूल में शनि का पाप ग्रहों से वीक्षित होना लिखा है। शनि स्वयं पापग्रह है। सूर्य लग्न में हुआ। अतः केवल मंगल की दृष्टि हो सकती है। राहु तथा केतु की दृष्टि किसी-किसी ग्रंथ में दी गई है परन्तु प्रायः इनकी दृष्टि मानी नहीं जाती ॥ २९ ॥

जीवज्ञशुक्ररविनन्दनभूमिपुत्रा
रन्ध्रारिरिःफसुतकर्मगता यदि स्यात् ।
लग्नेश्वरादतिबली व्ययभावनाथो
नीचस्थितो रविकराभिहितो दरिद्रः ॥३०॥

पहिले इस श्लोक का अर्थ दिया जाता है फिर आलोचना की जायेगी। बृहस्पति, बुध शुक्र, शनि, मंगल यदि लग्न से ८, ६, १२, ५, १०, इन भावों में हों, लग्नेश की अपेक्षा व्ययेश अति बलवान् हो, और वह (व्ययेश) अपनी नीच राशि में हो, सूर्य सान्निध्य से अस्त हो तो जातक दरिद्र होता है। एक टीकाकार लिखते हैं, व्ययेश नीच राशि गत हो, अस्त हो तो (भी)। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री लिखते हैं (यद्यपि) व्ययेश नीच राशिगत तथा अस्तंगत हो ......। मूल श्लोक में 'भी' या 'यद्यपि' बोधक कोई शब्द नहीं है। व्ययेश का नीच राशि गत या अस्त होना वास्तव में ग्रंथकार को अभिप्रेत है। व्यय स्थान भोग स्थान है। भोग द्रव्य साध्य है। धन नहीं होगा तो भोग कैसे उपलब्ध होगा? 'सति कुड्ये चित्रम्'—दीवाल होगी तभी तो चित्र बनेगा? नहीं तो आधार के अभाव में क्या आकाश में चित्रकार चित्र निर्माण करेगा? व्ययेश दुर्बल होने से भोग का अभाव तो हुआ ही, व्ययेश से भी दुर्बल लग्नेश का होना कहा है। लग्नेश इंजिन है जिससे बाकी के ग्यारह भावों की गाड़ी चलती है। जिस कुंडली में लग्नेश बलहीन होता है अन्य अच्छे योग भी अपना पूर्ण फल नहीं दिखा सकते। लग्नेश के दुर्बल होने से राजयोग क्षीण हो जाते हैं, इसके अतिरिक्त जब लग्नेश से अधिक बली व्ययेश हो तो धन संचय नहीं होता। अष्टक वर्ग प्रकरण में भी कहा है कि दशम से अधिक एकादश में रेखा हों।

एकादश की अपेक्षा द्वादश में कम और द्वादश में जितनी रेखायें हों उनसे अधिक लग्न में हों तो भोगवान् अर्थवान् होता है।

यहाँ पाँच ग्रह तथा पाँच भाव ८, ६, १२, ५, १०. बताये गये। यहाँ जिस क्रम से बृहस्पति, बुध, शुक्र, शनि, मंगल यह ग्रह और भाव कहे गये हैं– उस क्रम से ग्रह उन भावों में यथा क्रम नहीं हो सकते। बृहस्पति अष्टम में, बुध छठे घर में, परन्तु शुक्र द्वादश में कैसे होगा ? क्योंकि बुध सूर्य से २८ अंश से अधिक दूर नहीं हो सकता और शुक्र सूर्य से ४७ अंश से अधिक दूर नहीं होता। यथा क्रम में एक आपत्ति और है। क्रमानुसार मंगल दशम में आता है मंगल दशम में प्रशस्त माना जाता है। गर्हित नहीं। उक्ति है:—

दशमे अंगारको यस्य स जातः कुलदीपकः।

स्वयं ग्रंथकार ने द्वितीय अध्याय के श्लोक ६३ में दशमस्थ मंगल की प्रशंसा की है। यह सब विचार करते समय ध्यान में रखना चाहिये ॥ ३० ॥

शुक्रार्यद्विजराजभूमितनया नीचस्थिता जन्मनि
व्योमाये नवमे कलत्रतनये जातो दरिद्रो भवेत्।
लग्ने दानवपूजितेऽमरगुरौ पुत्रे धरानन्दने
लाभे रात्रिकरे तृतीयभवने नीचं गते भिक्षुकः ॥३१॥

इसमें दो योग बतलाये हैं:—

(१) यदि शुक्र, बृहस्पति, चन्द्रमा तथा मंगल अपनी-अपनी नीच राशि में होकर, लग्न, पंचम, सप्तम, नवम, दशम या एकादश में हों तो जातक भिक्षुक होता है। मूल में 'जन्मनि' शब्द आया है–जिसका, कतिपय टीकाकार जन्म लग्न में यह अर्थ करते हैं। (२) यदि लग्न में कन्या का शुक्र, पंचम में मकर का बृहस्पति, एकादश में कर्क का मंगल तथा तृतीय में वृश्चिक का चन्द्रमा हो तो जातक भिक्षुक होता है:— ॥ ३१ ॥

३१(१)
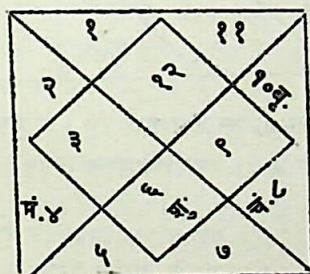
३१(२)
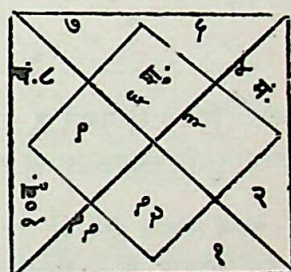
लग्ने चरे चरनवांशगतेऽसितेन
दृष्टे च नीचगुरुणा यदि भिक्षुकः स्यात् ।
जातो विनाऽमरपुरोहितलग्नराशि
जीवे रिपुव्ययगते तु भवेद्दरिद्रः ॥३२॥

इसमें दो योग कहे गये हैं:—

(१) यदि लग्न स्पष्ट चर राशि चर नवांश में पड़े (मेष, कर्क, तुला तथा मकर चर हैं) और लग्न को शनि तथा नीच बृहस्पति देखते हों तो जातक भिक्षुक होता है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि बृहस्पति का अपनी नीच राशि मकर में होना आवश्यक है। मकरस्थित बृहस्पति केवल वृष, कर्क तथा कन्या को पूर्ण दृष्टि से देख सकता है, इस कारण कर्क लग्न हो तभी यह योग हो सकता है—क्योंकि चर लग्न का होना आवश्यक है। अतः कर्क लग्न हो—नवांश कर्क, तुला या मकर होना चाहिये। वर्गोतम लग्न की बहुत प्रंशसा लिखी है। इस कारण कर्क लग्न, कर्क नवांश होने पर वर्गोत्तम लग्न होने से इस दुर्योग का फल उतनी मात्रा में नहीं होगा। इस कारण, कर्क लग्न, मेष, तुला या मकर नवांश के लिये यह योग विशेष उपयुक्त होगा।

(२) यदि धनु या मीन के अतिरिक्त किसी अन्य राशि में बृहस्पति लग्न से छठे या बारहवें भाव में हो तो जातक भिक्षुक होता है। ॥ ३२ ॥

३२(१)
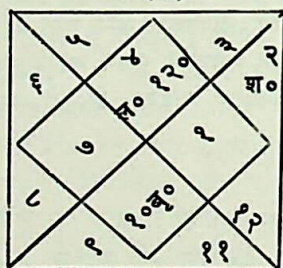
३२(२)
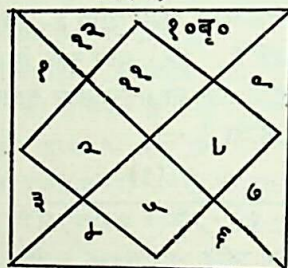
जातः स्थिरे लग्नगते तु पापाः केन्द्रत्रिकोणोपगताश्च सर्वे ।
केन्द्राद्बहिःस्थानगतास्तु सौम्या भिक्षाशनः स्यात्परपोषितश्च ॥३३॥

इसमें भिक्षुक होने का एक योग बताया है। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि इस अध्याय में जो भिक्षुक शब्द का बारंबार ग्रंथकार ने प्रयोग किया है

वह संस्कृत में एक पारिभाषिक शब्द है : 'अर्थवाद' जिसका आशय है बात को बढ़ा चढ़ाकर कहना। इसलिये ग्रंथों में चाहे ज्योतिष हो, चाहे धर्म शास्त्र हो, चाहे अन्य शास्त्र, विद्वानों को समीक्षा करनी चाहिये कि कथन में अर्थवाद कितना है। सदैव शब्दार्थ नहीं लिया जाता है। भिक्षुक योग का शब्दार्थ है भीख माँगने वाला। भिक्षा वृत्ति से उदर पोषण करने वाला, परन्तु इन भिक्षुक योगों का सार एतावन्मात्र है कि धन संचय न हो। धन का अभाव रहे। अस्तु, अब इस श्लोक में जो योग दिया है, वह निम्न लिखित है:

यदि स्थिर लग्न में जन्म हो, समस्त पाप ग्रह केन्द्र त्रिकोण में हों (चार केन्द्र, दो त्रिकोण कुल ६ घर हुए। छः पाप ग्रह होते नहीं। इसलिये किसी केन्द्र या केन्द्रों, त्रिकोण या त्रिकोणों में यह अर्थ लेना) और शुभ ग्रह केन्द्र के अतिरिक्त अन्य स्थानों (पणफर, या आपोक्लिम में या कुछ पणफर कुछ आपोक्लिम) में हो तो भिक्षुक होता है ॥ ३३ ॥

चरे विलग्ने निशि सौम्यखेटास्त्रिकोणकेन्द्रोपगता नवीर्याः।
खलग्रहाः केन्द्रबहिःस्थिताश्चेद्‌ भिक्षाशनं नित्यमुपैति जातः ॥३४॥

रात्रि का जन्म हो (सूर्यास्त के बाद, सूर्योदय से पहिले) सब सौम्य ग्रह केन्द्र में पड़े हों किन्तु निर्बल - वीर्यहीन हों और सब पाप ग्रह केन्द्र से अतिरिक्त स्थानों में—पणफर, आपोक्लिम में—तो जातक नित्य भिक्षा मांगता है। अर्थात् यह दरिद्र योग है ॥ ३४ ॥

पापा नीचस्थानगाः पापकर्मा सौम्या नीचस्थानगा गूढपापः।
जीवे नीचस्थानगे कर्मराशौ नीचे भौमे नन्दनस्थे तथैव ॥३५॥

ग्रह नीच राशि में अच्छा नहीं होता यह प्रायः सर्वविदित है। अब नीच राशिगत ग्रह पाप हो तो उसके फल में और नीच राशिगत शुभ ग्रह हो तो उसके फल में—दोनों में क्या भेद है वह कहते हैं।

यदि पाप ग्रह नीच राशि में हो तो जातक पाप कर्मा (प्रत्यक्ष रूप से दुष्ट कर्म करने वाला) होता है। यदि शुभ ग्रह नीच राशि गत हो तो गूढ पाप (प्रच्छन्न रूप से पाप कर्मा) करने वाला होता है। बृहस्पति मकर का दशम में हो या मंगल कर्क का पंचम में हो तो यही फल—अर्थात् पापकर्मा होता है।

सुप्रसिद्ध ज्योतिषी रैफिल कहते हैं कि बृहस्पति शुभ ग्रह है; उत्तम फल करता है। बृहस्पति आपके मित्र की तरह है किन्तु बृहस्पति यदि स्वयं दुर्बल

और कमजोर हो, पीड़ित हो, तो ऐसा भी बृहस्पति आपका मित्र तो अवश्य रहेगा किन्तु एक निर्धन मित्र की भाँति और एक निर्धन मित्र आपकी क्या सहायता कर सकता है। अर्थात् जैसा मित्र हुआ, वैसा न हुआ। परन्तु शुभ ग्रह नीच का होने से प्रच्छन्न पाप कारक होता है। यह नयी बात कही है ॥ ३५॥

नीचांशगस्तुङ्गगृहोपयाता जातस्य नीचं फलमाशु दद्युः।
नीचङ्गतास्तुङ्गनवांशकस्थाः सौम्यं फलं व्योमचराः प्रकुर्युः ॥३६॥

इसमें नवांश की महिमा का वर्णन किया है। कहते हैं कि ग्रह अपनी उच्च राशि में हो किन्तु नीच नवांश में हो तो जातक को नीच का फल शीघ्र ही दे देते हैं। यदि ग्रह अपनी नीच राशि में किन्तु उच्च नवांश में हो तो जातक को शुभ फल देते हैं। सर्वार्थचिन्तामणि में भी कहा है:—

नीचस्थिता जन्मनि ये ग्रहेन्द्राः स्वोच्चांशगा राजसमानभाग्याः।
उच्चस्थिताश्चेदपि नीचभागा ग्रहा न कुर्वन्ति तथैव भाग्यम् ॥

यवनाचार्य के मत से कुछ अन्य दारिद्रय योग नीचे दिये जाते हैं:—

लग्नाधीशो व्ययस्थो वै सक्रूरो वा विशेषतः।
निर्बलोऽस्तं गताः सौम्या निर्द्रव्यो जायते नरः।
सकलकेन्द्रगताः खलखेचरा रिपुपराक्रमलाभगताः शुभाः।
सकलवीर्यपराक्रमवर्जिताःसखलयोर्मनुजः खलु निर्धनः ॥
लग्नाधिनाथोऽथ सुखाधिनाथः कर्माधिनाथोऽथ धनाधिपश्च।
व्यये रिपौ कालमदे गृहे च गता विवीर्याः खलु निर्धनो जनः ॥
भवपतिर्यदि शत्रुगतो नरः सकलसौख्यविनाशनसंयुतः।
तनुपतिर्यदि सूर्यसमायुतस्तनयगोऽपि खलग्रहसंयुतः ॥
लग्नाधिपे मृत्युगते विशेषमस्तं गतः कर्मपतिश्च षष्ठः।
धनाधिपो द्वादशभावसंस्थः स एव जातो धनवर्जितश्च ॥
तनुपतिर्मदपश्च रिपुस्थितः सुतगताश्च खलाः सबलाः खलु।
गुरुभृगू यदि चास्तमुपागतौ जगति सौख्यविवर्जितमानवः ॥
धनाधिपो मृत्युगतोऽत्र संस्थः क्रूरग्रहेणाथ विलोकितश्च।
लग्नाधिपः षष्ठगतो विवीर्यो जातः पृथिव्यां खलु निर्धनश्च ॥
लग्नस्वामी हीनवीर्यो द्रव्यनाथोऽस्तगो यदा।
केन्द्रगाः सबलाः क्रूराः दरिद्रो मानवो भवेत् ॥
सक्रूरं धनभं चैव क्रूरेणैव निरीक्षितम्।
धनपो रविसंयुक्तो दरिद्रोपहतो नरः ॥

सक्रूरो धनपश्चैव धनभं सौम्यसंयुतम्*
धनस्वामी चास्तगतो मानवो द्रव्यवर्जितः ॥
धनाधिपो यदा षष्ठे मृत्युभेऽप्यथवा व्यये ।
स क्रूरं धनभं चैव निर्धनः खलु मानवः ॥
चतुष्टयं शुभरहितं सक्रूरं कुजवर्जितम् ।
दशमे भवति तदा दारिद्र्येणैव पीडितः ।

लाभषष्ठविगताः खलु सौम्या द्रव्यनाथखचरोऽस्तगतश्चेत् ।
अस्तगौ गुरुसितौ तु लग्नपो द्वादशे हि नरो यदि निर्धनः ॥
लग्नाधीशो द्रव्यनाथश्च षष्ठे कर्माधीशः संयुतः पापखेटैः ।
सक्रूरं वै द्रव्यभं क्रूरदृष्टं दारिद्रो वै मानवो योगदृष्टे ॥

धनभं क्रूरसंयुक्तं क्रूरदृष्टं तथा पुनः ।
धनस्वामी तृतीये वै दारिद्रो नाम जायते ॥
पापाश्चतुर्षु केन्द्रेषु तथा पापो धने स्थितः ।
दारिद्र्ययोगे जानीयात् स्ववंशस्य क्षयंकरः ॥
रविणा सहितो मन्दः शुक्रेण च युतो भवेत् ।
तदा दारिद्र्ययोगोऽयं सद्रव्यमपि शोषयेत् ॥

किन्तु यदि निम्नलिखित योग हो तो सूर्य, शुक्र, शनि युति से जो दरिद्रता का योग कहा है वह नहीं होता ।

सिंहे मेषे यदा भानुः सितमन्दयुतो भवेत् ।
गुरुसौम्यसमालोकी सधनी भवति ध्रुवम् ॥

इन श्लोकों में व्याकरण की दृष्टि से यत्र तत्र त्रुटियाँ हैं । किन्तु जैसा पाठ उपलब्ध है, वैसा ही रहने दिया गया है । ऊपर* चिह्नित स्थान पर आया है 'धनपं सौम्यसंयुतम्'—जिसका अर्थ है कि द्वितीय राशि में यदि सौम्य हो। सौम्य के दो अर्थ हैं—शुभ तथा बुध । शुभ ग्रह जहाँ बैठता है, उस भाव की शुभकारिता में वृद्धि करता है—यह सामान्य नियम है । तब शुभ ग्रह धन स्थान में बैठकर दरिद्रता कैसे करेगा ?

यदि सौम्य का अर्थ बुध लिया जाये तो द्वितीयस्थ बुध यदि चन्द्र से दृष्ट हो तभी धनहानि करता है, अन्यथा नहीं, जैसा श्रीरामदयालु ने संकेतनिधि अध्याय ४ श्लोक २-३ में कहा है:—

धनेशलग्नेशयुताः शुभाश्चेद्धनस्थिता स्तत्फलमेव दद्युः ।
शुभाद्दृष्टे स्वसुखं शुभा वाक् निः स्वोऽब्जदृष्टे विदिवात पापे ।

अर्थात् द्वितीय में बुध हो चन्द्रमा से दृष्ट हो, तो निः स्व (धन रहित) हो। इसी प्रकार यदि धनस्थान में पाप ग्रह हो तो निःस्व हो। आगे श्लोक ३ में कहते हैं।

एवं कृशोऽब्जो धनगो ज्ञदृष्टो धनक्षयायैव सितस्तदाप्त्यै।

रोगोत्थचिह्नं मुखगो यदार्कः सस्त्री ग्रहश्चेत् कटुवाक् कृशस्वः॥

इसी प्रकार यदि कृश (पक्ष बल में हीन क्षीण) चन्द्रमा धन स्थान में हो और बुध दृष्ट हो तो धन क्षय होता है। शुक्र हो तो धन प्राप्ति होती है। यदि द्वितीय में सूर्य हो तो रोगजनित चिह्न मुख या चेहरे में होता है। यदि साथ में स्त्रीग्रह हो तो कटुवाक् कटु वाणी बोलने वाला होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि साधारणतः द्वितीय भाव में सौम्य ग्रह जातक को धन रहित होने का योग नहीं बनाता। इस कारण (पृ० ३७१) *स्थान में 'धनभं सौम्यसंयुतम्' पाठ समीचीन प्रतीत होता है ॥ ३६ ॥

अथ दरिद्रयोगफल

श्लोक २८ से ३६ तक दरिद्र योगों का वर्णन कर, अब श्लोक ३७-३८ में दरिद्र योग का फल कहते हैं।

निर्भाग्यो विकलेन्द्रियो विषमधीर्दारात्मजैर्निन्दितो
भिक्षाशी विषमस्थितो विषमवाक् शिश्नोदरे तत्परः।
अन्यायार्जनतत्परस्त्वनुदिनं मात्सर्यवाक् कण्टकी
नित्यं स्यात्परदारसक्तहृदयो नीचोऽन्धमूको जडः॥३७॥
दरिद्रयोगे कलहप्रियः स्यात् कुष्ठी परेषां हितहृत् कृतघ्नः।
वाचालको भूसुरभक्तिहीनः कुदारयुक्तः कुनखी च जातः॥३८॥

दरिद्र योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति भाग्यहीन, विकलेन्द्रिय (शरीर में कोई अंग बाह्य या आन्तरिक रोगग्रस्त हो), विषमधी (जिसकी बुद्धि सम न हो अर्थात् जो सम्यक् विचारशील न हो और सही निष्कर्ष पर न पहुँचे—शेष में जो अबुद्धिमान हो) अपनी स्त्री, पुत्रों से निन्दित, भिक्षा मांगकर भोजन करने वाला (अपने पराक्रम और पुरुषार्थ से धनोपार्जन या आजीविका चलाने में अक्षम), विषम स्थित (सम या अच्छे मार्ग पर जो न चले, अन्य जनों से विरोध का भाव रखे) विषमवाक् (अप्रिय वाणी बोलने वाला, दूसरे की बात काटने वाला) शिश्नोदर तत्पर (स्त्री भोग तथा उदर पूर्ति ही जिसकी एक मात्र आकांक्षा और क्रिया हो अर्थात् उच्च, परोपकार, ज्ञानवृद्धि धर्म कार्य आदि से

निरपेक्ष) नित्य अन्याय से द्रव्य उपार्जन में तत्पर, मात्सर्य (ईर्ष्या, जलना, दूसरे की उन्नति सहन न करना, द्वेष आदि) की वाणी (वचन) से युक्त, दूसरों की स्त्री में आसक्त हृदय, नीच (अनुचित विचार और कार्य वाला), अंधा (जो हित की बात न देखे), मूक (जो हित की, प्रिय या प्रशस्त वाणी का व्यवहार करने में अक्षम हो), जड़ (निर्बुद्धि), कलहप्रिय (झगड़ालु), कुंठित (चर्मरोगादि से संत्रस्त, जिससे लोग सम्पर्क पसंद न करें) दूसरों का अहित (हानि) करने वाला, कृतघ्न (नाशुक्र गुजार), वाचाल, (निरर्थक बहुत बोलने वाला, वितण्डावादी—जिसकी वाणी में वाचालता हो (वाग्मिता गुण है, वाचालता अवगुण), ब्राह्मणों में जिसकी श्रद्धा न भक्ति हो, कुदार (खराब जिसकी पत्नी हो, स्वरूप से अथवा आचारव्यवहार से निन्दित जिसकी स्त्री हो) खराब नख वाला कुनखी होना किन-किन अवगुणों का लक्षण है यह पहले बतला चुके हैं ।

दरिद्र योग वाले व्यक्ति में उपयुक्त सभी अवगुण हों यह आवश्यक नहीं । कौन-कौन से अवगुण होंगे और कितनी मात्रा में —इसका निर्णय कौन-कौन से ग्रह दरिद्र योग कारक है, वे किन विषयों के स्थिर कारक हैं, किन ग्रहों तथा भावों से सम्बद्ध हैं–कितनी मात्रा में हीन या दूपित हैं तथा अन्य शुभ योग कौन-कौन से हैं, उनका क्या प्रभाव है आदि का पूर्ण विमर्श और विचार कर ऊहा-पोह से ज्योतिषी को फलादेश करना चाहिये ।। ३७-३८ ।।

अथ प्रेष्य योग

वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड अध्याय ३९ में श्लोक ३९ है:—

अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबल ।
नहि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥

अर्थात् विशिष्ट व्यक्तियों से प्रेष्य का काम नहीं लिया जाता है । अन्य लोगों को प्रेष्य बनाया जाता है । प्रेष्य बहुत छोटे दर्जे का नौकर होता है–जैसे हरकारा । अब ग्रंथकार प्रेष्य योग बतलाते हैं । इन योगों में उत्पन्न छोटी कक्षा का कार्य करते हैं ।

माने रवौ मन्मथगे निशीशे गेहे शनौ सोदरगे धराजे ।
लग्ने चरे देवगुरौ धनस्थे जातो निशायां परकार्यकृत्स्यात् ॥३९॥
धर्मे भृगौ कामगते मृगाङ्के वाचस्पतौ वित्तविलग्नपे वा ।
रन्ध्रस्थिते भूतनये च कीत्यां लग्ने स्थिरे प्रेष्यभवा भवन्ति ॥४०॥

प्रेष्यश्चरोदयपतौ निशि सन्धियाते
केन्द्रस्थिते यदि खलद्युचरे तु जातः ।
मन्देन्दुजीवभृगुजा दिवि केन्द्रकोणे
सन्धिस्थिताः स्थिरविलग्नयुते तथा स्यात् ॥ ४१ ॥
एरावतांशेन्द्रगुरौ ससन्धौ शीतद्युतौ चोत्तमगर्गयुक्ते ।
केन्द्राद् बहिःस्थे निशि कृष्णपक्षे शुक्रे विलग्ने परकर्मजीवी ॥४२॥
प्रेष्यो भवेदरिसुखास्पदसन्धियाता
भूपुत्रदेवगुरुवासरनायकाश्चेत् ।
पापांशके शशिनि शोभनराशियुक्ते
जीवे विलग्नपयुते परकार्यकृत्स्यात् ॥४३॥
मृगाननस्थे पुरुहूतवन्द्ये सपत्नभावाष्टमरिःफराशौ ।
रसातलस्थे हिमगौ विलग्नाज्जातः परप्रेष्यमुपैति नित्यम् ॥४४॥

पहिले श्लोक ३९ का शब्दार्थ दिया जाता हैः—

यदि सूर्य दशम स्थान में हो, चन्द्रमा सातवें, मंगल तीसरे घर में, बृहस्पति लग्न से द्वितीय भाव में तो दूसरे का कार्य करने वाला हो । मूल में शब्द आये हैं 'जातो निशायां' जिसका कतिपय टीकाकारों ने यह अर्थ किया है कि 'यदि रात्रि में जन्म हो' । परन्तु इस ओर ध्यान नहीं दिया कि रात्रि में जन्म हो तो दशम में सूर्य कैसे होगा । इसलिये या तो यह श्लोक ही व्यर्थ हो जाता है या 'निशायां परकार्यकृत् स्यात्' रात्रि में दूसरे का कार्य करे (यथा चौकीदारी, नाइट ड्यूटी) यह अर्थ करना पड़ेगा ॥३९॥

यदि जन्म लग्न स्थिर हो (वृष, सिंह, वृश्चिक या कुंभ) और बृहस्पति लग्नेश या धनेश (प्रथम भाव या द्वितीय भाव का स्वामी) हो,(ऐसी स्थिति में बृहस्पति लग्नेश तो हो ही नहीं सकता क्योंकि बृहस्पति की दोनों राशियाँ धनु और मीन द्विस्वभाव हैं और ग्रंथकार ने लिखा है कि लग्न स्थिर होना चाहिये, और वृश्चिक या कुंभ लग्न वालों को ही यह योग लागू हो सकता है क्योंकि उसी स्थिति में द्वितीयेश बृहस्पति होगा) । शुक्र नवम में हो, सप्तम में चन्द्रमा हो ; अष्टम में बृहस्पति हो तो 'प्रेष्यभवाः' होते हैं । 'प्रेष्यभवाः' क्या ? प्रेष्य से उत्पन्न अर्थात् स्वयं भी प्रेष्य । मूल में शब्द आया है 'कीर्त्या' कीर्ति के साथ । इसका कथमपि यह अर्थ कर सकते हैं कि प्रेष्य होने पर भी यश प्राप्त करने वाला हो ॥ ४० ॥
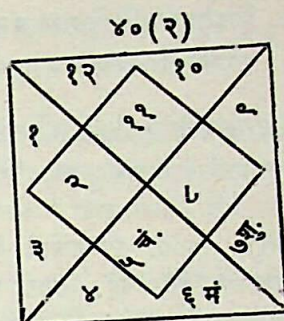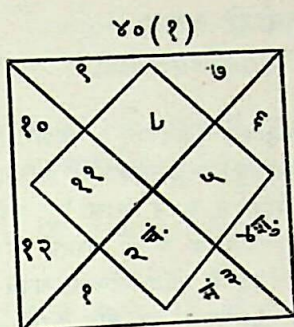
श्लोक ४१ में दो प्रेष्य योग दिये हैं:—

(१) रात्रि का जन्म हो, चर लग्न हो, लग्नेश सन्धि में हो (प्रायः कर्क, वृश्चिक तथा मीन का अंतभाग ऋक्ष सन्धि माना जाता है) पाप ग्रह केन्द्र में हो तो प्रेष्य योग होता है ।

(२) दिन का जन्म हो, स्थिर लग्न हो । शनि, चन्द्र, बृहस्पति और शुक्र केन्द्र या त्रिकोण में हों और सन्धिगत हों तो प्रेष्य योग होता है । किस प्रकार की संधि—राशि संधि या कर्कट, वृश्चिक या मीन का अंत भाग यह ग्रंथकार ने स्पष्ट नहीं किया है । परन्तु चार चार ग्रह किसी भी प्रकार की संधि में, जन्म के समय हों, ऐसा किसी कुण्डली में देखा नहीं ।।४१।।

यदि कृष्ण पक्ष में रात्रि का जन्म हो, शुक्र लग्न में हो, ऐरावतांश में होकर बृहस्पति संधि में हो, चन्द्रमा उत्तम वर्ग में होकर केन्द्र में न हो तो जातक दूसरे का कार्य करके अपनी आजीविका चलाता है । ऐरावतांश तथा उत्तम वर्ग के लिये अध्याय १, श्लोक ४७ तथा ४५ देखिये ।।४२।।

यदि मंगल, बृहस्पति और सूर्य क्रमशः ३, ४, १० भावों की सन्धि में हों; चन्द्रमा शुभ राशि किन्तु पाप (ग्रह के) नवांश में हो; तथा बृहस्पति लग्नेश के साथ हो तो दूसरे का कार्य करने वाला हो ।।४३।।

यदि बृहस्पति छठे, आठवें या बारहवें भाव में मकर में हो और चन्द्रमा चतुर्थ में हो तो जातक नित्य (सदैव) दूसरे के प्रेष्य (नौकर) का कार्य करता है ।।४४।।

अथ प्रेष्य योगफल

अब प्रेष्य योग का फल कहते हैं:—

'पापात्मा कलहप्रियः कठिनवाग् भूदेवतादूषको
विद्याभाग्यविहीनदुष्टरसिको मात्सर्यकोपान्वितः ।

मिथ्यावादविनोदवञ्चनरतः शिश्नोदरे तत्परः
कारुण्यास्थिरमानभङ्गिचतुरो योगे परप्रेष्यके ।।४५।।

प्रेष्य.योग में उत्पन्न व्यक्ति पापात्मा, कलहप्रिय (झगड़ालु), कठोर वाणी बोलने वाला। ब्राह्मणों का निन्दक (अश्रद्धालु), विद्याहीन, भाग्यहीन, दुष्टों का प्रेमी (सखा, दुष्टों के साथ आनन्द अनुभव करने वाला), मत्सरी (ईर्ष्यालु), क्रोधी, मिथ्यावाद में विनोद अनुभव करने वाला (झूठी गप्प लड़ाने का शौकीन), दूसरों को धोखा देने में सदैव संलग्न, अपने पेट भरने और काम वासना तृप्ति में ही लिप्त, दयालुता का ढोंग करने वाला तथा अपमान सहन करने में प्रवीण (अभ्यस्त) होता है ।।४५।।

अब श्लोक ४६ से ५९ तक अंगहीन योग कहते हैं:—

अथ अंगहीन योग

मेषे वृषे चापधरे विलग्ने विकारदन्तो यदि पापदृष्टे ।
मन्दे मदस्थेऽहियुते कुजे वा बलैर्विहीनेऽङ्गविहीनवान् स्यात् ।।४६।।

इस श्लोक में दो योग कहे हैं:—

(१) यदि मेष, वृष या धनु लग्न हो और पापग्रह से दृष्ट हो तो दाँतों में विकार हो ।

(२) सप्तम में शनि हो या सप्तम में राहु के साथ मंगल हो और शनि या मंगल जो भी सप्तम में हो वह बलविहीन हो तो जातक अंगहीन हो अर्थात् जातक के किसी अंग में वैकल्य हो । श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री अर्थ करते हैं यदि शनि सप्तम में हो और मंगल राहु के साथ हो या निर्बल हो ।

होरारत्न में कहा है:—

सप्तमे क्रूरे संदृष्टाः क्रूरा दन्तविकारदाः ।
पापैर्दृष्टे ऽजगोचापलग्ने विकृतदन्तवान् ।।

बृहज्जातक अध्याय २३ श्लोक में भी कहा है:—

नवमायतृतीयधीयुता न च सौम्यैरशुभा निरीक्षिताः ।
नियमाच्छ्रवणोपघातदा रदवैकृत्यकराश्च सप्तमे ।।४६।।

लग्नाद्दशमगश्चन्द्रः सप्तमस्थो धरासुतः।
द्वितीयस्थानगो भानुरङ्गहीनो भवेन्नरः ।।४७।।

यदि लग्न से दशम में चन्द्रमा, सप्तम में मंगल, तथा द्वितीय में सूर्य हो तो जातक अंगहीन हो ॥४७॥

त्रिकोणगे ज्ञे विबलैस्ततोऽपरैर्मुखाङ्घ्रिहस्तैर्द्विगुणैस्तदा भवेत् ।
अवाग्गवीन्दावशुभैर्भसन्धिगैः शुभेक्षिते चेत् कुरुते गिरं चिरात् ॥४८॥

इस श्लोक में दो योग कहे गये हैं:—

(१) यदि बुध नवम या पंचम भाव में हो और अन्य ग्रह (किसी भी स्थान या स्थानों में) हों तो जातक के दुगुने मुह, हाथ, पैर अर्थात् दो मुंह, चार हाथ, चार पैर होते हैं।

(२) यदि चन्द्रमा वृष में हो और पापग्रह (बहुवचन कहा है, इसलिये कम से कम तीन पापग्रह) सन्धिगत (ऋक्ष संधि—कर्क, वृश्चिक, मीन के अंत में) हों तो जातक गूगा होता है। यदि चन्द्रमा पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो गूंगा नहीं होता किन्तु देर से बोलता है।

कल्याणवर्मा सारावली में कहते हैं:—

क्रूरैर्ग्रहसन्धिगतैः शशिनि वृषे भौमसौरिरविदृष्टे ।
मूकः सौम्यैर्दृष्टे वाचं कालान्तरे वदति ॥
सौम्ये त्रिकोणसंस्थे लग्नाच्छेषग्रहैर्बलविहीनैः ।
द्विगुणास्यपादहस्तो योगेऽस्मिन्नाहितो भवति गर्भः ॥

गार्गि का वाक्य है:—

बलहीनैर्ग्रहैः सर्वैर्नवपंचमगे बुधे ।
द्विगुणांघ्रिशिरोहस्ते भवेत्येकोदरस्तथा ।
कुलीरालिझषान्तस्थैः पापैश्चन्द्रे वृषोपगे ।
मूकः पापेक्षितैः सौम्यैश्चिरेण लभते गिरम् ॥
मिश्रदृष्टैर्यथा वीर्यफलं बोध्यं मनीषिणा ॥

यह श्लोक जातकपारिजातकार ने बृहज्जातक के निषेकाध्याय से लिया है। इस कारण इसका विचार मुख्यतः गर्भाधान कुण्डली में करना चाहिये। प्रश्न कुंडली तथा जन्म कुण्डली में भी आनुषङ्गिक रूप से कर सकते हैं:—रुद्रभट्ट इसकी टीका में कहते हैं कि बुध त्रिकोण में हो। इसके बाद 'विबलैस्ततोऽपरैः' कहा है अतः—

"अपरैः अन्यैः ततः बुधादन्यैः गुरुशुक्रमन्दैः। परे न भवन्तीति नञ् समासेन बुधात् पूर्वे व्युत्क्रमात् कुजचन्द्रसूर्या उच्यन्ते। तथा अपरशब्देन अन्यार्थेन क्रमाद्

गुरुशुक्रशनैश्चराश्चोच्यन्ते । तथा तयोरपरशब्दयोर्भिन्नार्थयोरपि समान-रूपत्वात् 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' (१.२.६४) इत्येकशेषत्वात् ततोऽपरैरिति पूर्वे त्रयः परे त्रयश्च ग्रहा गृह्यन्ते । ततः बुधात् पूर्वं पराभ्यां कुजगुरुभ्यां विबलाभ्यां हीनबलाभ्याम् मुखद्वैगुण्यं भवति । ततः पूर्वपराभ्यां चन्द्रशुक्राभ्याम् अङ्घ्रिद्वैगुण्यं भवति । ततः पूर्वपराभ्यां सूर्यशनैश्चराभ्यां हस्तद्वैगुण्यम् । द्वैगुण्यं चात्र विबलग्रहजन्यत्वेन विकृतित्वे परिणमति । अत्र केचित् ज्ञे त्रिकोणगे उदयपञ्चमनवमेष्वन्यतमस्थे ततोऽपरैर्विबलैर्मुखाङ्घ्रिहस्तैर्द्विगुणैर्युतस्तदा भवेत् ।

आगे अन्य विद्वानों का मत कहते हैं कि बुध यदि लग्न में हो तो दो सिर, बुध पंचम में हो तो चार हाथ, बुध नवम में हो तो चार पैर । यदि अन्य ग्रह निर्बल हों तो ऐसा कहना । यदि बलवान् हों और यदि बुध भी लग्न में बलवान् हो तो वाग्बाहुल्य (वाग्मिता), बलहीन हो तो मुख में रोग । बुध पंचम में बलिष्ठ हो तो बाहु में बल । बलहीन हो तो हस्तच्छेद, नवम में बलवान् हो तो चलने में प्रवीणता (यदि विहग द्रेक्काण में हो तो रस्सी आदि पर चलने में प्रवीणता—जैसा नट आदि करते हैं) ।

इसी प्रकार श्लोक के उत्तरार्ध में 'गवि' का अर्थ वृषम राशि भी करते हैं और द्वितीय स्थान भी क्योंकि गो शब्द का अर्थ वाणी भी है और वाणी स्थान द्वितीय है ।।४८।।

अब श्लोक ४९ में दाँत सहित उत्पन्न होने का तथा कुब्ज (कुबड़ा), पङ्गु (लँगड़ा) तथा जड़ (निर्बुद्धि, मूर्ख) होने के योग कहते हैं ।

> सौम्यर्क्षांशे रविजरुधिरौ चेत् सदन्तोऽत्र जातः
> कुब्जः स्वर्क्षे शशिनि तनुगे मन्दमाहेयदृष्टे ।
> पङ्गुर्मीने यमशशिकुजैर्वीक्षिते लग्नसंस्थे
> सन्धौ पापे शशिनि च जडः स्यान्न चेत्सौम्यदृष्टिः ।।४९।।

इसमें ४ योग कहे हैः—

(१) यदि बुध की राशि या बुध के नवांश में मंगल और शनि हों तो बच्चा (जातक) दाँत सहित जन्म ले ।

(२) कर्क लग्न हो, लग्न में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल और शनि की दृष्टि हो तो कुबड़ा हो ।

(३) यदि मीन लग्न हो, उस पर चन्द्रमा, मंगल तथा शनि की दृष्टि हो तो लंगड़ा हो।

(४) यदि चन्द्रमा और पापग्रह ऋक्ष सन्धि (कर्क, वृश्चिक या मीन के अंत) में हो तो जातक जड़ (निर्बुद्धि) हो।

इन चार योगों में—यदि योग कर्ता ग्रह पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो उपर्युक्त योगों का अशुभ बल नहीं होता।

सारावली में भी कहा है:—

क्रूरेषु राशिसन्धिषु शशी न सौम्यैर्निरीक्ष्यते च जडः।
बुधनवमभागसंस्थौ शनिभौमौ यदि सदन्तः स्यात्॥
शशिनि विलग्ने र्काकिणि कुजार्किदृष्टेऽथवा कुब्जः।
मीनोदये च दृष्टे कुजार्कशशिभिः पुमान् भवति पंगुः।
व्यर्था भवन्ति योगाः सौम्यग्रहवीक्षिताः सर्वे॥

जातकपारिजातकार ने यह श्लोक भी बृहज्जातक के निषेकाध्याय से लिया है। अतः यह भी गर्भाधान लग्न को विशेष लागू होना चाहिये। भट्टोत्पल 'जड' का अर्थ 'श्रोत्रेन्द्रिय हीन' (बहरा) करते हैं। रुद्रभट्ट भी यही कहते हैं कि इन योगों का उपयोग निषेक लग्न या प्रश्न लग्न में करना। जन्म काल में यदि प्रथम चरण में कथित 'सदन्त' योग हो तो जातक हाथी दांत आदि के व्यापार में कुशल होता है। यदि द्वितीय चरणोक्त 'कुब्ज' योग जन्म कालीन कुण्डली में हो तो जातक आवासनिर्माणतत्पर होता है। अथवा किसी भी राशि में, लग्न में चन्द्रमा हो और मंगल तथा शनि से दृष्ट हो तो अभिनव गृह निर्माण तत्पर होता है॥४९॥

सौरशशाङ्कदिवाकरदृष्टे वामनको मकरान्त्यविलग्ने।
धीनवमोदयगैश्च दृगाणैः पापयुतैरभुजाङ्घ्रिशिराः स्यात्॥५०॥
लग्नद्रेक्काणगो भौमः सौरसूर्येन्दुवीक्षितः।
कुर्याद्विशिरसन्तद्वत् पञ्चमे बाहुवर्जितम्॥५१॥

उपर्युक्त श्लोक ५० बृहज्जातक निषेकाध्याय का है। श्लोक ५१ गार्गि का है। इन दोनों को जातकपरिजातकार ने यहां दे दिया है। वास्तव में ये योग निषेक लग्न किंवा प्रश्न कुंडलियों में प्रयुक्त होने चाहियें:—

रुद्रभट्ट कहते है कि यदि मकरांत्य—मकर का अन्त (अन्तिम नवांश) उदित हो (अथवा मकर और अन्त्य यह दो शब्द आये हैं, इस कारण अन्त्य से मीन लग्न

भी लेना 'अन्त्यविलग्न इत्युक्तिसामर्थ्यात् अन्त्यस्य मीनराशेरपि विलग्नत्वे) और शनि, चन्द्र तथा सूर्य लग्न को देखें तो ह्रस्व शरीर (खर्वो ह्रस्वश्च वामन इत्यमरः) होता है। यदि ये शनि, चन्द्र तथा सूर्य बली हों तो वामनकत्व विष्णवात्मत्व होता है, मध्यबली हों तो ह्रस्वत्व, हीन बली हों तो वाममार्गान्वेषी, आत्मज्ञानरहित होता है। यदि लग्न, पंचम तथा नवम में जो द्रेष्काण हों वे पापयुत हों अर्थात् मंगल, राहु या केतु युत हो तो क्रम से, पंचम भाव का द्रेष्काण पापयुत हो तो भुजाहीन, नवम भाव गत द्रेष्काण पापयुत हो तो चरणहीन, लग्नगत द्रेष्काण पापयुत हो तो सिर (मस्तक) हीन होता है। मूल श्लोक में, धी (५) नवम (९), उदय (१) यह क्रम कहा है तथा अंग हीनता का क्रम भुजा, चरण तथा शिरोदेश यह कहा है।

भट्टोत्पल ने इस श्लोक की बहुत सुन्दर और विशद व्याख्या की है। वह देखने योग्य है। मूल में 'च' शब्द आने से इस श्लोक के उत्तरार्द्ध में जो योग है उसमें भी रुद्रभट्ट, शनि, चन्द्र तथा सूर्य की दृष्टि का (पूर्वार्द्ध से) अध्याहार करते हैं ।।५०।।

५१वाँ श्लोक गार्गि का लिया गया है। जो अंश जातकपारिजातकार ने दिया है वह पूर्ण नहीं है। इस कारण एक पंक्ति जो गार्गि के वचनों में है और जातक पारिजात में नहीं है वह दी जाती है। बिना उसके अर्थपूर्ति नहीं होती।

विपदं नवमस्थाने यदि सौम्यैर्न वीक्षितः।

लग्न के द्रेष्काण में मंगल हो, शनि, सूर्य और चन्द्रमा उसे देखते हों तो बिना शिरोदेश (मस्तक) के हो। यही योग पंचम भाव स्थित द्रेष्काण में हो तो भुजाहीन हो। यही योग यदि नवम भाव गत द्रेष्काण में हो तो चरणहीन हो।

श्लोक ५० और ५१ में जो योग कहे गये हैं वही सारावली में भी कहे गये हैः—

वामनको मकरान्त्ये लग्ने रविचन्द्रसौरिभिर्दृष्टे।
भौमयुते द्रेक्काणस्त्रिकोणलग्नेषु मेषु संदृष्टः
विभुजाङ्घ्रिमस्तकः स्याच्छनिरविचन्द्रैर्वदेद्गर्भः ।।

'गर्भः' शब्द से कल्याणवर्मा भी स्पष्ट कहते हैं कि इस योग की उपयोगिता निषेक लग्न के लिये है ।।५१।।

रविशशियुते सिंहे लग्ने कुजार्किनिरीक्षिते
नयनरहितः सौम्यासौम्यैः सबुद्बुदलोचनः।
व्ययगृहगतश्चन्द्रो वामं हिनस्त्यपरं रवि-
र्न शुभगदिता योगा याप्या भवन्ति शुभेक्षिताः ॥५२॥

यह श्लोक भी बृहज्जातक निषेकाध्याय से लिया गया है। निषेक लग्न प्रश्न तथा जातक तीनों में इसका उपयोग किया जाता है। इसमें नेत्रविकार अन्धत्व आदि के ५ योग कहे गये हैं:—

(१) यदि सिंह लग्न हो, लग्न में सूर्य और चन्द्र हों तथा मंगल और शनि से दृष्ट हों तो जातक अंधा होता है। यदि सौम्य (अर्थात् गुरु—क्योंकि बुध तथा शुक्र तो सूर्य के आसपास रहते हैं, और सूर्य चन्द्र को देख नहीं सकते) तथा असौम्य (मंगल, शनि) दोनों प्रकार के ग्रह सिंह लग्नस्थ सूर्य, चन्द्र को देखें तो बुद्बुद लोचन (पुष्पिताक्ष) हों।

(२) यदि उपर्युक्त योग में सिंह लग्न में सूर्य और चन्द्र दो ग्रहों का होना कहा—वहाँ केवल सूर्य हो और (i) मंगल, शनि देखें तो दाहिने आँख से काना (दक्षिण नेत्र नाश) कहना (ii) यदि मंगल, शनि के साथ-साथ सौम्य ग्रह भी देखें तो दाहिनी आँख में बुद्बुद कहा।

(३) यदि उपर्युक्त योग में—सिंह लग्न में केवल चन्द्रमा हो और (i) उसे मंगल तथा शनि देखें तो वाम (बाएं) नेत्र से काना अर्थात् वाम नेत्र नाश कहना (i) यदि पापग्रह के साथ-साथ सौम्य ग्रह भी देखें तो वाम नेत्र में बुद्बुद हो।

(४) यदि चन्द्रमा बारहवें घर में हो तो वाम नेत्र की हानि करता है।

(५) यदि सूर्य बारहवें घर में हो तो दक्षिण नेत्र की हानि करता है।

शुभ ग्रह की दृष्टि दोष को कम करती है। किन्तु शुभ दृष्टि होने पर भी सर्वथा दोष का निराकरण नहीं होता। नेत्र विकार, नेत्र रोग आदि का विवेचन इसी ग्रह के ११वें अध्याय में भी किया गया है। पाठक अवलोकन करें।

सारावली में भी कहा है:—

स्यातां यद्याधाने रविशशिनौ सिंहराशिगे लग्ने।
दृष्टौ कुजसौरिभ्यां जात्यन्धः संभवति तत्र॥
आग्नेयसौम्यदृष्टौ रविशशिनौ बुद्बुदे क्षणं कुरुतः।
नयनविनाशोऽपि यथा तथाऽधुना संप्रवक्ष्यामि॥

व्ययभवनगतश्चन्द्रो वामं चक्षुर्विनाशयति हीनः ।
सूर्यस्तथैव चान्यच्छुभदृष्टौ याप्यतां नयतः ।

अन्यत्र कहते हैं:—

वक्रो वा सौरो वा द्वादशभे वीक्षिते नयनहन्ता ।

सर्वार्थचिन्तामणि में भी कहा है:—

चन्द्रार्कसंयुक्तहरौ विलग्ने शन्यारदृष्टेऽक्षिविनाशमाहुः ।
शुभाशुभैर्बुद्बुदलोचनः स्याच्छुभैर्न दोषः सहितेक्षणाभ्याम् ॥

अर्थात् जैसे शुभग्रह की दृष्टि दोष में न्यूनता करती है, वैसे ही शुभग्रह की युति भी दोष में अल्पता का हेतु है ॥५२॥

शूरः स्तब्धो मध्यदृष्टिर्विलग्ने मेषे स्वोच्चे रोगदृक् सिंहगेऽर्के ।
रात्रावन्धस्तौलिगे निर्द्धनी स्यात् कर्किण्यर्के लग्नगे बुद्बुदाक्षः ॥५३॥

यह श्लोक भी बृहज्जातक अध्याय २० के श्लोक १ का रूपान्तर है ।

यदि लग्न में सूर्य हो तो जातक शूर, दृढ़ (भट्टोत्पल ने स्तब्ध की व्याख्या की है चिरकार्यकृत् । रुद्रभट्ट कहते हैं 'परैरचाल्यः'—दूसरे लोग जिसका चालन-कार्य या स्थान से दूरीकरण न कर सकें) । मध्यदृष्टि (एक टीकाकार इसकी व्याख्या करते हैं 'तिर्यङ नयन'—टेढ़े नेत्र । किन्तु इसी ग्रंथ के अध्याय २, श्लोक ३२ में सूर्य को ऊर्ध्व दृष्टि कहा है) अर्थात् न तीव्र दृष्टि, न न्यून दृष्टि । यह लग्नस्थ सूर्य का दृष्टि विषयक सामान्य फल है । अब मेष, कर्क, सिंह या तुला राशि में लग्न में सूर्य हो तो उसका विशेष फल कहते हैं । यदि लग्न मेष में सूर्य हो तो नेत्र रोगी (वराहमिहिर के मत से जातक धनी हो किन्तु तिमिर नयन—नेत्र रोग विशेष)हो ; कर्क में सूर्य लग्न में हो तो बुद् वुदाक्ष, लग्न में सिंह में सूर्य हो तो रात्र्यन्ध (रात्रि में दिखाई न दे—जिसे भाषा में रतौंधी कहते हैं) ; लग्न में यदि तुला राशि का सूर्य हो तो निर्धन होता है (वराहमिहिर के मत से अन्धा भी होता है—यहाँ अन्धे का अर्थ जन्मांध नहीं किन्तु कालान्तर में—वृद्धावस्था में) ॥५३॥

व्यये रवीन्दू युगपत् पृथक्स्थौ नेत्रे हरेतामपसव्यसव्ये ।
षट्छिद्रगाश्चाक्षि हरन्ति पापाः सव्यं रिपौ दक्षिणमष्टमस्थाः ॥५४॥

इसमें नेत्रविकार—अन्धत्व आदि के ५ योग कहे गये हैं:—

(१) यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनों व्यय (लग्न से बारहवें भाव) में हों तो दोनों नेत्रों का नाश करते हैं।

(२) यदि केवल सूर्य व्यय में हो तो दक्षिण नेत्र का नाश करता है।

(३) यदि केवल चन्द्रमा व्यय में हो तो वाम नेत्र का नाश करता है।

(४) लग्न से छठे घर में पापग्रह वाम नेत्र का (क्योंकि षष्ठ में स्थित पापग्रह १२वें घर को देखेगा—१२वें से वाम नेत्र का विचार) नाश करता है।

(५) लग्न से आठवें घर में पापग्रह दक्षिण नेत्र का (क्योंकि अष्टमस्थ पापग्रह द्वितीय भाव को देखेगा—द्वितीय से दक्षिण नेत्र) नाश करता है।

सर्वार्थचिन्तामणि में भी कहा है:—

दिनेशचन्द्रौ व्ययगौ तदानीमन्धो भवेत्सौम्यदृशा विहीनौ।
युक्ते तयोरन्यतरेण रिःफे काणो भवेत्सौम्यदृशा विहीने॥

अर्थात् यदि सौम्य ग्रह की दृष्टि हो तो ऐसा नहीं होता। शुक्र की दृष्टि या युति को हम सदैव दोषकारी मानते हैं। देखिये अध्याय ११।

बृहज्जातक अध्याय २६ का श्लोक है:—

निधनारिधनव्ययस्थिता रविचन्द्रारयमा यथा तथा।
बलवद् ग्रहदोषकारणैर्मनुजानां जनयंत्यनेत्रताम्॥ ५४॥

विकर्तनो लग्नगतोऽस्तगो वा दिनेशपुत्राभियुतेक्षितश्चेत्।
तस्येक्षणं दक्षिणमाशु हन्यादहिक्ष्मासूनुयुतस्तु वामम्॥५५॥

इसमें नेत्रसम्बन्धी २ योग कहे हैं:—

(१) यदि सूर्य लग्न या सप्तम में शनि से युत या दृष्ट हो तो दक्षिण नेत्र नष्ट करता है।

(२) यदि सूर्य लग्न या सप्तम में मंगल तथा राहु से युत हो तो वाम नेत्र को नष्ट करता है॥५५॥

दिनेशचन्द्रौ यदि रिष्फयातौ सपत्नरन्ध्रव्ययगास्त्वसौम्याः।
हन्यादरिस्थो नयनं हि वामं रन्ध्रस्थितो दक्षिणभागनेत्रम्॥५६॥

इसमें २ योग कहे गये हैं:—

यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनों लग्न से १२वें घर में हों और छठे, आठवें तथा बारहवें घर में पापग्रह हों तो—

(१) यदि छठे घर में पापग्रह हो तो वाम नेत्र नाश ।

(२) यदि अष्टम ग्रह में पापग्रह हो तो दक्षिण नेत्र नाश ।

पहिले ही सूर्य, चन्द्र यदि व्यय में हों तो नेत्र रोग आदि कह चुके हैं। यदि साथ ही पापग्रह की युति या दृष्टि हो तो अवश्य ऐसा होता है। इसीलिये मूल में 'तु' शब्द आया है। 'तु' का प्रयोग निश्चय के अर्थ में किया जाता है ।।५६।।

कुजे धनेशे निधने रवीन्द्वोः शत्रुव्ययस्थानगतेऽर्कजेऽन्धः ।
रन्ध्रावसानारिगते शशाङ्के शनौ सभौमे यदि नष्टनेत्रः ।।५७।।

इसमें दो योग कहे गये हैं:—

(१) यदि मंगल दूसरे स्थान का स्वामी हो, सूर्य और चन्द्रमा किसी एक राशि में युत हों–मंगल, सूर्य चन्द्र से अष्टम में हो, शनि, सूर्य चन्द्र से षष्ठस्थ या द्वादशस्थ हो तो अन्धा होता है ।

(२) यदि चन्द्रमा लग्न से छठे, आठवें या बारहवें घर में मंगल और शनि के साथ हो तो नेत्र नष्ट हो जाते हैं ।।५७।।

षष्ठे चन्द्रेऽष्टमे भानौ लग्नादन्त्यगतेऽर्कजे ।
वित्तस्थानगते भौमे शक्रोऽप्यन्धो भवेद्ध्रुवम् ।।५८।।

यदि लग्न से छठे चन्द्रमा, अष्टम में सूर्य, द्वादश में शनि, द्वितीय में मंगल हो तो चाहे इन्द्र भी हो अवश्य अंधा होता है। 'इन्द्र' क्यों कहा? क्योंकि इन्द्र के एक सहस्र नयन हैं। यदि एक सहस्र नयन खराब हो सकते हैं तो मनुष्य के दो नेत्रों की तो चर्चा ही क्या ?।।५८।।

लग्नेश्वरेण सहिते यदि वित्तनाथे
दुःस्थेऽक्षिनाशनमथास्फुजिदिन्दुयुक्ते ।
नेत्रेश्वरे तनुगते यदि नैशिकोऽन्धः
स्वोच्चे शुभग्रहयुते न तथा वदन्ति ।।५९।।

इसमें दो योग कहे गये हैं:—

(१) यदि लग्नेश और द्वितीयेश की युति हो और दोनों लग्न से छठे, आठवें या बारहवें घर में हों तो नेत्र नाश हो ।

(२) यदि द्वितीयेश लग्न में चन्द्रमा तथा शुक्र से युक्त हो, निशान्ध हो (रात्रि में दिखाई न दे)।

यदि नेत्रेश्वर (द्वितीयेश) अपनी उच्च राशि में शुभ ग्रह युत हो तो उपर्युक्त दुष्ट फल नहीं होता ॥५९॥

रोग योग

अब श्लोक ६० से १०० तक अन्य रोगोत्पादक या रोगजनित सुखाभाव कारक योग कहते हैं। अभी जो नेत्र विकार का प्रकरण समाप्त किया है वह भी नेत्र रोग विषयक ही है। अब अण्डकोशवृद्धि, गले के रोग, व्रण, शरीरवैकल्य, शरीरशोषण, उन्माद, बुद्धिभ्रम दन्तरोग, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, उदररोग, हृदयशूल, पाण्डुरोग, वात, पित्त, कफ जनित रोग, पीनस जलोदर आदि कहे हैं। वैसे तो सभी रोग—वात, पित्त, कफ—इन त्रिदोषों में से किसी एक, दो या तीनों दोषों के कुपित होने से होते हैं—परन्तु रोग इतने हैं और शरीर के बाह्य तथा आंतरिक अवयव अनेक, इसलिये यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि किस बाह्य या आभ्यन्तरिक विशेष में रोग होगा। इसीलिये सामान्यत: वात रोग, पित्त रोग, कफजनित रोग होगा। इस प्रकार सामान्य निर्देश कर दिया है। कभी-कभी किसी एक ही दोष के कुपित होने से शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं। या त्रिदोषों में से पित्त के कुपित होने से यकृत काम नहीं करता। या ठीक से काम नहीं करता तो ज्वर, अपच मन्दाग्नि, पीलिया, नेत्र रोग, शारीरिक दुर्बलता, स्नायुमण्डल की क्षीणता से अनेक रोग हो जाते हैं। इसी कारण ग्रहों को कौन सा ग्रह किस दोष का आधिपत्य करता है, किस ग्रह से सम्बन्धित कौन-कौन से दोष हैं इनका वर्णन अध्याय २ में किया गया है; देखिये श्लोक ५३-५९। किस ग्रह का किस धातु (मज्जा, स्नायु, मेद अस्थि आदि) पर अधिकार है, यह श्लोक २८ अध्याय २ में कहा गया है। किस भाव से तथा किस राशि से शरीर के किस अवयव का बिचार किया जाता है यह अध्याय १, श्लोक ८ में कह चुके हैं। प्रथम द्रेष्काण लग्न में उदित हो तो शरीर के कौन से अवयवों से किस भाव का सम्बन्ध रहता है। यदि लग्न के ०° से १०° तक उदित हों तो जन्म कुंडली के किस भाव से कौनसा अंश लेना और १०° से २०° तक हों तो प्रत्येक भाव किस अवयव पर विशेषाधिकार रखता है और यदि लग्न राशि के अंतिम त्रिभाग २०°-३०° में हो तो कौनसा भाव शरीर के किस अवयव का अधिष्ठाता होता है। इसके लिये देखिये हमारी लिखी हस्त-रेखा-विज्ञान, पृष्ठ ४३०-३४ तथा त्रिफला

(ज्योतिष)। यह दोनों पुस्तकें मोतीलाल बनारसीदास, पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता के यहाँ प्राप्य हैं।

कहने का तात्पर्य है कि पीड़ा कारक ग्रह किस भाव, राशि से सम्बद्ध है, उनसे किन शरीर के अवयवों का निर्देश होता है, ग्रह किस दोष के कुपित होने से क्या-क्या रोग कर सकता है—इन सब का विचार कर, बलाबल का तारतम्य कर रोग का निर्णय करना चाहिये। इस अध्याय में किस ग्रह स्थिति से किस प्रकार का रोग संभावित है—केवल यह दिया है। किस महादशा या अन्तर्दशा में रोग होगा--इसका विवरण नहीं है। अध्याय १७ में काल-चक्र दशा का विवेचन है। अध्याय १८ में दशान्तर्दशा-विंशोत्तरी महादशा तथा नवों ग्रहों में अन्तर्दशायें—कौन सी कैसी जायेंगी इसका वर्णन है। अब छठे घर में जिस रोग के कर्ता जो ग्रह हैं--उनकी महादशा, अन्तर्दशा में तत् तत् रोग हो सकता है यह सामान्य नियम है। अनिष्ट गोचर में भी रोग होते हैं। परन्तु अनिष्ट दशा या अन्तर्दशा या गोचर प्रायः प्रत्येक मनुष्य के जीवन काल में कभी न कभी होते ही हैं किन्तु उनमें सदैव रोग या शारीरिक अनिष्ट नहीं होता—इसलिये सर्वप्रथम यह निश्चय करना चाहिये कि रोग संभावित है या नहीं। यदि संभावित है तो कौनसा या किस प्रकार का रोग। यह निश्चय हो जाने पर ही, रोग किस समय होगा, यह देखना। साधारणतः यह नियम है कि लग्न बलवान् हो—शुभाधिष्ठित शुभ दृष्ट हो। लग्नेश बलवान् हो और षष्ठेश से अधिक बली हो तो स्वास्थ्य उत्तम रहता है।

प्रश्नमार्ग अध्याय १४ का श्लोक ४९ निम्नलिखित है:—

मूर्त्याद्या निजरंध्रपेण शनिना वा स्युर्यदा संयुताः
स्वस्वारिव्ययरन्ध्रपापहृतयस्तत्स्थस्य वा चेत्तदा।
तत्तद्भावविपत्तिरस्ति नियमादेवं वरांगादिषु
मूर्धादंघ्रियुगान्तिमेषु च वपुर्भागेषु रोगान् सुधीः॥

अर्थात् तनु, मुख आदि भावों में गोचर वश जब विचारणीय भाव से अष्टम का स्वामी या शनि संक्रमण करता है या यदि पापग्रह विचारणीय भाव से षष्ठ, अष्टम या द्वादश का स्वामी हो, या विचारणीय भाव से षष्ठ, अष्टम या द्वादश में स्थित हो तो उसकी अन्तर्दशा में उस भाव सम्बन्धी विपत्ति (रोग, कष्ट आदि) हो ऐसा सिर (लग्न) से लेकर पैर तक बारहवें भाव तक विचार करना।

प्रश्न मार्ग अध्याय ६, श्लोक २०-२१ में—शरीर में क्या, किस पंचभूत से

सम्बन्धित है यह कहा गया है। यह विभाग ज्योतिष के अन्य ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होता। इस कारण सम्बन्धित श्लोक नीचे दिये जाते हैं:—

मांसास्थित्वक्सिरारोमपृथ्वीदेहभृतां तनौ।
स्वेदासृङ्मूत्रशुक्लास्यतोयं तोयमुदाहृतम्॥
क्षुत्तृडालस्यनिद्रायास्तेजोऽङ्गज्वलनं मरुत्।
द्वेषरागौ च मोहश्च साध्वसं च जरा नभः।
एवं हि सर्वजन्तूनां पञ्चभूतमयी तनुः॥

प्रश्नमार्ग प्रधानतया प्रश्न का ग्रंथ है परन्तु उन सिद्धान्तों का जन्म कुंडली में भी उपयोग किया जा सकता है। इस ग्रंथ का १२वाँ अध्याय रोग विषयक है। जिज्ञासु पाठक अवलोकन करें। इसमें ८६ श्लोक हैं। स्थानाभाव से यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। यथा श्लोक ३१-३२ उन्माद (पागलपन—यह अनेक प्रकार का होता है) विषयक हैं।

लग्नस्थे धिषणे दिवाकरसुतो भौमोऽथवा द्यूनगो
मन्दे लग्नगते मदात्मजतपःसंस्थो महीनन्दनः।
मूर्तौ मूढशशीन्दुजौ कृशशशी मन्दश्च रिष्फस्थितौ
पापोपेतकृशामृतांशुरुदया यस्यान्तधर्मोपगः॥
अस्ते पापयुतो मान्दिर्वित् त्रिषष्ठाष्टभान्त्यगः।
उन्माददायिनो योगा एवमष्टौ समीरिताः॥
अपस्मार (मिरगी) के विषय में कहते हैं:—
मन्दे रंध्रगते राहौ त्रिकोणे बलिनो शुभाः।
योगोऽपस्मारदो भानुर्भौमश्च गददौ यदि॥
गददौ = अनिष्टस्थानगतो।

प्रमेह के विषय में कहते हैं:—

लग्ने पापेक्षिते लग्ननाथे नीचारिराशिगे।
शुक्रयुक्तेक्षितं रन्ध्रमेव योगः प्रमेहकृत्॥ ५६॥

अब प्रकृत विषय पर जातक पारिजात के श्लोक ६० पर आइये।

राहौ विलग्ने सकुजेऽर्कपुत्रे साहौ बृहद्बीजमिवाहुरार्याः।
लग्नेश्वरे मृत्युगते सराहौ रन्ध्रे समान्दौ च तथैव वाच्यम्॥६०॥
लग्ने सराहौ गुलिके त्रिकोणे रन्ध्रे कुजे मन्दयुते तथैव।
लग्नेश्वराक्रान्ततदंशनाथे राह्वारमान्द्यादियुते तथैव॥६१॥

इसमें बृहद्बीज (बृहद् वृषण, अण्डकोष वृद्धि (जिसे अंग्रेजी में हाइड्रोसील कहते हैं) के चार योग कहे हैं:—

(१) मंगल और राहु लग्न में हों या (२) लग्न में शनि और राहु हों या (३) लग्नेश राहु के साथ अष्टम में हो या (४) लग्नेश मान्दि (गुलिक) के साथ अष्टम में हो तो अण्डकोश वृद्धि होती है। प्रायः यह रोग वृद्धावस्था में होता है। कुछ प्रान्तों में वहाँ की जलवायु के कारण यह रोग अधिक होता है ॥६०॥

श्लोक ६१ में इसी रोग के अन्य दो योग कहे गये हैं:—

(१) लग्न में राहु हो, नवम या पंचम में गुलिक (मान्दि) हो तथा अष्टम स्थान में मंगल तथा शनि एकत्र हों।

(२) लग्नेश जिस नवांश में हो, उस नवांश का स्वामी यदि राहु, मान्दि मंगल आदि (अर्थात् पापग्रह) से युत हो ॥ ६१ ॥

लग्ने रवौ भूमिसुतेन दृष्टे गुल्मक्षयश्वासनिपीडितः स्यात् ।
भौमे विलग्ने शनिसूर्यदृष्टे वसूरिरोगाभिहतो मनुष्यः ॥६२॥

इसमें दो रोग योग कहे हैं:—

(i) यदि सूर्य लग्न में हो और मंगल से दृष्ट हो तो गुल्म, क्षय और श्वास रोग से पीड़ित हो।

(ii) लग्न में मंगल हो और शनि तथा सूर्य से दृष्ट हो (कतिपय विद्वान् अर्थ करते हैं कि शनि या सूर्य से दृष्ट हो) तो वसूरि (शीतला, माता) रोग हो ॥६२॥

जातकपारिजात के अन्य संस्करणों में श्लोक ६२ के निम्नलिखित पाठान्तर दिये गये हैं:—

(१) लग्ने रविर्भूमिसुतेन दृष्टः श्वासक्षयं विद्रधिगुल्मभाजम् ।
भौमे विलग्ने शनिसूर्यदृष्टे खञ्जादिभिः पीडितदेहभाक् स्यात् ॥
(२) लग्ने रवौ भूमिसुतेन दृष्टे श्वासक्षयं कश्मलगुल्ममूलात् ।
भौमे विलग्ने शशिसूर्यदृष्टे वसूरिभिः पीडितदेहभाक् स्यात् ॥ ६२ ॥

पापेक्षिते रविसुते धनराशियुक्ते
पापान्विते शुनकभीतिमुपैति मर्त्यः ।
तद्भावनाथसहिते दिननाथपुत्रे
दृष्टेऽथ वा शुनकभीतिमुपैति जातः ॥ ६३ ॥

इसमें कुत्ते से भय अर्थात् कुत्ते से काटा जाये, इसके योग कहे हैं:—

(१) यदि द्वितीय भाव में शनि पापयुक्त, पाप दृष्ट हो तो जातक को कुत्ते का भय होता है।

(२) यदि द्वितीयेश शनि से युक्त या दृष्ट हो तो कुत्ते से भय हो। पाश्चात्य ज्योतिष के अनुसार यदि पाप ग्रह लुब्धक तारे के आसपास हो तो कुत्ते से काटे जाने का भय होता है। अंग्रेजी में इस तारे का नाम सिरियस, ग्रीक में (यूनानी भाषा) में कैनिस मैंजोरिस है। यह निरयण मिथुन राशि में २०°-१३′-६″ पर स्थित है ॥६३॥

वीर्यान्विते राहुसमेतराशिनाथान्विते राहुयुते विलग्ने।
सर्पाद् भयं विक्रमराशिनाथे बुधेन युक्ते गलरोगमेति ॥ ६४ ॥

इस श्लोक में दो योग कहे हैं:—

(१) यदि तृतीयेश बलवान् होकर, राहु जिस राशि में हो उसके साथ हो और राहु लग्न में हो तो सर्प से भय हो।

ज्योतिष में राहु का सर्प से विशेष सम्बन्ध माना गया है। फलदीपिका में राहु का आधिपत्य सर्पों पर माना गया है। देखिये भावार्थबोधिनी फलदीपिका पृष्ठ ४१-४२। ज्योतिष ग्रंथों में जहाँ राहु कहना हो वहाँ सर्प भुजगाधिनाथ आदि शब्दों का प्रयोग किया है। जहाँ पुत्र सुख में राहु बाधक हो, या राहु का किसी राशि, भाव या ग्रह से सम्बन्ध हो, वहाँ पराशर ने 'सर्पशापात् सुतक्षयः' ऐसा लिखा है। यथा—

पुत्रस्थानगते राहौ कुजेनापि निरीक्षिते।
कुजक्षेत्रगते वाऽपि सर्पशापात्सुतक्षयः ॥

इस प्रकार ८ श्लोक बृहत्पाराशर में 'सर्पशापात्सुतक्षयः' के दिये गये हैं। सब में राहु दोष, एक कारण है। जातकपारिजात में भी अध्याय १३, श्लोक ३६ में राहु के योग के कारण सर्पशापात्सुतक्षयः लिखा है। आगे षष्ठ अध्याय में ही श्लोक ७४ का भी अवलोकन करें।

(२) यदि तृतीयेश बुध के साथ हो तो गले का रोग हो।

हमारे विचार से ऊपर (२) में रोग तभी होगा, जब तृतीय स्थान तृतीयेश का कुछ न कुछ पाप सम्बन्ध हो ॥६४॥

नीचे तृतीयेऽरिगृहे विमूढे पापेक्षिते तद्गलरोगवान् स्यात्।
विषप्रयोगाद्विषभक्षणाद्वा तेषामभावेऽर्थविनाशनार्थः ॥ ६५ ॥

यदि तृतीय भाव में कोई ग्रह अपनी नीच राशि में, शत्रु राशि में, या अस्तंगत हो और पापग्रह से दृष्ट हो तो विष प्रयोग या विष भक्षण के कारण गले का रोग हो। यदि ऐसी ग्रह स्थिति में यह फल घटित न हो तो इस ग्रह स्थिति का अन्य फल है—धन नाश। धन का तृतीय से क्या सम्बन्ध? ज्योतिष में 'भावात् भावः' का एक सिद्धान्त है। उदाहरण के लिये, अष्टम से आयु तो अष्टम से अष्टम (अर्थात् लग्न से तृतीय) से भी आयु। नवम से भाग्य तो नवम से नवम (लग्न से पंचम) से भी भाग्य। इसी सिद्धान्त पर द्वितीय से द्वितीय अर्थात् लग्न से तृतीय से भी धन विचार किया जाता है। ज्योतिष में दुनिया भर की बातें नौ ग्रहों तथा बारह भावों से विचार की जाती हैं। एक ही भाव से अनेक बातों के विचार के कारण किसी न किसी बात में ग्रह अपना फल दिखाता है। नीचे एक कुंडली दी जाती है। जातक का जन्म आश्विन कृष्ण अमावस्या संवत् १९९५ में हुआ। क्षीण चन्द्र (अस्त) तृतीय भाव में है। शनि से दृष्ट है। रोग जनित विष (भोज्य जनित विष नहीं) के कारण गले का रोग हुआ ॥६५॥
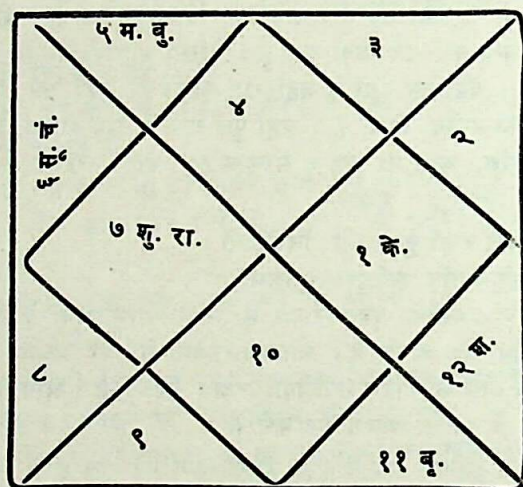
पापे तृतीये गलरोगमत्र वदन्ति मान्द्यादियुते विशेषात्।
भौमान्विते प्रेतपुरीशसूनौ तृतीयराशौ यदि कर्णरोगम् ॥ ६६ ॥

(१) यदि पापग्रह तृतीय में हो तो गले का रोग होता है। यदि यह

(पापग्रह) मान्दि आदि के साथ हो तो निश्चय ऐसा होता है। यहाँ मूल में 'मान्दि आदि' कहा है। आदि का क्या अर्थ? यहाँ मान्दि के बाद आदि कहा है—इस कारण अन्य पाप उपग्रह आदि से समझने चाहियें, क्योंकि पराशर ने धूम, व्यतीपात, परिवेष, चाप आदि के विषय में कहा है:—

अप्रकाशग्रहास्त्वेते दोषाः पापग्रहाः स्मृताः ।

(२) यदि तृतीय भाव में मंगल और मान्दि दोनों एकत्रित हों तो कान का रोग होता है ॥६६॥

पापेक्षिते सोदरभे सपापे कर्णोद्भवं रोगमुपैति जातः ।
क्रूरादिषष्ट्यंशयुते तदीशे कर्णस्य रोगं कथयन्ति तज्ज्ञाः ॥ ६७ ॥

इसमें कर्ण (कान के) रोग के दो योग कहे हैं:—

(१) यदि तृतीय स्थान में पापग्रह हो और वह ग्रह पाप दृष्ट हो तो कान का रोग होता है:—

(२) यदि तृतीयेश क्रूर षष्ट्यंश में हो तो कान का रोग होता है। हमें इस सम्बन्ध में कुछ अपना अनुभव वक्तव्य है:—नीचे दो कुण्डलियाँ दी जाती हैं:—

(६७)१

६७(२)
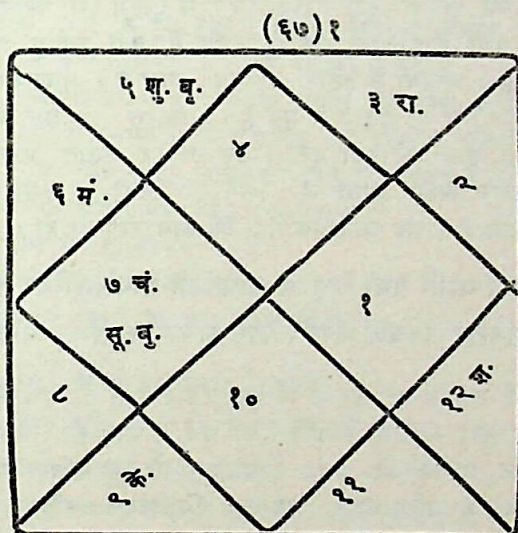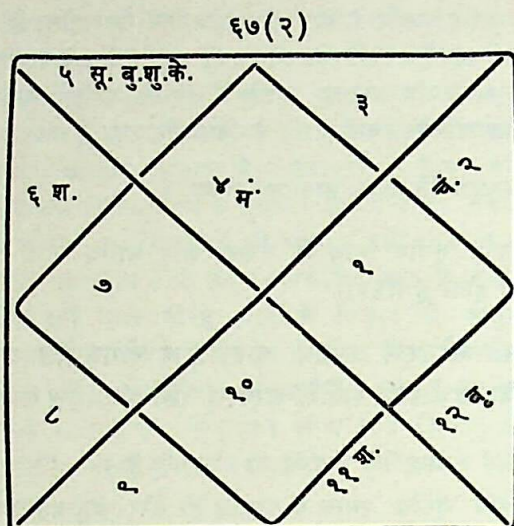
कुण्डली ६७ (१) में तृतीय में मंगल, नवम में शनि है। दोनों पापग्रह एक दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। नवम में पापग्रह है, तृतीय में पापग्रह है, तृतीय भाव जनित दुष्ट प्रभाव नहीं हुआ। नवम भाव जनित हुआ। कूल्हे की हड्डी टूटी। ६७ (२) में तृतीय में पापग्रह शनि है। तृतीयेश बुध तथा केतु केवल एक ही राशि में नहीं अपितु परस्पर १ अंश के अन्तर से हैं। चन्द्रमा से तृतीय पापग्रह मंगल है। भुजा की हड्डी टूटी। कुंडली ६५ (१) में भी तृतीय में सूर्य है। सप्तमेश अष्टमेश नैसर्गिक पापी शनि से दृष्ट है, हाथ की हड्डी टूटी। इस प्रकार तृतीय भाव से जो अनेक बातों का विचार किया जाता है उनमें से किसी न किसी सम्बन्धी दुष्ट प्रभाव हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि कान रोग ही हो ॥६७॥

पैत्तोल्वणं याति रवौ रिपुस्थे पापेक्षिते पापसमन्विते च।
भानौ सरन्ध्रे विबले धराजे पापे धनस्थे तु तथैव वाच्यम् ॥६८॥

(१) सूर्य लग्न से छठे घर में पापयुत, पापदृष्ट हो तो पित्त का विकार हो। मूल में उल्वण शब्द आया है। उल्वण का अर्थ है आधिक्य, घनीभूत (गाढ़ा) हो जाना, स्पष्ट, शक्तिशाली आदि इसलिये पित्त के अधिक हो जाने से जो मूर्च्छा, मलेरिया, मन्दाग्नि आदि रोग हैं वे पित्तोल्वण जनित होते हैं। नीचे

एक कुंडली दी जाती है। षष्ठस्थ सूर्य, शनि शुक्र के साथ है। पापदृष्ट नहीं तथापि इनकी मृत्यु तीव्र मलेरिया ज्वर के कारण हुई।

६८
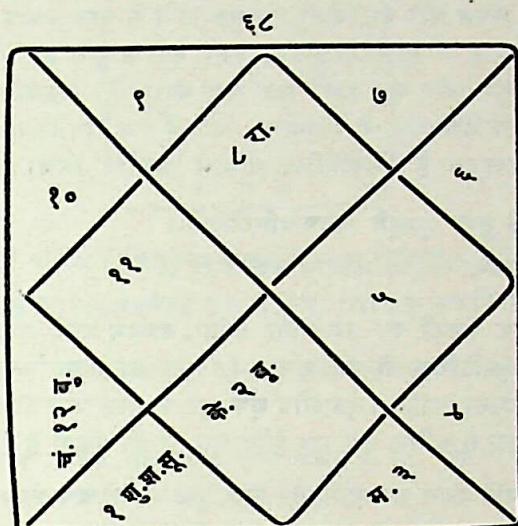
लग्नेश मंगल अष्टम में है। सूर्य और मंगल पित्त के अधिष्ठाता हैं। सूर्य केवल नैसर्गिक पापी से युत नहीं है अपितु सप्तमेश व्ययेश शुक्र प्रबल मारकेश तथा चन्द्र लग्न से तृतीयेश अष्टमेश (शुक्र) से युत है।

(२) यदि सूर्य अष्टम में हो, मंगल निर्बल हो, लग्न से द्वितीय में पापग्रह हो तो भी यही फल—अर्थात् पित्त जनित रोग। क्यों? क्योंकि पित्त का अधिष्ठाता दुःस्थान में गया और (धनस्थ पापग्रह से) पापदृष्ट हुआ। अन्य पित्त का अधिष्ठाता ग्रह मंगल भी निर्बल हुआ ॥६८॥

सर्वार्थचिन्तामणि में कहा है:—

रोगस्थानगते सूर्ये तद्भावे पापसंयुते।
पापदृष्टियुते नाभौ पैत्तिकाद् व्रणमादिशेत् ॥

श्लेष्मामयं बुधयुतेऽवनिजे रिपुस्थे
क्रूरांशके यदि सितेन्दुसमीक्षिते च।
पापेक्षितेऽवनिसुते निधनोपयाते
केतौ धनाष्टमगते व्रणरोगमेति ॥ ६९ ॥

अब श्लेष्मा (कफ) के असामञ्जस्य से रोग योग कहते हैं। इस श्लोक में ३ योग कहे हैं:—

(१) मंगल और बुध दोनों एकत्रित लग्न से षष्ठ स्थान में हों। मंगल पापग्रह के नवांश में हो और चन्द्रमा तथा शुक्र से दृष्ट हो (स्मरण रखना चाहिये कि शुक्र और चन्द्र दोनों वात, कफ कारक हैं) कफजनित रोग से युक्त होता है। एक टीकाकार ने श्लेष्मामय का अर्थ क्षय रोग किया है क्योंकि इस योग का फल क्षय है। सर्वार्थचिन्तामणि में 'क्षयरोग' लिखा है:—

> षष्ठे कुजे बुधयुते भृगुचन्द्रनिरीक्षिते।
> क्रूरांशकसमायुक्ते क्षयरोगं वदन्ति हि॥

क्षय रोग फेफड़ों का सड़ जाना, खाँसी, बलगम आदि कफजनित रोग है किंतु क्षय के अतिरिक्त भी श्लेष्मामय (श्लेष्मा या कफजनित) हो सकते हैं यह स्मरण रखना चाहिये। बुध और शुक्र सूर्य के आस पास रहते हैं। इसलिये शुक्र की अधिक से अधिक एक पाद दृष्टि बुध पर हो सकती है।

(२) यदि मंगल अष्टम में हो, पाप दृष्ट हो तो व्रण रोग करता है।

(३) केतु यदि द्वितीय या अष्टम में हो तो यही फल।

नीचे दो कुण्डलियाँ दी जाती हैं। दोनों को गुदा में व्रण रोग जिसे नाड़ी व्रण या भगन्दर (अंग्रेजी में फिसचूला कहते हैं) हुआ।

६९(१)
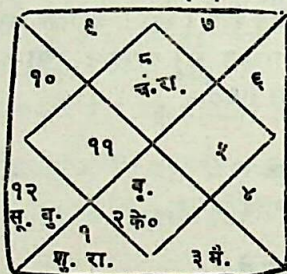
६९(२)
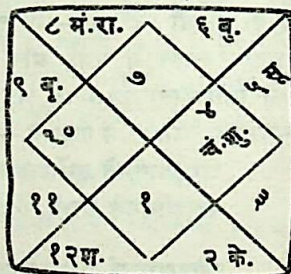
६९ (३) की कुंडली में गुदा में से काँच निकलने की बीमारी हुई। गुदा का भीतरी भाग निकल कर बाहर आ जाता है, फूल जाता है, अन्दर नहीं जाता है। अत्यन्त कष्ट कारक होता है॥६९॥

६९ (३)
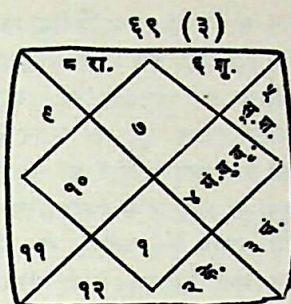
षष्ठेश्वरे पापयुते विलग्ने रन्ध्रस्थिते वा व्रणयुक्शरीरः ।
कर्मस्थिते तादृशखेचरेन्द्रे व्रणाङ्कितः स्याच्छुभदृग्विहीने ॥७०॥

(१) यदि षष्ठेश पापग्रह के साथ लग्न या अष्टम में हो तो शरीर में व्रण होता है ।

(२) यदि षष्ठेश पापग्रह के साथ दशम में हो, उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो व्रण के कारण शरीर में चिह्न हो ।

इस अध्याय में जो ७ श्लोक ७०-७६ के हैं, वे सभी सर्वार्थचिन्तामणि में भी हैं ॥७०॥

लग्नेशभूपुत्रशशाङ्कपुत्राः सह स्थिताः सौम्यतरान्यभावाः ।
अपानरोगं त्वथवाऽपवित्रं पश्यन्ति षष्ठं मुनयो वदन्ति ॥ ७१ ॥

यदि लग्नेश, मंगल और बुध किसी असौम्य भाव में हों या पापयुत होकर छठे भाव को देखें तो अपानरोग या अपवित्र रोग करते हैं, ऐसा मुनि कहते हैं।

असौम्य भाव क्या ? केन्द्र तथा त्रिकोण के अतिरिक्त भाव ऐसा एक टीकाकार लिखते हैं । किन्तु एकादशेश पापी होता है । एकादश भाव असौम्य नहीं कहलाता । 'लाभे सर्वे प्रशस्ताः' इस सिद्धान्तानुसार लाभ भाव को हम असौम्य नहीं मानते । द्वितीय भावस्थित ग्रह मारक हो सकता है किन्तु द्वितीय भाव में शुभ ग्रह धन दिलाता है। यह भी स्मरण रखना चाहिये। वराह मिहिर दशम अध्याय, चतुर्थ श्लोक में लिखते हैं:—

आयस्थैरुवयधनाश्रितैश्च सौम्यैः
सञ्चिन्त्यं बलसहितैरनेकधा स्वम् ॥

अर्थात् यदि बलवान् सौम्य ग्रह लग्न, द्वितीय या एकादश में हों तो अनेक प्रकार से धनागम होता है। षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश निश्चय ही असौम्य स्थान हैं। इसमें मतवैपरीत्य नहीं हो सकता। यहाँ अपान रोग (गुदा के रोगों) का सन्दर्भ है। अष्टम स्थान गुदा का स्थान है। इस कारण अष्टम से अष्टम, लग्न से तृतीय को भी गुदा के रोग का प्रसंग होने से असौम्य मान सकते हैं। अपान वायु गुदा के माध्यम से निस्सारित होता है। इसलिये गुदा रोग—अर्श (बवासीर) से तात्पर्य है। 'काँच' रोग भी लिया जा सकता है। 'अपवित्रम्' का क्या अर्थ ? एक टीकाकार ने अर्थ लिया है अपवित्रं=पापाक्रान्तं अर्थात् लग्नेश, भौम, बुध ऐसे षष्ठ भाव को देखें जो पापाक्रान्त हो। किन्तु यह अर्थ हमें सम्यक् प्रतीत नहीं होता। अपवित्र शब्द पापाक्रान्त के अर्थ में ज्योतिष में प्रयुक्त नहीं देखा गया है। हमारा विचार है अपवित्रं का प्रयोग अपवित्र रोग के अर्थ में किया गया है। अपवित्र, अपान रोग के सन्दर्भ में आया है। इसलिये अपवित्रं से भगन्दर (जो एक प्रकार का अपान रोग है) लेना चाहिये। भगन्दर रोग में गुदा के अतिरिक्त, उस प्रदेश में एक छिद्र और हो जाता है जिसमें से मल सदैव निस्सरित होता रहता है और रोगी सदैव अपवित्र रहता है।

जातक पारिजात का यही श्लोक सर्वार्थचिन्तामणि में भी दिया गया है किन्तु उसमें सौम्येतरान्यभावाः के स्थान में पाठ 'सौख्यगृहे व्ययं वा' है अर्थात् यदि लग्नेश मंगल तथा बुध एकत्र लग्न से चतुर्थ या व्यय में हों ॥७१॥

लग्नेशषष्ठाधिपती दिनेशयुक्तौ ज्वरं चन्द्रसमन्वितौ चेत्।
जलप्रमादं क्षितिसूनुयुक्तौ युद्धेन वा स्फोटकराशिभिर्वा ॥ ७२ ॥
पित्तात्प्रमादं यदि सौम्ययुक्तौ निर्व्याधिकः सूरसमन्वितौ चेत्।
शुक्रेण भार्याविपदं वदन्ति मन्देन नीचानिलरोगमाहुः ॥ ७३ ॥
सराहुकेतू यदि सर्पपीडां चोरादिभिर्भीतिमुपैति जातः।
केन्द्रत्रिकोणे यदि साहिकेतू वदन्ति तज्ज्ञा निगलं तदानीम् ॥७४॥

श्लोक ७२ में ३ योग कहे हैं—

(१) यदि लग्नेश, षष्ठेश तथा सूर्य तीनों किसी एक राशि में हों तो ज्वर (बुखार) रोग।

(२) यदि लग्नेश षष्ठेश चन्द्र एकत्र हों तो जल प्रमाद। जल प्रमाद का अर्थ टीकाकारों ने जल में डूबना या डूबने का भय किया है। प्रमाद से कुछ ध्वनि 'पागलपन' की भी व्यञ्जित होती है। इसलिये यह रोग प्रकरण में

कहा गया है। इस कारण वह बीमारी भी ली जा सकती है जिसे अंग्रेजी में हाइड्रोफोबिया कहते हैं। जिनको यह रोग होता है, उन्हें जलाशय, तालाब, नदी या समुद्र देखते ही भय के कारण एक प्रकार का उन्माद, प्रमाद या संत्रास हो जाता है।

(३) जिनकी जन्म कुंडली में लग्नेश, षष्ठेश तथा मंगल एकत्र हों उन्हें युद्ध में अस्त्र से आघात, फोड़े या स्फोटक पदार्थ बारूद आदि से पीड़ा हो। जब यह ग्रंथ लिखे गए तब बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था। सम्प्रति बिजली, गैस, स्टोव, प्रेशर कुकर, ऑपरेशन (शल्य-क्रिया) आदि से भय हो, यह अर्थ भी लेना चाहिए ।।७२।।

श्लोक ७३ में ४ योग कहे हैं :—

(१) यदि लग्नेश, षष्ठेश और बुध एकत्र हों तो पित्तजनित रोग।

(२) यदि लग्नेश, षष्ठेश बृहस्पति एकत्र हों तो कोई व्याधि न हो। स्वस्थ शरीर रहे।

(३) लग्नेश, षष्ठेश शुक्र एक साथ हों तो भार्या को विपत्ति। अर्थात् जातक को स्त्री कष्ट। स्त्री रोगिणी रहे या अन्य कारण से।

(४) लग्नेश, षष्ठेश, शनि एकत्र हों तो वायु जनित रोग तथा नीच रोग। नीच रोग क्या ? कुष्ठ, आतशक, सुजाक आदि। नीचानिल का एक अन्य अर्थ भी है। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यह पाँच प्राण हैं। अपान वह वायु है जो नीचे की ओर गुदा मार्ग से निस्सरित होती है। अधोवायु जनित रोग हों—यह भी नीचानिल रोग है। इसमें पेट में गैस बनती है, पेट फूलता है, भोजन में अरुचि होती है, पाचन शक्ति का ह्रास हो जाता है, वायु हृदय से टकराती है, जी घबराता है ।।७३।।

श्लोक ७४ में दो योग कहे हैं :—

(१) यदि लग्नेश, षष्ठेश राहु या केतु से युक्त हों तो सर्प पीड़ा, चोर आदि (डाकू) से भय होता है।

(२) यदि लग्नेश, षष्ठेश, राहु या केतु से युक्त केन्द्र किंवा त्रिकोण में हो तो 'निगल'। निगल का क्या अर्थ ? निगल कंठ को कहते हैं, इस कारण कंठ की बीमारी, घेघा, कंठमाला डिप्थीरिया यह अंग्रेजी शब्द हैं। कंठ में एक सफेद झिल्ली हो जाती है, ज्वर हो जाता है, बच्चा प्रायः मर जाता है। बच्चों को यह बीमारी बहुत हो जाती है। अब जो बच्चे अस्पतालों में उत्पन्न होते हैं, उन्हें शैशव में ही इंजेक्शन लगा दिया जाता है, (जिससे यह बीमारी न हो) इत्यादि। निगल का 'डलयोरभेदः' इस कारण कुछ टीकाकारों ने यह भी अर्थ किया है

कि ऐसा जातक जेल जाये क्योंकि हथकड़ी, बेड़ी को भी निगड़ कहते हैं ।।७४।।

लिंग रोग

षष्ठेश्वरश्चन्द्रसुतेन युक्तः सागुर्विलग्ने स्वयमत्र शिश्नम् ।
छिनत्त्यसौ सौम्यदृशा विहीनः सभूमिपुत्रो यदि लिङ्गरोगी ।।७५।।

यदि षष्ठेश, बुध और राहु लग्न में हों तो जातक स्वयं अपने लिंग को काट दे। यदि षष्ठेश मंगल से युक्त हो, उन पर कोई शुभ दृष्टि न हो तो जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग हो। हमारे अनुभव में आया है कि मंगल और शुक्र एक साथ खास कर तुला या वृश्चिक में या लग्न से सप्तम या अष्टम में हों तो सुजाक, उपदंश आदि का रोग करते हैं ।।७५।।

स्त्रीक्लीबत्व तथा बन्धन योग

कामेश्वरः शुक्रयुतो रिपुस्थः कलत्रषण्ढत्वमुदीरयन्ति ।
षष्ठेशलग्नाधिपती समन्दौ केन्द्रत्रिकोणे यदि बन्धनं स्यात् ।।७६।।

इसमें २ योग कहे गए हैं :—

(१) यदि सप्तमेश तथा शुक्र दोनों एकत्र, लग्न से छठे भाव में हों तो जातक की पत्नी क्लीब हो। पुरुष के लिये जब इस विशेषण का प्रयोग किया जाता है तो क्लीब का अर्थ होता है, नपुंसक। क्लीव स्त्री क्या? क्लीब और वन्ध्या में अन्तर है। वन्ध्या जिसको सन्तानोत्पादन की क्षमता न हो। काक-वन्ध्या उस स्त्री को कहते हैं, जिसकी एक सन्तान पैदा करने के बाद अन्य सन्तानोत्पादन की क्षमता न हो। क्लीव स्त्री क्या? नपुंसक दो प्रकार के होते हैं— जो जन्मजात नपुंसक होते हैं उनका शरीर संभोग के अवयव से हीन होता है। नवीन, जो १९५५ में हिन्दू विवाह कानून बना है, उसके सेक्शन (धारा) १२ में क्लीब स्त्री की परिभाषा यह की गई है कि जिस स्त्री का पुरुष सहवास योग्य अंग न हो, या जो हिस्टीरिया आदि रोग के कारण अपने पति को रति के लिए उद्यत देख कर, चिल्लाने पुकारने लगे और रति से विमुख कर दे।

(२) षष्ठेश, लग्नेश तथा शनि एकत्र केन्द्र या त्रिकोण में हों तो बन्धन (जेल जाना, गिरफ्तारी) का योग ।।७६।।

अभिचार कृत योग

चरे विलग्ने रिपुनाथदृष्टे कुजे च लाभे स्थिरगे च धर्मे ।
द्वन्द्वेऽस्तराशौ प्रवदेन्नराणां रोगं रिपूणां कृतमाभिचारम् ॥७७॥

चर लग्न के एकादश, स्थिर लग्न के लिए नवम तथा द्विस्वभाव लग्न के लिए सप्तम–यह बाधक स्थान कहे गए हैं। इन स्थानों में बैठे हुए ग्रह, तथा इन भावों के स्वामी बाधक कहे गए हैं। यह स्मरण रखना चाहिए। अब इस श्लोक में जो योग कहा गया है—चर, स्थिर किंवा द्विस्वभाव लग्न के लिए पृथक् पृथक् योग, उस पर ध्यान दीजिए :—

(१) चर लग्न हो, उसे षष्ठेश देखता हो, तथा मंगल लाभ में हो, या
(२) स्थिर लग्न हो, उसे षष्ठेश देखता हो, तथा मंगल नवम में हो, या
(३) द्विस्वभाव लग्न हो, उसे षष्ठेश देखता हो तथा मंगल सप्तम में हो।

ऐसा योग होने पर अभिचार प्रयुक्त रोग हो। अभिचार क्या ? जो शत्रु द्वारा मारण आदि के लिए मंत्रानुष्ठान किया गया हो उसे अभिचार कहते हैं।

रोग के सम्बन्ध में विशेषतः अभिचार जनित रोग के विषय में रुद्रभट्ट क्या कहते हैं, वह बहुत महत्वपूर्ण है—वह अपने विवरण के पृष्ठ १०५ पर कहते हैं :—

अत्र चिन्ताकाले गदप्रबलयोगे सति असाध्यत्वाभावे च निर्णीते प्रतिक्रियानिर्देशार्थं गदविशेषाश्च चिन्तनीयाः। गदाश्च द्विविधाः निजागन्तुकभेदेन। तत्र निजाश्च द्विविधाः शारीरा मानसाश्च। आगन्तवोऽपि द्विविधाः दृष्टनिमित्तजा अदृष्टनिमित्तजाश्चेति चतुर्विधा गदाः तत्र शारीरा वातपित्तश्लेष्मसंसर्गसन्निपातजनिता रोगाः अष्टमराशिना तत्स्थेन तन्निरीक्षकेण तदधिपेन वा बलाबलवशान्निर्देश्याः। मानसास्तु पुनः भयशोकक्रोधाविवेगजनिताः पञ्चमाधिपाष्टमाधिपयोर्योगे जन्मादिसम्बन्धवशान्निर्देश्याः। आगन्तुकेषु दृष्टिनिमित्तजा अभिघाताभिचारशापादिजनिमित्ताः षष्ठाधिपेन तत्स्थेन तद्वीक्षणेन तद्राशिना वा निर्देश्याः। तत्रापि अष्टमाधिपस्य योगनिरीक्षणादौ सति ते प्रबला भवन्ति अदृष्टनिमित्तजास्त्वागन्तवः। ते च—

चरस्थिरोभयेष्वायधर्मद्यूनगतैः क्रमात् ।
बाधकाख्यैर्ग्रहैर्वाच्या देवादिग्रहजा गदाः ॥

एवं विशेषाश्च यथाशास्त्रं निर्देष्टव्याः।

भावार्थ यह है कि रोग दो प्रकार के होते हैं (i) निज और (ii) आगन्तुक । निज भी दो प्रकार के होते हैं (i) शारीरिक तथा मानसिक । आगन्तुक भी दो प्रकार के होते हैं । (i) दृष्टनिमित्तज और (ii) अदृष्टनिमित्तज । इस प्रकार रोग चार प्रकार के हुए । शारीरिक रोग वात, पित्त, कफ, संसर्ग (छूत) सन्निपात जनित अष्टम भाव, उसमें जो ग्रह बैठा हो, उसे जो ग्रह देखता हो, उस राशि का जो स्वामी हो उसके बलाबल के अनुसार निर्देश करना। मानसिक रोग भय, शोक, क्रोधादि के वेग से होते हैं । पंचम तथा अष्टम भाव के स्वामियों की युति, दृष्टि आदि सम्बन्ध से निर्देश करना । आगन्तुक रोगों में जो दृष्ट निमित्तज हैं वह अभिघात, अभिचार, शाप आदि जनित होते हैं वह षष्ठेश, षष्ठस्थानस्थग्रह, षष्ठ स्थान को जो ग्रह देखता हो, उस (षष्ठ) भाव से निर्देश करना चाहिए । वहाँ भी यदि अष्टमाधिप का योग, दृष्टि आदि हो तो रोग प्रबल होते हैं । आगन्तुक अदृष्ट निमित्तज (चतुर्थ प्रकार) निम्नलिखित कारण से होते हैं :—

चर लग्न हो तो एकादश भाव स्थित, स्थिर लग्न हो तो नवम भाव स्थित, द्विस्वभाव लग्न हो तो सप्तम स्थान स्थित ग्रह, बाधक होता है । इस ग्रह से देवादिबाधाजनित रोग कहना ।

प्रश्न मार्ग का भी यही मत है । प्रश्न मार्ग अध्याय १२, श्लोक १८-२४ निम्नलिखित हैं :—

रोगास्तु द्विविधा ज्ञेया निजागन्तुकभेदतः ।
निजाश्चागन्तुकाश्चापि प्रत्येकं द्विविधः पुनः ॥
निजाः शरीरचित्तोत्था दृष्टादृष्टनिमित्तजाः ।
तथैवागन्तुकाश्चैव व्याधयः स्युश्चतुर्विधाः ॥
वातपित्तकफोद्भूता पृथक् संसर्गजास्तथा ।
सन्निपातभवाश्चैते शारीराः कीर्तिता गदाः ।
अष्टमेन तदीशेन तद्दृष्टा स्तद्गतेन वा ।
विज्ञातव्याः स्युरेतेषां वीर्यतस्तत्कृता गदाः ॥
क्रोधसाध्वसशोकादिवेगजातास्तु मानसाः ।
ज्ञेया रंध्रमनोनाथमिथोयोगे क्षणादिभिः ॥
शापाभिचारघातादिजाता दृष्टनिमित्तजाः ।
ज्ञेयाः षष्ठतदीशाभ्यां तद्दृष्टास्तद्गतेन वा ॥
रन्ध्रेशषष्ठसम्बन्धे शापाद्याः प्रबलाश्च ते ।
अदृष्टहेतुजा ज्ञेया बाधकग्रहसम्भवाः ॥

इस प्रकार पाठक ने अवलोकन किया होगा कि जातक पारिजातकार ने जो अभिचार आदि का कारण ग्रह लिया है—उससे भिन्न रुद्रभट्ट तथा प्रश्नमार्ग ने लिए हों। जातकपारिजात के श्लोक ७७ में अभिचार जनित रोगों का कारण ग्रह माना है, उसे रुद्रभट्ट ने देवादि ग्रहज रोग का कारण मानकर इस रोग को आगन्तुक अदृष्ट निमित्तज माना है।

निष्कर्ष—एक ही बाधा स्थान में बैठा ग्रह रोग करता है ॥७७॥

वैकल्य और शरीर शोषण के योग

जीवे समन्दे दशमेऽर्धचन्द्रे वैकल्यमङ्गे क्षितिजे कलत्रे।
दिनेशचन्द्रौ रविराशियुक्तौ चन्द्रर्क्षगौ वा यदि शोषणं स्यात् ॥७८॥

इसमें दो योग कहे गए हैं :—

(१) यदि बृहस्पति और शनि किसी राशि में एकत्र हों, अर्धचन्द्र दशम भाव में हो (ठीक आधा चन्द्रमा तब होता है जब सूर्य और चन्द्रमा का पारस्परिक अन्तर ९० अंश हो, इसलिए सूर्य का लग्न या सप्तम में होना आवश्यक है, और सूर्य चन्द्रमा का अन्तर ९० अंश होना चाहिए) तथा मंगल सप्तम में हो तो किसी अंग में विकलता (ऐसा रोग जिसके कारण वह अवयव ठीक काम न कर सके) हो।
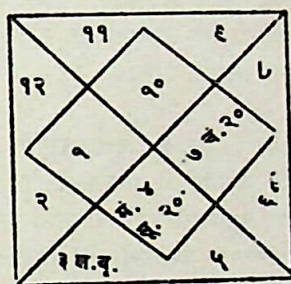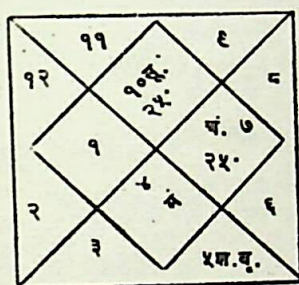
उपर्युक्त दो कुण्डलियाँ इस योग के उदाहरण में दी जाती हैं।

(२) यदि सूर्य चन्द्रमा दोनों सिंह में हों, या कर्क में हों तो शरीर शोषण (अत्यन्त कृश) होता है।

मेष लग्न के जातक का जन्म २७ अगस्त १९०८ को हुआ। शरीर अत्यन्त कृष्ण है। मिथुन लग्न वाली एक महिला है। २४ जुलाई सन् १९१४ को जन्म हुआ। शरीर अत्यन्त कृश है। क्षय रोग भी हुआ। परन्तु लग्नेश लग्न में होने
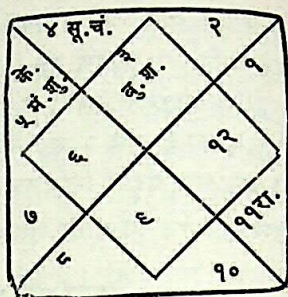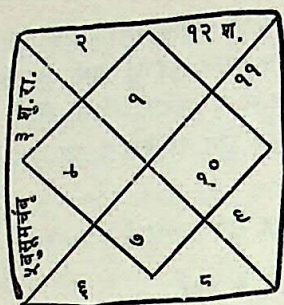
से तथा चन्द्रमा पर बृहस्पति की पूर्ण दृष्टि होने से क्षय रोग का निराकरण हो गया ॥७८॥

उन्माद योग

लग्ने रवौ भूमिसुते कलत्रे सून्मादभाक् तत्र नरो हि जातः ।
उन्मादबुद्धि समुपैति लग्ने शनौ कलत्रे सकुजे त्रिकोणे ॥७९॥

इसमें दो योग कहे गए हैं :—

(१) यदि लग्न में सूर्य, सप्तम में मंगल हो तो उन्माद हो । मनुष्य सदा, सर्वथा पागल नहीं होता है, किन्तु आंशिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं ।

(२) लग्न में शनि, तथा सप्तम या त्रिकोण (लग्न से ५, ७, ९ में) मंगल हो तो भी उन्माद रोग होता है ।

प्रश्न मार्ग अध्याय १२, श्लोक ३१-३२ में ८ उन्माद योग कहे गए हैं :—

लग्नस्थे धिषणे दिवाकरसुतो भौमोथवा द्यूनपो
मन्दे लग्नगते मदात्मजतपःसंस्थो महीनन्दनः ।
मूर्तौ मूढशशीन्दुजौ कृशशशी मन्दश्च रिप्फस्थितौ
पापोपेतकृशामृतांशुरुदया यस्वान्तधर्मोपगः ॥
अस्ते पापयुतो मान्दिर्वित्त्रिषष्ठाष्टमान्त्यगः ।
उन्माददायिनो योगा एवमष्टौ समीरिताः ॥७९॥

उन्माद बुद्धि योग

लग्नत्रिकोणे दिननाथचन्द्रौ
शौर्ये गुरौ केन्द्रसमन्विते वा ।
सोन्मादबुद्धिः स भवेत्तदानीं
शरासनादौ यदि जन्मलग्ने ॥८०॥

यदि जन्म के समय धनु लग्न प्रारंभ हुआ हो (अर्थात् धनु लग्न का प्रथम नवांश उदित हो), सूर्य और चन्द्रमा, लग्न, पंचम, या नवम में एकत्र हों, तथा बृहस्पति तृतीय या केन्द्र में हो तो उन्माद बुद्धि हो।

सर्वार्थचिन्तामणि में भी यह श्लोक है, किन्तु पाठ भेद है। वहाँ 'शरासनादौ यदि जन्मलग्ने' के स्थान में 'शन्यारवारे यदि जन्मकाले' यह पाठ है। जातकादेश में भी मंगलवार या शनिवार को जन्म हो, सूर्य, चन्द्र एक साथ लग्न, पंचम या त्रिकोण में हों, बृहस्पति लग्नसे तृतीय या केन्द्र में हो तो उन्माद बुद्धि योग कहा है। देखिए जातकादेश मार्गचन्द्रिका, पृष्ठ १३५-१३६ ॥८०॥

बुद्धि भ्रम, जडता तथा मद्यपान के योग

केन्द्रस्थितौ सौम्यनिशाकरौ वा सौम्यांशहीनौ भ्रमसंयुतः स्यात्।
केन्द्रस्थिता मन्दनिशाकरार्का जड़ो भवेदत्र मद्यपभोक्ता ॥८१॥

इसमें दो योग कहे गए हैं :—

(१) चन्द्रमा तथा बुध केन्द्र में हों या अशुभ नवांश में हों तो बुद्धिभ्रम हो। मानसिक विकार—भय, चिन्ता, उद्वेग आदि के कारण जब स्नायुमंडल ठीक से काम नहीं करता तो वृथा शंका, वृथा उद्वेग, बिना कारण के भय आदि मन में उत्पन्न होते हैं। इस रोग का नाम अंग्रेजी में स्काइजोफ्रेनिया है। वास्तव में यह एक मानसिक बीमारी है। यदि आप किसी बड़े सरकारी अस्पताल में जायें तो प्रतिदिन सैकड़ों ऐसे रोगी दिखायी देंगे। हमारे यहाँ विशेषकर देहात में लोग कहते हैं कि 'अमुक पिशाच ग्रस्त हो गया'—कोई मनुष्य इसके आसपास नहीं है, तथापि कहता है 'देखो, मुझे तलवार लेकर मारने आ रहा है।' या 'यह देखो, यह देखो मेरे बच्चे को एक औरत उठा कर भाग रही है' इत्यादि। वास्तव में यह भूताविष्ट या पिशाचाविष्ट नहीं होते। मानसिक रोग के कारण यह सब बुद्धि भ्रम होता है।

जातकादेश में इसी प्रकार का एक योग दिया है कि चन्द्रमा और बुध एकत्र केन्द्र में हों, अन्य ग्रह से संयुत न हों, जिस राशि में बैठे हों उसके स्वामी से दृष्ट न हों तो पैशाच योग होता है और जातक सोन्माद होता है। देखिए जातकादेशमार्गचन्द्रिका पृष्ठ १३५-१३६।

यहाँ पाठकों के विनोद के लिए पाश्चात्य ज्योतिष का भी मत दे दिया जाता है। विलियम लिली की ज्योतिष पुस्तक के पृष्ठ ३९३ पर लिखा है कि मानसिक रोगों के लिए लग्न, चन्द्रमा और बुध पर दृष्टि दीजिए। यदि यह एक दूसरे से असम्बद्ध हों और मंगल तथा शनि से पीड़ित हों (ताजिक की भांति

पाश्चात्य ज्योतिष में युति, ९०°, तथा १८०° की दृष्टि पीड़ाकारक और अशुभ मानी जाती है) और मंगल तथा शनि केन्द्र में हों और शुभ ग्रहों की युति या शुभ दृष्टि (त्रि, एकादश, नवम, पंचम—वही ताजिक का सिद्धान्त है) न हो तो जातक को मिरगी आदि रोग या उन्माद होगा।

टौलिमी सुप्रसिद्ध ग्रीक (यूनानी) ज्योतिषी ने भी अपनी पुस्तक के तृतीय खण्ड, अध्याय १९ में कहा है कि यदि दिन का जन्म हो और शनि पीड़ा कारक हो, (केन्द्र स्थित होकर चन्द्रमा तथा बुध से युति या अशुभ दृष्टि करे) या रात्रि का जन्म हो और मंगल उपर्युक्त प्रकार से पीड़ा करे तो मिरगी आदि रोग होते हैं। किन्तु यदि रात्रि का जन्म हो और पीड़ा कारक ग्रह शनि हो, या एक दिन का जन्म हो और पीड़ा कारक ग्रह मंगल हो (विशेषकर यदि ये पाप ग्रह सायन, कर्क, कन्या या मीन हो) तो उन्माद (पागलपन) होता है।

उदाहरण : इंग्लैंड के बादशाह जार्ज तृतीय का जन्म ४ जून, १७३८ को प्रातः ७ बजकर ४६ मिनिट पर हुआ था। मंगल दशम में था और उसकी लग्न (स्पष्ट) पर ९०° की चतुर्थ दृष्टि थी। और मंगल की चन्द्रमा पर भी शत्रु दृष्टि थी। बुध की शनि से युति थी और चन्द्रमा तथा बुध में परस्पर दृष्टि नहीं थी। अनिष्ट दशा में (अंग्रेजी ज्योतिष में दशा पद्धति सर्वथा भिन्न है और उसे डाइरेक्शन कहते हैं। डाइरेक्शन की भी ६ पद्धतियाँ हैं) जार्ज तृतीय पागल हो गया। बुध और बृहस्पति पर ६० अंश दूर थे—इस कारण इन दोनों में मित्र दृष्टि थी। बुध की शुक्र के साथ युति भी थी। यह दोनों के शुभ प्रभाव होने पर भी बुध की शनि से युति और मंगल से शत्रु दृष्टि होने के कारण वह पागल हो गया। यदि बृहस्पति की बुध पर शुभ दृष्टि और बुध की शुक्र से युति नहीं होती तो संभवतः बहुत पहिले पागल हो जाता। इस विषय में विस्तृत विवेचन के लिए देखिए सेफेरियल लिखित 'दि मैनुअल ऑफ् एस्ट्रोलोजी पृष्ठ ९४-९८ तथा कार्टर लिखित 'एन एनसाइक्लोपीडिया ऑफ् साइकोलोजिकल एस्ट्रोलौजी पृष्ठ ११०-१११। लन्दन से प्रकाशित 'जन्म कुण्डली विवेचन के सिद्धान्त' नामक अंग्रेजी में लिखी 'आत्मघात तथा उन्माद' विषयक पुस्तक का पृष्ठ ७३-८५ भी द्रष्टव्य हैं ॥८९॥

(२) सूर्य, चन्द्र और शनि केन्द्र में हों तो जातक शराब पीने वाला और जड़ हो।

गुह्य रोग, कण्ठ रोग

फुलीरकुम्भालिनवांशयुक्ते चन्द्रे समन्दे यदि गुह्यरोगी।
चन्द्रे सुखे तद्भवनांशयुक्ते पापान्विते स्याद्यदि कण्ठरोगी ॥८२॥

इसमें दो योग कहे गए हैं :—

(१) चन्द्रमा यदि कर्क, वृश्चिक या कुंभ के नवांश में, शनि के साथ हो तो गुह्य रोगी हो (अर्थात् गुप्तेन्द्रिय में रोग हो)।

(२) चन्द्रमा चतुर्थ में, चतुर्थ भाव वाले नवांश में पापान्वित (पापग्रह के साथ) हो तो कण्ठ रोग हो।

सर्वार्थचिन्तामणि में इस श्लोक के द्वितीय चरण का पाठान्तर इस प्रकार हैं 'चन्द्रे समान्दौ यदि गुल्मरोगी' ॥८२॥

उन्मादभाक् तथा कलहप्रिय योग

चन्द्रे सपापे फणिनाथयुक्ते रिःफे सुते रन्ध्रगतेऽथवाऽपि।
उन्मादभाक् तत्र सरोषयुक्तो जातस्तु नित्यं कलहप्रियः स्यात् ॥८३॥

चन्द्रमा यदि किसी पापग्रह तथा राहु के साथ पाँचवें, आठवें या बारहवें घर में हो तो उन्मादयुक्त, क्रोधी तथा कलहप्रिय होता है ॥८३॥

दाँत और नेत्र के रोग

चन्द्रे व्यये वा यदि वाऽसुरेशे मन्दे त्रिकोणे मदरन्ध्रगेऽर्के।
दन्ताक्षिरोगी च भवेत्तदानीं नीचारिपापांशगतास्तथैव ॥८४॥

यदि चन्द्रमा या राहु व्यय (लग्न से बारहवें घर) में हो, शनि त्रिकोण (लग्न से पंचम या नवम) में और सूर्य लग्न से सातवें या आठवें घर में और यह सब ग्रह चन्द्र (या राहु) शनि तथा सूर्य अपने नीच नवांश, शत्रु नवांश, या पापग्रह के नवांश में हों तो दाँत और आँख के रोग होते हैं।

राहु की उच्च और नीच राशि कौन-सी है, इसमें मतभेद है। फलदीपिका के अध्याय २, श्लोक ३५ के अनुसार राहु के मित्र बुध, शुक्र, शनि हैं। मंगल सम है। शेष शत्रु हैं। देखिए भावार्थबोधिनी फलदीपिका, पृष्ठ ५१-५२ ॥८४॥

अन्ध योग

सुताम्बुगौ पापखगौ विशेषाच्चेदष्टरिःफारिगतेऽन्धता स्यात् ॥
शुभग्रहाणामवलोकहीने चान्धो भवत्येव शुभैर्न दोषः ॥८५॥

यदि लग्न से चतुर्थ और पंचम में पापग्रह हों और विशेषकर चन्द्रमा (इस श्लोक में चन्द्र का उल्लेख नहीं है। पूर्ववर्ती श्लोक ८४ से चन्द्र का अध्याहार करते हैं) लग्न से आठवें, बारहवें या छठे घर में हो और शुभ ग्रहों की दृष्टि न

हो तो जातक अंधा हो जाता है। नेत्र विकार या दृष्टि विकार के अन्य योग पहिले भी इस अध्याय में और आगे अध्याय ११ में भी कहे हैं ॥८५॥

कुष्ठ योग

हित्वा लग्नपतिं विलग्नसहितेष्वन्येषु कुष्ठं वदेद्
नीलं भानुसुते तु चण्डकिरणे रक्तं सितं भूमिजे।
मन्देन क्षितिजेन वा यदि युते कर्क्यन्त्यनक्रांशके
चन्द्रे शोभनयोगदृष्टिरहिते कुष्ठं वदेद् देहिनाम् ॥८६॥

इसमें दो योग कहे हैं :—

(१) यदि लग्नेश के अतिरिक्त, अन्य ग्रह लग्न में हों तो कुष्ठ (रोग होगा, ऐसा) कहे। यदि लग्न में शनि हो तो नील कुष्ठ, सूर्य हो तो रक्त कुष्ठ, मंगल हो तो श्वेत कुष्ठ। मूल में, लग्न में यदि पापग्रह हो, यह नहीं कहा है, किन्तु शनि, मंगल और सूर्य का ही–किस प्रकार का कुष्ठ हो—यह निर्देश किया है, इसलिए कतिपय टीकाकारों ने 'यदि लग्न में लग्नेश के अतिरिक्त पापग्रह हों यह व्याख्या की है। किन्तु जातक परिजातकार ने जो कुष्ठ का यह योग दिया है,' उससे हमारा पूर्ण मतभेद है। हमने सहस्रों कुंडलियाँ देखी हैं, जिनमें लग्न में, लग्नेश के अतिरिक्त पापग्रह है या हैं और कुष्ठ नहीं हुआ। ज्योतिष फलित शास्त्र है। अन्य ग्रंथों तथा अनुभव को भी काम में लेना चाहिये। जो कोई केवल पापग्रह को लग्न में देख कर कुष्ठ कहेंगे वह हास्यास्पद होंगे। बृहज्जातक, फलदीपिका आदि किसी प्रामाणिक ग्रंथ में यह देखने में नहीं आया कि केवल एक पापग्रह (चाहे वह लग्नेश न हो) कोढ़ करता है। पंच महापुरुष योग जिसमें लग्न में उच्चस्थ मंगल, शनि राजयोग करते या धनु या मीन का लग्न में शनि, या सिंह या धनु का लग्न में मंगल की बहुत प्रशंसा की है। यह श्लोक तो सब को कोढ़ी बना देगा। संभवतः जिस प्रदेश में यह ग्रंथकार रहते हों, उसमें कुष्ठ का रोग अत्यधिक मात्रा में होगा। इस कारण संभवतः उन्होंने ऐसा लिख दिया। प्रतिदिन बारहों लग्न उदित होते हैं। यदि सूर्य, मंगल तथा शनि पृथक्-पृथक् राशियों में हों और स्वराशि में न हों तो तीन लग्नों में उत्पन्न व्यक्ति, अर्थात् जितने बच्चे पैदा होते हैं, उनमें चतुर्थांश कोढ़ी होने चाहिए। परन्तु यह अनुभव विरुद्ध है, अतः यह योग हमें मान्य नहीं है।

(२) चन्द्रमा मंगल या शनि से युक्त, कर्क, मकर या मीन के नवांश में हो, उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो कुष्ठ रोग होता है ॥८६॥

गुह्य रोग

पापान्विते शशिनि रन्ध्रपलग्नराशौ सर्पेक्षिते निधनपे यदि गुह्यरोगी।
रन्ध्रे चतुस्त्रितयपापयुते तथैव सौम्यग्रहेण सहिते यदि रोगहीनः ॥८७॥

इसमें दो योग कहे हैं :—

(१) यदि पापग्रह युक्त चन्द्रमा, जन्म लग्न से अष्टम में भाव के स्वामी की राशि में हो और अष्टमेश पर राहु की दृष्टि हो तो गुह्य (गुप्तेन्द्रिय में) रोग होता है।

(२) यदि अष्टम स्थान में तीन या चार पापग्रह हों, उन पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो गुह्य रोग होता है ॥८७॥

मूत्रकृच्छ्र तथा शोणित योग

जलचरगृहगेन्दौ तत्पतौ षष्ठयाते
जलगृहगतखेटैरीक्षिते मूत्रकृच्छ्रम्।
परिभवरिपुयाते शीतगौ भौमदृष्टे
रविसुतयुतलग्ने शोणितं रोगमेति ॥८८॥

(१) यदि चन्द्रमा जलचर राशि में हो, उस राशि का स्वामी लग्न से छठे घर में हो और उसको जल गृह गत ग्रह देखते हों तो मूत्रकृच्छ्र रोग होता है। जल राशि कौन-सी है? कर्क, मकर का उत्तरार्द्ध और मीन। मूत्र कृच्छ्र रोग क्या? जब गुर्दे, मूत्रवाहिनी नलियों या मूत्राशय में पथरी हो जाती है तो पेशाब कठिनता से आता है इसे मूत्रकृच्छ्र रोग कहते हैं। प्रोस्ट्रेट ग्लैण्ड की वृद्धि हो जाने से भी मूत्र थोड़ा-थोड़ा या रुक-रुक कर आता है। सुजाक में भी रुक-रुक कर मूत्र आता है।

पाश्चात्य ज्योतिष में सायन तुला से गुर्दे और सायन वृश्चिक से मूत्राशय का विचार करते हैं। शुक्र का गुर्दे, मूत्रवाहिनी नली, मूत्राशय प्रोस्ट्रेट ग्लैण्ड से विशेष सम्बन्ध है। तुला या वृश्चिक तथा शुक्र ग्रह के दोष से मूत्र कृच्छ्र आदि होते हैं यह पाश्चात्य मत है।

(२) यदि चन्द्रमा छठे या आठवें स्थान में हो, उस पर मंगल की दृष्टि हो, तथा लग्न में शनि हो तो शोणित रोग हो। शोणित रोग से क्या तात्पर्य है, यह ग्रंथकार ने स्पष्ट नहीं किया है। शोणित खून को कहते है। सामान्यतः रक्त विकार अभिप्रेत है या मूत्र सम्बन्धी शोणित रोग! जब मूत्र के साथ-साथ रक्त भी आता है तो उसे मूत्रसंग रोग कहते हैं अथवा खूनी बवासीर से तात्पर्य है।

सर्वार्थचिन्तामणि में भी मूत्रकृच्छ्र रोग का योग है :—

जलराशिगते चन्द्रे षष्ठे तद् भवनाधिपे ।
जलर्क्षस्थविदा दृष्टे मूत्रकृच्छ्रादिकं वदेत् ॥८८॥

गुल्म रोग और दाह रोग

क्षीणे मन्दगृहोदये हिमकरे पापग्रहैरन्विते
रन्ध्रारातिगतेऽथवा पवनकृद् गुल्मादिरोगं वदेत् ।
चन्द्रे पापवियच्चरान्तरगते मन्दे मदस्थानगे
जातो विद्रधिजन्मशोषजनितैः सन्तप्तदेहो भवेत् ॥८९॥

इसमें तीन योग कहे हैं :—

(१) यदि क्षीण चन्द्रमा मकर या कुंभ में हो और पापग्रहों (बहुवचन का प्रयोग है, इस कारण कम से कम ३ पापग्रहों) से युत हो या

(२) क्षीण चन्द्रमा षष्ठ किंवा अष्टम स्थान में पापग्रहों से युत हो तो वायु जनित गुल्म रोग होता है ।

(३) यदि पापग्रहों के बीच में हो—(चन्द्रमा तथा दो पापग्रह एक राशि में हों—एक पापग्रह के अंश चन्द्रमा से न्यून हों, अन्य पापग्रह के अंश चन्द्रमा से अधिक) शनि सप्तम में हो तो विद्रधि (व्रण) तथा रोग विशेष जिसमें शरीर सूख जाता है—सूखा) या क्षय से सन्तप्त हो ॥८९॥

उदर रोग

अजीर्णगुल्मामयशूलमेति कुजे विलग्ने त्रिबलेऽरिनाथे ।
लग्ने सपापे फणिनायके वा मन्देऽष्टमे कुक्षिरुगर्दितः स्यात् ॥९०॥

इसमें दो योग कहे हैं :—

(१) मंगल लग्न में हो और षष्ठेश निर्बल हो तो अजीर्ण या गुल्म रोग होता है ।

(२) लग्न में पापग्रह या राहु हो, शनि अष्टम में हो तो कुक्षि (पेट के नीचे का बगल का भाग) में रोग हो ।

सर्वार्थचिन्तामणि में भी कहा है :—

बलहीनेऽरिनाथे वा लग्नस्थे वा धरासुते ।
मूर्च्छार्तिमुखरोगो वा गुल्मविद्रधिभाग्भवेत् ॥९०॥

हृदय शूल और शूल योग

हृच्छूलरोगमुपयाति सुखे फणीशे
पापेक्षिते गतबले यदि लग्ननाथे ।
शूलामयं तनुपतौ रिपुनीचराशौ
भौमे सुखे रविसुते यदि पापदृष्टे ॥९१॥

इसमें दो योग कहे हैं :—

(१) यदि लग्नेश निर्बल और पापग्रहों से दृष्ट हो तथा चतुर्थ भाव में राहु हो तो हृदय शूल (हृदय में तीव्र वेदना) होता है।

(२) लग्नेश यदि शत्रु राशि या नीच राशि में हो, मंगल चौथे घर में हो, शनि पाप दृष्ट हो तो शूल की बीमारी होती है। यहाँ उदर शूल—पेट की तीव्र वेदना से अभिप्राय है ॥९१॥

परिपाक रोग तथा पाण्डु रोग

जातो भुक्तिविरोधरोगनिहतो रन्ध्रेश्वरे दुर्बले
लग्ने पापनिरीक्षिते परिभवस्थाने समन्देक्षिते ।
वान्तिभ्रान्तिजपाण्डुमेति सकुजे चन्द्रे रिपुस्थानगे
जातः शूलविसर्पमेति दिनकृच्चन्द्रारयुक्ते यदा ॥९२॥

इस श्लोक में तीन योग कहे हैं :—

(१) यदि लग्न पर पापग्रह की दृष्टि हो, अष्टम में शनि निर्बल हो तथा शनि अष्टम में हो या शनि की अष्टम स्थान पर दृष्टि हो तो भोजन गले के नीचे न उतर सके—कण्ठावरोध के कारण ऐसे रोग से मृत्यु होती है।

प्रश्नमार्ग में भी कहा है :—

पापग्रहेक्षितं लग्नं रन्ध्रं रविजवीक्षितम् ।
रन्ध्रेशो विबलो योग एष भुक्तिविरोधकृत् ॥

(२) यदि चन्द्रमा और मंगल एकत्र लग्न से छठे घर में हों तो वात विकार से पाण्डु (पीलिया) रोग होता है।

(३) यदि सूर्य, चन्द्रमा और मंगल तीनों छठे घर में हों तो शूल रोग होता है ॥९२॥

अभिचारजात योग

पहिले, शत्रु द्वारा अभिचार किए गए कारणों से रोग उत्पन्न होने का प्रसंग आ चुका है। अब पुनः कहते हैं :—

आरेक्षिते यदि विलग्नगृहेऽरिनाथे
मानेऽथवाऽस्ततनुगे कृतमाभिचारम् ।
लग्नाधिपेन सहितेऽवनिजे विलग्ने
केन्द्रेऽथवा रिपुपतौ तनुगे तथा स्यात् ॥९३॥

इसमें दो योग कहे हैं :—

(१) यदि लग्न को मंगल देखता हो और षष्ठेश लग्न, सप्तम या दशम में हो तो अभिचार जनित रोग होता है। अभिचार क्या ? शत्रु द्वारा किया गया मंत्रानुष्ठान प्रयोग ।

(२) यदि लग्नेश और मंगल लग्न या केन्द्र में एकत्र हों तथा षष्ठेश लग्न में हो तो वही फल जो ऊपर (१) में कहा है। मूल में 'केन्द्रेऽथवा' यह शब्द बीच में आए हैं, इस कारण देहलीदीपकन्याय से अर्थ होगा कि लग्नेश तथा मंगल एकत्र लग्न में हों और षष्ठेश लग्न किंवा केन्द्र में हो तो यही फल ॥९३॥

देवदर्शन, भूत, पिशाच आदि देखने से रोग

जातो निर्जरदर्शनेन जनितं रोगं सुखस्थानगे
माने लग्नगतेऽथवाऽमरगुरौ केन्द्रे समन्दात्मजे ।
मन्देऽस्ते चरलग्नगे यदि शुभे पापेक्षिते शीतगौ
भूतप्रेतपिशाचदर्शनवशाद् रोगं समेति ध्रुवम् ॥९४॥

इसमें दो योग कहे है :—

(१) यदि बृहस्पति लग्न, चतुर्थ या दशम में हो और मान्दि (गुलिक) केन्द्र में हो तो देवता के दर्शन से रोग हो ।

देव दर्शन का तो केवल शुभ फल होना चाहिए, फिर रोग रूप में अशुभ फल क्यों ? जब देव दर्शन में अपवित्रता प्रमाद आदि के कारण कोई श्रद्धा हानि, अवज्ञा आदि दोष हो जाते हैं (जैसे देव विग्रह के सामने पैर पसार कर बैठना, या देव दर्शन के समय नमस्कार नहीं करना, या देव दर्शन के समय किसी सुन्दरी को काम वासना से देखना) तब रोग होते हैं।

(२) यदि शुभ ग्रह चरलग्न में हो, शनि सप्तम में हो और चन्द्रमा पाप दृष्ट हो तो भूत, प्रेत, पिशाच के दर्शन से रोग होते हैं ।।९४।।

कतिपय अन्य रोग

चन्द्रे पापनिरीक्षिते रिपुगते पापान्विते वातजं
जातः शोणितपित्तमेति वसुधापुत्रे तथाऽस्ते सति ।
सौम्ये वातकफामयं भृगुसुते मूलातिसारं तथा
मन्दे गुल्ममुपैति राहुशिखिनोः पैशाचरोगं वदेत् ।।९५।।

इसमें ६ योग कहे हैं :—

(१) यदि चन्द्रमा लग्न से छठे घर में पापग्रह से युत निरीक्षित (दृष्ट) हो तो वातज (वायु जनित) रोग होता है ।

(२) मंगल सप्तम भाग में पापयुत, पाप दृष्ट हो तो रक्त पित्त होता है ।

(३) बुध सप्तम भाव में पाप युत, पाप दृष्ट हो तो वात और कफ से रोग होता है ।

(४) शुक्र सप्तम में पाप युत, पाप दृष्ट हो तो मूलातिसार (संग्रहणी)

(५) शनि पापयुत, पापवीक्षित सक्षम में हो तो गुल्म ।

(६) राहु या केतु पाप युत, पापवीक्षित सप्तम में हो तो पैशाच रोग ।

(ऐसे रोग जिनको लोग भूताविष्ट, पिशाचाविष्ट कहते हैं) ।।९५।।

कास, श्वास, क्षय पीनस रोग

कासश्वासक्षयजनिरुजं भानुभौमाहिदृष्टे
षष्ठे सौरे गुलिकसहिते सौम्यदृग्योगहीने ।
रिःफे पापे शशिनि रिपुगे भानुजे रन्ध्रयाते
पापांशस्थे तनुग्रहपतौ पीनसं रोगमेति ।।९६।।

इसमें २ योग कहे गए हैं :—

(१) यदि लग्न से छठे घर में शनि और मान्दि (गुलिक) हों, इन पर सूर्य मंगल तथा राहु की दृष्टि हो, और उपरोक्त शनि तथा मान्दि पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो कास, श्वास क्षय जनित रोग होते हैं ।

(२) यदि लग्न से बारहवें घर में पापग्रह हो, चन्द्रमा लग्न से छठे घर में, शनि लग्न से आठवें स्थान में और लग्नेश पापग्रह के नवांश में हो तो पीनस रोग होता है।

कास, कफजनित खाँसी का रोग होता है। श्वास रोग जिसे भाषा मे दमा कहते हैं। क्षय–तपेदिक (अंग्रेजी में थाइसिस या ट्यूबरक्लोसिस)। पीनस–जुकाम आदि से नाक पर दुष्प्रभाव डालने वाला रोग। बहुतों को सतत इस रोग के रहने के कारण घ्राण शक्ति का लोप हो जाता है।

सर्वार्थचिन्तामणि में कहा है :—

षष्ठे चन्द्रे शनौ रंध्रे व्यये पापे विलग्नपे।
पापांशकसमायुक्ते पीनसं रोगमादिशेत्॥
षष्ठे शनौ सगुलिके रव्यारफणिवीक्षिते।
शुभैर्न दृष्टे युक्ते वा श्वासकासक्षयादियुक्॥९६॥

जलोदर रोग–दीर्घ रोग

मन्दे कुलीरभवनोपगते मृगस्थे
चन्द्रे जलोदररुजं समुपैति जातः।
सारे शनौ रिपुगते रविराहुदृष्टे
लग्नाधिपे च विबले सति दीर्घरोगी॥९७॥

इसमें दो योग कहे हैं :—

(१) शनि कर्क का हो, चन्द्रमा मकर का हो तो जलोदर रोग होता है। वराहमिहिर ने इसी योग को निम्नलिखित प्रकार से कहा है :—

मन्दे कर्कटगे जलोदरकृतो मृत्युर्मृगांके मृगे।

अर्थात् शनि कर्क में हो, चन्द्रमा मकर में हो तो जलोदर से मृत्यु हो। श्रीमती इन्दिरा गांधी की जन्म कुंडली में यह योग है, किन्तु भगवत्कृपा से यह रोग उन्हें नहीं हुआ है। उनकी कुंडली निम्नलिखित है :—

जन्मकुंडली
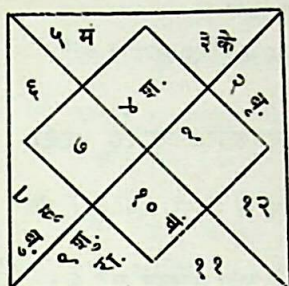
नवांशकुंडली
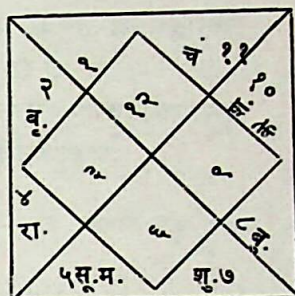
जन्म १९ नवम्बर, १९१७ को प्रयाग में हुआ। श्री सूर्योदयादिष्टम् ४१-५५ भोग्य सूर्यमहादशा १ वर्ष ११ मास। निरयण लग्न स्पष्ट ३-२८-२२-६ (अयनांश २२-४२-५४)। दशम स्पष्ट ०-२६-१०-६। किसी-किसी दैवज्ञ ने श्रीसूर्योदयादिष्टम् ४१-५२-२३ माना है।

(२) यदि लग्नेश दुर्बल हो, षष्ठ स्थान में मंगल, शनि हो और वे सूर्य तथा राहु से दृष्ट हों तो दीर्घरोगी (बहुत काल तक बीमाररहने वाला) हो। सर्वार्थचिन्तामणि में भी कहा है :—

शन्यारसहिते षष्ठे रविराहुनिरीक्षिते ।
लग्नेश्वरे हीनबले दीर्घरोगी भवेन्नरः ॥६७॥

ह्रस्व योग

ह्रस्वः कुजे निजग्रहे सुखविक्रमस्थे
चन्द्रात्मजे रविसुते यदि लग्नगे स्यात् ।
स्वर्क्षे कुजे सुखसहोदरगेन्दुसूनौ
होराधिपे शनियुते तु तथा वदन्ति ॥६८॥

इस श्लोक में २ योग कहे हैं :—

(१) यदि मंगल मेष या वृश्चिक का हो और बुध तृतीय या चतुर्थ में हो तथा शनि लग्न में हो तो शरीर ह्रस्व (छोटा) होता है।

(२) यदि मंगल मेष या वृश्चिक में हो और बुध तृतीय या चतुर्थ में हो तथा लग्नेश शनि के साथ, किसी भाव में हो, तो शरीर ह्रस्व होता है ॥९८।

विकलनयन दार योग

लग्नाद्व्ययारिगतयोः शशितिग्मरश्म्योः
पत्न्या सहैकनयनस्य वदन्ति जन्म ।
द्यूनस्थयोर्नवमपञ्चमसंस्थयोर्वा
शुक्रार्कयोर्विकलदारमुशन्ति जातम् ॥९९॥

यह श्लोक बृहज्जातक के २३वें अध्याय से लिया गया है। इसमें २ योग दिए गए हैं :—

(१) जिस मनुष्य के जन्म समय में छठे तथा बारहवें घर में सूर्य तथा चन्द्रमा हों (एक—सूर्य या चन्द्र छठे, अन्य बारहवें) वह एकनयन (काना) होता है और उसकी पत्नी भी एकनयना (कानी) होती है।

(२) जिस मनुष्य के जन्म के समय सूर्य तथा शुक्र ये दोनों ग्रह, लग्न से पांचवें, सातवें या नवम स्थान में हों, उसकी पत्नी विकल (रोगिणी या हीनांगा) होती है। भगवान गार्गी का वचन है ॥९९॥

पंचमे नवमे द्यूनौ समेतौ सितभास्करौ ।
यस्य स्यातां भवेद् भार्या तस्यैकांगविवर्जिता ॥

किन्तु सारावली में यद्यपि पति तथा पत्नी के एक नयन होने के विषय में वही योग दिया है जो बृहज्जातक में, किन्तु विकलदार योग के लिए लिखा है कि यदि मंगल और शुक्र, पंचम, सप्तम या नवम में हों तो यह योग होता है।

लग्नाद् व्ययरिपुगतयोः शशांकभान्वोर्वदन्ति पुरुषस्य ।
प्रभवं समस्तमुनयः क्रमेण पत्न्या सहैकनयनस्य ॥
द्यूने कुजभार्गवयोर्जातः पुरुषो भवेद् विकलदारः ।
धीधर्मस्थितयोर्वा परिकल्प्यं पण्डितैरेवम् ॥

साथ में एक जन्म कुंडली दी जाती है। इनका जन्म ४ सितम्बर १९१५ को मेष लग्न में हुआ। पंचम में सूर्य शुक्र है। इनकी पत्नी आजन्म रोगिणी रही है। तृतीय में पापग्रह होने से एक भाई अल्पायु है। पंचम में सूर्य (यद्यपि स्वगृही है) पर शनि की दृष्टि होने से ज्येष्ठ पुत्र को यदा कदा उन्माद रोग होता रहता है ॥९९॥
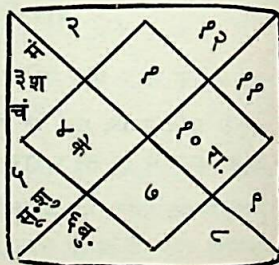
कर्ण रोग तथा दन्त विकृति योग

नवमायतृतीयधीयुता न च सौम्यैरशुभा निरीक्षिताः ।
नियमाच्छ्रवणोपघातदा रदवैकृत्यकराश्च सप्तमे ।।१००।।

यह श्लोक भी वृहज्जातक से लिया गया है। इसमें दो योग कहे हैं :—

(१) यदि लग्न से तृतीय, पंचम, नवम, एकादश में पापग्रह हों और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो श्रवण का उपघात करते हैं अर्थात् जातक बहरा होता है। हमारे विचार से तृतीय से दाहिना कान (और नवम से भी दाहिना कान क्योंकि नवमस्थ पापग्रह की तृतीय पर पाप दृष्टि होगी। यदि नवम में शनि होगा तो एकादश—बाँये कान पर भी पूर्ण दृष्टि होगी और उसको भी खराव करेगा) और एकादश से बाँया कान लेना चाहिए।

(२) यदि सप्तम में पापग्रह हों उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो दाँतों में विकृति करते हैं।

यदि किसी स्त्री के दाँतों में विकृति हो तो गरुड़ पुराण के अनुसार उसका पति अल्पायु होता है (सप्तम पति का स्थान है)। यदि नीचे के जबड़े में ऊपर की अपेक्षा कम दाँत हों तो कन्या की माता कम जीती है। (चतुर्थ से चतुर्थ, भावाद् भावः)। यदि बहुत वड़े या चौड़े, भयंकर दाँत हों तो ऐसी स्त्री पति से हीन होती है। देखिए हस्तरेखा विज्ञान का चतुर्थ खण्ड—शरीर लक्षण पृष्ठ ४७४-४७५।

पुरुषों के दाँत के विषय में लिखा है कि दाँत रीछ या वानर की तरह हैं तो जातक सदैव भूख से पीड़ित रहते हैं। जिनके दाँत कराल व दूर-दूर हों वे सदैव दुःख पाते रहते हैं। दाँतों के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन के लिए देखिए उपरोक्त पुस्तक के पृष्ठ ४५३-४५४।

पाश्चात्य ज्योतिष के अनुसार भी यदि पापग्रह सप्तम में हों, उन पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो दन्त वैकृति या दन्त रोग होता है।

गुणाकर के अनुसार, अर्केन्दुमहीजमन्दाः—

एते त्रिलाभप्रतिभाशुभस्थाः सौम्यग्रहालोकनवर्जिताश्च ।
कर्णोपघातं जनयन्ति पुंसामनंगगास्ते विकृतिं रदानाम् ।।

जातकतिलक में लिखा है :—

धीधर्माय तृतीयस्थाः पापाः सौम्यैरनीक्षिताः ।
कर्णघातकरास्ते तु द्यूनस्थाः दन्तदूषिणः ।।

सारावली का वचन है :—

धर्माय सहजसुतगाः पापाः सौम्यैर्न वीक्षिता जन्तोः ।
श्रवणविनाशं कुर्यु सप्तमसंस्थाश्च दन्तानाम् ॥१००॥

वर्गोत्तमादिशुभवर्गयुतेऽमरेज्ये
लग्ने रसातलगते यदि वा बलाढ्ये ।
वित्तायवृद्धिगृहगेषु वियच्चरेषु
लग्नाधिपे बलयुते सुखमेति जातः ॥ १०१ ॥

यदि बृहस्पति वर्गोत्तम आदि शुभ वर्ग में होकर लग्न या चतुर्थ में या बलवान् हो, सब ग्रह लग्न से दूसरे, चौथे या ग्यारहवें घर में हों और लग्नेश बलवान् हो तो जातक का जीवन सुखी होता है ।

मूल में 'वृद्धि' शब्द आया है, जिसका अर्थ इसी ग्रंथ के अध्याय १ श्लोक ५० के अनुसार चतुर्थ स्थान होता है । श्री नवार्थ तथा श्री सुब्रह्मण्यशास्त्री ने वृद्धि' का अर्थ वृद्धिकारक स्थान किया है । यह उपयुक्त नहीं है ॥१०१॥

ये जातभङ्गा नृपयोगभङ्गाः प्रेष्या दरिद्राङ्गविहीनरेफाः ।
ये रोगभेदाः परिकीर्तितास्ते सूर्यादिसर्वद्युचरप्रसादात् ॥ १०२ ॥

सूर्य आदि सब ग्रहों के प्रसाद (कृपा) से ये जातकभंग (राजयोग भंगकारक योग) नृपयोगभंग (राजा होने के योगों का भंग करने वाले योग) प्रेष्य योग, दरिद्रता तथा अंग विहीनता करने वाले योग, रेका योग, रोग भेद (विविध रोगों के योग) कहे गए हैं । संक्षेप में इस छठे अध्याय में ग्रंथकार ने जो कहा है, उसे इस अन्तिम श्लोक में निर्देश किया है ॥१०२॥

अध्याय ७

राजयोगाध्याय

इस अध्याय में ग्रंथकार ने राजयोगों का वर्णन किया है। प्रायः हमारे ग्रंथकारों ने, उत्तम ज्योतिषी होने के साथ साथ, विशिष्ट कवि होने के कारण, अतिशयोक्ति का भी आश्रय लिया है, इसलिये जन्म कुण्डली देखते समय, केवल एक राजयोग के आधार पर अत्यन्त विशिष्ट फल नहीं कहना चाहिये। उदाहरण के लिये तुला का शनि केन्द्र में हो तो महापुरुष योग करता है। शनि एक राशि ढाई वर्ष रहता है। उस ढाई वर्ष में उत्पन्न एक चौथाई बच्चों की जन्मकुण्डली में उच्चस्थ शनि केन्द्र में होने से महापुरुष योग होता है। परन्तु ढाई वर्ष में जन्मे करोड़ों बच्चों में कितने महापुरुष होंगे ?

दूसरी बात यह है कि वर्गों में—विशेषकर नवांश में जब ग्रह बली होता है तब अपना पूर्ण शुभ फल दिखाता है। अति विशिष्ट फल दिखाने के लिये, ग्रह को षड्बल तथा अष्टक वर्ग में भी बली होना चाहिये। किसी अध्याय में ग्रंथकार ने षड्बल का महत्त्व बतलाया है, किसी में अष्टक वर्ग का, किसी में राजयोगभंगकारक योग कहे हैं, सब का समन्वय करके फलादेश करना चाहिये।

कन्यामीननृयुग्मगोहरिधनुःकुम्भस्थितैः खेचरैः
सेनामत्तमतङ्गवाजिविपुलो राजा यशस्वी भवेत् ।
तौलिच्छागवृषावसानगृहगैर्जातोऽखिलक्ष्मापति-
र्गोचापान्त्यभकेन्द्रगैः पृथुयशाः पृथ्वीश्वरो जायते ॥ १ ॥

इसमें ३ राजयोग कहे हैं:—

(१) यदि समस्त ग्रह वृष, मिथुन, सिंह, कन्या, धनु, कुंभ और मीन—इन सात राशियों में हों तो यशस्वी राजा हो, उसकी सेना, मत्त हाथी तथा घोड़ों की संख्या विपुल हो।

(२) जिसकी कुण्डली में मेष, वृष, तुला, तथा मीन राशियों में सब ग्रह हों वह अखिल (समस्त) क्ष्मा (पृथ्वी) का पति हो।

(३) यदि सब ग्रह वृष, धनु तथा मीन इन राशियों में होते हुए केन्द्र में हों तो विस्तृत यशवाला पृथ्वीश्वर होता है।

स्मरण रखना चाहिये कि यदि वृष केन्द्र में होगा, तो धनु तथा मीन केन्द्र में नहीं होंगे। यदि धनु या मीन केन्द्र में हों तो वृष केन्द्र में न होगा।

कुछ राशि विशेषों में समस्त ग्रह हों तो राजयोग होता है। ऐसा कतिपय अन्य ग्रंथकारों का भी मत है। उन्होंने ऐसे योगों का नाम विशेष भी रखा है। ये योग पाठकों के हितार्थ नीचे दिये जाते हैं:—

(i) सिंहासनयोग (सोमजातक)

एष सिंहासनो योगः कन्यालौ वृषके झषे।
चापे नरौ हरौ कुंभे ग्रहैश्चैव परो मतः॥
दन्ती तुरंगयुक्तो नौकावेष्टी गुणी कान्तः।
नृपसचिवो भवति नृपो योगे सिंहासने जातः॥

(ii) सिंहासनयोग (भावकुतूहल)

कन्यामीनवृषालिभे यदि खगाः सिंहासनः कीर्तितः
किंवा चापनृयुग्मकुंभहरिभे खेटे हि सिंहासनः।
यः सिंहासनयोगतो हि मनुजो भूपाधिराजो बली
गर्जत्कुञ्जरवाजिराजिमुकुटारूढो धरामण्डले॥

(iii) चतुश्चक्रयोग (सोमजातक)

हरौ स्त्रिया मलौ वाऽपि घटे मीने वृषे नरे।
ग्रहैर्लग्ने च योगोऽयं चतुश्चक्रोभिधीयते॥
चक्रवर्ती महावीर्यः सर्वज्ञः सर्वजीवनः।
आज्ञामयो महातेजा पराक्रमी नृपो भवेत्॥

(iv) चतुश्चक्रयोग (भावकुतूहल)

वृषे सिंहे कन्या कलशमिथुनान्त्यालितुरगे
समाजः खेटानामिह भवति जन्मन्यपि नरः।
चतुश्चक्रे योगे सकलसुखभोगेन मिलितो
महीपानामाली मुकुटमणिपाली विजयते॥

(v) कनकदण्डयोग (सोमजातक)

मीने मेषे वृषे चैव तुलायां च स्थिते ग्रहे।
योगः कनकदण्डाख्यो देवासुरसुदुर्लभः॥

(vi) डमरुकयोग (सोमजातक)

वृषे च मिथुने चापे कीटे डमरुको मतः ।
अपरो युवती सिंहे घटे मीने उदाहृतः ।
जातो डमरुके योगे विद्याविख्यातकीर्तिमान् ।
परोपकारी दाता च नारीहृदयवल्लभः ॥

(vii) ध्वजयोग (सोमजातक)

मेषे वृषे झषे वाऽपि स्थितस्थाने ग्रहो यदि ।
दोलछत्रप्रदो योगे राजयोगध्वजोत्तमः ॥
यो जातो ध्वजयोगे स भवति नीचोऽपि दोलया युक्तः ।
अन्यो भवति हि सचिवो नृपजो भवति नृपो न सन्देहः ॥

(viii) एकावलीयोग (सोमजातक)

एकैकग्रहयोगेन भवेदेकावली शुभा ।
लग्नं विना शुभैर्वाऽपि समता कस्यचिन्मते ॥
दाता भोक्ता प्रचुरं युवतीनां निधीनां निधानम् ।
एकावल्यां भवति सचिवः सर्वराज्ये पृथिव्याम् ॥

(ix) एकावलीयोग (भावकुतूहल)

एकैकेन खगेन जन्मसमये सैकावली कीर्तिता
मुक्तालीव समस्तभूपमुकुटालंकारचूडामणिः ।
तज्जातो रिपुपुंजभंजनकरो गन्धर्वदिव्यांगना-
वृन्दानन्दपरो गुणव्रजधरो विद्याकरो मानवः ॥

(x) राजहंसयोग (सोमजातक)

घटे मेषे नरे चापे तुलायां सिंहगे ग्रहे ।
राजहंसो भवेद्योगो राज्यस्य स सुखप्रदः ।

(xi) चतुःसागरयोग (सोमजातक)

तुलामकरमेषेषु कर्कटे वा स्थिते ग्रहे ।
चतुःसागरयोगोऽयं राज्यदो धनदो मतः ।
नैकवाणिज्यकुशलः शास्त्रज्ञः स्थानतत्परः
भूपतिर्नृपतुल्यो वा चतुःसागरयोगजः ॥

(xii) चतुष्क-महोदधियोग (भावकुतूहल)

यदि तुलामकराजकुलीरभे रविमुखाः सकला विलसन्ति चेत् ।
इह चतुष्कमहोदधिसंज्ञकः सुरपतेः समतां तनुते नृणाम् ॥

(xiii) गृद्धपुच्छयोग (सोमजातक)

मृगे कीटे भवेत् पुच्छः कन्यालौ वृषभे झषे ।
गृद्ध्रपुच्छो भवेद्योगश्चतुःसागरतः शुभः ॥

(xiv) चिह्नपुच्छयोग (सोमजातक)

मृगे कर्किणि सिंहे च चापे वा मिथुने घटे ।
योगानामुत्तमो योगो चिह्नपुच्छमहाफलः ॥

(xv) प्रचंडयोग (भावकुतूहल)

कुलीरे कन्यायामनिमिषधनुर्युग्मभवने
जनुः कालेर्यस्य प्रभवति न भोगो रविमुखः ।
प्रचंडप्रोत्तुङ्गप्रवलरिपुहन्ता क्षितिपतिः
समन्तादाधिक्यं व्रजति धनदानेन महताम् ॥

(xvi) श्रीछत्रयोग (भावकुतूहल)

प्रसूतिकाले यदि सर्वखेटैस्तनुव्ययाङ्गार्थगृहस्थितैश्चेत् ।
पुरातनात् पुण्यत एव पुंसां श्रीच्छत्रयोगं प्रवदन्ति सन्तः ॥

इन ग्रंथों के अतिरिक्त भावार्थरत्नाकर, फलदीपिका, मानसागरी आदि ग्रंथों में भी इस प्रकार के योग दिये गये हैं ॥१॥

कन्यामेषतुलामृगेन्द्रघटगैर्जातो महीपालको
दुश्चिक्यप्रतिभारसातलगतैर्बह्वर्थदेशाधिपः ।
खेटा विक्रमबन्धुपुत्रगृहगा द्वौ वित्तधर्मस्थितौ
शेषौ लग्नकलत्रराशिसहितौ राजा भवेद्धार्मिकः ॥ २ ॥

इसमें तीन योग कहे गये हैं:—

(१) यदि सब ग्रह मेष, सिंह, कन्या, तुला और कुंभ में हों तो महीपाल (पृथ्वीपालक राजा) हो।

(२) यदि समस्त ग्रह लग्न से तृतीय, चतुर्थ और पंचम में हों तो बहुत देशों का स्वामी हो।

(३) जिसके जन्म के समय लग्न से तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम में एक एक ग्रह, शेष एक एक ग्रह लग्न, द्वितीय, सप्तम और नवम में हों वह धार्मिक राजा हो ॥२॥

सारावली अध्याय ३५ का ९७वाँ श्लोक है:—

त्रयो ग्रहा भ्रातृसुतायसंस्थास्तथा शुभौ द्वौ रिपुसंगतौ च।
फलद्वलग्नं च गतौ च शेषौ नृपस्य योगः खलु पूर्णकुंभः ॥२॥

तारेशहोरासहिता नभोगा जातो यशस्वी मनुजाधिपः स्यात्।
सौम्यास्तपोलाभगृहोपयाताः पापा रिपुव्योमगता नरेशः ॥ ३ ॥

इसमें दो योग बताए गये हैं:—

(१) यदि सब ग्रह चन्द्रमा की होरा में हों तो जातक यशस्वी राजा होता है।

(२) यदि शुभ ग्रह नवें और ग्यारहवें घर में हो और पापग्रह लग्न से षष्ठ तथा दशम स्थान में हों तो राजा हो। यहाँ शुम तथा पापग्रह दोनों का बहुवचन में प्रयोग किया गया है। इस कारण समस्त ग्रह लग्न से ६, ९, १०, ११, भावों में, इस प्रकार होने चाहियें कि शुभ नवम और एकादश में हों और पाप षष्ठ तथा दशम में ॥३॥

लग्नास्पदानङ्गगृहोपयाता बलान्विताः शोभनखेचरेन्द्राः।
कुजार्कपुत्रौ नवमायसंस्थौ नृपो भवेत्सर्वगुणाभिरामः ॥ ४ ॥

यदि शुभ ग्रह बलवान् होकर लग्न, सप्तम और दशम में हों तथा मंगल और शनि नवम तथा एकादश में हों तो वह सर्व सद्गुण सम्पन्न राजा होता है।

सारावली अध्याय ३५ के ९५वें श्लोक में एक इसी प्रकार का राजयोग दिया गया है। परन्तु उसमें और जातकपारिजात के इस श्लोक में थोड़ा अन्तर है। सारावली के अनुसार यदि समस्त शुभ ग्रह लग्न, चतुर्थ तथा सप्तम में हैं तथा सूर्य, मंगल और शनि लग्न से तृतीय, नवम और एकादश में हों तो जातक राजा होता है:—

सुखतनुमदगाः शुभाः समग्राः कुजरविरविजास्त्रिलाभसंस्थाः।
यदि भवति महीपतिः प्रशान्तो यवनिपतिकृतो ह्ययं महीपयोगः ॥४॥

वर्गोत्तमांशोपगते विलग्ने चन्द्रेऽथवा चन्द्रविमुक्तखेटैः।
सुखास्पदानङ्गगृहोपयातैर्विलोकितैर्मानवनायकः स्यात् ॥ ५ ॥

इसमें दो योग कहे गये हैं:—

(१) यदि लग्न वर्गोत्तम हो (वर्गोत्तम के लिये देखिये अध्याय १, श्लोक ३४) और उसको चतुर्थ, सप्तम, तथा दशम में बैठे हुए ग्रह देखें तो मनुष्यों

का नेता (प्रधान पुरुष) हो। ग्रंथकार कहते हैं कि चन्द्रमा के अतिरिक्त ग्रह देखें। बृहत्प्राजापत्य के अनुसार इस योग के लिए यदि चन्द्रमा लग्न को देखे तो योग भंग नहीं होता। यदि चन्द्रमा देखें तो वह द्रष्टा योगकारक ग्रह भी नहीं समझा जावेगा अर्थात् चन्द्रमा की दृष्टि न योग बनाती है, न बिगाड़ती है। कितने ग्रह देखें, इसके विषय में ग्रंथकार ने कुछ नहीं कहा है। किन्तु 'गृहोपयातैः' मूल में ग्रहों का बहुवचन में प्रयोग है। हिन्दी में बहुवचन का प्रयोग दो या अधिक के लिये किया जाता है, किन्तु संस्कृत में तीन या अधिक के लिये बहुवचन प्रयुक्त होता है। अन्य आचार्यों ने लिखा है कि चार या अधिक ग्रह वर्गोत्तम लग्न को देखे तो राजयोग होता है। इस कारण सम्प्रदायानुसार यहाँ भी चार या अधिक ग्रह द्रष्टा ग्रहों में लेना।

(२) यदि चन्द्रमा वर्गोत्तम में हो और चतुर्थ, सप्तम तथा दशम में स्थित ग्रह (ऊपर किये गये विवेचन के अनुसार चार या अधिक) चन्द्रमा हो तो ऊपर (१) में जो कहा गया है, वही फल।

अन्य आचार्यों के वचन दिये जाते हैं:—

बृहत्प्राजापत्यः

लग्ने वर्गोत्तमांशस्थे दृश्यमाने नभश्चरैः।
चतुर्भिः पञ्चभिः षड्भिरपि चेति द्विविंशतिः॥
चन्द्रे च तादृशे चेत्थं राजयोगान्समासतः।
जानीहि भोः सौम्य चतुश्चत्वारिंशदिदं च ते॥
वक्ष्यामि लग्नयोगेषु संशयः स्यात्तवान्यथा।
चन्द्रः पश्यतु कामं स द्रष्टृत्वेन न गम्यते॥

माण्डव्यः

विलग्नभवनं गते बलयुते च वर्गोत्तमे
चतुःप्रभृतिभिर्ग्रहैः शशिनि वा समालोकिते।
स संभवति पार्थिवः खलु कृपाणपाणी रणे
कदाचिदपि वीक्षिते रिपुजनो न यस्याननम्।

सारावली अध्याय ३५ का श्लोक ६ है:—

गणोत्तमे लग्ननवांशकोद्गतो निशाकरश्चापि गणोऽत्तमेऽथवा।
चतुर्ग्रहैश्चन्द्रविवर्जितैस्तदा निरीक्षितः स्यादधमोद्भवो नृपः॥

जातकाभरण—

वर्गोत्तमेऽमृतकरे यदि वा शरीरे संवीक्षिते च चतुरादिभिरिन्दुहीनैः।
द्वाविंशतिप्रभृतयः खलु संभवन्ति योगाः समुद्रवलयक्षितिपालकानाम् ॥
गणोत्तमे लग्ननवांशकोद्गमे निशाकरश्चापि गणोत्तमेऽपि वा।
चतुर्ग्रहैश्चन्द्रविवर्जितैस्तदा निरीक्षितः स्यादधमोद्भवो नृपः ॥

देखिये भावार्थबोधिनी फलदीपिका का पृष्ठ १६५। सारावली तथा फलदीपिका का श्लोक प्रायः एक ही है।

प्रतीत होता है, इन सब ग्रंथकारों का आधार बृहज्जातक अध्याय ११ का श्लोक ३ है:—

वर्गोत्तमगते लग्ने चन्द्रे वा चन्द्रवर्जिते।
चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपा द्वाविंशति स्मृताः ॥

यदि चार ग्रह देखें, यदि पाँच ग्रह देखें, यदि छः ग्रह देखें इस प्रकार वर्गोत्तम लग्न के द्रष्टा ग्रहों के भेद से २२ योग हुए। इसी प्रकार वर्गोत्तम चन्द्र को ४, ५, या ६ ग्रहों के २२ योग हुए। दोनों प्रकार के योग मिलाकर ४४ हुए। यदि मेष वर्गोत्तम, वृष वर्गोत्तम आदि १२ राशियों के भेद से प्रत्येक ४४ योग के १२ भेद किये जावें तो ५२८ भेद हुए।

अन्य आचार्यों ने केवल यह लिखा है कि वर्गोत्तम लग्न को देखें। शनि एकादश में बैठकर भी लग्न को देख सकता है। बृहस्पति पंचम या नवम में भी बैठकर लग्न को देख सकता है। परन्तु जातक पारिजातकार ने द्रष्टा ग्रहों के स्थान को सीमित कर दिया है कि द्रष्टा ग्रह चतुर्थ, सप्तम या दशम में बैठकर लग्न को देखें। केन्द्रस्थ ग्रही बली होता है। इस कारण द्रष्टा ग्रह भी बली होना चाहिये यह अभिप्रेत है ॥५॥

अश्विन्यामुदयस्थिते भृगुसुते सर्वग्रहैरीक्षिते
जातो राजकुलाग्रजो रिपुकुलध्वंसी बहुस्त्रीरतः।
हित्वा नीचनवांशमम्बरचरैस्त्र्याद्यैः स्वभागान्वितै-
रेको लग्नगतो यदि क्षितिपतिः पञ्चादिकैर्वित्तवान् ॥ ६ ॥

इस श्लोक में ३ योग कहे गये हैं:—

(१) यदि अश्विनी नक्षत्र में लग्न में शुक्र हो, उसको सब ग्रह देखते हों अपने शत्रुओं का नाश करने वाला, अनेक रमणियों से विलास करने वाला महाराजा होता है। यहाँ, यह शंका होती है कि सूर्य से ४७

अंश के अन्दर ही शुक्र होता है, बुध सूर्य से २८ अंश से अधिक दूर नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में अधिक से अधिक एक चरण दृष्टि सूर्य और बुध की लग्न पर हो सकती है और सम्प्रदायानुसार योगों में पूर्ण दृष्टि ही फलद होती है।

जातकादेश में (देखिये जातकादेशमार्गचन्द्रिका पृष्ठ १२२) भी कहा है:—

अश्विन्यां लग्नगः शुक्रः सर्वग्रहनिरीक्षितः।
करोति पृथिवीपालं निर्जितारातिमण्डलम् ॥

फलदीपिका में भी (देखिये भावार्थबोधिनी, पृष्ठ १६७) यह कहा गया है:—

अश्विन्यामुदयगतो भृगुर्ग्रहेन्द्रै-
र्दृष्टश्चेज्जनयति भूपतिं जितारिम्।

सारावली अध्याय ३५, श्लोक १४९ के अनुसार कृत्तिका, रेवती, स्वाती तथा पुष्य में भी शुक्र की स्थिति प्रशस्त मानी गयी है। पूर्व श्लोक (सारावली के १४८वें श्लोक) के संदर्भ में यहाँ लग्नगत शुक्र का प्रसंग है।

कृत्तिका रेवती स्वाती पुष्यस्थायी भृगोः सुतः।
करोति भूभुजां नाथमश्विन्यामपि संस्थितः ॥

(२) यदि नीच नवांश के अतिरिक्त अन्य नवांश स्थित (शब्दार्थ नवांश है लेकिन अभिप्रेत राशि है) होते हुए प्रत्युत अपने भाग में तीन या अधिक ग्रह हों, और उनमें एक लग्न में हो तो क्षितिपति राजा हो।

(३) ऊपर (२) में जो तीन ग्रहों के विषय में कहा गया है, वैसे यदि पाँच ग्रह हों, उनमें एक लग्न में हो तो धनी हो।

हमारे विचार से मूल श्लोक में एक स्थान पर लिखा है नीच नवांश के अतिरिक्त नवांश में हों और पुनः लिखते हैं कि यह तीन ग्रह अपने भाग में हों। भाग का अर्थ नवांश होना चाहिए, परन्तु यदि यहाँ नवांश—यह अर्थ लेते हैं तो पुनरुक्ति दोष हो जाता है–ग्रह अपने नवांश में हो यह कहने से ही स्पष्ट हो जाता है कि नीच नवांश में न हो। अन्य आचार्यों ने भी यह योग कहा है कि ग्रह अपनी उच्च या स्वराशि में हो तथा नीच नवांश में न हो, तभी राजयोग कारक होता है। इसीलिए 'भाग' से राशि अभिप्रेत है, यह हमने ऊपर लिखा है। अन्य ग्रंथकारों का मत अवलोकन कीजिए :—

देखिए जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका) पृष्ठ १२४।

नीचांशकान् परित्यज्य व्यादिक्षत्रोच्चसंस्थितः।
तेषामेको विलग्नस्थः कुर्वीत पृथिवीपतिम् ॥

बृहत्प्राजापत्यः

सर्वैस्त्र्याद्यैः स्वतुंगस्थैः सर्वैः स्वक्षेत्रगैरत।
सर्वैर्वा स्वत्रिकोणस्थैर्नृपः स्यान्नृपवंशजः॥
पंचादिभिस्तथा भूतैर्ग्रहैरन्योऽपि नान्यथा।
द्वाभ्यां चतुर्भिरेतैः स्युरुभये धनिनः परम्॥

तथा च।

पंचादिभिर्बलोपेतैः स्वगृहस्थैर्नभश्चरैः।
अस्तु पृथ्वीपतिः स्याच्चेद्बलयुक्तै रतावलैः।
सप्तभिस्तादृशैः खेटैर्नृपो भवति निश्चयात्॥

बृहज्जातक

कुलसमकुलमुख्यबन्धुपूज्या धनिसुखिभोगिनृपः स्वभैकवृद्ध्या।
परविभवसुहृत्स्वबन्धुपोष्या गणपबलेशनृपाश्च मित्रभेषु॥

(व्याख्या के लिए जातकादेशमार्गचन्द्रिका पृष्ठ १३३)। मंत्रेश्वर के मत के लिए देखिए भावार्थबोधिनी फलदीपिका पृष्ठ १६३।

होरासार अध्याय २०, श्लोक के अनुसार यदि मंगल अश्विनी अनुराधा या श्रविष्ठा में हो और लग्न या दशम में हो तथा सूर्य तुला में न हो तो राजा होता है :—

अश्विन्यनुराधासु स्थितः श्रविष्ठासु पार्थिवं भौमः।
कुरुते दशमोपगते लग्नस्थे वा रवौ न नीचस्थे॥६॥

शुक्रेऽरिनीचमपहाय कुटुम्बसंस्थे
लग्नेश्वरे बलयुते पृथिवीपतिः स्यात्।
चन्द्रेऽतिमित्रनिजभागगते निशायां
शुक्रेक्षिते नृपतिरन्यविलोकहीने॥ ७॥

इसमें दो योग कहे गये हैं :—

(१) शुक्र यदि अपनी नीच तथा शत्रु राशि के अतिरिक्त किसी राशि में द्वितीय स्थान में हो और लग्नेश बलवान् हो तो पृथ्वीपति हो।

(२) यदि रात्रि का जन्म हो, चन्द्रमा अपने या अपने अधिमित्र के नवांश में हो, शुक्र से दृष्ट हो, अन्य ग्रहों से दृष्ट न हो, तो नृपति हो।

इन योगों में शुक्र, लग्नेश, चन्द्रमा के बलाबल के अनुसार तारतम्य होगा यह सामान्य बुद्धि से समझना चाहिए।

फलदीपिका

> नीचार्यो गृहमपहाय वित्तसंस्थो
> लग्नेशः सह कविना बली च भूपम् ॥

(फलदीपिका, पृष्ठ १६७) सारावली अध्याय ३५, श्लोक ११२ में कल्याण वर्मा कहते हैं :—

> अधिमित्रांशगश्चन्द्रो दृष्टो दानवमंत्रिणा।
> अनिशं कुरुते लक्ष्मीस्वामिनं भूपतिं नरम् ॥

जातकाभरण

> नक्षत्रनाथोऽप्यधिमित्रभागे शुक्रेण दृष्टो नृपतिं करोति।
> स्वांशाधिमित्रांशगतोऽथवा स्याज्जीवेन दृष्टः कुरुते नृपालम् ॥

किन्तु वराहमिहिर के अनुसार चन्द्र यदि अपने या अपने अधिमित्र के नवांश में हो और दिन में जन्म हो तथा चंद्रमा बृहस्पति से दृष्ट हो या रात्रि का जन्म हो और चन्द्रमा शुक्र से दृष्ट हो तो जातक धनी और सुखी होता है।

> अहनि निशि च चन्द्रे स्वेऽधिमित्रांशके वा।
> सुरगुरुसितदृष्टे भोगवानर्थवान् स्यात् ॥

इस सम्बन्ध में देखिए जातकादेशमार्गचन्द्रिका, पृष्ठ १२३ तथा भावार्थ-बोधिनी फलदीपिका, पृष्ठ ७४ ॥७॥

> **मीने मीननवांशके भृगुसुते लग्नस्थिते भूपतिः**
> **स्वोच्चे लग्नगृहाधिपे बलयुते राजा शशाङ्केक्षिते।**
> **लग्नस्वामिनि तुङ्गमन्दिरगते नीचारिभागं विना**
> **केन्द्रस्थानगते नभोगवियुते जातो महीपालकः ॥ ८ ॥**

इसमें तीन राजयोग कहे गए हैं :—

(१) यदि मीन राशि मीन नवांश का शुक्र लग्न में हो (हमारे विचार से लग्न तथा शुक्र दोनों वर्गोत्तम होने चाहिएं) तो भूपति हो।

(२) यदि लग्नेश अपनी उच्च राशि में बलवान् हो (अर्थात् नीच या शत्रु राशि का न हो, अस्त न हो, अच्छे भाव में हो) और चन्द्रमा से दृष्ट हो (मूल में चन्द्रमा के बली होने का आदेश नहीं किया गया है कि पूर्ण शुभ फल तभी होगा जब चन्द्रमा को पक्ष बल होगा तथा राशि, नवांश में भी शुभ स्थिति होगी) तो राजा हो।

(३) लग्नेश अपनी उच्च राशि में हो, अपने नीच या शत्रु नवांश में न हो, और लग्न से केन्द्र में हो तथा किसी ग्रह से युत न हो तो महीपालक (भूपति) होता है।

फलदीपिका

मीने नवांशके लग्ने शुक्रे जातो नृपो भवेत्।

सारावली के अनुसार यदि लग्नेश उच्च का होकर चन्द्रमा को देखे तो भी राजयोग होता है। (अध्याय ३५, श्लोक ११०)।

लग्नाधिपति स्वोच्चे पश्यन्मगलाञ्छनं कुरुते।
बहुगजतुरगबलौघैः क्षपितविपक्षं महाविभवम्॥

इस श्लोक के उत्तरार्द्ध में जो योग कहा है, उससे मिलता जुलता, इसी अध्याय में आगे श्लोक ४८ में भी कहा है॥८॥

भाग्यस्थे निजतुङ्गमित्रभवने सम्पूर्णगात्रे विधौ
लग्नादास्पदवित्तराशिगतयोः शन्यारयोर्भूपतिः।
चन्द्रे पूर्णकलान्विते बलयुते लग्नं विना केन्द्रगे
दृष्टे दानवमन्त्रिणा च गुरुणा राजा महीदानकृत॥ ९॥

इसमें दो योग कहे हैं :—

(१) यदि पूर्ण चन्द्र अपनी उच्च राशि या मित्र राशि में स्थित होकर लग्न से नवम भाव में हो तथा लग्न से दशम एवं द्वितीय स्थान में शनि और मंगल हों तो भूपति हो। (यहाँ क्रमानुसार दशम में शनि, द्वितीय में मंगल इसका उल्लेख नहीं है। इसलिए एक टीकाकार ने, अपने उदाहरण में द्वितीय में शनि, दशम में मंगल दिखाया है, परन्तु हमारे विचार से, मूल को दृष्टि में रखते हुए शनि को दशम में, मंगल को द्वितीय में लेना चाहिए।)

होरासार अध्याय २०, श्लोक १२ में कहा है :—

सम्पूर्णचन्द्रो भाग्यस्थो जातो राजा भविष्यति।

(२) यदि पूर्ण चन्द्र, बलवान् होकर (अर्थात् नीच, शत्रु राशि या नवांश

का न हो, शुभ दृष्ट हो) लग्न के अतिरिक्त किसी केन्द्र में हो और बृहस्पति तथा शुक्र से दृष्ट हो तो भूमि दान करने वाला हो।

९(१)

९(२)
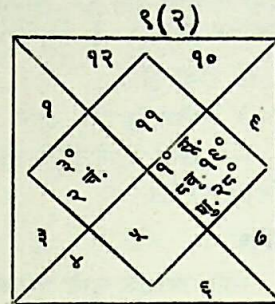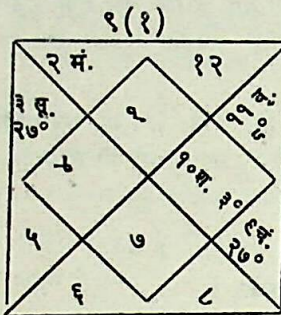
देखिए जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका) पृष्ठ १२८-१२९ तथा भावार्थबोधिनी फलदीपिका पृष्ठ १६७। सर्वार्थचिन्तामणि में लग्न के अतिरिक्त केन्द्रस्थ चन्द्र पर, गुरु और शुक्र की दृष्टि भी आवश्यक मानी है।

निशाकरे केन्द्रगते विलग्ने त्यक्त्वा त्रिकोणे यदि जीवदृष्टे।
शुक्रेण दृष्टे बलपूर्णयुक्ते जातो नरो भूपतिभाग्यतुल्यः ॥

सारावली अध्याय ३५ का १०७वाँ श्लोक है :—

लग्नं विहाय केन्द्रे सकलकलापूरितो निशानाथः।
विदधाति महीपालं विक्रमधनवाहनोपेतम् ॥

सम्पूर्ण चन्द्र की बहुत महिमा कही गयी है :—सारावली अध्याय ३५, श्लोक ६ में कहा है :—

न्यूनोऽपि कुमुदबन्धुः स्वोच्चस्थः पार्थिवं करोति नरम्।
किं पुनरखण्डमण्डलकरनिकरप्रकटितदिगन्तः ॥

मंत्रेश्वर का मत 'न्यूनोऽपि कुमुदबन्धुः' के विरुद्ध है। देखिए भावार्थ-बोधिनी फलदीपिका पृष्ठ ८६-८७ : पृष्ठ ९०-९१ (उसी पुस्तक) पर कहा गया है 'चान्द्रं बलं तु निखिलग्रहवीर्यबीजम्' अर्थात् चन्द्रमा बलवान् रहने से अन्य ग्रह भी शुभ फल दिखाते हैं, इस कारण चन्द्रमा सब ग्रहों की शक्ति (वीर्य) का मूल (बीज) है ॥९॥

एकस्मिन्परमोच्चगेऽतिसुहृदा दृष्टे यदि क्ष्मापति-
स्तत्तुल्यो भृगुनन्दने बलयुते लाभेऽथवा रिःफगे।
द्वित्रिव्योमचरेषु तुङ्गगृहगेष्विन्दौ कुलीरे स्थिते
लग्ने पूर्णबलान्विते नरपतिः सर्वत्र पूज्यो भवेत् ॥ १० ॥

इस श्लोक में तीन योग कहे गये हैं :—

(१) यदि एक भी ग्रह परमोच्च में हो, उसको यदि उसका अधिमित्र ग्रह देखता हो तो भूपति (राजा) हो। कौनसा ग्रह किस राशि में किस अंश पर परमोच्च होता है, इसके लिए देखिए अध्याय १, श्लोक २१। अधिमित्र कब कौनसा ग्रह होता है, इसके लिए देखिए अध्याय २, श्लोक ४२-४६।

(२) बलवान् शुक्र यदि लग्न से ग्यारहवें या बारहवें घर में हो तो ऊपर (१) में जो फल कहा गया है, वही फल। पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है कि बारहवें घर में, किसी भी ग्रह की स्थिति अनिष्ट समझी जाती है, किन्तु शुक्र की स्थिति बारहवें घर में भी इष्ट है।

होरासार अध्याय २०, श्लोक २४ में कहा है :—

लाभे व्यये वा भृगुजे बलान्विते।
देवेन्द्रतुल्यो नृपतिः प्रजायते ॥

(३) यदि लग्न पूर्ण बली हो (अर्थात् लग्नेश पूर्ण बली हो, लग्न शुभ ग्रह तथा अपने स्वामी से युत या दृष्ट हो तथा पापग्रहों से युत या दृष्ट न हो), चन्द्रमा अपनी राशि कर्क में हो, तथा दो या तीन ग्रह अपनी उच्च राशि में हों तो सर्वत्र पूज्य नरपति (राजा) हो।

बृहत्प्राजापत्य

त्रिभिर्ग्रहैश्चतुर्भिर्वा स्वोच्चस्थैर्नृपवंशजः।
नृपः स्यात् पञ्चभिरन्यवंशजातोऽपि मानवः ॥

बृहज्जातक

द्व्येकाश्रितेषु तथैकतमे विलग्ने
स्वक्षेत्रगे शशिनि षोडश भूमिपाः स्युः ॥

सारावली

एक एव खगः स्वोच्चे वर्गोत्तमगतो यदि।
बलवान् मित्रसंदृष्ट करोति पृथिवीपतिम् ॥

फलदीपिका

एकोऽप्युच्चक्षेत्रगो मित्रदृष्टः।
कुर्याद् भूपं मित्रयोगाद् धनाढ्यम् ॥१०॥

सर्वे चोपचयस्थिताः शुभखगाः पापा विलग्नस्थिता
मानस्था यदि वा जितारिनिचयः क्रूरो महीपालकः।

भानौ सप्तमगे निशाकरयुते तुङ्गादिवर्गस्थिते
सौम्यासौम्यनिरीक्षितेऽतिचपलो राजाऽथवा तत्समः ॥११॥

इस श्लोक में दो योग कहे गए हैं :—

(१) जिसकी जन्मकुंडली में सब शुभ ग्रह उपचय (लग्न से ३, ६, १०, ११) में हों, पापग्रह लग्न या दशम में हों, वह अपने शत्रुओं को जीतने वाला, क्रूर, राजा होता है। एक पुस्तक में प्रथम चरण का पाठान्तर है 'सर्वे चोपचयस्थिताः खलखगाः सौम्या विलग्नस्थिताः'। तब अर्थ होगा 'यदि सब पापग्रह उपचय में हों और सब शुभ ग्रह लग्न या दशम में हों।'

होरासार अध्याय २० श्लोक २३ में कहा है कि यदि उपचय में सौम्य ग्रह हों और क्रूर ग्रह लग्न तथा दशम में हों तो राजा होता है :—

उपचयसंस्थैः सौम्यैः क्रूरैः लग्नाश्रितैः खमध्यं वा।
जातो भवत्यवश्यं धरणीश्वरवन्दितो नयज्ञश्च॥

(२) यदि लग्न में चन्द्रमा सहित सूर्य हो और सूर्य अपने उच्च आदि वर्गों में हो, और उसको शुभ तथा पाप दोनों प्रकार के ग्रह देखें तो अतिचपल राजा, या उसके समान हो।

होरासार के अध्याय २० में कहा है :—

दिवाकरे सप्तमगे सहेन्दुना चलस्वभावो नृपतिः प्रजायते।

(मुद्रित पुस्तक में उपर्युक्त श्लोक का शेष भाग लुप्त है।)

माण्डव्यजातक का श्लोक है :—

सकलसौम्यखगाश्च निजोच्चगास्तनुधनात्मजसौख्यगताः मलाः।
अरिपराक्रमलाभगताः खला विजयते जगतीं परमायुषः॥

सारावली अध्याय ३५ के श्लोक १५-१६ निम्नलिखित हैं :—

कुजे विलग्ने च शशी यदाऽस्ते स्फटांशुसंभारविराजितांगः।
राजा तदा शत्रुभिरप्रधृष्यो वेदार्थविद् हेतुशतानुभावैः॥

यह योग इस संदर्भ का नहीं है। केवल नीचे लिखे श्लोक का पूर्वापर प्रसंग समझने के लिए दिया गया है। आगे का सारावली का श्लोक है :—

करोत्युत्कृष्टोद्यद्दिनकृदमृताभीशुसहितः
स्थितस्तादृग्रूपं सकलनयनानन्दजननः।

अपूर्वोऽयं स्मृत्या नयनजलसिक्तोऽपि सततं
रिपुस्त्रीशोकाग्निर्ज्वलति हृदयेऽतीव सुतराम् ॥

जातकपरिजात में सप्तम में सूर्य चन्द्र कहे गए हैं। सारावली उद्यत्–उदय होते हुए–अर्थात् लग्न में ॥११॥

चापाजसिंहभवनोदयगे धराजे
मित्रेक्षिते निजबलार्जितराज्यकर्ता ।
दुश्चिक्यधर्मसुतगा रविचन्द्रजीवा
वीर्यान्विता यदि कुबेरसमो नृपालः ॥ १२ ॥

इसमें दो योग कहे गये हैं :—

(१) यदि मेष, सिंह या धनु में लग्न में मंगल हो और उसको मंगल का मित्र देखता हो, अपनी भुजाओं के पराक्रम से राज्य प्राप्त कर राज्य करता है। (इस सम्बन्ध में मंत्रेश्वर के मत के लिए देखिए भावार्थफलबोधिनी फलदीपिका पृष्ठ १६८)।

होरासार अध्याय २० श्लोक भी इस योग का उल्लेख करता है :—

चापाजसिंहराशिषु लग्नस्थो महीपालम् ।
जनयति च मित्रदृष्टः स्वबाहुबलर्निर्जितारिबलपक्षम् ॥

(२) यदि सूर्य, चन्द्र तथा बृहस्पति (क्रम से) लग्न से तृतीय, नवम तथा पंचम में हों और यह तीनों ग्रह बलवान् हों तो कुबेर के समान राजा हो।

सारावली के अध्याय ३५, श्लोक १६८ के अनुसार यदि मंगल से तृतीय सूर्य, मंगल से नवम सूर्य, मंगल से पंचम में बृहस्पति हो तो उपरोक्त फल होता है।

जीवनिशाकरसूर्याः पंचमनवमतृतीयगा वक्रात् ।
यदि भवति तदा राजा कुबेरतुल्यो धनेनासौ ॥

होरासार अध्याय २० के श्लोक २० में यही (जो सारावली में कहा है) श्लोक है—

जीवनिशाकरसूर्याः पञ्चमदुश्चिक्यधर्मगा वक्रात् ।
यदि भवति तदा राजा कुबेरतुल्यो धनेनासौ ॥१२॥

नीचङ्गतो जन्मनि यो ग्रहः स्यात्तद्राशिनाथोऽपि तदुच्चनाथः ।
स चन्द्रलग्नाद्यपि केन्द्रवर्ती राजा भवेद्धार्मिकचक्रवर्ती ।। १३ ।।

जन्म में जो ग्रह अपनी नीच राशि में हो—उस नीच राशि का स्वामी और उसका उच्च नाथ भी यदि चन्द्रमा से केन्द्र में हों तो धार्मिक चक्रवर्ती राजा होता है।

यहाँ तीन का उल्लेख है (i) नीच ग्रह जिस राशि में नीच ग्रह है उसका स्वामी, (ii) उसका उच्च नाथ। (i) (ii) का अर्थ स्पष्ट है। (ii) में 'उसका'–क्या अर्थ है? उच्चनाथ का क्या अर्थ है? मान लीजिए शनि अपनी नीच राशि में है। अब शनि का उच्चनाथ लिया जावे, मेष का उच्चनाथ ? मूल में तत् शब्द से दोनों का—ग्रह का तथा राशि का बोध हो सकता है। यदि राशि का तत् से अर्थ लिया जावे तो मेष का उच्चनाथ–मेष में जो ग्रह उच्च का होता है–अर्थात् सूर्य होगा। यदि तत् से नीचस्य ग्रह शनि लिया जावे तो शनि का उच्चनाथ, शनि जिसमें उच्च होता है–तुला, उसका स्वामी शुक्र होगा। मूल में अपि शब्द आया है। हमारे विचार से राशि तथा उच्चनाथ दोनों को चन्द्रमा से केन्द्र में होना चाहिए। तभी वास्तविक नीच भंग होगा। कोई-कोई दैवज्ञ यह अर्थ लेते हैं कि दोनों (राशिनाथ उच्चनाथ) में से कोई भी चन्द्रमा से केन्द्र में हों तो नीच भंग हो जाता है। मंत्रेश्वर ने फलदीपिका में नीच भंग के ५ श्लोक दिए हैं। पूर्ण विवेचन के लिए देखिए भावार्थबोधिनी फलदीपिका पृष्ठ १७६-१७९।

जातकाभरण के मत से राशिनाथ तथा उच्चनाथ दोनों को केन्द्र में होना चाहिए। परन्तु ढुंढिराज ने अपने उपर्युक्त श्लोक में लग्न से केन्द्र में होना लिखा है :—

चेत् खेचरो नीचगृहं प्रयातस्तदीश्वरश्चापि तदुच्चनाथः ।
केन्द्रस्थितौ तौ भवतः प्रसूतौ प्रकीर्तितौ भूपतिसंभवाय ।।१३।।

नीचस्थितग्रहनवांशपतौ त्रिकोणे
केन्द्रेऽथवा चरग्रहे यदि जन्मलग्ने ।
तद्भावपे चरगृहांशसमन्विते वा
जातो महीपतिरतिप्रबलोऽथवा स्यात् ।। १४ ।।

यदि कोई ग्रह अपनी नीच राशि में हो और उस ग्रह का नवांश पति (जिस नवांश में नीच ग्रह है, उस नवांश का स्वामी) यदि जन्म लग्न से केन्द्र या त्रिकोण

हो, और (i) जन्म लग्न चर, (१, ४, ७, १०) हो या (ii) जन्म लग्न का स्वामी चर राशि या चर नवांश में हो, तो जातक अति प्रबल राजा होता है।

सर्वार्थचिन्तामणि में कहा है :—

नीचोनवांशनाथस्तु खेटः केन्द्रत्रिकोणगः।
चरलग्ने तदीशे तु चरांशादौ नृपो भवेत् ॥१४॥

मानस्थानपतौ पराभवगते पारावतांशेऽथवा
स्वोच्चस्वर्क्षसुहृन्नवांशकगते राजाधिराजो भवेत्।
लग्ने नीचगृहे पुरन्दरगुरौ रन्ध्रे सपापग्रहे
तद्राश्यंशसमन्विते यदि तदा राजाधिराजो भवेत् ॥ १५ ॥

इस श्लोक में दो योग कहे गए हैं :—

(१) यदि दशम स्थान का स्वामी पारावतांश में हो (पारावतांश के लिए देखिए अध्याय १, श्लोक ४६) अथवा अपने उच्च, स्व या मित्र नवांश में हो तो राजाधिराज हो। यदि ग्रह अपने छः वर्गों में—विशेष कर राशि, द्रेष्काण तथा नवांश में—हो तो बलवान् होता है—इसे पारावतांश कहते हैं। परन्तु एक ही ग्रह दशम तथा अष्टम का स्वामी नहीं हो सकता। न दशमेश अष्टम में होकर अपने द्रेष्काण में हो सकता है। तब केवल अन्य छः स्वकीय वर्गों में हो सकता है। ऐसी स्थिति में क्या अपने (राशि तथा द्रेष्काण के अतिरिक्त अन्य) छः वर्गों में होने मात्र से ग्रह इतना बली हो सकता है कि जातक को राजाधिराज बना दे ? शनि के अतिरिक्त, यदि दशमेश अष्टम में हो तो दशम को केवल एक चरण दृष्टि से देखेगा। इसी प्रकार क्या केवल नवांश (उच्च स्व या मित्र नवांश) में होने से ग्रह इतना बलवान् हो जावेगा कि उपर्युक्त विशिष्ट फल करे ? हमें संदेह है।

(२) यदि लग्न में नीच का बृहस्पति हो, अष्टम में पापग्रह अपनी राशि और अंश में हो, तो भी राजाधिराज हो। किसी-किसी टीकाकार ने 'तद्राश्यंश' का अर्थ किया है कि अष्टमस्थ ग्रह लग्न नवांश से ६४वें नवांश में हो। परन्तु हमारे विचार से उपर्युक्त योग में शुभकारिता तभी होगी जब अष्टमस्थ, अष्टमेश को माने और वह अष्टमेश न केवल अपनी राशि अपितु अपने नवांश में हो।

उदाहरण कुंडली देखिए। इस योग में रहस्य क्या है ? अष्टमेश अपनी राशि, अपने नवांश में होने से बहुत बलवान् हो गया है। सूर्य का गुण केवल

भावाधिपत्व तक सीमित नहीं है। सूर्य प्रथम, नवम तथा दशम भावों का कारक भी होता है। इस कारण कारक बलवान् होने से, इन भावों को बल प्राप्त हुआ। और सूर्य सिंह में होने से मकरस्थ बृहस्पति वक्री होकर बलवान् हो गया। लग्न में होने से बृहस्पति को केन्द्र बल तथा दिग् बल तो प्राप्त है ही। यदि किसी भी पापग्रह को अष्टम भाव में लग्न नवांश से ६४वें नवांश में मान लेंगे तो न अष्टमस्थ ग्रह बलवान् होगा न बृहस्पति को चेष्टाबल प्राप्त होगा। यह विद्वानों के ध्यान देने योग्य विषय है ॥१५॥
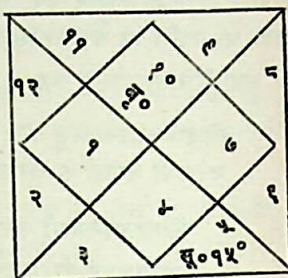
> जीवस्य व्ययगे शनौ सहजपे लाभेऽथवा भास्करे
> रिःफे लग्नपतौ तु निर्जरगुरावुर्वीशराजो भवेत्।
> भाग्येशस्थनवांशपे तनयगे बन्धुस्थिते वा नृपो
> दृष्टे वा शशिजे सुरेन्द्रगुरुणा युक्ते स राजप्रियः ॥ १६ ॥

इसमें ३ योग कहे गए हैं :—

(१) यदि बृहस्पति लग्नेश होकर व्यय (लग्न से बारहवें घर) में हो, बृहस्पति से व्यय (अर्थात् लग्न से ग्यारहवें घर) में तृतीय का मालिक होकर शनि स्थित हो या सूर्य हो तो पृथ्वी का राजा हो। यह योग धनु लग्न के लिए ठीक बैठता है। क्योंकि बृहस्पति लग्नेश होगा और तृतीयेश शनि होगा। दूसरा
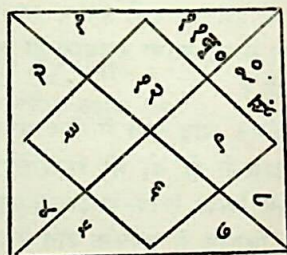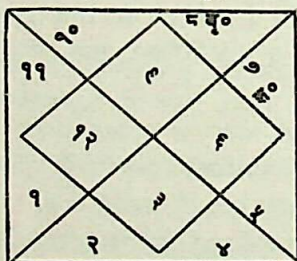
विकल्प है कि सूर्य लाभ में हो। वह मीन लग्न में भी घटित हो सकता है सर्वार्थचिन्तामणि में भी कहा है :—

> गुरौ व्यये रवौ लाभे शनौ वा विक्रमाधिपे।
> गुरौ व्यये विलग्नेशे राजराजो भवेन्नरः ॥

(२) भाग्येश जिस नवांश में हो उस नवांश का स्वामी लग्न से चतुर्थ या पञ्चम में हो तो राजा हो। सर्वार्थचिन्तामणि में भी लिखा है :—

भाग्याधिपसमायुक्ते नवांशाधिपतौ सुखे।
पुत्रस्थानं गते वाऽपि नृपश्रेष्ठो भवेन्नरः॥

(३) बुध बृहस्पति से युत या दृष्ट हो तो राजा का प्रिय होता है। होरासार अध्याय २० का ७वां श्लोक है :—

दिवौकसां नृपं मंत्री कुर्यात् पश्यन् बुधं सदा।
शिरसा शासनं तस्य धारयन्ति नृपालकाः॥१६॥

भाग्येशेन निरीक्षिते शशिसुते केन्द्रस्थिते भूभुजां
तुल्यत्वं समुपैति जातमनुजो लग्नस्थिते वाक्पतौ।
केन्द्रे वा यदि कोणगे रविसुते मूलत्रिकोणोच्चगे
लाभेशेन निरीक्षिते बलयुते भूपालतुल्यो भवेत्॥ १७॥

इसमें २ योग कहे गये हैं :—

(१) यदि लग्न में बृहस्पति हो, और केन्द्र में बुध भाग्येश से दृष्ट हो तो राजा के समान (वैभवशाली) हो।

(२) यदि लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में—अपनी उच्च या मूल त्रिकोण राशि का शनि हो (कुंभ के ०° से २०° तक, देखिए अध्याय १, श्लोक २६) और शनि लाभेश से दृष्ट हो, बलवान् हो तो राजा के समान हो। सर्वार्थ-चिन्तामणि में कहा है :—

लग्ने गुरौ बुधे केन्द्रे भाग्यनाथेन वीक्षिते।
लग्नेशे वापि संदृष्टे नृपतुल्यो भवेन्नरः॥१७॥

लग्ने शीतकरे गुरौ सुखगते कर्मस्थिते भार्गवे
तुङ्गस्वर्क्षगते दिवाकरसुते राजाऽथवा तत्समः।
अन्त्योपान्त्यविलग्नवित्तसहजव्यापारगेहेषु वा
सौम्यव्योमचरेषु भूपतिसमो राजाधिराजप्रियः॥ १८॥

इसमें २ योग कहे गए हैं :—

(१) यदि लग्न में चन्द्रमा हो, बृहस्पति चतुर्थ में हो, दशम में शुक्र हो और शनि अपनी स्वराशि या उच्चराशि का हो तो राजा या उसके समान हो।

(२) यदि समस्त शुभ ग्रह लग्न, द्वितीय, तृतीय दशम, एकादश, द्वादश, इन घरों में हों तो भूपति के समान या राजाधिराज प्रिय हो।

१८(१)
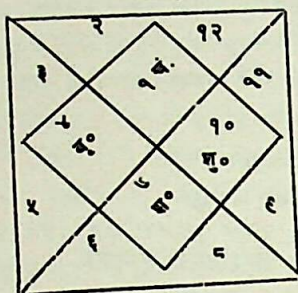
१८(२)
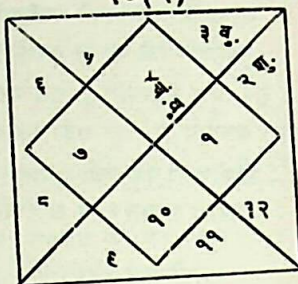
सर्वार्थचिन्तामणि

लग्ने चन्द्रे गुरौ सौख्ये कर्मगे भृगुनन्दने।
स्वोच्चस्वर्क्षस्थिते मन्दे नृपतुल्यो भवेन्नरः॥
दशमैकायगे रिःफलग्नवित्तसहोत्थगे।
ग्रहास्तिष्ठन्ति चेत्सौम्या नृपतुल्यो भवेन्नरः॥१८॥

मन्दे चोत्तमवर्गके बलयुते नीचांशवर्ज्ये गुरौ
भानौ शोभनदृष्टिभागसहिते राजप्रियस्तत्समः।
राहौ कर्मणि लाभगे रविसुते भाग्याधिपेनेक्षिते
लग्नेशे यदि नीचखेटरहिते पृथ्वीशतुल्यो भवेत्॥ १९॥

इसमें २ योग कहे गए हैं :—

(१) यदि शनि उत्तम वर्ग (उत्तम वर्ग के लिए देखिए अध्याय १, श्लोक ४५) में, बृहस्पति बलवान् हो, अपने नीच (मकर) नवांश में हो, सूर्य शुभ दृष्ट शुभ नवांश में हो तो राजा को प्रिय या उसके समान हो। मूल में 'बलयुते' शब्द आया है। वह शनि का भी विशेषण हो सकता है, बृहस्पति का भी। देहलीदीपक न्याय से यह भी अर्थ हो सकता है कि दोनों बलवान् हों।

(२) यदि राहु दशम में हो, ग्यारहवें घर में शनि हो और भाग्येश से दृष्ट हो तथा लग्नेश नीच ग्रह के साथ न हो तो पृथ्वीश के समान होता है।

१९(१)

१९(२)
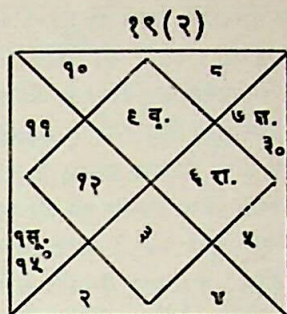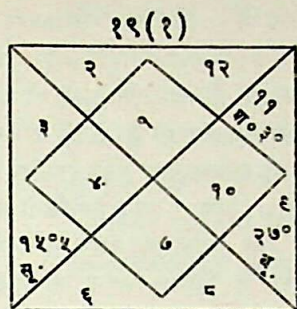
सर्वार्थचिन्तामणि :—

माने राहौ भवेन्मन्दे भाग्यनाथेन वीक्षिते ।
लग्नेशनीचखेटेनायुते नृपसमो भवेत् ॥१६॥

नीचं गता द्वित्रिचतुर्ग्रहेन्द्राः षष्ठ्यंशके शोभनभागयुक्ताः ।
स्वतुङ्गराश्यंशसमन्विता वा धरापतिर्धार्मिकचक्रवर्ती ॥ २० ॥

यदि २, ३ या ४ ग्रह अपनी नीच राशि में हों किन्तु षष्ट्यंश में शोभन भाग में हों या अपने स्वनवांश या उच्च नवांश में हों तो धार्मिक, चक्रवर्ती राजा होता है । मूल में 'स्वतुंगराश्यंश' शब्द आया है जिसके दो अर्थ हो सकते हैं–(i) अपनी उच्च राशि वाले नवांश में या (ii) अपने या अपने उच्च नवांश में ।

सर्वार्थचिन्तामणि में केवल 'अपने उच्च नवांश में' लिखा है :—

त्रयो वा द्वौ खगौ वाऽपि चत्वारो नीचसंयुताः ।
शुभषष्ट्यंशसंयुक्ताः स्वोच्चांशे वा धरापतिः ॥२०॥

लग्नात्कर्मशुभाधिपौ शुभगृहाद्व्यापारधर्मेश्वरौ
मानादास्पदभाग्यपौ च सहितावन्योन्यराशिस्थितौ ।
अन्योन्येक्षणकेन्द्रगौ धनपतेः सम्बन्धिनौ चेद्धनी
जातो यानपकायपेक्षितयुतौ बह्वर्थयानाधिपः ॥ २१ ॥

पहिले इस श्लोक का शब्दार्थ दिया जाता है, फिर व्याख्या की जायेगी । यदि लग्न से नवमेश, दशमेश या नवम स्थान से नवमेश, दशमेश (अर्थात् लग्न से पंचमेश, षष्ठेश) या दशम स्थान से नवमेश, दशमेश (अर्थात् लग्न से षष्ठेश सप्तमेश)–(i) एक साथ हों, या (ii) एक दूसरे की राशि में हों, या (iii)

एक दूसरे को देखते हों (iv) एक दूसरे के केन्द्र में हों (कतिपय टीकाकारों ने (iii) और (iv) को मिलाकर एक ही प्रकार के सम्बन्ध में (iii) और (iv) का सन्निवेश कर दिया है कि एक दूसरे से केन्द्र में होकर एक दूसरे को देखते हों, परन्तु (iii) और (iv) दो पृथक्-पृथक् के सम्बन्ध भी हो सकते हैं। परस्पर दृष्टि सम्बन्ध प्रसिद्ध है, इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं। मंत्रेश्वर ने परस्पर केन्द्र स्थिति को भी सम्बन्ध माना है। (देखिए भावार्थबोधिनी फलदीपिका पृष्ठ २०५)—यदि इनका (पहिले जो लग्न, नवम तथा दशम से नवमेश, दशमेश) कह आए हैं—यदि धनपति से (लग्न से द्वितीय स्थान के स्वामी से) सम्बन्ध हो तो धनी होता है और लग्नेश तथा चतुर्थेश से सम्बन्ध हो तो बहुत धनी और सवारियों (घोड़े, हाथी, रथ, यान आदि) का स्वामी होता है।

यद्यपि मंत्रेश्वर ने परस्पर केन्द्र स्थिति को भी सम्बन्ध माना है, परन्तु चार प्रकार के सम्बन्ध राज योग विचार में प्रसिद्ध हैं। (i) परस्पर युति—एक राशि में दो ग्रहों का होना (ii) अन्योन्याश्रय यथा 'क' ग्रह 'ख' की राशि में तथा 'ख' ग्रह 'क' की राशि में (iii) एक दूसरे पर पूर्ण दृष्टि (iv) अन्य एकतर स्थान दृष्टि सम्बन्ध। इस चतुर्थ प्रकार के सम्बन्ध के दो भेद हैं प्रथम—'क' ग्रह 'ख' ग्रह की राशि में बैठकर 'ख' को देखें। जैसा पंडित रामयत्न जी ओझा ने फलित विकास पृष्ठ १०२ पर लिखा है "एक तो एक के राशि में हो और दूसरे को देखता हो इसको साहधर्म्य सम्बन्ध कहते हैं, जैसे मंगल सिंह में और सूर्य मीन में हो।' अन्य भेद का उदाहरण श्री विनायक शास्त्री (वेताल शास्त्री) जी ने लघु पाराशरी के योगाध्याय के प्रथम श्लोक की टीका में दिया है। कहते हैं :—

अन्यतरस्थानदृष्टिसम्बन्धश्चतुर्थः सम्बन्धः। यत्रैकोऽन्यतरस्थाने तिष्ठत्यन्यतरस्तं पश्यति तत्रान्यतरस्थानदृष्टिसम्बन्धः। अत्र दृष्टिद्वारा स्वाश्रितानुग्रहेण व्यवहारसिद्धिः। यथा मिथुनलग्ने शुक्रो धनुषि दशमेशगुरो राशौ, दशमेशगुरुश्च मेषगतस्तं पश्यतीति पञ्चमेशदशमेशयोरन्यतरस्थानदृष्टिसम्बन्धः सम्बन्धः।

अर्थात् मिथुन लग्न हो, पंचमेश शुक्र बृहस्पति की राशि धनु में हो और दशमेश बृहस्पति मेष में बैठकर धनु स्थित शुक्र को देखे, तो पंचमेश दशमेश सम्बन्ध हुआ। हमने ऊपर चतुर्थ प्रकार के सम्बन्ध के दो भेद बताए हैं। दोनों में अन्तर क्या है? (१) 'क' ग्रह 'ख' ग्रह की राशि में बैठकर 'ख' को देखे। (२) 'क' ग्रह 'क' की राशि में बैठे हुए 'ख' को देखे। ज्योतिष में बारंबार यह सम्बन्ध शब्द आया है, इसलिए सम्बन्ध किसे कहते हैं, इसको हृदयस्थ कराने के लिए, सम्बन्ध की सविस्तार व्याख्या की है। अब प्रकृत विषय पर आइए।

लग्नवित्तौ स्वदुश्चिक्यौ त्रितुर्यौ तुर्य-पंचमौ ।
द्विषात्मजौ षष्ठ-मारौ स्त्री-रन्ध्रौ मृति-भाग्यकौ ॥
धर्मकर्मौ खलाभौ च रिःफ-लाभौ तनुव्ययौ ।
पुष्कलाः लाभयोगाख्यं राजभृत्यं चमूपकम् ॥
अमात्यं दारुणं कर्म राजयोगं प्रियामृतिम् ।
भाग्यव्ययं राजयोगं भूमिद्रव्यमृणव्ययम् ॥
वित्तहानिर्द्वादशैते योगा वै सर्वदा स्मृताः ।

अर्थात् (१) लग्नेश द्वितीयेश सम्बन्ध हो तो लाभ योग। (२) द्वितीयेश तृतीयेश सम्बन्ध हो तो राजभृत्य (सरकारी नौकरी)। (३) तृतीयेश चतुर्थेश सम्बन्ध हो तो चमूपक (छोटा सेना का अफसर)। (४) चतुर्थेश पंचमेश सम्बन्ध हो तो अमात्य (मंत्री)। (५) पंचमेश षष्ठेश सम्बन्ध हो तो दारुण (कठोर-क्रूर) कर्म करने वाला। (६) षष्ठेश सप्तमेश सम्बन्ध हो तो राज योग (मान, प्रतिष्ठा, उत्तम पद)। (७) सप्तमेश अष्टमेश सम्बन्ध हो तो प्रियामृतिः (पत्नी की मृत्यु)। जब दो पृथक् पृथक् ग्रह—एक सप्तम का, एक अष्टम का स्वामी हो और दोनों का सम्बन्ध हो तभी सप्तमेश अष्टमेश सम्बन्ध कहलायेगा। कर्क लग्न होने से एक ही ग्रह शनि सप्तमेश अष्टमेश होता है। इसलिये यह सप्तमेश अष्टमेश सम्बन्ध नहीं हुआ। यह नियम अन्य भावों के स्वामी को भी लागू होता है। वृश्चिक लग्न होने से शनि ही तृतीयेश चतुर्थेश हुआ इस कारण तृतीयेश चतुर्थेश सम्बन्ध नहीं कहा जा सकता। (८) अष्टमेश नवमेश सम्बन्ध हो तो भाग्य अर्थात् भाग्य का व्यय (भाग्य हानि)। (९) नवमेश दशमेश सम्बन्ध हो तो राजयोग (महती प्रतिष्ठा)। (१०) दशमेश-लाभेश (एकादशेश) सम्बन्ध हो तो लिखा है 'भूमिद्रव्य', भूमिगतद्रव्य। हमारे विचार से भूरि (अधिक) द्रव्य पाठ होना चाहिये। दशम तथा एकादश भावों का भूमि से कोई सम्बन्ध नहीं है। (११) लाभेश व्ययेश (ग्यारहवें तथा बारहवें भावों के स्वामियों का) सम्बन्ध हो तो ऋण व्यय (इस शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं, ऋण (कर्जा) करके व्यय करे या ऋण का व्यय। ऋण का व्यय शुभ अर्थ हुआ। और सामान्य नियमानुसार व्ययेश से सम्बन्ध अच्छा नहीं समझा जाता। इस कारण ऋण करके व्यय करे यह अर्थ विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है। (१२) व्ययेश लग्नेश सम्बन्ध हो तो वित्तहानि। केन्द्रेश त्रिकोणेश सम्बन्ध के विषय में देखिये हमारी लिखी सुगम-ज्योतिषप्रवेशिका पृष्ठ ११९-१२३। भावेशों के सम्बन्ध में विस्तृत आलोचना के लिये देखिये त्रिफला ज्योतिष। यदि कोई भावेश किसी अन्य

भावेश से स्थान परिवर्तन करे (जैसे लग्नेश लाभ में, लाभेश लग्न में, चतुर्थेश व्यय में और व्ययेश लग्न में) तो ६६ योग होते हैं । इनमें कौन कौन से शुभ हैं कौन कौन से अशुभ हैं । इनका विस्तृत विवेचन मंत्रेश्वर ने किया है । देखिये भावार्थबोधिनी फलदीपिका, पृष्ठ १३०-१३८ ।

पाठक अवलोकन करें कि यद्यपि जातक-पारिजातकार ने (i) लग्न से नवमेश, दशमेश (ii) भाग्य (नवम) से नवमेश दशमेश अर्थात् लग्न से पंचमेश षष्ठेश तथा (iii) राज्य (दशम स्थान) से नवमेश दशमेश (अर्थात् लग्न से षष्ठेश सप्तमेश) का सम्बन्ध राजयोग कारक कहा है, किन्तु पराशर के मत से उपर्युक्त (i) तथा (ii) राजयोग हैं, परन्तु (iii) नहीं ॥२१॥

षट्सु ग्रहेषूच्चगृहस्थितेषु राजाधिराजोऽखिलभूपतिः स्यात् ।
उच्चं गतैः पञ्चभिरिन्द्रवन्द्ये लग्नस्थिते सर्वजनावनीशः ॥ २२ ॥

इस श्लोक में २ योग कहे गये हैं:—

(१) यदि छः ग्रह उच्च हों तो समस्त पृथ्वी का स्वामी राजाधिराज हो ।

(२) यदि पांच ग्रह उच्च हों और बृहस्पति लग्न में हो सब मनुष्यों और पृथ्वी का स्वामी हो ।

अन्य ग्रंथों में या अन्य आचार्यों ने इस सम्बन्ध में क्या कहा है, इसका संक्षिप्त परिचय कराया जाता है:—

त्रिप्रभृतिभिरुच्चस्थैर्नृप-वंश-भवा भवन्ति राजानः ।
पञ्चादिभिरन्यकुलोद्भवाश्च तद्वत् त्रिकोण-गतैः ॥—लघुजातक ।
उच्चस्वत्रिकोणगैर्बलस्थैस्त्र्याद्यैर्भूपतिवंशजा नरेन्द्राः ।
पंचादिभिरन्यवंशजाता हीनैर्वित्तयुता न भूमिपालाः ॥
प्राहुर्यवनाः स्वतुंगगैः क्रूरः क्रूरमतिर्महीपतिः ।
क्रूरैस्तु न जीवशर्मणः पक्षे क्षित्यधिपः प्रजायते ॥ —बृहज्जातक ।
पापैरुच्चगतैर्जातः न भवन्ति नृपा नराः ।
किन्तु वित्तान्विता ते स्युः क्रोधिनः कलहप्रियाः ॥ —मणित्थ ।
पापैः पापमतिस्स्यात् स्वोच्चगतैर्धर्मवांस्तथा ।
व्यामिश्रैर्मिश्रमतिः पृथ्वीशो जायते मनुजः॥ —मणित्थ ।

षड्भिर्ग्रहैरुच्चसमन्वितैः स्याद्राजाधिराजो बहुदेशभर्त्ता ।
उच्चस्थितैः पंचभिरत्र राजा शक्त्यान्वितो देवगुरौ विलग्ने ॥
—सर्वार्थचिंतामणि

नभश्चराः पंचनिजोच्चसंस्था यस्य प्रसूतौ स तु सार्वभौमः ।
—जातकाभरण ।

सुखिनः प्रकृष्टकार्या राजप्रतिरूपकाश्च राजानः ।
एकद्वित्रिचतुर्भिर्जायन्तेऽतः परं द्रव्याः ॥ —कूटस्थ ।
त्रिभिर्ग्रहैश्चतुर्भिर्वा स्वोच्चस्थैर्नृपवंशजः ।
नृपः स्यात्पंचभिरन्यवंशजातोऽपि मानवः ॥ —बृहत्प्राजापत्य ।

यदि तीन या चार क्रूर ग्रह उच्च हों तो यवन मत से क्रूर नृप होता है:—

तैः क्रूरैर्भवति प्रायः क्रूरात्मान्यैस्तथाऽन्यथा ।
अशक्यो नियमः सोऽस्य कर्मभावानुरोधतः ॥

कल्याणवर्मा उच्चग्रहजनित राजयोग के विषय में–सारावली अध्याय ३५ में कहते हैं:—

स्वोच्चत्रिकोणगृहगैर्बलसंयुतैश्च
त्र्याद्यैर्नृपो भवति भूपतिवंशजातः ।
पंचादिभिर्जनपदप्रभवोऽपि सिद्धो
हीनैः क्षितीश्वरसमो नतभूमिपालः ॥
अशुभगगनवासैः स्वोच्चगैः क्रूरचेष्टं
कथयति यवनेन्द्रो भूपतिं विक्रमोत्यम् ।
नतु भवति नरेन्द्रो जीवशर्मोक्तपक्षे
भवति नृपतियोगैः सत्कृतो राष्ट्रपालः ॥

पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि उच्च ग्रह यदि नीच नवांश में हो तो उसकी उत्कृष्ट फल देने की क्षमता, सर्वथा नष्ट हो जाती है। षष्ठस्थ उच्च सूर्य गरीब बनाता है (देखिये जातकादेशमार्गचन्द्रिका पृष्ठ १२०-१२१) ॥ २२ ॥

कुम्भोदयस्थे रविजे चतुर्भिः स्वोच्चंगतैः सर्वमहीपतिः स्यात् ।
मेषोदयस्थे यदि चन्द्रपुत्रे स्वोच्चं गते देवगुरौ नृपालः ॥ २३ ॥

इस श्लोक में दो योग कहे गये हैं:—

(१) यदि कुंभ लग्न हो, लग्न में शनि हो, अन्य चार ग्रह उच्च हों तो समस्त पृथ्वी का अधिपति हो ।

(२) यदि मेष लग्न हो, लग्न में बुध हो, चतुर्थ में उच्च का बृहस्पति हो तो राजा हो ॥२३॥

चन्द्रे वृषोदयगते यदि षड्भिरन्यै-
दृष्टेऽतिबाल्यवयसि क्षितिनायकः स्यात् ।
तुङ्गस्थितैकखचरे निजमित्रयातै-
रन्यैः समेति नरपालसमानभोग्यम् ॥ २४ ॥

इस श्लोक में २ योग कहे गये हैं:—

(१) वृष लग्न हो, लग्न में चन्द्रमा हो और उसे छः ग्रह देखें तो बचपन (बाल्यावस्था) में ही राजा हो ।

(२) एक ग्रह उच्च हो, अन्य गृह स्वगृही या मित्रग्रही हों तो राजा के समान भोग भोगे ॥२४॥

वर्गोत्तमे वा यदि पुष्करांशे सारेन्दुदेवेन्द्रगुरौ नृपालः ।
कर्मस्थिते शोभनदृष्टियुक्ते सम्पूर्णगात्रे शशिनि क्षितीशः ॥ २५ ॥

इस श्लोक में दो योग कहे गये हैं:—

(१) यदि बृहस्पति, मंगल और चन्द्रमा के साथ पुष्करांश में हो वह राजा होता है । वर्गोत्तम के लिये अध्याय १ श्लोक ३४ तथा पुष्करांश के लिये अध्याय १ श्लोक ५८ ।

(२) यदि पूर्ण चन्द्र (पूर्णिमा का चन्द्रमा) दशम भाव में स्थित हो और शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो राजा हो ।

(देखिये भावार्थबोधिनी फलदीपिका पृष्ठ १६७) ॥ २५ ॥

गुरुसितयुतचन्द्रे चापगे चन्द्रसूनौ
यदि तनुगृहयाते भूमिजे कन्यकायाम् ।
मृगसुखभवनस्थे भानुपुत्रे नृपः स्या-
दतिशयबलयुक्तः सर्वभूपालपूज्यः ॥ २६ ॥

यदि तुला लग्न हो, लग्न में बुध हो, चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र धनु में हों, चतुर्थ में मकर का शनि हो और कन्या का मंगल हो तो अतिशय बलशाली राजा है, जिसका अन्य नृप पूजन करें ॥ २६ ॥
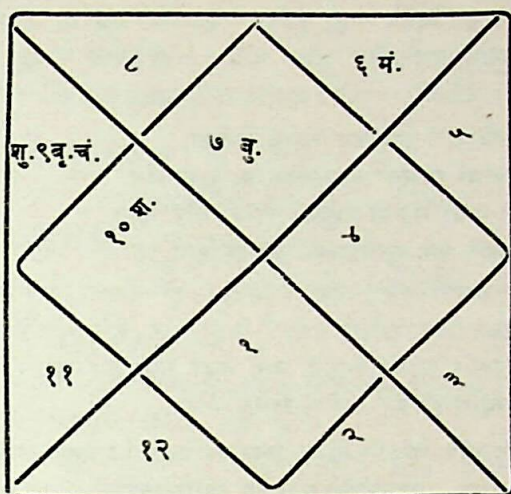
कन्यावसानयुगचापमृगाननस्थैः
सौम्येन्दुभौमगुरुभानुसुतैर्नृपालः ।
मीनोदये शशिनि पूर्णतनौ बलाढ्ये
स्वोच्चे कुजे रविसुते घटगे नरेशः ।। २७ ।।

यदि चन्द्रमा मीन में, मंगल मिथुन में, बुध कन्या में, बृहस्पति धनु में और शनि मकर में हो तो नृपाल (राजा) हो । इस श्लोक में ५ ग्रहों की—प्रत्येक की राशि का निर्देश किया गया है । भाव का निर्देश नहीं किया गया है । स्वभावतः यह योग ग्रंथकार ने पूर्व आचार्यों से लिया है । इसलिये भावनिर्देश के लिये बृहज्जातक के राजयोगाध्याय के श्लोक ६ का उत्तरार्द्ध अवलोकन कीजियेः—

मृगे मन्दे लग्ने सहजरिपुधर्मव्ययगतैः
शशांकाद्यैः ख्यातः पृथुगुणयशाः पुंगलपतिः ।।

मांडव्य ने कहा हैः—

मृगे लग्ने सौरिस्तिमियुग-गतः शीतकरणः
कुजे युग्मे नार्यां शशभृतसुतश्चापधरगः ।
गुरुर्दैत्येजार्काविभिमतगतौ चारवशतः
प्रसूतो यस्यासौ भवति नरपः शक्रसदृशः ।।

माण्डव्य ने यह विशेष कहा है कि सूर्य और शुक्र भी अपनी अभिमत (अच्छी, उपयुक्त) राशियों में होने चाहिएँ। सारावली में वही कहा है, जो बृहज्जातक में। देखिये सारावली अध्याय ३५ श्लोक १३।

मृगे मन्दे लग्ने कुमुदवनबन्धुश्च तिमिगः
तथा कन्यां त्यक्त्वा बुधभवनसंस्थः कृतनयः।
स्थितो नार्यां सौम्यो धनुषि सुरमंत्री यदि भवेत्
तदा जातो भूपः सुरपतिसमः प्राप्तमहिमा ॥

(२) मीन लग्न हो, लग्न में चन्द्रमा हो—चन्द्रमा पूर्ण तनु हो और बलाढ्य हो, मंगल उच्च राशि का मकर में हो और शनि कुंभ में हो तो राजा होता है। सारावली में भी ऐसा ही योग कहा गया है। अन्तर केवल यह है कि वहाँ सूर्य सिंह में हो यह विशेष उल्लेख है।

उदयति मीने शशिनि नरेन्द्रः सकलकलाढ्यः क्षितिसुत उच्चे।
मृगपतिसंस्थे दशशतरश्मौ घटधरगे स्याद्दिनकरपुत्रे ॥ २७॥

२७(१)

२७(२)
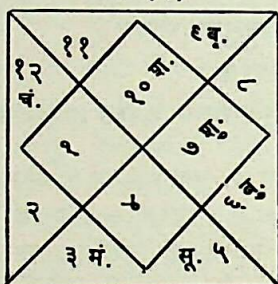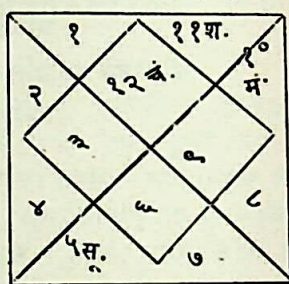
मृगोदयस्थे यदि भूकुमारे कुलीरगे चन्द्रमसि क्षितीशः।
धराजपूषामरवन्द्यमाना मृगाजकुम्भोपगता नरेशः ॥ २८ ॥

इस श्लोक में २ राजयोग कहे गये हैं:—

(१) यदि चन्द्रमा कर्क में हो, मंगल मकर में लग्न में हो तो राजा हो। सारावली अध्याय ३५ का भी १५वाँ श्लोक है:—

कुजे मृगांगे च शशी यदाऽस्ते स्फुटांशुसंभारविराजितांगः।
राजा तदा शत्रुभिरप्रधृष्यो वेदार्थविद् हेतुशतानुवादः ॥

(२) यदि मेष में सूर्य, मकर में मंगल, कुंभ में बृहस्पति हो तो राजा

हो। वराहमिहिर ने बृहस्पति के लिए लिखा है 'कुंभे कर्कटवत्' अर्थात् जैसा फल बृहस्पति का कर्क में वैसा कुंभ में ॥२८॥

लग्नाधिपेतरयुते यदि पूर्णचन्द्रे
शुक्रज्ञदेवगुरुदृष्टियुते तु राजा।
वर्गोत्तमांशसहिता गुरुशुक्रभौमाः
पापा न केन्द्रभवनोपगता नरेशः ॥२९॥

इसमें दो योग कहे गए हैं :—

(१) यदि चन्द्रमा पूर्ण हो, लग्नेश के अतिरिक्त किसी ग्रह से युत हो और चन्द्रमा को बुध, बृहस्पति देखें तो राजा हो।

(२) यदि मंगल, बृहस्पति तथा शुक्र वर्गोत्तम में हों, पापग्रह केन्द्र में न हों तो राजा हो।

सारावली के मत से कोई भी तीन या अधिक ग्रह वर्गोत्तम में हों, अशुभ ग्रह के साथ न हों, अस्त या क्षीण न हों तो राजा का जन्म होता है (अध्याय ३५ श्लोक २९)।

वर्गोत्तमे त्रिप्रभृतिग्रहेन्द्राः
केन्द्रस्थिता नोऽशुभसंयुताश्च।
नो रूक्षधूमा न विकर्णदेहाः
कुर्वन्ति राज्ञः प्रसवं प्रसन्नाः ॥ २९ ॥

शीर्षोदयेषु निखिलद्युचरेषु चन्द्रे
सौम्यग्रहेक्षणयुते कटके महीपः।
लग्नाधिपे नवमगे दशमस्थिते वा
लग्ने सुधाकरयुते पृथिवीपतिः स्यात् ॥३०॥

इसमें दो राजयोग कहे गए हैं :—

(१) यदि सब ग्रह शीर्षोदय राशियों में हों (शीर्षोदय राशियों के लिए देखिए अध्याय १ श्लोक १४ और चन्द्रमा शुभ ग्रह दृष्ट होकर कर्क में हो, तो महीप (राजा) होता है। एक टीकाकार महानुभाव ने मूल के 'ईक्षणयुते' का अर्थ किया है 'दृष्ट या युत' किन्तु ईक्षणयुत का अर्थ है दृष्टि सहित। किसी अन्य ग्रह से युत चन्द्रमा कर्क में होगा तो, कर्क शीर्षोदय राशि नहीं है, इस कारण सब ग्रह (चन्द्र के अतिरिक्त) शीर्षोदय राशियों में हो, यह प्रतिज्ञा-खंडित

हो जावेगा । तक्रकौंडिन्य न्याय से केवल चन्द्रमा का शीर्षोदय में होने का प्रतिषेध किया है । अन्य ग्रह का नहीं ।

सारावली अध्याय ३५ का श्लोक ३१ है :—

र्षोदयक्षेषु गताः समस्ताः नो चारिवर्गे स्वगृहे शशांकः ।
सौम्येक्षितोऽन्यूनकलो विलग्ने दद्यान्महीं रत्नगजाश्वपूर्णाम् ॥

(२) यदि लग्नेश नवम या दशम में हो और लग्न में चन्द्रमा हो तो पृथ्वीपति हो ॥३०॥

चापार्द्धं गतवान् सहस्रकिरणस्तत्रैव ताराधिपो
लग्ने भानुसुतेऽतिवीर्यसहिते स्वोच्चे च भूनन्दनः ।
यद्येवं भवति क्षितेरधिपतिः सन्त्यज्य शौर्यं भयाद्
दूरादेव नमन्ति तस्य रिपवो दग्धाः प्रतापाग्निना ॥३१॥

यदि सूर्य चापार्द्ध (धनु राशि का आधा) पार कर चुका हो, वहीं चन्द्रमा हो, लग्न में अति बलवान् शनि हो और उच्च का मंगल हो तो ऐसा प्रबल राजा हो कि उसकी प्रतापाग्नि से दग्ध उसके शत्रु अपने शौर्य का त्याग कर, उसे दूर से ही नमस्कार करें। दूरादेवारीणां भयजनकत्वं प्रतापः ।

लग्न में बलवान् शनि हो और उच्च का मंगल हो, इसलिए यह योग मकर लग्न वाले जातक को हो सकता है, यह निर्विवाद है। किन्तु मूल में 'चापार्द्ध गतवान्' यहां जो शब्द आए हैं, इनके अर्थ में वैमत्य है । कोई टीकाकार कहते हैं धनु के १५° पर सूर्य हो, अन्य अर्थ करते हैं कि पूर्वार्द्ध पार कर चुका हो । कुछ अन्य प्रामाणिक ग्रंथों से आचार्यों के वचन उद्धृत किए जाते हैं । वे केवल यह कहने हैं कि धनु में सूर्य चन्द्र हों। बृहज्जातक राजयोगाध्याय के श्लोक ५ में

कुजे तुंगेऽर्केन्द्वोर्धनुषि यमलग्ने च कुपतिः ।
लग्ने सौरस्तुंगे भौमश्चन्द्रादित्यौ चापं प्राप्तौ —बादरायण ।
आदित्यश्च निशाकरश्च भवतो बाणासनार्धे यदा
सार्द्धं भास्करिणा स्ववीर्यसहितः प्राप्तो मृगे मंगलः ।
प्राप्नोति प्रभवं तदा स सुकृती क्ष्मापालचूडामणिः
व्यस्यन्ति प्रतिपंथिनो रणमुखे यस्मात्कृतान्तादिव ॥ —माण्डव्य

माण्डव्य के उपरोक्त श्लोक को भट्टोत्पल ने अपनी टीका में उद्धृत करते हुए, प्रथम चरण के अन्त में बागीशराशौ यह पाठ दिया है। परन्तु इसी श्लोक को रुद्रभट्ट ने अपने विवरण में उद्धृत किया है और उपर्युक्त बाणासनार्धे यह पाठ दिया है ।

मंत्रेश्वर ने भी यही योग दिया है। देखिए भावार्थबोधिनी फलदीपिका पृष्ठ १६८-१६९।

लग्नस्थे भास्वते पुत्रे सूर्येन्द्वोर्धनुषिष्ठयोः।
मकरस्थः कुजः कुर्याद् भूपालमतिपौरुषम्॥ स्कन्द होरा
धनुर्धरगते सूर्ये स चन्द्रे नक्रगः कुजः।
अविशेषेण राजानं कुर्यात्लग्नगते शनौ॥ लघु प्राजापत्य
॥ ३१ ॥

उपचयगृहसंस्थो जन्मपो यस्य चन्द्रात्
शुभगृहनवमांशे केन्द्रयाताश्च सौम्याः।
सकलबलवियुक्ता ये च पापाभिधानाः
स भवति नरनाथः शक्रतुल्यो बलेन ॥३२॥

यदि लग्नेश चन्द्रमा से उपचय (तीसरे, छठे, दसवें या ग्यारहवें) में हो और शुभ ग्रह, केन्द्र में शुभ ग्रह की राशियों और शुभ नवांशों में हो तथा पापग्रह निर्बल हों तो इन्द्र के समान बलशाली राजा होता है। मंत्रेश्वर ने जन्मेश का प्रयोग प्रायः जन्मराशीश के अर्थ में किया है। देखिए फलदीपिका अध्याय १३, श्लोक १५, १६, इसलिए 'जन्मप' के अर्थ के विषय में विद्वान विचार करें ॥३२॥

जातक पारिजात दक्षिण भारत का ग्रंथ है। इसमें कई स्थानों पर 'जन्मप' या तत्पर्यायवाची शब्द आए हैं। उनके सम्बन्ध में यह संदिग्ध हो जाता है कि अर्थ लग्नेश लिया जाए, या जन्म राशीश (जन्म राशि–जिस राशि में जन्म के समय चन्द्रमा था, उसका स्वामी) लिया जाए।

पृथुयशसकृत होरासार अध्याय २० के १२वें तथा १३वें श्लोक नीचे दिए गए हैं। (यह सारावली अध्याय ३५ में भी हैं) :—

अधिमित्रगृहे केन्द्रे जन्माधिपतिर्विलग्नपतियुक्तः।
पश्यति बलपरिपूर्णो लग्नं स्यात् पुष्कलो योगः॥
पुष्कलयोगे जाता जायन्ते भूमिपालका नियतम्।
क्षितिपतिवंशे जाता मुकुटच्छत्रान्विताः भूपाः॥

उपर्युक्त श्लोकों में जन्माधिपति और विलग्नपति दोनों का उल्लेख किया गया है, इसलिए स्पष्ट है कि जन्माधिपति का अर्थ चन्द्रराशीश है।

परन्तु जहां केवल जन्मप, जन्मेश, जन्माधिपति का प्रयोग हो वहां क्या अर्थ लेना। हमारे विचार से जन्म राशि लेना चाहिए परन्तु उत्तर भारत के टीका-

कारों के सम्प्रदाय से, तुष्यतु दुर्जनन्याय से हमने भी लग्नेश अर्थ कर दिया है।

सारावली में भी जन्मपति शब्द जन्मराशीश के लिए प्रयुक्त हुआ है। यथा अध्याय ३५ का श्लोक ४३–

जन्मोदयभवनपती बलसहितौ केन्द्रमेऽहिबुके वा।
इन्दुर्जलगृहगश्चेत् त्रिकोणगो वा महीपालः ॥

देखिए बृहज्जातक प्रव्रज्याध्याय का श्लोक ३ :—

जन्मेशोन्यैर्यद्यद् दृष्टोर्कपुत्रं।
पश्यत्यार्कि जन्मपं वा बलोनम् ॥

भट्टोत्पल अपनी टीका में लिखते हैं जन्मेश इति।

जन्मनि यस्मिन् राशौ चन्द्रः स्थितः तस्य योऽधिपतिग्रहः स जन्मेशः।

जन्मेश और जन्मप का अर्थ जन्मराशीश से लिया गया है।

अथ वार्किः सौरः सबलो जन्मराश्यधिपं बलोनं वीर्यरहितं पश्यति ॥

जातकपारिजात अध्याय ६ श्लोक ८ में तो सब टीकाकारों ने जन्मपति का अर्थ जन्म राशीश लिया है, परन्तु मालूम नहीं अन्यत्र यह अर्थ लेने में क्या आपत्ति है ॥ ३२ ॥

उच्चाभिलाषी सविता त्रिकोणे
स्वर्क्षे शशी जन्मनि यस्य जन्तोः।
स शास्ति पृथ्वीं बहुरत्नपूर्णां
बृहस्पतिः कर्कटकोपगश्चेत् ॥३३॥

जिसकी जन्म कुडली में चन्द्रमा कर्क में मीन का सूर्य त्रिकोण में तथा बृहस्पति कर्क में हो वह बहुरत्नपूर्ण पृथ्वी का राजा होता है। मूल में शब्द आया है उच्चाभिलाषी–उच्च राशि में जाने की अभिलाषा रखने वाला। सूर्य मेष में उच्च होता है, इसलिए मीन में सूर्य उच्चाभिलाषी हुआ–क्योंकि आगे वह अपनी उच्च राशि मेष में जाने वाला है। यह एक मत है। अन्य विद्वान् कहते हैं कि मीन में कहीं भी–किसी भी अंश में उच्चाभिलाषी नहीं होगा–केवल मीन के अंतिम अंश–३०° में होने पर उच्चाभिलाषी होगा। श्री नवाथे तथा श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने अर्थ किया है कि अपने उच्च बिंदु या अंश पर जाने वाला यदि सूर्य हो। इन दो टीकाकारों–श्री नवार्थ तथा श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री के मत से

हम इसलिए सहमत नहीं हैं कि क्योंकि मूल में उच्चाभिलाषी मात्र कहा है) परमोच्चाभिलाषी नहीं कहा। इस कारण परमोच्चांश पर जाने वाला हो यह क्लिष्ट कल्पना है ॥३३॥

३३(१)

३३(२)
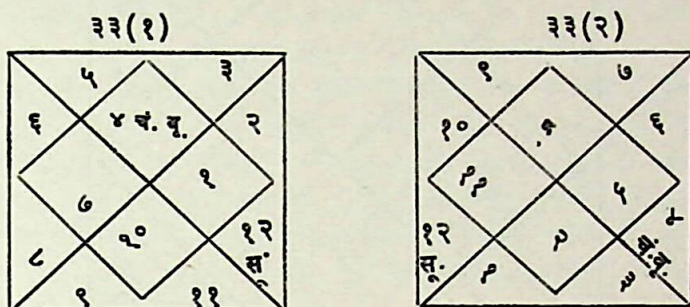
स्वस्य त्रिकोणे रविरुच्चगोऽपि वा
स्वस्वांशकस्था रविशुक्रसोमजाः।
तृतीयषष्ठाष्टमगा निशाकरात्
कुर्वन्ति गोपालमिव क्षितीश्वरम् ॥ ३४ ॥

यदि सूर्य अपनी मूल त्रिकोण या उच्च राशि में हो और सूर्य, बुध तथा शुक्र अपने-अपने नवांश में होकर चन्द्रमा से तृतीय, षष्ठ या अष्टम में हो तो जैसे गोपाल (अपनी गायों की रक्षा करता है, उसी प्रकार अपनी प्रजा की रक्षा करने वाला) राजा होता है। मूल में 'गोपालमिव' गोपाल की तरह—यह आया है। कतिपय टीकाकारों का 'गोपालमपि'—गोपाल भी राजा होता है, यह अर्थ उपयुक्त नहीं है। एक बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है। सूर्य, बुध, शुक्र तीनों चंद्रमा से तृतीय में हो सकते हैं या तीनों षष्ठ में या तीनों अष्टम में या सूर्य बुध षष्ठ मे, शुक्र अष्टम में, या सूर्य बुध चन्द्रमा से अष्टम में, शुक्र अष्टम में—क्योंकि बुध सूर्य २८° से अधिक दूर कभी नहीं होता, शुक्र सूर्य से ४७° अधिक दूर नहीं होता।

सारावली अध्याय ३५ श्लोक ८१ में इसी प्रकार का योग दिया है, जो विशेष बलवान् प्रतीत होता है :—

रविर्नभस्थः स्वत्रिकोणगोऽपि वा स्वराशिसंस्थाः सितजीवचन्द्राः।
तृतीयषष्ठायगताश्च चन्द्रात् कुर्वन्ति गोपालमिवक्षितीशम् ॥ ३४ ॥
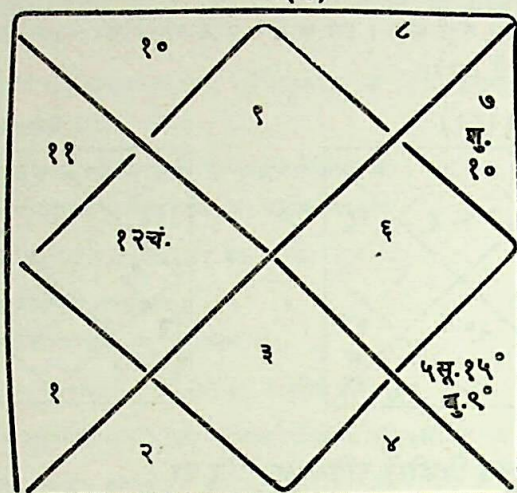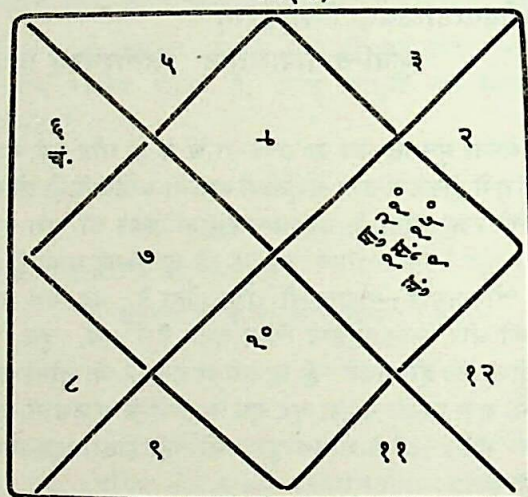
रविशशिबुधशुक्रैर्व्योम्नि मित्रांशकस्थै-
र्न च रिपुभवनस्थैर्नाप्यदृश्यैर्न नीचैः ।
स भवति नरपुत्रो भूपतिर्यत् प्रयाणे
गजमदजलसेकैः सिच्यते यस्य रेणुः ॥ ३५ ॥

यदि सूर्य, चन्द्र, बुध और शुक्र, ऐसी राशि में हों जो उनकी शत्रु राशि न हो न नीच राशि हो और चारों ग्रह अपने मित्र ग्रह के नवांशों में हों तथा चन्द्र बुध, शुक्र अस्त न हों तो ऐसा राजा होता है कि उसकी यात्रा के समय उसके गजों के कपोलों से स्रुत मद से भूमि सिंचित हो जाती है। यह श्लोक सारावली अध्याय ३५ का ८३वां श्लोक है और वहां से लिया गया है।

ऊपर चार ग्रह सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र कहे गए हैं। ये न शत्रु राशि में हों, न नीच राशि में हों, इसलिए वृष, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, मकर, कुंभ, मीन राशियां निकल गयीं। बाकी रहीं मेष, मिथुन, धनु। मेष, बुध के सम ग्रह की राशि हुई, मिथुन सूर्य के सम ग्रह की, धनु शुक्र के समग्रह की। इस प्रकार यदि कोई ग्रह उदासीन (समग्रह की) राशि में होकर मित्र नवांश में हुआ तो क्या प्राशस्त्य हुआ ? दूसरे चारों ग्रह एक साथ हों—कोई ग्रह अस्त न हो और प्रत्येक ग्रह मित्रांशक में हो ऐसा योग होना कठिन है। सामान्यतः सूर्य, चन्द्र बुध, तथा शुक्र यदि एक साथ किसी राशि में हों तो आगे अध्याय ८ श्लोक १७ में ग्रंथकार ने फल दिया है 'शुक्रेन्दु-भानु शशिजैर्विकलश्च वाग्मी'। वाग्मिता अवश्य गुण है परन्तु विकल होना अशुभ फल है। ऐसी स्थिति, जो कुछ ग्रंथकार ने लिखा है वह अकाट्य और अवश्यंभावी है, यह नहीं समझ लेना चाहिए। यह वेद वाक्य नहीं है। इस राजयोग की भित्ति स्वरूप ४ सिद्धांतों को समझ लेना चाहिए; प्रथम, दशम में ग्रह प्रशस्त होते हैं; द्वितीय, मित्र (या स्व, या उच्च) नवांश में ग्रह शुभफल करता है, तृतीय नीच या शत्रु राशि का ग्रह निंदित होता है; चतुर्थ, अस्तग्रह शुभ फल में न्यूनता करता है। ज्योतिष के ग्रंथों में योगायोग इसलिए बताए जाते हैं कि बुद्धि की ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि और विस्तार हो; ग्रहों के फलादेश में तार्किक शक्ति तीव्र हो। यहां 'का युक्तिस्तत्र नारद !' वाला प्रश्न नहीं है।।३५।।

क्षमासुतः स्वोच्चमुपाश्रितो बली रवीन्दुवाचस्पतिभिर्निरीक्षितः।
भवेन्नरेन्द्रो यदि कुत्सितस्तदा समस्तपृथ्वीपरिरक्षणक्षमः।। ३६।।

यदि मंगल उच्च का हो और वली हो (दशवर्गी बल, कालबल, दिग्बल आदि में) और सूर्य, चन्द्र तथा बृहस्पति से दृष्ट हो तो नीच कुल में उत्पन्न भी समस्त पृथ्वी मण्डल का पालन करने में क्षम हो। यह भी सारावली अध्याय ३५ का ८६वां श्लोक है। वहां से लिया गया है।।३६।।

बुधोदये सप्तमगे बृहस्पतौ चन्द्रे कुलीरे सुखराशिगेऽमले।
वियद्गते भार्गवनन्दने ग्रहे प्रशास्ति पृथ्वीमगदो निराकुलः।।३७।।

यह भी सारावली अध्याय ३५ का ८९वाँ श्लोक है। वहाँ से लिया गया है। पहिले इस श्लोक का शब्दार्थ दिया जाता है, फिर आलोचना की जायेगी।

यदि बुध लग्न में हो, सप्तम में बृहस्पति, अमल (स्वच्छ, शुक्ल पक्ष का) चन्द्रमा चतुर्थ में कर्क राशि का हो तथा दशम में शुक्र हो तो जातक अगद (रोग रहित), निराकुल (सुख से) पृथ्वी का शासन करता है। बुध लग्न में तथा शुक्र दशम में लिखा है। सूर्य की स्थिति द्वादश में कहीं ऐसे अंश पर माननी पड़ेगी कि बुध २८° के अन्दर हो और शुक्र ४७° के अन्दर। प्रायः बुध शुक्र से चौथी राशि में हो ऐसा होता नहीं। इसलिये इस योग का व्यावहारिक प्रयोजन नहीं है। बृहज्जातक राजयोगाध्याय का ११वाँ श्लोक है :—

स्वोच्चसंस्थे बुधे लग्ने भृगौ मेषूरणाश्रिते।
सजीवेऽस्ते निशानाथे राजा मन्दारयोः सुते॥

बृहत्प्राजापत्य में भी कहा है :—

बुधः कन्यागतस्तत्र जाते सिंहगते रवौ।
चन्द्रे सजीवे मीनस्थे मिथुनस्थे च भार्गवः॥
मकरं गतयोर्भौममन्दयोः पृथ्वीपतिम्।
कुर्यादसंशयं सौम्य गुणवन्तं यशस्विनम्॥ ३७॥

प्रधानबलसंयुक्तः सम्पूर्णः शशलाञ्छनः।
एकोऽपि कुरुते जातं नराधिपमरिन्दमम्॥ ३८॥

यह भी सारावली अध्याय ३५ का ११७वाँ श्लोक है। वहाँ से लिया गया है।

चन्द्रमा अकेला ही यदि प्रधान बलों से युक्त हो और सम्पूर्ण हो तो जातक को शत्रुओं का जीतने वाला राजा कर सकता है। 'प्रधान बल क्या ?' स्थान बल, काल बल आदि। बलवान् चन्द्रमा की मंत्रेश्वर ने भी बहुत प्रशसा की है। देखिए भावार्थफलबोधिनी फलदीपिका के पृष्ठ १६७, १६९, १७०, १७१, १७२, १७४॥३८॥

देवमन्त्री कुटुम्बस्थो
भार्गवेण समन्वितः।
करोति वसुधानाथं
निर्जितारातिमण्डलम्॥ ३९॥

यह भी सारावली के अध्याय ३५वें का १२६वां श्लोक है। यदि बृहस्पति शुक्र के साथ लग्न से द्वितीय भाव में हो तो जातक समस्त शत्रु मंडल को जीत कर वसुधा (पृथ्वी) का अधिपति होता है। वास्तव में यह धन योग है। इसका पूर्ण फल तभी होगा जब बृहस्पति शुक्र मीन राशि में द्वितीय में हों।

इस कुंडली में धन स्थान में न केवल बृहस्पति तथा शुक्र दो शुभ ग्रह एक भाव में—धन भाव में हुए, अपितु लाभेश, धनेश धन में हुए और चतुर्थेश, नवमेश के साथ हुए। यदि ये दोनों ग्रह प्रशस्त नवांशों में भी हों तथा अस्त न हों, पाप दृष्ट न हों, चन्द्रमा से भी शुभ स्थान में हों तो उत्कृष्ट फल होगा। यह सब अपनी सामान्य बुद्धि से ऊहापोह कर समझना चाहिए। ॥३९॥

३९
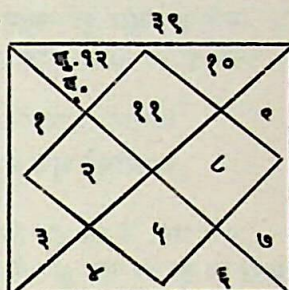
लग्नेशे केन्द्रराशिस्थे
कर्मेशे वृद्धिराशिगे।
भाग्येशे लाभगे जात-
श्चिरञ्जीवो महीपतिः ॥ ४० ॥

यदि लग्नेश केन्द्र में हो, दशमेश चतुर्थ में हो और भाग्येश एकादश में हो तो दीर्घजीवी राजा हो ॥४०॥

रविलुप्तकरः सौम्यः
स्वस्थो मूलत्रिकोणगः।
सर्वविद्याधिको राजा
नेतरेषां खचारिणाम् ॥ ४१ ॥

सूर्य सान्निध्य के कारण अस्त होने पर भी यदि बुध अपनी मूल त्रिकोण राशि में हो तो विद्वान् राजा होता है। अन्य ग्रहों को अस्त होने का दोष लागू न हो, यह बात नहीं है। बुध और शुक्र सदैव सूर्य के पास रहते हैं। बुध कभी २८° से दूर नहीं जाता। इस कारण बुध को अस्त होने का अधिक दोष नहीं होता। यही कहने का अभिप्राय है ॥४१॥

अर्कज्ञौ सुखराशिस्थौ
मन्देन्दू दशमस्थितौ ।
कुजोदये च सञ्जातो
यदि राजा न संशयः ।। ४२ ।।

यदि सूर्य और बुध चतुर्थ में हों, चन्द्रमा और शनि दशम में हो तथा लग्न में मंगल हो तो जातक राजा होता है, इसमें संशय नहीं है ।।४२।।

दिवाकरोदये सिंहे शुक्रांशकविवर्जिते ।
कन्यागते बुधे जातो नीचोऽपि पृथिवीपतिः ।।४३ ।।

यदि लग्न में सूर्य हो, किन्तु वृषभ या तुला नवांश का न हो, तथा बुध कन्या का हो तो नीच कुल में उत्पन्न होने पर भी राजा होता है । पृथुयशस ने होरासार अध्याय २० श्लोक १० में यही कहा है :—

सिंहे सूर्योदये यस्य शुक्रांशकविवर्जिते ।
कन्यागते बुधे जातो नीचोऽपि पृथ्वीपतिः ।।४३।।

मानपुत्रोदयस्थौ वा मन्दावनिसुतौ यदि ।
पूर्णेन्दौ गुरुराशिस्थे जातो राजा भविष्यति ।। ४४ ।।

यदि मंगल और शनि लग्न, पंचम या दशम स्थान में हों और पूर्ण चन्द्र धनु या मीन में हो तो राजा होता है । होरा-सार अध्याय २० श्लोक ११ में मंगल, शनि का लग्न, पंचम या दशम में योग अच्छा माना है :—

मीने मीनांशके लग्ने शुक्रे जातो नृपो भवेत् ।
लग्नात्मजास्पदस्थौ तु कुजमन्दौ यदा तदा ।।

हमारे विचार से मेष लग्न हो और मंगल, शनि, अपने नीच अंश में न हों और मकर में दशम में हों तो बहुत प्रशस्त होगा—क्योंकि लग्नेश दशमेश का सबसे बलिष्ठ केन्द्र में योग होना विशिष्ट राजयोगकारक है । इससे न्यून लग्न में, मकर शनि का योग या धनु लग्न हो और लग्न में मंगल शनि हों । लग्न में धनु का मंगल तथा शनि दोनों प्रशस्त माने गए हैं । ग्रंथकार ने केवल भाव का निर्देश किया है, राशि का नहीं किन्तु किस राशि में कौनसा ग्रह बलवान् होगा और विविध लग्नों में मंगल तथा शनि किन-किन भावों के स्वामी होंगे और किन-किन भावेशों की युति प्रशस्त, किनकी नहीं, यह अपनी सामान्य

वुद्धि से समझना चाहिए । प्राचीन ग्रंथकारों की यह शैली नहीं है कि किसी एक ही बात को पुनः पुनः समझावें । छठे अध्याय में जातक भंग के जो-जो योग कहे गए हैं उनमें जो अन्तर्निहित सिद्धांत हैं उनको सदैव ध्यान में रखना चाहिए । यदि, उदाहरण के लिए, प्रस्तुत श्लोक में, लग्न, पंचम या दशम में मंगल शनि युति हो और छठे अध्याय में कहे गए योगों में से कोई योग लागू हो या लागू हों तो राजयोग भंग हो जायेगा । राजयोग नहीं होगा—यह स्मरण रखना चाहिए ॥४४॥

बली विलग्नाधिपतिश्च केन्द्र
भूपालयोगं कुरुते नराणाम् ।
तन्मित्रदृष्टे यदि नीचवंशे
जातोऽपि राजा नृपवन्दितो वा ॥ ४५ ॥

यदि जन्म लग्नेश बली होकर केन्द्र में हो तो भूपाल योग (राजा होने का योग) करता है । यदि उपर्युक्त बली केन्द्र स्थित लग्नेश अपने मित्र ग्रह से दृष्ट हो तो नीच वंश में उत्पन्न होने पर भी राजा हो या नृप—वन्दित (राजा से सम्मानित, सत्कृत) हो । यह योग केवल मेष, मिथुन, कन्या तथा मकर लग्न वालों को हो सकता है, क्योंकि अन्य लग्न होने से लग्नेश की उच्च राशि केन्द्र में नहीं पड़ेगी । इन राजयोगों का विचार करते समय, यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिस समय यह ग्रंथ लिखे गए भारत-वर्ष में दसों हजार राजा थे । दस-दस बीस-बीस गाँवों के अधिपति भी राजा कहलाते थे । दसों हजार राज्य थे, दसों हजार मंत्री, हजारों सेनाएँ दसों हजार सेनाध्यक्ष । सम्प्रति, बड़ी-बड़ी रियासतें भी नष्ट हो गयीं । राजा शब्द हिन्दुस्तान में अब केवल इतिहास के पृष्ठों में शेष रह गया है । संसार के अन्य भागों में भी लुप्त प्राय होता जा रहा है । इस कारण इन श्लोकों का शब्दार्थ नहीं लेना चाहिए, केवल भावार्थ ग्रहण करना चाहिए । राजा शब्द को विशिष्ट पद बोधक मानना चाहिए ।

(४५)

सारावली अध्याय ३५ श्लोक ३९ के अनुसार, यदि लग्नेश केन्द्र में हो, मित्र ग्रहों से दृष्ट हो और लग्न में शुभ ग्रह हो तो राजा होता है ।

केन्द्रे विलग्ननाथः सुहृद्भिरभिवीक्षितो विहगैः ।
लग्नस्थिते च सौम्ये भूपतिरिह जायते पुरुषः ॥

होरासार अध्याय २० का १४वां श्लोक है :—

जन्माधिपतिः केन्द्रे बलपरिपूर्णः करोति भूपेशम् ।
मित्रयुतो दृष्टो वा नीचान्वयसंभवोऽपि राजा स्यात् ॥ ४५ ॥

जन्माधिपः स्वोच्चगृहे मृगाङ्कं पश्यत्यवश्यं यदि भूमिपालः ।
गजादिसेनातुरगादिसङ्घैर्जितारिकोटिर्जगति प्रजातः ॥ ४६ ॥

यदि लग्नेश अपनी उच्च राशि में स्थित होकर चन्द्रमा को देखे तो अवश्य ऐसा राजा होता है जो हाथी, सेना, घोड़ों के समूह से करोड़ों शत्रुओं को जीत कर प्रधान होता है। ऊपर उदाहरण कुंडली ४५ में जन्म लग्नेश उच्च-स्थित होकर चन्द्रमा को देखता है। या उदाहरण ४६ देखिए।

(४६)

श्लोक ४५ में लग्नेश, अपनी उच्च राशि में स्थित हो और केन्द्र में हो यह कहा गया है। श्लोक ४६ में कहे गए योग में लग्नेश का अपनी उच्च राशि में स्थित होना आवश्यक है, किन्तु केन्द्र में बैठना नहीं। यहाँ यह भी आवश्यक है कि लग्नेश चन्द्रमा को देखे। सारावली अध्याय ३५ का ११०वाँ श्लोक है :—
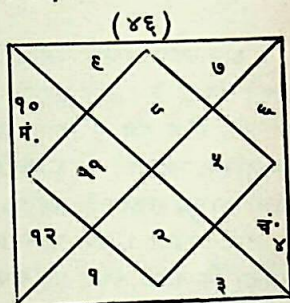
लग्नाधिपतिः स्वोच्चे पश्यन्मृगलाञ्छनं नृपं कुरुते ।
बहु-गजतुरगबलौघैः क्षपितविपक्षं महाविभवम् ॥

यही श्लोक होरासार अध्याय २० में दिया गया है।

मंत्रेश्वर के मत से यदि चन्द्रमा अपने श्रेष्ठ अंश में हो और उसे कोई भी बली ग्रह देखे, तथा लग्न में पापग्रह न हो तो राजयोग होता है। देखिए भावार्थबोधिनी फलदीपिका पृष्ठ १६९-१७०। यहाँ चन्द्रमा पर बलवान् लग्नेश की दृष्टि का फल कहा है। कल्याणवर्मा सारावली अध्याय ३५ के श्लोक १११ में कहते हैं कि चन्द्रमा यदि अपनी उच्च राशि में स्थित होकर बुध और शुक्र को देखे तो राजयोगकारक है।

इन्दुः स्वोच्चे पश्यन् करोति बुधभार्गवौ नरं नृपतिम् ।
प्रणतारिपक्षमुच्छ्रितयशसं सौभाग्यवन्तं च ॥ ४६ ॥

लग्नं विहाय केन्द्रस्थे चन्द्रे पूर्णकलान्विते ।
गुरुभार्गवसंदृष्टे जातो राजा भवेन्नरः ।। ४७ ।।

यदि चन्द्रमा पूर्ण बली और लग्न के अतिरिक्त केन्द्र में, अर्थात् चतुर्थ, सप्तम या दशम में हो और बृहस्पति तथा शुक्र से दृष्ट हो तो जातक राजा होता है ।

मंत्रेश्वर भी कहते हैं :—

विहाय तनुभं कलास्फुरितपूर्णकान्तिः शशी
चतुष्टयगतो नृपं जनयति द्विपाश्वान्वितम् ।।

—फलदीपिका पृष्ठ १६७

सारावली का भी यही मत है । अध्याय ३५ का १०७वाँ श्लोक है :—

लग्नं विहाय केन्द्रे सकलकलापूरितो निशानाथः ।
विदधाति महीपालं विक्रमधनवाहनोपेतम् ।।

सारावली फलदीपिका ने लग्न के अतिरिक्त पूर्ण चन्द्रमा की प्रशंसा की है किन्तु जातक पारिजात ने बृहस्पति तथा शुक्र से दृष्ट केन्द्र (लग्न के अतिरिक्त) स्थित चन्द्र हो यह लिखकर सोने में रत्न जड़ दिए हैं । पृथुयशस वराहमिहिर के पुत्र थे । उनका लिखा होरासार प्राचीन ग्रंथ है । उसने अध्याय २० श्लोक १६ में लिखा है :—

लग्नं विहाय केन्द्रे सकलकलापूरितो निशानाथः ।
गुरुभृगुजाभ्यां दृष्टः करोति पृथिवीपतिं जातम् ।। ४७ ।।

लग्नेशे केन्द्रभावस्थे नीचमूढारिभं विना ।
नान्यग्रहयुते राजा सार्वभौमो भविष्यति ।। ४८ ।।

यदि लग्नेश अपनी शत्रु या नीच राशि में न हो, अस्त न हो, किसी अन्य ग्रह के साथ न हो, और लग्न से केन्द्र में स्थित हो तो सार्व-भौम (सर्व+भूमि—सब भूमि, इससे विशेषण बना सार्वभौम) राजा हो । भावकुतूहल में कहा है कि यदि बलवान् लग्नेश लग्न या केन्द्र में हो तो राजा बनाता है और राजा के पुत्र की कुंडली में यह योग हो और वह राजा हो तो आश्चर्य ही क्या ?

जनुषि लग्नगतो यदि लग्नपो बलयुतः किल कण्टकगोऽपि वा ।
अविरतं प्रकरोति तदा नृपं नृपजमेव न चित्रमिति स्फुटम् ।।

बलवान् लग्नेश कहने से नीचांश, शत्रुनवांश, अस्त आदि दोषों से मुक्त हो यह स्पष्ट है। जातकपारिजातकार ने श्लोक ४५ में कहा कि लग्नेश बली होकर केन्द्र में हो, श्लोक ४६ में लग्नेश की उच्च राशि स्थित होने की प्रशंसा की और श्लोक ४८ में नीच, शत्रुराशिस्थ (यह कहने से न केवल राशि में अपितु नवांश में यह भी उप-लक्षण से समझना चाहिए) मूढ़ न हो यह कहा। होरासार अध्याय २० श्लोक १७ में यह सब एक ही श्लोक में कह दिया है :—

विदधाति सार्वभौमं लग्नाधिपतिः स्वतुंगभे केन्द्रे ।
मुक्त्वारिनीचभागं नान्यग्रहसंयुतो नियतम् ॥

लग्नेश के बलवान् होने की ज्योतिष में सर्वत्र बहुत प्रशंसा की गई है। देखिए भावार्थबोधिनी फलदीपिका, पृष्ठ १६६, १६७, १७२ ॥४८॥

गुरुचन्द्रदिवानाथाः सुतविक्रमधर्मगाः ।
जातो यदि महीपालः कुबेरसमवित्तवान् ॥ ४९ ॥

श्लोक १२ में इसी प्रकार का योग कहा गया है। वहाँ रवि तृतीय में नवम में, बृहस्पति पंचम में कहा है। यहां कहते हैं कि बृहस्पति पंचम में, चन्द्रमा तृतीय में, सूर्य नवम में हो तो राजा हो और कुबेर के समान धनी हो ॥४९॥

चापोदयस्थे बलिनि प्रभाकरे
महीसुते कर्मगते सशीतगौ ।
उपान्त्यगे वा भृगुजे व्ययस्थिते
सुरेन्द्रतुल्यो नृपतिः प्रजायते ॥ ५० ॥

धनु लग्न में बलवान् सूर्य हो, चन्द्रमा और मंगल दशम में हो, ग्यारहवे या बारहवें घर में शुक्र हो तो इन्द्र के समान राजा होता है। मूल श्लोक में 'बलवान्' केवल सूर्य के पहिले विशेषण के रूप में आया है। किन्तु काकाक्षिगोलक-न्याय से इसे चन्द्रमा, मंगल और शुक्र का भी विशेषण मानना पड़ेगा। अन्यथा श्लोक १० में जो 'भृगुनन्दने बलयुते' कहा है वहाँ 'बलयुते' निष्फल हो जायेगा। स्थान स्थान में जो चन्द्रमा के बल पर जोर दिया गया है, वह सिद्धान्त भी व्यर्थ हो जायेगा। इस कारण चन्द्र, मंगल, शुक्र तीनों ग्रह भी बली होंगे तभी राजयोग होगा।

यहाँ चन्द्रमा के सम्बन्ध में एक अन्य महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त समझाया जाता है, जो केवल इस श्लोक के लिये नहीं, अपितु समस्त फलित ज्योतिष के लिये

महत्त्वपूर्ण है वह यह कि उपर्युक्त योग तभी फलीभूत होगा जब लग्न के अंश से सूर्य के अंश अधिक होंगे अर्थात् धनु लग्न में सूर्य के होते हुए भी, सूर्योदय के पूर्व का जन्म होना चाहिए। यह तभी होगा जब सूर्य के अंश, लग्न के उदित अंश से अधिक हों। क्योंकि लग्न के उदित अंश से १८० अंश तक का भाग—भचक्र का आधा भाग अदृश्यार्द्ध होता है। इस अदृश्यार्द्ध में जब सूर्य रहता है तो रात्रि रहती है। यहाँ, इस योग के लिये रात्रि का जन्म क्यों आवश्यक है? क्योंकि शुभ योगों के लिये यथासंभव अशुभ योगों का निराकरण होना चाहिए। लग्न में सूर्य है, दशम में चन्द्रमा है। इस कारण कृष्ण पक्ष का चन्द्र है यह स्पष्ट है। दशम भाव—हमारे सिरे के ऊपर मध्य आकाश में होता है। वहा मध्य आकाश में चन्द्रमा (या कोई भी ग्रह) हो तो दृश्य मूर्ति होगा अर्थात् दिखायी देगा और कृष्ण पक्ष का क्षीयमाण चन्द्र यदि दिन में दृश्य मूर्ति हो तो अत्यन्त अशुभ होता है। कृष्ण पक्ष का क्षीयमाण चन्द्र है, दृश्य मूर्ति है, यह दोनों बातें सिद्ध हैं; तृतीय दोष (दिन में जन्म न हो) इसके निराकरण के लिये, सूर्योदय के पहिले (रात्रि का) जन्म हो, इसकी कल्पना की गयी है। क्यों कि वराहमिहिर बृहज्जातक के चान्द्र योगाध्याय श्लोक ८ के उत्तरार्द्ध में लिखते हैं:—

> अशुभकृदुडुपोऽह्नि दृश्यमूर्ति-
> र्गलिततनुश्च शुभोऽन्यथान्यदूह्यम् ॥

रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं:—

अथोक्तेषु चान्द्रयोगेषु चन्द्रस्य शुभाशुभत्वं विशेषेण निरूपणीयमिति भृङ्गग्राहिकया दर्शयति। अह्नि दृश्यमूर्तिः गलिततनुश्च उडुपः अशुभकृद् भवतीत्यन्वयः। चन्द्रस्य पक्षयोरुभयोरपि दिवसेषु रात्रिषु च दृश्यमूर्तित्वम् अदृश्यमूर्तित्वं च कुहूराकयोरन्यत्र कियति कियति काले संभवति। तत्राहनि दृश्यमूर्तिरुडुपः अशुभकृद् भवति, गलिततनुश्च। अपरपक्षगतः क्षीयमाणः अहनि दृश्य-मूर्तिश्चेदत्यन्तमशुभकरो भवति। अन्यथा शुभः। अन्यथा पूर्व-पक्षे रात्रौ पूर्यमाणतनुः दृश्यमूर्तिश्चेदत्यन्तं शुभकरो भवति। अन्यदूह्यम्। उक्त-विपर्ययश्च तर्क्यः। अपरपक्षे अहन्यदृश्यश्चेच्छुभकरः, पूर्वपक्षे दृश्यमानोऽपि नात्यन्तमशुभः, अपरपक्षे रात्रावदृश्योऽपि अशुभः, पूर्वपक्षे रात्रौ अदृश्योऽपि मध्यफलः, इत्यादियुक्तिवशात् स्वयमूह्यमित्यर्थः ॥५०॥

> विक्रमायारिगाः पापा जन्मपः शुभवीक्षितः।
> राजा भवति तेजस्वी समस्तजनवन्दितः ॥ ५१ ॥

सामान्यतः टीकाकारों ने अर्थ किया है कि यदि पाप ग्रह तृतीय, षष्ठ और एकादश में हों और लग्नेश शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो समस्त जन-वन्दित तेजस्वी राजा होता है। सारावली अध्याय ३५ का श्लोक १७५ निम्नलिखित है।

लाभे तृतीयषष्ठे यदि पापा जन्मपस्य शुभ-दृष्टाः।
भवति तदा धरणीशः समस्त-नृप-वन्दितः साधुः॥

इसका अर्थ हो जायेगा कि 'जन्मप' से तृतीय, षष्ठ, लाभ में पापग्रह हों और शुभ ग्रह दृष्ट हों'।

होरासार अध्याय २० का २५ वाँ श्लोक है:—

आयारिसहजसंस्थैः पापैर्यदि जन्मपश्च शुभदृष्टः।
भवति तदा धरणीशः समस्तनृपवन्दितः साधुः॥

सारावली तथा होरासार का उत्तरार्द्ध एक ही है। यद्यपि जातकपारिजात के इस ५१वें श्लोक का अनुवाद श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने वही किया है जो अन्य टीकाकारों ने अर्थात् 'जन्मप' का अर्थ लग्नेश किया है, किन्तु होरासार के उपर्युक्त श्लोक के अनुवाद में श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री लिखते हैं कि यदि चन्द्रमा राशीश से तृतीय, षष्ठ एकादश में पापग्रह हों और शुभ ग्रह वीक्षित हों…"। हम 'जन्मप' के सम्बन्ध में अपने विचार पहले व्यक्त कर चुके हैं।

फलदीपिका अध्याय ७ के श्लोक २४ में कहा है:—

पापास्त्रिशत्रुभवगा यदि जन्मनाथात्। इसकी टीका में पृष्ठ १७५ पर हमने लिखा है 'बहुत से लोग इसका अर्थ लग्नेश करते हैं और बहुत से लोगों के मतानुसार जन्मनाथ का अर्थ होता है,--जन्म के समय चन्द्रमा जिस राशि में हो, उसका स्वामी। हमारे विचार से द्वितीय अर्थ विशेष उपयुक्त है।" अस्तु लग्न या चन्द्र लग्न से भी तृतीय षष्ठ या एकादश में पापग्रह अच्छे समझे जाते हैं। यह सर्वसम्मत शिष्ट सम्प्रदाय है: प्रश्न मार्ग अध्याय १४ का ४४ वाँ श्लोक है।

सौम्यानां व्ययमृत्युशत्रुसहजा नेष्टा अभीष्टाः परे
पापानामभिभाति सोदरभवा इष्टा अनिष्टाः परे।
भावेष्वेषु हि मुख्यता तु वपुषो धर्मात्मजौ तत्समौ
तेषु त्रिष्वधिकं शुभाशुभफलं विद्यात् सतां चासताम्॥

लग्न से, चन्द्र लग्न से शुभाशुभ ग्रह कहाँ है, यह विचार करना निर्विवाद है। किन्तु यथा लग्नेश से तथा चन्द्र राशीश से भी विचार करना चाहिये। क्यों कि रुद्रभट्ट अपने विवरण के पृष्ठ २३ पर लिखते हैं **तत्र जातके लग्नराशेरर्धं फलम् अर्ध चन्द्रस्य। प्रश्नेऽप्युदयारूढयोस्तद्वत्।** अतः चन्द्र राशीश से तृतीय

षष्ठ, एकादश में पापग्रह हों, चन्द्र राशीश बलवान् हो तो शुभ निष्कर्ष निकालना क्लिष्ट कल्पना नहीं माननी चाहिये। यदि गोचर में किसी भावेश से त्रिकोण में बृहस्पति ज रहा हो तो उस भावेश सम्बन्धी शुभ फल प्रदान करता है यह सिद्धान्त हम मानते हैं (जैसे आगे फलदीपिका अध्याय १६ का श्लोक दिया जायेगा) तो जन्म कुंडली में उस भावेश से केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह हों, त्रि, षड्, आय में पाप ग्रह हों तो शुभ फल इस सिद्धान्त को सन्देह की दृष्टि से क्यों देखा जाये? यदि किसी भावेश से केन्द्र में पाप ग्रह हों तो आप उसको अनिष्ट लक्षण नहीं मानेंगे? और चन्द्र राशीश का महत्त्व तो स्पष्ट ही है। उसके लिये तर्क और प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। फलदीपिका के जिस श्लोक की ऊपर चर्चा की गयी है वह निम्नलिखित है:—

यद् भावेश-स्थितर्क्षांशत्रिकोणस्थे गुरुर्यदा।
गोचरे तस्य भावस्य फलप्राप्ति विनिर्दिशेत्॥ ५१॥

मृगोदयस्थे बलिनि क्षमासुते
शनौ तपःस्थानगतेऽथवान्त्यगे।
दिवाकरे सप्तमगे सशीतगौ
महीपतिश्चञ्चलमानसो भवेत्॥ ५२॥

यदि मकर लग्न में बलवान् मंगल हो और शनि नवें या बारहवें घर में हो, सूर्य और चन्द्रमा सप्तम में हों तो चंचल चित्तवाला राजा होता है। (कारण? चन्द्रमा सूर्य के पास है, पक्षबल रहित है। चन्द्रमा क्रूर युत, क्रूर दृष्ट है। इसलिये मन स्थिर और दृढ नहीं होता)। सारावली अध्याय ३५ का १३८ वाँ श्लोक है:

मृगोदये भूमिसुते सुनिर्मले शनैश्चरे धर्मगृहे व्यवस्थिते।
दिवाकरे सप्तमगे सहेन्दुना चलस्वभावो नृपतिः प्रजायते॥

होरासार अध्याय २० का २४ वाँ श्लोक भी यही है (जो सारावली में दिया है।) ॥५२॥

लाभे सुखे वा दशमे समन्दश्चन्द्रमा यदि।
जातो नृपकुले राजा तत्समो वा धनी भवेत्॥ ५३॥

यदि चतुर्थ, दशम या एकादश में चन्द्र तथा शनि एक साथ हों तो, नृप कुल में उत्पन्न जातक राजा हो, अन्य कुल में उत्पन्न राजा के समान या धनी हो।

चन्द्र-शनि के योग के विषय में अन्य आचार्यों ने जो लिखा है उसकी विवेचना आवश्यक हो जाती है।

वराहमिहिर (अ० १४ श्लोक २ में) कहते हैं कि चन्द्र शनि एक साथ हों तो पुनर्भूसुत होता है। स्वयं जातक पारिजातकार आगे अ० ८ श्लोक ३ में कहते हैं—ऐसी स्त्री से उत्पन्न हो जो अच्छी न हो, जातक पितृदूषक गतधन (जिसका धन नष्ट हो जाये) होता है। सारावली अ० १५ श्लो० १२ में कहा है कि चन्द्र शनि एक साथ हों तो अधिक वय की स्त्रियों से रमण करने वाला, शीलहीन, हाथी तथा घोड़ों को पालने या उनको ट्रेनिंग (शिक्षा देने वाला यथा चाबुक सवार), दूसरों के वश, धनहीन, पराजित होता है। परन्तु पृथु-यशस ने होरासार अ० २३, श्लोक ५ में चन्द्र राशि यदि लग्न से पाँचवें, छठे, दसवें या ग्यारहवें में एक साथ हों तो शुभ फल लिखा है :—

लाभारिपुत्रदशमेष्वेकस्मिंश्चन्द्र मन्दयोर्योगे।
जातो नृपालवंशे नृपतित्वं याति नास्ति सन्देहः॥

अध्याय ८ में श्लोक ३ की व्याख्या देखिए। सारावली में आगे ३१ वें अध्याय में चन्द्र शनि की युति यदि लग्न में हो तो बहुत गर्हित फल दिया है। यदि यह युति चतुर्थ, सप्तम या दशम में हो तो प्रायः अच्छा फल दिया है ॥५३॥

जातश्चोपचयस्थिते तनुपतौ चन्द्रे तपःस्थानगे
केन्द्रस्थाः शुभवर्गगा यदि शुभा वीर्यान्विता भूपतिः।
जीवेन्दू वृषभस्थितौ बलयुतः कोणस्थितो लग्नपः
शन्यारेक्षणवर्जितो यदि तदा जातोऽवनीशो भवेत् ॥ ५४ ॥

इसमें दो राजयोग कहे गए हैं :—

(१) यदि लग्नेश उपचय (लग्न से तीसरे, छठे, दसवें या ग्यारहवें घर) में हो, चन्द्रमा नवें घर में और केन्द्र में शुभ वर्गों में बलवान् शुभ ग्रह हो तो राजा होता है। बलवान् से तात्पर्य है स्थानबल, कालबल आदि से युक्त।

टिप्पणी—व्याख्याओं में सारावली से उदधृत जिन श्लोकों की अध्याय व श्लोक संख्या दी गयी है, वे निर्णयसागर से १९२८ में प्रकाशित संस्करण है।

(२) यदि वृष में चन्द्रमा और बृहस्पति हों, लग्नेश बलवान् होकर त्रिकोण (५ या ९) में हो और मंगल या शनि से दृष्ट न हो तो अवनीश (भूपति) होता है। मंगल और शनि पापग्रह हैं, इनकी दृष्टि ग्रह को निर्बल करती है, यह अध्याय दो में कह चुके हैं।

५४ (१)
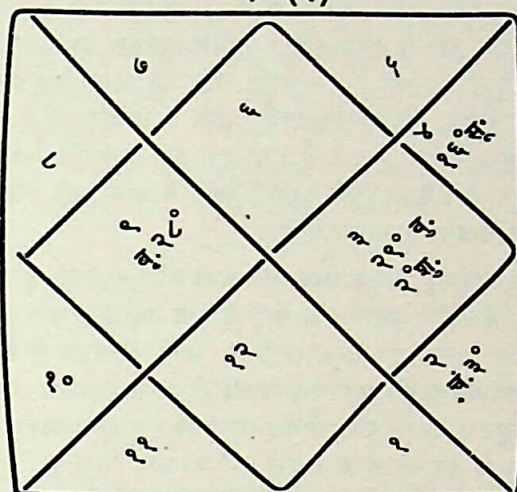
५४ (२)
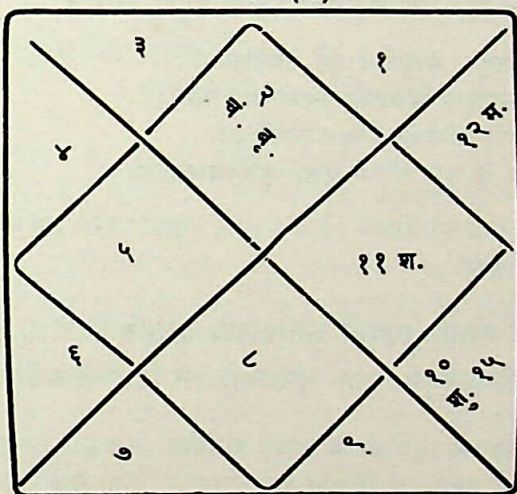
उदाहरण कुण्डली ५४ (१) में लग्नेश बुध उपचय में हैं। बुध के २९ अंश मिथुन में हैं। इस कारण स्वनवांश, चन्द्रमा की होरा कुंभ द्रेष्काण, धनु सप्तमांश स्वनवांश, वृषभ द्वादशांश और तुला त्रिशांश में है। केवल द्रेष्काण पाप वर्ग में है। अन्य शुभ वर्ग हैं। स्वराशि में वर्गोत्तम है। शुभ ग्रह से युत और दृष्ट है। शुक्र मिथुन राशि, सूर्य की होरा, मिथुन द्रेष्काण, मिथुन सप्तमांश, तुला नवांश, मिथुन द्वादशांश, मेष त्रिशांश में है। ५ शुभ वर्गों में है। स्वनवांश में, शुभ युत शुभ दृष्ट होने से बलवान् है। नवमेश, दशमेश का दशम में योग है। बृहस्पति के धनु में २८ अंश हैं। स्वराशि, चन्द्र की होरा, सिंह द्रेष्काण, मिथुन सप्तमांश, धनु नवांश, वृश्चिक द्वादशांश, तुला के त्रिशांश में है। स्वराशि में वर्गोत्तम है। केन्द्र में अपने घर में है। दो शुभ ग्रहों से दृष्ट है। बलवान्। कोई ग्रह सभी शुभ वर्गों में हो ऐसी कुण्डली देखने में प्रायः नहीं आती। शुक्र बुध अस्त नहीं हैं। चन्द्रमा परमोच्च में है।

कुण्डली ५४ (२) में वृष लग्न में चन्द्रमा और बृहस्पति हैं। शुक्र लग्नेश होकर नवम में बैठा है। मंगल तथा शनि से दृष्ट नहीं है। शनि राज्येश दशम में है। शुक्र के मकर में १५ अंश हैं। शनि की राशि में है, किंतु शनि शुक्र का यहाँ अधिमित्र है। शुक्र चन्द्रमा की होरा स्व द्रेष्काण, स्व सप्तमांश, स्व नवांश, मिथुन द्वादशांश और मीन त्रिशांश में है। इस कारण बलवान् है। जातकपारिजात के इस श्लोक के उत्तरार्द्ध में जो योग दिया है, उसके विषय में कल्याण वर्मा यह भी लिखते हैं कि लग्नेश शनि या मंगल से युत भी नहीं होना चाहिए। सारावली के अध्याय ३५ का ४०वाँ श्लोक है :—

सुरपतिगुरुः सेन्दुर्लग्ने वृषे समवस्थितो
यदि बलयुतो लग्नेशश्च त्रिकोणगृहं गतः।
रविशनिकुजैर्वीर्योपेतैर्नयुक्तनिरीक्षितो
भवति स नृपः कीर्त्या युक्तो हताखिलकंटकः॥

सारावलीकार भी लिखते हैं कि सूर्य, मंगल और शनि बलवान् भी होने चाहिएं ॥५४॥

दिवाकरे मीनगृहोपयाते कुलीरलग्ने शशिनि क्षितीशः।
अरातिनीचग्रहदृष्टियुक्ता भूपालयोगं न दिशन्ति सर्वे॥ ५५॥

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में एक राजयोग कहा है। उत्तरार्द्ध में राजयोगविषयक एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

(१) यदि सूर्य मीन में हो, और कर्क लग्न में चन्द्रमा हो तो राजा होता है। प्रायः यही योग ग्रंथकार ने इसी अध्याय के ३३वें श्लोक में कहा है।

(२) कहते हैं कि सभी ग्रहों का यह स्वभाव (तासीर) है कि यदि वे शत्रु राशि गत या नीच राशि गत ग्रह से युक्त या दृष्ट हों तो भूपाल योग नहीं करते। यह जो विशेष नियम यहाँ बताया है, वह समस्त राजयोगकारक ग्रहों को लागू करना चाहिए। उपलक्षण से शुभ योगों को–जिन योगों का शुभ फल कहा है–उन्हें भी लागू करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे कढाव भर दूध में नींबू का जरा सा रस मिलाने से सारा दूध फट जाता है, या जैसे घड़े भर स्वच्छ पानी में कोई दूषित या अपवित्र वस्तु थोड़ी सी भी डाल दी जाए तो समस्त जल अपेय हो जाता है या नाना प्रकार के पक्वान्न का थाल यदि कोई अस्पृश्य स्पर्श कर दे तो भगवान् के नैवेद्य के लिये उपयुक्त नहीं रहता उसी प्रकार उत्तम राजयोग कारक ग्रह यदि शत्रु या नीच राशि गत ग्रह से युक्त हो या दृष्ट हो तो अपना पूर्ण शुभ फल उत्पन्न करने में अक्षम हो जाता है। यहाँ एक शंका उठती है। क्या समस्त शुभ फल नष्ट हो जाता है? ग्रंथकार लिखते हैं कि भूपाल योग नष्ट हो जाता है अर्थात् शुभ फल तो रहता ही है ॥५५॥

जनयति नृपमेकोऽप्युच्चगो मित्रदृष्टः
प्रचुरगुणसमेतं मित्रयोगाच्च सिद्धम्।
विवसुविसुखमूढव्याधितो बन्धुतप्तो
वधदुरितसमेतः शत्रुनिम्नर्क्षगेषु ॥ ५६ ॥

यह बृहज्जातक के आश्रय योगाध्याय का द्वितीय श्लोक है। रुद्रभट्ट ने इसकी बहुत सुन्दर टीका की है। उसके अनुसार व्याख्या की जाती है: पहले अध्याय में अमुक ग्रह अमुक राशि में क्या प्रभाव करता है यह सामान्य फल कहा है। अब इस अध्याय में अपनी उच्च, स्व, नीच, शत्रु राशि गत ग्रह का विशेष फल कहते हैं। यदि एक ग्रह अपने परमोच्च में हो, और मित्र ग्रह से दृष्ट हो तो राजा हो। 'अपीति सम्भावनायाम्।' अर्थात् अपि से यह अर्थ लेना कि राजा होने की संभावना है। किसी लग्न विशेष की जन्मकुण्डली में उच्चग्रह, वक्रग्रह आदि का फल पहिले कहा गया है। यहां किसी लग्न विशेष की कुण्डली में उच्च ग्रह का फल नहीं कह रहे हैं परन्तु कोई भी लग्न हो, उच्च ग्रह यदि मित्र ग्रह से दृष्ट हो तो 'कदाचित् राजा भवेत्' यह अपि शब्द से

द्योतित होता है। मित्र ग्रह का योग हो तो अति धनवान् हो। अथवा मित्र ग्रह दृष्ट उच्च ग्रह हो तो अति धनी राजा हो। तथा मित्र योग से अत्यन्त धनी नृप हो। मूल में 'सिद्धम्' शब्द आया है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं। सिद्धम् अर्थात् यह बात साबित—बहुत से शास्त्रों में प्रसिद्ध है। कोई कोई यह अर्थ करते हैं कि किसी मित्र–आत्मीय सुहृत् के योग (सहायता, उपाय से) सिद्धसाधित राजा होता है (जैसे श्रीकामराज की सहायता से सन् १९६६ में प्रथम बार श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधान मंत्री हुई)।

यदि कोई ग्रह शत्रु या नीच राशि में हो तो (१) यदि एक ग्रह शत्रु या नीच राशि में हो तो विवसु–धन रहित (२) दो ग्रह ऐसे हों तो विसुख–सुख–रहित (३) तीन ग्रह ऐसे हों तो मूढ़–मूर्ख (४) चार ग्रह ऐसे हों तो व्याधित–रोगी (५) पाँच ग्रह ऐसे हों तो बन्धुओं के कारण या बन्धुओं के विषय में परिताप युक्त-पीडित-मानस, क्लेश युक्त (६) छः ग्रह इस प्रकार के हों तो वधसमेतः जिसकी सदैव पिटायी होती रहे—यहां वध आत्यन्तिक शारीरक और मानसिक पीड़ा का द्योतक है। (७) यदि ऐसे सात ग्रह हों तो महापातक युक्त। महापातकी को कैसी कैसी तीव्र और दुःसह यातनायें होती हैं इनका विशद वर्णन धर्मशास्त्र के ग्रंथों में है। इसलिये व्याख्या नहीं की जाती है।

भट्टोत्पल कहते हैं कि सात ग्रह एक साथ अपनी नीच राशि में हो ही नहीं सकते तब वराहमिहिर ने क्यों लिखा? फिर स्वयं समाधान करते हैं कि जैसे पूर्व आचार्यों ने वज्रादि योग लिख दिये (यद्यपि वे संभावित नहीं हैं) तो वराहमिहिर ने भी लिख दिये, इसी प्रकार ७ नीच ग्रहों का फल भी लिख दिया। किन्तु यहां इस श्लोक में केवल नीच राशि गत नहीं लिखा है, नीच राशि, शत्रु राशि दोनों का उल्लेख किया है, यह स्मरण रखना चाहिए ॥५६॥

धनुर्मीनतुलामेषमृगकुम्भोदये शनौ।
चार्वङ्गो नृपतिर्विद्वान् पुरग्रामाग्रणीर्भवेत् ॥ ५७ ॥

यदि धनु, मीन, तुला, मेष, मकर या कुंभ में लग्न में शनि हो तो सुन्दर अंगवाला, नृपति, विद्वान् नगर या ग्राम का अग्रणी (मुखिया) होता है। धनु और मीन लग्न में यदि शनि हो तो ज्योतिषियों ने सुन्दर फल कहा है:—

तुलाकोदण्डमीनस्थो लग्नस्थोपि शनैश्चरः।
करोति भूपतेर्जन्म वंशे च नृपतिर्भवेत् ॥

तुला, मकर, या कुंभ का शनि लग्न में शश योग भी करेगा जो पंच महापुरुष योगों में से एक है। आगे देखिये श्लोक ५९ तथा ६५। परन्तु अपनी नीच राशि में, मेष लग्न में शनि राजयोग कारक होता है यह उल्लेख असामान्य है। विचारणीय है। कुम्भ लग्न के विषय में बहुत से पाठक शंका करेंगे कि कुम्भ लग्न—बहुतों के मत से शुभ नहीं होता तब लग्न में कुम्भ का शनि कैसे राजयोग करेगा ? परन्तु कुम्भ लग्न निन्दित है या केवल कुम्भ द्वादशांश है, इस विषय में मतभेद है।

यथा :—

सत्याचार्य—

होरा च भवेदिष्टा द्विपदेष्विह कुंभवर्ज्यं हि।
कुंभविलग्ने जातो भवति नरो दुःखशोकसंतप्तः ॥

श्रुतिकीर्ति

सर्वस्मिल्लग्नगते कुंभद्विरसांशको यदा भवति।
राशौ न तदा सुखितः परान्नभोजी भवेत् पुरुषः ॥

विष्णुगुप्त

कुंभद्वादशभागो लग्नगतो न प्रशस्यते यवनैः।
यद्येवं सर्वेषां लग्नगतानामनिष्टफलता स्यात् ॥
घटयोगाद्राशीनां न मतं तत्सर्वशास्त्राणाम्।
तस्मात् कुंभविलग्नो जन्मन्यशुभो न तद्भागः ॥

वराहमिहिर

न कुम्भलग्नं शुभमाह सत्यो न भागभेदाद्यवना वदन्ति।
कस्यांशभेदो न तथाऽस्ति राशेरतिप्रसंगस्त्विति विष्णुगुप्तः ॥ ५७ ॥

स्वोच्चत्रिकोणस्वसुहृच्छत्रुनीचगृहार्कगैः।
शुभं सम्पूर्णपादोनदलपादाल्पनिष्फलम् ॥ ५८ ॥

आगे अध्याय ८ का ११६वाँ श्लोक भी यही है। यह श्लोक फलादेश के एक मुख्य सिद्धांत का प्रतिपादन करता है अतः बहुत महत्त्वपूर्ण है। किसी भी ग्रह का राशि नवांश भाव में स्थिति, किसी भाव का स्वामी होने के कारण किसी अन्य ग्रह से युति या दृष्टि के कारण दो प्रकार का फल हो सकता है। शुभ और अशुभ। कोई एक ही ग्रह यदि दो कारणों से—एक से वृद्धि, अपर से

हानिकारक है–किसी फल विशेष के लिए–वृद्धिकारकता हानिकारकता को काट देती है, हानिकारकता वृद्धिकारकता को काट देती है–परन्तु यह तब जब किसी फल विशेष के लिए शुभाशुभ कारकता समान मात्रा में है। यदि शुभ कारिता अशुभकारिता से विशेष है तो काटने के बाद कुछ शुभकारिता शेष ही रहेगी। यदि अशुभकारिता विशेष है, तो कुछ कटने के बाद किंचित् अशुभ कारिता ही शेष रहेगी। मान लीजिए आपको मुझसे एक हजार रुपए लेने हैं और मुझे भी आपसे एक हजार रुपए लेने हैं तो हिसाब बराबर हो गया। किंतु आपको यदि मुझसे ११००) लेने हैं तो आप मुझसे १००) लेंगे ही। या आपको मुझसे लेने हैं एक हजार और मुझे आपसे लेने हैं १२००) तो २००) मैं आपसे लूंगा ही। यह नियम किसी ग्रह को तब लागू होता है, जब किसी एक ही फल के लिए वह शुभ और अशुभ हो। यथा पंचमेश राशि में बलवान् है, इस कारण संतान भाव के लिए है, पंचमेश दुःस्थान (६, ८, १२) में गया इसलिए संतान के लिए अशुभ है। पंचमेश शुभ ग्रह युत है, इसलिए शुभ फल, पंचमेश पाप ग्रह से दृष्ट है, इस कारण अशुभ फल। इस प्रकार एक ही ग्रह (पंचमेश) किसी कारण या कारणों से शुभ और अन्य कारण या कारणों से संतान पक्ष के लिए अशुभ हो सकता है तब शुभता और अशुभता का तारतम्य कर यह देखना कि शेष में सतान पक्ष के लिए शुभ है या अशुभ और संतान सम्बन्धी फल वैसा ही करेगा। यह नियम तब है जब कोई एक ही ग्रह किसी फल विशेष के लिए शुभ और अशुभ दोनों हो।

परन्तु ऐसा भी होता है कि कोई एक ही ग्रह किसी फल विशेष के लिए शुभ हो और अन्य फल के लिए अशुभ। उदाहरण के लिए दशम में सूर्य मंगल जातक को उच्च पद प्राप्त करने में सहायक होते हैं, परन्तु पितृ सुख में हानि करते हैं। तृतीय में क्रूर ग्रह जातक का शौर्य, वीर्य, पराक्रम बढ़ाता है किंतु भाई बहिनों के लिए अनिष्टकर है। मेष लग्न हो, दशमेश शनि तुला का सप्तम में हो। दशम भाव के लिए इष्ट होगा, सप्तम के लिए अनिष्ट। वास्तव में राशि, नवांश, दश वर्ग, भाव, अन्य ग्रह से सम्बन्ध युति, दृष्टि आदि सभी का विचार कर किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए। जातक पारिजात के इस श्लोक में केवल राशि स्थिति के दृष्टि कोण से एक सिद्धांत कहा गया है। वह यह है। यदि ग्रह शुभ फल कारक है और अपनी उच्च राशि में है, तो पूर्ण शुभ फल करेगा; यदि ग्रह अपनी मूल त्रिकोण राशि में है तो तीन चौथाई शुभ फल, यदि वह अपनी राशि में है तो आधा शुभ फल, मित्र राशि में एक चौथाई शुभ फल, शत्रु ग्रह में हो तो चौथाई से भी कम शुभ फल और यदि अपनी नीच राशि में हो, या अस्त हो तो निष्फल अर्थात् कुछ शुभ फल नहीं। यह सब तभी है जब ग्रह में

शुभ फल देने की क्षमता हो। यहाँ मूल में जो शुभ शब्द आया है, वह शुभ फल का द्योतक है शुभ ग्रह का नहीं। चाहे बुध, बृहस्पति आदि शुभ ग्रह हों, चाहे मंगल शनि आदि पाप ग्रह, नियम एक ही है। यदि आपका शनि योगकारक है और यदि वह अपनी उच्च राशि में है, यथा तुला लग्न के लिए, चतुर्थेश पञ्चमेश शनि योगकारक होकर तुला लग्न में अवस्थित हो तो पूर्ण शुभ फल। वृष लग्न हो, नवमेश दशमेश योग कारक होकर शनि अपने मूल त्रिकोण अंशों में कुंभ में हो तो तीन चौथाई शुभ फल इत्यादि। कुंभ लग्न हो, चतुर्थेश नवमेश शुक्र योगकारक होकर मीन में बैठे तो पूर्ण शुभ फल, तुला में अपने मूल त्रिकोण अंशों में हो तो तीन चौथाई शुभ फल इत्यादि।

अब इसकी मीमांसा करते हैं कि कोई ग्रह (शुभ या पाप ग्रह यह भेद नहीं है। भेद है केवल शुभ फल दातृत्व शक्ति या पापफलकारिणी प्रवृत्ति) यदि पाप फल देने वाला है (यह अन्य अनेकों कारणों से निश्चय करना चाहिए कि वह शुभ फल प्रदान करेगा या पाप फल) और अपनी उच्च राशि में है तो नहीं के बराबर (न्यूनतम) पाप फल देगा, यदि मूल त्रिकोण में है तो चौथाई से कम—चार आना से भी कम पाप फल करेगा, अपनी राशि में है तो चौथाई पाप फल, यदि मित्र राशि में है तो आठ आना पाप फल, शत्रु राशि में है तो रुपए में बारह आना पाप फल और अपनी नीच राशि में या अस्त हो तो सोलह आना पाप फल। यह जो पूर्ण, तीन चौथाई, आधा, चौथाई, चौथाई से भी कम तथा निष्फल (०) आदि ६ विभाग किए हैं। यह कोई पैमाने से नापी हुई, या तराजू में तोली हुई मात्रा नहीं है। केवल समझाने का एक प्रकार है। उच्चराशि से उतरते हुए नीच राशि तक शुभ फल में क्रमिक ह्रास होता है, पाप फल में क्रमिक वृद्धि होती है। हमारे विचार से शुभ फल का ह्रास और पाप फल में वृद्धि निम्नलिखित प्रकार से माननी चाहिए :—

ग्रह फल चाहे वह ग्रह शुभ हो या पाप

		शुभ फल	पापफल
(i)	उच्च राशि में	१६ आना	३ आना
(ii)	मूल त्रिकोण में	१५ ,,	३ ,,
(iii)	स्वराशि में	१४ ,,	४ ,,
(iv)	अधिमित्र	१२ ,,	८ ,,
(v)	मित्र	१० ,,	१० ,,
(vi)	सम	८ ,,	१२ ,,
(vii)	शत्रु	६ ,,	१४ ,,
(viii)	अधिशत्रुराशि में या अस्त	४ ,,	१६ ,,

यह कहना आवश्यक है कि यह फल उस भाव सम्बन्धी है जिसका वह स्वामी है—उस भाव सम्बन्धी नहीं जिसमें वह बैठा है। उदाहरण के लिए पाप ग्रह उच्च का होकर दशम में बैठा हो यथा मेष लग्न का स्वामी मंगल दशम में हो तो जातक के लग्न भाव (जिसका स्वामी मंगल है) के शुभ फल को बढ़ायेगा किंतु पिता (दशम भाव) के सुख में कमी करेगा ही। मेष लग्न हो—दशमेश लाभेश शनि उच्च का होकर सप्तम में बैठा हो तो दशम, एकादश भाव की वृद्धि करेगा किंतु स्त्री (सप्तम) सुख में कमी करेगा ही। यह सब हम पहिले भी कह चुके हैं। इस बात को हृदयंगम कराने के लिए पुनः कहा है।
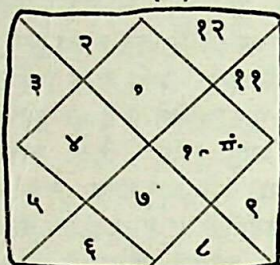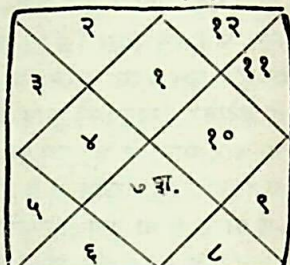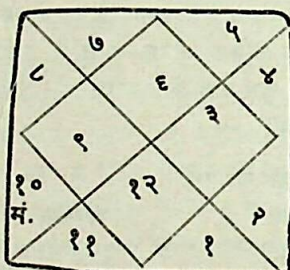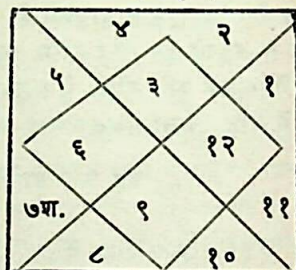
कुंडली ५८ (३) में मंगल पंचम भाव के लिए अनिष्ट है ही। उच्च का होने से कम अनिष्ट, नीच का होता तो विशेष अनिष्ट होता। यही बात ५८ (४) में शनि के लिए है।

यह हमारा अपना व्यक्तिगत विचार है। जातकपारिजातकार का मत ऊपर दे ही चुके हैं। शुभ फल का उदाहरण ऊपर दे चुके हैं। अब हम अशुभ फल का उदाहरण देते हैं। मान लीजिए तुला लग्न है, बृहस्पति तृतीयेश षष्ठेश

होने से दुष्ट फल कारक है। यदि अपनी नीच राशि में है तो दुष्ट फल अधिक करेगा, स्वराशि में हो तो उससे कम और अपनी उच्च राशि में हो तो उससे भी कम। या मान लीजिए कन्या लग्न है। तृतीयेश अष्टमेश मंगल पाप फल करेगा। यदि अपने उच्च राशि में मंगल हो तो अल्प दुष्ट फल, यदि अपनी नीच राशि में हो तो विशेष दुष्ट फल। यहाँ पाठक शंका उपस्थित कर सकते हैं। तुला लग्न होने से बृहस्पति नीच राशि में होकर केन्द्र में होगा और केन्द्रस्थ बृहस्पति की बहुत प्रशंसा की गई है। या कन्या लग्न की कुण्डली में नीच राशि का मंगल लाभ (एकादश) में होगा। 'लाभे सर्वे प्रशस्ताः'। चाहे ग्रह अपनी नीच राशि में हो, लाभ भाव में होने से लाभ करायेगा ही। तब इसे गर्हित क्यों माना जाए? यह शंका बहुत समीचीन है; बहुत उपयुक्त है। इसका समाधान यह है कि किसी ग्रह का शुभाशुभ विचार अनेक कसौटियों पर कसना पड़ता है। शुभता या अशुभता प्रदान करने वाले अनेक हेतु होते हैं। राशि स्थिति एक हेतु है। इस कारण राशि स्थिति विचार से तो नीच राशि स्थिति को गर्हित ही कहेंगे। अन्य हेतु या हेतुओं से यदि उसमें शुभ फल दातृत्व शक्ति है तो उसका भी विचार कर लिया जायेगा। नीचस्थ बृहस्पति की अपेक्षा यदि उच्चस्थ बृहस्पति केन्द्र में हो तो बहुत विशिष्ट फल, यदि एकादश में नीचस्थ मंगल की अपेक्षा उच्च राशि का मंगल हो तो विशेष लाभ। इस प्रकार किसी एक हेतु की समीक्षा करते समय, उसी हेतु के औचित्य अनौचित्य पर विचार करना चाहिए। अन्य हेतुओं को उसमें संप्रविष्ट नहीं करना चाहिए। यदि हम कहें कि दूध में पानी की अपेक्षा अधिक मिठास है तो यह कथन ठीक है। किंतु यदि आप पानी में शर्करा मिला दें और कहें कि देखिए यह पानी दूध की अपेक्षा अधिक मिष्ट है तो यह ठीक नहीं क्योंकि आपने अन्य हेतु (शर्करा जनित मिष्टत्व) संप्रविष्ट कर दिया है। यदि हम कहें कि श्यामवर्णा स्त्री की अपेक्षा गौरवर्णा विशेष सुन्दर होती है और आप इस उक्ति के खण्डन में कहें कि द्रौपदी श्यामवर्णा होने पर भी सुन्दरी थी तो मूल कथन का सम्यक् खण्डन नहीं हुआ क्योंकि द्रौपदी के सौन्दर्य का हेतु उसका श्याम वर्ण नहीं, अवयवों का सौन्दर्य उसके सौंदर्य का हेतु था। इसी अध्याय के श्लोक १३, १४, १५, २० में कहा गया है कि कोई ग्रह नीचस्थ होने पर भी किस अन्य हेतु या किन अन्य हेतुओं से राजयोग कारक हो सकता है। भाव स्थिति और राशि स्थिति—इन दोनों में किस को अधिक महत्व देना, इस सम्बन्ध में देखिए अध्याय ११ श्लोक ८ की हमारी व्याख्या।

एक बात यहाँ और कहनी है। हमारे विचार से जातक पारिजातकार ने जो यह लिख दिया कि शत्रु राशि स्थिति होने से या अस्त होने से शुभता

निष्फल हो जाती है यह केवल अर्थवाद है। यदि ग्रह शुभफलकारक है तो यत्किञ्चित् शुभ फल करेगा ही। देखिए अमेरिका के स्वर्गीय प्रेसीडेंट जौनसन की जन्मकुण्डली। इनके जन्म दिवस २७ अगस्त १९०८ को प्रातः अमेरिका में सूर्य सान्निध्य से चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति अस्त हैं तथापि अमेरिका के प्रेसीडेंट हुए। यदि इन चारों ग्रहों की शुभ दातृत्व शक्ति को निष्फल मान लें तो कैसे काम चलेगा।
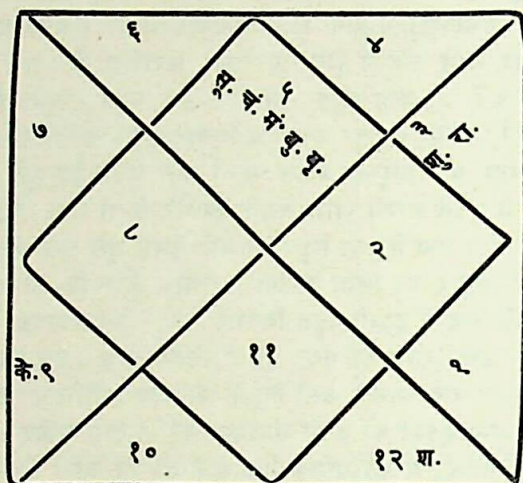
यहां जो शुभ फलता में वृद्धि, तथा पाप फल में जो ह्रास, उच्च राशिस्थ आदि का कहा है, उसे न केवल भाव फल तथा दशा, अन्तर्दशा फल में उपयोग करना चाहिए, अपितु गोचर फल में भी, क्योंकि वराहमिहिर ने बृहज्जातक अध्याय ९ में लिखा है :—

> इति निगदितमिष्टं नेष्टमन्यद् विशेषा-
> दधिकफलविपाकं जन्मिनां तत्र दद्युः।
> उपचयगृहमित्रस्वोच्चगाः पुष्टमिष्टं
> त्वपचयगृहनीचारातिगैर्नेष्टसम्पत् ॥

गोचरप्रकरण का यह श्लोक है। देवकीर्ति भी कहते हैं :—

> लग्नाद्युपचयसंस्थश्चन्द्राद्वा स्वगृहादितुंगस्थः।
> मित्रक्षेत्रगतो वा फलमतिशयितः शुभं दद्यात् ॥

यह उच्च राशि स्थिति आदि जन्म कुण्डली में देखनी या गोचर के समय। भट्टोत्पल कहते हैं 'जन्मकालिकमेव तत्' अर्थात् जन्म कुण्डली में ही देखना। देवकीर्ति कहते हैं :—

अपचयराशौ नीचे शत्रुक्षेत्रे च जन्मकाले स्यात् ।
यस्तु स दद्यात्पापं फलमतिशयितो ग्रहो यथाकालम् ॥

यवनेश्वर का भी मत है :—

यस्तु स्वनीचारिगृहोपगोन्यैररिभिर्दृष्टोल्पतनुर्विवर्णः ।
सूनावभूज्जन्मपतौ बलस्थे स जन्मगो वंध्यफलो निरुक्तः ॥

किन्तु सत्याचार्य कहते हैं :

जन्मन्युपचयभवने एको ग्रहो ह्युपचयेषु पुष्टफलः ।
अपचयभवनोपेतः पीडास्थाने ह्यपचयाय ॥

वराहमिहिर ने भी यात्रा में कहा है :—

नीचस्था ग्रहविजिता रव्यभिभूता विरश्मयो ह्रस्वाः ।
भुजगा इव मंत्रहता भवन्ति कार्याक्षमा लग्ने ॥

यवनेश्वर भी कहते हैं :—

स्ववर्गसंस्था बलिनो विशेषाद्ग्रहा यथोद्दिष्टफलप्रदाः स्युः ।
नीचे जिताश्चारिगृहेऽल्पवीर्या ब्रुवन्त्यनिष्टेष्टफलप्रवृत्तिम् ॥

परन्तु बृहज्जातक की नौका टीका के अनुसार उच्च राशि स्थिति आदि का निर्देश जन्मकालीन तथा गोचरकालीन दोनों के लिए हो सकता है।

गुणाकर ने भी वही लिखा है, जो जातक पारिजात में है परन्तु शुभ फल का क्या ह्रास होता है, इसके अनुपात में कुछ भिन्नता है :—

पूर्णं स्वोच्चे चरणरहितं स्वत्रिकोणे स्थिते स्या-
दर्द्धं स्वर्क्षे तदनु चरणो(?)शत्रुभेऽल्पम् ।
अस्तं याते किमपि न शुभं खेचरे नीचगेऽपि
प्रोक्तं तज्ज्ञैरमलमतिभिर्व्यत्ययात् पापसंज्ञम् ॥

अब श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने इस श्लोक की टीका करने में अर्थ का अनर्थ किया है कि पाप ग्रह नीच में ३/४ (तीन चरण) शुभ फल देता है और अपनी उच्च में हो तो केवल १/३२ (एक रुपये में आधा आना) भाग शुभ फल देता है। पाठक इस भ्रांति में न पड़ें इसी कारण श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री के 'अनर्थ' का उल्लेख किया है।

चाहे चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र हों, चाहे सूर्य, मंगल, शनि सारावली अध्याय ३४ श्लोक १४ के अनुसार

स्वगृहोच्चसौम्यवर्गे ग्रहः फलं पुष्टमेव विदधाति ।
नीचर्क्षरिपुग्रहस्थो विगतफलः कीर्तितो मुनिभिः ॥

पृथुयशस ने भी होरासार अध्याय १७ श्लोक १७ में कहा है :—

मित्रोच्चभवनस्थश्चेत् पापः शुभफलं दिशेत् ।
अरातिनीचभस्थश्चेत् शुभः पापफलं दिशेत् ॥

तब श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री का यह 'अनर्थ' कैसे स्वीकार किया जाए कि पाप ग्रह नीच राशि में शुभ फल देता है, और उच्च राशि में पाप फल?

श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री के अनर्थ ने ज्योतिष जगत् में महान् संदेह उत्पन्न कर दिया है—इस कारण इस श्लोक की व्याख्या इतने विस्तार से करने की आवश्यकता पड़ी। पुनः हम अपने अर्थ की पुष्टि में सारावली अध्याय ११ श्लोक २५-२९ उद्धृत करते हैं :—

स्वोच्चस्थितः शुभफलं प्रकरोति पूर्ण
नीचर्क्षगस्तु विफलं रिपुमन्दिरेऽल्पम् ।
पादं शुभस्य हितभे स्वगृहे तदर्ध
पादत्रयं गगनगः स्थितवांस्त्रिकोणे ॥
नीचर्क्षगः सकलमेव करोति पापं
न्यूनं च किंचिदरिभे विफलं स्वतुंगे ।
पादत्रयं हितगृहे विहगोऽशुभस्य
स्वर्क्षे दलं च चरणं स्थितवांस्त्रिकोणे ॥
औत्पातिका सवितृलुब्धकरा विरुक्षा
नीचं गता रिपुगृहं च नभश्चरेन्द्राः ।
युद्धे जिताः शुभफलानि विनाशयन्ति
पापानि यानि सुतरां परिवर्धयन्ति ॥
उच्चबलेन समेतः परां विभूतिं ग्रहः प्रसाधयति ।
पुंसामथ साचिव्यं त्रिकोणबलवान् बलपतित्वम् ॥
स्वर्क्षैर्बलेन सहितः प्रमुदितधनधान्यसंपदा क्रान्तम् ।
मित्रबलेन च युक्तो जनयति कीर्त्यान्वितं पुरुषम् ॥

इसकी व्याख्या में पंडित सीताराम झा लिखते हैं :—

उच्च स्थित ग्रहों के शुभ फल पूर्ण और नीचस्थ ग्रहों के शुभ फल शून्य हो जाते हैं। शत्रु ग्रह में अत्यल्प (आधा चरण), मित्र के गृह में १ चरण, अपने गृह में आधा, अपने मूल त्रिकोण में ३ चरण शुभ फल देता है।

नीचस्थ ग्रहों के अशुभ फल पूर्ण, शत्रुराशिस्थित हों तो कुछ ही कम (अर्थात् षोडशांशोन पूर्ण फल) और उच्चस्थ ग्रह का अशुभ फल शून्य हो जाता है। मित्र ग्रह में अशुभ फल ३ चरण और स्वराशि में आधा तथा अपने मूल त्रिकोण में १ चरण अशुभ फल देता है इत्यादि।

कहने का अभिप्राय यह है कि सब ग्रहों के सम्बन्ध में यह सामान्य नियम है। शुभ ग्रह पाप ग्रह यह भेद नहीं है। भेद है शुभ फल और पाप फल का ॥ ५८ ॥

पंच महापुरुष योग

अब श्लोक ५९ से ६५ तक महापुरुष योग दिए गए हैं। यह योग फलदीपिका जातकाभरण मानसागरी आदि ज्योतिष ग्रंथों में भी उपलब्ध हैं, इसलिए इनकी विस्तार से व्याख्या नहीं की जा रही है।

मूलत्रिकोणनिजतुङ्गगृहोपयाता
भौमज्ञजीवसितभानुसुता बलिष्ठाः।
केन्द्रस्थिता यदि तदा रुचभद्रहंस-
मालव्यचारुशशयोगकरा भवन्ति ॥ ५९ ॥

यदि मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र या शनि अपनी उच्च राशि या मूल त्रिकोण या स्वराशि में स्थित होकर लग्न से केन्द्र में हो तो महापुरुष योग होता है। यदि मंगल उपर्युक्त प्रकार से योग करे तो रुचक, बुध करे तो भद्र, बृहस्पति जनित हंस, शुक्र योग उत्पन्न करे तो मालव्य और शनि अपनी मूल त्रिकोण या उच्च राशि में स्थित केन्द्र में हो तो शश योग होता है।

इस सम्बन्ध में मंत्रेश्वर का यह कथन है कि उपर्युक्त योग केवल लग्न से केन्द्र में स्वोच्च स्व-राशिस्थ मंगल आदि के होने से तो होता ही है किन्तु यदि लग्न से केन्द्र में न हो किन्तु चन्द्रमा से भी युक्त यदि केन्द्र में उच्चस्थ स्वराशिस्थ मंगल, बुध आदि पांचों ग्रहों में से केन्द्र में हो तो महापुरुष योग होता है। देखिये भावार्थबोधिनी फलदीपिका, पृष्ठ ११०

लग्नेन्दोरपि योगपंचकमिदं साम्राज्यसिद्धिप्रदं
तेष्वेकादिषु भाग्यवान् नृपसमो राजा नृपेन्द्रोऽधिकः।

मानसागरी के अनुसार मंगल आदि उच्च या स्वराशि में, लग्न से केन्द्र में हो तभी रुचक आदि महापुरुष योग होता है। परन्तु यह भी लिखा है कि यदि

उपर्युक्त योगकारक (मंगल बुध, बृहस्पति, शुक्र या शनि जो योग बना रहा हो) ग्रह के साथ यदि सूर्य या चन्द्रमा हो तो महापुरुष योग भंग हो जाता है और इस योग का जो विशिष्ट फल लिखा है वह नहीं होता, केवल साधारण सत्फल होता है :

केन्द्रोच्चगा यद्यपि भूसुताद्या मार्तण्डशीतांशुयुता भवन्ति ।
कुर्वन्ति नोर्वीपतिमात्मपाके यच्छन्ति ते केवलसत्फलानि ॥

सारावली अध्याय २४ में पंच महापुरुष योग दिए गए हैं । वहाँ भी श्लोक ३८ में कहते हैं :—

बलरहितेन्दुरविभ्यां युक्तैर्भौमादिभिर्ग्रहैर्मिश्राः ।
न भवन्ति महीपाला दशासु तेषां सुतार्थसंयुक्ताः ॥

वराहमिहिर ने भी पंच मानुष विभागाध्याय (बृहत्संहिता के ६८वें अध्याय में) इन योगों की विवेचना की है । पाठक अवलोकन करें ॥ ५९ ॥

अब जातककार सर्व प्रथम रुचक योग का फल कहते हैं ।

अथ रुचक योग

जातः श्रीरुचके बलान्वितवपुः श्रीकीर्तिशीलान्वितः
शास्त्री मन्त्रजपाभिचारकुशलो राजाऽथवा तत्समः ।
लावण्यारुणकान्तिकोमलतनुस्त्यागी जितारिर्धनी
सप्तत्यब्दमितायुषा सह सुखी सेनातुरङ्गाधिपः ॥ ६० ॥
धर्मेशलाभेशधनेश्वराणामेकोऽपि शीतद्युतिकेन्द्रवर्ती ।
स्वयं च लाभाधिपतिर्गुरुश्चेदखण्डसाम्राज्यपतित्वमेति ॥ ६१ ॥
शार्दूलप्रतिमाननो गजगतिः पीनोरुवक्षःस्थलो
लम्बापीनसुवृत्तबाहुयुगलस्तत्तुल्यमानोच्छ्रयः ।
मानी बन्धुजनोपकारनिपुणः श्रीभद्रयोगोद्भवो
राजाऽशीतिमितायुरेति विपुलप्रज्ञायशोवित्तवान् ॥ ६२ ॥
रक्तास्योन्नतनासिकः सुचरणो हंसस्वरः श्लेष्मको
गौराङ्गः सुकुमारदारसहितः कन्दर्पतुल्यः सुखी ।
शास्त्रज्ञानपरायणोऽतिनिपुणः श्रीहंसयोगे गुणी
जातोऽशीतिकमायुरेति सयुगं साधुक्रियाचारवान् ॥ ६३ ॥

स्त्रीचेष्टो ललिताङ्गसन्धिनयनः सौन्दर्यशाली गुणी
तेजस्वी सुतदारवाहनधनी शास्त्रार्थवित्पण्डितः ।
उत्साहप्रभुशक्तिमन्त्रचतुरस्त्यागी परस्त्रीरतः
सप्तत्यब्दमुपैति सप्तसहितं मालव्ययोगोद्भवः ॥ ६४ ॥

भूपो वा सचिवो वनाचलरतः सेनापतिः क्रूरधी-
र्धातोर्वादविनोदवञ्चनपरो दाता सरोषेक्षणः ।
तेजस्वी निजमातृभक्तिनिरतः शूरोऽसिताङ्गः सुखी
जातः सप्ततिरायुरेति शशके जारक्रियाशीलवान् ॥ ६५ ॥

रुचक योग में उत्पन्न व्यक्ति बलान्वित शरीर, लक्ष्मी (श्री शब्द मूल में आया है इससे शरीरसौष्ठव तथा कान्तियुक्त, यह अर्थ भी लिया जा सकता है), शास्त्री (शास्त्र निष्णात), मंत्रों के जप और अभिचार में कुशल, राजा या राजा के समान, लावण्य युक्त, शरीर ईषत् लालिमायुक्त, कोमल तनु, शत्रुओं पर विजय प्राप्ति करने वाला, त्यागी, धनी, ७० वर्ष की आयु प्राप्त करने वाला, सुखी, सेना और घोड़ों का स्वामी होता है ॥६०॥

पंच महापुरुष योगों के वर्णन के बीच में एक अन्य राजयोग संप्रविष्ट कर दिया है। यह फलदीपिका के ७वें अध्याय का २५वाँ श्लोक है। कह नहीं सकते कि फलदीपिका से जातकपारिजात में लिया गया है या जातकपारिजात से फलदीपिका में, या दोनों ही ग्रंथकारों ने अन्यत्र कहीं से लिया है।

यदि (१) नवमेश लाभेश, धनेश (द्वितीय, नवम या एकादश के स्वामी) में से कोई एक भी चन्द्रमा से केन्द्र में हो और स्वयं गुरु (बृहस्पति) ग्यारहवें घर का स्वामी हो तो अखण्ड साम्राज्य का स्वामी होता है। फलदीपिका में जो पाठ है, उसमें तृतीय चरण में 'स्वयं च' के स्थान में 'स्वगुत्र' है—जिसका अर्थ हो जायेगा कि 'यदि बृहस्पति, पंचम या एकादश' का स्वामी हो। योग अच्छा है द्वितीयेश, नवमेश या लाभेश चन्द्रमा से केन्द्र में हो तो धनकारक, भाग्यकारक है, परन्तु अखण्ड साम्राज्य पतित्व— इस योग का उत्कृष्ट फल केवल अर्थवादमात्र है ॥ ६१ ॥

यदि कोई भावेश जन्म लग्न से केन्द्र में हो तो क्या फल होता है यह वसिष्ठ जातक में दिया है। यह जातक पारिजात का राजयोगाध्याय है, इसलिये प्रसंगवश कुछ योग दिये जा रहे हैं:—

सुकृतनिलयनाथे केन्द्रगे जन्मलग्नात्
प्रभवति खलु योगः सार्वभौमाभिधानः ।
बहुतरगुणपूर्णो बुद्धिमान्दानशीलो
भवति नृपतिवर्यो धार्मिको भूपभूपः ।।
दुश्चिक्यनाथे खलु केन्द्रयाते स्यात् कल्पवृक्षो नृपयोगमुख्यः ।
जातो भवेदत्र नरेन्द्रपूज्यो गजाश्वचामीकरयुक्प्रतापी ।।
धनाधिपः केन्द्रगतः करोति श्रीवत्सयोगं जनितोऽप्ययोगे ।
धनान्वितः स्यात् विजयो नितान्तं सुकर्मकर्ता व्यवसाययुक्तः ।।
लग्नाधिपः केन्द्रगतः करोति योगाधिराजं कुलभूषणाख्यम् ।
स्ववंशराज्यादधिकः प्रतापी स्याच्चक्रवर्ती खलु तत्र जातः ।।
पुत्राधिपे केन्द्रगते च योगः स्यात्पद्मरागो नृपयोगवर्यः ।
जातोऽत्र योगेऽखिलशत्रुहन्ता महार्थयुक्तो नृपतिप्रसिद्धः ।
पुण्याधिपे पुण्यनिधानसंस्थे रत्नाञ्जलिः स्यान्नृप एष योगः ।
अस्मिन् प्रसूतो बहुभाग्ययुक्तो नरेन्द्रपूज्यो गजवाजियुक्तः ।।
राज्याधीशे केन्द्रगे सौम्यदृष्टे योगेन्द्रः स्यात् सुप्रतापाभिधानः ।
जातो नित्यं भूमिपः सेवनीयो भोगासक्तः स्वप्रतापाच्च सिद्धिः ।।
लाभाधीशे केन्द्रगे कामधेनुसंज्ञो योगो जायते तत्र जातः ।
भूमीपालैः सेवितो द्रव्ययुक्तो स्त्रीरत्नाढ्यः संग्रही बुद्धियुक्तः ।।

भद्र योग

इस योग में उत्पन्न मनुष्य का सिंह के समान आनन (चेहरा), हाथी के समान गति, पुष्ट ऊरू (जांघें) उन्नत वक्षस्थल (सीना) होता है। उसके बाहु लम्बे गोल और पुष्ट होते हैं और उन्हीं के समान उसका मान होता है। मान क्या? मूल में शब्द है 'तत्तुल्यमानोच्छ्रयः' अर्थात् यदि मनुष्य दोनों बाहुओं को फैलाकर खड़ा हो तो एक हाथ की मध्यमांगुलि अंत से दूसरे हाथ की मध्यमांगुलि अन्त तक जितनी लम्बाई हो उतनी ही यदि जातक की ऊँचाई (उच्छ्रय) हो तो मनुष्य बहुत विशिष्ट पदवी प्राप्त करता है। यहाँ 'मान' का अर्थ 'नाप' है। हम अपनी लिखी हुई पुस्तक 'हस्त रेखा विज्ञान से निम्नलिखित उद्धरण दे रहे हैं :—

स्कन्द पुराण काशी खण्ड में लिखा है कि कुंकुम से रंगे हुए सूत की तीन लड़ करे और गणेश, उमा, महेश्वर का भक्ति पूर्वक स्मरण कर उत्तराभिमुख खड़े हुए मनुष्य को पाद तल से मस्तक तक नापे। फिर उस मनुष्य से कहे कि दोनों भुजा और हाथ फैला कर खड़े हो जाओ। अर्थात् उत्तर की ओर मुख

कर खड़े हुए आदमी का दाहिना हाथ पूर्व की श्रोर श्रौर बांया हाथ पश्चिम की श्रोर कंधे के समतल फैला हुआ होगा। तव दाहिने हाथ की मध्यांगुली (बीच की उंगली) के अन्त से बांये हाथ के बीच की उंगली तक नापे। यदि यह १०८ अंगुल हो (जैसा ऊपर बताया गया है) श्रौर ऊँचाई के बराबर हो तो ऐसा मनुष्य श्रेष्ठ अधिकारी होता है।"

इसीलिए जातकपारिजात में कहा है कि बाहु लम्बे हों। बाहुओं के विषय में देखिए उपर्युक्त पुस्तक का पृष्ठ ४४६।

बाहुओं के विषय में वराहमिहिर ने कहा है :—

करिकरसदृशौ वृत्तावाजान्वलम्बिनौ समौ पीनौ।
बाहू पृथ्वीशानामधमानां रोमशौ ह्रस्वौ ॥

श्रौर भी कहा गया है :—

उद्बद्धबाहुः पुरुषो बधबन्धमवाप्नुयात्।
दीर्घबाहुर्भवेद्राजा समुद्रवचनं यथा ॥
प्रलम्बबाहुरैश्वर्यं प्राप्नुयाद् गुणसंयुतम्।
ह्रस्वबाहुर्भवेद्दासः परप्रेष्यकरस्तथा ॥
वामावर्तभुजा ये तु ये तु दीर्घभुजा नराः।
सम्पूर्णबाहवो ये तु राजानस्ते प्रकीर्तिताः ॥

पराशर भी कहते हैं कि जिसकी ऊँचाई श्रौर सवक्षस्थल बाहुओं का विस्तार (समान, तुल्य) होता है, वह राजा होता है :—

उच्छ्रायपरिणाहस्तु यस्य तुल्यं शरीरिणः।
स नरः पार्थिवः ज्ञेयः न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥

वही जातकपारिजात में कहा गया है कि मान (परिणाह) श्रौर उच्छ्रय तुल्य होते हैं।

जातकपारिजातकार श्लोक ६२ के उत्तरार्द्ध में कहते हैं कि भद्र योग में उत्पन्न व्यक्ति मानी, बन्धुजनों के उपकार में निपुण, विपुल प्रज्ञा, यश, धन वाला राजा होता है श्रौर ८० वर्ष की आयु होती है। ॥६२॥

हंसयोग

जो हंस योग में जन्म ले उसका मुख (श्रोष्ठ, तालु, जिह्वा) लाल, ऊँची नाक, अच्छे चरण (पैर), हंस के समान स्वर, कफ प्रधान प्रकृति, गौर वर्ण, सुकुमार (कोमलांगी) पत्नी, कामदेव के समान सुन्दर, सुखी, शास्त्र ज्ञान परायण, अतिनिपुण, गुणी, साधु (उत्तम) कार्य श्रौर आचार वाला होता है श्रौर

उसकी ८४ वर्ष की आयु होती है । अधरोष्ठ, जिह्वा, तालु का लाल होना सुख और सौभाग्य का लक्षण माना जाता है । यथा 'पद्मतालुर्भवेद्राजा',

वित्तोपमैरवक्रैरधरैर्भूपास्तनुभिर्ह्रस्वाः ॥

× × × ×

पद्मपत्रसमा जिह्वा सूक्ष्मा दीर्घा सुशोभना ।
न स्थूला नातिविस्तीर्णा येषां ते मनुजाधिपाः ॥
निम्ना दीर्घा च ह्रस्वा च रक्ताग्रा रसना यदि ।
सर्वविद्याप्रवक्ताऽसौ भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥
(बृहत्संहिता अध्याय ६७—भट्टोत्पली टीका) ॥६३॥

मालव्य योग

जिसका मालव्य योग में जन्म हो उसकी स्त्री के समान चेष्टा (हाथ मटकाना, चलना, लज्जा का नाट्य करना आदि), शरीर की संधियाँ ललित (मृदु और सुन्दर), सुन्दर आकर्षक नेत्र, सौन्दर्य युक्त शरीर, गुणी (अनेक सद् गुण सम्पन्न), तेजस्वी स्त्री पुत्र वाहन (सवारी से युक्त), धनी, शास्त्रों का अर्थ जानने वाला पंडित (विद्वान्), उत्साहयुक्त, प्रभुशक्तिसम्पन्न (औरों को आज्ञा देने वाला अधिकारी), मंत्रवेत्ता, चतुर, त्यागी, परस्त्रीरत (दूसरे की स्त्रियों में आसक्त) होता है और सत्तर वर्ष की आयु तक जीता है ॥६४॥

जो शश योग में उत्पन्न हो वह राजा या राजा के समान, वन और पर्वतों में रहने या घूमने वाला, सेनापति (अर्थात् उसके अधीन बहुत आदमी हों) क्रूर बुद्धि, धातु (लोहा, पीतल, चाँदी सोना) के वाद विवाद में विनोद करने वाला और ठगने वाला (भावार्थ है कि धातु का काम करे और बेईमानी से कमावे), दाता (देने वाला), जिसकी दृष्टि में क्रोध हो, तेजस्वी, अपनी माता का भक्त, शूर, श्याम वर्ण, सुखी, जार क्रिया (परस्त्री से मैथुन कार्य) स्वभाव वाला होता है और सत्तर वर्ष की आयु होती है ।

यहाँ महापुरुष समाप्त होते हैं। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री तथा अन्य जिन विद्वानों का मत है कि पाप ग्रह उच्च राशि में पाप फल करता है तथा नीच राशि में शुभ फल करता है वह इस शंका का समाधान कैसे करेंगे कि यदि वास्तव में पाप ग्रह नीच राशि में पूर्ण शुभ फल करता है तो कर्क में यदि मंगल हो तो रुचक योग क्यों नहीं कहा ? यदि मेष में शनि महान् अभ्युदय और श्रेयस्कारक हो तो नीचस्थ शनि होने से महापुरुष योग क्यों नहीं कहा ? तुला के सूर्य की इतनी निन्दा क्यों की गई है ? अध्याय ६ के श्लोक २, ६, ७, ११, १८, १९, २४,

२९, ३१, ३५, ९१, तथा अध्याय ७ के श्लोक ६, ५५, ७४, ७६, ७८, ७९ १५६ तथा अध्याय ११ के श्लोक ३, ७, आदि में नीच ग्रह की इतनी निंदा क्यों की गई है ? ॥६५॥

यस्य योगस्य यः कर्ता बलवान् जितदृग्युतः।
अधियोगादियोगेषु स्वदशायां फलप्रदः ॥ ६६ ॥

यह श्लोक गर्गहोरा से लिया गया है। कहते हैं कि अधियोग आदि योगों में (जो आगे इसी अध्याय के श्लोक ११३-११५ में कहे गए हैं) जो ग्रह योग करता है (अर्थात् जिस ग्रह की किसी विशेष राशि या भाव में स्थिति होने से योग उत्पन्न होता है)और जो "बलवान् जितदृग्युत" होता है उसकी दशा में योग फल की प्राप्ति होती है। ग्रह युद्ध में जीतने हारने की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :—

दक्षिणदिक्स्थः परुषो वेपथुरप्राप्य सन्निवृत्तोऽणुः।
अधिरूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः ॥

कहने का तात्पर्य यह है कि योग उत्पन्न करने वाला ग्रह बली हो, अन्य बली ग्रह से दृष्ट या युत हो तो शुभ फल करता है; किन्तु यदि योग करने वाला निर्बल (नीच शत्रु ग्रह में स्थित, अस्त आदि) से युत, दृष्ट हो तो योग का शुभ फल नहीं होता ॥६६॥

भास्करयोग

भानोरर्थगते बुधे शशिसुताल्लाभस्थितश्चन्द्रमा-
श्चन्द्रात्कोणगतैः पुरन्दरगुरुर्योगस्तदा भास्करः।
शूरो भास्करयोगजः प्रभुसमः शास्त्रार्थविद्रूपवान्
गान्धर्वश्रुतिवित्तवान् गणितविद्धीरः समर्थो भवेत् ॥ ६७ ॥
चन्द्राद्विक्रमगः कुजोऽवनिसुतादस्ते शनिः सूर्यजा-
दस्ते दैत्यगुरुः सितान्मदनगो जीवो यदीन्द्राह्वयः।
ख्यातस्तत्र भवः सशीलगुणवान् भूपोऽथवा तत्समो
वाग्मी वित्तविचित्रभूषणयशोरूपप्रतापान्वितः ॥ ६८ ॥
शुक्रात् कोणगतो गुरुः सुरगुरोः पुत्रे शशी शीतगोः
केन्द्रस्थानसमाश्रितो दिनकरो योगो मरुत्संज्ञकः।

वाग्मी वायुभवो विशालहृदयः स्थूलोदरः शास्त्रवित्
सम्पन्नः क्रयविक्रयेषु कुशलो राजाऽथवा तत्समः ॥ ६९ ॥
लग्नेड्यो गुरुकेन्द्रगो हिमकरश्चन्द्राद्दर्हिवित्तगः
सौर्यंस्थानगतौ च भानुरुधिरौ योगो बुधः कीर्तितः ।
राजश्रीबुधयोगजोऽतुलबलप्रख्यातनामा विदुः
शास्त्रज्ञानकरक्रियासु चतुरो धीमानशत्रुर्भवेत् ॥ ७० ॥
लग्नस्थिते हिमकरे यदि वा मदस्थे
केमद्रुमो भवति जीवदृशा विहीने ।
अत्यल्पविन्दुसहिता यदि खेचरेन्द्राः
केमद्रुयोगफलदा विबलाश्च सर्वे ॥ ७१ ॥
द्वितीये द्वादशे पार्श्वे द्वये खेचरसंयुते ।
शीतांशोः सुनफायोगस्त्वनफा नाम कीर्तितः ॥ ७२ ॥

इन श्लोकों में ग्रहों की भिन्न-भिन्न स्थितिवश भास्कर इन्द्र, मरुत्, सुनफा, अनफा, धुरन्धरा, केमद्रुम, दरिद्र आदि योग कहे गए हैं । उनकी क्रमशः व्याख्या की जाती है :—

भास्कर योग—यदि सूर्य के दूसरे घर में बुध हो, बुध से ग्यारहवें घर में चन्द्रमा हो, चन्द्रमा से पांचवें या नवें घर में बृहस्पति हो तो भास्कर योग होता है ।

६७ (१)
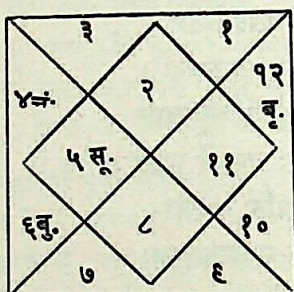
६७ (२)
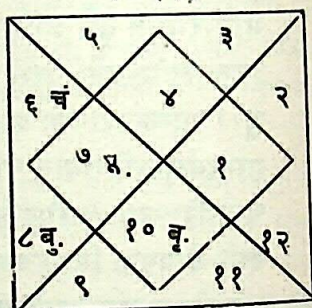
इन दोनों कुण्डलियों में भास्कर योग है । विवेचना बाद में की जायेगी । जो भास्कर योग में उत्पन्न हो वह शूरवीर, प्रभु (कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं शक्तः) के समान, शास्त्रज्ञ, सौन्दर्यवान्, गान्धर्व (गाना बजाना आदि ललित

कलाओं) में निष्णात, धनी, गणितज्ञ, धीर और समर्थ होता है। अब आप ऊपर दी गई दोनों उदाहरण कुण्डलियों पर दृष्टि डालिए। कुण्डली ६७ (१) में सब ग्रह अपनी-अपनी राशियों में हैं। कुण्डली ६७ (२) में कोई ग्रह अपनी राशि में नहीं, प्रत्युत सूर्य और बृहस्पति अपनी-अपनी नीच राशि में हैं। जैसे किसी के पास दो कोट हों। शरीर में फिट तो दोनों हो जायें—परन्तु एक टाट का हो, दूसरा पशमीने का। इसी प्रकार अच्छे या अनिष्ट जो भी योग ग्रंथों में दिए हों, उन्हें किसी कुण्डली में अक्षरशः फिट होने से अक्षरशः उन योगों का फल होगा यह नहीं समझ लेना चाहिए। भगवान् ने जो आपको बुद्धि दी है, उसका फिर क्या उपयोग होगा ? ॥६७॥

इन्द्र योग—यदि चन्द्रमा से तृतीय मंगल हो, मंगल से सप्तम शनि हो, शनि के सप्तम शुक्र हो, शुक्र से सप्तम बृहस्पति हो तो इंद्र योग होता है। इसको संक्षेप में इस प्रकार भी कह सकते हैं कि यदि चन्द्रमा से तृतीय मंगल शुक्र हों और चन्द्रमा से नवम बृहस्पति तथा शनि हों तो इंद्र योग होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति विख्यात शीलवान्, वाग्मी, धनी, अद्भुत आभूषणों से युत, रूपवान्, प्रतापी, यशस्वी राजा या राजा के समान होता है। मंगल शुक्र एक राशि में हुए उनके ठीक सामने की राशि में बृहस्पति शुक्र हुए। ऐसा उदाहरण नहीं हो सकता जहां भाव, भावेश, राशि सभी दृष्टि कोणों से उत्तम योग बने, तथापि उदाहरण दिया गया है ॥६८॥

(६८)
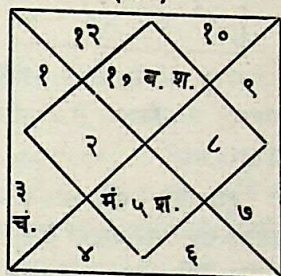
मरुत् योग—यदि शुक्र से पंचम या नवम बृहस्पति हो, बृहस्पति से पंचम चन्द्रमा हो, चन्द्रमा से केन्द्र में सूर्य हो तो मरुत् योग होता है। विचार करने से स्पष्ट होगा कि यदि बृहस्पति शुक्र से पंचम (कोण) हो तो बृहस्पति से पंचम चन्द्र, शुक्र से नवम हुआ। और चन्द्रमा से केन्द्र में सूर्य कहा है इसलिए, चन्द्रमा से पंचम शुक्र होने के कारण सूर्य चन्द्रमा से चतुर्थ में होना चाहिए, क्योंकि शुक्र से अधिक दूर सूर्य नहीं हो सकता। देखिए उदाहरण ६९ (१)।

यदि शुक्र से नवम (कोण) बृहस्पति मानें तो बृहस्पति से पंचम वही राशि होगी, जिसमें शुक्र है और शुक्र तथा चन्द्रमा, एक ही राशि में होंगे। चंद्र से केन्द्र—केवल उसी राशि में जिसमें चंद्रमा है सूर्य हो सकता है, क्योंकि शुक्र (जो चंद्रमा के साथ है) से अधिक दूर चंद्रमा नहीं जा सकता। देखिए उदाहरण

६९ (२) सूर्य, चन्द्र, शुक्र एक राशि में होंगे। चन्द्रमा का पक्ष बल क्षीण होगा। एतावन्मात्र शुभता है कि तीनों बृहस्पति दृष्ट होंगे। यहाँ ६९ (१) में जो योग दिया है, उस योग में यदि सूर्य को सम्मिलित न करें जो योग बनता है उसे पाश्चात्य ज्योतिष में ग्रैंड ट्राइन कहते हैं। इसका अर्थ है कि यदि तीन ग्रह भिन्न राशियों में बैठ कर एक दूसरे से, दूसरा तीसरे से, तीसरा पहिले से त्रिकोण में हो तो ग्रैंड ट्राइन कहलाता है। बहुत शुभ माना जाता है। विशेष यह है कि वहाँ त्रिकोण स्थिति, दीप्तांशवि १२०° मानी जाती है।
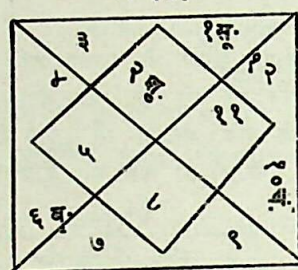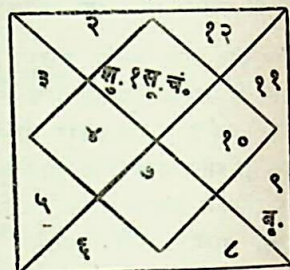
मरुत् योग में उत्पन्न व्यक्ति वाग्मी, विशाल हृदय, स्थूलोदर, शास्त्रज्ञ, सम्पन्न, क्रय-विक्रय में कुशल होता है और राजा हो या राजा के समान हो ॥६९॥

बुध योग—यदि लग्न में बृहस्पति, बृहस्पति से केन्द्र में चन्द्रमा, चन्द्रमा से द्वितीय राहु तथा चन्द्रमा से तृतीय में सूर्य तथा मंगल हो तो बुध योग होता है। चन्द्रमा यदि (१) बृहस्पति के साथ हो (२) उससे चतुर्थ हो (३) उससे सप्तम हो, (४) उससे दशम हो—इस प्रकार चार प्रकार की गृह स्थिति होगी। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति राजश्री से युक्त, अत्यन्त बलवान्, प्रख्यात नाम वाला, शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान्, शत्रुरहित होता है। चतुर्थ चरण में 'करक्रियासु चतुरः' लिया है। कर (जमीन का, सम्प्रति आय कर, बिक्री कर आदि) क्रियाओं में चतुर। एक अन्य मुद्रित पुस्तक में पाठ है 'क्रयविक्रयेषु चतुरः' क्रय विक्रय में कुशल। यह विशेष उपयुक्त है ॥७०॥

केम द्रुम योग—यह ज्योतिष में बहुचर्चित योग है। परन्तु केमद्रुम नाम से जो योग प्रसिद्ध है, उसका विवेचन ग्रंथकार ने आगे ८३वें श्लोक में किया है। अन्य योगों को भी ग्रंथकार ने केमद्रुम संज्ञा दी है।

यदि चन्द्रमा लग्न या सप्तम में हो और उस पर बृहस्पति की दृष्टि न हो, सब ग्रह बहुत न्यून बिन्दु युक्त अपने-अपने अष्टक वर्ग में हों

(इसको समझने के लिए देखिए अध्याय १०) और निर्बल हों तो केमद्रुम का फल होता है अर्थात् जातक दरिद्र होता है ।।७१।।

यदि चन्द्रमा से द्वितीय स्थान (राशि) में कोई ग्रह हो (यहाँ सूर्य राहु और केतु न योग बनाते हैं न बिगाड़ते हैं, इस कारण कोई ग्रह से तात्पर्य मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि से है) तो सुनफा योग होता है । यदि चन्द्रमा से बारहवें घर में कोई ग्रह हो (कोई ग्रह का अर्थ जो ऊपर कहा है, वही लेना) तो अनफा योग होता है । यदि चन्द्रमा से द्वितीय में तथा द्वादश में—दोनों अगल-बगल के घरों में—मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि इनमें से कोई ग्रह हो—एक घर में एक या अधिक, किन्तु चन्द्रमा से द्वितीय तथा द्वादश दोनों में होने चाहिएँ तो धुरन्धरा योग होता है । बहुत से ग्रंथों में दुरुधरा लिखा है । इन तीनों में, द्वितीय या द्वादश में (चन्द्रमा राशि से) यदि सूर्य होता है, तो वह योग नहीं बनाता है । परन्तु यदि मान लीजिए चन्द्रमा से द्वितीय में सूर्य और बुध हों तो सुनफा योग होगा । इन योगों में यदि सूर्य योगकारक नहीं होता तो योगनाशक भी नहीं होता । यदि सुनफा, अनफा, धुरंधरा इन तीनों में से कोई भी योग न हो तो केमद्रुम योग होता है, इसका फल दरिद्रता है ।

यह सुनफा, अनफा, दुरुधरा योग प्रायः सभी प्रसिद्ध ज्योतिष के ग्रंथों में दिए गए हैं । कोई एक ग्रह चन्द्रमा से द्वितीय में हो तो—५ प्रकार (मंगल हो तो पहला, बुध हो तो दूसरा इत्यादि), कोई दो ग्रह चन्द्रमा से द्वितीय हों तो १० प्रकार, कोई तीन ग्रह चन्द्रमा से द्वितीय हों तो १० प्रकार और कोई चार ग्रह वहाँ हों तो ५ प्रकार, और यदि पाँच ग्रह चन्द्रमा से द्वितीय में हों तो १ प्रकार । इस प्रकार सुनफा के ३१ भेद हुए । इसी प्रकार अनफा के ३१ भेद होते हैं । इसी प्रकार दुरुधरा के १८० भेद होते हैं । ग्रंथों में केवल एक ग्रह मंगल, बुध आदि चन्द्रमा से द्वितीय में हो तो सुनफा का फल प्रत्येक ग्रह जनित योग के कारण, इसी प्रकार अनफा का फल दिया है । कोई से दो ग्रहों के चन्द्रमा के पार्श्व की राशियों में स्थित होने का दुरुधरा का फल दिया है । यदि एक से अधिक ग्रह सुनफा या अनफा योग करता हो, या दो अधिक ग्रह दुरुधरा योग करते हों तो—जो ग्रह योगकारक हों उनके फलों को मिश्रित कर फलादेश में अपनी बुद्धि से तारतम्य करना चाहिए ।

बृहज्जातक के चान्द्र योगाध्याय में सुनभा, अनभा (कोई सुनफा, अनफा कहते हैं) का जो फल दिया है उसका विवेचन आगे इसी अध्याय में करेंगे ।।७२।।

दरिद्र योग

योगो धुरन्धुराख्यः स्याद्विना सर्वत्र भास्करम् ।
एतद्योगत्रयाभावे केमद्रुमफलं वदेत् ।। ७३ ।।

चन्द्रे सभानौ यदि नीचदृष्टे पापांशके याति दरिद्रयोगम् ।
क्षीणेन्दुलग्नान्निधने निशायां पापेक्षिते पापयुते तथा स्यात् ।।७४।।

विधुन्तुदादिग्रहपीडितेन्दौ पापेक्षिते चाशु दरिद्रमेति ।
लग्नाच्चतुष्केन्द्रगृहे सपापे निशाकराद्वाऽऽशु दरिद्रमेति ।। ७५ ।।

चन्द्रे पराजितशुभग्रहदृष्टियुक्ते
राह्वादिपीडिततनौ तु दरिद्र एव ।
नीचारिवीक्षणयुते रिपुराशिवर्गे
चन्द्रे तुलाधरगते तु तथा वदन्ति ।। ७६ ।।

केन्द्रे वा यदि कोणगे हिमकरे नीचारिवर्गस्थिते
चन्द्रादन्त्यसपत्नरन्ध्रगृहगे जीवे दरिद्रो भवेत् ।
पापांशे रिपुवीक्षिते चरगृहे चन्द्रे चरांशेऽथवा
जातो याति दरिद्रयोगमतुलं देवेज्यदृग्वर्जिते ।। ७७ ।।

अन्योन्यदृष्टौ शनिदानवेज्यौ नीचारिपापग्रहवर्गयातौ ।
एकर्क्षगौ वा यदि राजवंशे जातोऽपि केमद्रुमयोगमेति ।। ७८ ।।

चन्द्रे पापयुते तु पापभवने पापांशके वा निशि
व्योमेशेन निरीक्षिते गतबले केमद्रुयोगो भवेत् ।
भाग्यस्थानपवीक्षिते खलयुते नीचांशकेऽब्जे तथा
चन्द्रे नीचयुते निशि क्षयतनौ जातस्य केमद्रुमः ।। ७९ ।।

निशाकरे केन्द्रगते भृगौ वा जीवेक्षिते नैव दरिद्रयोगः ।
शुभान्विते वाऽशुभमध्यगेन्दौ जीवेक्षिते नैव दरिद्रयोगः ।। ८० ।।

चन्द्रेऽतिमित्रनिजतुङ्गगृहांशकस्थे
जीवेक्षिते यदि दरिद्रतया विहीनः ।
पूर्णे तनौ शुभयुते दिवि तुङ्गयाते
जीवेक्षिते हिमकरे न भवेद्दरिद्रः ।। ८१ ।।

योगे केमद्रुमे प्राप्ते यस्मिन् कस्मिंश्च जातके ।
राजयोगा विनश्यन्ति हरिं दृष्ट्वा यथा द्विपाः ।। ८२ ।।

श्लोक ७३ का सम्बन्ध श्लोक ७२ के साथ है इसे समझने के लिये देखिये पृ० ४८५, पंक्ति १३-१६

अब श्लोक ७४ से ७७ तक कुछ योग कहे गए हैं, जिनका फल यह है कि जातक दरिद्र होता है। दरिद्र योग का वही फल है जो केमद्रुम का।

श्लोक ७४ में दो योग कहे गए हैं :—

(१) चन्द्रमा यदि सूर्य के साथ हो, पाप ग्रह के नवांश में हो और नीच राशि गत ग्रह से दृष्ट हो तो दरिद्र होता है। चन्द्रमा लक्ष्मी का सहोदर है, सम्पत्तिकारक है। सूर्य के साथ होने से पक्षबल समाप्त हो गया। यदि चन्द्रमा के अंश सूर्य के अंश से कम हो तो कृष्ण पक्ष का चन्द्र होने से और भी निष्कृष्ट हो जायेगा। पाप ग्रह के नवांश में होने से दुष्टतर फल और नीच राशि गत ग्रह से दृष्ट होने से दुष्टतम फल।

(२) लग्न से अष्टम क्षीण चन्द्रमा हो, पाप ग्रह के साथ हो तो जातक दरिद्र हो। क्षीण चन्द्र क्या? वैसे साधारण अर्थ में चन्द्रमा की जब थोड़ी कला हों तो वह पुष्ट नहीं होता, क्षीण होता है किन्तु ज्योतिष में क्षीण चन्द्र एक पारिभाषिक शब्द हो गया है। बृहज्जातक अध्याय २ श्लोक ५ में आया है 'क्षीणेन्दुः अर्थात् क्षीण चन्द्रमा। इसकी व्याख्या करते हुए रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं—क्षीणेन्दुः "अमावास्याचतुर्दश्योः क्षीणे चन्द्रो न सर्वदा" इति चन्द्रस्यापरपक्षावसान एव पापत्वम्।

चन्द्रमा—शुक्ल और कृष्ण पक्ष भेद से, दिन और रात्रि भेद से, दृश्यमान और अदृश्यमान भेद से कब शुभ और कब पाप होता है, इसका विवेचन हम इसी अध्याय के श्लोक ५० की टीका में कर चुके हैं। वह भी द्रष्टव्य है। चन्द्रमा सब ग्रहों में प्रधान है (जन्म कुंडली में) इसलिए चन्द्रमा के बलवान् विज्ञान के सम्बन्ध में जातकसारदीप के प्रणेता नृसिंह दैवज्ञ अध्याय ८३ के १-५ में कहते हैं कि चन्द्रमा के तीन आरोह अवरोह का विचार कर चन्द्रमा की दशा का शुभाशुभ फल कहना चाहिए : प्रथम—तिथि के दृष्टिकोण से—शुक्ल प्रतिपद् से पूर्णिमा तक आरोह; पूर्णिमा से अमावास्या तक अवरोह। द्वितीय—जिस समय समुद्र में जल उठ रहा हो तब आरोह, जब समुद्र में जल नीचे जा रहा हो तब अवरोह। यह समुद्र में ज्वार भाटा के कारण होता है। तृतीय—वृश्चिक के ३ अंश से वृष के २ अंश तक आरोह तथा वृष के ३ अंश से वृश्चिक के ३ अंश तक अवरोह। यदि जन्म कुंडली के चन्द्रमा में तीन प्रकार का अवरोह हो तो चन्द्रमा की दशा बहुत शुभ होती है। यदि तीनों प्रकार का अवरोह हो तो चन्द्रमा की दशा का निकृष्ट फल होता है।

'अथ होरासारोक्तचन्द्रदशाध्यायः षड्शीतितमः । चन्द्रदशायाः षट् भेदाः' सामान्यतश्च षोढा भिद्यते समासेन ।

शुक्लस्य प्रथमतिथेरारभ्यारोहि संज्ञिता शशिनः ।
कृष्णाद्यप्रभृति मासांतं चावरोहिणी ख्याता ।।
जलधिजलोत्थितकाले सूतौ दशा शशांकस्य ।
आरोहिणीति संज्ञा विपरीता साऽवरोहिणी ख्याता ।।
नीचा च्युतस्य हि दशा हिमगोरारोहिणी कथिता ।
तुंगाच्च्युतस्य तु दशाऽवरोहिणी निगदिता शशिनः ।।
रोहावरोहभेदाः सम्यक् विविधा पुरातनैः कथिताः ।
आरोहत्रययुक्ता चन्द्रदशा सर्वकार्यकरी ।।

इसके संस्कृत टीकाकार समुद्र का जल कब चढ़ता है, कब उतरता है, इसके विषय में लिखते हैं······"एवं दशमभावे भोग्यभागाः एकादशद्वादशभावौ, लग्ने भुक्तभागाः, चतुर्थभावे भोग्यभागाः, पंचमषष्ठभावौ सप्तमभावे भुक्तभागाश्च यदा चन्द्रयुता भवन्ति तदा समुद्रे जलाभिवृद्धिर्भवति । एतेभ्योऽन्यत्र गते चन्द्रे जलह्रासो भवति । जलाभिवृद्धिभावगते चन्द्रे आरोहिणी चन्द्रदशा । जलह्रासभावगते चन्द्रे अवरोहिणी चन्द्रदशा । इमे दश समुद्रजलाभिवृद्धिकृते ।।"

प्रसंग से चंद्रमा के बलाबल, शुभाशुभ के विषय में जो यहाँ तथा इसी अध्याय के श्लोक ५० की व्याख्या में कहा गया है, उन नियमों को केवल इस अध्याय के श्लोक ५० तथा श्लोक ७४ के पूर्वार्द्ध में ही लागू नहीं करना चाहिए अपितु इस समस्त ग्रंथ में—इस ग्रंथ में ही नहीं अपितु समस्त ज्योतिष ग्रंथों में—जहाँ-जहाँ चन्द्रमा का उल्लेख हो—लागू करना चाहिए । अब जातक पारिजातकार ने श्लोक ७४ के उत्तरार्द्ध में एक योग दिया है, वह कहते हैं :—

(२) यदि लग्न से अष्टम में क्षीण चन्द्रमा हो, रात्रि का जन्म हो, चन्द्रमा पापयुत, पापदृष्ट हो तो दरिद्रयोग होता है । ।।७४।।

श्लोक ७५ में दरिद्रता के अन्य दो योग कहे गए हैं :—

(१) यदि चन्द्रमा राहु आदि (पाप) ग्रह से पीड़ित हो, पापग्रह दृष्ट हो तो दरिद्र होता है । पीड़ित क्या ? पापग्रह के साथ, पापग्रह की राशि में, पापग्रह के नवांश या अन्य वर्गों में ग्रह को पापग्रह से पीड़ित कहते हैं । राहु तो राशि, नवांश या किसी वर्ग का स्वामी होता नहीं । इसलिए राहु केवल अपनी युति से चन्द्रमा को पीड़ित कर सकता है । दश वर्ग में (होरा, द्रेष्काण आदि में) ग्रह शुभ है या अशुभ—यह विचार करने की दो पद्धतियाँ हैं । प्रथम—ग्रह अपने उच्च, स्व, अधिमित्र, सम, शत्रु या अधि शत्रु किस प्रकार के वर्गों में

हैं। द्वितीय—कितने शुभ वर्गों में हैं कितने पाप वर्गों में। जो अधिक पाप वर्गों में हो उसे अच्छा नहीं मानते।

(२) लग्न या चन्द्रमा से यदि चारों केन्द्रों में पाप ग्रह बैठे हों तो दरिद्र होता है।

७४-२ (अ)

७४-२ (आ)
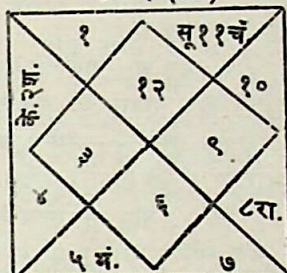
केवल यह योग मात्र होने से—या किसी योग मात्र से, ऐसा ही होगा, यह नहीं कहा जा सकता। यह योग दरिद्रता का हेतु है, यह कहना चाहिए। समष्टि फल—किसी भी कुण्डली के सर्वांगीण विचार से यह कहना उचित है ॥७५॥

श्लोक ७६ में २ योग कहे गए हैं :—

(१) यदि चन्द्रमा 'ग्रह युद्ध में पराजित' शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो और राहु आदि से पीड़ित (अर्थात् राहु योग से चन्द्र बिंब दूषित हो—जैसा ग्रहण में होता है; अथवा राहु से युति मात्र को भी पीड़ित अवस्था कह सकते हैं) तो दरिद्र होता है। इस श्लोक में यह सिद्धांत बताया गया है कि पराजित ग्रह नैसर्गिक शुभ होने पर भी पाप हो जाता है। कैमुतिक न्याय से पाप ग्रह और भी पाप हो जायेगा।

(२) यदि चन्द्रमा अपने शत्रु के राशि और वर्गों में हो, तुला में हो नीचस्थ ग्रह के साथ हो, नीच ग्रह से दृष्ट हो तो दरिद्र होता है। यहाँ तुला का क्यों निर्देश किया? क्योंकि तुला में नीच राशि का सूर्य होगा और तुला में नीचस्थ सूर्य के साथ होने मात्र का दोष नहीं होगा अपितु सूर्य के सान्निध्य से हीन पक्ष बली भी होगा। किसी एक सिद्धांत से अनेक सिद्धांत निकलते हैं। यह शास्त्र की शैली है। मान लीजिए किसी जन्मकुण्डली में सूर्य चन्द्र एक साथ हैं। चन्द्रमा सूर्य एक राशि में होने से चन्द्रमा सभी राशियों में बलहीन होगा। शुक्ल या कृष्ण का चन्द्रमा है, तज्जनित तारतम्य पहिले समझा चुके हैं। उसका विचार यहाँ नहीं करना है, न किस भाव का स्वामी सूर्य है, किस भाव का चन्द्रमा इनका तुलनात्मक विवेचन करना है। न किस भाव में यह हैं—इनका विवेचन करना है। यहाँ केवल सूर्य

चन्द्र युति के फल का तारतम्य करना है। अतः प्रश्न उठता है कि मेष, वृष, तुला या वृश्चिक में सूर्य-चन्द्र युति का समान फल होगा ? नहीं। क्यों ? क्योंकि

(i) मेष में—मेष में सूर्य मित्र राशि में, चन्द्रमा सम राशि में हुआ। मेष में सूर्य उच्च होता है। अतः पक्षबलहीन भी चन्द्रमा मित्र राशि में, उच्चस्थ ग्रह (सूर्य) के साथ होगा।

(ii) वृष में—सूर्य की शत्रु राशि, चन्द्रमा की सम राशि होकर भी (क्योंकि शुक्र चन्द्रमा का सम है) उच्च राशि है।

(iii) तुला में—सूर्य न केवल अपनी शत्रु राशि में होगा अपितु अपनी नीच राशि में भी होगा। चन्द्रमा सम राशि में होकर भी नीचस्थ ग्रह (सूर्य) के साथ होगा। यहाँ एक सूक्ष्म सिद्धान्त की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है। शुक्र क्योंकि चन्द्रमा का सम है, वृष राशि का स्वामी होने के कारण शुक्र चन्द्रमा का मित्र होना चाहिए, तुला राशि का स्वामी होने के कारण शत्रु हुआ। एक हेतु से मित्र अन्य हेतु से शत्रु होने के कारण सम हुआ (मित्रता और शत्रुता का हेतु ज्ञात करने के लिए देखिए अध्याय २ श्लोक ४२-४५)। अतः किसी सम ग्रह की दोनों राशियों का विचार कीजिए—कौन-सी मित्रता का हेतु है, कौन-सी शत्रुता का जिसके परिणाम स्वरूप सम हुआ। जो राशि मित्रता का हेतु है वह अच्छी, जो शत्रुता का हेतु वह निन्दित, यह सामान्य सिद्धान्त है। अतः तुला चन्द्रमा के लिए निन्दित हुई।

(iv) वृश्चिक में—सूर्य मित्र राशि में, चन्द्रमा सम राशि में हुआ किन्तु चन्द्रमा नीच राशि में हुआ।

प्रस्तुत योग में नीचस्थ ग्रह से चन्द्र युति का दुष्फल बताया है। इस कारण तुला का उल्लेख किया है ॥७६॥

श्लोक ७७ में दो योग कहे गए हैं।

(१) यदि लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में चन्द्रमा अपने नीच या शत्रु वर्गों में हो और चन्द्रमा से १२वें छठे, या अष्टम में बृहस्पति हो तो दरिद्र होता है। फलदीपिका में भी कहा है कि यदि बृहस्पति से छठे, आठवें या बारहवें चन्द्रमा हो तो शकट योग होता है। शकट योग का फल है कि जातक अत्यन्त दुःखी होता है। उसके हृदय में ऐसा दुःख का काँटा लगा होता है कि उससे छुटकारा पाना कठिन है। ऐसा व्यक्ति प्रसिद्धि प्राप्त नहीं करता और साधारण जीवन व्यतीत करता है। कभी-कभी भाग्य में उपचय हो जाता है, कभी अपचय। शकट (गाड़ी के पहिये) की भाँति कभी (भाग्य में) ऊपर जाता है, कभी नीचे।

जातकपारिजात और फलदीपिका—दोनों मान्य ग्रंथों में जो योग दिया है, उसमें अन्तर है। प्रथम तो यह कि जातकपारिजात में योग का एक आवश्यक अंग है कि चन्द्रमा लग्न से केन्द्र या कोण में हो 'केन्द्रे वा यदि कोणगे हिम-करे'। इसके विरुद्ध, फलदीपिका में दिए हुए श्लोक में कहा है :

जीवादन्त्यारिसंस्थे शशिनि तु शकटः केन्द्रगे नास्ति लग्नात् अर्थात् बृहस्पति से द्वादश, षष्ठ या अष्टम में चन्द्रमा हो तो शकट योग होता है, किन्तु यदि चन्द्रमा लग्न से केन्द्र में हो तो यह योग नहीं होता। यह दोनों ग्रंथों में कथित योग में प्रथम वैषम्य है। द्वितीय अन्तर यह है कि जातकपारिजात के अनुसार चन्द्रमा नीच या शत्रु वर्ग में होना चाहिए। इसका उल्लेख फलदीपिका में बिलकुल नहीं है। इसी अध्याय के श्लोक १०८ में जातकपारिजातकार कहते हैं कि चन्द्रमा से षष्ठ या अष्टम में बृहस्पति हो और बृहस्पति केन्द्र में न हो तो शकट योग होता है। इस श्लोक के अनुसार बृहस्पति केन्द्र में न हो तो शकट योग होता है फलदीपिका के अनुसार चन्द्रमा केन्द्र में न हो तो शकट योग होता है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि वर्ग शब्द से क्या अर्थ लिया जाए—षड् वर्ग, सप्त वर्ग या दश वर्ग। चन्द्रमा का कोई ग्रह शत्रु नहीं। चार ग्रह मंगल बृहस्पति, शुक्र तथा शनि इसके सम हैं, सूर्य, बुध, इसके मित्र हैं। तब इन चारों में जो तात्कालिक शत्रु हैं, वही पंचधा विचार में शत्रु हो सकते हैं—इन चारों की १, २, ७, ८, ९, १०, ११, १२ यह आठ राशियाँ हैं, इस कारण यदि चन्द्रमा इन आठ राशियों के वर्ग में हो तो शत्रु वर्ग में होगा। दश वर्ग को या सप्त वर्ग को यदि छोड़ भी दें, केवल षड्वर्ग तक अपनी दृष्टि सीमित रखें तो भी षड्वर्ग शुद्ध प्रायः ग्रह मिलता नहीं। तब क्या वर्ग से केवल राशि लिया जाए। यदि केवल राशि लेते हैं तो ग्रंथकार ने वर्ग क्यों लिया। इस प्रकार की शंका स्वाभाविक है। प्राचीन ग्रंथकारों ने इस प्रकार कतिपय स्थानों में सन्देह और शंका के स्थल छोड़ दिए हैं। किसी भी श्लोक का शब्दार्थ या भावार्थ समझ लेना एक बात है और उसे लागू कर फल निर्देश करना अन्य। ज्योतिष व्यवहारोपयोगि शास्त्र है, इस कारण नियम ऐसा होना चाहिए कि निरस्तशंकाकुलित मानस उसका उपयोग कर सके।

तृतीय भेद जो वैद्यनाथ दीक्षित (जातकपारिजातकार) और मंत्रेश्वर (फलदीपिका के प्रणेता) में है वह यह कि मंत्रेश्वर के अनुसार बृहस्पति से छठे, आठवें, बारहवें चन्द्रमा हो और वैद्यनाथ के अनुसार चन्द्रमा से छठे, आठवें, बारहवें बृहस्पति हो। जहाँ तक छठे, आठवें होने का प्रश्न है कोई अन्तर नहीं पड़ता—चाहे चन्द्रमा से छठे, आठवें बृहस्पति कहिये या बृहस्पति

से छठे आठवें चन्द्रमा कहिए, दोनों की षडाष्टक स्थिति का उल्लेख है—वह दोनों स्थिति में होती है। परन्तु चन्द्रमा से बारहवें बृहस्पति हो यह वैद्यनाथ कहते हैं और बृहस्पति से बारहवें चन्द्रमा हो यह मंत्रेश्वर कहते है। यह भेद है।

अब एक अन्य दृष्टि कोण से विचार कीजिये। चन्द्रमा से बारहवें बृहस्पति हो तो अनफा योग सभी ग्रंथकारों ने अच्छा माना है। इस ग्रंथ में भी उत्तम फल दिया है। यदि चन्द्रमा से द्वितीय में बृहस्पति हो सभी ज्योतिष की पुस्तकों ने धनी आदि शुभ फल दिया है। देखिए इसी अध्याय के श्लोक ८८ तथा ९३। तव इस जगह इस श्लोक ७७ में अशुभ फल क्यों? क्योंकि चन्द्रमा नीच, शत्रु वर्ग में हो तो चन्द्रमा के स्वतः निर्बल्य के कारण, बृहस्पति के द्वितीय या द्वादश के शुभ फल का निराकरण हो जाता है। ऐसी स्थिति में ग्रंथकार को केवल चन्द्रमा के निर्बल्य से-दरिद्रता कहनी चाहिये। तब उससे द्वितीय या द्वादश में बृहस्पति हो यह उल्लेख क्यों किया? क्योंकि इन स्थानों से बृहस्पति की दृष्टि चन्द्रमा पर नहीं पड़ेगी और बृहस्पति की दृष्टि जनित दोष मार्जन की जो संभावना है उसका निराकरण हो जाता है।

अब बृहस्पति यदि चन्द्रमा से षष्ठ या अष्टम में हो तो सभी ग्रंथकारों ने इसे अधियोग मानकर बहुत शुभ फल कहा है। बृहज्जातक, फलदीपिका आदि समस्त फलित के मान्य ग्रंथों में अधियोग का जो फल कहा है वही जातक पारिजात के इसी अध्याय के ११३वें श्लोक में भी कहा है। तब चन्द्रमा से छठे बृहस्पति हो या आठवें तो श्लोक ७७ के अनुसार अनिष्ट फल कहा जाए या श्लोक ११३ के अनुसार इष्ट फल यह व्यावहारिक कठिनता ज्योतिषी को पड़ती है। इसका समाधान यह लें कि चन्द्रमा नीचारि वर्ग में निर्बल है तो अनिष्ट फल, यदि नीचारि वर्ग में नहीं है, बली है तो शुभ फल।

इस विवेचन से एक और निष्कर्ष निकलता है कि समस्त चान्द्र योगों में (चन्द्रमा से सम्बद्ध योगों में) चन्द्रमा का बल अवश्य देखना चाहिए। चन्द्रमा बली हो तभी पूर्ण शुभ फल होता है। किसी ग्रंथकार ने इस सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन कर दिया है यथा वराहमिहिर ने बृहज्जातक के चान्द्र योगाध्याय के अन्त में लिख दिया है कि कब शुभ फल, कब अशुभ फल। किसी ग्रंथकार ने इस सिद्धान्त का पृथक् प्रतिपादन नहीं किया है। कहीं अभिधा है, कहीं व्यञ्जना।

(२) अब इस श्लोक के उत्तरार्द्ध में जो योग कहा है, वह कहते हैं। यदि चन्द्रमा चर राशि अथवा चर नवांश में हो, पापग्रह के नवांश में हो, शत्रु से दृष्ट हो, उस चन्द्रमा पर बृहस्पति की दृष्टि न हो तो अत्यन्त दरिद्र होता है।

वैसे पंचधा मैत्री विचार से अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु, अधिशत्रु, इस प्रकार पाँच संज्ञा होती हैं कि बहुत से स्थलों में केवल मित्र, सम, शत्रु केवल यह तीन ही विशेषण प्रयुक्त होते हैं—यथा इसी अध्याय के श्लोक ५८ में, जिसकी व्याख्या की जा चुकी है। अथवा बृहज्जातक अध्याय २० के श्लोक १० में वराहमिहिर ने भी सुहृद् (मित्र) अरि (शत्रु), परकीय (उदासीन—अर्थात् न मित्र न शत्रु—सम) केवल तीन ही संज्ञा कही हैं:—

सुहृदरिपरकीयस्वर्क्षतुंगस्थितानाम् ।

कहीं कहीं मित्र और शत्रु केवल इन दो संज्ञाओं का उल्लेख है। यथा बृहज्जातक अध्याय ९ श्लोक ८ में :—

उपचयगृहमित्रस्वोच्चगः पुष्टमिष्टं
त्वपचयगृहनीचारातिगैर्नेष्टसंपत् ॥

अथवा अध्याय ११ श्लोक ४ में वराहमिहिर कहते हैं।

'मित्रारिस्वगृहगतेस्ततस्ततोर्यम्

अतः इन श्लोकों में जहाँ, मित्र, सम, शत्रु, अथवा मित्र, शत्रु शब्द आएँ हैं वहाँ नैसर्गिक मित्र, शत्रु अर्थ लेना उपयुक्त होगा तात्कालिक नहीं क्योंकि मंत्रेश्वर ने फलदीपिका अध्याय ४ श्लोक १० में कहा है:—

नैसर्गिकं शत्रुसुहृत्वमेव भवेत्प्रमाणं फलकारि सम्यक्
तात्कालिकं कार्यवशेन वाच्यं तच्छत्रुमित्रत्वमनित्यमेव ॥

(व्याख्या के लिये देखिये पृष्ठ ९१—भावार्थबोधिनी फलदीपिका)।

किन्तु जातकपारिजात के इस श्लोक ७७ में चन्द्रमा शत्रु से दृष्ट हो—ऐसी स्थिति में—चन्द्रमा का नैसर्गिक शत्रु कोई ग्रह होता नहीं, इस कारण तात्कालिक शत्रु यह अर्थ लेने से ही समाधान होगा ।।७७।।

यदि शुक्र और शनि नीच, शत्रु, पापग्रहों के वर्ग में स्थित होकर एक दूसरे को देखते हों या एक ही राशि में हों तो जातक चाहे राजवंश में भी उत्पन्न हो तो भी केमद्रुम योग को प्राप्त होता है अर्थात् दरिद्र होता है। यहाँ शनि और शुक्र ये दोनों—नीच शत्रु पाप ग्रह के वर्ग में हों—यह युति तथा दृष्टि दोनों योगों में लगानी चाहिए। इसमें हेतु क्या है: शुक्र निम्नलिखित का कारक

संपद्वाहनवस्त्रभूषणनिधिद्रव्याणि तौर्यत्रिकम्
भार्यासौख्यसुगन्धपुष्पमदनव्यापारशय्यालयान् ।
श्रीमत्त्वं कवितासुखं बहुवधूसंगं विलासं मदं
साचिव्यं सरसोक्तिमाह भृगुजादुद्वाहकर्मोत्सवम् ॥

(फलदीपिका अध्याय २ श्लोक ६)। शुक्र के नीच, पापारि वर्ग में होने से इन सब सुखों में ह्रास हो जायेगा। उस पर, यदि नीचारि पाप वर्ग स्थित शनि की दृष्टि होगी या ऐसे शनि की शुक्र से युति होगी तो नीम पर करेला चढ़ा वाली उक्ति चरितार्थ हो जायेगी। जातकपारिजात के इसी अध्याय के श्लोक सात में नीच या शत्रु राशि गत शुक्र की निन्दा कर चुके हैं। तथा पिछले अध्याय ६ में भी श्लोक २, १३, १७, २०, ३१ में नीच राशिगत शुक्र की निन्दा की गयी है। हमने इसी अध्याय के श्लोक ५८ में सविस्तर व्याख्या की है कि पापग्रह नीच होने से और भी दुष्ट फल करता है। यहाँ शनि का नीचारि पाप वर्ग में स्थित होना दुष्ट फल का एक हेतु कहा गया है। इससे भी श्लोक ५८ की हमारी व्याख्या पुष्ट हो जाती है ॥७८॥

श्लोक ७३ में ३ केमद्रुम (दरिद्रता) के योग कहे गये हैं :—

(१) रात्रि का जन्म हो, चन्द्रमा निर्बल हो, पापग्रह की राशि या पाप ग्रह के नवांश में स्थित हो और पापग्रह के साथ हो तथा दशमेश से दृष्ट हो तो केमद्रुम योग होता है।

(२) यदि चन्द्रमा नीच नवांश में हो, खल के साथ हो और भाग्येश से दृष्ट हो तो केमद्रुम होता है। यहाँ तृतीय तथा चतुर्थ चरण को जोड़ दिया गया है। और एक साथ चतुर्थ चरण के अन्त में फल कहा है और चतुर्थ चरण में रात्रि का जन्म कहा है। इस कारण इस योग में भी रात्रि का जन्म लेना। खल ग्रह कौन सा होता है। यह अध्याय २ श्लोक १६-१८ में कहा गया है। परन्तु खल का सामान्य अर्थ पाप ग्रह भी लिया जा सकता है।

(३) रात्रि का जन्म हो, चन्द्रमा अपनी नीच राशि में हो, क्षय तनु हो तो केमद्रुम होता है। क्षय तनु से कृष्ण पक्ष का क्षीण चन्द्रमा यह अर्थ लेना ॥७९॥

केमद्रुम योग का अपवाद

अब, यदि जन्म कुण्डली में केमद्रुम योग हो तो उसके अनिष्ट फल का नाश किन परिस्थितियों में–किन योगों से होता है, यह कहते हैं। अर्थात् केमद्रुम योग का जो फल–दरिद्रता–पूर्व श्लोकों में कहा है–वह न होकर, निम्नलिखित योग या योगों के होने से जातक धनी ही होता है–दरिद्र नहीं।

(१) यदि चन्द्रमा अपने या अधिमित्र के नवांश में हो और बृहस्पति से दृष्ट हो।

(२) यदि शुक्र केन्द्र में हो और बृहस्पति से दृष्ट हो।

(३) चन्द्रमा शुभ ग्रह के साथ हो और बृहस्पति से दृष्ट हो।

(४) यदि चन्द्रमा दो शुभ ग्रहों के मध्य में हो (अर्थात् चन्द्रमा के पीछे और आगे—अव्यवहित सान्निध्य में एक-एक शुभ ग्रह हो और चन्द्रमा बृहस्पति से दृष्ट हो ।।८०।।

निम्नलिखित योग या योगों के होने से भी केमद्रुम योग कट जाता है। और जातक दरिद्र नहीं होता अर्थात् धन संपन्न होता है :—

(५) चन्द्रमा यदि अपने अधिमित्र नवांश या वृषभ नवांश में हो और बृहस्पति से दृष्ट हो। मूल में कहा है 'निजतुंग-गृहांशकस्थे' जिसका एक टीकाकार ने अर्थ किया है कि यदि चन्द्रमा अपनी उच्च राशि में, अपने गृह या नवांश में हो। मूल के निजतुंग-गृहांशकस्थे का अर्थ है—अपना (निज) जो उच्च गृह (उच्च राशि-वृष) उसके नवांश में हो। वराहमिहिर ने बृहज्जातक के चान्द्र योगाध्याय के प्रथम श्लोक में लिखा है कि दिन का जन्म हो चन्द्रमा अपने या अधिमित्र के नवांश में हो और चन्द्रमा बृहस्पति से दृष्ट हो तो धनी होता है। भगवान्गार्गि ने भी कहा है :—

स्वांशेऽधिमित्रांशे वा संस्थिते दिवसे शशी ।
गुरुणा दृश्यते तत्र जातो वित्त-सुखान्वितः ।।
निश्येवं भृगुणा दृष्टः शशी जन्मनि शस्यते ।
विपर्ययस्थे शीतांशौ जायन्तेऽल्पधना नराः ।।

यवनेश्वर भी कहते हैं :—

स्वांशे शशी भार्गवदृष्टमूर्तिः निशीश्वरोत्पत्तिकरः प्रवृष्टः ।
तदुत्तमोद्-भूति-करः स तु स्यात् दृष्टो दिवा देवपुरोहितेन ।।

जातकपारिजातकार—वैद्यनाथ दीक्षित ने दिन, रात्रि का भेद नहीं किया है। अन्य आचार्यों ने कर्क नवांश स्थित चन्द्र यदि बृहस्पति दृष्ट हो तो शुभ फल माना है। इस कारण जातकपारिजात के 'निज तुंग' का अर्थात् स्वनवांश या उच्चनवांश यह अर्थ लिया जाए तो भी ज्योतिष सिद्धान्तानुकूल ही होगा ।

(६) यदि चन्द्रमा सम्पूर्ण बिंब (पूर्णिमा के आसपास) हो, शुभ ग्रह से युत हो, दशम स्थान में स्थित हो, बृहस्पति से दृष्ट हो। मूल में 'पूर्णे तनौ' लिखा है। अर्थात् चन्द्रमा का तनु (बिंब) पूर्ण हो। कतिपय टीकाकार 'लग्न में पूर्ण चन्द्रमा हो, शुभ ग्रह के साथ हो'—यह भी अर्थ लेते हैं।

मंत्रेश्वर ने फलदीपिका के अध्याय ७ श्लोक ७ में जहाँ पूर्ण चन्द्र सम्बन्धी राजयोग दिया है, वहाँ लिखा है कि लग्न के अतिरिक्त किसी केन्द्र में चन्द्रमा हो तब राजयोग होता है।

निषादमपि पार्थिवं जनयतीन्दुरुच्चस्वभ-
स्थितग्रहनिरीक्षितो धवलकान्तिजालोज्ज्वलः ।
विहाय तनुभं कलास्फुरितपूर्णकान्तिः शशी
चतुष्टयगतो नृपं जनयति द्विपाश्वान्वितम् ।।

इस कारण 'तनौ' का अर्थ 'लग्न में' हम उपयुक्त नहीं समझते ।।८१।।

यदि किसी जन्म कुंडली में केमद्रुम योग हो (और ऊपर श्लोक ८० तथा ८१ में कहे गए किसी योग से खण्डित न होता हो) तो कुंडली के जो अन्य राजयोग भी हों, उनका इस प्रकार विलय (लोप) हो जाता है जैसे सिंह को देखकर हाथी भाग जाते हैं ।।८२।।

हित्वाऽर्कं सुनफाऽनफादुरुधुरास्वान्त्योभयस्थैर्ग्रहैः
शीतांशोः कथितोऽन्यथा तु बहुभिः केमद्रुमोऽन्यैस्त्वसौ ।
केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते
केचित् केन्द्रनवांशकेषु च वदन्त्युक्तिप्रसिद्धा न ते ।। ८३ ।।

सूर्य के अतिरिक्त, कोई अन्य ग्रह (i) चन्द्रमा से द्वितीय में हो तो सुनफा, (ii) चन्द्रमा से द्वादश में कोई ग्रह हो तो अनफा, (iii) चन्द्रमा से द्वितीय तथा द्वादश में ग्रह हो तो दुरुधरा योग होता है । यदि चन्द्रमा से द्वितीय और द्वादश में कोई ग्रह न हो तो बहुतों ने (प्राचीन आचार्यों ने) केमद्रुम योग कहा है । किन्तु यदि जन्म लग्न से केन्द्र में ग्रह हो या चन्द्रमा से केन्द्र में कोई ग्रह हो तो भी केमद्रुम नहीं होता । यह अपना मत कहा ।

वराहमिहिर कहते हैं कि उनके मत से, लग्न से सूर्य चन्द्रमा के अतिरिक्त कोई ग्रह केन्द्र में हो, या चन्द्रमा से सूर्य के अतिरिक्त कोई ग्रह हो तो केमद्रुम योग का अपवाद होता है किन्तु 'नेष्यते'—कुछ इस मत को नहीं मानते ।

अब कुछ अन्य (आचार्यों) का मत कहते हैं कि यह योग केमद्रुम तब होता है जब (i) चन्द्रमा से चतुर्थ और दशम में कोई ग्रह न हो अथवा (ii) नवांश कुण्डली में चन्द्रमा से द्वितीय तथा द्वादश में कोई ग्रह न हो । अर्थात् चन्द्रमा से चतुर्थ में कोई ग्रह हो तो सुनफा, चन्द्रमा से दशम कोई ग्रह हो तो अनफा, चन्द्रमा से चतुर्थ तथा दशम दोनों में ग्रह हो तो दुरुधरा । इसी प्रकार नवांश कुण्डली में चन्द्रमा से द्वितीय में ग्रह हो तो सुनफा, द्वादश में कोई ग्रह हो तो अनफा, चन्द्रमा से द्वितीय तथा द्वादश दोनों में ग्रह हों तो दुरुधरा । किन्तु यह (अन्य आचार्यों का मत) प्रसिद्ध नहीं है ।

जातकपारिजात का यह श्लोक बृहज्जातक के चान्द्र योगाध्याय से लिया गया है और ऊपर जो 'अपना मत' कहा गया है वह वराहमिहिर का मत है। और अन्य मत देकर जो यह कहा गया है कि वह प्रसिद्ध नहीं है, यह भी वराहमिहिर की ही उक्ति है।

यहाँ अनफा, सुनफा, दुरुधरा, केमद्रुम प्रसंग में जो बारम्बार कोई ग्रह कहा उसमें मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र व शनि इन्ही पाँच ग्रहों का ग्रहण करना, सूर्य का नहीं। सूर्य योग उत्पन्न करने में सहायक नहीं होता है, किन्तु अन्य ग्रह योग कर रहे हों और सूर्य भी उपर्युक्त किसी स्थान में हो तो योगभंग भी नहीं होता।

बृहज्जातक के इस श्लोक की टीका में भट्टोत्पल कहते हैं :—

केन्द्रे ग्रहयुत इत्यत्र कैश्चिच्चन्द्रकेन्द्रमेव केवलं व्याख्यातं तच्चायुक्तम् .……अत्र च भगवान्गार्गिः—

व्ययार्थकेन्द्रगश्चन्द्राद् विना भानुं न चेद् ग्रहः।
कश्चित्स्याद्वा विना चन्द्रं लग्नात्केन्द्रे गतोऽथवा ॥
योगः केमद्रुमो नाम तदा स्यात्तत्र गर्हितः।
भवन्ति निन्दिताचारा दारिद्र्यापत्तिसयुताः ॥

सारावली अध्याय १३ श्लोक १-२ में भी कहा है कि चन्द्रमा या लग्न से केन्द्र में ग्रह हो तो केमद्रुम नहीं होता।

सुनफा-अनफा-दुरुधरा भवन्ति योगाः क्रमेण रवि-रहितैः।
वित्तान्त्योभयसंस्थैः कैरववनबान्धवाद्विहगैः ॥
एतेन यदा योगाः केन्द्रग्रहर्वाजतः शशांकश्च।
केमद्रुमोऽतिकष्टः शशिनि समस्तग्रहा दृष्टे ॥

यही जातकसारदीप (फलज्योतिष का प्राचीन संस्कृत ग्रंथ जिसकी पाण्डुलिपि तंजोर से मुद्रित होकर प्रकाशित हुई है) पृष्ठ ३३२ पर कहा है :—

एते योगा यदा न स्युर्योगः केमद्रुमस्तदा।
ग्रहयुक्तेक्षिते चन्द्रे लग्नकेन्द्रे न वा ग्रहः ॥

इसकी संस्कृत टीका में कहते हैं—"**अथ केमद्रुमयोगभङ्गमाह (ग्रहेति) चन्द्रे केनचिद् ग्रहेण युक्ते वा दृष्टे वा केमद्रुमो न भवति, तथा लग्नकेन्द्रे यः कश्चिद् ग्रहो यदि भवति तथापि केमद्रुमो न भवति इति भावः।**

फलदीपिका में यह भी कहा है कि कुछ आचार्यों के विचार से चन्द्रमा से केन्द्र में यदि ग्रह हो तो केमद्रुम नहीं होता। देखिए फलदीपिका पृष्ठ ११३॥

श्रुति-कीर्ति के मत से चन्द्रमा से चतुर्थ में सूर्य के अतिरिक्त कोई ग्रह होने से सुनफा, चन्द्रमा से दशम में अनफा आदि योग होते हैं।

चन्द्रात् चतुर्थैः सुनफा, दशमस्थितैः कीर्तितोऽनफा विहगैः।
उभयस्थितैर्दुरुधरा, केमद्रुमसंज्ञितोऽन्यथा योगः॥

चन्द्रमा जिस नवांश में हो, उस नवांश कुण्डली से द्वितीय में सुनफा आदि लेना यह जीवशर्मा का मत है :—

यद्राशिसंज्ञे शीतांशुर्नवांशे जन्मनि स्थितः।
तद्द्वितीयस्थितैर्योगः सुनफाख्यः प्रकीर्तितः॥
द्वादशैरनफा ज्ञेयो ग्रहैर्द्विद्वादशस्थितैः।
प्रोक्तो दुरुधरायोगोऽन्यथा केमद्रुमः स्मृतः॥

वराहमिहिर ने अपने स्वल्पजातक में, तथा स्कन्दहोरा, वृहत्प्राजापत्य में केमद्रुमादि योग कहे हैं। सत्याचार्य, गुणाकर आदि ने भी इन योगों की व्याख्या की है परन्तु पिष्टपेषण की आवश्यकता नहीं है। प्रस्तार से सुनफा ३१ प्रकार का, अनफा ३१ प्रकार का तथा दुरुधरा १८० प्रकार का होता है। यथा चन्द्रमा से कोई ग्रह द्वितीय में मंगल हो, या बुध हो इस प्रकार से ५ भेद; चन्द्रमा से द्वितीय में कोई दो ग्रह हों तो १० भेद, कोई तीन ग्रह हों तो १० भेद, कोई चार ग्रह हों तो ५ भेद और पांच ग्रह हों तो १ भेद होता है। इस प्रकार ३१ भेद हुए। ऐसे ही अन्यत्र समझना ॥८३॥

स्वयमधिगतवित्तः पार्थिवस्तत्समो वा
भवति हि सुनफायां धीधनख्यातिमांश्च।
प्रभुरगदशरीरः शीलवान् ख्यातकीर्ति-
र्विषय-सुखसुवेषो निर्वृतश्चानफायाम् ॥ ८४॥
उत्पन्नभोगसुखभाग्धनवाहनाढ्य-
स्त्यागान्वितो दुरुधुराप्रभवः सुभृत्यः।
केमद्रुमे मलिनदुःखितनीचनिःस्वाः
प्रेष्याः खलाश्च नृपतेरपि वंशजाताः॥ ८५॥

जिसकी जन्म कुण्डली में सुनफा योग-होता है, वह स्वयं धन प्राप्त करता है, राजा हो या राजा के समान हो और बुद्धिमान, धनवान् तथा ख्यातियुक्त

होता है। जो अनफा योग में हो वह प्रभु (उच्चपदाधिकारयुक्त–वास्तव में प्रभु उसे कहते हैं जो कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं शक्तः हो) स्वस्थ (रोगरहित), शीलवान्, ख्यातकीर्ति (प्रसिद्ध यश वाला) और ऐसा व्यक्ति सुन्दर वेष वाला–सांसारिक सभी सुखों का भोक्ता होता है और उसका चित्त सन्तुष्ट होता है।

जो दुरुधरा योग में जन्म ले वह विविध भेद से युक्त सुखी और त्यागशील होता है। उसके अच्छे भृत्य (नौकर) होते हैं।

सारावली अध्याय १३ श्लोक ९ में एक विशेष बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है–जिसको ज्योतिषी प्रायः विस्मरण कर जाते हैं। कहते हैं कि सुनफा आदि के फल निर्देश के समय योग कारक ग्रह मंगल आदि का बल, जातक किस देश में रहता है कहाँ का रहने वाला है, उसके कुल आदि का विचार कर फल कहे :—

भौमादीनां बलं देशं जातस्य च कुलं बुधः।
विज्ञाय प्रवदेत् सम्यक् सुनफादिकृतं फलम् ॥

जो केमद्रुम योग में उत्पन्न हो, वह चाहे राजवंश में भी उत्पन्न हो, मलिन, दुःखित, नीच, निर्धन, प्रेष्य (नीची कक्षा का भृत्य) और खल (दुर्जन) होता है। यह दोनों श्लोक बृहज्जातक के चान्द्रयोगाध्याय से लिए गए हैं ॥ ८४-८५ ॥

मंगल आदि से सुनफा योग

जातश्च भूपतिश्चण्डो हिंस्रो डिम्बः सुधीरधीः।
धनविक्रमवान् कोपी चन्द्राद्धनगते कुजे ॥ ८६ ॥
वेदशास्त्रकलागेयकुशलः सुशरीरवान्।
मनस्वी हितवाग् धर्मी चन्द्राद्वित्तगते बुधे ॥ ८७ ॥
सर्वविद्याधिकः श्रीमान् कुटुम्बी नृपवल्लभः।
राजतुल्ययशस्वी च चन्द्राद्वित्तगते गुरौ ॥ ८८ ॥
विक्रमस्त्रीधनक्षेत्रकर्मवान् बहुवित्तवान्।
चतुष्पदाढ्या राजश्रीः सिते चन्द्रात् कुटुम्बगे ॥ ८९ ॥
पुरग्रामस्थिताशेषैः पूजितो धनवान् सुधीः।
निपुणः सर्वकार्येषु चन्द्राद्वित्तगते शनौ ॥ ९० ॥

यदि कोई भी ग्रह चन्द्रमा से द्वितीय में हो या हों तो सुनफा योग होता है, उसका सामान्य फल पहिले कह चुके हैं। परन्तु प्रत्येक ग्रह के स्वभाव में कुछ

भिन्नता होती है। इस कारण यदि चन्द्रमा से द्वितीय मंगल हो तो क्या फल होगा, बुध हो तो क्या इस प्रकार पांचों ग्रहों में जो सुनफा योग कारक हो वह क्या फल करेगा यह कहते हैं।

यदि मंगल सुनफा योग करता हो तो भूपति, चण्ड (प्रचण्ड स्वभाव और कर्म वाला), क्रूर, झगड़ालू (दंगा फसाद करने वाला), धैर्यवान्, धनी, विक्रमवान् और क्रोधी होता है। यदि बुध चन्द्रमा से द्वितीय हो तो वेदशास्त्र, गानविद्या और कलाओं में कुशल, मनस्वी, हित-वाणी बोलने वाला और धार्मिक होता है। जातक का शरीर सुन्दर होता है। यदि बृहस्पति सुनफा योग करता हो तो सर्व-विद्याधिक (सबसे विद्वान् या सब विद्याओं में विद्वान्), श्रीमान् (लक्ष्मी, ऐश्वर्य, कान्ति आदि से युत), कुटुम्बी (बृहत् परिवार वाला), राजा का कृपा पात्र, राजा के समान यशस्वी (या राजा के समान और यशस्वी) होता है। यदि शुक्र चन्द्रमा से द्वितीय हो तो विक्रमी, कर्मठ, स्त्री और धन से सम्पन्न, कृषि भूमि से युक्त, बहुत धनी होता है। ऐसे व्यक्ति के पास पशु (गाय, भैंस आदि) बहुत होते हैं और राजश्री से युक्त होता है। यदि शनि सुनफा योग करे तो सब कार्यों में निपुण, धनी, बुद्धिमान् और ग्राम तथा नगर के सब लोगों से पूजित होता है—अर्थात् सब उसका मान और आदर करते हैं ॥८९-९०॥

मंगल आदि से अनफा योग

मानी रणोत्सुकः क्रोधी धृष्टश्चोरजनप्रभुः।
धीरः स्वतनुलोभी स्याच्चन्द्रादन्त्यगते कुजे ॥ ९१ ॥
गान्धर्वलेख्यपटुवाक् कविर्वक्ता सुदेहवान्।
यशस्वी राजपूज्यः स्यात् चन्द्राद्व्ययगते बुधे ॥ ९२ ॥
राजपूज्योऽतिमेधावी गाम्भीर्यगुणसत्त्ववान्।
शुचिः स्थानधनाढ्यः स्याद् चन्द्राद् द्वादशगे गुरौ ॥ ९३ ॥
युवतीजनकन्दर्पः पश्वादिधनवान् सुधीः।
धनधान्याधिकश्चन्द्रादन्त्यस्थानगते भृगौ ॥ ९४ ॥
विस्तीर्णबाहुर्गुणवान् नेता पश्वादिवित्तवान्।
गृहीतवाक्यो दुस्त्रीकश्चन्द्रादन्त्यङ्गते शनौ ॥ ९५ ॥

अब मंगल आदि जो ग्रह अनफा योग करे, उस योगकर्त्ता ग्रह के अनुसार फल कहते हैं :—

मंगल यदि चन्द्रमा से बारहवें हो तो मानी, रण के लिए उत्सुक, क्रोधी, धृष्ट (ढीठ), चोरजनप्रभु या.चोरों का स्वामी, धीर और अपने शरीर का लोभी (अर्थात् लड़ाई झगड़े में अपने शरीर की रक्षा पर विशेष ध्यान देने वाला) होता है। बुध यदि अनफायोगकारक हो तो, गान्धर्व (गाना, बजाना) विद्या लेख (लिखना, पढ़ना) और वाणी (बोलने) में चतुर, कवि, वक्ता, अच्छे शरीर वाला, यशस्वी, राजपूज्य होता है। यदि बृहस्पति चन्द्रमा से व्यय में हो तो राजपूज्य, (राजा या सरकार में सम्मानित) अत्यन्त मेधावी (बुद्धिमान्–जिसकी स्मरण शक्ति अच्छी हो), गांभीर्यादि गुण सम्पन्न, सत्त्व युक्त, स्थान (मकान आदि) और धन से सम्पन्न होता है। यदि चन्द्रमा से बारहवें घर में शुक्र हो तो युवतियों से केलि (कामशास्त्र में कथित विविध क्रीड़ा) करने वाला, पशु (गाय, घोड़े) आदि से युक्त, धनी, बुद्धिमान्, धन और धान्य की विशेष मात्रा से युक्त होता है। फलितार्थ यह है कि इस योग से सांसारिक सुख प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। यदि अनफा योग कारक ग्रह शनि हो तो विस्तीर्ण बाहु और गुण वाला नेता, पशु आदि धन से युक्त, वचन-ग्राही (जो दूसरे के सदुपदेश को मान ले) होता है किन्तु उसकी स्त्री दुष्ट होती है ।।९१-९५।।

विविध ग्रह कृत धुरन्धरा योग

असत्यवादी गुणवान् निपुणोऽतिशठो घृणी ।
लुब्धो वृद्धाऽसतीसक्तश्चन्द्रे सौम्यारमध्यगे ।। ९६ ।।
स्वकर्मविभवो दृष्टो यशस्वी रिपुपीडितः ।
स्वगेहशीलकृच्चन्द्रे मध्यगे कुजजीवयोः ।। ९७ ।।
व्यायामी सुभगः क्रूरो हृष्टः सत्कामवित्तवान् ।
भयादशीलः शीतांशौ मध्यगे कुजशुक्रयोः ।। ९८ ।।
कुत्सितस्त्रीरतः क्रोधी धनवान् पिशुनोऽरिमान् ।
असन्तृप्तो निशानाथे मध्यगे कुजमन्दयोः ।। ९९ ।।
धर्मात्मा शास्त्रविद्वाग्मी सत्कविः सज्जनान्वितः ।
यशस्वी च निशानाथे मध्यगे बुधजीवयोः ।। १०० ।।
नृत्यगानरतः कान्तः प्रियवाक् सुभगः सुधीः ।
शूरप्रकृतिकश्चन्द्रे मध्यगे बुधशुक्रयोः ।। १०१ ।।
देशाद्देश गतः पूज्यो नातिविद्याधनान्वितः ।
स्वबन्धुजनविद्वेषी चन्द्रे मन्दज्ञमध्यगे ।। १०२ ।।

नृपतुल्यकरः श्रीमान् नीतिज्ञो विक्रमान्वितः ।
ख्यातोऽवृष्टमतिश्चन्द्रे मध्यगे गुरुशुक्रयोः ॥ १०३ ॥
सुखी विनयविज्ञानविद्यारूपगुणान्वितः ।
धनी शान्तिकरश्चन्द्रे मध्यगे शनिजीवयोः ॥ १०४ ॥
वृद्धाचारः कुलाढ्यश्च निपुणस्त्रीजनप्रभुः ।
धनी नृपप्रियश्चन्द्रे सितादित्यसुतान्तरे ॥ १०५ ॥
स्वोच्चस्वमित्रभवनोपगतेषु सर्वं
प्राप्नोति जातमनुजो नियतं यदुक्तम् ।
स्वांशेषु वा निजसुहृद्गृहसंयुतेषु
प्राहुस्तथैव फलमस्ति पराशराद्याः ॥१०६॥
चन्द्रः सराहुर्यदि वा सकेतुश्चन्द्रादहिर्वा यदि रिःफयातः ।
नीचास्तगो वा यदि योगकर्ता जातस्य मिश्रं फलमाहुरार्याः ॥१०७॥

यदि मंगल और बुध दुरुधरा योग करें, अर्थात् चन्द्रमा से द्वितीय में मंगल हो, द्वादश में बुध या चन्द्रमा से द्वितीय में बुध हो, द्वादश में मंगल हो तो जातक असत्यवादी परन्तु गुणवान्, निपुण परन्तु अति शठ (दुष्ट), दयायुक्त परन्तु लोभी, अधिक वय की असती (दुश्चरित्रा, व्यभिचारिणी) स्त्री में आसक्त होता है । यदि मंगल और बृहस्पति यह योग करें तो अपने कर्म (कार्य, उद्योग, परिश्रम) से वैभव युक्त, यशस्वी परन्तु शत्रुओं से पीड़ित, अपने घर में रहने वाला (अर्थात् अधिक यात्रा न करने वाला) होता है । यदि मंगल और शुक्र जिन राशियों में हों उनके बीच की राशि में चन्द्रमा हो तो व्यायाम का शौकीन, सुन्दर, क्रूर, प्रसन्नचित्त, सत्काम (सांसारिक भोग जो विहित हों) भोगयुक्त, धनी परन्तु डरपोक होता है । यदि दुरुधरा योग कारक मंगल और शनि हों तो कुत्सित (जो कुरूप हो या निम्न श्रेणी की हो या अन्य किसी कारण से श्लाघ्य न हो) स्त्री में रत, क्रोधी, धनी, चुगल खोर, शत्रु युक्त जिसका मन तृप्त न हो—ऐसा होता है ।।९६-९९।।

यदि बुध और बृहस्पति (चन्द्रमा के एक ओर बुध, दूसरी ओर बृहस्पति) दुरुधरा योग बनाते हों तो धर्मात्मा, शास्त्रज्ञ, वाग्मी, अच्छा कवि (संस्कृत में कवि केवल कविता निर्माण करने वाले को नहीं कहते अपितु बुद्धिमान को भी कहते हैं) सज्जनों की गोष्ठी वाला और यशस्वी होता है । यदि बुध और शुक्र

योग बनाते हो तो नृत्यगानरत (नाचने गाने का शौकीन—सम्प्रति सिनेमा प्रिय) सुन्दर, प्रिय वाणी बोलने वाला, मनोहर व बुद्धिमान् और शूरवीर होता है। यदि दुरुधरा योग बनाने वाले ग्रह बुध और शनि हों तो जातक एक देश से दूसरे देश को जाता है, अति विद्वान् या अति धनी नहीं होता किन्तु पूज्य होता है, अर्थात् ऐसे जातक का सब आदर करते हैं किन्तु जातक अपने बन्धुओं का विद्वेषी (वैरी) होता है ॥१००-१०२॥

यदि दुरुधरा योग उत्पन्न करने वाले ग्रह बृहस्पति और शुक्र हों तो जातक राजा के समान हो (वैभवादि सम्पन्न), नीतिज्ञ, पराक्रम युक्त, विख्यात और सद् बुद्धि (दान, परोपकार, धर्म कार्यों में दत्तचित्त) हो। यदि बृहस्पति और शनि योगकर्त्ता ग्रह हों तो सुखी, विनयी, विज्ञान, विद्या से युक्त, स्वरूपवान्, गुणी (अथवा जिसमें विनय, विज्ञान विद्या, रूप आदि गुण हों), धनी और शांतिकर (दूसरों को शांति प्रदान करने वाला—उनकी सहायता कर या अपने सद् विचार और सदुपदेश से उनकी व्यग्रता हटाकर उन्हे शांति देने वाला) होता है ॥१०३-१०४॥

यदि चन्द्रमा के अगल-बगल की राशियों में शुक्र और शनि हों तो वृद्ध की तरह आचरण करने वाला, कुल में आढ्य (धनिक), निपुण स्त्री और निपुण आदमियों का स्वामी होता है। किसी-किसी पुस्तक में पाठ है 'निर्गुणस्त्रीजन-प्रभु:' परन्तु निपुण स्त्री पाठ ही सम्यक् है ॥१०५॥

अब एक महत्त्वपूर्ण आदेश ग्रंथकार ने किया है, उसकी ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जाता है। प्राय: ज्योतिषी इस आदेश की ओर ध्यान नहीं देते, इस कारण फल में व्यभिचार हो जाता है। यदि आप कारखाने में काम करने वाले कुलियों की, सड़क पर झाड़ू देने वाले भंगियों की, या भरपेट भोजन प्राप्त न कर सकने वाली और खेतों में काम करती हुई मजदूरनियों की जन्म कुण्डलियाँ संग्रह करें तो उनमें भी सुनफा, अनफा, दुरुधरा योग पायेंगे—सब में नहीं, किन्तु कुछ कुण्डलियों में, फिर इन योगों का फल क्यों नहीं मिलता ?

काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय पंडित रामयत्न जी ओझा ने अपनी पुस्तक फलित विकास के पृष्ठ ११३ पर लिखा है :—

"रेका योग, नाभसयोग, अनफा, सुनफा दुरुधरा योग, केमद्रुम योग, वराह-मिहिरोक्त प्रव्रज्या योग इत्यादि योग जैनयवनमतानुसारी हैं, आर्य नहीं।

अस्तु, अब प्रकृत विषय पर आइये। जातकपारिजात के सुनफा, अनफा दुरुधरा योग के सम्बन्ध में विशेष आदेश क्या है ? कहते हैं कि ग्रह यदि अपनी उच्च राशि, स्वराशि, मित्र राशि में हों तभी (केवल उसी हालत में) जो फल कहा गया है वह प्राप्त होता है। या ग्रह अपने या मित्र के ग्रह नवांश में हों, तो जो शुभ फल होता है, वह प्राप्त होता है यह पराशर आदि ने कहा है। हमारे विचार से यह सिद्धांत—कि ग्रह उच्च, स्व, मित्र राशि तथा उच्च, स्व या मित्र नवांशों में हों तभी अपना पूर्ण शुभ फल करते हैं—तो अवश्य पाराशरीय है, परन्तु सुनफा, अनफा, दुरुधरा के सन्दर्भ में पराशर ने कुछ नहीं कहा है (जैसा फलित विकास के उद्धरण से स्पष्ट है कि यह योग हमारे ऋषियों ने नहीं कहे हैं)। परन्तु हमारे यहाँ एक प्रथा चल गई है कि जो कुछ फलित ज्योतिष के विषय में कहा जाये उस पर पराशर की मोहर लगा देते हैं, जिससे उस कथन की प्रामाणिकता में वृद्धि हो जाये।

हाँ, यह सिद्धांत निर्विवाद है कि केवल सुनफा, अनफा आदि योगों में ही नहीं, सभी कुण्डलियों में ग्रहों का वीर्य (बल) ही शुभ फल उत्पन्न करने में सफल होता है। पंच महापुरुष योग को ही लीजिए—यदि ग्रह ··मंगल आदि लग्न से केन्द्र में—स्वराशि में हों किन्तु नीच नवांश में हों, पापयुत, पापदृष्ट हों तो क्या शुभ फल उत्पन्न करने में वह सफल होगा ? इसी सिद्धांत को मन में रखते हुए पृथुयशस् ने होरासार अध्याय १९ श्लोक ७ में कहा है कि चन्द्रमा यदि सूर्य से चतुर्थ में हो तो कष्ट फल, सूर्य से पणफर में हो तो मध्य फल और यदि सूर्य से आपोक्लिम में हो तो श्रेष्ठ फल होता है और चन्द्रमा यदि क्षीण हो तो सुनफा आदि का जो फल कहा गया है, वह ठीक नहीं बैठता, कथित फल विफल हो जाता है—अर्थात् वह फल नहीं होता :—

> कष्टं मध्यं श्रेष्ठं भानोः केन्द्रादिसंस्थिते शशिनि।
> चन्द्रे क्षीणे विफलं सुनफादिफलं न सम्यगायाति ॥

चन्द्रमा की राशि, नवांश आदि का भी सर्वत्र विचार रखना चाहिए क्योंकि जातकसारदीप के राजयोग-भंगाध्याय के श्लोक १४ में कहा है :—

> परं नीचं गते चन्द्रे क्षीणे योगो महीपतेः।
> नाशमायाति राजेव दैवज्ञप्रतिलोमगः ॥

जातकसारदीप—राजयोग-भंगाध्याय पृष्ठ ४३० पर भी कहा है कि :–

> अन्त्याष्टमाविभागे राश्यादिषु शशी क्षीणः।
> एकेनापि न दृष्टो ग्रहेण भंगस्तदा नृपतेः ॥

संस्कृत टीका में कहते हैं—"मेषकुलीरतुलामकरेषु चरमनवांशगते, वृषभसिंहवृश्चिककुंभेष्वष्टमनवांशगते, मिथुनकन्याधनुर्मीनेषु प्रथमनवांशगते च क्षीणचन्द्रे एकेनापि ग्रहेणादृष्टे राजयोगभंगः।"

अर्थात् क्षीण चन्द्र चर राशियों में अन्तिम नवांश में हो, स्थिर राशियां के अष्टम नवांश में हो या द्विस्वभाव राशियों के प्रथम नवांश में हो तो राजयोग भंग हो जाता है।

अस्तु, जितने भी चान्द्र योग हैं उनमें चन्द्रमा का बल और योगकारक ग्रह का बल--इन दोनों के बल का विचार अवश्य करना चाहिए। चन्द्रमा कब शुभ कब अशुभ होता है--इसका आंशिक विवेचन हम, श्लोक ५० की व्याख्या में कर चुके हैं। अब जो ग्रह योगकारक हों उनके बलाबल का विचार परमावश्यक है।
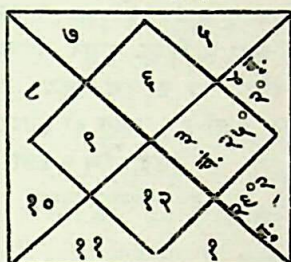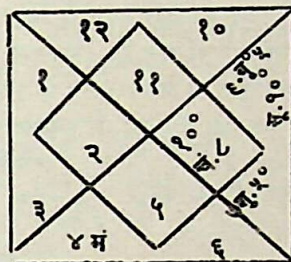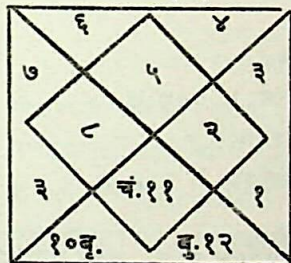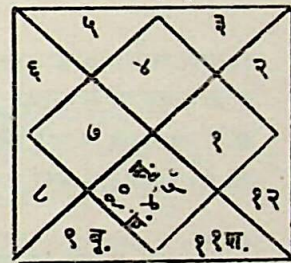
उदाहरण कुण्डली १०६ (१) में चन्द्रमा उच्च नवांश में है, चन्द्रमा से दूसरे उच्च राशि उच्च नवांश में बृहस्पति वर्गोत्तम है। चन्द्रमा से द्वादश नवमेश शुक्र स्वराशि उच्च नवांश का शुक्र है कितना सुन्दर दुरुधरा योग है। उदाहरण १०६ (२) में बृहस्पति और शुक्र योग कारक अपनी-अपनी राशि में

हैं, किन्तु बृहस्पति अस्त है, शुक्र वृश्चिक नवांश का है—नवांशेश नीच है। नीच राशि का चन्द्रमा है। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी का क्षीण चन्द्र है, दृश्य मूर्ति है। कितना दुर्बल है। वराहमिहिर की बात याद रखिए 'अशुभकृदुडुपोऽह्नि दृश्यमूर्तिर्गलिततनुश्च । (देखिए इसी अध्याय के श्लोक ५० की व्याख्या) ऐसा दुरुधरा योग कितना शुभ फल करेगा ? उदाहरण १०६ (३) में योग कर्त्ता बृहस्पति तथा बुध छठे और आठवें दुःस्थानों में बैठे हैं और अपनी-अपनी नीच राशि में बैठे हैं। इस कारण कमजोर हैं। उदाहरण १०६ (४) में बृहस्पति और शनि अपनी-अपनी राशि में हैं, परन्तु अच्छे स्थानों में नहीं हैं। अमावास्या का चन्द्रमा है। इस प्रकार ग्रहों की राशि, भाव, चन्द्रमा की राशि, भाव, पक्ष बल, अस्तादि दोष, नवांशानुसार फल में तारतम्य कर कितनी मात्रा में—अल्प, मध्य या विशेष—शुभ फल होगा इसका विचार कर फलादेश करना चाहिए, यही हृदयंगम कराने के लिए उदाहरणों द्वारा अर्थ को स्पष्ट किया गया है ॥१०६॥

पुनः ग्रंथकार कहते हैं कि राहु या केतु के साथ चन्द्रमा हो या चन्द्रमा से १२वें घर में राहु हो (ग्रंथकार ने केवल राहु कहा है किन्तु हमारे विचार से इस श्लोक के प्रथम चरण में राहु तथा केतु दोनों का उल्लेख किया है, इस कारण राहु केतु का भी उप-लक्षण है। या योग कर्त्ता ग्रह अस्त हो (उदाहरण कुंडली १०६ (२)) या अपनी नीच राशि में हो (उदाहरण कुंडली १०६ (३)) तो मिश्र फल (कुछ उत्कृष्ट—कुछ निकृष्ट—मिला जुला) होता है ॥१०७॥

अथ शकट योग

षष्ठाष्टमगतश्चन्द्रात्सुरराजपुरोहितः ।
केन्द्रादन्यगतो लग्नाद्योगः शकटसंज्ञितः ॥ १०८ ॥
अपि राजकुले जातो निःस्वः शकटयोगजः ।
क्लेशायासवशान्नित्यं सन्तप्तो नृपविप्रियः ॥ १०९ ॥

यदि चन्द्रमा से छठे या आठवें घर में बृहस्पति हो तो शकट योग होता है किन्तु इसका एक अपवाद है कि यदि बृहस्पति से केन्द्र (१, ४, ७, १०) में हो तो शकट योग नहीं होता है। जो शकट योग में जन्म ले वह चाहे राजा के घर में जन्म ले, दरिद्र होता है। ऐसा जातक सदैव परिश्रम करता है, क्लेश उठाता है और राजा उस पर प्रसन्न नहीं रहता।

फलदीपिका (अध्याय ६ श्लोक १४ तथा १६) के अनुसार यदि बृहस्पति से छठे, आठवें, बारहवें चन्द्रमा हो तो शकट योग होता है। किन्तु यदि लग्न से केन्द्र में चन्द्रमा हो तो शकट योग नहीं होता।

साथ में पंडित जवाहर लाल जी नेहरू की कुंडली दी जाती है। फलदीपिका के अनुसार चन्द्रमा केन्द्र में है, इस कारण चन्द्रमा से छठे बृहस्पति है तथापि चन्द्रमा केन्द्र में होने पर शकट योग नहीं हुआ। जातकपारिजात के अनुसार बृहस्पति केन्द्र में हो तो शकट योग नहीं होता। दोनों ग्रंथों में एक अन्तर यह है। अन्य अन्तर यह है कि फलदीपिका के अनुसार यदि बृहस्पति से १२वें चन्द्र हो, तब भी शकट योग होता है। जातक पारिजात में यह नहीं कहा है।
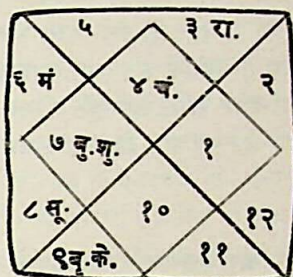
शकट गाड़ी को कहते हैं। गाड़ी के पहिए की तरह कभी-कभी उसका भाग्य ऊपर चढ़ता है, फिर गिर जाता है पुनः चढ़ जाता ,है, पुनः गिर जाता है। यही क्रम रहता है।

पराशर और वराह-मिहिर ने भी शकट योग का उल्लेख किया है। परन्तु केवल 'शकट' इस नाम का साम्य है। पराशर कहते हैं 'लग्नास्तसंस्थैः शकटः समस्तः' यदि सब ग्रह लग्न और सप्तम—इन दो भावों में हों तो 'शकट' योग होता है। वराहमिहिर भी यही कहते हैं—'तन्वस्तगेषु शकटम्। देखिए बृहज्जातक के नाभसयोगाध्याय का श्लोक ४॥१०८-१०९॥

पारिजातादि वर्ग फल

सपारिजातद्युचरः सुखानि नीरोगतामुत्तमवर्गयातः।
सगोपुरांशो यदि गोधनानि सिंहासनस्थः कुरुते विभूतिम् ॥११०॥
करोति पारावतभागयुक्तो विद्यायशःश्रीविपुलं नराणाम्।
सदेवलोको बहुयानसेनामैरावतस्थो यदि भूपतित्वम् ॥१११॥

कोई ग्रह कब पारिजात, उत्तम आदि वर्गों में समझा जाता है यह अध्याय १ के श्लोक ४४-४६ में बताया गया है। अब उसका फल कहते हैं। अपने पारिजात वर्ग में ग्रह सुख देता है, उत्तम वर्गस्थ ग्रह उत्तम स्वास्थ्य (रोग रहित) प्रदान करता है। गोपुरांश में रहने वाला ग्रह गाय और धन देता है।

यदि ग्रह सिंहासन में हो तो जातक विभूति युक्त होता है। यदि पारावत अंश में हो तो विद्या, यश और श्री (धन, कान्ति, ऐश्वर्य) विपुल मात्रा में प्राप्त होते हैं। यदि देव-लोकांश में ग्रह हो तो बहुत-सी सेना और सवारियों से युक्त हो। ऐरावतांशस्थ ग्रह जातक को राजा बनाता है। यहाँ केवल पारिजात, उत्तम, गोपुर, सिंहासन, देवलोक और ऐरावतांश का फल कहा है। अन्य का नहीं कहा। हमारे विचार से इन फलों का शब्दार्थ नहीं लेना चाहिए, केवल भावार्थ ग्रहण करना उचित है कि पारिजात, गोपुर आदि में क्रमशः उत्तरोत्तर शुभ फल होता है क्योंकि अब नगर-वासियों को गायें रखने की कहाँ सुविधा है। अब छोटे-छोटे राजा रहे नहीं। सेना का स्वामी कोई कैसे होगा। यह फल जो कहा गया है, वह कब होगा उस ग्रह की दशा में ॥११०-१११॥

अथ अधमादियोग

अधमसमवरिष्ठान्यर्ककेन्द्रादिसंस्थे
शशिनि विनयवित्तज्ञानधीनैपुणानि।
अहनि निशि च चन्द्रे स्वाधिमित्रांशके वा
सुरगुरुसितदृष्टे वित्तवान् स्यात् सुखी च॥ ११२॥

यह श्लोक बृहज्जातक के चान्द्र योगाध्याय से लिया गया है।

(१) यदि सूर्य से केन्द्र में चन्द्रमा हो—अर्थात् सूर्य के साथ, सूर्य से चौथे, सातवें या दसवें चन्द्रमा हो तो विनय, वित्त (धन), ज्ञान, बुद्धि की निपुणता—यह ४ गुण न्यून मात्रा में होते हैं। यदि सूर्य से द्वितीय, पंचम, अष्टम या एकादश में चन्द्रमा हो तो यह ४ गुण सम (मध्यम न न्यून, न अधिक) मात्रा में होते हैं। यदि सूर्य से तृतीय षष्ठ, नवम या द्वादश में चन्द्रमा हो तो यह ४ गुण विशिष्ट मात्रा में होते हैं। इसी को निम्न प्रकार से कह सकते हैं :—

(i) सूर्य से केन्द्र में चन्द्रमा—अधम योग (ii) सूर्य से पणफर में चन्द्र—सम योग (iii) सूर्य से आपोक्लिम में चन्द्र—वरिष्ठ योग।

भट्टोत्पल ने अपनी टीका में निम्नलिखित अर्थ किया है :—

(i) विनय-नीति, सुशीलता (ii) वित्त-धन (iii) ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र व बोध (iv) धी-बुद्धि (v) नैपुण्य-कार्यों में सूक्ष्म-दर्शिता। इस प्रकार धी-नैपुण्य को पृथक्-पृथक् कर ५ गुण माने हैं।

सारावली अध्याय १३ श्लोक ५ में कल्याणवर्मा ने भी ५ गुणों की मात्रा स्वल्प, मध्य, भूयिष्ठ का उल्लेख किया है :—

सूर्यात् केन्द्रादिगतो निशाकरः स्वल्प-मध्य-भूयिष्ठान् ।
कुर्यात्क्रमेण धनधीनैपुणविज्ञानविनयांश्च ॥

रुद्र अपने विवरण में ४ ही गुण मानते हैं। यथा (i) विनय–शिक्षा, श्रुतातिरेकजनिता मनःशान्ति (ii) वित्त–धनधान्यादि सम्पत् (iii) ज्ञान–तत्कालसमुचित ज्ञान (iv) धीनैपुण–बुद्धि कौशल । फिर कहते हैं कि सूर्य से चार स्थान केन्द्र हुए–इस कारण प्रथम केन्द्र में (सूर्य के साथ) चन्द्रमा हो तो अधम (न्यून) विनय, द्वितीय केन्द्र में (सूर्य से चतुर्थ) चन्द्र हो तो न्यून वित्त; तृतीय केन्द्र में (सूर्य से सप्तम) चन्द्र हो तो न्यून ज्ञान, चतुर्थ केन्द्र में (सूर्य से सप्तम) चन्द्र हो तो न्यून बुद्धि कौशल । इसी प्रकार सूर्य से द्वितीय में चन्द्र हो तो मध्यम (न न्यून, न अधिक) विनय, पंचम में चन्द्र हो तो मध्यम (न कम, न अधिक) धनी, अष्टम में चन्द्र हो तो मध्यम ज्ञान, सूर्य से एकादश में चन्द्र हो तो मध्यम बुद्धि कौशल । सूर्य से तृतीय चन्द्र हो तो वरिष्ठ (अधिक मात्रा में) विनय, षष्ठ में चन्द्र हो तो अधिक धनी, नवम में हो तो अधिक ज्ञान, सूर्य से द्वादश में चन्द्र हो तो अधिक बुद्धि कौशल । इस श्लोकार्ध में चन्द्र की स्थिति, सूर्य स्थित राशि से गिननी चाहिए, लग्न से नहीं । यह रुद्रभट्ट का मत है । रुद्रभट्ट यह भी कहते हैं कि चन्द्राश्रित वर्ग के अनुसार विशेष फल कहना । पराशर ने धन, बुद्धि और निपुणता केवल इनका ही उल्लेख किया है :—

सहस्र-रश्मितश्चन्द्रे कण्टकादिगते सति ।
न्यूनमध्यवरिष्ठानि धनधीनैपुणानि च ॥

यवनेश्वर कहते हैं :—

मूर्खान् दरिद्रांश्चपलान्विशीलांश्चन्द्रः प्रसूतेऽर्कचतुष्टमस्थः ।
कुर्याद् द्वितीये धनिनां प्रसूतिमापोक्लिमस्थे कुलजाग्रजानाम् ॥

(२) अब अन्य योग कहते हैं। चन्द्रमा अपने या अपने अधिमित्र के नवांश में हो और दिन में जन्म हो तो बृहस्पति से दृष्ट हो, यदि रात्रि में जन्म हो तो शुक्र से दृष्ट हो तो वित्तवान् और सुखी हो । मूल में 'अधिमित्र' शब्द आया है, भट्टोत्पल ने अधिमित्र ही अर्थ किया है। रुद्रभट्ट ने व्याख्या में 'मित्र' ही लिखा है । क्यों ? चन्द्रमा के केवल सूर्य और बुध मित्र होते हैं । इस कारण यदि सूर्य या बुध चन्द्रमा से द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, दशम, एकादश या द्वादश में हों, तभी चन्द्रमा सूर्य या बुध के नवांशों (मिथुन, सिंह या कन्या नवांश) में स्थित होकर अधिमित्र नवांश में हो सकेगा । सूर्य यदि चन्द्रमा से उपर्युक्त ६ स्थानों में हो, या बुध यदि उपर्युक्त ६ स्थानों में हो (सूर्य बुध पास ही पास २८° के अन्दर रहते हैं, इस कारण जहाँ बुध होगा उसके आसपास ही सूर्य होगा)

तो चन्द्रमा को पूर्ण पक्ष बल प्राप्त नहीं हो सकेगा और चन्द्रमा के पक्ष बल की बहुत प्रशंसा मानी गई है। संभवतः इसी कारण रुद्रभट्ट ने व्याख्या में केवल 'मित्रांश' लिखा। इसके अतिरिक्त जातकपारिजात के इसी अध्याय के श्लोक ८१ की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है। वहाँ अपने उच्च नवांश में स्थित चन्द्रमा यदि बृहस्पति से दृष्ट हो, तो उसकी प्रशंसा की गई है। चन्द्रमा वृष नवांश में ही तुंग (उच्च) नवांश में होगा। वृष का स्वामी शुक्र होता है। शुक्र चन्द्रमा का नैसर्गिक सम ग्रह है। तात्कालिक शुक्र यदि चन्द्रमा का मित्र हो तो पंचधा में शुक्र मित्र हो जायेगा। यदि तात्कालिक शत्रु हो तो पंचधा में शत्रु हो जायेगा। इस प्रकार वृष नवांश स्थित चन्द्र कभी भी अधिमित्र नवांश में नहीं हो सकता। इसलिए उच्च नवांश, स्व नवांश, अधिमित्र नवांश, मित्र नवांश—सबका फलितार्थ यही है कि चन्द्रमा श्लाघ्य नवांश में होना चाहिए। ज्योतिष के मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर ही विद्वान दैवज्ञों ने 'योग' बनाए हैं।

अब एक अन्य शंका उपस्थित की जाती है। इस योग का फल दिया है कि जातक धनी और सुखी हो। ऊपर लिखा गया है कि दिन में जन्म हो उक्त लक्षण विशिष्ट चन्द्रमा बृहस्पति से दृष्ट हो, रात्रि में जन्म हो तो यथा वर्णित चन्द्रमा शुक्र से दृष्ट हो तो वित्तवान् और सुखी हो। तो क्या यह दोनों शुभ फल अनुक्रम से लिये जाएँ अर्थात् बृहस्पति की दृष्टि हो तो वित्तवान् और शुक्र की दृष्टि हो तो सुखी? सुख शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। दरिद्र मनुष्य भी सुखी हो सकता है और धनी व्यक्ति भी सुख रहित। सुख चित्त वृत्ति की विशेष स्थिति है। परन्तु लोकव्यवहार में भोग साधन सम्पन्न व्यक्ति को सुखी कहा जाता है। बृहस्पति धनकारक है, शुक्र योगकारक। इस आधार पर कतिपय आचार्यों ने अर्थ किया है कि इस श्लोक में जो दो शुभ फल दिये हैं, वह अनुक्रम से लेना। अर्थात् बृहस्पति की दृष्टि से वित्तवान् और शुक्र की दृष्टि से सुखी। किन्तु अन्य आचार्य, अनुक्रम से अर्थ लेने के पक्ष में नहीं हैं। यवनेश्वर कहते हैं :—

स्वांशे शशी भार्गवदृष्टमूर्तिर्निशीश्वरोत्पत्तिकरः प्रदृष्टः।
तदुत्तमोद्भूतिकरः स तु स्याद्दृष्टो दिवा देवपुरोहितेन॥

भगवान् गार्गि कहते हैं :—

स्वांशेऽधिमित्रस्यांशे वा संस्थिते दिवसे शशी।
गुरुणा दृश्यते जातो धनधान्यसुखान्वितः॥
निश्येवं भृगुणा दृष्टः शशी जन्मनि शस्यते।
विपर्ययस्थे शीतांशौ जायन्तेऽल्पधना नराः॥११२॥

चन्द्राधियोग

सौम्यैः स्मरारिनिधनेष्वधियोग इन्दो-
स्तस्मिश्चमूपसचिवक्षितिपालजन्म ।
सम्पत्तिसौख्यविभवा हतशत्रवश्च
दीर्घायुषो विगतरोगभयाश्च जाताः ॥ ११३ ॥

यदि चन्द्रमा से सप्तम, षष्ठ तथा अष्टम में सौम्य (शुभ ग्रह) हों तो अधियोग होता है। ऐसे योग में चमूप (सेनापति), सचिव (मंत्री), क्षिति-पाल (भूपति-राजा) का जन्म होता है। ऐसे सम्पत्ति और सौख्य के वैभव से युक्त, शत्रुओं का दलन करने वाले दीर्घायु, नीरोग और निर्भय होते हैं। यह इस श्लोक का शब्दार्थ है। परन्तु इसमें विवेचनीय विषय अनेक हैं, जैसा कि व्याख्या से प्रकट होगा।

यह श्लोक भी बृहज्जातक के चान्द्र योगाध्याय से लिया गया है और बहुत प्रसिद्ध योग है। प्रायः सभी मान्य ग्रंथों ने इस श्लोक का उल्लेख किया है।

किसी-किसी के मत से चन्द्रमा से छठे, सातवें, आठवें तीन घर शुभ ग्रह युक्त हों तभी अधियोग होता है। परन्तु भट्टोत्पल तथा रुद्रभट्ट दोनों इस मत का निराकरण करते हैं क्योंकि श्रुतिकीर्ति कहते हैं :—

निधनद्यूनं षष्ठं चन्द्रस्थानाद्यदा शुभैर्युक्तम् ।
अधियोगः स प्रोक्तो व्यासकृतो सप्तधा पूर्वैः ॥

सात प्रकार का अधियोग कैसे :—सब शुभ ग्रह–बुध, बृहस्पति, शुक्र, (i) छठे में हों (ii) सातवें में हों (iii) आठवें में हों (iv) छठे और सातवें–एक छठे दो सातवें या दो छठे एक सातवें (v) छठे और आठवें–एक छठे दो आठवें या दो छठे एक आठवें (vi) सातवें और आठवें–एक सातवें, दो आठवें, या दोसातवें एक आठवें (vii) छठे, सातवें, आठवें–एक छठे, एक सातवें एक आठवें।

श्रुतिकीर्ति पुनः कहते हैं :—

षष्ठसप्ताष्टमस्थैश्चन्द्रात्सौम्यैः शुभेऽधियोगः स्यात् ।
पापः पापैरेवं मिश्रैर्मिश्रस्तथैवोक्तः ॥

अर्थात् यदि चन्द्रमा से छठे, सातवें, आठवें शुभग्रह हों (मूल में बहुवचन आया है। संस्कृत में ३ या ३ से अधिक के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है)

तो शुभ अधियोग, पाप ग्रह हों तो पाप (अधियोग), मिश्र (कुछ शुभ कुछ पाप ग्रह) हों तो मिला जुला अधियोग।

अब दूसरा प्रश्न उठता है कि शुभ अधियोग के तीन फल कहे हैं :—सेनापति हो, मन्त्री हो, राजा हो। कब कौनसा फल लेना ? बादरायण कहते हैं :—

> शशिनः सौम्याः षष्ठे द्यूने वा निधन-संस्थिता वा स्युः।
> जातो नृपतिर्ज्ञेयो मंत्री वा दण्डनायको वाऽपि ॥

इसकी टीका करते हुए भट्टोत्पल तथा रुद्रभट्ट दोनों कहते हैं कि इस शुभ अधियोग में यदि बुध, बृहस्पति, शुक्र (तथा चन्द्रमा) बलवान् हों अर्थात् पूर्ण बली हों तो राजा हो, मध्य बली हों तो मंत्री हो, हीन बली हों तो सेनापति हो। नीचे उदाहरण (१) बली का तथा (२) हीन बली का दिया जाता है।

११३ (१)

७ ५ ४ २८° ८ ६ ९ चं. १२ ३ बु. २७° २ १० १२ २शु० ११ १

११३ (२)

सारावली अध्याय २५ श्लोक २१ में यह विशेष कहा गया है कि शुभ अधियोग के शुभ फल प्राप्ति के लिए दो बातें परमावश्यक हैं। (i) कि शुभ ग्रहों पर पाप ग्रहों की दृष्टि न हो। (ii) शुभ ग्रह अस्त न हों।

> षष्ठं द्यूनमथाष्टमं शिशिरगोः प्राप्ताः समस्ताः शुभाः
> क्रूराणां यदि गोचरे न पतिता भान्वालयाद्दूरतः।
> भूपालः प्रभवेत्स यस्य जलधेर्वेलावनान्तोद्भवैः
> सेनामत्तकरीन्द्रदानसलिलं भृङ्गैर्मुहुः पीयते ॥

मूल में सारावलीकार ने लिखा है कि समस्त शुभग्रह सूर्य के आलय—जिस घर में सूर्य हो—उससे दूर हों। परन्तु बुध सूर्य से २८° के बीच में रहता है, शुक्र सूर्य से ४७° से अधिक कभी नहीं जाता इस कारण अभिप्राय यह है कि शुभग्रह अस्त न हों ॥११३॥

लग्नाधियोग

लग्नादरिद्यूनगृहाष्टमस्थैः शुभैर्न पापग्रहयोगदृष्टैः ।
लग्नाधियोगो भवति प्रसिद्धः पापैः सुखस्थानविवर्जितैश्च ॥११४॥
लग्नाधियोगे बहुशास्त्रकर्ता
विद्याविनीतश्च बलाधिकारी ।
मुख्यस्तु निष्कापटिको महात्मा
लोके यशोवित्तगुणान्वितः स्यात् ॥ ११५ ॥

यदि लग्न से छठे, सातवें और आठवें स्थान में शुभ ग्रह हों, इन भावों में न पाप ग्रह बैठे हों, न इन भावों को पाप ग्रह देखते हों और लग्न से चतुर्थ स्थान पाप ग्रह से वर्जित हों तो लग्नाधियोग होता है । जिसका इस योग में जन्म हो वह बहुत शास्त्रों का रचयिता, विद्या-विनीत (विद्या ददाति विनयम्), बलाधिकारी (बल सेना को भी कहते हैं), प्रधान (विशिष्ट पद वाला), निष्कपट महात्मा (उन्नत आत्मावाला), लोक में यशस्वी, धनी, गुणी होता है ।

यह योग बृहत्पाराशर में भी दिया गया है । फलदीपिका में एक ही श्लोक में चन्द्राधियोग और लग्नाधियोग दे दिये गए हैं[1] । देखिए अध्याय ६ श्लोक ४२ । जातकादेशमार्ग अध्याय ८ श्लोक ३०-३१ में भी यह योग दिया गया है[2] । सारावली अध्याय ३४ श्लोक १३ में भी कहा है :—

लग्नात्षष्ठमदाष्टमे यदि शुभाः पापैर्न युक्तेक्षिता
मन्त्री दण्डपतिः क्षितेरधिपतिः स्त्रीणां बहूनां पतिः ।
दीर्घायुर्गदवर्जितो गतभयो लग्नाधियोगे भवेत्
सच्छीलो यवनाधिराजकथितो जातः पुमान्सौख्यभाक ॥११४-११५॥

अथ गजकेसरीयोगः

केन्द्रस्थिते देवगुरौ मृगाङ्काद्योगस्तदाहुर्गजकेसरीति ।
दृष्टे सितार्येन्दुसुतैः शशाङ्के नीचास्तहीनैर्गजकेसरी स्यात् ॥११६॥
गजकेसरिसञ्जातस्तेजस्वी धनधान्यवान् ।
मेधावी गुणसम्पन्नो राजप्रियकरो भवेत् ॥ ११७ ॥

१-भावार्थबोधिनी फलदीपिका, पृष्ठ १४४-१४५ ।
२-जातकादेश-मार्ग-चन्द्रिका, पृष्ठ ११४-११५ ।

(१) यदि चन्द्रमा से केन्द्र में बृहस्पति हो तो गजकेसरीयोग होता है ।

(२) यदि चन्द्रमा—बुध, बृहस्पति तथा शुक्र से दृष्ट हों और यह द्रष्टा ग्रह (बुध, बृहस्पति, शुक्र) न अस्त हों, न अपनी नीच राशि में हों, तो गजकेसरीयोग होता है । इस प्रकार इस श्लोक में दो योग कहे—दोनों का नाम गजकेसरी ही कहा है :—

११६ (१)

११६ (२)
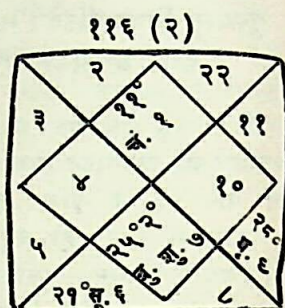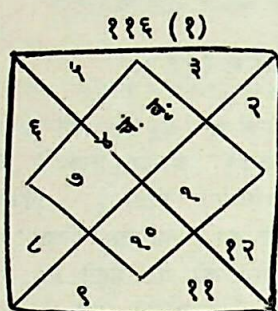
जो गजकेसरीयोग में उत्पन्न होता है, वह धन धान्य सहित मेधावी (धी-धारणावती मेधा), गुणसम्पन्न और राजा का प्रिय करने वाला होता है। (राजा का प्रिय करेगा तो राजा की उस पर कृपा होगी, फलतः धन, धान्य समृद्धि, अधिकारादि की वृद्धि होगी ।)

प्रत्येक योग के फल कथन में ज्योतिषी को अपनी बुद्धि का उपयोग करना आवश्यक है । लग्न में—कर्क राशि में चन्द्र बृहस्पति एक साथ हों तब भी गज केसरी—अष्टम में, मकर में चन्द्र बृहस्पति हों—दोनों अस्त भी हों, तो भी गज केसरी । एक सा फल कैसे होगा ?

देखिए जातकादेश-मार्ग-चन्द्रिका, पृष्ठ ६५, तथा ११६ ॥११६-११७॥

अथ अमला योग

यस्य जन्मसमये शशिलग्नात् सद्ग्रहो यदि च कर्मणि संस्थः ।
तस्य कीर्तिरमला भुवि तिष्ठेदायुषोऽन्तमविनाशनसम्पत् ॥ ११८ ॥

लग्नाद्वा चन्द्रलग्नाद्वा दशमे शुभसंयुते ।
योगोऽयममला नाम कीर्तिराचन्द्रतारकी ॥ ११९ ॥

राजपूज्यो महाभोगी दाता बन्धुजनप्रियः ।
परोपकारी गुणवानमलायोगसम्भवः ॥ १२० ॥

जिसकी जन्म कुण्डली में चन्द्र लग्न से (चन्द्रमा जिस राशि में हो, उससे) दसवें घर में शुभ ग्रह हो उसकी निर्मल कीर्ति होती है और वह अपने जीवन के अन्त तक धनी रहता है। यदि लग्न से या चन्द्रमा से दशम में शुभ ग्रह हो तो अमला योग होता है। जब तक आकाश में चन्द्रमा और तारे हैं तब तक उसकी कीर्ति चिरस्थायिनी होती है। ऐसा व्यक्ति राजपूज्य, महाभोगी (सर्व भोग्य पदार्थ सम्पन्न), बन्धुजनप्रिय, परोपकारी और गुणी होता है। यह अमलायोग का फल है।

सारावली, फलदीपिका आदि में भी यह योग दिया गया है ॥११८-१२०॥

वेशि, वाशि, उभयचरी योग

व्ययधनयुतखेटैर्वासिवेशीदिनेशा-
दुभयचरिकयोगश्चोभयस्थानसंस्थैः।
निजगृहसुहृदुच्चस्थानयातैश्च जाता
बहुधनसुखयुक्ता राजतुल्या भवन्ति ॥ १२१ ॥
जातः सुशीलः शुभवेसियोगे वाग्मी धनी वीतभयो जितारिः।
पापग्रहे दुष्टजनानुरक्तः पापात्मको वित्तसुखादिहीनः ॥ १२२ ॥
वासौ शुभग्रहयुते निपुणः प्रदाता
विद्याविनोदसुखवित्तयशोबलाढ्यः।
पापान्विते यदि विदेशगतोऽतिमूर्खः
कामातुरो वधरुचिर्विकृताननः स्यात् ॥ १२३ ॥
सौम्यान्वितोभयचरिप्रभवा नरेन्द्रा-
स्तत्तुल्यवित्तसुखशीलदयानुरक्ताः।
पापान्वितोभयचरौ यदि पापकृत्या
रोगाभिभूतपरकर्मरता दरिद्राः ॥ १२४ ॥

जिस प्रकार चन्द्रमा में दूसरे, बारहवें या अगल बगल के दोनों घरों में (सूर्य के अतिरिक्त) ग्रह होने से सुनफा, अनफा तथा दुरुधरा योग होते हैं, इसी प्रकार सूर्य जिस राशि में हो उस राशि से दूसरे (चन्द्रमा के अतिरिक्त) कोई ग्रह होगा तो वेशि योग, यदि सूर्य से बारहवें कोई ग्रह हो तो वाशि योग, यदि सूर्यस्थ राशि से द्वितीय और द्वादश—दोनों राशियों में ग्रह हों तो भयचारी

योग होता है। चन्द्रमा इन योगों में न साधक है, न बाधक। यदि यह योग बनाने वाले ग्रह स्वराशि, अपनी उच्चराशि या मित्र राशि में हों तो जातक बहु धन सुख युक्त राजतुल्य होता है।

इन योगों के फल को दो विभागों में बाँटा है—एक शुभ ग्रह कृत, अन्य पाप ग्रह जनित। उदाहरण के लिए सूर्य से द्वितीय शुभ ग्रह हो (यथा बृहस्पति) तो शुभ ग्रह कृत वेशि योग; यदि सूर्य से द्वादश पाप ग्रह हो (यथा शनि) तो पाप ग्रह जनित वेशि योग होता है। सुनफा, अनफा आदि योगों में प्रत्येक ग्रह जनित प्रभाव पृथक्-पृथक् वर्णित किया है, किन्तु यहाँ संक्षेप करने के लिए ग्रंथकार ने योग कर्त्ता ग्रह शुभ है या पाप—केवल यह भेद कर फल कह दिया है। विशेष विवरण के लिए सारावली, जातकाभरण आदि ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिए ॥१२१॥

यदि शुभ ग्रह, सूर्य से द्वितीय हो तो जातक सुशील, वाग्मी, धनी, निर्भय और शत्रुओं को जीतने वाला होता है। यदि सूर्य से द्वितीय पाप ग्रह हो तो दुष्ट जनों में प्रीति रखने वाला, पापात्मा, धन, सुख आदि से हीन होता है ॥१२२॥

यदि शुभ ग्रह सूर्य से द्वादश में हो तो निपुण, प्रदाता (दानी), विद्वान्, सदैव प्रसन्न, सुखी, धनी, यशस्वी और बलवान् होता है, किन्तु यदि सूर्य से बारहवें पाप ग्रह हो तो विदेश में रहने वाला (प्राचीन समय में घर से बाहर रहना कष्टमय समझा जाता था) अति मूर्ख, कामातुर (सदैव स्त्री प्रसंग की इच्छा रखने वाला—जिसकी अतृप्त काम वासना होती है—वही ऐसा होता है), हिंसा में रुचि रखने वाला (अर्थात् क्रूर) होता है और उसका चेहरा भी विकृत (असुन्दर) होता है ॥१२३॥

जिसकी जन्म कुंडली में सूर्य से द्वितीय और द्वादश में शुभ ग्रह हों वे राजा या राजा के तुल्य धन, सुख, शील दयादि गुण विशिष्ट होता है। यदि सूर्य की अगल बगल (द्वितीय और द्वादश) राशियों में पाप ग्रह हों तो जातक रोगी, पापकर्मा, दूसरे का कार्य करके जीविका निर्वाह करने वाला और दरिद्र होता है। ग्रंथकार ने यह नहीं लिखा कि उभयचारी योग में यदि सूर्य से द्वितीय और द्वादश—इन दो राशियों में से एक में शुभ ग्रह हो, अन्य में पाप ग्रह हो तो क्या फल होगा? हमारे विचार से मिश्र (मिला जुला) फल होगा। जातका-देशमार्गचन्द्रिका के पृष्ठ ११२ पर भी इन योगों का विवेचन किया गया है ॥१२४॥

सारावली अध्याय १४ श्लोक ११-१२ में—उभयचरी योग, शुभ ग्रह जनित है या पाप ग्रह कृत है यह भेद नहीं किया है, और इस योग का केवल शुभ फल ही दिया है :—

सर्वंसहः सुभद्रः समकायः सुस्थिरो विपुलसत्त्वः ।
नात्युच्चः परिपूर्णो विद्यायुक्तो भवेदुभयचर्याम् ॥
सुभगो बहुभृत्यधनो बन्धूनामाश्रयो नृपतितुल्यः ।
नित्योत्साही हृष्टो भुङ्क्ते भोगानुभयचर्याम् ॥

यह भी श्लोक १० में (सारावली में) कहा गया है कि सूर्य और योगकर्त्ता का वल विचार कर, नवांश तथा किस ग्रह या ग्रहों से युत है आदि को (योग कर्त्ता ग्रह पर किस ग्रह की दृष्टि है, इत्यादि ध्यान में रखते हुए बुद्धिमान व्यक्ति को फलादेश कहना चाहिए ॥१२१-१२४॥

शुभादियोग

शुभाशुभाढ्ये यदि जन्मलग्ने शुभाशुभाख्यौ भवतस्तदानीम् ।
व्ययस्वगैः पापशुभैर्विलग्नात् पापाख्यसौम्यग्रहकर्त्तरी च ॥ १२५ ॥
शुभयोगभवो वाग्मी रूपशीलगुणान्वितः ।
पापयोगोद्भवः कामी पापकर्मा परार्थभुक् ॥ १२६ ॥
शुभकर्तरिसञ्जातस्तेजोवित्तबलाधिकः ।
पापकर्त्तरिके पापी भिक्षाशी मलिनो भवेत् ॥ १२७ ॥

(i) यदि जन्म लग्न में शुभ ग्रह हो तो योग (ii) यदि अशुभ (पाप) ग्रह लग्न में हो तो अशुभ (पाप) योग (iii) यदि लग्न से द्वितीय और द्वादश में शुभ ग्रह हों—कम से कम एक शुभ ग्रह द्वितीय में और एक द्वादश में तो शुभ कर्तरी किन्तु (iv) यदि उपर्युक्त दोनों स्थानों में शुभ ग्रह की बजाय पाप ग्रह हों तो पाप कर्तरी योग होता है ।

(i) जो शुभ योग में जन्म ले वह वाग्मी, रूपशील गुणान्वित होता है ।

(ii) जिसका पाप योग में जन्म हो वह कामी, पापकर्मा, दूसरे का धन खाने वाला (अर्थात् परतंत्र) होता है ।

हमारे विचार से पाप ग्रह लग्न में किस राशि में, किन भावों का स्वामी होकर बैठा है, इसका भी विचार कर उपर्युक्त निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए । पाप ग्रह भी यदि स्वराशि या उच्च राशि का होकर लग्न में बैठा हो तो

महापुरुष योग (रुचक या शश) करेगा। धनु या मीन में यदि शनि लग्नस्थ हो तो उसकी बहुत प्रशंसा की गयी है। मानसागरी में कहा गया है:—

तुलाकोदण्डमीनस्थो लग्नस्थोऽपि शनैश्चरः।
करोति भूपतेर्जन्म वंशे च नृपतिर्भवेत् ॥

फलदीपिका अध्याय ७ श्लोक ९ में लग्न में यदि मेष, सिंह या धनु का मंगल हो और मित्र ग्रह से दृष्ट हो तो राजयोग कहा गया है:—

भौमश्चेदजहरिचापसंस्थः पृथ्वीशं कलयति मित्रखेटदृष्टः, इसी प्रकार यदि मंगल या शनि योग कारक होकर लग्न में बैठे तो अच्छा ही समझते हैं। नीचे नं १२६ (१) श्री गुलजारी लाल जी नन्दा की जन्म कुण्डली है। यह बहुत वर्षो तक केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में मंत्री रहे और दो बार भारत के प्रधान मंत्री भी हुए। नं १२६ (२) श्री चन्दू लाल त्रिवेदी की जन्म कुण्डली है जो आन्ध्र तथा पंजाब के गवर्नर रहे हैं:—

१२६ (१)
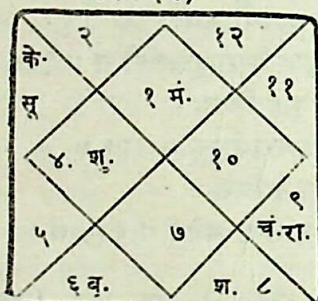
जन्म तारीख ३ का मध्य रात्रि के बाद जुलाई १८९८

१२६ (२)
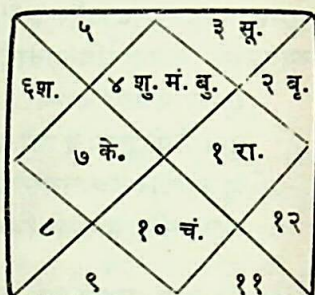
जन्म तारीख २-७-१८९३ लग्न कर्क १९°–४८

(iii) यदि शुभ कर्तरी योग में जन्म हो तो अति तेजस्वी, धनी और बलवान् होता है। (iv) यदि पाप कर्तरी में जन्म हो तो भिक्षा माँग कर खाने वाला तथा मलिन (वेष, आचार, विचार आदि में) हो ॥ १२५-१२७ ॥

पर्वतयोग

सौम्येषु केन्द्रगृहगेषु सपत्नरन्ध्रौ
शुद्धेऽथवा शुभयुते यदि पर्वतः स्यात्।
लग्नान्त्यपौ यदि परस्परकेन्द्रयातौ
मित्रेक्षितौ भवति पर्वतनाम योगः ॥ १२८ ॥

भाग्यान्वितः पर्वतयोगजातो विद्याविनोदाभिरतः प्रदाता।
कामी परस्त्रीजनकेलिलोलस्तेजोयशस्वी पुरनायकः स्यात् ॥ १२९ ॥

इस श्लोक में पर्वत योग के दो भेद दिये गये हैं। नाम दोनों का पर्वत योग रखा गया है। परन्तु दोनों में भिन्न भिन्न ग्रह स्थिति कही है:—

(१) यदि शुभ ग्रह केन्द्रों में हो, अष्टम तथा द्वादश में कोई ग्रह न हो या शुभ ग्रह हो तो पर्वत योग होता है।

(२) यदि लग्नेश और द्वादशेश एक दूसरे से केन्द्र में हो और मित्र ग्रह या ग्रहों से दृष्ट हों तो पर्वत योग होता है। इसका जो फल होता है वह मूल में दो पंक्तियों में दिया गया है। यद्यपि ग्रंथकार ने यह नहीं कहा है कि प्रथम पंक्ति का फल उपर्युक्त योग (१) के लिये तथा द्वितीय पंक्ति का अर्थ योग (२) के लिये है, किन्तु हमारे विचार से अनुक्रम फल विशेष उपयुक्त है। यदि पर्वत योग में जन्म हो तो जातक (i) भाग्यशाली, विद्या विनोद में संलग्न और दानी हो; (ii) कामी, परस्त्री विहार के लिये चंचल, तेजस्वी, यशस्वी और अपने नगर का नेता हो।

जातकादेशमार्ग में भी पर्वत योग दिया है—परन्तु उसमें थोड़ी भिन्नता है:—

> उदयास्तकर्महिबुके ग्रहयुक्ते रिःफनैधने शुद्धे।
> यः कश्चिन्नवमगतो योगोऽयं पर्वतो नाम ॥
> पर्वतयोगे जातो भूपालो धर्मवान् विनीतश्च।
> ग्रामपुरनगरकर्ता लोके श्रुतवान्युगान्तकीर्तिः स्यात् ॥

व्याख्या के लिये देखिये जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका) पृष्ठ ११५।

यवनेश्वर ने भी कहा है:—

> लग्नास्तमेषूरणगाः प्रशस्ताः सर्वे ग्रहेन्द्राः इह चेदपापाः।
> तं पर्वतं विद्धि बलात्मकानां महीपतीनां प्रसवाय योगे ॥

इसमें अष्टम, द्वादश शुद्ध होने का उल्लेख नहीं है। फलदीपिका अध्याय ६ श्लोक ३५ में भी पर्वत योग कहा गया है परन्तु वहाँ ग्रह स्थिति भी भिन्न कही गयी है और फल में भी भेद है। देखिये फलदीपिका (भावार्थ बोधिनी) पृष्ठ १३९ ॥१२९॥

काहल योग

> अन्योन्यकेन्द्रगृहगौ गुरुबन्धुनाथौ
> लग्नाधिपे बलयुते यदि काहलः स्यात्।
> कर्मेश्वरेण सहिते तु विलोकिते वा
> स्वोच्चस्वके सुखपतौ यदि तादृशः स्यात् ॥ १३० ॥

ओजस्वी साहसी मूर्खश्चतुरङ्गबलैर्युतः ।
यत्किञ्चिद्ग्रामनाथस्तु जातः स्यात् काहले नरः ॥१३१॥

इस श्लोक में काहल योग के दो भेद कहे गये हैः—

(१) यदि चतुर्थेश और नवमेश एक दूसरे से केन्द्र में हो और लग्नेश बलवान् हो तो काहल योग होता हैः—

(२) यदि चतुर्थेश अपनी राशि या उच्च राशि में हो और दशमेश के साथ बैठा हो या दशमेश से दृष्ट हो तो काहल योग होता है ।
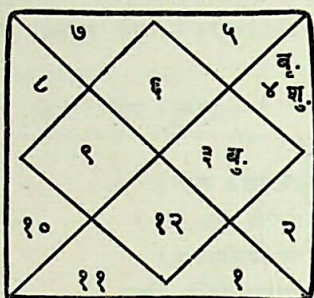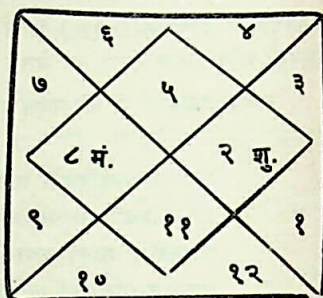
जो काहल योग मे उत्पन्न होता है वह ओजस्वी, साहसी, मूर्ख, चतुरंग सेना युत, किसी ऐसे वैसे (सामान्य) ग्राम का स्वामी होता है । (पैदल सिपाही, घुड़ सवार आदि सेना के चार अंग होते हैं। इसलिये चतुरंग कहा—चार अंग हैं जिसके) । लग्नेश बलवान् हो, चतुर्थेश नवमेश केन्द्र में हो या बली चतुर्थेश दशमेश से सम्बन्ध हो तो ज्योतिष के मान्य सिद्धान्तों के आधार पर मनुष्य को बुद्धिमान् होना चाहिये न कि मूर्ख। हमारे विचार से "मूर्खः" पाठ उपयुक्त नहीं है ।

फलदीपिका अध्याय ६ श्लोक ३५-३६ में एक अन्य योग दिया है, जिसका नाम काहल ही है किन्तु ग्रह स्थिति भिन्न है । देखिए फलदीपिका पृष्ठ १३९ । जातकादेशमार्ग के योग प्रकरण के श्लोक ४४-४५ के अनुसार (ग्रह स्थिति वही कही गयी है जो जातकपारिजात के श्लोक १३० के पूर्वार्द्ध में है) काहल योग में उत्पन्न व्यक्ति विद्या-विनय-सम्पन्न, रूपवान्, जितेन्द्रिय, आज्ञापर, महाभोगी होता है । (देखिए जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका) पृष्ठ ११९ ॥१३१॥

मालिका योग

लग्नादिसप्तगृहगा यदि सप्त खेटा
जातो महीपतिरनेकगजाश्वनाथः।
वित्तादिगो निधिपतिः पितृभक्तियुक्तो
धीरोऽग्ररूपगुणवान् नरचक्रवर्ती ॥ १३२ ॥
जातो यदा विक्रममालिकायां भूपः स शूरो धनिकश्च रोगी।
सुखादिकश्चेद् बहुदेशभाग्यभोगी महादानपरो महीपः ॥ १३३ ॥
पुत्राद्या यदि मालिका नरपतिर्यज्वाऽथवा कीर्तिमान्
जातः षष्ठगृहात् क्वचिद् धनसुखप्राप्तो दरिद्रो भवेत्।
कामादिग्रहमालिका यदि बहुस्त्रीवल्लभो भूपति-
र्दीर्घायुर्धनवर्जितो नरवरस्त्रीनिर्जितश्चाष्टमात् ॥ १३४ ॥
धर्मादिग्रहमालिका गुणनिधिर्यज्वा तपस्वी विभुः
कर्माद्या यदि धर्मकर्मनिरतः सम्पूजितः सज्जनैः।
लाभाद्राजवराङ्गनामणिपतिः सर्वक्रियादक्षको
जातो रिःफगृहाद्वहुव्ययकरः सर्वत्र पूज्यो भवेत् ॥१३५॥

मालिका कहते हैं माला को। जैसे मोती की माला में एक के बाद दूसरा मोती होता है, बीच में कोई स्थान खाली नहीं रहता। उसी प्रकार जब सूर्यादि सात ग्रह (राहु केतु को इनमें नहीं लेना चाहिये) निरन्तर (बीच में कोई राशि रिक्त-विना ग्रह के नहीं होनी चाहिये) सात राशियों में हों तो मालिका योग होता है। किसी किसी ग्रंथकार ने इस योग का नाम 'एकावली'-एक एक की लड़ी (पंक्ति) भी कहा है। अब एक एक ग्रह निरन्तर सात राशियों में हो तो इसके बारह भेद हो सकते हैं। उन्हीं का फल ग्रंथकार ने निम्न लिखित दिया है:—

(१) यदि लग्न से आरंभ कर सप्तम तक सातों घरों में ग्रह हों तो जातक राजा अनेक हाथियों और घोड़ों का स्वामी हो। (२) यदि द्वितीय से अष्टम तक सातों घरों में ग्रह हों तो खजाने का मालिक (अर्थात् धनी), पिता में भक्ति रखने वाला, विशेष धैर्य युक्त स्वरूपवान्, गुणी और चक्रवर्ती हो। (३) तृतीय विक्रम या पराक्रम स्थान है। इसलिये तृतीय से नवम तक सब घर ग्रह युक्त हों तो इसे विक्रम मालिका कहते हैं। ऐसा जातक, राजा शूरवीर, धनी किन्तु रोगी होता है। (४) चतुर्थ सुख स्थान है। इसलिये कहा कि सुख

से दशम तक—सब घरों में निरन्तर ७ ग्रह हों तो बहुत देशों में भाग्यवान्, भोगी, महादानी, राजा हो। (५) पुत्रस्थान (जन्म लग्न से पंचम) से ग्यारहवें तक सात ग्रह हों। बीच की कोई राशि रिक्त न हो तो राजा, यज्ञ करने वाला अथवा कीर्तियुक्त हो। (६) छठे घर से बारहवें घर तक सब घर सग्रह हों तो कभी तो धन और सुख की प्राप्ति हो और कभी दरिद्र हो जायें। (७) यदि सप्तम से लग्न तक सातों घरों में सात ग्रह हों तो इसे कामादि मालिका कहा क्योंकि सातवें घर से ग्रहों की पंक्ति प्रारंभ होगी और सातवां स्थान काम (कन्दर्प-स्त्री भोग) का है। इसका फल है कि अनेक स्त्रियों का प्यारा (स्वामी) हो और राजा हो। (८) यदि अष्टम से द्वितीय तक सातों घरों में सात ग्रह हों तो दीर्घायु किन्तु निर्धन, मनुष्यों में श्रेष्ठ किन्तु स्त्रीनिर्जित (स्त्री या स्त्रियों के दबाव में रहने वाला) हो। (९) धर्म स्थान (लग्न से नवम) से तृतीय तक सातों ग्रह सात राशियों में हों तो गुणनिधि, यज्ञ करने वाला तपस्वी, विभु (समर्थ, अन्य जनों पर अधिकारी) होता है। (१०) यदि कर्म स्थान (लग्न से दशम) से चतुर्थ तक सातों घरों में सात ग्रह हों तो जातक धर्म कर्म निरत और सज्जनों से सम्पूजित होता है। (११) लाभ (एकादश) से पंचम तक सातों घर ग्रह सहित हों और इस प्रकार मालिका योग बनता हो तो राज्य, वरांगना (उत्तम स्त्री, वरांगना और वारांगना में महान् भेद है; वरांगना कहते हैं उस स्त्री को जो कुल, सौन्दर्य, गुण (विद्या, बुद्धि, सौशील्यादि, धर्म कर्म निष्ठादि आचार विचार में श्रेष्ठ हो और वारांगना कहते हैं वेश्या को। वेश्या भी रूप, यौवन, विद्या, बुद्धि, सौशील्यादि गुण विशिष्ट हो सकती है किन्तु कुलवधु और वारांगना में कितना भेद है यह व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है) युक्त हो तथा रत्नों का स्वामी हो। मूल में 'मणि' शब्द आया है। यह सभी रत्नों का उपलक्षण है क्योंकि सूर्य का रत्न मणि, चन्द्रमा का मुक्ता, मंगल का प्रवाल आदि होते हैं। इसलिये ग्रहगणना में सर्वप्रथम सूर्य का ग्रहण किया जाता है—इस कारण सूर्य का रत्न मणि कहकर एक वस्तु के निर्देश से बहुत वस्तुओं के निर्देश की प्रणाली अपनायी है। जैसे 'मणिमुक्ता-प्रवालानां सर्वस्यैव पिता प्रभुः' दाय भाग प्रकरण में सूर्य, चन्द्र मंगल के रत्नों का नाम लेने से सभी रत्नों का ग्रहण हो गया। ऐसा जातक सभी क्रियाओं में दक्ष होता है। (१२) यदि व्यय (बारहवें घर) से छठे तक—सातों राशियों में ग्रह हों तो जातक बहुत व्यय करने वाला, सर्वत्र पूज्य होता है।

यहां मालिका योग में निम्न बातें होना आवश्यक हैं:—

(१) सात घरों में सात ग्रह हों (२) बीच में कोई राशि ग्रह शून्य न हो। राहु तथा केतु न मालिका योग बनाने में साधक होते हैं, न बाधक। मालिका

योग में किसी न किसी ग्रह के साथ राहु या केतु अवश्य होगा। वह बाधक नहीं होता।

मालिकायोग का उल्लेख अन्य फलित ग्रंथों में भी है। शतमंजरी १०० राजयोगों का ग्रंथ संस्कृत में है। इसकी हिन्दी में व्याख्या कर–तीन प्राचीन संस्कृत ग्रंथ सुश्लोक शतक, शतमंजरी राजयोग तथा वेड़ा ज्योतिष हिन्दी व्याख्या सहित हमने त्रिफला (ज्योतिष) नाम से प्रकाशित कराया है। यह ग्रंथ मोतीलाल बनारसी दास पुस्तक प्रकाशक (दिल्ली, वाराणसी, पटना) ने प्रकाशित किया है और उनके यहाँ प्राप्य है। मालिकायोगों के लिये त्रिफला (ज्योतिष) के पृष्ठ १४९-१५२ का अवलोकन करें।

इस शतमंजरी राजयोग के अनुसार मालायोग में कोई ग्रह अस्त नहीं होना चाहिये। सारावली, अध्याय ३५ श्लोक ९२ में यदि निरन्तर ६ घरों में (परन्तु लग्न से छठे घर तक–किसी अन्य घर से प्रारंभकर आगे के छै घरों में नहीं) सब-सातों ग्रह हों तो जातक राजा होता है, यह कहा है:—

निरन्तरं यदि भवनेषु षट्सु ग्रहाः स्थिता उदयगृहात्समस्ताः।
स्वपंक्तिदन्नरमेव कुर्युश्चतुष्टयन्नरपतिं मंत्रिणं च॥

पंडित सीताराम झा इसके अनुवाद में लिखते हैं:—लग्न से निरन्तर छः राशियों में सब ग्रह हों तो जातक राजा होता है; ४ राशियों में सब ग्रह हों तो राजमंत्री होता है।

फलदीपिका अध्याय ६ श्लोक २१ का भी अवलोकन करें। जातक पारिजात में निरन्तर सात राशियों में सात ग्रह होने से मालिका योग लिखा है–परन्तु इनमें भी ग्रहों के बलाबलानुसार उत्कृष्ट, मध्यम और सामान्य शुभ फल हो सकता है; देखिये उदाहरण १३५ (१), १३५ (२), १३५ (३), १३५ (४) पंडित जवाहर लाल जी नेहरू की जन्म कुंडली है जिसमें सारावली में कथित 'नरपति (महाराजा) होने का योग है:—

१३५(१)
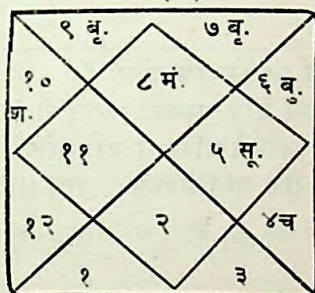
१३५ (२)
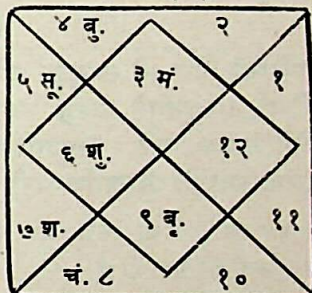
१३५(३)
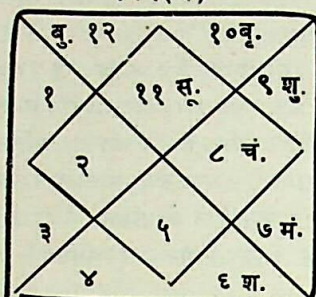
१३५(४)
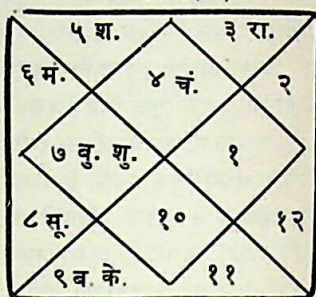
जातकसारदीप में मालिका योग का पंक्ति योग नाम दिया गया है। लग्न से सप्तम तक सबसे उत्कृष्ट। चतुर्थ से दशम तक या सप्तम से लग्न तक या दशम से चतुर्थ तक ७ ग्रह पंक्ति से (बीच में कोई राशि शून्य न हो) हों तो उत्कृष्ट फल कहा है। अन्य किसी भाव से आगे के सात भावों में निरन्तर ग्रह रहने पर भी पंक्ति योग का साधारण उत्तम फल कहा है:—

अनन्तरं षट्सु गृहेषु याताः
सर्वे यदा तं प्रवदन्ति पंक्तिम्।
लग्नात्प्रसूतोऽत्र नृपं प्रसूते
केन्द्रात्प्रसूतौ नृपमंत्रिमुख्यम्॥
विहाय केन्द्रादितरप्रवृत्तैः
स्यात्पंक्तियोगैर्नृ चतुष्पदाढ्यः।
यथाभिलाषं फलमुक्तमस्मिन्
विद्वान्फलोपायमलक्ष्यरूपम्॥

(—जातकसारदीप अध्याय ६२२ श्लोक २१, २२)

इसीलिये किसी भी जन्म कुण्डली में किस मात्रा में शुभ या अशुभ फल होगा—यह सब बातों का विचार कर निर्णय करना चाहिये ॥१३२-१३५॥

चामरयोग

लग्नेश्वरे केन्द्रगते स्वतुङ्गे जीवेक्षिते चामरनाम योगः।
सौम्यद्वये लग्नगृहे कलत्रे नवास्पदे वा यदि चामरः स्यात्॥ १३६॥
योगे जातश्चामरे राजपूज्यो विद्वान् वाग्मी पण्डितो वा महीपः।
सर्वज्ञः स्याद्वेदशास्त्राधिकारी जीवेल्लोके सप्ततिर्वत्सराणाम्॥१३७॥

इस श्लोक में दो भिन्न भिन्न योग दिये गये हैं। दोनों को चामर योग कहा गया; फल भी एक ही है:—

(१) यदि लग्नेश अपनी उच्च राशि में स्थित होकर केन्द्र में हो और बृहस्पति दृष्ट हो तो चामर योग होता है। यह योग केवल मेष, मिथुन, कन्या, मकर लग्न वालों को हो सकता है। अन्य लग्न होने से यदि लग्नेश उच्च राशि में होगा तो केन्द्र में न होगा।

यदि दो शुभ ग्रह एक साथ लग्न, सप्तम, नवम या दशम में हों तो चामर योग होता है।

जो चामर योग में उत्पन्न होता है वह राजपूज्य, विद्वान्, वाग्मी पंडित या राजा, सर्वज्ञ, वेदशास्त्राधिकारी होता है और ७० वर्ष तक जीता है। ग्रहों के बलाबल के अनुसार चामर योग भी उत्कृष्ट और सामान्य—दो प्रकार का हो सकता है, यह अपनी बुद्धि से समझना चाहिये। नीचे उदाहरणों में १३७ (१) तथा १३७ (३) उत्कृष्ट योग के उदाहरण हैं तथा १३७ (२) तथा १३७ (४) साधारण श्रेणी के हैं। उदाहरण (१) में लग्नेश उच्च हैं तथा बृहस्पति अपनी राशि में केन्द्र में हैं। दशमेश दशम में है। उदाहरण (२) में बृहस्पति नीच राशि में अष्टम में है। उदाहरण (३) बृहस्पति स्वगृही, बृहस्पति स्वराशिस्थ है। केन्द्रेश त्रिकोणेश सम्बन्ध है।
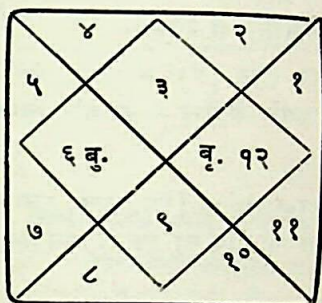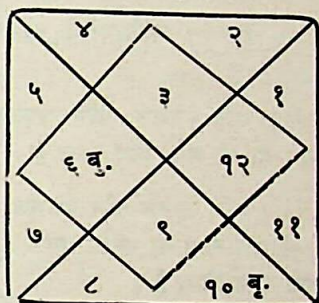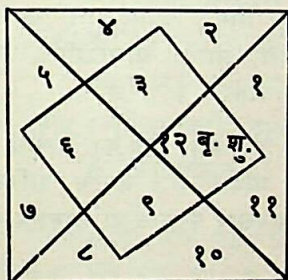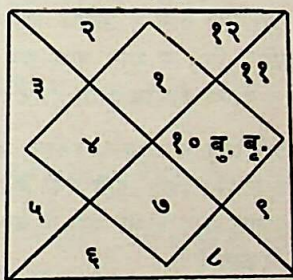
चामर योग इस नाम का अनेक ग्रंथकारों ने उपयोग किया है। परन्तु ग्रह स्थिति भिन्न कही गयी है। फल भी भिन्न है। देखिए फलदीपिका अध्याय ६ श्लोक ४४-४५, त्रिफला (ज्योतिष) पृष्ठ १२५, जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका) पृष्ठ १३०-१३१, इत्यादि ॥१३६-१३७॥

शंखयोग

अन्योन्यकेन्द्रगृहगौ सुतशत्रुनाथौ
लग्नाधिपे बलयुते यदि शङ्खयोगः।
लग्नाधिपे च गगनाधिपतौ चरस्थे
भाग्याधिपे बलयुते तु तया वदन्ति ॥ १३८ ॥

शङ्खे जातो भोगशीलो दयालुः
स्त्रीपुत्रार्थक्षेत्रवान् पुण्यकर्मा।
शास्त्रज्ञानाचारसाधुक्रियावान्
जीवेल्लोके वत्सराणामशीतिः ॥ १३९ ॥

(i) यदि पंचमेश और षष्ठेश एक दूसरे से केन्द्र में हों और लग्नेश बलवान् हो तो शंख योग होता है।

(ii) यदि लग्नेश और दशमेश दोनों चर राशि में (मेष, कर्क, तुला या, मकर में एक साथ या अलग अलग हों और नवम भाव का स्वामी बलवान् हो तो शंख योग होता है।

इस प्रकार योग दो पृथक् पृथक् कहे गये हैं। परन्तु नाम दोनों का शंख ही है। जो शंख योग में उत्पन्न होता है। वह भोगी, दयालु, स्त्री पुत्र धन क्षेत्र (कृषि भूमि) से युक्त, पुण्य कर्म करने वाला, शास्त्रज्ञ आचारशील, उत्तम कर्म करने वाला दीर्घायु होता है, ८० वर्ष तक जीता है।

फलदीपिका अध्याय ६ श्लोक ३७-३८ में भी शंख योग का उल्लेख है। परन्तु गृह स्थिति भिन्न कही गयी है। फल भी अन्य ही है। जातक पारिजात में कथित शंख योग में भी ग्रहों के बलाबल के अनुसार उत्कृष्ट या सामान्य मात्र योग हो सकता है:
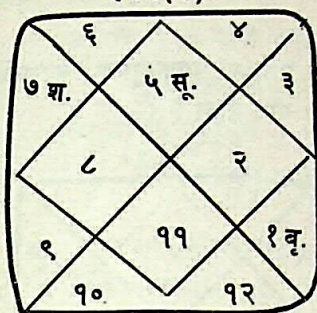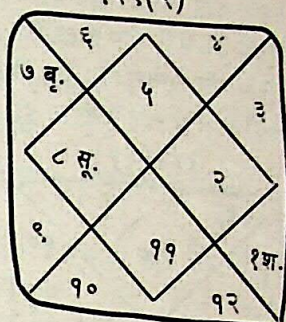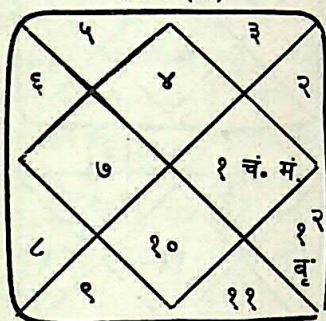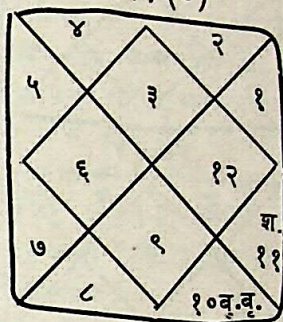
देखिये उदाहरण (१) और (२) तथा (३) और (४) में परस्पर बलाबल में कितना भेद है।१३८-१३९।

भेरीयोग

स्वान्त्योदयास्तभवनेषु वियच्चरेषु
कर्माधिपे बलयुते यदि भेरियोगः ।
केन्द्र गतौ सुरगुरोः सितलग्ननाथौ
भाग्येश्वरे बलयुते तु तथैव वाच्यम् ॥ १४० ॥
दीर्घायुषो विगतरोगभया नरेन्द्रा
बह्वर्थभूमिसुतदारयुताः प्रसिद्धाः ।
आचारभूरिसुखशौर्यमहानुभावा
भेरीप्रजातमनुजा निपुणाः कुलीनाः ॥ १४१ ॥

इस श्लोक में दो योग कहे गये हैं। ग्रह स्थिति दोनों योगों में भिन्न है, परन्तु दोनों का नाम भेरी योग ही है। फल भी एक ही है।

(१) यदि लग्न, द्वितीय, सप्तम तथा द्वादश में ग्रह हों और दशमेश बलवान् हो तो भेरी योग होता है।

(२) यदि लग्नेश और शुक्र दोनों (एक साथ या पृथक्-पृथक्) बृहस्पति से केन्द्र में हों और भाग्येश बलवान् हो तो भेरी योग होता है।
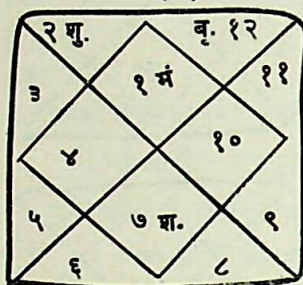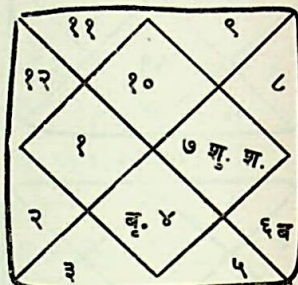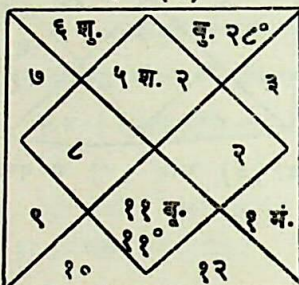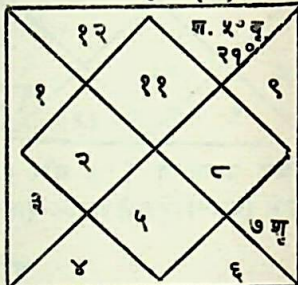
जो भेरी योग में जन्म लेता है, दीर्घायु, नीरोग, निर्भय, नरेन्द्र (नरों में शिरोमणि) अधिक धन, भूमि, पुत्र, पत्नी युत, प्रसिद्ध, आचारवान् अत्यन्त सुखी, शूरवीर, निपुण, कुलीन, महानुभाव होता है।

१४० (१) और १४० (२) तो उत्कृष्ट भेरी योग के उदाहरण हैं, जिसमें ग्रह अपनी स्वराशि या उच्च राशि में हैं। १४० (३) तथा १४० (४) में भेरी योग में दी हुई ग्रह स्थिति तो घटित होती है, किन्तु अधिकतर ग्रह निर्बल या दुःस्थान स्थित हैं। यह उदाहरण पाठकों की ऊहापोह शक्ति को उपयोग में लाने के लिये दिये गये हैं। केवल अमुक योग अमुक कुण्डली में है— इस पर निर्भर नहीं होना चाहिये। अपनी बुद्धि भी काम में लानी चाहिये।

शतमंजरी राजयोग के श्लोक ६ में भी (देखिये त्रिफला ज्योतिष पृष्ठ ११९) भेरी योग दिया गया है। नाम वही है, परन्तु ग्रह स्थिति भिन्न, फल भी भिन्न है ॥१४०-१४१॥

मृदंग योग

उच्चग्रहांशकपतौ यदि कोणकेन्द्रे
तुङ्गस्वकीयभवनोपगते बलाढ्ये ।
लग्नाधिपे बलयुते तु मृदङ्गयोगः
कल्याणरूपनृपतुल्ययशःप्रदः स्यात् ।। १४२ ।।

यदि जन्म कुण्डली में कोई उच्च राशि में ग्रह हो तो उसे कहिये 'क'। 'क' ग्रह जिस नवांश में हो उस नवांश को कहिये 'ख'। 'ख' नवांश के स्वामी ग्रह को कहिये 'ग'। अब यदि 'ग' ग्रह, जन्म लग्न से केन्द्र या कोण में हो, अपनी स्वराशि या उच्च राशि में हो और लग्नेश बलवान् हो तो मृदंग योग होता है। यहाँ एक शंका उठना स्वाभाविक है। जब 'ग' ग्रह की केन्द्र या त्रिकोण स्थिति, स्वराशि या उच्च राशि स्थिति का कथन कर दिया, तब बलवान् हो यह क्यों कहा क्योंकि राशि, भाव दोनों में जो सुस्थित होगा वह बलवान् तो होगा ही ! इसका अभिप्राय यह है कि नीच या शत्रु नवांश में होने से, पाप दृष्ट या अस्त होने से जो निर्बलता या दोष आ जाते हैं, उन दोषों से मुक्त हो। मान लीजिये 'ग' ग्रह चन्द्रमा हुआ। यह यदि क्षीण चन्द्र हुआ तो क्या मृदंग योग का शुभ फल करेगा ?

१४२ (१)
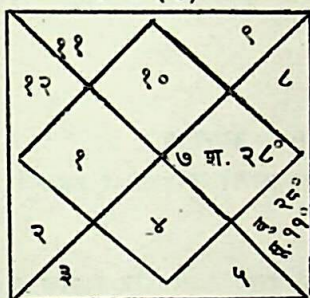
१४२ (२)
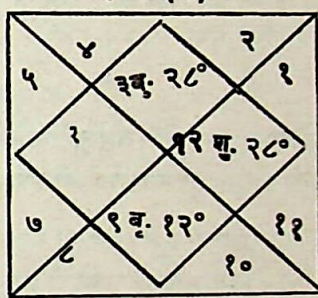
उदाहरण (१) में लग्नेश केन्द्र में अपनी उच्च राशि में है इस कारण बलवान् है। शनि उच्च राशि में है। शनि २८° का है, इस कारण मिथुन नवांश का है। मिथुन का स्वामी त्रिकोण में अपनी राशि में है। वर्गोत्तम बलाढ्य है अस्त नहीं है। उदाहरण (२) में लग्ने बुध वर्गोत्तम है। इस कारण, स्वराशि स्वनवांश तथा केन्द्र बल, दिग्बल आदि के कारण बलवान् है। शुक्र उच्च राशि

उच्च नवांश में है। मीन का स्वामी स्वराशि, अपने उच्च नवांश में केन्द्र में है, इसलिए वली है।

एक ही कुंडली में एक से अधिक मृदंग योग हो सकते हैं :—

१४० (३)
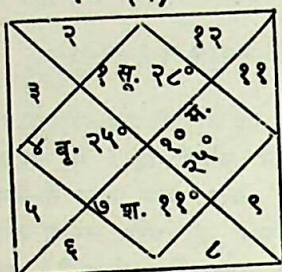
लग्नेश मंगल केन्द्र में उच्च राशि में दिग्बल युक्त है। इसका कारण बली है। इस कुंडली में चार मृदंग योग हैं: यथा —

(१) सूर्य अपनी उच्च राशि में धनु नवांश में है। धनु का स्वामी बृहस्पति केन्द्र में उच्च राशि में है और बलवान् है।

(२) बृहस्पति अपनी उच्च राशि में केन्द्र में कुंभ नवांश में है। कुंभ का स्वामी अपनी उच्च राशि में लग्न से केन्द्र में है और दिग्वली है। बलाढ्य है।

(३) शनि अपनी उच्च राशि में मकर नवांश में है। मकर का स्वामी स्वयं शनि केन्द्र में बलवान् है। मंगल अपनी उच्च राशि में सिंह नवाँश में है। सूर्य–सिंह नवाँश का स्वामी केन्द्र में बलवान् है।

शतमंजरी राजयोग श्लोक ११ में भी मृदंग योग दिया गया है। परन्तु वहाँ कथित ग्रह स्थिति भिन्न है और फल भी भिन्न है देखिए त्रिफला (ज्योतिष) पृष्ठ ॥१४२-१४२॥

श्रीनाथयोग

कामेश्वरे कर्मगते स्वतुङ्गे कर्माधिपे भाग्यपसंयुते च।
श्रीनाथयोगः शुभदस्तदानीं जातो नरः शक्रसमो नृपालः ॥ १४३ ॥

इस श्लोक के दो अर्थ हो सकते हैं :—

(१) यदि सप्तमेश अपनी उच्च राशि में दशम में हो और भाग्येश के साथ हो। यह अर्थ मराठी टीकाकार श्री नवार्थ ने लिया है। यह योग केवल धनु लग्न वाले जातक को हो सकता है, क्योंकि सप्तमेश बुध दशम में, अपनी उच्च राशि में होगा।

(२) यदि सप्तमेश दशम में हो और दशमेश अपनी उच्च राशि में भाग्येश के साथ हो—

तो शुभ श्रीनाथ योग होता है। जातक इन्द्र के समान राजा होता है। इन्द्र कह देने से धन, धान्य, रूप, यौवन, समस्त भोग्य पदार्थ, राज्य, अधिकार, श्री वैभव, ऐश्वर्यातिरेक, विद्या, विवेक आदि सब कुछ की समष्टि हो गई।
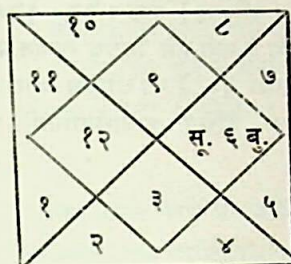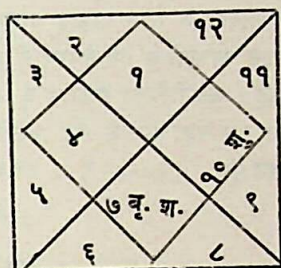
द्वितीय अर्थ अन्य टीकाकारों ने लिया है। परन्तु इस योग का उदाहरण यद्यपि १४२ (२) में ऊपर दे दिया गया है, परन्तु मेष लग्न के उदाहरण (१) में सप्तमेश शुक्र दशम में होता है। मकर का शुक्र कोई प्रशस्त नहीं। शनि अवश्य दशमेश होकर उच्च है, परन्तु मेष लग्न में नवमेश दशमेश का योग विशेष प्रकृष्ट प्रभाव उत्पन्न नहीं करता। पराशर मतानुसार मेष, तथा मिथुन लग्न वालों को गुरु शनि योग उतना प्रशस्त नहीं माना जाता है :—

न शुभं योगमात्रेण प्रभवेच्छनिजीवयोः।

तथा मिथुन लग्न के लिए—

शनैश्चरेण जीवस्य योगो मेषभवो यथा।

तब श्रीनाथ योग में जो इन्द्र का सा पद, प्रतिष्ठा, पराक्रम भोगैश्वर्यातिरेक कहा वह कैसे होगा इस पर सुधीजन विचार करें।

कोई सुन्दर प्रभावशाली उदाहरण उपलब्ध नहीं होता। वृष लग्न में नवमेश, दशमेश एक ही ग्रह शनि हो जाता है। मिथुन लग्न में यदि सप्तमेश बृहस्पति दशम में मीन में हो तो दशमेश फिर उच्च (कर्क) में कैसे होगा। कर्क, कन्या, मकर, मीन लग्न वाले को उच्चस्थ दशमेश नवमेश से युत होगा तो नवमेश नीचस्थ हो जावेगा। सिंह तथा तुला वाले जातक को दशमेश की उच्च राशि लग्न से अष्टम पड़ेगी जो अशोभन है। कुंभ लग्न वाले जातक को दशमेश की उच्च राशि लग्न से व्यय में पड़ेगी। वृश्चिक लग्न होने से दशमेश सूर्य अपनी उच्च राशि में छठे होगा, चन्द्रमा को पक्ष बल न होगा। षष्ठस्थ सूर्य यद्यपि अच्छा होता है किन्तु अब्दुल रहीम खान खाना ने लिखा है कि यदि मेष

का सूर्य षष्ठ स्थान में हो तो जातक अपनी सारी दौलत को खाक में मिलाकर जगह-जगह भटकता है :—

यदा मर्जखाने भवेदाफतावो जलीलो गनीखूबरोहं अवाचः ।
तदा मातृपक्षोद्धृतस्यायलब्धिर्निरोगो नरः शत्रुमर्दी तदा स्यात् ॥
यदा शत्रु खाने पड़े उच्च का करै खाक दौलत फिरे जा बजा ॥

व्याख्या के लिए देखिए जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका) पृष्ठ ।।१२०-१२१ ॥

इन कारणों से श्री नवार्थ ने जो अर्थ दिया है वही हमें विशेष सम्मत प्रतीत होता है । फलदीपिका अध्याय ६ श्लोक २८ तथा ३० में जो श्रीनाथ योग और उसका फल कहा गया है, वह इससे भिन्न है । देखिए भावार्थबोधिनी फलदीपिका पृष्ठ १२८-१२९ ॥ १४३ ॥

शारदयोग

योगः शारदसंज्ञकः सुतगते कर्माधिपे चन्द्रजे
केन्द्रस्थे दिननायके निजगृहप्राप्तेऽतिवीर्यान्विते ।
चन्द्रात् कोणगते पुरन्दरगुरौ सौम्यत्रिकोणे कुजे
लाभे वा यदि देवमन्त्रिणि बुधात्तच्छारदासंज्ञकः ।। १४४ ।।

स्त्रीपुत्रबन्धुसुखरूपगुणानुरक्ता
भूपप्रिया गुरुमहीसुरदेवभक्ताः ।
विद्याविनोदरतिशीलतपोबलाढ्या
जाताः स्वधर्मनिरता भुवि शारदाख्ये ।। १४५ ।।

इसमें २ पृथक्-पृथक् शारद योग कहे गए हैं । ग्रह की स्थिति दोनों में भिन्न-भिन्न कथित है । फल दोनों का एक ही है :—

(१) यदि दशमेश पंचम में हो, बुध केन्द्र में हो, सूर्य अपनी राशि मे अत्यन्त बलशाली हो ।

(२) चन्द्रमा से त्रिकोण—पंचम या नवम में बृहस्पति हो, बुध से त्रिकोण—पंचम या नवम में मंगल हो, या बुध से ग्यारहवें बृहस्पति हो ।

दोनों ग्रह-स्थितियों में शारद योग होता है । अन्य टीकाकारों ने उपर्युक्त ग्रह स्थिति को एक ही योग का अंग माना है । यथा—

यदि दशमेश पंचम में हो, बुध केन्द्र में हो सूर्य अपनी राशि में बलवान् हो, चन्द्रमा से त्रिकोण में बृहस्पति हो, (i) बुध त्रिकोण में मंगल हो या (ii) बुध से एकादश बृहस्पति हो तो शारद योग होता है ।

जो इस योग में उत्पन्न होता है वह स्त्री, पुत्र, बन्धु से युक्त, स्वरूपवान्, सुखी, गुणानुरक्त, राजा का प्रिय, गुरु, ब्राह्मण तथा देवताओं का भक्त, तपोबलाढ्य, विद्याविनोदी, रतिशील (भोगशील) और अपने धर्म में निरत होता है।

शतमंजरी राजयोग के श्लोक १२ में जो शारद योग दिया गया है, वह भिन्न है। वह इस प्रकार है :—

> वर्गोत्तमगते लग्ने नाथे शुभसमन्विते।
> लाभाधिपेन संदृष्टे योगः शारदसंज्ञकः॥

देखिए त्रिफला (ज्योतिष) पृष्ठ १२२ ॥ १४४–१४५ ॥

मत्स्ययोग

लग्नधर्मगते पापे पञ्चमे सदसद्युते।
चतुरस्रं गते पापे योगोऽयं मत्स्यसंज्ञकः॥ १४६॥
कालज्ञः करुणासिन्धुर्गुणधीबलरूपवान्।
यशोविद्यातपस्वी च मत्स्ययोगसमुद्भवः॥ १४७॥

यदि लग्न से नवम भाव में पाप ग्रह हो, दो ग्रह—एक शुभ और एक पाप लग्न से पंचम में हों और एक पाप ग्रह लग्न से चतुर्थ या अष्टम में हो तो मत्स्य योग होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति कालज्ञ (ज्योतिषी), करुणा युक्त, गुणी, बलवान्, स्वरूपवान्, बुद्धिमान्, विद्वान् और तपस्वी होता है।

हमारे विचार से पाप ग्रहों की त्रिकोण या अष्टम स्थिति गर्हित मानी गई है और इस योग में ग्रंथकार ने क्या हेतु सोचा है, यह कहना कठिन है। बृहस्पति आदि की शुभ दृष्टि पाप ग्रहों पर हो और पाप ग्रह राशि तथा नवांश में बली हों तभी ऐसा सुन्दर फल संभव है।

१४६(१)
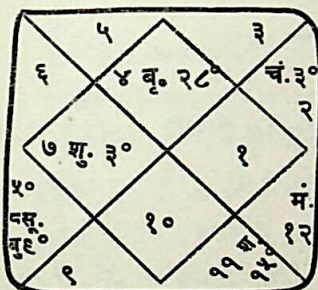
इस उदाहरण में सूर्य सिंह नवांश का है, बुध कन्या नवांश का; शनि वर्गोत्तम, बृहस्पति मीन नवांश का, मंगल वर्गोत्तम तथा चन्द्रमा परमोच्च। इन कारणों से उपर्युक्त फल हो सकता है ॥१४६-१४७॥

कूर्मयोग

कलत्रपुत्रारिगृहेषु सौम्याः स्वतुङ्गमित्रांशकराशियाताः ।
तृतीयलाभोदयगास्त्वसौम्या मित्रोच्चसंस्था यदि कूर्मयोगः ।।१४८।।
विख्यातकीर्तिर्भुवि राजभोगी धर्माधिकः सत्त्वगुणप्रधानः ।
धीरः सुखी वागुपकारकर्ता कूर्मोद्भवो मानवनायको वा ।। १४९ ।।

यदि सौम्य ग्रह अपनी, उच्च, मित्र के अंश, राशि में होकर लग्न से पंचम, षष्ठ और सप्तम में हों और मित्र या उच्च राशि में असौम्य ग्रह लग्न, तृतीय और लाभ (ग्यारहवें घर) में हों तो कूर्म योग होता है ।

जो शुभ ग्रह पंचम, षष्ठ, सप्तम में हों उनके लिए लिखा है 'स्व (अपनी) तुंग (उच्च) मित्र नवांश, राशि में होना । किसी-किसी टीकाकार ने अर्थ किया है 'अपनी उच्च का या मित्रांश या अपनी राशि का।' अन्य टीकाकारों के मत से अपनी उच्च राशि, मित्र राशि या स्वग्रही और नवांश में भी इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति में हो तभी शुभ फल होता है। और जो पाप ग्रह लग्न तृतीय तथा लाभ में हो वह मित्र या उच्च राशि में हो। यहाँ नवांश का उल्लेख नहीं है। जो इस योग से उत्पन्न होता है वह पृथ्वी में विख्यात कीर्ति, राजा के समान भोगी, अधिक धर्मात्मा, सत्त्व गुण प्रधान, सुखी, यज्ञादि करने वाला, परोपकारी और मनुष्यों का नेता होता है। इसे कूर्म योग क्यों कहा? क्योंकि जैसे कूर्म के पैर अनेक दिशाओं में फैले रहते हैं ऐसे ही इस योग में ग्रह १, ३, ५, ६, ७, ११ इन घरों में फैले रहते हैं ।। १४८-१४९ ।।

खड्ग योग

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यराशिगे ।
लग्नेशे केन्द्रकोणस्थे खड्गयोग इतीरितः ।। १५० ।।
वेदार्थशास्त्रनिखिलागमतत्त्वयुक्ति-
बुद्धिप्रतापबलवीर्यसुखानुरक्ताः ।
निर्मत्सराश्च निजवीर्यमहानुभावाः
खड्गे भवन्ति पुरुषाः कुशलाः कृतज्ञाः ।। १५१ ।।

यदि भाग्येश लग्न से द्वितीय में हो, द्वितीयेश भाग्य में हो और लग्नेश केन्द्र या कोण में हो तो खड्ग योग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक वेद के अर्थ को जानने वाला, शास्त्रज्ञ, समस्त आगमों का तत्त्व वेत्ता, युक्ति युक्त, बुद्धिमान्,

प्रतापी, बलवान्, वीर्यवान् (पराक्रमी, साहसी, पौरुष युक्त), सुखानुरक्त (भोगी) निर्मत्सर (ईर्ष्यादि रहित), अपने पराक्रम से वृद्धि को प्राप्त कुशल (चतुर) और कृतज्ञ होता है। हमारे विचार से ग्रह किन राशियों में हैं—इस भेद से यह योग भी उत्कृष्ट या मध्यम हो सकता है।

१५० (१)

१५० (२)
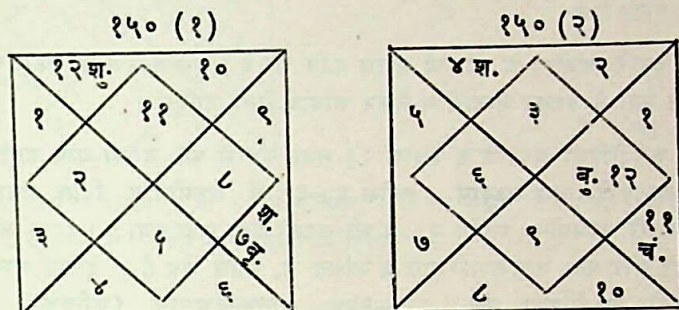
ऊपर उदाहरण (१) में यदि बृहस्पति, शुक्र तथा शनि नवांश में भी बलवान् हों तो और भी उत्कृष्ट फल होगा। उदाहरण (२) में यदि बुध और चन्द्र नीच नवांश में या अस्त भी हों तो और भी मध्यम फल होगा, यह सब अपनी बुद्धि से समझना चाहिए।

फलदीपिका के अध्याय ६ श्लोक ३२-३४ में द्वितीयेश, भाग्येश के स्थान परिवर्तन को बहुत शुभ माना है और इसे महायोग कहा है। देखिए हमारी फलदीपिका पृष्ठ १३०-२३१। धनेश भाग्येश, धनेश लाभेश, लाभेश भाग्येश का स्थान विनिमय धन के लिए उत्तम योग है। धनेश, लाभेश, भाग्येश इन तीनों की या दो की युति, धन, भाग्य, लाभ या अन्यत्र किसी शुभ भाव में हो तो उत्तम योग बनता है। ग्रह किस राशि, नवांश में हैं—शुभ वर्गों में या पाप वर्गों में—शुभ दृष्ट या पाप दृष्ट यह सब तारतम्य तो सदैव करना ही पड़ेगा ॥१५०-१५१॥

लक्ष्मीयोग

केन्द्रे मूलत्रिकोणस्थे भाग्येशे परमोच्चगे।
लग्नाधिपे बलाढ्ये च लक्ष्मीयोग इतीरितः॥ १५२॥
गुणाभिरामो बहुदेशनाथो विद्यामहाकीर्तिरनङ्गरूपः।
दिगन्तविश्रान्तनृपालवन्द्यो राजाधिराजो बहुदारपुत्रः॥ १५३॥

यदि भाग्येश अपने मूल त्रिकोण या उच्च राशि में परमोच्च होकर केन्द्र में स्थित हो और लग्नेस बलाढ्य हो तो लक्ष्मी योग होता है। इस योग में

उत्पन्न जातक गुणाभिराम (अनेक सद्‌गुण सम्पन्न), बहुत देशों का स्वामी (भावार्थ यह है कि विस्तृत भू-सम्पत्ति का स्वामी या विशिष्ट अधिकारी) विद्वान्, बहुत यशस्वी, कन्दर्प के समान मनोहर रूप वाला, बहुत दूर-दूर के देशों में ख्यात, राजा से सम्मानित, राजाधिराज, अनेक स्त्रियों और पुत्रों से युक्त होता है।

हमारे ज्योतिष के आचार्य उत्तम कवि भी थे। इस कारण जो फल कथन किया गया है उसका शब्दार्थ न लेकर भावार्थ लेना चाहिए।

फलदीपिका अध्याय ६ श्लोक २१ तथा २४ में भी लक्ष्मी योग कहा गया है। जातकादेशमार्ग अध्याय ८ श्लोक ६७-६८ में लक्ष्मीयोग दिया गया है। शतमंजरी राजयोग श्लोक २३ में भी लक्ष्मी योग कहा गया है। परन्तु जो ग्रह स्थिति और फल जातकपारिजात में कथित है, उससे भेद है। देखिए भावार्थ-बोधिनी फतदीपिका पृष्ठ १२४-१२५, जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका) पृष्ठ १३१-१३२, तथा त्रिफला (ज्योतिष), पृष्ठ १२७। बहुत योगों के नाम में साम्य है। किसी भी उत्तम धन योग का नाम श्रीयोग, लक्ष्मीयोग, कुबेरयोग, निधि-योग आदि रखा जा सकता है ॥१५२-१५३॥

कुसुमयोग

स्थिरलग्ने भृगौ केन्द्रे त्रिकोणेन्दौ शुभेतरे।
मानस्थानगते सौरे योगोऽयं कुसुमो भवेत् ॥ १५४ ॥

दाता महीमण्डलनाथवन्द्यो
भोगी महावंशजराजमुख्यः।
लोके महाकीर्तियुतः प्रतापी
नाथो नराणां कुसुमोद्भवः स्यात् ॥१५५॥

यदि जन्म लग्न स्थिर (वृष, सिंह, वृश्चिक या कुंभ) हो, केन्द्र में शुक्र हो, पञ्चम में चन्द्रमा हो, शनि दशम में हो तो कुसुम योग होता है। जो कुसुम योग में जन्म ले वह दाता, मही-मण्डलाधीश, भोगी, महान् (उत्तम) वंश में उत्पन्न, राज्य मुख्य (उच्च पदाधिष्ठित), लोक में महाकीर्ति युक्त, प्रतापी, मनुष्यों का नाथ (जिसके अधीनस्थ अनेक व्यक्ति हों) होता है। उत्तम, मध्यम ग्रहों के बलाबलानुसार यह भी अनेक प्रकार का हो सकता है।
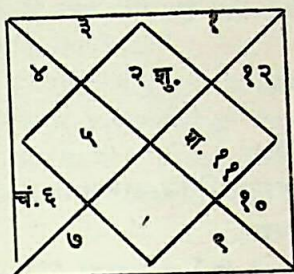
१५४ (१) १५४ (२)
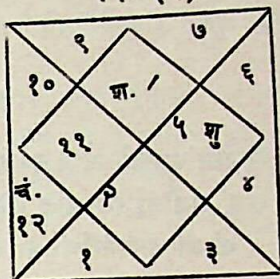
शतमंजरी राजयोग के श्लोक १ तथा २ में भी कुसुम योग कहा गया है। परन्तु वह भिन्न है। (देखिए त्रिफला ज्योतिष पृष्ठ ११६) ॥१५४-१५५॥

पारिजातयोग

विलग्ननाथस्थितराशिनाथस्थानेश्वरो वाऽपि तदंशनाथः।
केन्द्रत्रिकोणोपगतो यदि स्यात्स्वतुङ्गगो वा यदि पारिजातः ॥१५६॥
मध्यान्तसौख्यः क्षितिपालवन्द्यो युद्धप्रियो वारणवाजियुक्तः।
स्वकर्मधर्माभिरतो दयालुर्योगो नृपः स्याद्यदि पारिजातः ॥१५७॥

लग्नेश जिस राशि में हो उसे कहिए 'क'। 'क' के स्वामी को कहिए 'ख'। 'ख' जिस राशि में हो उसे कहिए 'ग'। 'ख' का स्वामी जो ग्रह हो उसे कहिए 'ग'। 'ख' जिस नवांश में हो उस नवांश स्वामी को कहिए 'घ'। यदि 'ग' या 'घ' अपनी उच्च राशि में स्थित हों या यदि जन्म लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में हों तो पारिजात योग होता है।

जो पारिजात योग में उत्पन्न होता है, वह अपने जीवन के मध्य और अंत में सुख पाता है। ऐसा जातक राजा से सम्मानित, युद्ध-प्रिय, घोड़े और हाथियों से युक्त, स्वकर्मधर्माभिरत, दयालु होता है।

शतमंजरी राजयोग के श्लोक १३३ में भी पारिजात योग कहा गया है। परन्तु वह इस पारिजात योग से भिन्न है। देखिए त्रिफला (ज्योतिष) पृष्ठ १३३-१३४। जातक पारिजात में जो योग कहा गया है, उससे मिलते-जुलते दो योग काहल और पर्वत फलदीपिका अध्याय ६ श्लोक ३५-३६ में कहे गए हैं। मंत्रेश्वर ने पारिजात योग अध्याय ६ श्लोक ४४ तथा ५५ में कहा है परन्तु वह भिन्न है। देखिए फलदीपिका, पृष्ठ १३९, १४०, १४५, १४७, १५२, १५३।

फलदीपिका के छठे और सातवें अध्याय में, तथा जातकादेशमार्ग के योगाध्याय में बहुत सुन्दर योग दिए गए हैं। द्रष्टव्य है ॥१५६-१५७॥

कलानिधियोग

द्वितीये पञ्चमे जीवे बुधशुक्रयुतेक्षिते।
क्षेत्रे तयोर्वा सम्प्राप्ते योगः स्यात्स कलानिधिः ॥१५८॥
कामी कलानिधिभवः सगुणाभिरामः
संस्तूयमानचरणो नरपालमुख्यैः।
सेनातुरङ्गमदवारणशङ्खभेरी-
वाद्यान्वितो विगतरोगभयारिसङ्घः ॥१५९॥

यदि जन्म लग्न से द्वितीय स्थान में बुध तथा शुक्र से युत या वीक्षित (दृष्ट) बृहस्पति हो या बुध या शुक्र की राशि में हो तो कलानिधि योग होता है।

हमारे विचार से मिथुन या कन्या में बृहस्पति द्वितीय में हो तो शुक्र का सम्बन्ध, और यदि वृष या तुला में बृहस्पति द्वितीय में हो तो बुध का सम्बन्ध होना चाहिए। क्योंकि इस योग का आधार, बुध, बृहस्पति शुक्र के शुभ फल की समष्टि है।

जो कलानिधि योग में जन्म लेता है वह कामी, सद्गुण सम्पन्न, रूपवान्, मुख्य-मुख्य राजाओं से सम्मानित होता है। वह सेना, मत्त हाथियों, घोड़ों का स्वामी होता है। उसके सम्मान में शंख, भेरी आदि वाद्य शब्द करते हैं। वह नीरोग और शत्रु समूह से निर्भय रहता है।

शतमंजरी राजयोग में एक अन्य कलानिधि योग दिया गया है। उसके लिए देखिए त्रिफला (ज्योतिष) पृष्ठ १२९ ॥१५८-१५९॥

अंशावतार योग

केन्द्रगौ सितदेवेज्यौ स्वोच्चे केन्द्रगतेऽर्कजे।
चरलग्ने यदा जन्म योगोऽयमवतारजः ॥१६०॥
पुण्यश्लोकस्तीर्थचारी कलाज्ञः कामासक्तः कालकर्ता जितात्मा।
वेदान्तज्ञो वेदशास्त्राधिकारी जातो राजश्रीधरोंऽशावतारे ॥१६१॥

यदि वृहस्पति और शुक्र केन्द्र में हों और शुक्र अपनी उच्च राशि में केन्द्र में हो, चर लग्न में जन्म हो तो यह अंशावतार योग होता है। हमारे विचार से

चरलग्न में जन्म हो, यह कहने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि तुला का शनि (मूल में उच्च राशि का शनि केन्द्र में कहा गया है) केन्द्र में, केवल चर लग्न में हो सकता है।

जो इस योग में जन्म लेता है वह पुण्य आचरण वाला, तीर्थसेवी या तीर्थाटन करने वाला, कला समझने में निष्णात, कामासक्त यथाकाल कार्य करने वाला, जितात्मा (संयमी), वेदान्तज्ञ, वेदशास्त्राधिकारी, अतिलक्ष्मीवान् राजा (मूल में राजश्रीधर कहा गया है अर्थात् राजोचित ऐश्वर्यों से सम्पन्न) होता है।

हमारे विचार से यदि द्विज कुल में जन्म हो तभी वेदशास्त्राधिकारिता होगी।

(१६०)
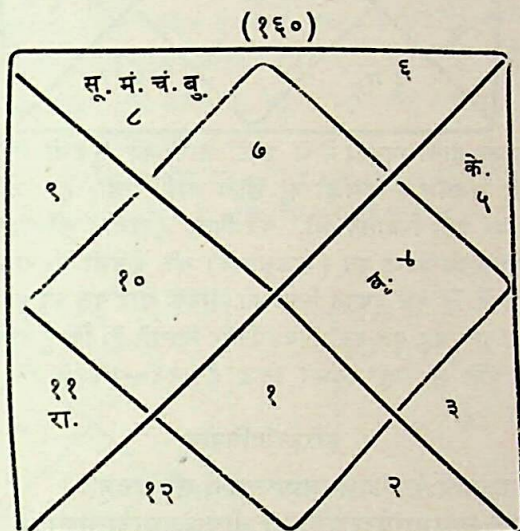
यह कुण्डली जार्ज षष्ठ की है जो ब्रिटिश साम्राज्य के बादशाह थे। यह ब्रिटिश सम्राट जार्ज पंचम के द्वितीय पुत्र थे और एडवर्ड अष्टम के गद्दी छोड़ने के बाद, सम्राट हुए। इनकी पुत्री एलिजबेथ सम्प्रति ब्रिटेन की महारानी है। जार्ज षष्ठ का जन्म सैंड्रिघम नोरफोक में १४-१२-१८९५ को प्रातः काल ब्रिटिश समयानुसार प्रातः ३ बजकर ५ मिनिट पर हुआ था।

साथ में प्रसंग वश इनके बड़े भाई (जार्ज पंचम के ज्येष्ठ पुत्र) जो सम्राट एडवर्ड अष्टम हुए और जिन्हें मिसेज़ सिम्पसन (जो दो बार अन्य पतियों को तलाक दे चुकी थीं) से विवाह करने के कारण ब्रिटिश साम्राज्य को तिलांजलि देनी पड़ी। देखिए दोनों भाइयों के राजयोग में कितना अन्तर है। प्रायः देखा
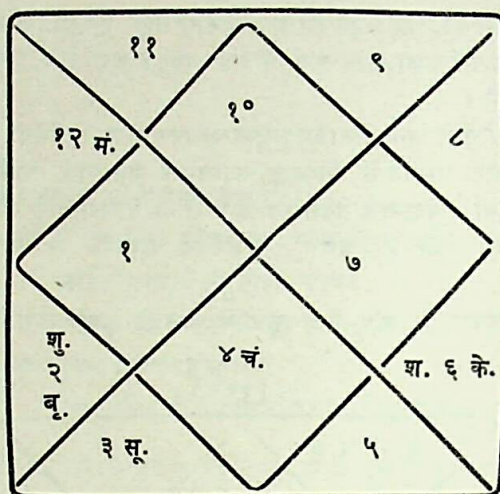
गया है कि जब दोनों भाइयों में से छोटे भाई की कुंडली में प्रबल राजयोग हो और राजवंश में जन्म हो तो छोटा भाई राजा हो जाता है। इसी प्रकार पहले जब देशी रियासतें थीं, तब पिता (राजा) की कुंडली में मारक विचार के साथ-साथ ज्येष्ठ पुत्र (राजकुमार) की कुंडली में राजयोग (कारक विचार) देखते थे कि कब युगपत् पिता को मारक और पुत्र को कारक समय है। दशम में प्रबल पाप ग्रह, पुत्र को राज्याधिकार दिलाते हैं, किन्तु जातक के पिता के लिए अनिष्ट होते हैं, यह अनुभव सिद्ध है॥१६०-१६१॥

हरिहरविधियोग

वित्तेशाद्धनरिःफरन्ध्रभवनप्राप्ताश्च सौम्यग्रहाः
कामेशात् सुखभाग्यरन्ध्रगृहगा जीवाब्जचन्द्रात्मजाः।
देहेशाद्यदि बन्धुमानभवगाः सूर्यास्फुजिद्भूमिजाः
प्रोक्तास्तत्र पुरातनैर्हरिहरब्रह्माख्ययोगा इमे ॥१६२॥
निखिलनिगमविद्यापारगः सत्यवादी
सकलसुखसमेतश्चारुवाक् कामशीलः।
जितरिपुकुलसङ्घः सर्वजीवोपकारी
हरिहरविधियोगे सम्भवः पुण्यकर्मा ॥१६३॥

हरि=विष्णु; हर=शिव; विधि=ब्रह्मा। हमारे ग्रंथकारों ने बड़े-बड़े नामों का प्रयोग किया है। श्रीनाथ योग, विरंचि योग, श्रीकंठ योग, लक्ष्मी

योग, सरस्वती योग, गौरी योग, श्री योग, विष्णु योग, चतुर्मुख योग, त्रिलोचन योग, श्री चंडिका योग, मन्दाकिनी योग, महाकाल योग, शिव योग आदि (देखिए फलदीपिका और त्रिफला (ज्योतिष) और जब भगवान् के एक नाम से संतोष नहीं हुआ तो एक ही श्लोक में त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) के तीनों नामों को सम्मिलित कर हरिहर विधि योग नामक तीन योग यह विशिष्ट नामकरण इन योगों का किया, वास्तव में इसमें—एक श्लोक में ३ पृथक् योग हैं—एक हरि योग, दूसरा हर योग, तीसरा विधि योग। परन्तु ग्रंथकार ने एक ही श्लोक में तीन योग कहे हैं। तीनों का फल एक ही है।

(१) हरियोग : यदि धनेश (लग्न से द्वितीय स्थान के स्वामी) में द्वितीय, द्वादश और अष्टम में सौम्य ग्रह हों तो हरियोग होता है।

(२) हरयोग : यदि कामेश (लग्न से सप्तम स्थान के स्वामी) से चतुर्थ, नवम और अष्टम में बृहस्पति, चन्द्रमा और बुध हों तो हर योग होता है।

(३) विधियोग : यदि लग्नेश से चतुर्थ दशम और एकादश में सूर्य, शुक्र मंगल में हों तो विधि योग होता है।

इन योगों में जो स्थान और ग्रह कहे हैं वह अनुक्रम नहीं है क्योंकि लग्नेश से चतुर्थ में सूर्य होगा तो दशम में शुक्र कैसे हो सकता है।
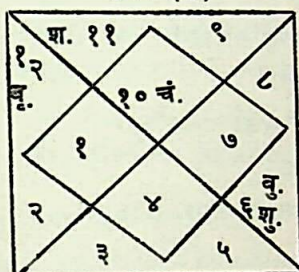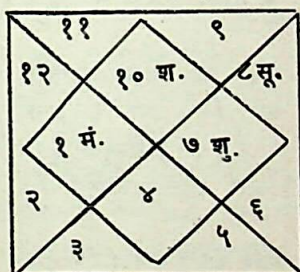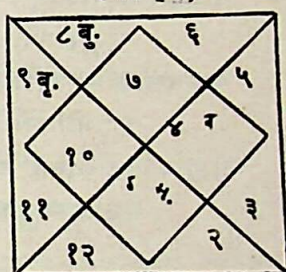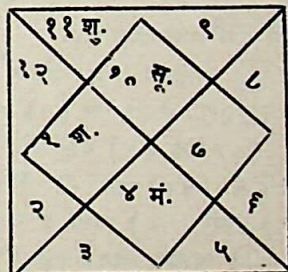
उदाहरण १ में धनेश शनि से द्वितीय बृहस्पति, अष्टम में बुध, शुक्र, द्वादश में चन्द्र है। उदाहरण २ में सप्तमेश मंगल से चतुर्थ चन्द्र, अष्टम में बुध, नवम में बृहस्पति है। उदाहरण ३ में लग्नेश शनि से चतुर्थ मंगल, दशम शुक्र एकादश में सूर्य है। उदाहरण ४ में लग्नेश शनि से चतुर्थ मंगल, दशम में सूर्य, एकादश में शुक्र है। उदाहरण ३ तथा ४ दोनों विधि योग के हैं। अन्तर केवल यह है कि उदाहरण ३ में शनि, मंगल, शुक्र स्वगृही हैं, इसलिए विधि योग का उत्कृष्ट फल होगा; उदाहरण ४ में शनि, मंगल नीच हैं इस कारण सामान्य फल ॥१६२॥

अब हरि, हर, विधि योगों का फल कहते हैं। तीनों का एक ही फल है कि सभी शास्त्रों में पारंगत, सत्यवादी, सकल सुख साधन युक्त (भोगैश्वर्य सम्पन्न) सुन्दर वाणी वाला, कामशील (भोगोत्सुकमना), शत्रुओं के समूह पर विजयी, पुण्य कर्म, सब जीवों का उपकार करने वाला होता है ॥१६३॥

नाभस योग

यूपेषुशक्तियवदण्डगदासमुद्र-
च्छत्रार्द्धचन्द्रशकटाम्बुजपक्षियोगाः।
नौचक्रवज्रहलकार्मुककूटवापी-
शृङ्गाटकाश्च विविधाकृतिविंशतिः स्युः ॥१६४॥
रज्जुर्नलश्च मुसलस्त्रितयाश्रयाख्याः
स्रग्भोगिनौ तु दलयोगभवौ भवेताम्।
वीणादयश्च कथिता वरदामपाश-
केदारशूलयुगगोलकसप्तसङ्ख्याः ॥१६५॥

इन दो श्लोकों में (i) आकृति योग (ii) आश्रय योग (iii) दल योग तथा (iv) संख्या योग—यह चार प्रकार के योगों के नाम गिनाये हैं। इनके लक्षण और फल आगे कहेंगे।

(i) **आकृति योग :** यह २० होते हैं। इनके नाम निम्नलिखित हैं :—

(१) यूप (२) इषु (३) शक्ति (४) यव (५) दण्ड (६) गदा (७) समुद्र (८) छत्र (९) अर्द्ध चन्द्र (१०) शकट (११) अम्बुज (१२) पक्षी (१३) नौ (१४) चक्र (१५) वज्र (१६) हल (१७) कार्मुक (१८) कूट (१९) वापी (२०) शृंगाटक।

(ii) **आश्रय योग :** यह ३ हैं। (१) रज्जु (२) नल (३) मुसल।

(iii) दल योग : यह २ हैं। (१) स्त्रक् (२) सर्प।

(iv) संख्या योग : यह ७ हैं। (१) वीणा (२) वरदाम (३) पाश (४) केदार (५) शूल (६) युग (७) गोल ॥१६४-१६५॥

रज्जुर्मुसलं नलं चराद्यैः सस्यस्त्वाश्रयजान् जगाद योगान्।
केन्द्रैः सदसद्युतैर्दलाख्यौ स्त्रक्सर्पौ कथितौ पराशरेण ॥१६६॥
योगा व्रजन्त्याश्रयजाः समत्वं यवाब्जवज्राण्डजगोलकाद्यैः।
केन्द्रोपगप्रोक्तफलौ दलाख्यावित्याहुरन्ये न पृथक् फलौ तौ ॥१६७॥

आसन्नकेन्द्रभवनद्वयगैर्गदाख्य-
स्तन्वस्तगेषु शकटं विहगः खबन्ध्वोः।
शृङ्गाटकं नवमपञ्चमलग्नसंस्थै-
र्लग्नान्यगैर्हलमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥ १६८ ॥
शकटाण्डजवच्छुभाशुभैर्वज्रन्तद्विपरीतगैर्यवः।
कमलं तु विमिश्रसंस्थितैर्वापी तद्यदि केन्द्रबाह्यतः॥ १६९ ॥
कण्टकादिप्रवृत्तैश्च चतुर्गृहगतैर्ग्रहैः।
यूपेषुशक्तिदण्डाख्या होराद्यैः कण्टकैः क्रमात्॥ १७० ॥
नौकूटच्छत्रचापानि तद्वत्सप्तर्क्षसंस्थितैः।
अर्धचन्द्रस्तु होराद्यैः प्रोक्तादन्यर्क्षसंस्थितैः॥ १७१ ॥
एकान्तरगतैरर्थात्समुद्रः षड्गृहाश्रितैः।
विलग्नादिस्थितैश्चक्रमित्याकृतिजसङ्ग्रहः ॥१७२ ॥

यह सातों श्लोक बृहज्जातक से लिए गए हैं।

रज्जु : सभी ग्रह चर राशियों में हों तो रज्जु योग होता है। इन नाभस योगों में जब सब ग्रह कहा जाये तो सूर्यादि ७ ग्रह समझना। राहु, केतु नहीं लेना। इस योग में शंका उठती है कि क्या सभी चर राशियाँ ग्रह युक्त होनी चाहिएँ? नहीं। चाहे एक चर राशि में या दो चर राशियों में समस्त ग्रह हों तो रज्जु योग होता है। क्योंकि भगवान् गार्गि ने कहा है :—

एकौ द्वौ वा त्रयः सर्वे चरा युक्ता यदा ग्रहैः।
चरयोगस्तदा रज्जुः सेव्यानां जन्मदो भवेत्॥
स्थिराश्चेन्मुशलं नाम मानिनां जन्मकृन्नृणाम्।
द्विस्वभावो नलाख्यस्तु धनिनां परिकीर्तितः॥

मुशल : यदि सभी ग्रह स्थिर राशि या स्थिर द्विस्वभाव राशियों (दो, तीन या चारों) में हों तो मुशल योग होता है।

अनल : यदि सभी ग्रह एक या अधिक द्विस्वभाव या राशियों में हो तो नल योग होता है।

ऐसा सत्याचार्य ने कहा है :—

चरराशिगतैर्ग्रहेन्द्रै रज्जुः स्थिरराशिगैस्तथा मुशलम् ।
द्विशरीरगतै र्योगो नलसंज्ञो मुनिभिरुद्दिष्टः ॥

रज्जु योग का आधार यह है कि कोई ग्रह स्थिर या द्विस्वभाव में न हो। मुशल योग का सार यह है कि कोई ग्रह चर या द्विस्वभाव में न हो। और नल योग में सिद्धांत है कि कोई ग्रह चर या स्थिर में न हो।

स्रक् : यदि सब शुभ ग्रह केन्द्र में हों तो स्रक् रोग होता है। स्रक् माला को कहते हैं। शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा शुभ और कृष्ण पक्ष का पाप माने जाते हैं।

सर्प : यदि सब पाप ग्रह केन्द्र में हों तो सर्प रोग होता है।

स्रक्रोग का सार है कि कोई से भी ३ केन्द्रों में बुध शुक्र बृहस्पति हों। यदि शुक्ल पक्ष का जन्म है तो केन्द्र में चन्द्रमा हो। किसी केन्द्र में पाप ग्रह सूर्य, मंगल, शनि, या कृष्ण पक्ष का चन्द्रमा नहीं होना चाहिए। सर्प योग का सिद्धांत यह है कि कोई भी तीन केन्द्रों में सूर्य, मंगल, शनि होने चाहिएँ। यदि कृष्ण पक्ष का जन्म है तो केन्द्र में चन्द्रमा होना चाहिएँ। बुध, बृहस्पति, शुक्र या शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा केन्द्र में नहीं होना चाहिए।

वास्तव में स्रक् योग में, शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा केन्द्र में हो तो अच्छा है, न हो तो भी तीन शुभ ग्रहों के केन्द्र में रहने से योग बन जाता है। सर्प योग में कृष्ण पक्ष का चन्द्रमा केन्द्र में हो तो अच्छा है, न हो तो भी योग बन जाता है। क्योंकि लघुजातक में वराहमिहिर ने लिखा है :—

केन्द्रत्रयगैः पापैः शुभैर्दलाख्या वहिश्च माला सा ।
सर्पेऽतिदुःखितानां मालायां जन्म सुखिनां च ॥

भट्टोत्पल इसकी टीका में लिखते हैं 'येषु केषु त्रिषु केन्द्रेषु च यदा त्रयः पापग्रहाः अर्कारसौरा भवन्ति न चैकस्मिन्नपि केन्द्रे सौम्यग्रहो भवति तदा सर्पो नाम दलयोगः। यदा येषु केन्द्रेषु सौम्यग्रहा बुधगुरुशुक्रा भवन्ति न कश्चित् केन्द्रे पापग्रहो भवति तदा माला नाम योगो भवति। तत्र योगद्वये चन्द्रमा न ग्राह्यः। अर्थात् इन दोनों योगों के प्रसंग में चन्द्रमा का ग्रहण नहीं करना। किंतु बृहज्जातक में भट्टोत्पल अपनी टीका में लिखते हैं :—

'नन्वत्र योगद्वये केन्द्रैः सदसद्युतैर्दलाख्यावित्युक्त्वा त्रिषु किमिति व्याख्यातम् । यस्माच्छुक्लकृष्णपक्षयोश्चन्द्रस्य सौम्यत्वं पापत्वं संभवति । एवं स्थिते यदा सौम्याक्रान्तेषु त्रिषु केन्द्रेषु पूर्णश्चन्द्रमा यदा चतुर्थो भवति । अथवा पापाक्रान्तेषु त्रिषु केन्द्रेषु क्षीणश्चन्द्रमा यदा चतुर्थो भवति तदापि स्रक्सर्पों योगौ भवतः तच्चतुर्षु केन्द्रेषु किमिति न व्याख्यातम् । उच्यते नैवम् । यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम् केन्द्रत्रयगैः पापेतरैर्दलाख्या बहिश्च माला च । अत्र सौम्यास्त्रयः पापास्त्रयः इति कथं ज्ञायन्ते । यथानयोर्द्वयोर्मध्ये चन्द्रमास्तृतीयो न भवति । उच्यते । भगवता गार्गिणोक्तम् ।

त्रिकेन्द्रगैर्यमारार्कैः सर्पो दुःखितजन्मदः ।
भोगिजन्मप्रदा माला तद्वत् जीवसितेन्दुजैः ॥

वराहमिहिर कहते हैं कि पराशर ने भी यह योग कहा है ।

हमारे विचार से तीन केन्द्रों में सूर्य, मंगल, शनि हों और कोई शुभ ग्रह केन्द्र में न हो ऐसी जन्म कुंडलियाँ तो देखने में आती हैं, किन्तु तीन शुभ ग्रह बुध, बृहस्पति, शुक्र तीन केन्द्रों में हों, केन्द्र में कोई पाप ग्रह न हो, ऐसी कुंडली देखने में नहीं आई क्योंकि बुध से केन्द्र में शुक्र हो, इसके लिए दोनों में अन्तर कम से कम ६१° होना चाहिए सो नहीं होता । वैसे मणित्थ ने भी कहा है :—

केन्द्रत्रयगतैः पापैः सौम्यैर्वा दलसंज्ञितौ ।
द्वौ योगौ सर्पमालाख्यौ विनष्टेष्टफलप्रदौ ॥

बादरायण ने भी कहा है :—

केन्द्रेष्वपापेषु सितज्ञजीवैः केन्द्रत्रिसंस्थैः कथयन्ति मालाम् ।
सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमारसूर्यैर्योगाविमौ द्वौ कथितौ दलाख्यौ ॥

चाहे दल योग न बने किन्तु यदि शुभ ग्रह केन्द्र में हो और पाप ग्रह केन्द्र में न हों तो तत्प्रयुक्त शुभ फल होगा ही और यदि केन्द्र में पाप ग्रह हों, शुभ ग्रह न हों तो पाप फल होगा ही, यह अपनी सामान्य बुद्धि से समझना चाहिए ॥१६६॥

आश्रय योग (रज्जु, मुशल, अनल) के फल यव, पद्म, वज्र, पक्षी, गोलक, युग, केदार, शूल आदि योगों के समान होते हैं तथा दल योग का फल—केन्द्र में शुभ ग्रहों या पाप ग्रहों की स्थिति के समान होता है इसलिए अन्य (आचार्यों ने) उन्हें नहीं कहा ॥१६७॥

गदा : यदि सभी ग्रह समीप के दो केन्द्रों में—लग्न तथा चतुर्थ या चतुर्थ तथा सप्तम या सप्तम तथा दशम या दशम तथा लग्न में हों तो गदा योग होता है ।

शकट : यदि सब ग्रह लग्न और सप्तम में हों तो शकट योग होता है ।

विहग : यदि सब ग्रह चतुर्थ और दशम में हों तो विहग योग होता है।

शृंगाटक : यदि सब ग्रह लग्न, पंचम, नवम में हों तो शृंगाटक योग होता है।

हल : यदि सब ग्रह (i) द्वितीय, षष्ठ, दशम में या (ii) तृतीय, सप्तम, एकादश में या (iii) चतुर्थ, अष्टम, द्वादश में हों तो हल योग होता है ॥१६८॥

वज्र : यदि लग्न और सप्तम में सब शुभ ग्रह और चतुर्थ तथा दशम में सब पाप ग्रह हों तो वज्र योग होता है।

यव : यदि सब पाप ग्रह लग्न और सप्तम में तथा सब शुभ ग्रह चतुर्थ और दशम में हों तो यव योग होता है।

यहाँ, वज्र और यव योगों में बुध को, तथा शुक्र को भी सूर्य से केन्द्र में (चतुर्थ या दशम में) होना पड़ेगा। परन्तु सूर्य तथा बुध में २८° से अधिक अन्तर हो नहीं सकता तथा सूर्य और शुक्र में ४७° से अधिक अन्तर नहीं हो सकता, इस कारण इन योगों का होना संभव नहीं है। वराहमिहिर ने यह दोनों योग नाभसाध्याय के श्लोक ५ में दिए हैं किन्तु श्लोक ६ में यह भी लिख दिया है कि यह योग संभव नहीं है। वराहमिहिर अपनी सफाई देते हैं कि 'पूर्व शास्त्रों के अनुसार मैंने वज्रादि योग लिख दिए हैं परन्तु सूर्य से चतुर्थ बुध शुक्र कैसे हो सकते हैं?'

कमल : यदि लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम चारों केन्द्रों में शुभ पाप ग्रह मिश्रित हों—किन्तु सब ग्रह केन्द्र में होने चाहिएँ। पणफर या आपोक्लिम में कोई ग्रह न हो तो कमल योग होता है।

वापी : यदि सब ग्रह, शुभ और पापपणफर और आपोक्लिम में हों—केन्द्र में कोई ग्रह न हो तो वापी योग होता है ॥१६९॥

यूप : यदि सब ग्रह लग्न, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ—इन चारों घरों में हों तो यूप योग होता है।

इषु : यदि सब ग्रह चतुर्थ, पंचम, षष्ठ तथा सप्तम में हों तो इषु योग होता है।

शक्ति : यदि सब ग्रह सप्तम, अष्टम, नवम तथा दशम में हों तो शक्ति योग होता है।

दंड : यदि सब ग्रह दशम, एकादश, द्वादश, तथा लग्न में हों तो दंड योग होता है।

रुद्रभट्ट ने अपने विवरण में यह स्पष्ट नहीं किया है कि यूप, इषु, शक्ति तथा दण्ड इन योगों में प्रत्येक में—चार घरों में सब ग्रहों का अवस्थान लिखा सो

चारों घर सग्रह होने चाहिएँ या मान लीजिए निर्दिष्ट चार घरों में से कोई से तीन, दो या एक ही घर में सातों ग्रह हों तभी योग बनेगा। परन्तु भट्टोत्पल अपनी टीका में लिखते हैं 'तद्यथा लग्न-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थेषु चतुर्ष्वपि यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा भूपाख्यो योगो भवति।' इससे निर्दिष्ट चारों घर सग्रह होने चाहिएँ यह प्रतीत होता है। अन्य आचार्यों ने भी इन योगों का उल्लेख किया है। देखिए सारावली अध्याय २१ श्लोक १२।

केन्द्रप्रवृत्तैस्तु चतुर्गृहस्थैर्भवन्ति यूपाशुगशक्तिदण्डाः।

ज्ञानमुक्तावली में भी कहा है :—

एकद्वित्रिचतुर्थस्थैः सर्वखेटैस्तु यूपकम्।
तुर्यादिसप्तमान्तस्थैरेवं बाणः प्रजायते।
सप्ताष्टनन्दकर्मस्थैः खगैः शक्तिरिति स्मृतः।
दशादिलग्नपर्यन्तैः सर्वैर्दण्डाभिधानकः॥

इससे प्रतीत होता है कि अन्य आचार्यों ने नहीं माना है कि चारों घर भरे हों ॥१७०॥

नौ : यदि लग्न से सप्तम तक (७ घरों में) सब ग्रह हों तो नौ योग होता है।

कूट : यदि चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम—इनमें सब ग्रह हों तो कूट योग।

छत्र : सप्तम से आरम्भ कर, अष्टम, नवम…लग्न इन सात घरों में सब ग्रह हों तो छत्र योग।

चाप : यदि दशम, एकादश…आदि चतुर्थ पर्यन्त सात घरों में सब ग्रह हों तो चाप योग।

अर्द्ध चन्द्र : यदि (i) द्वितीय से अष्टम तक (ii) तृतीय से नवम तक (iii) पंचम से एकादश तक (iv) षष्ठ से द्वादश तक (v) अष्टम से द्वितीय तक (vi) नवम से तृतीय तक (vii) एकादश से पंचम तक (viii) द्वादश से षष्ठ तक—इन सात घरों में सब ग्रह हों तो अर्ध चन्द्र योग होता है। पराशर, गुणाकर, ज्ञानमुक्तावली, सारावली आदि ने इनका उल्लेख किया है। विस्तार भय से उद्धरण नहीं दिए जा रहे हैं ॥१७१॥

समुद्र : यदि द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश इन घरों में सब ग्रह हों तो समुद्र योग होता है।

चक्र : यदि प्रथम, तृतीय, पंचम, सप्तम, नवम, एकादश इन छः घरों में सब ग्रह हों तो चक्र योग होता है।

इन सब योगों में ग्रंथकार या टीकाकारों ने स्पष्ट नहीं किया है कि सब निर्दिष्ट घर सग्रह होने चाहिएँ ।।१७२।।

किन्तु समुद्र और चक्र योग का जो लक्षण दिया है कि एक-एक घर छोड़कर—६ घरों में सातों ग्रह हों इससे यह अर्थ निकलता है कि छहों घर सग्रह हों; विशेषतः इसलिए भी इन दोनों योगों का विशिष्ट फल दिया है। उदाहरण के लिए यदि कल्पना करें कि द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम तथा द्वादश—इन छः घरों में से अष्टम में ४, द्वादश में ३ इस प्रकार समुद्र योग बन सकता है' तो इस ग्रह स्थिति से 'तोयालयं नरपतिप्रतिमस्तु भोगी' इस विशिष्ट शुभ फल की प्राप्ति आकाश कुसुम की भाँति क्लिष्ट कल्पना होगी । यह हमारा विचार है ।

वल्लकी : यदि सात राशियों में सात ग्रह हों—सात राशि अर्थात् सात राशियों में—प्रत्येक राशि में एक ग्रह—(किसी भी क्रम से) हो तो वल्लकी योग होता है । इसका ही नाम 'वीणा' भी है ।

दामिनी : यदि सात ग्रह छः राशियों में हों (एक में दो ग्रह अन्य पाँच में एक, एक) तो दामिनी योग होता है ।

पाश : यदि सातों ग्रह पाँच राशियों में हों (अर्थात् १२ राशियों में से पाँच सग्रह हों) तो पाश योग होता है।

केदार : यदि सातों ग्रह चार राशियों में वितरित हों (कोई सी चार राशियों में) तो केदार योग होता है ।

शूल : यदि तीन राशियों में सातों ग्रह अवस्थित हों तो शूल योग होता है ।

युग : यदि सातों ग्रह दो राशियों में हों (बाकी १० राशियाँ बिना ग्रह के हों तो युग योग बनता है ।

गोल : यदि सब ग्रह (७ ग्रह) किसी एक ही राशि में हों तो गोल योग होता है ।।१६६-१७२।।

इन योगों का फल

सङ्ख्यायोगाः सप्त सप्तर्क्षसंस्थैरेकापायाद्वल्लकीदामपाशाः ।
केदाराख्यः शूलयोगो युगं च गोलश्चान्यान् पूर्वमुक्तान्विहाय ।।१७३।।

ईर्ष्युर्विदेशनिरतोऽध्वरतश्च रज्ज्वां
मानी धनी च मुसले बहुभृत्यसक्तः ।
व्यङ्गः स्थिराढ्यनिपुणो नलजः स्रगुत्थो
भोगान्वितो भुजगतो बहुदुःखभाजः ।।१७४।।

यज्वाऽर्थभाक् सततमर्थरुचिर्गदायां
तद्वृत्तिभुक् शकटजः सरुजः कुदारः ।
दूतोऽटनः कलहकृद्विहगे प्रदिष्टः
शृङ्गाटके चिरसुखी कृषिकृद्धलाख्ये ॥१७५॥
वज्रेऽन्त्यपूर्वसुखितः सुभगोऽतिशूरः
शौर्यान्वितोऽपि च यवे सुखितो वयोऽन्तः ।
विख्यातकीर्त्यमितसौख्यगुणश्च पद्मे
वाप्यां तनुस्थिरसुखी निधिपोऽन्नदाता ॥१७६॥
त्यागात्मवान् क्रतुवरैर्यजते च यूपे
हिंस्रोऽथ गुप्त्यधिकृतः शरकृच्छराख्ये ।
नीचोऽलसः सुखधनैर्वियुतश्च शक्तौ
दण्डे प्रियैर्विरहितः पुरुषोऽन्त्यवृत्तिः ॥१७७॥
छत्रे चाद्यन्तसौख्यातुलधनबलवान् नौभवस्तोयजीवी
चक्रे राजा यशस्वी जलधिभवनरस्तोयवृत्तिः क्षितीशः ।
अर्धेन्दौ भोगशाली गिरिविपिनचरः क्रूरकर्मा च कूटे
चापे जाता मनुष्या यदि गहनचराश्चौर्यनिष्ठा निकृष्टाः॥१७८॥
वीणायां सकलक्रियासु निपुणः सङ्गीतनृत्यप्रियो
दाम्निन्यामुपकारकृत्पदुमतिः प्रख्यातविद्याधनी ।
पाशे शीलधनार्जनेऽतिचतुरो वाचालकः पुत्रवान्
केदारे कृषिवित्तवानलसधीर्बन्धूपकारी भवेत् ॥ १७९ ॥
शूले कोपरसान्वितो धनरुचिः शूरः क्षतो निर्धनी
भिक्षाशी युगयोगजोऽतिचपलः पाषण्डको मद्यपः ।
गोले निर्द्धनकोऽलसोऽटनपरः स्वल्पायुरज्ञानधी-
र्द्वात्रिंशत् कथिता वराहमिहिराचार्येण योगा इमे ॥ १८० ॥

इनमें से कुछ श्लोक १७४, १७५, १७७, १७८ बृहज्जातक से लिये गये हैं। अन्य श्लोक बृहज्जातक का भाव लेकर, ग्रंथकार ने स्वयं लिखे हैं। पहिले जिन योगों का लक्षण कहा है—उनका फल यहाँ निर्देश करते हैं।

रज्जु : ईर्ष्यालु, विदेश निरत, अधिक चलने या यात्रा करने वाला ।

मुसल : मानी, धनी, अनेक भृत्य (नौकर) जिसके हों।

नल : व्यंग (कोई अंग कम हो, या शरीर का कोई भाग रोगयुक्त हो)। स्थिराढ्य (स्थिर–चंचल नहीं तथा धनी अथवा स्थिरश्री), निपुण।

स्रक् : भोगी।

सर्प : बहुत दुःख उठाने वाला।

गदा : यज्ञादि पुण्य कर्म करने वाला, धनी तथा सदा धन में रुचि रखने वाला (अतः धन संचय में आसक्त और प्रवृत्त)।

शकट : गाड़ी चलाने से आजीविका चलाने वाला, रोगी कुदार (जिसकी स्त्री अच्छी न हो–स्वरूप से या चरित्र से)।

विहग : दूत, घूमने वाला, कलह करने वाला।

शृंगाटक : चिरसुखी (दीर्घ काल तक सुखोपभोग करने वाला)।

हल : खेती करने वाला।

वज्र : जीवन के प्रथम भाग और अन्त भाग में सुखी, देखने में सुन्दर।

यव : शूरवीर, जीवन के अन्त भाग में सुखी।

कमल : विख्यात कीर्ति, अमित सुख और गुणों से युत।

वापी : थोड़ा सुख प्राप्त करे–परन्तु अधिक काल तक प्राप्त करे; भूमि में (या अन्यत्र धन जमा करने वाला) किन्तु कृपण हो।

यूप : त्यागी (दानशील–दाता), आत्मवान् (प्रमादी)।

इषु : हिंस्र (वध में रुचि रखने वाला) बंधन पाल (बन्धन में जो हों उनका पालक–यथा जेल में पहरेदार या सुपरिन्टेण्डैंट) वाण बनाने वाला।

शक्ति : नीच, आलसी, सुख और धन से हीन।

दण्ड : प्रियजनों से विरहित, दासता (हीन नौकरी) करने वाला।

नौ : जल (नाव, जहाज) से आजीविका चलाने वाला (जल में उत्पन्न वस्तु या जल मार्ग से लाये या ले जाने वाले पदार्थों के द्वारा उपार्जन करने वाला भी तोयजीवी कहा जा सकता है। सम्प्रति सिंचाई विभाग में या पानी के नलों आदि के कार्यकर्त्ता भी इस परिभाषा में आ सकते हैं)।

कूट : क्रूर कर्म करने वाला, पर्वत और वन में घूमने वाला।

छत्र : जीवन के आदि और अंत में सुखी, अत्यन्त धनी, बलवान्।

चाप : गहन (जंगल आदि) में भ्रमण करने वाला, चोर और निकृष्ट।

अर्धचन्द्र : भोगशाली।

समुद्र : जलवृत्ति वाला। (जल वृत्ति की ऊपर नौ योग के सन्दर्भ में व्याख्या की गई है), क्षितीश (पृथ्वीपति, राजा)।

चक्र : राजा यशस्वी।

वल्लकी : इसे वीणा योग भी कहते हैं। सकल क्रियाओं में निपुण। संगीत और नृत्य का प्रिय।

दामिनी : उपकार करने वाला, बुद्धिमान्, विद्या में विख्यात, धनी।

पाश : शीलवान्, धनार्जन में अति चतुर, वाचाल, पुत्रवान्।

केदार : कृषि करने वाला, धनी, आलसी, बुद्धि वाला, बन्धुओं का उपकारी।

शूल : क्रोधी, धन की रुचि रखने वाला, शूर, जिसके शरीर पर क्षत (घाव) के चिह्न हों, निर्धन)।

युग : भिक्षा माँगकर खाने वाला, अति चपल, पाषंडी, शराबी।

गोल : निर्धन, आलसी, इधर उधर घूमने वाला, स्वल्पायु मूर्ख।

वराहमिहिर ने यह ३२ योग कहे हैं ॥१७४-१८०॥

भूपालयोगरुचपञ्चकभास्कराद्याः
केमद्रुमाधमसमग्रहमालिकाश्च।
लक्ष्मीहरीशविधिकाहलनाभसाद्याः
सूर्यादिदेवकृपया परिकीर्तितास्ते ॥१८१॥

सूर्य आदि देवों की कृपा से (इस अध्याय में) मैंने भूपाल योग (राजयोग) रुच पंचक (रुचकादि पंच महापुरुष योग) भास्करादि योग, केमद्रुम, अधम सम आदि (चान्द्र योग), ग्रह मालिका, लक्ष्मी, विष्णु, शिव,. विधि, योग, काहलादि योग तथा नाभस आदि कहे हैं ॥१८१॥

अध्याय ८

द्व्यादिग्रहयोगाध्याय

इस अध्याय में ग्रंथकार ने निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया है (i) दो ग्रहों की युति का फल (ii) तीन ग्रहों की युति का फल (iii) चार ग्रहों की युति का फल (iv) पांच ग्रहों की युति का फल (v) छै ग्रहों की युति का फल (vi) मेषादि द्वादश राशियों में सूर्य, चन्द्र आदि कोई ग्रह हो तो उसका फल (vii) ग्रह यदि शुभ दृष्ट हो तो उसका फल, यदि पाप दृष्ट हो तो उसका फल (viii) चन्द्रमा यदि मेषादि द्वादश राशियों में हो और सूर्य आदि ग्रह से दृष्ट हो तो उसका फल (ix) जो राशि स्थित ग्रह पर दृष्टि फल कहा है, वही नवांश स्थित ग्रह पर लागू करना (x) लग्न आदि द्वादश भावों में सूर्य, चन्द्र आदि प्रत्येक ग्रह स्थिति का फल (xi) उच्च राशिगत ग्रह फल (xii) उच्चस्थ ग्रह यदि मित्रग्रह से दृष्ट हो तो उसका फल (xiii) मूल क्षेत्र गत ग्रह फल (xiv) स्वक्षेत्र गत ग्रह फल (xv) मित्र क्षेत्र फल (xvi) शत्रु क्षेत्र गत फल (xvii) नीचराशि फल (xvii) ग्रहों की राशि-भाव स्थिति के अनुसार फलादेश करना।

यह सब विषय जातकपारिजातकार ने एक ही अध्याय में कह दिया है। इस कारण फल का निर्देश संक्षिप्त है। सारावली में इन सब विषयों का विवेचन बहुत विस्तृत है। बृहज्जातक, सारावली। सर्वार्थचिन्तामणि, फल दीपिका तथा जातकाभरण तथा अन्य फलित ज्योतिष के ग्रंथों में भी ग्रहों की राशि स्थिति, भाव स्थिति, युति तथा दृष्टि के कारण फलों के तारतम्य का विवेचन किया गया है। यदि हम अन्य ग्रन्थों के उद्धरण यहाँ उपस्थित करें और तुलनात्मक विवेचना करें तो वह रोचक अवश्य होगा, किन्तु विस्तार भय से वैसा नहीं किया जा रहा है।

सर्वप्रथम ग्रहों की युति का फल कहते हैं। युति क्या ? यदि दो ग्रह किसी एक ही राशि में हों–चाहे उनमें परस्पर अन्तर२९° भी हो, वह परस्पर युत (एक साथ) समझे जाते हैं। यदि दो ग्रह—अगल बगल की दो राशियों में हों और उनमें अंतर २° ३° ही हो तो भी वे युत नहीं समझे जाते। युति का आधार राशि है—अंशात्मक दूरी नहीं। वहुत से पाश्चात्य ज्योतिष से प्रभावित सज्जन —भाव में युति मानने लगे हैं। मान लीजिये चतुर्थ भाव वृश्चिक के १५° से धनु

के ?.१ अंश तक है और सूर्य के वृश्चिक में २६° है, तथा बुध के धनु में १२ अंश तक तो ये कहते हैं कि सूर्य और बुध दोनों चतुर्थ भाव में ७.१५° से ८.१५° तक—इस बीच में हैं, इस कारण—एक ही भाव में होने के कारण, सूर्य बुध को युति मानना, सूर्य बुध को युत—एक साथ मानना। यह पाश्चात्य ज्योतिष का सिद्धान्त है। पाश्चात्य ज्योतिष में राशि कुण्डली बनायी ही नहीं जाती। केवल भाव कुण्डली बनायी जाती है। परन्तु भारतीय ज्योतिष में केवल जब दो या अधिक ग्रह एक ही राशि में हों तभी उनकी युति मानी जाती है अन्यथा नहीं। इस सिद्धान्त को विस्मरण नहीं करना चाहिये।

अब आगे दो ग्रहों की युति का फल कहते हैं। ये सामान्य फल हैं। क्योंकि मान लीजिये सूर्य और मंगल एक साथ तुला राशि में हैं, या कर्क राशि में या मेष राशि में तो इनका एक सा फल कैसे होगा? सूर्य तुला में नीच राशि का होगा तथा कर्क राशि में मंगल नीचस्थ होगा। मेष में सूर्य उच्चराशि का होगा, मंगल स्वग्रही होगा। मेष राशि में भी सूर्य, मंगल की नवांश स्थिति के कारण भिन्न कुंडलियों में भिन्न-भिन्न फल होगा। मान लीजिये मेष राशि में सूर्य के १६ अंश हैं, मंगल का १ अंश तो सूर्य सिंह नवांश का स्वनवांश का होगा। मंगल मेष नवांश का स्वनवांश का वर्गोत्तम होगा। बहुत सुन्दर फल होगा। अब दूसरा उदाहरण लीजिये। मेष में सूर्य, मंगल दोनों के होने पर भी यदि मंगल कन्या नवांश का—शत्रु नवांश का हो, और सूर्य तुला नवांश का—नीच तथा शत्रु नवांश का हो तो सूर्य मंगल का निकृष्ट फल ही होगा। और ऊपर जो नवांश के विषय में कहा गया है उसे अन्य वर्गों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त सूर्य से युत ग्रह—उपर्युक्त उदाहरण में मंगल यदि उदित हो तो जो फल होगा, वह फल यदि मंगल अस्त हो तो कैसे हो सकता है। अब फल के तारतम्य में—एक अन्य दृष्टिकोण से विचार कीजिये। सूर्य मंगल की युति यदि बृहस्पति दृष्ट हो तो कितनी शुभ फल में वृद्धि हो जायेगी और यदि सूर्य, मंगल, शनि दृष्ट हो तो पाप फल में वृद्धि होगी। यदि सूर्य, मंगल की युति शुभ दृष्ट भी हो, पाप दृष्ट भी हो तो शुभाशुभ दृष्टि के कारण फल भी सम्मिश्रित होगा। इसके अतिरिक्त एक सिद्धान्त और भी है। सूर्य मंगल या कोई भी दो ग्रह यदि युत हों तो राशीश (जिस राशि में युति है, उस राशि के स्वामी) के बलाबल के अनुसार फल में तारतम्य होगा। केशवीय जातक में राशीश के बलानुसार ग्रह का बल निश्चित किया जाता है। इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। मान लीजिए सूर्य, मंगल की युति धनुराशि में है और एक कुंडली में धनु का स्वामी बृहस्पति अपनी स्वराशि मीन में है और दूसरी कुंडली में जिसमें भी सूर्य, मंगल धनुराशि में है, धनु का स्वामी बृहस्पति अपने अधिशत्रु शुक्र की वृष राशि में है, तो

राशीश बृहस्पति एक कुंडली में मीन में होने से बलवान् होगा और इस कारण सूर्य, मंगल के शुभ फल में वृद्धि करेगा और दूसरी कुंडली में राशीश बृहस्पति अधिशत्रु की राशि में होने से निर्बल होगा, इस कारण उतना शुभफल नहीं कर सकता। और जो सिद्धान्त राशीश के विषय में कहा गया है वह नवांशेश के विषय में भी समझना चाहिये। कहीं भी किसी भी राशि में सूर्य और मंगल की युति हो—यह जिन नवांशों में हों—उन नवांशों के स्वामी यदि बलवान हों तो सूर्य, मंगल के शुभ फल में वृद्धि होगी। यदि नवांशेश नीच, शत्रुराशि आदि में हों तो शुभ फल में ह्रास तथा अशुभ फल में वृद्धि होगी। अब तक हमने केवल राशि, राशीश, नवांश, नवांशेश, उदित, अस्त दृष्टि की ही चर्चा की है किन्तु जिन दो ग्रहों की युति का विचार करना हो—वे किस भाव में हैं तथा किन भावों के स्वामी हैं, किस भावेश से दृष्ट हैं, किस नक्षत्र में हैं, इनका भी सम्यक् विचार किये बिना सही निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव नहीं है।

किस भाव में युति है इसके फल का तारतम्य उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। साथ की जन्म कुंडली ८ (अ) में तथा ८ (ब) में सूर्य और मंगल
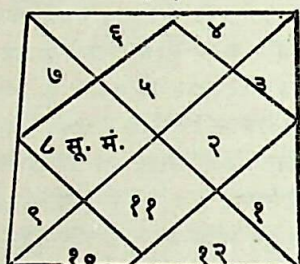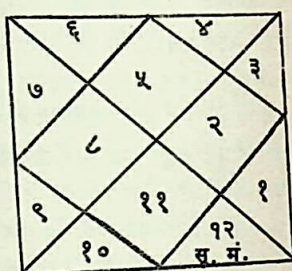
दोनों—एक ही भावों के स्वामी हैं; सूर्य लग्नेश है, मंगल चतुर्थेश नवमेश। परन्तु एक कुंडली में दोनों चतुर्थ में हैं, अन्य में दुःस्थान में अष्टम में हैं, इस कारण इस युति का एक ही प्रभाव कैसे हो सकता है। पाप ग्रहों की युति शुभ भाव में होगी तो उस भाव के शुभ फल को बिगाड़ेगी ही। शुभ ग्रहों की युति यदि शुभ भाव में होगी तो शुभफल की वृद्धि करेगी ही।

किन भावों के स्वामियों की युति है, इस पर भी शुभाशुभ फल निर्भर होता है। नीचे दो उदाहरण कुंडली दी जाती हैं :—

८(स)
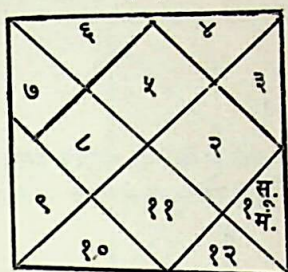
८(द)
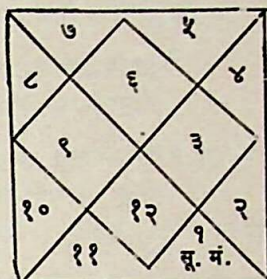
उपर्युक्त दोनों कुण्डलियों ८ (स) तथा ८ (द) में सूर्य, मंगल की युति है। मेष राशि में, दोनों कुण्डलियों में ग्रह युत हैं। परन्तु ८(स) में लग्नेश, चतुर्थेश नवमेश का सम्बन्ध है तथा ८ (द) में तृतीयेश, अष्टमेश, व्ययेश सम्बन्ध। ऐसी स्थिति में यद्यपि सूर्य, मंगल की मेष में युति दोनों कुण्डलियों में है परन्तु फल में कितना तारतम्य हो जायेगा।

किन्हीं दो ग्रहों की युति, किस ग्रह से दृष्ट है, इसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है। किन्तु वहाँ सामान्य शुभ ग्रह दृष्टि और पापग्रह दृष्टि का भेद कहा गया है। यहां यह विशेष कहा जाता है कि एक ही बृहस्पति की दृष्टि विविध जन्म कुंडली में एक सा फल नहीं करती—फल में तारतम्य होता है।

८(क)
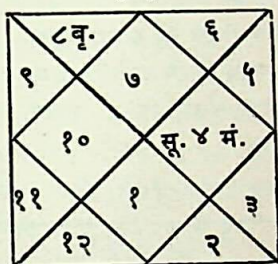
८(ख)
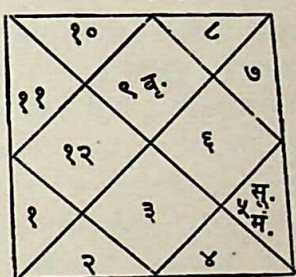
कुंडली ८ (क) तथा ८ (ख) दोनों में सूर्य, मंगल की युति बृहस्पति से दृष्ट है किन्तु कुंडली ८ (क) में सूर्य, मंगल, तृतीयेश षष्ठेश से दृष्ट हैं। चाहे बृहस्पति ही हो किन्तु तृतीय षष्ठेश बृहस्पति की दृष्टि उतना शुभ प्रभाव नहीं दिखला सकती जितना कुंडली ८ (ख) में लग्नेश, चतुर्थेश बृहस्पति।

इन सब तारतम्यों के अतिरिक्त एक अन्य हेतु (फल विभिन्नता का) जो

हमने ऊपर कहा है वह है किसी ग्रह की नक्षत्र स्थिति । बृहज्जातक अध्याय १८ के श्लोक २० का उत्तरार्द्ध है–

फलमधिकमिदं यदत्रभावात् ।
भवनमनाथगुणैर्विचिन्तनीयाः ॥

यद्यपि यह श्लोक प्रधानतः लग्न भाव के विचार के लिये है, तथापि इसमें जो सिद्धान्त बताया गया है, वह सभी भावों और ग्रहों पर लागू होता है । रुद्रभट्ट अपने विवरण में कहते हैं ।

"भवनमनाथगुणैः भवनानि मेषादिगृहाणि, भानि अश्विन्यादीनि नक्षत्राणि, भवननाथाः क्षितिजसितज्ञादयः, भनाथाः शिख्यादयः । तथा चोक्तम्–

शिखिशुक्रार्कचन्द्रारराहुजीवार्किचान्द्रयः ।
अश्विन्याद्यृक्षनवकत्रितयीपतयः क्रमात् ॥

अर्थात् अश्विनी आदि नक्षत्रों के जो स्वामी हैं—उनका फल भी ग्रह जिस नक्षत्र में है, उसके अनुसार फल दिखलायेगा । अश्विनी, मघा, मूल का स्वामी केतु । भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ का शुक्र । कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ का स्वामी सूर्य । रोहिणी, हस्त, श्रवण का चन्द्रमा । मृगशिर, चित्रा, धनिष्ठा का स्वामी मंगल । आर्द्रा, स्वाती, शतभिषा का राहु । पुनर्वसु, विशाखा, पूर्वाभाद्र का बृहस्पति । पुष्य, अनुराधा, उत्तराभाद्र का स्वामी शनि और आश्लेषा, ज्येष्ठा तथा रेवती का बुध ।

अब उदाहरण के लिये कोई ग्रह यदि मृगशिर में हो तो अपना जिस प्रकार का फल अन्य पूर्व कथित हेतुओं के कारण दिखलाये उनके अतिरिक्त मंगल का फल भी दिखलायेगा । यह नीचे की तीन उदाहरण कुंडलियों से स्पष्ट किया जाता है ।

८(ग)

८(घ)

८ (ङ)
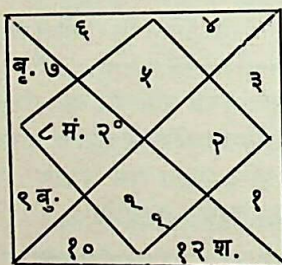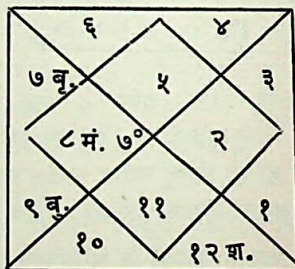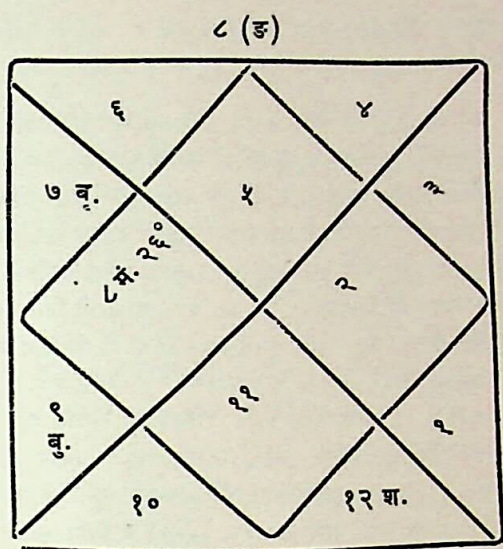
कुंडली ८ (ग) में मंगल वृश्चिक में २° अंश में है। विशाखा के चतुर्थ चरण में है। विशाखा का स्वामी बृहस्पति है। इस कारण मंगल अपने अन्य फलों के अतिरिक्त बृहस्पति का फल भी दिखायेगा। बृहस्पति का क्या फल? जो उसको इस कुंडली में पंचमेश, अष्टमेश होकर, या तृतीय स्थान स्थिति के कारण या अपने सहज कारकत्व के कारण दिया है। कुंडली ८ (घ) में वही मंगल है, उन्हीं घरों का स्वामी (जो ८ (ग) में) उसी चौथे घर वृश्चिक राशि में बैठा है किन्तु अंश ७ हैं। अनुराधा नक्षत्र में है। अनुराधा नक्षत्र का स्वामी शनि है इस कारण अपने अन्य फलों के अतिरिक्त मंगल यहां शनि का फल भी दिखलायेगा। शनि का क्या फल? जो उसको षष्ठेश, सप्तमेश होने के कारण, अष्टम स्थिति होने के कारण तथा अपने कारकत्व के कारण देय है। कुंडली ८ (ङ) में वही मंगल वृश्चिक के २६° में है। ज्येष्ठा नक्षत्र में है। ज्येष्ठा का स्वामी बुध है। बुध द्वितीयेश, एकादशेश होकर पंचम में है। बुध अनेक विषय विशेषों का स्वाभाविक कारक भी होता है। इस कारण मंगल अपने अन्य गुणों के साथ-साथ बुध का भी फल करेगा। ग्रह अपने नक्षत्र पति का फल भी देता है, इस सिद्धान्त को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। नक्षत्रपति क्या? जिस नक्षत्र में ग्रह हो, उस (नक्षत्र) के स्वामी ग्रह का। यह ऊपर समझाया गया है।

कोई भी ग्रह अपने नक्षत्रपति का भी फल देता है, यह बहुत महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। दक्षिण भारत में इस सिद्धान्त को दशा, अन्तर्दशा फल में, उपयोग

में लाया जाता है, और फल बहुत अच्छा मिलता है। इसकी सोदाहरण विस्तृत व्याख्या के लिये देखिये दशाफलाध्याय १८।

अस्तु, अब प्रकृत विषय पर आइये। ऊपर व्याख्या की गयी है कि कोई भी ग्रह अनेक हेतुओं से भिन्न-भिन्न कुंडलियों में भिन्न-भिन्न फल दिखाता है, इस कारण दो ग्रहों की युति, तीन ग्रहों की युति या अधिक ग्रहों की युति सब जन्म कुण्डलियों में एक सा फल करे, यह आवश्यक नहीं। इसी प्रकार अपनी उच्च, मूल त्रिकोण, राशि, स्वराशि, मित्र, सम, शत्रु राशि, नीच राशि आदि में सब कुण्डलियों में ग्रह एक सा फल नहीं दिखाता। तब यह प्रश्न उठता है कि सभी ग्रंथकारों ने वराहमिहिर से लेकर आज तक अपने-अपने ग्रन्थों में इन सब फलों का निर्देश क्यों किया ? इसका उत्तर यह है कि ग्रंथकारों ने (i) राशिफल (ii) भावफल (iii) नवांश फल (iv) उच्च, नीच आदि राशियों में स्थिति फल (v) राशीश जनित फल (vi) नवांशेश जनित फल (vii) भावेश वंश फल (viii) अस्तादि दोष जनित फल (ix) शुभ दृष्टि फल (x) अशुभ दृष्टि फल (xi) मिश्रित दृष्टि फल (xii) ग्रहों की युति का फल (xiii) भावेशों की युति का फल (xiv) भावेशों के परस्पर स्थान विनिमय का फल (xv) नक्षत्र पति वंश फल (xvi) राशियों के विविध लक्षण और उनकी प्रकृति, (xvii) ग्रहों के लक्षण तथा उनकी प्रकृति और कारकता आदि का पृथक्-पृथक् विवेचन किया है। उन सब नियमों का सामञ्जस्य कर, गुण दोष विवेचना पूर्वक ग्रहों के बलाबलानुसार तारतम्य सहित, अपनी बुद्धि से ऊहापोह कर देश, काल, पात्र का विचार कर फलादेश करना चाहिये।

दो ग्रहों का योग

जातः स्त्रीवशगः क्रियासु निपुणश्चन्द्रान्विते भास्करे
तेजस्वी बलसत्त्ववाननृतवाक् पापी सभौमे रवौ।
विद्यारूपबलान्वितोऽस्थिरमतिः सौम्यान्विते पूषणि
श्रद्धाकर्मपरो नृपप्रियकरो भानौ सजीवे धनी ॥ १ ॥
स्त्रीमूलार्जितबन्धुमाननियुतः प्राज्ञः सशुक्रेऽरुणे
मन्दप्रायमतिः सपत्नवशगो मन्देन युक्ते रवौ।
शूरः सत्कुलधर्मवित्तगुणवानिन्दौ धराजान्विते
धर्मी शास्त्रपरो विचित्रगुणवान् चन्द्रे सताराsुते ॥ २ ॥

जातः साधुजनाश्रयोऽतिमतिमानार्यण युक्ते विधौ
पापात्मा क्रयविक्रयेषु कुशलः शुक्रे सशीतद्युतौ ।
कुस्त्रीजः पितृदूषको गतधनस्तारापतौ सार्कजे
वाग्मी चौषधशिल्पशास्त्रकुशलः सौम्यान्विते भूसुते ॥ ३ ॥
कामी पूज्यगुणान्वितो गणितविद् भौमे सदेवार्चिचते
धातोर्वादरतः प्रपञ्चरसिको धूर्तः सभौमे भृगौ ।
वादी गानविनोदविज्जडमतिः सौरेण युक्ते कुजे
वाग्मी रूपगुणान्वितोऽधिकधनी वाचस्पतौ सेन्दुजे ॥ ४ ॥
शास्त्री गानविनोदहास्यरसिकः शुक्रे सचन्द्रात्मजे
विद्यावित्तविशिष्टधर्मगुणवानर्कात्मजे सेन्दुजे ।
तेजस्वी नृपतिप्रियोऽतिमतिमान् शूरः सशुक्रे गुरौ
शिल्पी मन्त्रिणि सार्कजे पशुपतिर्मल्लः सिते सासिते ॥ ५ ॥

नीचे दो ग्रहों के नाम—जिन ग्रहों की युति का फल कहा है, उनके नाम और फल लिखे जाते हैं :—

सूर्य और अन्य ग्रहों की युति

(i) **सूर्य-चन्द्र :** स्त्री या स्त्रियों के वश में रहने वाला, क्रियाओं में चतुर अर्थात् कार्य कलाप में दक्ष। वराहमिहिर के मत से यंत्र (मशीनरी) तथा पत्थर अर्थात् मूर्ति निर्माण आदि कार्य करने वाला। सारावली के मत से धनी, आसव (औषधि, सुरा आदि) विक्रय में कुशल। होरासार वराह मिहिर के पुत्र पृथुयशस्कृत प्राचीन ग्रथ है। इन्होंने सब ग्रहों की युति का फल नहीं कहा है, परन्तु किसी-किसी युति के सम्बन्ध में कुछ विशेष कहा है। वह भी पाठकों की सुविधा के लिये यहाँ दिया जा रहा है। पृथुयशस् कहते हैं कि यदि भाग्य स्थान (लग्न से नवम) में युति हो तो धनवान्, दशम स्थान में युति हो तो विख्यात, यदि द्वादश में यह दोनों—सूर्य, चन्द्र—हों तो पतित और अन्धा, अन्य किसी स्थान में युति हो तो भी संपत्ति (धन) नहीं होती। हमारा अनुभव है कि लग्न से द्वितीय, षष्ठ, या अष्टम में युति हो तो भी नेत्र ज्योति की हानि होती है। यदि कर्क या सिंह राशि में युति हो तो शरीर कृश होता है। शरीर कृशता सम्बन्धी रोग की भी आशंका रहती है।

(ii) **सूर्य-मंगल :** तेजस्वी, शारीरिक तथा मानसिक बल (साहस) युत, असत्य भाषण करने वाला, पाप कर्म करने वाला। सारावली में ओजस्वी,

साहसी, मूर्ख, प्रचण्ड तथा अन्य अवगुण सहित, जो ऊपर कहे गये हैं। पृथुयशस् के अनुसार यदि यह युति लग्न, अष्टम, दशम या एकादश स्थान में हो तो जातक महाकुलीन और बलवान् हो। अन्य स्थान में युति होने से धन-रहित होता है।

(iii) **सूर्य-बुध** : विद्या, रूप तथा बल सहित किन्तु अस्थिर मति। किसी एक विचार पर स्थिर न रहने वाला अस्थिर मति कहलाता है। वराहमिहिर के मत से बुद्धिमान्, कीर्तिमान् और सुख के साधनों से युत। सारावली के मत से सेवा करने वाला, प्रिय वचन बोलने वाला, बल, रूप, विद्या तथा धन से युक्त, किन्तु धन, स्थिर न रहे। यशस्वी हो, राजा का कृपा पात्र हो। पृथुयशस् कहते हैं कि सूर्य, बुध की युति यदि लग्न से चतुर्थ या अष्टम में हो तो राजा के तुल्य गुण वाला और धनी हो। अन्य किसी भाव में युति हो तो गुणी हो।

(iv) **सूर्य-बृहस्पति** : श्रद्धावान् (धार्मिक कार्यो में श्रद्धालु), कर्मठ, राजा का प्रिय। वराहमिहिर के मत से क्रूर, दूसरे के कार्य में निरत (दूसरों की सेवा करने वाला, या परोपकार निरत)। सारावली के मत से धार्मिक, समृद्धिमान्, मित्रों से धन प्राप्त करने वाला, राजा का मंत्री, उपाध्याय। पृथुयशस् कहते हैं कि यदि सूर्य, वृहस्पति का योग लग्न से नवम, दशम या एकादश में हो तो सेना का आधिपत्य करता है, विख्यात होता है और ऐसे स्थान में रहता है, जहाँ अन्य प्रविष्ट न हो सकें (यथा किला)।

(v) **सूर्य-शुक्र** : स्त्रियों के हेतु से द्रव्योपार्जन करे (अपनी पत्नी वा अन्य स्त्री), विद्वान्, बान्धवों से युक्त। वराहमिहिर से रंग (नाट्य, सिनेमा आदि) तथा आयुध (अस्त्र, शस्त्र) से धन प्राप्त करने वाला। सारावली के मत से, शस्त्र प्रहार निपुण तथा विद्या शक्ति सम्पन्न, रंग (नाट्य आदि) का ज्ञाता, स्त्री संग से धन तथा बन्धु प्राप्त करने वाला। नेत्रों की ज्योति बाद में कम हो जाती है। पृथुयशस् कहते हैं कि सूर्य, शुक्र का योग यदि लग्न से पंचम, नवम या दशम में हो तो बलवान् विख्यात, राजा के सदृश हो किन्तु अन्य स्थान में यह युति होने से धन और सुख से हीन होता है।

(vi) **सूर्य-शनि** : मन्द बुद्धि, शत्रु के वश में रहे। वराहमिहिर के मत से धातु कुशल (लोहा, ताँबा, पीतल, काँसा आदि के कार्यों में दक्ष), भाण्ड (बरतन) के कार्यों में चतुर। सारावली के अनुसार धातुज्ञ, धार्मिक, अपने धर्म या कर्म में निरत, अल्पशील (सौजन्य विनय आदि अल्प मात्रा में हों), अपने वंश के गुणों से प्रवीण हो किन्तु जातक के स्त्री-पुत्र अल्पायु हों। पृथुयशस् कहते हैं कि सूर्य, शनि युति यदि लग्न से द्वितीय, षष्ठ या नवम में हो तो जातक प्रसिद्ध कीर्ति वाला और सुखी हो, अन्य स्थान में युति होने से धन-हीन होता है।

केन्द्र में योग

जातकपारिजात में राजयोगाध्याय ७, या भावफलाध्याय ११-१५ या जातकभंगाध्याय ६ में भी कतिपय स्थानों में प्रसंगवश ग्रहों की युति फल कहा गया है। परन्तु यदि केन्द्र में—लग्न में या लग्न से चतुर्थ, सप्तम या दशम में दो ग्रहों की युति हो तो सारावली अध्याय ३१ में विशेष फल कहा है। तदनुसार दो ग्रहों की केन्द्र में युति का फल नीचे लिखा जाता है।

(i) यदि सूर्य और चन्द्रमा की युति लग्न में हो तो जातक माता तथा पिता के दुःख से तप्त, मान (प्रतिष्ठा), सुत तथा वैभव से हीन, असम्मानित और दुःखी होता है। यदि यह युति चतुर्थ में हो, तो बान्धव, सुख तथा सुत से हीन, निर्बुद्धि, दरिद्र। यदि यह दोनों ग्रह सप्तम में हों तो मित्रों और पुत्रों से हीन, स्त्रियों से असम्मानित या तिरस्कृत और दीन हो। यदि सूर्य चन्द्र का योग दशम में हो तो अच्छा शरीर हो, सेना का स्वामी, राजसिक, निर्दय, विषमशील (सुशीलता रहित) हो और शत्रुओं का नाश करे।

(ii) यदि सूर्य और मंगल लग्न में हो, पित्त प्रधान प्रकृति (पित्त अधिक होने से मनुष्य क्रोधी होता है और पित्त जनित रोग होते हैं), युद्ध में शूर, क्रोधी, शरीर में क्षत (घाव, व्रण) हो, क्रूर, शठ और कठोर हो। यदि यह युति चतुर्थ में हो तो बन्धुजनों और धन से हीन, समस्त सुख से हीन (चतुर्थ स्थान सुख स्थान है, इस कारण क्रूर ग्रह यहाँ सुख में कमी करते हैं, परन्तु सूर्य या मंगल चतुर्थ में अपनी राशि का होगा तो अपने घर को नहीं बिगाड़ेगा, यह सब अपनी बुद्धि से समझना चाहिये। इस हेतु को अन्य स्थान में भी यदि क्रूर ग्रह हो तो भूलना नहीं चाहिये), क्षोभ युक्त (मन में शांति न रहे) सब उससे द्वेष करें। यदि यह युति लग्न से सप्तम में हो तो स्त्री के विरह से खिन्न, स्त्री या स्त्रियों के कारण सदा तिरस्कृत या अपमानित, विदेश गमन में रत (लगा हुआ या इच्छा रखने वाला)। यदि दशम में सूर्य, मंगल हो तो विकल, उसके प्रारम्भ किये कार्य विफल हों, नौकरी करने वाला, प्रधान राजा की सेवा करे किन्तु उद्विग्न (चिन्ता, परेशानी युक्त) रहे।

(iii) यदि सूर्य और बुध की युति लग्न में हो तो प्राज्ञ (विद्वान्), बहुत बोलने वाला, मतिमान् (बुद्धिमान्), शूरों को प्रिय और दीर्घायु हो। यदि यह युति चतुर्थ में हो तो राजा के समान, कवि के गुणों से युक्त, कुबेर के समान वैभव हो, शरीर स्थूल और नाक वक्र हो। यदि इन दोनों ग्रहों की युति सप्तम में हो तो दूसरों की बात नहीं मानता, अति धनी नहीं होता है, लोभी, स्त्री रतिहीन (स्त्री या स्त्रियों से विषय सुख कम) और चोर होता है। और

बध या बन्धन से मृत्यु को प्राप्त हो । यदि लग्न से दशम में यह दोनों ग्रह हों तो तीनों लोकों में विख्यात, हाथी और घोड़े का स्वामी, पृथ्वीपाल (राजा)। किन्तु यह शुभ फल केवल तब प्राप्त होता है जब दशम में तुला या मीन राशि न हो । (तुला या मीन दशम में होने से सूर्य और बुध क्रमशः नीच राशि में हो जायेंगे । इस सिद्धान्त को सर्वत्र लागू करना चाहिये । जहाँ ग्रह नीच राशि में हो, वहाँ कथित शुभफल में न्यूनता होती है, और जहाँ ग्रह स्वराशि या उच्च राशि में हो वहाँ अशुभ फल में न्यूनता होती है ।)

(iv) यदि सूर्य और बृहस्पति की युति लग्न में हो, तो जातक मंत्री, सेना का नायक या साधु हो । ऐसा जातक विद्वान्, धनवान्, भोगवान् (सांसारिक सुखों का भोक्ता) और विख्यात होता है । यही युति यदि लग्न से चतुर्थ में हो तो वेद, नीतिशास्त्र और काव्य में निरत, भव्य परिजनों से युक्त, प्रियालाप (जो प्रिय वचन बोले) और सदाचारी हो । सूर्य और बृहस्पति एक साथ यदि सप्तम में हों तो कन्दर्प के आधिक्य के कारण स्त्री या स्त्रियों के वश में रहे, शुभ शरीर हो, सुवर्ण, चाँदी, मणि, मुक्ता आदि सहित हो (अर्थात् धनी हो) किन्तु अपने पिता से द्वेष करे । यदि यह युति दशम में हो तो जातक सुखी, कीर्तिमान् वैभवयुक्त, राजा होता है । चाहे जातक का जन्म नीच कुल में भी हुआ हो, उसको उपर्युक्त प्रशस्त फल होते हैं ।

(v) यदि सूर्य और शुक्र की युति लग्न में हो तो कलहप्रिय, अविनीत (विनय रहित) मलिन आचरण वाला, दुःखित, नीच, धन और कलह से रहित होता है । यदि यह युति चतुर्थ में हो तो दूसरे की नौकरी करे, शोकार्त हो, लोग उससे द्वेष करें और दरिद्र हों । यदि सूर्य, शुक्र सप्तम में हो तो स्त्रियों से परिभूत (अपमानित, तिरस्कृत) धनहीन हो । पर्वत और वनों में भ्रमण करे । शरीर बड़ा हो । लोग उससे द्वेष करें । यदि यह युति लग्न से दशम में हो तो व्यवहार में निपुण, राजा का मंत्री हो, धन, वाहन (सवारी) और सौख्य सम्पन्न हो । शास्त्रों और कलाओं में निपुण मति हो ।

(vi) यदि सूर्य और शनि की युति लग्न में हो तो निन्दित माता का पुत्र, कुत्सित वृत्तिवाला हो । उसकी बुद्धि सदैव मलिन रहे । ऐसा पापाचार (पापपूर्ण आचार या आचरण वाला) होता है । यदि सूर्य शनि का योग चतुर्थ में हो तो अपने बन्धुओं से तिरस्कृत, दरिद्र और नीच होता है । यदि यह योग लग्न से सप्तम में हो तो मन्द (स्फूर्तिहीन, मूर्ख) आलसी, दुर्भग (देखने में अच्छा नहीं) । युवती (स्त्री, पत्नी) से परित्यक्त महामूर्ख होता है । सदैव शिकार (आखेट) में संलग्न रहता है । यदि इन दोनों ग्रहों का योग दशम में हो तो

जातक नौकरी करता है, विदेश जाता है, (यदि विदेश में नौकरी करता है), क्वचित् राजा से धन प्राप्त करता है, वह भी चोरी हो जाता है और धन रहित रहता है।

चन्द्रमा और अन्य ग्रह की युति

(i) यदि चन्द्रमा और मंगल एक साथ हों तो जातक शूरवीर, सत्कुलोचित धर्म पालन करने वाला, धनी और गुणवान् होता है। वराहमिहिर के मत से जातक कूट (उपनिपत्प्रयोग सम्पादित मारणोच्चाटनादि प्रयोग में निष्णात, स्त्री आसव कुंभ आदि का क्रय-विक्रय (या गिरवी रखना) शील होता है। कूट का अर्थ नीतिपरक भी हो सकता है। माता के लिये यह योग अकल्याणकारी है। सारावली के अनुसार जातक शूर, रण में प्रतापी, मल्ल (युद्ध या कुश्ती करने वाला) मृत्तिका, चर्म या धातु के (कूट का अन्य अर्थ) शिल्प में दक्ष होता है कि रक्त रोग के कारण शरीर में वेदना रहती है। पृथुयशस् कहते हैं कि चन्द्रमा और मंगल लग्न, पंचम, नवम, दशम या एकादश में हों तो धनवान् और राजा के समान होता है। यदि यह योग अन्य स्थान में हो तो बन्धुओं और सुख से हीन हो।

(ii) यदि चन्द्रमा और बुध एक साथ हों तो धार्मिक शास्त्रज्ञ और तदनुसार कार्य और व्यवहार करनेवाला, अद्भुत गुणों (या अनेक प्रकार के गुणों से) युक्त होता है। वराहमिहिर के मत से सम प्रधान वचन बोलने वाला, अर्थ निपुण, सौभाग्यशाली, यशस्वी होता है। सारावली के अनुसार जातक काव्य तथा कथाओं में अति निपुण, धनी, स्त्री सम्मत (स्त्रियाँ जिसको पसन्द करें) सुरूपयुक्त, हँसमुख (हमारा अनुभव है कि जातक मजाक पसन्द भी होता है) और विशिष्ट गुणों से युक्त होता है। पृथुयशस् कहते हैं कि चन्द्रमा और बुध का योग लग्न से तृतीय, षष्ठ, अष्टम या द्वादश में हो तो काव्य और कलाओं में चतुर और धनवान् होता है, किन्तु यदि किसी अन्य स्थान में यह योग हो तो जातक निर्भय किन्तु धनहीन होता है।

(iii) यदि चन्द्रमा और बृहस्पति का योग हो तो जातक साधुजनावलम्बी और अत्यन्त मतिमान् (मति में बुद्धि, विवेक आदि का समावेश हो जाता है) होता है। वराहमिहिर के अनुसार जातक विक्रान्त, अपने कुल में मुख्य, अति स्थिरमति वाला और वित्तेश्वर (अत्यन्त धनी) होता है। सारावली के अनुसार देवता और ब्राह्मणों की पूजा और सत्कार में रत, शुभशील, दृढ़मित्रता निभाने वाला, अपने बन्धुओं का सम्मान करनेवाला और अत्यन्त धनी हो।

पृथुयशस् कहते हैं कि जातक विनीत, स्त्री, पुत्र सहित (अर्थात् इनका सुख हो) और धनी होता है किन्तु यह योग लग्न से तृतीय या षष्ठ में हो या चन्द्रमा और बृहस्पति इन दोनों ग्रहों में कोई नीच हो (अर्थात् यदि यह युति वृश्चिक या मकर में हो, तो यह शुभफल नहीं होता।

(iv) यदि चन्द्रमा और शुक्र का योग हो तो जातक क्रय-विक्रय (खरीद फरोख्त) में कुशल किन्तु पापात्मा होता है। वराहमिहिर के मत से वस्त्रों के क्रय आदि में कुशल होता है। सारावली के अनुसार क्रय-विक्रय कुशल, सुगन्धित पदार्थ और सुन्दर वस्त्रों से युक्त, क्रिया-कुशल किन्तु अत्यन्त आलसी होता है। पृथुयशस् भी प्रायः यही कहते हैं किन्तु उनके कथन में यह विशेष है कि जातक धनाध्यक्ष होता है और यदि यह योग लग्न से दशम या द्वादश में हो तो विदेश से धन प्राप्ति होती है।

(v) यदि चन्द्रमा और शनि की युति हो तो जातक कुस्त्री (जो स्त्री अच्छी न हो) का पुत्र होता है। जातक अपने पिता का दूषक होता है (अपने पिता की निन्दा करता है या अपने आचरण से पिता के कुल को दोष लगाता है।) और उसका धन नष्ट हो जाता है। वराहमिहिर के मत से जातक पुनर्भू सुत होता है। जिस स्त्री का द्वितीय बार विवाह हो उसे पुनर्भू कहते हैं। सब जातियों में स्त्री का पुनर्विवाह प्रचलित नहीं है, इस कारण रुद्र-भट्ट अपने विवरण में लिखते हैं कि उसकी माता जारादि से उपभुक्त हो। सारावली के अनुसार जातक (अपने वय से) अधिक वय की स्त्रियों से रमण करता है, हाथी, घोड़ों का पालन करता है या उनको शिक्षा देता है, सम्प्रति हाथी, घोड़े तो इतने रहे नहीं, इसलिए, मोटर, स्कूटर, ट्रक, टैम्पो, इंजन, जहाज हवाई जहाज, कल-कारखानों में मशीन चलाने वाला या तत्सम्बन्धित व्यवसाय में शील यह अर्थ लेना)। ऐसा जातक सौशील्यादि गुण रहित, पराजित, धन रहित होता है। दूसरे की मातहती में कार्य करता है। पृथुयशस् कहते हैं कि जातक दुर्बलदेह युक्त, अति नीच कार्य करने वाला, मातृ द्वेषी (अपनी माता से वैर करने वाला) और वुद्धिहीन होता है किन्तु यदि यह युति लग्न से तृतीय षष्ठ, दशम या एकादश में हो तो जातक सर्वसम्पन्न होता है।

केन्द्र में योग

अब चन्द्रमा यदि किसी ग्रह के साथ केन्द्र में युति करे तो सारावली में जो विशेष फल कहा है, उससे पाठकों को अवगत कराया जाता है। यदि चन्द्रमा और सूर्य का योग केन्द्र में हो तो क्या फल होता है यह पहिले

कह चुके हैं, इस कारण चन्द्रमा की अन्य ग्रह से केन्द्र में युति का फल नीचे कहते हैं।

(i) यदि चन्द्रमा और मंगल की युति लग्न में हो तो रक्त, अग्नि और पित्तरोगों से पीड़ित हो। जातक राजा होता है किन्तु उसके स्वभाव में तीक्ष्णता होती है। यदि यह युति लग्न से चतुर्थ में हो तो जातक विकल, क्लेश युक्त, द्रव्य हीन, सुख, सुत, धन और बन्धु इनसे हीन होता है। यदि चन्द्र और मंगल सप्तम में हों तो जातक क्षुद्र, दूसरे का धन प्राप्त करने का लोभी, बहुत प्रलाप करने वाला, ईर्ष्या युक्त, मिथ्यावादी हो। दशम में यदि यह युति हो तो हाथी और घोड़ों और सेना से युक्त सम्पन्न, और विशेष विक्रमशाली होता है।

(ii) यदि चन्द्रमा और बुध लग्न में योग करें तो सुखी, बुद्धिमान् तथा सत्त्व (हिम्मत, ताकत, उत्साह) युक्त होता है। जातक देखने में सुन्दर, अत्यन्त निपुण और वाचाल हो। यदि यह युति चतुर्थ में हो तो जातक सुन्दर, सुवर्ण अश्व रत्नों का स्वामी हो। उसके बन्धु मित्र सुत हों। ऐसा जातक प्रतापी और सुखी हो। यदि यह दोनों ग्रह लग्न से सप्तम में हों तो जातक का ललित शरीर हो। वह सत्कवि (काव्य कला युक्त अथवा बुद्धिमान्) विख्यात और प्रतापी होता है। ऐसा जातक राजा हो या राजा का विशेष कृपा पात्र हो। यदि यह योग दशम में हो तो जातक मानी, धनवान् और अति विख्यात हो। राजा का मंत्री हो किन्तु अपने जीवन के अंत में दुःखी हो, और उसके बन्धु उसे छोड़ दें।

(iii) यदि चन्द्रमा और बृहस्पति की युति लग्न में हो तो विस्तृत और उच्च वक्षस्थल युक्त, अच्छे शरीर से युक्त बहुत मित्रों, पुत्रों और स्त्रियों वाला (पहिले अनेक पत्नियों का होना या अनेक स्त्रियों का भोग सुख और सौभाग्य का लक्षण माना जाता था), बन्धुओं से युक्त, राजा होता है। यदि यह युति लग्न से चतुर्थ में हो तो राजा के समान, मंत्री, महावैभवशाली, बहुत शास्त्रों का ज्ञाता, निर्मल बुद्धि युक्त बन्धुओं से समन्वित होता है। चन्द्रमा और बृहस्पति की युति यदि सप्तम स्थान में हो तो जातक कला कुशल, व्यापार करने वाला, धनवान्, निर्मल, राजा का कृपापात्र या स्वयं राजा अत्यन्त बुद्धिमान् हो। यदि दशम में यह युति हो तो प्रलम्ब बाहु (लम्बे बाहु होना सौभाग्य और अधिकार का लक्षण है। देखिये हस्त रेखा विज्ञान (शरीर लक्षण सहित) और सौम्य होता है। सब उसको नमस्कार करते हैं (अर्थात् अत्यन्त समादृत होता है)। ऐसा जातक विद्वान् धनी और दानशील होता है और सम्मान तथा कीर्ति भाजन हो।

(iv) यदि चन्द्रमा और शुक्र की युति लग्न में हो तो सुन्दर शरीर हो, गुरु जन उसका अनुमोदन करें। सुन्दर वस्त्र, पुष्पमाला, सुगन्धि युक्त पदार्थों का सेवन करे (अर्थात् शौकीन हो)। वेश्या और स्त्रियां का सुख हो (अर्थात् भोगी हो)। यदि यह युति चतुर्थ स्थान में हो तो स्त्रियों और परिवारों से सुख हो। नौका या जहाजों (जलयानों) से या इनके माध्यम से लाये गये पदार्थों से धन प्राप्ति हो। जातक जनप्रिय और भोग सम्पन्न होता है। चन्द्र और शुक्र यदि सप्तम में हों तो जातक बहुत सी युवतियों में रत हो, बहुत धन नहीं होता, न बहुत पुत्र होते हैं। कन्याएँ अधिक होती हैं। राजा के समान (भोगशील) चरित्र वाला और मेधावी हो। यदि यह युति दशम में हो तो जातक के अधीन बहुत से आदमी होते हैं; वह उच्च, सम्मानित अधिकारी (हुकूमत करने वाला) विख्यात, मंत्री या राजा, वैभव युक्त होता है। वह क्षमाशील होता है।

(v) यदि चन्द्रमा और शनि की युति लग्न में हो तो जातक दास (मातहती में काम करने वाला), दुष्ट, क्रोधी, लोभी, हीन (छोटे दर्जे का—कर्म चरित्र या पद में छोटी कक्षा का)। ऐसे जातक अधिक निद्राशील, आलसी और पापी होते हैं। यदि यह दोनों ग्रह चतुर्थ में हों तो जल (जल में उत्पन्न या जल मार्ग से लायी या ले जायी गयी वस्तुओं) से, नौका, जहाज, मुक्ता, मणि आदि से आजीविका उपार्जन करता है या खुदाई (खनन—मकान, बावड़ी, कूप, तालाब बांध आदि की खुदाई या तेल, पेट्रोल, खनिज पदार्थों से सम्बन्धित खुदाई) से द्रव्य कमाता है। ऐसे जातक श्रेष्ठ (उच्च) होते हैं और लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। यदि चन्द्र—शनि योग लग्न से सप्तम में हो तो जातक नगर, ग्राम या पुर में महान्, राजा से सम्मानित होता है, किन्तु युवति हीन (स्त्री रहित, अर्थात् विवाह न हो या पत्नी जीवित न रहे) होता है। फलितार्थ यह है कि मान, प्रतिष्ठा आदि के लिये यह सुन्दर योग है किन्तु स्त्री सुख में कमी करता है। यदि चन्द्र-शनि युति दशम में हो तो नराधिप (राजा या जन समुदाय पर हुकूमत करने वाला) हो शत्रुओं का दमन करे, विख्यात हो किन्तु उसकी माता अच्छी स्त्री न हो।

सारावलीकार कहते हैं कि सौम्यग्रह के साथ चन्द्रमा यदि केन्द्र में हो तो शुभ है किन्तु चन्द्रमा, मंगल या शनि के साथ लग्न, चतुर्थ या सप्तम में हो तो इष्ट (अच्छा) नहीं होता। किन्तु चन्द्रमा मंगल या शनि के साथ दशम में हो तो सेना का नायक (अर्थात् उच्च पदाधिकारी) हो।

मंगल की अन्य ग्रहों से युति

अब मंगल की अन्य ग्रह से युति का फल कहते हैं। सर्व प्रथम जातक पारिजात का मत, तदनन्तर अन्य आचार्यों का मत दिया जाता है।

(i) यदि मंगल और बुध की युति हो तो वाग्मी, औषधि, शिल्प और शास्त्र में (या शिल्प शास्त्र में) कुशल होता है। वराहमिहिर के मत से मूल (नाल, पत्र, पुष्प, फल, वल्कल आदि), स्नेह (तैल, घृत, वसा, मज्जा—सम्प्रति ग्रीज, वैसलीन, मोबिल आइल आदि भी) कूट (विविध धातुओं से मिश्रित जो वस्तुएँ बनायी जाती हैं) आदि का वाणिज्य करता है और बाहु योद्धा (पहलवान, कुश्ती लड़ने वाला) होता है। कूट से कूटनीति, सत्य, असत्य वचनों से अपना काम निकालने वाला, यह भी अर्थ लेना चाहिये क्योंकि बुध वाणी का कारक है। सारावली के अनुसारं जातक की स्त्री अच्छी न हो, सोने, लोहे (सम्प्रति मशीनरी) का काम करने वाला, दुष्ट स्त्री और विधवा जिसकी रखैल हों, तथा औषधक्रिया में निपुण (वैद्य, हकीम, डाक्टर, केमिस्ट आदि) होता है। पृथुयशस् कहते हैं कि जातक चपल, दुष्ट स्त्री का नायक (पति या भोक्ता) थोड़े में सन्तुष्ट होने वाला, मलिन, पराम्नकांक्षी होता है। किन्तु मंगल, बुध का योग यदि केन्द्र में हो तो, धनी और सुखी होता है।

(ii) यदि मंगल और बृहस्पति का योग हो तो कामी, पूज्य गुणान्वित और गणित शास्त्र का वेत्ता हो। वराहमिहिर के मत से मंगल (सत्त्व) तथा बृहस्पति (ज्ञान) के योग बल से नगर का अध्यक्ष हो या राजा (या सरकार) से धन प्राप्त करने वाला ब्राह्मण हो। आशय है कि धनी और सम्मानास्पद हो। सारावली के मत से शिल्प, वेद तथा अन्य शास्त्रों में निष्णात, मेधावी, वाग्विशारद (पंडित की तरह वाग्मिता), बुद्धिमान् और अस्त्रों का प्रिय हो। पृथुयशस् कहते हैं कि जातक, बलवान्, दीर्घायु, पुत्रवान् और विनीत हो, किन्तु यदि यह युति लग्न से षष्ठ, अष्टम या द्वादश में हो तो व्यसनी, रोगी और अल्प वित्त वाला हो।

(iii) यदि मंगल और शुक्र एक साथ हों तो धातुओं (लोह आदि) के कार्य में संलग्न, प्रपंचरसिक (मायावी सत्य, असत्य का प्रपंच करने में युक्त) और धूर्त होता है। वराहमिहिर के मत से गोप (गायों का पालन करने वाला या गायों से युक्त) मल्ल (कुश्ती लड़ने वाला), शीघ्र कार्य कर्ता कुशल, परदार गमनशील (अन्य स्त्रियों से रमण करने वाला) द्यूत (जुआ, सट्टा, घुड़दौड़ में रुपया लगाने) में रत होता है। पृथुयशस् कहते हैं कि जातक, चपल, स्त्री या स्त्रियों के वश में दुष्ट कर्म कर्ता होता है किन्तु यदि यह युति लग्न, चतुर्थ या दशम में हो तो वह अपने कुल की अपेक्षा अधिक उच्च स्थान प्राप्त करे, या अपने ग्राम का नेता हो।

(iv) यदि मंगल और शनि की युति हो तो वादी (बहस, मुकदमा आदि में संलग्न, गान, विनोद (हँसी, मजाक, कौतुक) का ज्ञाता किन्तु जड़मति

(बुद्धिमान् नहीं) होता है। वराहमिहिर के मत से दुःखपीड़ित, असत्यसन्ध (अपनी प्रतिज्ञा न निभाने वाला—मिथ्यावाणी तथा मिथ्या व्यवहारशील) तथा निन्दित होता है। सारावली के मत से धातु के कार्यों में कुशल, इन्द्रजाल (जादूगरी) प्रवीण, धोखा देनेवाला, चोरी के कार्यों में चतुर, कलह प्रिय, शस्त्र या विष से पीड़ित (कभी शस्त्र आघात लगे या विष से पीड़ा हो) तथा विधर्मी (अपने धर्म का पालन न करने वाला) होता है। पृथुयशस् कहते हैं कि मंगल और शनि की युति हो तो सदैव आर्त्त (मानसिक या शारीरिक पीड़ायुक्त—विशेष कर वात और पित्त रोगों से) रहता है। किन्तु यदि यह युति लग्न से तृतीय, षष्ठ, दशम या एकादश में हो तो विख्यात, नृप के समान हो और लोग उसे पसन्द करें अर्थात् जन सम्मत हो।

केन्द्र में योग

मंगल का अन्य ग्रहों के साथ यदि केन्द्र में योग हो तो सारावली में विशेष फल दिया है। सूर्य-मंगल या चन्द्र-मंगल का योग यदि केन्द्र में हो तो, इसका फल पहिले कह चुके हैं। अब मंगल का योग बुध, बृहस्पति, शुक्र या शनि के साथ केन्द्र में हो तो सारावली के अनुसार, उसका फल नीचे दिया जाता है :—

(i) मंगल और बुध की युति यदि लग्न में हो तो हिंस्र (क्रूर, भयानक), अग्नि कर्म कुशल (फैक्ट्री आदि जहाँ अग्नि कार्य होता है), धातुओं का कार्य करने वाला, दूत (दो कर्ताओं का मध्यस्थ) होता है और जो वस्तु गुप्त (छिपाकर, संरक्षित रखी जाती है) उनका अधिकारी होता है। यदि यह युति चतुर्थ में हो तो अपने-अपने जनों से निराकृत (निष्कासित, तिरस्कृत), बान्धव रहित, होता है किन्तु उसके अनेक मित्र होते हैं और धन, अन्न, भोग (सांसारिक सुख साधन), वाहन (सवारी) से युक्त होता है। यदि इन दोनों ग्रहों का योग लग्न से सप्तम में हो तो जातक की प्रथम स्त्री की मृत्यु हो जाती है, विवादशील होता है, एक स्थान से दूसरे स्थान में जाता है (अर्थात् स्थायी रूप से एक स्थान में नहीं रहता), नीचों की मातहती (अध्यक्षता) में काम करता है। यदि मंगल बुध युति दशम में हो तो सेना का अधिपति, शूर, शठ (दुष्ट स्वभाव वाला) अति क्रूर होता है किन्तु धैर्य की मात्रा उसमें विशेष होती है और राजा का कृपा भाजन होता है।

(ii) यदि मंगल बृहस्पति की युति लग्न में हो तो मंत्री, अपने विशिष्ट गुणों के कारण प्रधान पद प्राप्त करे, सदैव उत्साही रहे और धार्मिक क्षेत्र में

कीर्तियुक्त हो। यदि इन दोनों ग्रहों की युति लग्न से चतुर्थ स्थान में हो तो जातक गुरु और देवताओं का भक्त होता है, राजा की सेवा करता है। (प्राचीन समय में राजा की सेवा आदरणीय मानी जाती थी) बन्धु और मित्रों से सम्पन्न सुखी जीवन व्यतीत करता है। जिस जातक के सप्तम स्थान में मंगल-बृहस्पति हों वह शूरवीर होता है, पर्वत, किला, वन और नदी तट या समुद्रतट में विचरण करता है। उसके अच्छे बन्धु होते हैं किन्तु पत्नी हीन होता है अर्थात् यह योग (सप्तम में मंगल होने के कारण) पत्नी सुख के लिए हानिकारक है। यदि यह युति लग्न से दशम में हो तो विख्यात कीर्तिवाला हो, बहुत धनी और विस्तृत परिवार हो, कार्यों में बहुत दक्ष हो और राजा हो। प्राचीन पुस्तकों में जहाँ जहाँ राजा महा-राजा भूमिपति, नृपति, पार्थिव आदि शब्द हों—उनका लाक्षणिक अर्थ—ऐश्वर्य युक्त, पदाधिकारी हो, यही समझना चाहिये। यदि मीन लग्न हो और मंगल, बृहस्पति की युति हो तो लग्नेश, द्वितीयेश, भाग्येश, राज्येश की युति दशम में होगी, मंगल को दिग्बल प्राप्त होगा, इस प्रकार ग्रहों की युति में किन भावों के ग्रह अधिपति हैं, यह भी गवेषणा करनी चाहिये। उपर्युक्त उदाहरण में मंगल दशम में यदि मेष या वृश्चिक नवांश का तथा बृहस्पति यदि कर्क या धनु नवांश का हो तो और भी उत्कृष्ट राजयोग है, यह सब ऊहापोह भी पाठकों को करना चाहिये।

(iii) यदि मंगल और शुक्र की युति लग्न में हो तो जातक कुशील (सुशील नहीं), निकृष्ट (नैतिक दृष्टि से) कर्म करने वाला, वेश्यागामी होता है। चिर-जीवी (दीर्घायु) नहीं होता और स्त्रियों पर या स्त्रियों के हेतु धन नष्ट करता है। यदि इन दोनों ग्रहों की युति चतुर्थ स्थान में हो तो बन्धु, पुत्र और मित्रों से हीन हो, मानसिक पीड़ाओं से कष्ट पावे, नाना दुःखों से तप्त हो। यदि इन दोनों ग्रहों का योग लग्न से सप्तम में हो तो स्त्री लोलुप (अपनी या अन्य स्त्री से रमण की इच्छा के लिये लोभी), कुचरित्र, (जिसका चरित्र गर्हित हो), हीना-चार होता है। स्त्री या स्त्रियों के कारण महादुःख पाता है। यदि यह युति दशम में हो तो अस्त्राचार्य (अस्त्र विद्या में निष्णात), बुद्धिमान, विद्या, धन, वस्त्र तथा माल्य (पुष्प, सुगन्धित पदार्थादि भोगोपकरण सम्पन्न), विख्यात राजा का मन्त्री होता है।

(iv) यदि मंगल तथा शनि की युति लग्न में हो तो आयु अधिक नहीं होती (दो क्रूर ग्रहों की लग्न स्थिति के कारण। किन्तु मंगल या शनि स्वयं लग्नेश होकर लग्न में हो तो यह क्रूरत्व का दोष नहीं होगा यह तारतम्य ध्यान में रखना चाहिये), माता से द्वेष करता है (या माता उससे द्वेष करे)। क्षीण-भाग्य (अधिक भाग्यशाली नहीं) होता है किन्तु संग्राम में विजय प्राप्त करता

है। यदि यह युति लग्न से चतुर्थ में हो तो पाप कर्मा होता है। उसके स्वजन (कुटुम्बी उसका त्याग कर देते हैं, मित्र नहीं होते (चतुर्थ स्थान बन्धुओं और मित्रों का स्थान है। पाश्चात्य ज्योतिष में एकादश भाव से मित्रों का विचार किया जाता है, भारतीय ज्योतिष में चतुर्थ से)। भोजन, पेय, सुख से रहित होता है अर्थात् सुखी नहीं होता। (चतुर्थ) सुख स्थान है, इस कारण क्रूर ग्रह की युति चतुर्थ स्थान में सुख हानि करती है, (यह सामान्य नियम विस्मरण नहीं करना चाहिये)। यदि सप्तम में यह युति हो तो पत्नी सुख रहित, पुत्र सुख हीन, दीन (समृद्ध नहीं), रोगी, व्यसनशील (यहाँ व्यसन का अर्थ दुर्व्यसन समझना), कृपण, जनपरिभूत (दबा हुआ, पराजित) होता है। यहां प्रसंग वश फलदीपिका के अध्याय १० श्लोक ३ की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जाता है कि यदि मकर लग्न हो और सप्तम में मंगल-शनि की युति हो पत्नी सुन्दर और सुचरित्रा होती है। देखिये हमारी फलदीपिका पृष्ठ २१७-२२०। सारावली कार कहते हैं कि मंगल-शनि की युति यदि लग्न से दशम में हो, तो राजा से धन प्राप्त करता है किन्तु महान् अपराध करने के कारण राजा से दण्डित भी होता है। जातक में असत्यवादिता का दोष होता है।

बुध की अन्य ग्रहों से युति

बुध की सूर्य, चन्द्र या मंगल के साथ युति का फल पहिले कह चुके हैं। अब यदि बुध बृहस्पति, शुक्र या शनि के साथ किसी स्थान में योग करे तो उसका फल कहते हैं।

(i) जातक पारिजातकार कहते हैं कि यदि बुध और बृहस्पति एक साथ हों तो जातक वाग्मी (अव्याहत युक्ति-युक्त सारपूर्ण वक्ता), स्वरूपवान्, सद्‌गुणी और विशेष धनी होता है। वराहमिहिर के मत से गीत प्रिय (गाने का शौकीन) नृत्यवेत्ता, रंगचर (नाटक, सिनेमा, शैलूषादि वृत्ति से धन उपार्जन करने वाला) होता है। सारावली के अनुसार जातक सुखी, विद्वान्, मतिमान्, गाने बजाने, नृत्य आदि का ज्ञाता होता है। पृथुयशस् कहते हैं कि बुध-बृहस्पति की युति से जातक बधिर (बहरा), नेत्र रोग से पीड़ित, विद्वान् होता है, किन्तु यदि यह युति लग्न से छठे आठवें या बारहवें घर में हो तो सुन्दर, धार्मिक और विख्यात होता है।

(ii) यदि बुध और शुक्र की युति हो तो शास्त्रज्ञ, गान, विनोद तथा हास्य का रसिक हो। वराहमिहिर के मत से वाग्मी, भूमि, गण (व्यक्तियों के समूह) का पालक हो। रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं कि यदि बुध और शुक्र

दोनों बलवान हों तो भूपति या सेनापति हो। सारावली के अनुसार जातक अतिशय धनी, नीतिज्ञ, शिल्पवत्, वेदों का विद्वान् अच्छे (सत्य, सारपूर्ण और मधुर वचन बोलने वाला), गीतज्ञ, हँसी-मजाक का शौकीन होता है। पृथुयशस् कहते हैं कि बुध-शुक्र युक्त हों तो जातक विकल-विघात कुशल (अन्य जनों को हानि पहुँचाने में दक्ष) अल्प (थोड़ी मात्रा में) पत्नी और पुत्र में रत होता है, किन्तु यदि यह युति लग्न, पंचम या नवम में हो तो धनाध्यक्ष और विशिष्ट नामान्वित (पदवी प्राप्त करने वाला) होता है।

(iii) यदि बुध और शनि की युति हो तो विद्वान्, उच्चपदारूढ, धार्मिक तथा गुणवान् होता है। वराहमिहिर के मत से जातक मायावी (मिथ्या का आश्रय ले, दूसरों के मन में भ्रान्ति उत्पन्न करने वाला) और शास्त्रीय वत्ति तथा लोक वृत्ति का लंघक (अतिक्रमण करने वाला) होता है। सारावली के अनुसार जातक ऋणवान् (पाठान्तर गुणवान् भी है), दाम्भिक, प्रपंची, सत्कवि (बुद्धिमान्) यातायात का शौकीन, निपुण तथा शोभन वाक्य वक्ता होता है। पृथुयशस् कहते हैं कि लग्न नवम या दशम में बुध-शनि योग हो तो जातक धनी, पत्नी, पुत्र, मित्रों से समन्वित होता है किन्तु किसी अन्य भाव में बुध-शनि युति होने से कष्ट फल होता है (अर्थात् इस युति के परिणामस्वरूप जातक कष्ट पाता है)।

केन्द्र में योग

अब सारावली के अनुसार बुध की अन्य ग्रह के साथ केन्द्र में युति हो तो उसका फल कहते हैं।

(i) बुध-बृहस्पति युति यदि लग्न में हो तो शुभ स्वरूप, सौशील्यादि गुण सम्पन्न, विद्वान्, राजा से सम्मानित, अनेक भोगों का भोक्ता, वाहन युक्त, सुखी और भोगी होता है। यदि यह युति चतुर्थ स्थान में हो तो राजा का कृपा पात्र, स्त्री, मित्रों, बन्धुओं से सम्पन्न, सौभाग्यशाली, धनी और सुखी हो। यदि बुध-बृहस्पति योग सप्तम में हो तो अच्छी पत्नी का स्वामी, सत्त्व (साहस, पुरुषार्थ, बल) सम्पन्न हो, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, धनी, वहुत परिजनों और मित्रों से युक्त हो और अपने पिता की अपेक्षा वहुत उच्च (पद, मान प्रतिष्ठा आदि में) हो। यदि इन दोनों ग्रहों की युति लग्न से दशम में हो तो राजा हो या राजा का मंत्री हो, उसका बहुत सम्मान हो, हुकूमत करे, धनी और विद्वान हो। उसकी बहुत ख्याति हो।

(ii) यदि बुध और शुक्र की युति लग्न में हो तो सुन्दर और स्वस्थ हो, ब्राह्मणों और देवताओं का भक्त हो, स्वयं विद्वान् और राजा से सम्मानित हो।

ऐसा व्यक्ति विख्यात और प्रशंसनीय होता है। यदि यह युति लग्न से चतुर्थ में हो तो सुन्दर शरीर हो, मित्र, पुत्र, बन्धुओं से युत हो। ऐसा व्यक्ति कल्याण सम्पन्न (शुभगुण, सम्पत्ति युक्त) राजा या राजा का मंत्री हो। यह युति सप्तम में होने से बहुत सी सुन्दर स्त्रियों से परिवेष्टित हो (फलितार्थ है कि युवतिजनों से रति-सुख हो।) ऐसा जातक भोगी, धनैश्वर्य सम्पन्न, सुखी, राजा का कृपापात्र होता है। दशम में बुध–शुक्र होने से नीतिज्ञ, राजा, साधु (अनेक सद्‌गुण युक्त, शुभकर्मा) धनी, समर्थ होता है। जिस कार्य को प्रारम्भ करता है, उसमें सफल होता है। अच्छे व्यक्तियों को आश्रय देता है।

(iii) यदि बुध और शनि की युति लग्न में हो तो मलिनशरीर, पापी, विद्या, धन और वाहन से हीन, अल्पायु और मन्द भाग्य (भाग्यशाली नहीं) हो। चतुर्थ में यह युति होने से, भोजन, पेय तथा बन्धुओं से रहित मूढ (बुद्धिमान् नहीं), स्वजनों से तिरस्कृत, पापकर्मा हो। उसके मित्र न हों। सप्तम में यदि इन दोनों ग्रहों का योग हो तो अति मलिन होता है, न साधु होता है न परोपकारी अर्थात् दुष्ट होता है। ऐसा जातक अन्य मालिकों की सेवा वृत्ति करे अर्थात् हीन वृत्ति हो। मिथ्यावादी होता है। किन्तु इन दोनों ग्रहों का योग यदि लग्न से दशम में हो तो अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, ब्राह्मणों, गुरुओं तथा देवताओं में श्रद्धा रखे, स्वजनों तथा मित्रों से युक्त, वाहनों का स्वामी, धनसम्पन्न हो।

बृहस्पति की अन्य ग्रहों से युति

अब बृहस्पति की शुक्र तथा शनि से युति का फल कहते हैं। बृहस्पति की अन्य ग्रहों से युति का फल पहिले कह चुके हैं।

(i) जातकपारिजातकार कहते हैं कि यदि बृहस्पति और शुक्र की युति हो तो तेजस्वी, राजा का प्रिय, अत्यन्त बुद्धिमान् और शूरवीर होता है। वराहमिहिर के मत से जातक सज्जन, विद्वान्, अनेक गुण सम्पन्न, धनी और पत्नी सुख सम्पन्न होता है। सारावली के अनुसार जातक की विशिष्ट (उत्कृष्ट धन कुलादि के कारण या सौन्दर्य सौशील्य विद्यादि गुण सम्पन्न) पत्नी हो (शुक्र पत्नी कारक है और बृहस्पति युति के कारण, यह शुभ प्रभाव कहा), प्रामाणिक (जो नपी तुली, सत्य बात बोले और जिसमें विश्वास किया जा सके) विशेष रूप से धार्मिक, विद्या से धन उपार्जन करने वाला होता है। पृथुयशस् कहते हैं कि यदि यह युति लग्न, पंचम, अष्टम या नवम में हो तो स्त्री, पुत्र धन सम्पन्न जातक होता है किन्तु अन्य स्थान में युति हो तो रोग से क्लेशित और दुःख से पीड़ित हो।

(ii) यदि बृहस्पति और शनि एक साथ हों तो शिल्प शास्त्र में निपुण हो। वराहमिहिर के मत से नापित (नाई) का काम करने वाला, कुम्हार या अन्न दान कर्म तत्पर होता है। रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं कि नाई या कुम्हार के काम में कुशल हो यह कहकर, शनि के संयोग से जुगुप्सित कर्म कुशलता दिखलायी और अन्न दानकर्म कर्तृत्व से सद्‌गुणातिरेक कहा, इस प्रकार शनि और बृहस्पति दोनों का फल कहा। क्योंकि

सम्पदो गुरुसंयोगे शनियोगे विपत्तयः ।
वाच्यो ग्रहाणां हि तयोर्योगे तु फलसङ्करः ॥

सारावली के अनुसार जातक शूर, धन समृद्ध, नगराधिपति, यशस्वी श्रेणि, सभा, ग्राम, संघ आदि का प्रधान होता है। किसी कार्य विशेष के करने वालों के समुदाय को श्रेणि कहते हैं। पृथुयशस् कहते हैं कि यदि अनुपचय (लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, सप्तम, अष्टम, नवम या द्वादश) स्थान में बृहस्पति और शनि का योग हो तो मान और धन से हीन होता है, किन्तु यदि यह युति उपचय (तृतीय, षष्ठ, दशम या एकादश) स्थान में हो तो जातक प्रख्यात तथा राजा से सम्मानित होता है।

केन्द्र में योग

लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम में बृहस्पति शुक्र, या बृहस्पति शनि के युति का विशेष फल सारावली में कहा है। वह लिखा जाता है।

(i) यदि बृहस्पति और शुक्र की युति लग्न में हो तो राजा के सदृश पृथ्वीपति होता है। चतुर्थ में यह युति होने से देव, गुरु, द्विजों की अर्चना करता है। अपने कुटुम्बीजनों-आत्मीयों, मित्रों से युक्त धन सम्पन्न होता है। उसके अनेक वाहन होते हैं और शत्रुओं को परास्त करता है। यदि बृहस्पति-शुक्र का योग सप्तम में हो तो अच्छी पत्नी प्राप्त हो, धन और रत्नों का स्वामी, सुखी और भोगवान होता है; उत्कृष्ट वाहन (सवारी रथ, घोड़े, हाथी, पालकी, सम्प्रति मोटर) होते हैं और विख्यात होता है। यदि यह युति दशम में हो तो बहुत से भृत्य हों, अधिक सम्पन्न (धनी) हों तथा सौशील्यादि गुण समन्वित हों। ऐसा जातक सम्मानित होता है, हुकूमत करता है (अर्थात् उच्च पदाधिकारी होता है) और उसका वैभव (ऐश्वर्य) अत्यन्त विस्तृत होता है।

(ii) यदि बृहस्पति-शनि की युति लग्न में हो तो जातक मदयुक्त, आलसी, निष्ठुर, विद्वान् किन्तु खल (दुष्ट) होता है। अल्प सुख प्राप्त करता है। यदि युति चतुर्थ स्थान में हो तो स्वास्थ्य उत्तम रहे, शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर

अभ्युदय हो, बन्धु और मित्रों से युक्त हो। लोकप्रिय और सुखी हो। बृहस्पति और शनि सप्तम में हों तो देखने में आकर्षक न हो। ऐसा जातक शूरवीर किन्तु व्यसनी (दुर्व्यसन संलग्न) और दुष्ट होता है। पिता का धन प्राप्त करने का लोभी तथा बुद्धि रहित होता है। यदि यह युति लग्न से दशम में हो, राजा का प्रिय या स्वयं ही राजा हो, सन्तान थोड़ी हों किन्तु गायें और वाहन अनेक हों। चल न हो (स्थिर मति हो, विशेष यात्रा न करे)।

शुक्र और शनि की युति

जातकपारिजातकार कहते हैं कि शुक्र और शनि की यदि युति हो तो अनेक पशुओं का स्वामी और मल्ल (पहलवान) हो। वराहमिहिर के मत से अल्पदृष्टि हो (पास की वस्तु को बारीकी से देखना अल्प दृष्टि कहलाता है), युवतिजनों के आश्रय से धन वृद्धि हो। लिपि (लिखना, नक्काशी आदि) पुस्तकों का तथा चित्रों का वेत्ता होता है। सारावली के अनुसार लकड़ी की चिराई फड़ाई में कुशल, क्षुर (उस्तरे का काम हजामत-आपरेशन आदि) चित्र, पत्थर के शिल्प कार्य (संगतराशी, मूर्ति निर्माण कार्य) पहलवानी आदि करता है। अनेक पशुओं का स्वामी हो। पृथुयशस् कहते हैं कि यदि शुक्र-शनि की युति लग्न, चतुर्थ, पंचम, नवम या दशम में हो तो स्त्री के वश में रहे, राजा का नेता (मुख्याधिकारी) और धनी हो किन्तु यदि उन दोनों ग्रहों का योग किसी अन्य स्थान में हो तो सत्वहीन, धनहीन होता है।

केन्द्र में योग

यदि शुक्र तथा शनि का योग केन्द्र में हो तो सारावली के अनुसार फल लिखा जाता है। यदि लग्न में इन दोनों ग्रहों की युति हो तो सुन्दर शरीर हो, धनवान् भोगी और सुख के साधनों से समन्वित होता है। बहुतसे भृत्य होते हैं, सब लोगों की वधुओं से रमण करता है (अर्थात् व्यभिचारी होता है)। ऐसा जातक धन भोग आदि होने पर भी शोक संतप्त होता है। यदि यह युति चतुर्थ में हो तो मित्रों से धन प्राप्ति हो, बन्धुओं से सत्क्रिया प्राप्ति (सत्कार, उपकार प्राप्ति) हो। राजा उसका सम्मान करता है। यह दोनों ग्रह यदि लग्न से सप्तम में हों तो जातक को विषय लाभ (स्त्री संभोग की प्राप्ति) होता है, उसको स्त्रीलाभ (या अनेक अच्छी स्त्रियां) सुख, धन, कीर्ति और विभूति प्राप्त हो। यदि यह युति दशम में हो तो जातक सर्व द्वन्द्व विमुक्त, लोक में विख्यात, विशिष्ट कर्म करने वाला, नृप का मन्त्री हो या इससे अधिक उच्च पद प्राप्त करे ॥१-५॥

तीन ग्रहों का योग

सूर्येन्दुक्षितिनन्दनैररिकुलध्वंसी धनी नीतिमान्
जातश्चन्द्ररवीन्दुजैर्नृपसमो विद्वान् यशस्वी भवेत् ।
सोमार्कामरमन्त्रिभिर्गुणनिधिर्विद्वान् नृपालप्रियः
शुक्रार्केन्दुभिरन्यदारनिरतः क्रूरोऽरिभीतो धनी ॥ ६ ॥
मन्देन्द्वर्कसमागमे खलमतिर्मायी विदेशप्रियो
भास्वद्भूसुतबोधनैर्गतसुखः पुत्रार्थदारान्वितः ।
जीवार्कावनिजैरतिप्रियकरो मन्त्री चमूपोऽथवा
भौमार्कासुरवन्दितैर्नयनरुग् भोगी कुलीनोऽर्थवान् ॥ ७ ॥
मन्दार्कावनिजैः स्वबन्धुरहितो मूर्खोऽधनो रोगभाक्
इन्द्राचार्यरवीन्दुजैः पटुमतिर्विद्यायशोवित्तवान् ।
भानुज्ञासुरपूजितैर्मृदुतनुर्विद्यायशस्वी सुखी
सौरादित्यबुधैर्विबन्धुरधनो द्वेषी दुराचारवान् ॥ ८ ॥
जीवादित्यसितैः सदारतनयः प्राज्ञोऽक्षिरुग् वित्तवान्
मन्देन्द्रार्चितभानुभिर्गतभयो राजप्रियः सात्त्विकः ।
जातो भानुसितासितैः कुचरितो गर्वाभिमानान्वित-
श्चन्द्रारेन्दुसुतैः सदाऽशनपरो दुष्कर्मकृद् दूषकः ॥ ९ ॥
जीवेन्दुक्षितिजैः सरोषवचनः कामातुरो रूपवा-
निन्दुक्ष्माजसितैर्विशीलतनयः सञ्चारशीलो भवेत् ॥
तारेशार्कजभूसुतैश्चलमतिर्दुष्टात्मको मातृहा
जीवेन्दुज्ञसमागमे बहुधनख्यातोऽवनीशप्रियः ॥ १० ॥
विद्यावानपि नीचकर्मनिरतः सेव्यः सितज्ञेन्दुभि-
स्त्यागी भूपतिपूजितश्च गुणवानिन्दुज्ञतिग्मांशुजैः ।
प्राज्ञः साधुसुतः कलासु निपुणः शुक्रेन्दुदेवार्चितैः
शास्त्री वृद्धवधूरतो नृपसमो वाचस्पतीन्द्वर्कजैः ॥ ११ ॥

वेदी राजपुरोहितोऽतिसुभगः शुक्रेन्दुचण्डांशुजै-
र्गान्धर्वश्रुतिकाव्यनाटकपरो जीवज्ञभूनन्दनैः ।
हीनाङ्गः खलवंशजश्चलमतिः शुक्रारचन्द्रात्मजः
प्रेष्यः सामयलोचनोऽटनपरस्ताराजभौमासितैः ।। १२ ।।
शुक्रारेन्द्रपुरोहितैर्नरपतेरिष्टः सपुत्रः सुखी
जीवारार्कसुतैः कृशोऽसुखतनुर्मानी दुराचारवान् ।
सौरारासुरपूजितैः कुतनयो नित्यं प्रवासान्वितः
शुक्रज्ञामरमन्त्रिभिर्जितरिपुः कीर्तिप्रतापान्वितः ।। १३ ।।
देवेज्येन्दुजभानुजैरतिसुखश्रीकः स्वदारप्रियो
मन्दज्ञासुरवन्दितैरनृतवाग् दुष्टोऽन्यजायारतः ।
जातो जीवसितासितैरमलधीर्विख्यातसौख्यान्वित-
चन्द्रे पापयुते सदाल्पसुखवान् भानौ पितुस्तद्वदेत् ।। १४ ।।

अब तीन ग्रहों के योग का फल कहते हैं । वराहमिहिर ने बृहज्जातक में केवल दो ग्रहों के योग का फल कहा है और लिखा है कि तीन या अधिक ग्रहों की युति का फल इसी प्रकार विचार करना । इसी प्रकार ? किस प्रकार ? मान लीजिये आपको सूर्य, मंगल, शनि इन तीन ग्रहों की युति का विचार करना है तो (i) सूर्य मंगल युति का फल (ii) सूर्य-शनि योग का फल तथा (iii) मंगल शनि सहावस्थान का जो फल पृथक् पृथक् कहा गया है इन तीनों का समन्वय कर सूर्य, मंगल, शनि योग का फल कहना चाहिये । किन्तु जातकपारिजात, सारावली, होरासार आदि कतिपय ग्रन्थों में तीन ग्रहों के योग का फल पृथक् भी कहा गया है । सारावली अध्याय ३१ में दो ग्रहों का योग यदि केन्द्र में हो तो उसका फल लिखने के बाद कल्याण वर्मा ने लिख दिया है कि इसी प्रकार यदि तीन या अधिक ग्रहों का योग केन्द्र में हो, तो पूर्व लिखित दो ग्रहों की युति के फल के आधार पर तीन ग्रहों की युति का फल निकालना । तीन, चार, पाँच या छः ग्रहों की युति का फल सारावली अध्याय १६-१९ चार अध्यायों में प्रायः १०१ श्लोकों में लिखा है और जातकपारिजातकार ने संक्षेप में केवल ३३ श्लोकों में कह दिया है । ग्रन्थ विस्तार भय से जातक पारिजात तथा सारावली में दिये गये फलों की तुलनात्मक विवेचना यहाँ नहीं की जा रही है । तुलनात्मक अध्ययन के लिये विज्ञ पाठक सारावली के उपर्युक्त अध्यायों का अवलोकन

करें। पुनः ध्यान आकृष्ट किया जाता है कि यदि कोई तीन या अधिक ग्रह किसी एक ही राशि में हों तो उनकी युति या योग समझा जाता है। नीचे तीन ग्रहों के योग का फल दिया जाता है। सर्वप्रथम जिन ग्रहों का योग है, उनके नाम, तदनन्तर जातक पारिजात में कथित फल दिया जाता है :—

(१) सूर्य, चन्द्र, मंगल : शत्रुओं का नाश करने वाला, धनी, नीतिज्ञ।

(२) सूर्य, चन्द्र, बुध : अपनी विद्या के कारण यशस्वी, राजा के समान।

(३) सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति : अनेक सद्गुण समन्वित, विद्वान्, राजा का प्रिय।

(४) सूर्य, चन्द्र, शुक्र : शत्रु से भयभीत, धनी, क्रूर, दूसरे की पत्नी से अवैध प्रेम करने वाला।

(५) सूर्य, चन्द्र, शनि : दुष्ट बुद्धिवाला, मायी (माया-प्रपंच-सत्यासत्य का आश्रय ले कर धोखा देने वाला), विदेश प्रिय।

(६) सूर्य, मंगल, बुध : धन, स्त्री, पुत्रयुक्त किन्तु सुखरहित।

(७) सूर्य, मंगल, बृहस्पति : अति प्रिय कार्य, व्यवहार करने वाला, सेनापति या मंत्री।

(८) सूर्य, मंगल, शुक्र : धनी, कुलीन, भोगी किन्तु नेत्र रोगयुक्त।

(९) सूर्य, मंगल, शनि : मूर्ख (जड़ बुद्धि), धनी, रोगी, बन्धु रहित।

(१०) सूर्य, बुध, बृहस्पति : पटुमति (बुद्धिमान्) धनी, विद्वान्, यशस्वी।

(११) सूर्य, बुध, शुक्र : मृदु (कोमल) शरीर, विद्या के कारण यशस्वी, सुखी।

(१२) सूर्य, बुध, शनि : निर्धन बन्धु रहित, द्वेष करने वाला, दुराचारी।

(१३) सूर्य, बृहस्पति, शुक्र : स्त्री पुत्र सहित, विद्वान्, धनी नेत्र रोगी।

(१४) सूर्य, बृहस्पति, शनि : निर्भय राजप्रिय, सात्त्विक।

(१५) सूर्य, शुक्र, शनि : दुश्चरित्र, अभिमानी।

(१६) चन्द्र, मंगल, बुध : अधिक भोजन करने वाला (मूल में कहा है सदा भोजन करने में संलग्न), दुष्कर्मा, दूषक (जो अन्यों में दोषान्वेषण करता है या अपने संसर्ग से दोष उत्पन्न करे।)

(१७) चन्द्र, मंगल, बृहस्पति : सुन्दर स्वरूपयुक्त, कामातुर (स्त्रीविलास की अधिक इच्छा रखने वाला) क्रोधयुक्त वचन बोलने वाला।

(१८) चन्द्र, मंगल, शुक्र : संचारशील (घूमने फिरने वाला, अधिक यात्रा करने वाला)। जातक के पुत्रों का स्वभाव सुशील न हो।

(१९) चन्द्र, मंगल, शनि : चलमति (किसी एक बात पर स्थिर न रहे, दुष्ट, माता को मारने वाला (फलितार्थ है कि मातृ द्वेषी)।

(२०) चन्द्र, बुध, बृहस्पति : राजा का प्रिय, विख्यात, अति धनी।

(२१) चन्द्र, बुध, शुक्र : विद्वान् होने पर भी नीच कर्म करता है, लोग उसकी सेवा करते हैं (अर्थात् अधिकार युक्त)।

(२२) चन्द्र, बुध, शनि : त्यागी, राजा से सम्मानित, गुणवान्।

(२३) चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र : विद्वान्, सज्जन पुत्रों से युक्त, कलाओं में निपुण। (अच्छे पुत्र क्यों कहा? क्योंकि बृहस्पति पुत्र कारक है, शुभ ग्रहों से युक्त है? कलाओं में निपुण क्यों कहा? क्योंकि चन्द्रमा और शुक्र भी शुभग्रह बृहस्पति से युक्त हैं।)

(२४) चन्द्र, बृहस्पति, शनि : शास्त्रों में निष्णात, अधिक वय की स्त्री या स्त्रियों में (नव युवतियों में नहीं) रत, राजा के समान।

(२५) चन्द्र, शुक्र, शनि : अति सुरूपवान्, वेदों का ज्ञाता (सम्प्रति विद्वान् यह अर्थ लेना क्योंकि वेदों के पठन, पाठन की क्रिया समाप्तप्राय हो गयी है) राजा का पुरोहित।

(२६) मंगल, बुध, बृहस्पति : गान्धर्व (गाना, बजाना आदि) वेद, काव्य, नाटक आदि में तत्पर।

(२७) मंगल, बुध, शुक्र : हीनांग (शरीर के किसी अंग की कमी हो या किसी अंश में विकलता हो), खल वंश में उत्पन्न, अस्थिर बुद्धिवाला।

(२८) मंगल, बुध, शनि : प्रेष्य (छोटी नौकरी करने वाला), नेत्र रोग, घूमने फिरने वाला।

(२९) मंगल, बृहस्पति, शुक्र : अच्छे पुत्र हों, राजा का प्रिय और सुखी हो।

(३०) मंगल, बृहस्पति, शनि : दुर्बल शरीर वाला, शरीर में कष्ट रहे, मानी (गर्वयुक्त), दुराचारी।

(३१) मंगल, शुक्र, शनि : पुत्र अच्छे न हों (मूल में लिखा है कुपुत्र वाला), नित्य (सदैव) प्रवासी (घर से अन्य स्थान परदेश) में रहने वाला।

(३२) बुध, बृहस्पति, शुक्र : शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला, प्रतापशाली, कीर्तियुक्त।

(३३) बुध, बृहस्पति, शनि : अपनी स्त्री से अत्यन्त स्नेह हो, बहुत लक्ष्मी-युक्त और सुखी।

(३४) बुध, शुक्र, शनि : असत्यवादी, दुष्ट, अन्य की पत्नी से अवैध प्रेम करने वाला।

(३५) बृहस्पति, शुक्र, शनि : निर्मल बुद्धि, विख्यात सुख साधनों से युक्त।

तीन ग्रहों के योग का फल कहने के बाद, ग्रंथकार यह विशेष कहते हैं कि यदि चन्द्रमा पाप ग्रह के साथ हो तो अल्प सुखवान् (जिसको थोड़ा सुख मिले) होता है। अर्थात् पाप ग्रह की चन्द्रमा से युति सुख में कमी करती है और सूर्य यदि पाप ग्रह के साथ हो तो पितृ सुख में न्यूनता होती है। इसका हेतु क्या है? अध्याय २ का श्लोक ४९ देखिये। सूर्य पिता का कारक है। चन्द्रमा चतुर्थ स्थान-सुख-स्थान का कारक है। देखिये अध्याय २ का श्लोक ५१।

प्राचीन ग्रंथों में सिद्धान्तों का संकेत मात्र से निर्देश कर दिया गया है। विशेष विचार अध्ययन कर्ता की बुद्धि पर छोड़ दिया गया है। सिद्धान्त है कि जिस वस्तु का कारक, बलवान् शुभयुक्त, शुभदृष्ट होगा, तत्सम्बन्धी सुख में वृद्धि होगी। जिस वस्तु का कारक निर्बल, पापयुक्त, पाप दृष्ट होगा, तत्सम्बन्धी हानि या कष्ट होगा। और जो सिद्धान्त कारकों के लिये लागू है, वह भावेशों के लिये भी। जो भावेश बलवान् शुभ युक्त, शुभ दृष्ट होगा उस भावेश सम्बन्धी (जिस भाव का वह भावेश स्वामी है, तत्सम्बन्धी) सुख की वृद्धि होगी। और जो भावेश दुर्बल, पाप युक्त, पाप दृष्ट होगा तद्भावेश सम्बन्धी (वह भावेश जिस भाव का स्वामी है, तत्सम्बन्धी) सुख में कमी करेगा।

इस प्रकार किसी भी ग्रह की दातृत्व शक्ति दो प्रकार की होती है—एक कारकत्व के कारण, दूसरी भावेशत्व के कारण। स्थिर कारकत्व यथा सूर्य पिता का, चन्द्रमा माता का या सूर्य प्रथम भाव का, बृहस्पति द्वितीय भाव का, मंगल तृतीय भाव का आदि जैसा अध्याय २ में सविस्तार बतलाया गया है—सब कुंडलियों में एक ही होता है, किन्तु भिन्न भिन्न लग्नों में भावेश भिन्न भिन्न होते हैं। इसलिये जब कोई कुण्डली देखने आप बैठें तो बृहज्जातक जातक पारिजात, सारावली आदि ग्रंथों को उठाकर उनके पृष्ठ उलटने न बैठिये कि अमुक ग्रंथकार ने इस युति का क्या फल लिखा है, अमुक ने क्या लिखा है, प्रत्युत अपनी बुद्धि से विचार कीजिये कि जिस ग्रह का आप विचार कर रहे हैं, वह किनका कारक है, किन का भावेश—कैसे प्रकार के ग्रह से युत है, इत्यादि। ग्रंथकार ने दिङ् मात्र से निर्देश कर दिया है कि चन्द्रमा पाप ग्रह से युत हो तो सुख में अल्पता करता है। सूर्य पाप ग्रह से युक्त हो तो पितृ सुख में

अल्पता करता है। परन्तु यह सिद्धान्त केवल चन्द्र और सूर्य को ही लागू नहीं होता। अन्य ग्रहों को भी लागू होता है—यथा शुक्र पाप युत हो तो स्त्री-सुख, भोग आदि में अल्पता करेगा, शुभ युत हो तो स्त्री सुख, भोग आदि का प्राबल्य होगा। दूसरी बात यह है कि चन्द्रमा के शुभ या पाप युत होने से सुख में वृद्धि या ह्रास कहा किन्तु इस सिद्धान्त को उन समस्त वस्तुओं पर लागू करना चाहिये जिनका कारक चन्द्रमा है। सूर्य शुभ या पाप युत हो तो केवल पितृ सुख में वृद्धि या ह्रास, ग्रंथकार ने कहा किन्तु इस सिद्धांत को उन सब वस्तुओं पर लागू करना चाहिये जिनका कारक सूर्य है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये।

किसी किसी जन्मकुण्डली में देखते हैं कि न कारक पीड़ित है, न भाव, न भावेश और उस भाव या कारक सम्बन्धी महती पीड़ा है। यह क्यों ? यह इसलिये कि एक अन्य प्रकार का कारकत्व जैमिनि ने अपने सूत्रों में कहा है। देखिये जैमिनि सूत्र अध्याय १ सूत्र १०। इसकी हिन्दी टीका में स्वर्गीय पंडित राम यत्न जी ओझा लिखते हैं :—

"किसी के मत में सात, किसी के मत में आठ कारक होते हैं। यदि सात कारक का विचार हुआ तो शनि पर्यन्त सात ही ग्रहों में और आठ कारक बनाना हुआ तो राहु पर्यन्त आठ ग्रहों में जो ग्रह अंशादि में अधिक हो वह आत्मकारक होता है। जैमिनि ऋषि सात ही कारक लिखते हैं। राहु का अंशाधिक्य न्यूनांश से ही होता है क्योंकि पंचांग में जो राहु लिखने की रीति है, उस प्रथा से उसके अंशादि तीस में कम कर देने से उसका भुक्तांश होता है।"

इसे नीचे एक एक उदाहरण कुंडली देकर स्पष्ट किया जाता है।
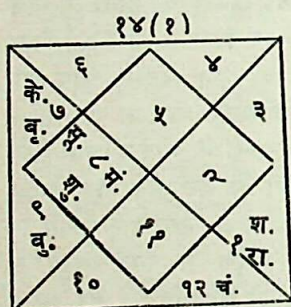
सूर्य	२६°—१२'—१५'
चन्द्र	२०°—३७'—३९'
मंगल	१°—२०'—२३'
बुध	११°—५१'—३८'
बृहस्पति	१३°—२७'— ३'
शुक्र	२९°—४४'—३०'
शनि	७°—३२'—३०'
राहु	२४°—५४'—४८'

यहां, राहु उलटा चलता है इसलिये इस सन्दर्भ में राहु के अंशादिक ३०–२४° ५४'—४८"=५°—५'—१२" लेना अब अधिक अंश, कलादि वाले को ऊपर, फिर उससे न्यून कलादि वाले को नीचे इस क्रम से लिखिये।

सबसे अधिक	अंशादि	शुक्र	२९°—४४'—३०"
उससे न्यून	,,	सूर्य	२६°—१२'—१५"
,,	,,	चन्द्रमा	२०°—३७'—३९"
,,	,,	बृहस्पति	१३°—२७'— ३"
,,	,,	बुध	११°—५१'—३८"
,,	,,	शनि	७°—३२'—३०"
,,	,,	राहु	५°— ५'—१२"
,,	,,	मंगल	१°—२०'—२३"

यदि सात कारक माने जायें तो शुक्र आत्मकारक, सूर्य अमात्यकारक, चन्द्रमा भ्रातृकारक, बृहस्पति मातृकारक, बुध पुत्रकारक, शनि ज्ञातिकारक, मंगल पत्नीकारक हुआ (एक मत से राहु की गणना नहीं की जाती है।)

यदि राहु को मिलाकर ८ कारक बनाये जायें तो एक पितृकारक बढ़ जाता है और इस कुंडली में कारकत्व निम्नलिखित होगा (i) शुक्र–आत्मकारक (ii) सूर्य–अमात्यकारक (iii) चन्द्रमा–भ्रातृकारक (iv) बृहस्पति–मातृकारक (v) बुध–पितृकारक (vi) शनि–पुत्रकारक (vii) राहु–ज्ञातिकारक (viii) मंगल–पत्नीकारक । अन्य आचार्य राहु को कारकत्व प्रदान नहीं करते और पितृकारक भी मानते हैं, ऐसी स्थिति में मातृकारक और पुत्रकारक एक ही ग्रह हो जाता है। यथा–इस कुण्डली में (i) आत्मकारक-शुक्र (ii) अमात्यकारक-सूर्य (iii) भ्रातृकारक–चन्द्रमा (iv) मातृ और पुत्र कारक—बृहस्पति (v) पितृकारक–बुध (vi) ज्ञातिकारक–शनि (vii) पत्नीकारक–मंगल । इन कारकों से विस्तृत विचार जैमिनि सूत्रों में किया गया है। विस्तृत विवेचन के लिये देखिये महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद जी द्विवेदी का निर्णयसागर बम्बई से प्रकाशित जैमिनिपद्यामृतम् ।

जैमिनि स्थिरकारक भी कहे हैं :—मंगल से बहिन, साली, छोटा भाई और माता का विचार भी करना। मातुल (मामा) इत्यादि बन्धु का तथा माता की सजातीया जितनी हों, उनका विचार बुध से करना चाहिए। पितामह का विचार बृहस्पति से, पति का शुक्र से और पुत्र का विचार शनि से करना। स्त्री, माता पिता, सास, ससुर और मातामह इनका विचार शुक्र से करना इत्यादि ॥ १४ ॥

चार ग्रहों का योग

एकर्क्षगैरिनसुधाकरभूसुतज्ञै-
मायीप्रपञ्चकुशलो लिपिकश्च रोगी ।
चंद्रारभानुगुरुभिर्धनवान्यशस्वी
धीमान्नृपप्रियकरो गतशोकरोगः ॥ १५ ॥
आरार्कचन्द्रभृगुजैः सुतदारसम्पद्
विद्वान् मिताशनसुखी निपुणः कृपालुः ।
सूर्येन्दुभानुसुतभूमिसुतैरशान्त-
नेत्रोऽटनश्च कुलटापतिरर्थहीनः ॥ १६ ॥
तारासुतेन्दुरविमन्त्रिभिरिष्टपुत्र-
दारार्थवान् गुणयशोबलवानुदारः ।
शुक्रेन्दुभानुशशिजैर्विकलश्च वाग्मी
मन्देन्दुविद्दिनकरैरधनः कृतघ्नः ॥ १७ ॥
तोयाटविक्षितिचरोऽवनिपालपूज्यो
भोगी दिनेशतुहिनद्युतिजीवशुक्रैः ।
जातो विशालनयनो बहुवित्तपुत्रो
वाराङ्गनापतिरिनेन्दुसुरेज्यमन्दैः ॥ १८ ॥
मन्देन्दुभानुभृगुजैर्विबलोऽतिभीरुः
कन्याजनाश्रयधनाशनतत्परश्च ।
आरारुणज्ञगुरुभिः सबलो विपन्नो
दारार्थवान् नयनरोगयुतोऽगुणः स्यात् ॥१९॥
रविकुजबुधशुक्रैरन्यदारानुरक्तो
विषमनयनवेषश्चौरधीर्वीतसत्त्वः ।
दिनकरकुजतारासूनुमन्दैश्चमूपो
नरपतिसचिवो वा नीचकृद् भोगशीलः ॥२०॥
सूर्यारार्यसितैर्महीपतिसमः ख्यातोऽतिपूज्यो धनी
जीवारार्किदिवाकरैर्गतधनो भ्रान्तः सुहृद्बन्धुमान् ।
भूपुत्रार्कसितासितैः परिभवप्राप्तो विकर्माऽगुणः
शुक्रार्केन्दुजसूरिभिर्धनयशोमुख्यप्रधानो भवेत् ॥ २१ ॥

जीवार्किज्ञदिवाकरैः कलहकृन् मानी दुराचारवान्
मन्दज्ञारुणभार्गवैः सुवदनः सत्यव्रताचारवान् ।
अर्कार्कीज्यसितैः कलासु निपुणो नीचप्रभुः साहसी
जीवेन्दुज्ञकुजैर्नृ पप्रियकरो मन्त्री कविः क्ष्मापतिः ॥ २२ ॥
चन्द्रारज्ञसितैः सुदारतनयः प्राज्ञो विरूपः सुखी-
मन्दारेन्दुबुधैर्द्विमातृपितृकः शूरो बहुस्त्रीसुतः ।
चन्द्रारार्यसितैरधर्मकुशलो निद्रालुरर्थातुरो
जीवारार्किनिशाकरैः स्थिरमतिः शूरः सुखी पण्डितः ॥ २३ ॥
शुक्रज्ञे न्दुसुरार्च्चितैः स वधिरो विद्वान्यशस्वी धनी
चन्द्रार्किज्ञसुरार्च्चितैरतिधनो बन्धुप्रियो धार्मिकः ।
शीतांशुज्ञसितासितैर्बहुजनद्वे षी परस्त्रीपति-
र्जीवेन्द्वर्कजभार्गवैर्गतसुखः श्रद्धादयावर्जितः ॥ २४ ॥
कुजबुधगुरुशुक्रै रर्थवान्निन्दितः स्याद्
बुधगुरुशनिभौमैः सामयो वित्तहीनः ।
गुरुसितशनिसौम्यैरेकगेहोपयातै-
रतिशयधनविद्याशीलमेति प्रजातः ॥ २५ ॥

अब यदि किसी एक राशि में चार ग्रह हों तो उसका फल कहते हैं :—

(१) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध: मायावी, प्रंपच करने में चालाक, नकल करने वाला लेखक या चित्रकार, रोगी ।

(२) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति : बुद्धिमान्, यशस्वी, राजा के मनोनुकूल कार्य करने वाला, धनी उत्तम स्वास्थ्यवाला, शोकरहित ।

(३) सूर्य, चन्द्र, मंगल, शुक्र : स्त्री तथा पुत्र से युक्त, विद्वान्, थोड़ा भोजन करे, निपुण, कृपालु, सुखी ।

(४) सूर्य, चन्द्र, मंगल, शनि : घूमने फिरने या यात्रा करने वाला, कुलटा पति (चाहे उसकी स्वयं की पत्नी दुश्चरित्रा हो, या किसी दुश्चरित्रा स्त्री से उसका अवैध सम्बन्ध हो), धनहीन । उसके नेत्रों से अशान्ति प्रकट हो । मूल में 'अशान्त नेत्र' शब्द आया है । यदि चंचल नेत्र हों तब भी अशान्त नेत्र कह सकते हैं ।

(५) सूर्य, चन्द्र, बुध, बृहस्पति : अच्छी स्त्री, अच्छे पुत्र हों, धनवान् गुणान्वित, बलवान्, यशस्वी, उदार ।

(६) सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र : विकल, वाग्मी।

(७) सूर्य, चन्द्र, बुध, शनि : निर्धन, कृतघ्न।

(८) सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र : जल यात्रा करने वाला, वन स्थल में घूमने का शौकीन, भोगी, राजा से सम्मानित।

(९) सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, शनि : विशालनेत्र, अनेक पुत्र, धनी, वेश्या गामी। मूल में वारांगना पति (वेश्यापति) लिखा है। वेश्या का पति तो होता नहीं। तब इसके दो अर्थ हो सकते है—वेश्यागामी या जिसकी पत्नी वेश्या-वृत्ति करे।

(१०) सूर्य, चन्द्र, शुक्र, शनि : बल रहित, अति डरपोक, कन्याओं (अपनी या दूसरों की) के आश्रय से धनोपार्जन करने और खाने पीने वाला।

(११) सूर्य, मंगल, बुध बृहस्पति : सबल किन्तु विपन्न (अभागा, कष्ट-ग्रस्त) स्त्री तथा धनयुक्त, नेत्ररोगी, दूसरों के पीछे चलने वाला (अर्थात् मातहत)। दो अन्य मुद्रित पुस्तकों में 'अनुग:' के स्थान में पाठ है 'अटन: (घूमने फिरने वाला, यात्रा करने वाला, प्रवासी)।

(१२) सूर्य, मंगल, बुध, शुक्र : दूसरे की पत्नी या पत्नियों में अनुरक्त विषम नयन (दोनों नेत्र एक समान न हों), विषमवेष (अजीब सा वेष हो) बुद्धि में चोरी की भावना हो, सत्त्वहीन (यहां सत्त्व से तात्पर्य है साहस, बल आदि से—इनकी कमी हो)।

(१३) सूर्य, मंगल, बुध, शनि : सेनापति या राजा का मंत्री, भोगशील, नीच कर्म करने वाला।

(१४) सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शुक्र : राजा के समान, विख्यात, अति पूज्य (सम्मानित) धनी।

(१५) सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि : मित्रों और बन्धुओं से युक्त धन नष्ट हो जाये, भ्रान्त (बुद्धि में चक्कर हो, अर्थात् बुद्धि ठीक से काम न करे, घबराया हुआ, या इधर उधर घूमने वाला)

(१६) सूर्य, मंगल शुक्र, शनि : परिभव (अपमान या हानि) को प्राप्त, सद्गुण रहित, गर्हित कर्म करने वाला।

(१७) सूर्य, बुध, वृहस्पति, शुक्र : विशेष धनी, वहुत यशस्वी, प्रधान पद पर प्रतिष्ठित।

(१८) सूर्य, बुध, बृहस्पति, शनि : कलह करने वाला, घमंडी, दुराचारी।

(१९) सूर्य, बुध, शुक्र, शनि : सुन्दर वदन (चेहरा), सत्यव्रत, सदाचारी।

(२०) सूर्य, बृहस्पति, शुक्र, शनि : कलाओं में निपुण, नीच व्यक्तियों का प्रभु (स्वामी), साहसी ।

(२१) चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति : राजा का प्रिय करने वाला (अर्थात् राजा का कृपा पात्र), मंत्री, कवि (चतुर, बुद्धिमान्, विचारवान्) भूमि का स्वामी ।

(२२) चन्द्र, मंगल, बुध, शुक्र : अच्छी स्त्री, अच्छे पुत्र हों, प्राज्ञ (विद्वान्) सुखी, स्वरूप अच्छा न हो । मूल में 'विरूप' आया है । अन्य अच्छे गुणों के साथ 'विरूप' ठीक बैठता नहीं । यह वास्तव में 'सुरूपः' होना चाहिये क्योंकि सारावली में इस योग के फल में 'सुभगः' (सुन्दर) लिखा है ।

(२३) चन्द्र, मंगल, बुध, शनि : दो माता या दो पिता हों (दो माता तो पिता के अन्य विवाह करने से हो सकती हैं। जिन जातियों में विधवा विवाह प्रचलित है, उनमें दो पिता भी हो सकते हैं। अन्यथा एक अपना पिता एक जिसके गोद जाये), शूरवीर हो, बहुत सी स्त्रियां, बहुत से पुत्र हों।

(२४) चन्द्र, मंगल, बृहस्पति, शुक्र : पाप कर्म करने में चतुर, निद्रालु, धन प्राप्त करने के लिये आतुर (लोभी, उद्विग्न) ।

(२५) चन्द्र, मंगल, बृहस्पति, शनि : स्थिरमति (किसी बात पर दृढ़ रहना), शूर, सुखी, विद्वान् ।

(२६) चन्द्र, मंगल, शुक्र, शनिः इस योग का फल ग्रंथकार ने नहीं दिया। भूल गये हैं । इसलिये पूर्ति के लिये सारावली से दिया जाता है :—कुलटा का स्वामी, प्रगल्भ, सदैव उद्विग्न रहने वाला । सर्प के नेत्र के समान नेत्र हों ।

(२७) चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र : बहरा, धनी, विद्वान्, यशस्वी ।

(२८) चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शनि : अतिधनी, बन्धु प्रिय, धार्मिक ।

(२९) चन्द्र, बुध, शुक्र, शनि : बहुत व्यक्तियों का स्वामी, अन्य जनों की स्त्रियों से भोग करने वाला ।

(३०) चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र, शनि : सुखरहित, जिसमें दया और श्रद्धा न हो ।

(३१) मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र : धनी, परन्तु निन्दित ।

(३२) मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि : रोगी, धनहीन ।

(३३) मंगल, बुध, शुक्र, शनि : इस योग का फल ग्रंथकार ने नहीं दिया है । भूल गये हैं । पूर्ति के लिये सारावली से दिया जाता है :—मल्ल (पहलवान)

परपुष्ट (दूसरों के भोजन से पुष्ट) कठिनशरीर, विख्यात, युद्ध के लिये घमंडी ।

(३४) मंगल, वृहस्पति, शुक्र, शनि : इस योग का फल ग्रंथकार ने नहीं लिखा है । भूल गये हैं । पूर्ति के लिये सारावली से दिया जा रहा है : तेजस्वी, धनवान्, स्त्री के लिये चंचल (कामातुर) साहसप्रिय, चपल, चालाक ।

(३५) बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि : अतिशय धनी, विद्याप्रिय, विद्वान् ।

पांच ग्रहों का योग

एकर्क्षगैरिनशशिक्षितिजज्ञजीवै-
जतिस्तु युद्धकुशलः पिशुनः समर्थः ।
शुक्रारभानुबुधशीतकरैर्विधर्म-
श्रद्धालुरन्यजनकार्यपरो विबन्धुः ।। २६ ।।
भूनन्दनेन्दुरविमन्दपुरन्दरेज्यै-
राशालुरिष्टरमणीविरहाभिभूतः ।
चन्द्रारभानुशशिसूनुदिनेशपुत्रै-
रल्पायुरर्जनपरो विकलत्रपुत्रः ।।२७।।
जीवेन्दुभौमसितभानुभिराततायी
त्यक्तः स्वमातृपितृबन्धुजनैरनेत्रः ।
मन्देन्दुशुक्ररविभूमिसुतैर्विनाम-
वित्तप्रभावकुशलो मलिनोऽन्यदारः ।।२८।।
तारेशभानुगुरुबोधनदानवेज्यै-
र्मन्त्री धनी बलयशोनिजदण्डनाथः ।
भास्वद्बुधेन्दुगुरुभानुसुतैः परान्न-
भोजी सुभीरुरतिपापरतोग्रवृत्तिः ।।२९।।
सौम्यासितेन्द्वसितभानुभिरर्थहीनो
दीर्घाकृतिर्गतसुतो बहुरोगगात्रः ।
जीवेन्दुशुक्ररविभानुसुतैः सदारो
वाग्मीन्द्रजालचतुरो विभयः सशत्रुः ।।३०।।

शुक्रारभानुगुरुचन्द्रसुतैर्विशोकः
सेनातुरङ्गपतिरन्यवधूविलोलः ।
भूसूनुजीवरविबोधनभानुपुत्रै-
र्भिक्षाशनो मलिनजीर्णतराम्बरः स्यात् ॥३१॥
पूज्यः कलासु निपुणो बधबन्धनाढ्यो
रोगी सितासितगुरुज्ञधराकुमारैः ।
श्रेष्ठोऽतिदुःखभयरोगयुतः क्षुधार्तः
शन्यारबोधनविकर्तनदानवेज्यैः ॥३२॥
प्रेष्योऽधनो मलिनवेषयुतोऽतिमूर्ख-
श्चौरः कुजेन्दुगुरुशुक्रदिनेशपुत्रैः ।
मन्त्रक्रियासुरतधातुबलप्रसिद्ध-
कर्मा गुरुज्ञशनिचन्द्रवसुन्धराजैः ॥३३॥
ज्ञानी सदेवगुरुसन्मतिधर्मशीलः
शास्त्री दिनेशगुरुशुक्रशनीन्दुपुत्रैः ।
साधु सुखी बहुधनप्रबलश्च विद्वा-
निन्दुज्ञदेवगुरुदानवपूजितारैः ॥३४॥
पञ्चग्रहैरेकगृहोपयातै-
श्चन्द्रज्ञजीवासुरवन्द्यमन्दैः ।
सर्वत्र पूज्यो विकलेक्षणश्च
महीपतुल्यः सचिवोऽथवा स्यात् ॥३५॥

अब यदि किसी एक राशि में पाँच ग्रह हों तो उस योग का फल कहते हैं :-

(१) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पतिः युद्धकुशल, चुगलखोर, सामर्थ्यवान् ।

(२) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शुक्र : विधर्म (अपने धर्म के अतिरिक्त धर्म) में श्रद्धा रखने वाला, अन्य कार्य परायण, बन्धुहीन ।

(३) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति, शनि : सदैव आशा रखने वाला, इष्ट (मनोभिलषित) रमणी (स्त्री) के विरह से तप्त ।

(४) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शनि : अल्पायु, धन कमाने में तत्पर, विना स्त्री पुत्र वाला (अर्थात् स्त्री और पुत्र का सुख कम हो) ।

(५) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति, शुक्र : आततायी, अपने माता, पिता और बन्धुजनों से त्यक्त, नेत्रहीन ।

(६) सूर्य, चन्द्र, मंगल, शुक्र, शनि : धन के प्रभाव से कुशल (चतुर) मलिन (स्वभाव से या वेष से), परायी स्त्री में रत। मूल में विनाम—बिना नाम के आया है, इसका क्या आशय है, यह कहना कठिन है।

(७) सूर्य, चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र: मंत्री, धनी, बलवान्, यशस्वी, दूसरों को दण्ड देने की शक्ति वाला।

(८) सूर्य, चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शनि : दूसरे का भोजन करने वाला, अत्यन्त डरपोक, अत्यन्त पापरत, उग्र (क्रोध, हिंसात्मक) प्रवृत्ति।

(९) सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, शनि : धनहीन, दीर्घाकृति (बृहत् शरीर वाला), शरीर में अनेक रोग, पुत्र नष्ट हो जायें।

(१०) सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र, शनि : स्त्री सहित, इन्द्रजाल (जादू) में चतुर, निर्भय। अनेक शत्रु हों।

(११) सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र: शोक रहित, सेना और घोड़ों का स्वामी, परायी स्त्रियों की रति के लिये चंचल।

(१२) सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि : भिक्षा मांग कर खाने वाला (अर्थात् दरिद्र), मलिन, अत्यन्त पुराने कपड़े पहनने वाला।

(१३) सूर्य, मंगल, बुध, शुक्र, शनि : श्रेष्ठ किन्तु अति दुःखी, भयातुर रोगी, क्षुधा पीड़ित। मूल में 'श्रेष्ठ' (उच्च) हो यह कहा गया है। परन्तु अन्य अवगुणों (दुःख, दरिद्रता आदि) के साथ 'श्रेष्ठ' पाठ ठीक बैठता नहीं। सारावली में भी इस योग का फल गर्हित ही कहा गया है कि जातक रोग और शत्रु से पीड़ित, स्थानहीन, दुःख से युक्त, सदा क्षोभसहित होकर भ्रमण करने वाला होता है।

(१४) सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शुक्र, शनि : इनके योग का फल ग्रंथकार ने नहीं कहा है। भूल गये हैं। पूर्ति के लिये सारावली में जो फल कहा गया है, वह दिया जाता है। जातक जलयंत्र, धातु, पारद (पारा रसायन) इन कार्यों में अति चतुर होता है और इन कार्यों से प्रसिद्धि प्राप्त करता है।

(१५) सूर्य, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि : ज्ञानी, देव-गुरु भक्त, धर्मशील, शास्त्रज्ञ।

(१६) चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र : साधु, सुधी, अत्यन्त धनवान्, प्रबल, विद्वान्।

(१७) चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि : मंत्रक्रिया में, धातुओं के कार्य तथा अपने शारीरिक बल से प्रसिद्ध कर्म करने वाला।

(१८) चन्द्र, मंगल, बुध, शुक्र, शनि : इस योग का फल ग्रंथकार ने नहीं दिया है। भूल गये हैं। पूर्ति के लिये सारावली के अनुसार फल लिखा जाता है। जातक के बहुत से मित्र और साथ ही अनेक शत्रु भी हों। दूसरों का हित करता है परन्तु विषम शील (सौशील्यादि गुण रहित) होता है।

(१९) चन्द्र, मंगल, बृहस्पति, शुक्र, शनि : प्रेष्य (छोटे दर्जे का नौकर) धन रहित, चोर, अति मूर्ख, मलिन वेषयुत।

(२०) चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिः सर्वत्र पूज्य, नेत्ररोगी, राजा के तुल्य या राज मन्त्री।

(२१) मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिः पूज्य (सम्मानित), कलाओं में निपुण, रोगी, वध तथा बन्धन के कार्य से आढ्य (यथा मजिस्ट्रेट, सेशन्स जज, फौजदारी मुकदमों का वकील)।

हमारे विचार से इन योगों का अक्षरशः अर्थ नहीं लेना चाहिये। जैसा हम पहिले लिख चुके हैं, भाव, भावेश राशि, नवांश, नक्षत्र, राशिपति, नवांशपति अस्तादि दोष, नक्षत्र पति आदि का सर्वांगीण विचार कर किसी निष्कर्ष पर पहुँचना उचित है। २६-३५।

षड्ग्रहयोग

सूर्येन्द्वारबुधामरेज्यभृगुजैरेकर्क्षगैस्तीर्थकृ-
ज्जातोऽरण्यगिरिप्रदेशनिलयः स्त्रीपुत्रवित्तान्वितः।
शुक्रेन्द्वर्कबुधामरेज्यदिनकृत्पुत्रैःशिरोरोगवा-
नुन्मादप्रकृतिश्च निर्जनधरावासो विदेशं गतः ॥३६॥
जीवज्ञारुणभूमिजासितसितैः सञ्चारशीलः सुधी-
रिन्दुज्ञारसितार्किदेवगुरुभिस्तीर्थाटनः स्याद् व्रती।
जीवारेन्दुरवीन्दुजारुणसुतैश्चौरः परस्त्रीरतः
कुष्ठी बान्धवदूषितो गतसुतो मूर्खो विदेशं गतः ॥३७॥
नीचोऽन्यकर्मनिरतः क्षयपीनसार्तो
निन्द्यो महीसुतरवीन्दुसितासितज्ञैः।
मन्त्री कलत्रधननन्दनमोदहीनः
शान्तः सितासितकुजारुणजीवचन्द्रैः ॥३८॥

(१) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र : तीर्थ करने वाला, धन, स्त्री तथा पुत्र से युक्त, वन और पर्वत में निवास।

(२) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि: चोर, परायी स्त्री में रत, कुष्ठी (कुष्ठ रोग से पीड़ित, बान्धवों से दूषित, पुत्र नष्ट हो जायें, विदेश चला जाये (पहिले विदेश जाना अनिष्ट फल माना जाता था)।

(३) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शुक्र, शनि: नीच, दूसरे का कार्य करने वाला (पराश्रय गर्हित है, यह आशय है), क्षय और पीनस रोगों से पीड़ित।

(४) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति, शुक्र, शनि: मंत्री, स्त्री, पुत्र, धन और आनन्द—इन चारों से हीन किन्तु शान्त (उद्वेग रहित)।

(५) सूर्य, चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि: शिरोरोग (सिर में पीड़ा या मस्तिष्क विकार), उन्माद प्रकृति (पागलपन के रोग से युक्त—चाहे सर्वथा पागल न हो किन्तु कुछ लक्षण हो), देवभूमि (मन्दिर इत्यादि में) वास करने वाला, विदेश को चला जाये।

(६) सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि: संचारशील (घूमने फिरने या यात्रा करने वाला), विद्वान्।

(७) चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि: तीर्थ करने वाला और व्रती (व्रत करने वाला)।

मेष आदि द्वादश राशियों में

ग्रह स्थिति का फल

जातः स्वल्पधनस्तु गानरसिको विद्याधनक्लेशधी-
रज्ञः सर्वकलारसज्ञचतुरो हैरण्यकः साहसी।
सम्पूज्यःकुवणिक्क्रियासु कुशलः पुत्रादिभाग्यच्युतः
श्रीमांस्तोयकृषिक्रियादिभिरिने मेषादिराशिस्थिते ।।३९।।
स्वर्क्षे भूपकृषिक्रियाटनधनः शुक्रर्क्षगे कामधीः
सौम्यर्क्षे परदीनवाक्कटकभे राजप्रियो वित्तवान्।
सिंहे भूमिसुते तु निर्भयधनो जैवे जितारिः सुखी
कुम्भे दुर्जनसेवितो मृगगते भूपोऽथवा तत्समः ।।४०।।
कौजे चन्द्रसुतेऽधनः सितगृहे विद्वान्नृयुग्मे सुखी
कर्किस्थे निजवित्तहा हरिगते जातो वधूर्निर्जितः।

कन्यास्थे सुगुणाकरो गतभयश्चापे नृपालप्रियो
मीनस्थे जितसेवकः शनिगृहे शिल्पी परप्रेष्यकः ॥४१॥
सेनावित्तसुताधिकः सुगुणवान् दाता कुजर्क्षे गुरौ
तेजस्वी सितभे परिच्छदसुहृत्तारासुतर्क्षं गते।
प्राज्ञः पुत्रधनश्च कर्किणि घटे भोगी यशस्वी हरौ।
राजा राजसमोऽथवा निजगृहे नीचोऽटनः क्लेशधीः ॥४२॥
जारः श्रीमतिमित्रबन्धुविभवो विद्याधनज्ञानवान्
भीरुर्मन्दसुतोऽतिनीचविहितचारो नृपालप्रियः।
दुष्टस्त्रीगणसेवितो जनपतिर्भोगी कुमारीरतः
श्रीविद्यागुणशीलवान् भृगुसुते मेषादिराशिस्थिते ॥४३॥
मूर्खो नातिधनो गतस्वसुतधीरम्बासुखप्रच्युतोऽ-
नार्यः स्वल्पधनात्मजो गुणपुरग्रामाग्रणीरुग्रधीः।
जातः पुत्रकलत्रवित्तविभवो राजप्रियो वित्तवान्
तेजोराजगुणाधिको रविसुते मेषादिराशिस्थिते ॥४४॥
यदुक्तमुडुनाथस्य फलं मेषादिराशिषु।
तदंशकफलं चात्र परिचिन्त्य वदेद् बुधः ॥४५॥

मेष आदि प्रत्येक राशि में प्रत्येक ग्रह की स्थिति का क्या फल होता है। यह प्रायः प्रत्येक फलित ग्रंथ में दिया गया है। इसलिये यहाँ इस विषय की विशेष व्याख्या नहीं की जा रही है। केवल विशेष बातों की ओर पाठकों की दृष्टि आकर्षित की जाती है :—

(१) प्रथम तो यह कि राशि फल का भाव फल से सामञ्जस्य अवश्य करना चाहिए। इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है :—

३९(१)

३९(२)

३९(३)

३९(४)

३९(५)

३९(६)

३९(७)

३९(८)

३९(९)

३९(१०)
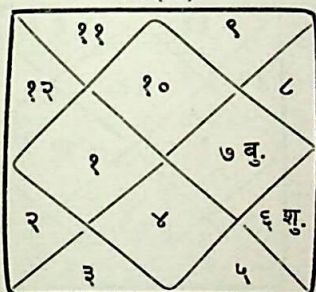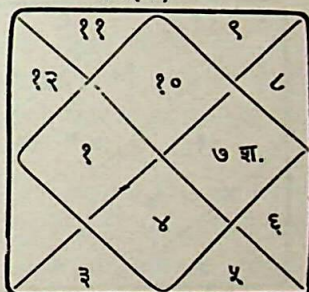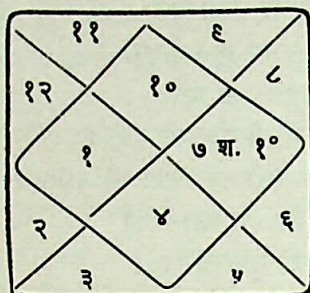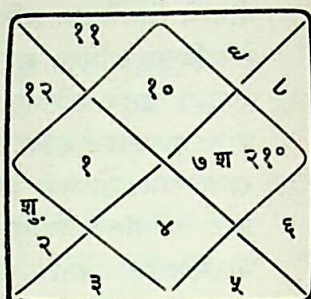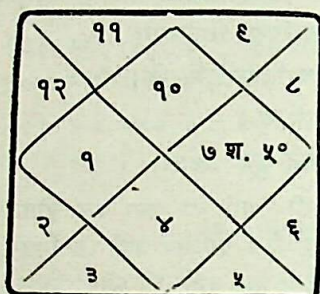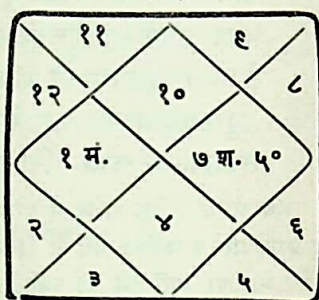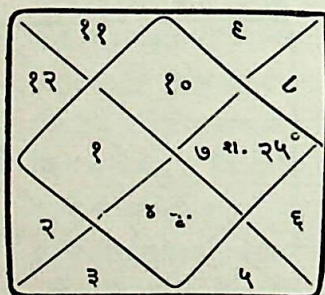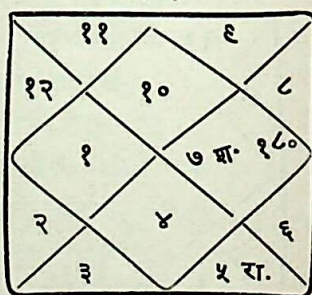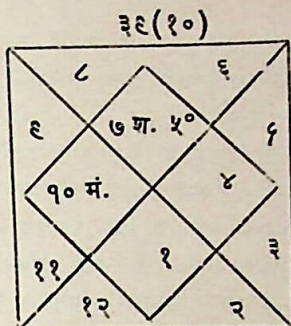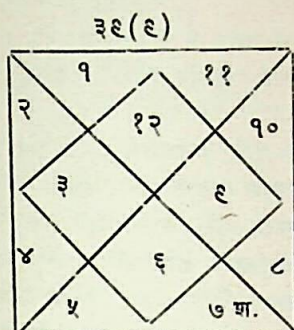
यहाँ दस उदाहरण कुण्डलियाँ दी गयी हैं। सभी में शनि तुला राशि में है। शनि तुला राशि में है और तुला राशि का स्वामी शुक्र है। शुक्र शनि का नैसर्गिक मित्र है। किन्तु यदि शुक्र तात्कालिक मित्र हो तो शनि अधिमित्र राशि में हो जायेगा; यदि शुक्र शनि का तात्कालिक शत्रु हो तो शनि पंचधा में सम राशि में होगा। दोनों का समान फल कैसे हो सकता है ?

(i) उदाहरण ३९(१) में शनि दशम में तुला में है और ३९(२) में भी ऐसा है, कि ३९(१) में तुला राशीश शुक्र नीच राशीश का है, ३९(२) में अपनी राशि का, इस प्रकार ३९(२) में शनि का विशेष उत्कृष्ट फल होगा। ३९ (१) में उतना उत्कृष्ट नहीं।

(ii) उदाहरण ३९(३) और ३९(४) दोनों में शनि दशम में तुला में है, किन्तु ३९(३) में शनि तुला नवांश में भी है और वर्गोत्तम है, किन्तु ३९(४) में नीच नवांश में है इस कारण विशेष उत्कृष्ट फल देने में समर्थ है। ३९(३) का शनि अपनी महादशा या अन्तर्दशा में विशिष्ट फल देगा, किन्तु ३९(४) में इतना चमत्कार दिखाने में अक्षम है।

(iii) उदाहरण ३९(५) तथा ३९(६) दोनों में लग्न भी वही है, शनि भी दोनों कुण्डलियों में तुला राशि वृश्चिक नवांश में है, परन्तु ३९(५) में वृश्चिक (शनि जिस नवांश में है उसका) स्वामी अपनी नीच राशि में है इस कारण नीच नवांशेश ने शनि को कमजोर कर दिया, ३९(६) में वृश्चिक का स्वामी मंगल अपनी मूल त्रिकोण राशि में है। इसने शनि को और भी बलवान् और उत्कृष्टतर बना दिया।

(iv) उदाहरण ३९(७) में शनि तुला के २५ अंश में है। इस कारण वह विशाखा नक्षत्र में है। विशाखा का स्वामी बृहस्पति अपनी उच्च राशि कर्क में, केन्द्र में है, इस कारण शनि महादशा अच्छी जायेगी किन्तु ३९(८)

में शनि के तुला में १८ अंश हैं, वह स्वाती नक्षत्र में है। स्वाती का स्वामी राहु अष्टम में है, इस कारण शनि कुछ मात्रा में राहु का दुष्ट फल, अपनी दशा, अन्तर्दशा में करेगा।

(v) उदाहरण ३९(९) में शनि तुला राशि में अवश्य है—परन्तु एकादशेश व्ययेश होकर, अष्टम में बैठकर, वैसा शुभ फल कैसे कर सकता है जैसा ३९(१०) में शनि, चतुर्थेश, पंचमेश योग कारक होकर राशि योग (पंच महापुरुष योगों में से एक) कर रहा है; चित्रा का स्वामी, तथा शनि वृश्चिक नवांश में है—वृश्चिक का स्वामी—मंगल अपनी उच्चराशि में बैठकर रुचक योग कर रहा है। शनि चित्रा नक्षत्र में है। इस कारण नक्षत्रपति तथा नवांशेश के बलवान् होने से शनि को और भी अधिक बल प्राप्त हुआ है।

इस सब विवेचन का तात्पर्य यह है कि केवल राशि फल या भाव फल पर ही नहीं जाना चाहिए। किसी भी राशि में ग्रह हो शुभ ग्रहों की, शुभ भावेशों की दृष्टि शुभ फल बढ़ाती है; पाप ग्रहों की दुष्ट भावों के स्वामियों की दृष्टि शुभ फल में ह्रास करती है, यह कथमपि विस्मरण नहीं करना चाहिए।

अब ग्रन्थकार ने मेषादि राशि स्थित सातों ग्रहों का जो फल कहा है, वह कहते हैं।

सूर्य यदि मेष आदि राशियों में हो तो निम्नलिखित फल है। (१) से मेष (२) से वृष (३) से मिथुन, इस प्रकार सर्वत्र समझना।

सूर्य का फल : (१) अल्पधनी (२) गाने का शौकीन (३) विद्या और धन उपार्जन में परिश्रमपूर्वक संलग्न (४) अज्ञ (अधिक नहीं समझने वाला(५) सब कलाओं का आनन्द लेने वाला और चतुर(६)सुवर्ण (सोना) वाला अर्थात् द्रव्य संग्रहशील—पहिले द्रव्य संग्रह करने वाले सोने के रूप में संग्रह करते थे। (७) साहसी (८) पूज्य(९)कुत्सित व्यापार करने वाला। कुत्सित ? निकृष्ट। छोटाव्यापारी हो या निकृष्ट—हड्डी, चमड़ा आदि वस्तुओं का व्यापार करे या बेईमानी करे तो उसे कुवणिक् कहेंगे। (१०) क्रियाकुशल—कार्य में दक्ष। (११) पुत्र आदि के विषय में भाग्यहीन। हमारा अनुभव है कि जिसका कुंभ में सूर्य हो, उसके बच्चे बाल्यावस्था में बलवान् नहीं होते। यदि जातक की जन्म कुण्डली में लग्न में कुंभ का सूर्य हो तो हृदय रोग होता है, यह भी अनुभूत है। (१२) मीन में सूर्य हो तो जल, कृषि आदि से धन प्राप्त करता है। हमारा अनुभव है कि यदि पुरुष की कुण्डली में मीन का सूर्य हो तो किसी विधवा से प्रेम सम्बन्ध होता है और तद्विषयक लाञ्छन भी लगता है।

यहाँ मेष से मीन तक जो (१), (२), (३) आदि द्वारा ऊपर निर्दिष्ट किया गया है—सूर्य का राशिफल बहुत ही संक्षिप्त रूप में कहा गया है। विस्तृत

फल के लिये देखिए हमारी पुस्तक अंक-विद्या (ज्योतिष) पृष्ठ १०९-१३९ जहाँ ३१ पृष्ठों में सूर्य का राशिफल वर्णित है।

अब चन्द्रमा का राशि फल कहते हैं। ग्रन्थकार ने मंगल के राशिफल कथन में प्रत्येक राशि स्थित मंगल का फल कथन न कर, यदि मंगल स्वयं की राशि (मेष या वृश्चिक) में, शुक्र की राशि (वृष या तुला) में हो तो अमुक फल इस प्रकार आदेश किया है। परन्तु मकर और कुंभ दोनों शनि राशियाँ तथापि मकर मंगल की उच्च राशि है, इस कारण मकर और कुंभ दोनों में मकर का समान फल कैसे हो सकता है। ऐसी स्थिति जहाँ उपस्थित हुई है वहाँ पृथक् पृथक् राशि का पृथक् पृथक् फल निर्देश किया है।

(२) यदि मंगल (i) अपनी राशि में हो तो राजा, खेती बाड़ी तथा चलने फिरने, यात्रा आदि से धन प्राप्त होता है (ii) शुक्र की राशि—वृष या तुला में हो तो काम वासना विशेष हो। (iii) बुध की राशि—मिथुन या कन्या में हो तो दीन वचन बोलने वाला। (iv) कर्क में—राजा का प्रिय और धनी। (v) सिंह में निर्भय और धनी। मूल में लिखा है 'निर्भयधनो'। किसी किसी टीकाकार ने अर्थ किया है कि धन के विषय में निर्भय। (vi) बृहस्पति की राशि—धनु या मीन में हो तो शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे और सुखी हो। (vii) कुंभ में—दुर्जनों से सेवित। (viii) मकर में राजा या राजा के समान।

(३) अब बुध का राशि फल कहते हैं। बुध यदि (i) मंगल की राशि—मेष या वृश्चिक में हो तो धन रहित (ii) शुक्र की राशि—वृष या तुला में विद्वान् (iii) मिथुन में सुखी (iv) कर्क में अपने धन का नाश करने वाला (v) सिंह में अपनी पत्नी से जीता हुआ (अर्थात् पत्नी की इच्छानुसार कार्य करने वाला) (vi) कन्या में अनेक सद्गुण युक्त (vii) धनु में राजा का कृपा पात्र, निर्भय (viii) मीन में 'जितसेवक'। जित सेवक का क्या अर्थ? श्रीनवाथे अपने मराठी अनुवाद में लिखते हैं 'गुलामी करने वाला'। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री अपने अंग्रेजी अनुवाद में लिखते हैं "दबा हुआ नौकर"। एक हिन्दी टीकाकार लिखते हैं 'सेवक से पराजित'। वास्तव में इन तीनों में से कोई भी अर्थ जित सेवक का नहीं है। जित सेवक का अर्थ है जिसने अपनी सेवा से अन्य सेवकों को जीत लिया है। अर्थात् ऐसी सेवा करने वाला कि अन्य सेवकों की अपेक्षा, उसकी सेवा उत्कृष्टतर समझी जाये अर्थात् सेवा करने में जो अन्य सेवकों से बाजी मार ले। बृहज्जातक अध्याय १८ श्लोक ११ में वराहमिहिर ने भी लिखा है कि मीन में बुध हो तो जितसेवक हो। वहीं से जातकपारिजातकार ने यह शब्द लिया है। इसकी टीका में भट्टोत्पल लिखते हैं 'जितसेवकः जिताः सेवका येन। 'परराधनदक्षः पराभिप्रायज्ञः'। रुद्रभट्ट भी अपने विवरण में टीका करते हैं—

परराधनदक्षः— जो दूसरों की आराधना (सेवा) करने में चतुर हो। (ix) यदि शनि की राशि—मकर या कुंभ में बुध हो तो शिल्पी और दूसरे की नौकरी करने वाला हो।

(४) अब बृहस्पति का राशि फल कहते हैं। बृहस्पति यदि (i) मंगल की राशि मेष या वृश्चिक में हो तो सेना, धन और पुत्रों का आधिक्य, दाता (दानशील), अनेक सद्गुणों से युक्त (ii) शुक्र की राशि—वृष या तुला में—तेजस्वी (iii) बुध की राशि—मिथुन या कन्या में—मित्रों और परिच्छद से युक्त। परिच्छद क्या? यह शब्द बृहस्पति की बुध राशि स्थिति का जो फल वृहज्जातक अध्याय १८ श्लोक १२ से लिया गया है। रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं 'परिच्छदाः वसनाशनशयनादयो भोगोपकरणविशेषाः' अर्थात् मकान, भोजन, शयन आदि से सम्बन्धित भोग के साधन युक्त। (iv) कर्क में विद्वान्, पुत्रवान् धनवान्। (v) सिंह में—यशस्वी (vi) कुंभ में—भोगी (vii) अपनी राशि—धनु या मीन में—राजा या राजा के समान (viii) मकर में—घूमने फिरने वाला (गर्हित अर्थ में कहा है), क्लेशित चित्त रहे।

(५) अब शुक्र का राशि फल कहते हैं (i) मेष में—परस्त्रीगामी। (ii) वृष में—श्रीमान्, धनवान्, बन्धुयुक्त, वैभवशाली (iii) मिथुन में—विद्या, धन, और ज्ञानवान् (iv) कर्क में—डरपोक (v) सिंह में—थोड़े पुत्र (मूल में 'मन्द सुत' शब्द आया है, जिसका अर्थ मन्द (बहुत बुद्धिमान् नहीं) सुत हों, यह भी हो सकता है। (vi) कन्या में—अति नीच आचार वाला (vii) तुला में—राजा का प्रिय (viii) वृश्चिक में—दुष्ट स्त्रीगण सेवित (व्यभिचारिणी स्त्रियों से सम्पर्क रखने वाला) (ix) धनु में—जनपति, राजा, नेता या उच्चाधिकारी (x) मकर में—भोगी (xi) कुंभ में—अविवाहित स्त्री का प्रेमी (xii) मीन में— धनी, सद्गुणान्वित, विद्वान्, सत्स्वभाव का।

(६) अब शनि का राशि फल कहते हैं। (i) मेष में—मूर्ख (हिताहित विचार न कर कार्य करने वाला) (ii) वृष में—अतिधनी नहीं (iii) मिथुन में—सुत, धन, बुद्धि से हीन (iv) कर्क में—मातृ, सुत हीन (v) सिंह में—आर्य (श्रेष्ठ आचार वाला नहीं) (vi) कन्या में—थोड़े पुत्र हों, थोड़ा धन हो। (vii) तुला में—अनेक गुणों में अग्रणी (अर्थात् अन्य जनों की अपेक्षा विशेष गुण हों) अपने ग्राम या नगर का अगुआ। (viii) वृश्चिक में—क्रोधी स्वभाव और क्रूर बुद्धि युक्त (ix) धनु में—पुत्र, पत्नी, सम्पत्ति, वैभव युक्त (x) मकर में—राजा का प्रिय (xi) कुंभ में—धनी (xii) मीन में—तेजस्वी, राजाओं सदृश गुणों का आधिक्य। राजाओं के गुणों से क्या तात्पर्य? वैभव, हुकूमत आदि।

(७) चन्द्रमा का राशिफल पृथक् नहीं कहा है। आगे श्लोक ४८-५५ में चन्द्रमा यदि विविध राशियों में विविध ग्रहों से दृष्ट हो तो क्या फल होता है, यह एक साथ ही कहा है। फलदीपिका के अध्याय ९ में चन्द्रमा का राशिफल बहुत सुन्दर दिया है। बहुत ठीक बैठता है। पाठक अवश्य अवलोकन करें।

श्लोक ४५ में ग्रंथकार कहते हैं कि मेषादि राशि में स्थित जो चन्द्रमा का फल कहा है, वह बुद्धिमान् व्यक्ति को, चन्द्रमा किस नवांश में है, यह भी ध्यान में रखते हुए कहना चाहिये ॥३९-४५॥

अथ दृष्टियुतिफल

पापेक्षिते गगनगामिनि दुष्टरोगी
जातः स्वधर्मगुणवित्तयशोविहीनः ।
पापान्विते नु परवित्तवधूविलोलः
पारुष्यवाक्कपटबुद्धियुतोऽलसः स्यात् ॥४६॥
यदि शुभकरदृष्टे खेचरे जातमर्त्यः
सुतधनयुतभोगी सुन्दरो राजपूज्यः ।
परिभवरहितः स्यात्सौम्यखेटोपयाते
जितरिपुरिह धर्माचारवानिङ्गितज्ञः ॥४७॥

ऊपर ३९-४४ में ग्रहों का साधारण राशिफल कहा है। इस अध्याय ८ में ग्रंथकार ने अनेक विषयों का समावेश किया है, इस कारण जितने विशद रूप से फलादेश करना चाहिये, उतने विस्तार से नहीं कहा है। जो बात जातकपारिजात के अध्याय ८ के श्लोक १-४९ में कही गयी है, वही सारावली में ७२० श्लोकों में करीब पन्द्रह गुने विस्तार से कही गयी है। इन ७२० श्लोकों के अर्थ का विवेचन, विस्तार भय से यहाँ नहीं किया जा सकता। पाठक सारावली के अध्याय १५, १६, १७, १८, १९, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९ ३१ का अवलोकन करें। सारावली में—प्रत्येक ग्रह की राशि विशेष में स्थिति और उस पर प्रत्येक ग्रह की दृष्टि का फल पृथक् पृथक् कहा गया है। परन्तु जातक पारिजात में—वही फल सूत्र रूप से—दृष्टि फल का सिद्धान्त मात्र बतलाकर, इस प्रकरण का उपसंहार कर दिया गया है।

जातकपारिजातकार कहते हैं :—

(i) यदि कोई ग्रह पापग्रह से दृष्ट हो तो जातक दुष्ट, रोगी, अपने धर्म से च्युत, धन, सद्गुण तथा यश से हीन होता है। कहने का तात्पर्य है कि धन, यश आदि में कमी होती है। प्रकृति (स्वभाव, बुद्धि) में क्रूरता होती है, शरीर में अस्वास्थ्य।

(ii) यदि कोई ग्रह, पाप ग्रह से युत हो तो पराये धन और परायी स्त्री से भोग करने लिये चित्त चंचल रहता है, वाणी में परुषता (कठोरता) होती है, बुद्धि में कपट। जातक आलसी होता है।

(iii) यदि कोई ग्रह, शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो जातक, पुत्रों के सुख से युक्त, धनी, विविध भोगोपकरणों से सम्पन्न, देखने में अच्छा, राजा से सम्मानित होता है।

(iv) यदि कोई ग्रह, शुभ ग्रह से युत हो तो परिभवरहित हो, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, बुद्धिमान् हो, धार्मिक और आचारवान् हो। परिभव क्या? अपमान, क्षति, प्रतिष्ठाभंग, तिरस्कार इत्यादि। यह सब न हों, यह शुभ दृष्टि का फल है। मूल में आया है 'इंगितज्ञः'—इशारा समझने वाला अर्थात् बुद्धिमान्। क्योंकि कहा है 'परेंगितज्ञानफला हि बुद्धयः'।

पाठकों का एक मुख्य सिद्धान्त की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है। कोई शुभ फल कारक ग्रह है। यदि पापदृष्ट या पाप युत हो तो केवल इस हेतु से वह दुष्ट फलद नहीं हो जायेगा परन्तु शुभ फल में न्यूनता हो जायेगी। और अपने राशि, भाव, भावेश वश शुभ फलद है, वह यदि शुभ दृष्ट या शुभ युत हो तो उसकी शुभता में और भी वृद्धि हो जायेगी। इस प्रकार यदि कोई ग्रह स्वयं पाप फल कारक है तो केवल शुभ दृष्ट या शुभ युत होने से वह सम्पूर्ण रूप से शुभ नहीं हो जायेगा, उसकी पाप फल देने की प्रवृत्ति में न्यूनता हो जायेगी और अपनी राशि, भाव, भावेश वह जो दुष्ट फल कारक है, वह यदि साथ ही पाप दृष्ट या पाप युत हो तो और भी दुष्ट फल करेगा। ॥४६-४७॥

विविध राशिस्थ चन्द्रमा पर दृष्टि का फल

चन्द्रे मेषगते कुजादिखचरैरालोकिते भूपति-
र्विद्वान् राजसमः समस्तगुणवान् चौरो दरिद्रो भवेत्।
निस्वस्थेयनृमान्यभूपधनिकप्रेष्यो वृषस्थे तथा
युग्मस्थे विकलो नृपः सुमतिमान् धीरः खलो निर्धनः ॥४८॥

कर्किस्थे शशिनि क्षमासुतमुखैरालोकिते शौर्यवा-
नार्यश्रेष्ठकविर्महीपतिरयोजीवी सनेत्रामयः ।
भूपः पण्डितवाग् धनी नरपतिः पापी विभुः सिंहगे
कन्यायां धनिको विभुः प्रभुसमो विद्वान् विशीलः सखी ॥४९॥
तौलिस्थे हिमगौ बुधादिशुभदैरालोकिते स्यात् क्रमाद्
भूपः स्वर्णकरो वणिक्कुजरविच्छायासुतैर्वञ्चकः ।
कीटस्थे शशिनि द्विमातृपितृको राजप्रियो नीचकृ-
द्रोगी निर्धनिको नृपालसचिवो दृष्टे बुधादिग्रहैः ॥५०॥
चन्द्रे धनुःस्थे शुभदृष्टियुक्ते विद्याधनज्ञानयशोबलाढ्यः ।
दृष्टे कुजादित्यदिनेशपुत्रैः सभाशठः पण्यवधूरतः स्यात् ॥५१॥
राजा महीपतिर्विद्वान् धनी निर्धनिको विभुः ।
कुजादिग्रहसन्दृष्टे मकरस्थे निशाकरे ॥५२॥
कुम्भस्थिते निशानाथे शुभदृष्टे यशोधनः ।
जातः परवधूलोलः पापखेटनिरीक्षिते ॥५३॥
मीनस्थे शुभवीक्षिते हिमकरे हास्यप्रियो भूपति-
र्विद्वान् पापनिरीक्षिते परुषवाक् पापात्मको जायते ।
पापांशे खलवीक्षिते शठमतिर्जातोऽन्यजायारतः
सौम्यांशे शुभवीक्षिते हिमकरे जातो यशस्वी भवेत् ॥५४॥
राशिदृष्टिफलं यत्तदंशकेषु च योजयेत् ।
भवन्ति शुभदाः सर्वे शुभदृग्योगसंयुताः ॥५५॥

(i) चन्द्रमा यदि मेष में हो और किसी ग्रह से दृष्ट हो तो द्रष्टा (देखने वाले) ग्रह के अनुसार निम्नलिखित फल होता है :—

मंगल से दृष्ट—भूपति; बुध (यदि देखे) विद्वान्; बृहस्पति दृष्ट—राजा के समान; शुक्र दृष्ट—सर्व गुण सम्पन्न; शनि दृष्ट—चोर; सूर्य दृष्ट—दरिद्र ।

(ii) चन्द्रमा यदि वृष में हो और मंगल उसे देखे तो निर्धन; बुध दृष्ट—न्यायाधिकारी (मूल में स्थेय शब्द आया है, जिसका अर्थ है झगड़े का फैसला करने वाला व्यक्ति, पंच आदि); बृहस्पति दृष्ट—मनुष्यों का मान्य (आदरणीय) शुक्र दृष्ट—भूप; शनि दृष्ट—धनिक; सूर्य दृष्ट—नौकर (लाघव व्यक्त करने के लिये मूल में प्रेष्य कहा है) होता है ।

(iii) चन्द्रमा यदि मिथुन में हो तो द्रष्टा ग्रह के अनुसार निम्नलिखित फल कहा है :–

मंगल—विकल; बुध—नृप; बृहस्पति—अत्यन्त अच्छी बुद्धि वाला; शुक्र—धीर; शनि—खल; सूर्य—निर्धन।

(iv) चन्द्रमा यदि कर्क में हो—मंगल आदि ग्रह से दृष्ट हो तो निम्नलिखित फल कहा है :–

मंगल—शौर्यवान् (वीर); बुध—आर्य; बृहस्पति—श्रेष्ठ कवि (कवि शब्द का उपयोग विद्वान् के लिये भी होता है।) शुक्र—राजा; शनि—लोहे के कार्य से आजीविका चलाने वाला; सूर्य—नेत्र रोगी। मूल में आर्य शब्द आया है। आर्य का अर्थ है सम्माननीय या प्रतिष्ठित व्यक्ति।

(v) चन्द्रमा यदि सिंह में हो तो विविध ग्रहों की उस पर दृष्टि का फल कहते हैं। मंगल—भूप; बुध—पंडित के समान वाणी (तर्क युक्त शास्त्रीय अव्याहत बोलने की शक्ति); बृहस्पति—धनी; शुक्र—राजा; शनि—पापी; सूर्य—विभु। विभु का अर्थ है सामर्थ्यवान्, शासक, प्रमुख आदि।

(vi) चन्द्रमा यदि कन्या राशि में हो तो मंगल आदि ग्रहों की दृष्टि का प्रभाव निम्नलिखित है। मंगल—धनिक; बुध—विभु; बृहस्पति—प्रभु के समान; शुक्र—विद्वान्; शनि—दुःशील (जिसका स्वभावतः व्यवहार आदि अच्छा न हो। सुशील के अर्थ से विरुद्ध अर्थ दुःशील का होता है); सूर्य—सुखी।

(vii) चन्द्रमा यदि तुला में हो, उसे बुध देखे तो राजा, बृहस्पति देखे तो सुवर्ण (सोने) का काम करने वाला, शुक्र देखे तो व्यापारी। यदि तुला राशि के चन्द्रमा को सूर्य, मंगल या शनि देखें तो वञ्चक (ठगने वाला) होता है। किसी किसी पुस्तक में 'वञ्चक' स्थान में 'षंडकः' पाठ है। षंड नपुंसक को कहते हैं। 'क' कुत्सित के अर्थ में लगाया जाता है। भिन्न भिन्न लेखकों ने नपुंसकों के २० भेद लिखे हैं।

(viii) चन्द्रमा यदि वृश्चिक में हो और (i) मंगल से दृष्ट हो तो राजा का मन्त्री, बुध से दृष्ट हो दो माता पिता वाला (दो माता, पिता के अन्य विवाह से हो सकती हैं; गोद (दत्तक) जाने से दो पिता संभव हैं दो माता भी); बृहस्पति से दृष्ट चन्द्रमा हो तो राजा का प्रिय; शुक्र से नीच कर्म करनेवाला; शनि से रोगी और सूर्य से दृष्ट, निर्धन।

(ix) चन्द्रमा यदि धनु में हो और शुभ ग्रह—बुध, बृहस्पति या शुक्र से दृष्ट हो तो विद्वान्, धनी, यशस्वी, ज्ञानवान्, बल (सामर्थ्य) युक्त होता है, किन्तु

यदि सूर्य, मंगल या शनि से दृष्ट हो तो सभा (सम्मिलित जनों की गोष्ठी) में शठ सदृश व्यवहार करे, वेश्याओं में अनुरक्त हो।

(x) चन्द्रमा यदि मकर में हो और मंगल से दृष्ट हो तो राजा; बुध से दृष्ट महीपति; बृहस्पति से दृष्ट विद्वान्, शुक्र से धनी, शनि से निर्धन और सूर्य से दृष्ट विभु।

(xi) चन्द्रमा यदि कुंभ में हो और शुभ ग्रह बुध, बृहस्पति या शुक्र से दृष्ट हो तो धनी और यशस्वी हो किन्तु यदि पाप ग्रह सूर्य, मंगल या शनि से दृष्ट हो तो दूसरों की पत्नियों में आसक्त हो।

(xii) चन्द्रमा यदि मीन राशि में हो और शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो हास्य-प्रिय (हँसी, मजाक, विनोद प्रिय) और विद्वान् हो किन्तु मीनस्थ चन्द्रमा यदि पाप ग्रह से दृष्ट हो तो परुष (कठोर) वाणी हो और जातक पापकर्मा हो।

अब यह देखिये कि चन्द्रमा किस नवांश में है। वृषभ, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु और मीन शुभ ग्रहों के नवांश या शुभ नवांश हैं। मेष, सिंह, वृश्चिक मकर तथा कुंभ पाप ग्रहों के या पाप नवांश हैं। बुध, बृहस्पति तथा शुक्र शुभ ग्रह हैं। सूर्य, मंगल तथा शनि पाप ग्रह हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि चन्द्रमा यदि पाप नवांश में पाप ग्रह वीक्षित हो तो जातक दुष्ट बुद्धि वाला, दूसरों की पत्नियों में अनुरक्त होता है। चन्द्रमा यदि शुभ नवांश में शुभ ग्रह दृष्ट हो तो जातक यशस्वी हो। पुनः कहते हैं कि पिछले श्लोकों में ग्रहों की राशि स्थिति का फल कहा है, वह नवांश स्थिति में भी समझना चाहिए। इस कथन को हम उदाहरण से स्पष्ट करते हैं। यदि मीन नवांश में बुध हो तो वही फल समझना जो मीन राशि स्थित बुध का फल कहा हो। सूर्य का मेष राशि स्थिति का जो फल कहा है, वही सूर्य का मेष नवांश स्थिति का फल समझना। चन्द्रमा यदि मेष राशि में स्थित हो और बृहस्पति से दृष्ट हो, वही फल तब भी समझना जब चन्द्रमा मेष नवांश में हो और बृहस्पति से दृष्ट हो।

चार सिद्धान्त

(i) रुद्रभट्ट बृहज्जातक के राशिशीलाध्याय की अवतरणिका में लिखते हैं कि लग्न और चन्द्र का तुल्य फल होता है। इस सिद्धान्तानुसार चन्द्रमा का राशि प्रयुक्त और नवांश स्थिति के अनुसार तथा चन्द्रमा की प्रत्येक राशि (या नवांश) स्थिति पर विविध ग्रहों की दृष्टि का फल कहा है, वह लग्न, लग्न नवांश तथा लग्न पर विविध ग्रहों की दृष्टि को लागू करना चाहिये।

(ii) जिस राशि स्थित ग्रह का विचार कर रहे हैं, वह राशि और उस राशि का स्वामी यदि पूर्ण बली हो तो, वराहमिहिर कहते हैं कि वह फल पूर्ण रीति से ठीक बैठता है। और चन्द्रमा के बलाबल का, चन्द्रमा की राशि और राशीश बलवान् हैं या नहीं, जिस प्रकार विचार किया है, उसी प्रकार अन्य ग्रहों के बलाबल, राशि और राशीश का विचार कर फल निर्णय करना चाहिये।

(iii) वराहमिहिर बृहज्जातक के दृष्टि फलाध्याय १९ के श्लोक ९ में कहते हैं कि जो शुभ फल कहा गया है वह ग्रह यदि वर्गोत्तम (उसी राशि, उसी नवांश) में हो तो पूर्ण शुभ फल करता है। यदि अपने नवांश में हो तो भी शुभ फल (किन्तु उतना शुभ नहीं जितना वर्गोत्तम में) और अन्य के नवांश में हो तो अल्प फल करता है। और जो अनिष्ट फल कहा गया है, वह यदि ग्रह वर्गोत्तम में हो तो अल्प अनिष्ट फल करता है, स्वनवांश में हो तो मध्यम रूप से अनिष्ट करता है और अन्य ग्रह के नवांश में हो तो अधिक अनिष्ट फल करता है।

(iv) ग्रंथकारों ने राशि प्रयुक्त फल कहा और यह भी आदेश किया कि इस फल की योजना नवांश में भी करना। अब प्रश्न उठता है कि राशि तथा नवांश—दोनों के शुभ फल हों तो बहुत उत्तम। राशि और नवांश दोनों के निकृष्ट फल हों तो अत्यन्त अधम। इस प्रकार की स्थिति में तो निष्कर्ष निकालने में कोई कठिनता नहीं है। किन्तु यदि राशि और नवांश इन दोनों में से एक में तो शुभ फल आये और दूसरे में पाप फल—अर्थात् दोनों में विरुद्ध फल आयें तो कैसे सामञ्जस्य किया जाये? क्या निश्चय किया जाये? शुभ फल होगा या पाप फल? बृहज्जातक में वराहमिहिर ने यह प्रश्न उठाया है और इसका समाधान भी किया है। रुद्रभट्ट अपने विवरण में लिखते हैं कि राशिपति के फल की अपेक्षा नवांशपति का फल विशेष होता है। राशिपति के फल का निराकरण कर नवांशपति यदि बलवान् हो तो नवांशपति का फल ही होता है। अब तीन स्थिति उत्पन्न हो सकती हैं, उन स्थितियों में किस प्रकार निष्कर्ष निकालना यह कह सकते हैं।

(क) राशिपति की अपेक्षा नवांशपति बलवान् हों तो नवांशपति का फल होगा।

(ख) राशिपति और नवांशपति समान बली हों तो भी नवांशपति का फल होगा।

(ग) नवांशपति की अपेक्षा राशिपति बलवान् हो तो राशिपति का फल होगा।

इस प्रकार तारतम्य कर फल कहना चाहिए।

जातकपारिजातकार इस प्रकरण के उपसंहार में कहते हैं कि सभी ग्रह (जिस ग्रह का विचार करना है, वह) यदि शुभ ग्रह युत और शुभ ग्रह दृष्ट हों तो शुभ फल करते हैं ।।४८-५५।।

पहिले घर में स्थित ग्रहों का फल

मार्तण्डो यदि लग्नगोऽल्पतनयो जातः सुखी निर्घृणः
स्वल्पाशी विकलेक्षणो रणतलश्लाघी सुशीलो नटः।
ज्ञानाचाररतः सुलोचनयशःस्वातन्त्र्यकस्तूच्चगे
मीने स्त्रीजनसेवितो हरिगते रात्र्यन्धको वीर्यवान् ।।५६।।
क्षीणे शशिन्युदयगे बधिरोऽङ्गहीनः
प्रेष्यश्च पापसहिते तु गतायुरेव।
स्वोच्चस्वके धनयशोबहुरूपशाली
पूर्णे तनौ यदि चिरायुरुपैति विद्वान् ।।५७।।
क्रूरः साहसिकोऽटनोऽतिचपलो रोगी कुजे लग्नगे
विद्यावित्ततपःस्वधर्मनिरतो लग्नस्थिते बोधने।
जीवे लग्नगते चिरायुरमलज्ञानी धनी रूपवान्
कामी कान्तवपुः सदारतनयो विद्वान् विलग्ने भृगौ ।।५८।।
दुर्नासिको वृद्धकलत्ररोगी मन्दे विलग्नोपगतेऽङ्गहीनः।
महीपतुल्यः सुगुणाभिरामो जातः स्वतुङ्गोपगते चिरायुः ।।५९।।
क्रूरो दयाधर्मविहीनशीलो
राहौ विलग्नोपगते तु रोगी।
केतौ विलग्ने सरुजोऽतिलुब्धः
सौम्येक्षिते राजसमानभोगी ।।६०।।

अब ग्रहों का भावफल कहते हैं। ज्योतिष के प्रायः सभी फलित ग्रंथों में ग्रहों का भाव फल कहा गया है। बृहज्जातक, सारावली, फलदीपिका, मानसागरी, चमत्कारचिन्तामणि आदि ग्रंथों में विस्तार के साथ वर्णित है। सबकी तुलनात्मक विवेचना बहुत विस्तृत हो जायेगी, इस कारण केवल जातक पारिजातकार के कथन का भावानुवाद दिया जा रहा है। जिज्ञासु पाठक अन्य ग्रंथों का

भी अवलोकन करें। नीचे प्रथम भाव स्थित सूर्य आदि प्रत्येक ग्रह की स्थिति का फल कहते हैं। यह पुनः लिखा जाता है कि जन्म लग्न को प्रथम भाव मानना चाहिए। जन्म लग्न से जो राशि दूसरी हो, उसे द्वितीय राशि, जन्म लग्न से जो राशि तृतीय हो उसे तृतीय भाव—इसी प्रकार बारह राशियों को बारह भाव समझना। प्रथम भाव स्थित ग्रह का फल निम्नलिखित है :—

(i) सूर्य—थोड़े पुत्र हों, सुखी, कठोर प्रकृति का (निर्दय), थोड़ा भोजन करने वाला, नेत्रों में रोग (या नेत्र ज्योति में मान्द्य), युद्ध क्षेत्र में उत्साही, सुशील और नाट्य कला में दक्ष हो। ऊपर कठोर प्रकृति का कहा, तदनन्तर सुशील कहा, क्या इनमें विरोध नहीं है? नहीं। आशय है कि हृदय का क्रूर हो किन्तु वाणी और व्यवहार में सौम्य हो। पुनः कहते हैं कि लग्न में यदि मेष का सूर्य हो तो ज्ञान (विद्योपार्जन) और सदाचार में रत, यशस्वी और स्वतंत्र हो। उसके नेत्र सुन्दर हों, किन्तु वराहमिहिर ने लिखा है कि यदि मेष का सूर्य लग्न में हो तो धनी किन्तु तिमिरनयन (चक्षुरोगी) होता है। यदि लग्न में मीन राशि का सूर्य हो तो स्त्रियों से सेवित (स्त्रियां सेवा करें, या जातक स्त्रियों से विलास करे) हों। यदि सिंह का सूर्य लग्न में हो तो रात्र्यंध (रतोंधी) हो, किन्तु वीर्यवान् (पराक्रमी) हो।

(ii) चन्द्रमा—यदि क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो तो बहरा, अंगहीन (शरीर के किसी अवयव या इन्द्रिय में विकलता), प्रेष्य (छोटे दर्जे का काम करने वाला) हो। यदि क्षीण चन्द्र पाप ग्रह के साथ लग्न में हो तो अल्पायु हो। यदि वृष या कर्क का चन्द्रमा लग्न में हो तो रूपवान्, धनी और यशस्वी हो। यदि पूर्ण चन्द्र लग्न में हो तो दीर्घायु और विद्वान् हो।

(iii) मंगल—क्रूर, साहसी, अति चपल, घूमने फिरने या यात्रा करने का शौकीन, रोगी। (iv) बुध—विद्वान्, धनी, तपस्वी, अपने धर्म में रत। (v) बृहस्पति—दीर्घायु, धनी, रूपवान्, निर्मल, ज्ञानवान् (vi) शुक्र—कामी (विशेष काम वासना युक्त), सुन्दर शरीर, विद्वान्, स्त्री पुत्र सौख्य सहित। (vii) शनि—दुर्नासिक (खराब नाक वाला, या नाक में दुर्गन्ध या अन्य कोई रोग हो), रोगी अंगहीन (शरीर की किसी, इन्द्रिय या अंग में विकलता हो) अधिक वय की स्त्री (अपनी या अन्य की) से भोग करे किन्तु यदि लग्न में तुला का शनि हो तो महीप (राजा) के सदृश अनेक सद्गुणान्वित, दीर्घायु होता है। यदि धनु या मीन का शनि लग्न में हो तो भी अन्य आचार्यों के मत से विशेष राज योग होता है। (viii) राहु—दयाहीन, धर्म विहीन, रोगी। (ix) केतु—रोगी, अतिलोभी किन्तु राहु या केतु लग्न में शुभ ग्रह दृष्ट हो तो राजा के समान भोगशाली

होता है। राहु यदि सिंह राशि में लग्न में हो तो जातक धनी होता है और राजा के समान सुख भोगता है। ५६-६० ॥

यदि मकर या कुंभ का केतु लग्न में हो तो स्थिर धन युक्त (अर्थात् लक्ष्मी स्थिर हो—सदैव धनी रहे) और पुत्रवान् हो।

दूसरे घर में स्थित ग्रहों का फल

रविक्षेत्रोदये राहू राजभोगाय सम्पदि।
स्थिरार्थपुत्रान् कुरुते मन्दक्षेत्रोदये शिखी ॥६१॥
त्यागी धातुद्रव्यवानिष्टशत्रु-
वाग्मी वित्तस्थानगे चित्रभानौ।
कामी कान्तश्चारुवागिङ्गितज्ञो
विद्याशीलो वित्तवान् वित्तगेन्दौ ॥६२॥
धातोर्वादकृषिक्रियाटनपरः कोपी कुजे वित्तगे
बुद्ध्योपार्जितवित्तशीलगुणवान् साधुः कुटुम्बे बुधे।
वाग्मी भोजनसौख्यजित्तविपुलस्त्यागी धनस्थे गुरौ
विद्याकामकलाविलासधनवान्वित्तस्थिते भार्गवे ॥६३॥
असत्यवादी चपलोऽटनोऽधनः
शनौ कुटुम्बोपगते तु वञ्चकः।
विरोधवान्वित्तगते विधुन्तुदे
जनापराधी शिखिनि द्वितीयगे ॥६४॥

अब दूसरे घर में सूर्य आदि ग्रह हों तो उसका फल कहते हैं।

(i) सूर्य—त्यागी, धातु (सुवर्ण, रजत आदि) वान्, धनी, वाग्मी, इष्टशत्रु। मूल में इष्ट शत्रु शब्द आया है। इष्ट (मित्र) हैं शत्रु जिसके, यह एक अर्थ होता है। मित्रों का शत्रु यह दूसरा अर्थ हुआ। क्या अर्थ लिया जाये? ग्रंथकार का क्या आशय है, यह कहना कठिन है। (ii) चन्द्रमा—कामी, सुन्दर, मनोहर वाणी बोलने वाला, वुद्धिमान्, धनी, विद्यानुरागी। (iii) मंगल—धातु (सोना, चाँदी, लोहे) आदि से सम्बन्धित कार्य, खेती काम काज में संलग्न और इन सबके लिये घूमने फिरने वाला, तथा क्रोधी होता है। (iv) बुध—अपनी बुद्धि से धन उपार्जित करे, धनवान्, सुशील, गुणवान्, साधु (सदाचारी, सद्बुद्धि युक्त) (v) बृहस्पति—उत्तम भोजन करे, सुखयुक्त (या भोजन सौख्य युक्त), अत्यन्त धनी,

त्यागी । (vi) शुक्र--विद्वान्, काम (कन्दर्प) कला तथा विलास से युक्त, धनी। (vii) शनि--मिथ्यावादी, चपल, घूमने फिरने वाला, धनरहित, दूसरों को धोखा देने वाला । (viii) राहु—विरोध करने वाला। जातक का अन्य लोग विरोध करें या जातक स्वयं अन्य जनों का विरोध करे । (ix) केतु–लोगों का अपराध करे । ६२–६४ ।

तीसरे घर में स्थित ग्रहों का फल

शूरो दुर्जनसेवितोऽतिधनवान् त्यागी तृतीये रवौ
चन्द्रे सोदरराशिगेऽल्पधनिको बन्धुप्रियः सात्त्विकः ।
ख्यातोऽपारपराक्रमः शठमतिर्दुश्चिक्ययाते कुजे
मायाकर्मपरोऽटनोऽतिचपलो दीनोऽनुजस्थे बुधे ।।६५।।
भ्रातृस्थानगते गुरौ गतधनः स्त्रीर्निर्जितः पापकृत्
शुक्रे सोदरगे सरोषवचनः पापी वधूनिर्जितः ।
अल्पाशी धनशीलवंशगुणवान् भ्रातृस्थिते भानुजे
राहौ विक्रमगेऽतिवीर्यधनिकः केतौ गुणी वित्तवान् ।।६६।।
सोदरारातिगः शुक्रः शोकरोगभयप्रदः ।
तत्रैव शुभकारी स्यात् पुरतो यदि भास्करात् ।।६७।।

अब तीसरे घर में स्थित ग्रह का फल कहते हैं :—

(i) सूर्य—शूर, दुर्जन सेवित (दुर्जन उसकी सेवा करें, अत्यन्त धनी, त्यागी (ii) चन्द्रमा--अल्प धनी, वन्धु प्रिय, सात्त्विक । (iii) मंगल—विख्यात, अत्यन्त पराक्रमी, दुष्ट वुद्धि वाला। (iv) बुध—मायावी (सत्य तथा मिथ्या का प्रपंच करने वाल), घूमने फिरने वाला, अति चपल, दीन (धन में या व्यवहार में) (v) वृहस्पति—धन नष्ट हो जाये, पापकर्मा, स्त्रियों से निर्जित (जीता हुआ) (vi) शुक्र—पापी, क्रोध युक्त वाणी बोलने वाला, अपनी पत्नी के वश में। (vii) शनि—थोड़ा भोजन करने वाला, धनी, गुणी, अपने वंश के अनुसार शील-वान् (viii) राहु—अतिवीर्य (वल, पराक्रम) वान्, धनिक । (ix) केतु--धनी, गुणवान् ।

शुक्र के विषय में विशेष कहते हैं । शुक्र लग्न से तीसरे या छठे घर में हो तो रोग, शोक तथा भयकारक है किन्तु शुक्र सूर्य के पुरस्सर (आगे) हो तो शुभकारी है । ६५–६७ ।

चौथे घर में स्थित ग्रहों का फल

हृद्रोगी धनधान्यबुद्धिरहितः क्रूरः सुखस्थे रवौ
विद्याशीलसुखान्वितः परवधूलोलश्चतुर्थे विधौ।
भौमे बन्धुगते तु बन्धुरहितः स्त्रीनिर्जितः शौर्यवान्
बन्धुस्थे शशिजे विबन्धुरमलज्ञानी धनी पण्डितः ॥६८॥
वाग्मी धनी सुखयशोबलरूपशाली
जातः शठप्रकृतिरिन्द्रगुरौ सुखस्थे।
स्त्रीनिर्जितः सुखयशोधनबुद्धिविद्या-
वाचालको भृगुसुते यदि बन्धुयाते ॥६९॥
आचारहीनः कपटी च मातृक्लेशान्वितो भानुसुते सुखस्थे।
राहौ कलत्रादिजनावरोधी केतौ सुखस्थे च परापवादी ॥७०॥

अब चौथे घर में सूर्य आदि ग्रहों का फल कहते हैं :—

(i) सूर्य—हृदय रोगी (हृदय का रोग—जिसे अंग्रेजी में हार्ट डिजीज़ कहते हैं) क्रूर, धन, धान्य तथा बुद्धि से रहित। (ii) चन्द्रमा—विद्वान् सुखी, सुखी किन्तु दूसरे की पत्नियों से रमण की इच्छा वाला (iii) मंगल—शौर्यवान् (बहादुर) स्त्रियों से (अपनी या अन्य से) जीता हुआ, बन्धु रहित। (iv) बुध—धनी, पंडित, निर्मल ज्ञान वाला, बन्धु रहित। (v) बृहस्पति—वाग्मी, धनी, यशस्वी, सुखी, बलवान्, रूपवान् किन्तु शठ प्रकृति (दुष्ट बुद्धि युक्त)। (vi) शुक्र—धनी, सुखी, विद्वान्, बुद्धिमान्, यशस्वी, वाचाल, स्त्री से जीता हुआ। (vii) शनि—आचार-हीन, कपटी, माता सम्बन्धी क्लेश हो (माता का सुख कम हो, या माता बचपन में मर जाये)। हमारा अनुभव है कि तुला, मकर या कुम्भ के अतिरिक्त किसी अन्य राशि में चतुर्थ शनि हो तो वृद्धावस्था में धन का अभाव होता है। (viii) राहु—अपनी स्त्री आदि को अवरोध (रोक में, हिफाजत-परदे) में रखने वाला—अवरोध का यह अर्थ भी हो सकता है कि उनको अपने अनुशासन में रखने वाला। (ix) केतु—दूसरों की निन्दा करने वाला। ६८—७०।

पांचवें घर में स्थित ग्रहों का फल

राजप्रियश्चञ्चलबुद्धियुक्तः प्रवासशीलः सुतगे दिनेशे।
मन्त्रक्रियासक्तमना दयालुर्धनी मनस्वी तनये सतीन्दौ ॥७१॥

क्रूरोऽटनश्चपलसाहसिको विधर्मो
भोगी धनी च यदि पञ्चमगे धराजे ।
मन्त्राभिचारकुशलः सुतदारवित्त-
विद्यायशोबलयुतः सुतगे सति ज्ञे ॥७२॥
मन्त्री गुणी विभवसारसमन्वितः स्या-
दल्पात्मजः सुरगुरौ सुतराशियाते ।
सत्पुत्रमित्रधनवानतिरूपशाली
सेनातुरङ्गपतिरात्मजगे च शुक्रे ॥७३॥
मत्तश्चिरायुरसुखी चपलश्च धर्मी
जातो जितारिनिचयः सुतगेऽर्कपुत्रे ।
भीरुर्दयालुरधनः सुतगे फणीशे
केतौ शठः सलिलभीरुरतीव रोगी ॥७४॥

अब पांचवें घर में सूर्य आदि का फल कहते हैं :—

(i) सूर्य—राजा का प्रिय, चंचल बुद्धि युक्त, प्रवासशील (परदेश में अधिक रहने वाला) (ii) चन्द्रमा—धनी, मनस्वी, दयालु, मंत्रक्रिया (जप, अनुष्ठान आदि में संसक्त चित्त) ।(iii) मंगल—क्रूर, घूमने फिरने वाला, चपल, साहसी, भोगी, धनी, विधर्मी (जिसका अपने धर्माचरण में दृढ़ चित्त न हो) । (iv) बुध—मंत्रानुष्ठान में कुशल, पुत्र, पत्नी, धन, विद्या तथा यश बल से युक्त । (v) बृहस्पति—मंत्री, गुणी, वैभव युक्त, किन्तु पुत्र थोड़े हों ।(vi) शुक्र—सत्पुत्र और मित्रों से युक्त, धनी, अतिरूपशाली, सेना और घोड़ों का स्वामी। (vii) शनि—मत्त (जिसकी बुद्धि में मद-अहंकार हो), दीर्घायु, चपल, धार्मिक; अपने शत्रु समूह पर विजय प्राप्त करे । (viii) राहु—डरपोक, दयालु धन रहित (ix) केतु—शठ (दुष्ट) पानी से डरने वाला, अत्यन्त रोगी (हमारा अनुभव है कि प्रधानतया उदर विकार होता है) ॥ ७१—७४ ॥

छठे घर में स्थित ग्रहों का फल

कामी शूरो राजपूज्योऽभिमानी
ख्यातः श्रीमान् शत्रुयाते दिनेशे ।
अल्पायुः स्यात् क्षीणचन्द्रेऽरिसंस्थे
पूर्णे जातोऽतीव भोगी चिरायुः ॥७५॥

स्वामी रिपुक्षयकरः प्रबलोदराग्निः
श्रीमान् यशोबलयुतोऽवनिजे रिपुस्थे ।
विद्याविनोदकलहप्रियकृद्विशीलो
बन्धूपकाररहितः शशिजेऽरियाते ॥७६॥
कामी जितारिरबलोऽरिगतेऽमरेज्ये
शोकापवादसहितो भृगुजे रिपुस्थे ।
बह्वाशनो विषमशीलसपत्नभीतः
कामी धनी रविसुते सति शत्रुयाते ॥७७॥
राहौ रिपुस्थानगते जितारिश्चिरायुरत्यन्तसुखी कुलीनः ।
बन्धुप्रियोदारगुणप्रसिद्धविद्यायशस्वी रिपुगे च केतौ ॥७८॥

अब छठे घर में प्रत्येक ग्रह का फल कहते हैं :—

(i) सूर्य—कामी (विशेष कामवासना युक्त), शूर, राजा से सम्मानित, अभिमानी, विख्यात, धनवान् (ii) चन्द्रमा—यदि क्षीण चन्द्रमा हो तो अल्पायु हो, यदि पूर्ण चन्द्रमा हो तो दीर्घायु और अत्यन्त भोगी । (iii) मंगल—लोगों का स्वामी (जननायक), शत्रुओं का नाश करने वाला, जिसकी जठराग्नि प्रबल हो (जठराग्नि प्रबल होने से मनुष्य अधिक भोजन करता है और पाचन शक्ति भी उत्तम होती है), धनवान्, बलवान्, यशस्वी । (iv) बुध—विद्या विनोदी, कलह प्रिय, सौशील्यादि गुणरहित, बन्धुओं का उपकार न करे । (v) बृहस्पति—कामी जितारि (शत्रुओं को जीतने वाला) । वराह मिहिर ने लिखा है कि जातक के शत्रु न हों), अबल (बल रहित । शत्रुओं को जीते किन्तु बल रहित हो इसमें विरोधाभास प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में विरोध नहीं है । कल्याण वर्मा ने भी यही लिखा है, परन्तु स्पष्ट कर दिया है कि शरीर से दुर्बल हो किन्तु शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे) । (vi) शुक्र—शोक और अपवाद सहित । अपवाद क्या ? लोग उसकी बदनामी करें । शुक्र यदि षष्ठ स्थान में सूर्य के आगे हो तो शुभ होता है । देखिये इसी अध्याय का श्लोक ६७ । (vii) शनि—अधिक भोजन करने वाला जिसका (स्वभाव प्रकृति) उत्तम न हो, शत्रुओं से डरा हुआ, कामी, धनी । (viii) राहु—शत्रुओं को जीतने वाला, दीर्घायु अत्यन्त सुखी, कुलोचित आचार युक्त । (ix) केतु—बन्धु प्रिय, उदार, गुणी, प्रसिद्ध, विद्या यशस्वी (विद्या के कारण यशस्वी) । ७५–७८ ।

सातवें घर में स्थित ग्रहों का फल

स्त्रीद्वेषी मदनस्थिते दिनकरेऽतीव प्रकोपी खल-
श्चन्द्रे कामगते दयालुरटनः स्त्रीवश्यको भोगवान्।
स्त्रीमूलप्रविलापको रणरुचिः कामस्थिते भूमिजे
व्यङ्गः शिल्पकलाविनोदचतुरस्तारासुतेऽस्तं गते ।।७९।।
धीरश्चारुकलत्रवान् पितृगुरुद्वेषी मदस्थे गुरौ
वेश्यास्त्रीजनवल्लभश्च सुभगो व्यङ्गः सिते कामगे।
भाराध्वश्रमतप्तधीरधनिको मन्दे मदस्थानगे
गर्वी जारशिखामणिः फणिपतौ कामस्थिते रोगवान् ।।८०।।
अनङ्गभावोपगते तु केतौ कुदारको वा विकलत्रभोगः।
निद्री विशीलः परिहीनवाक्यः सदाऽटनो मूर्खजनाग्रगण्यः।।८१।।

अब सातवें घर में सूर्य आदि प्रत्येक ग्रह की स्थिति का फल कहते हैं— (i) सूर्य—स्त्रीद्वेषी (स्त्री से वैर हो), अत्यन्त क्रोधी, खल (दुष्ट)। (ii) चन्द्रमा—दयालु घूमने फिरने वाला, स्त्री के वश में रहे, भोगी। (iii) मंगल—स्त्री के कारण जो दुःख उठाये (स्त्री की मृत्यु हो जाये, या स्त्री सुख में कमी हो), युद्ध में रुचि रखने वाला। भगवान् रामचन्द्र की कुण्डली में उच्च राशि का मंगल था। भगवती सीता के कारण वनवास में और बाद में भी विलाप करना पड़ा। उनका शौर्य और युद्ध में पराक्रम तो प्रसिद्ध है ही। (iv) बुध– किसी अवयव में हीनता या रोग, शिल्पकला और विनोद में चतुर (v) बृहस्पति–सुन्दर पत्नी युक्त किन्तु अपने पिता और गुरु से द्वेष करे। (vi) शुक्र–वेश्याओं और स्त्रियों का प्यारा, सुन्दर, किन्तु शरीर के किसी अवयव में हीनता या रोग। (vii) शनि–भारवाही, बहुत रास्ता चलने वाला (यात्रा करने वाला), परिश्रम से तप्त, धीर, धनिक। (viii) राहु— घमंडी, व्यभिचारी, रोगी।(ix) केतु—पत्नी न हो या पत्नी अच्छी न हो(देखने में स्वास्थ्य में या स्वभाव में) भोग रहित, सौशील्यादि गुण रहित, निद्रालु (अधिक सोने वाला, अत्यन्त दीन वचन बोलने वाला, अत्यन्त भ्रमण शील, बुद्धि-हीन। ७५-८१।

आठवें घर में स्थित ग्रहों का फल

मनोऽभिरामः कलहप्रवीणः पराभवस्थे च रवौ न तृप्तः।
रणोत्सुकस्त्यागविनोदविद्याशीलः शशाङ्के सति रन्ध्रयाते।।८२।।

विनीतवेषो धनवान् गणेशो महीसुते रन्ध्रगते तु जातः।
विनीतबाहुल्यगुणप्रसिद्धो धनी सुधारश्मिसुतेऽष्टमस्थे ॥८३॥
मेधावी नीचकर्मा यदि दिविजगुरौ रन्ध्रयाते चिरायु-
र्दीर्घायुः सर्वसौख्यातुलबलधनिको भार्गवे चाष्टमस्थे।
शूरो रोषाग्रगण्यो विगतबलधनो भानुजे रन्ध्रयाते
राहौ क्लेशापवादी परिभवगृहगे दीर्घसूत्रश्च रोगी ॥८४॥
केतौ यदा रन्ध्रगृहोपयाते जातः परद्रव्यवधूरतेच्छुः।
रोगी दुराचाररतोऽतिलुब्धः सौम्येक्षितेऽतीव धनी चिरायुः॥८५।

अब आठवें घर में सूर्य आदि ग्रहों का फल कहते हैं—(i) सूर्य-जो मन को प्यारा लगे (अपने रूप या गुणों के कारण), कलह प्रवीण (झगड़ा या युद्ध करने में कुशल। फील्डमार्शल मानिक शा जिनने सन् १९७१ में भारत-पाकिस्तान युद्ध में पाकिस्तान पर विजय प्राप्त की की जन्म कुण्डली में अष्टम में सूर्य है) परन्तु ऐसा व्यक्ति तृप्त नहीं होता। (ii) चन्द्रमा—रण के लिए उत्सुक, त्यागशील, विनोदी, विद्याप्रिय (विद्या उपार्जन में दत्तचित्त)। (iii) मंगल—विनीत वेष, धनवान्, गणों (अनेक व्यक्तियों के समूहों) का स्वामी। (iv) बुध—अपनी विशिष्ट नीति (नय, विनय, चातुर्य, सद् व्यवहार) की अधिकता के कारण श्लाघ्य, प्रसिद्ध धनी। (v) बृहस्पति—मेधावी, नीच कर्म करने वाला, दीर्घायु। (vi) शुक्र–दीर्घायु, सब प्रकार के सुख तथा असामान्य बल से युक्त, धनिक। (vii) शनि–शूर अत्यन्त क्रोधी, धन और बल कम हो जाये। (viii) राहु–क्लेश उठाना पड़े, लोग उसकी निन्दा करें। (ix) केतु–दूसरे का धन और दूसरे की पत्नी प्राप्त करने का इच्छुक, रोगी, दुराचारी, अत्यन्त लोभी। किन्तु केतु यदि शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो अत्यन्त धनी और दीर्घायु होता है। ८२-८५।

नवें घर में स्थित ग्रहों का फल

आदित्ये नवमस्थिते पितृगुरुद्वेषी विधर्माश्रित-
श्चन्द्रे पैत्रिकदेवकार्यनिरतस्त्यागी गुरुस्थे यदा।
भूसूनौ यदि पित्र्यनिष्टसहितः ख्यातः शुभस्थानगे
सौम्ये धर्मगते तु धर्मधनिकः शास्त्री शुभाचारवान् ॥८६॥
ज्ञानी धर्मपरो नृपालसचिवो जीवे तपःस्थानगे
विद्यावित्तकलत्रपुत्रविभवः शुक्रे शुभस्थे सति।

मन्दे भाग्यगृहस्थिते रणतलख्यातो विदारो धनी
भाग्यस्थे भुजगे तु धर्मजनकद्वेषी यशोवित्तवान् ॥८७॥
केतौ गुरुस्थानगते तु कोपी वाग्मी विधर्मी परनिन्दकः स्यात् ।
शूरः पितृद्वेषकरोऽतिदम्भाचारो निरुत्साहरतोऽभिमानी ॥८८॥

अब सूर्य आदि ग्रह यदि नवें घर में हों तो उसका फल कहते हैं:—(i) सूर्य—पिता और गुरु से द्वेष करने वाला। अपने धर्म में आस्था न रख कर दूसरे धर्म में श्रद्धा रखे। दक्षिण भारत में पिता का विचार नवम से किया जाता है, उत्तर भारत में दशम से। 'कारको भावनाशाय'—अर्थात् ग्रह जिस भाव का कारक हो, उसी भाव में बैठे तो भाव को प्रायः बिगाड़ता है, इस सिद्धांत पर नवम स्थित सूर्य होने से पिता और गुरु से द्वेष करे, यह लिखा है, क्योंकि सूर्य क्रूर ग्रह है और नवम का कारक भी। किन्तु सदैव भाव में कारक स्थिति, भाव को नहीं बिगाड़ती। शनि अष्टम में अच्छा ही समझा जाता है। दशम में सूर्य, बुध, बृहस्पति या शनि अच्छा ही मानते हैं। (ii) चन्द्रमा—देवता (पूजा, पाठ) तथा पैतृक (पिता सम्बन्धी-पिता के जीवन काल में मान श्रद्धा, आज्ञा पालन तन, मन, धन, से सेवा, पिता के स्वर्गीय होने पर श्राद्ध आदि कार्यों में निरत, त्यागी। (iii) मंगल—पिता के लिये अनिष्ट (पिता की मृत्यु जल्दी हो जाये, या जातक पितृ-विमुख हो,) विख्यात। (iv) बुध—धर्मधनिक (धर्मिष्ठ या धर्म पालन से धनिक), शास्त्रों में निष्णात शुभ आचार वाला। (v) बृहस्पति—धार्मिक, राजा का मन्त्री। (vi) शुक्र—विद्वान्, धनी, स्त्री पुत्र तथा वैभव से युक्त। (vii) शनि—युद्ध में अपनी शूरवीरता, विख्यात, पत्नीहीन (पत्नी सुख कम हो), धनी। (viii) राहु—धर्म जनक द्वेषी, यशस्वी, धनी। मूल में धर्म जनक द्वेषी शब्द आया है। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने अर्थ किया है कि जो कानून के अनुसार पिता हो उसका द्वेषी। काशी से प्रकाशित पुस्तक के टीकाकार ने अर्थ किया है 'धार्मिक जनों का वैरी'। परन्तु यह दोनों अर्थ उपयुक्त नहीं हैं। वास्तविक अर्थ है अधार्मिक तथा पितृद्वेषी। (ix) केतु—शूर, पिता से द्वेष करने वाला, अतिदम्भ (पाषण्ड) युक्त आचार वाला, उत्साहहीन, अभिमानी ८६-८८।

दशवें घर में स्थित ग्रहों का फल

मानस्थिते दिनकरे पितृवित्तशील-
विद्यायशोबलयुतोऽवनिपालतुल्यः ।
चन्द्रो यदा दशमगो धनधान्यवस्त्र-
भूषावधूजनविलासकलाविलोलः ॥८९॥

मेषूरणस्थेऽवनिजे तु जाताः प्रतापवित्तप्रबलप्रसिद्धाः ।
व्यापारगे चन्द्रसुते समस्त–विद्यायशोवित्तविनोदशीलाः ॥६०॥

सिद्धारम्भः साधुवृत्तः स्वधर्मी
विद्वानाढ्यो मानगे चामरेज्ये ।
शुक्रे कर्मस्थानगे कर्षकाच्च
स्त्रीमूलाद्वा लब्धवित्तो विभुः स्यात् ॥६१॥

मन्दे यदा दशमगे यदि दण्डकर्ता
मानी धनी निजकुलप्रभवश्च शूरः ।
चोरक्रियानिपुणबुद्धिरतो विशीलो
मीनं गते फणिपतौ तु रणोत्सुकः स्यात् ॥६२॥

सुधीर्बली शिल्पविदात्मबोधी जनानुरागी च विरोधवृत्तिः ।
कफात्मकः शूरजनाग्रगण्यः सदाऽटनः कर्मगते च केतौ ॥६३॥

अब दसवें घर में सूर्य आदि ग्रह हों तो उसका फल कहते हैं:—(i) सूर्य-पिता का धन प्राप्त करे, पिता का सा शील (स्वभाव) हो । मूल में शील शब्द आया है, परन्तु हमारे विचार से इसका केवल यह अर्थ होना चाहिये कि पिता का धन प्राप्त करे, विद्वान्, यशस्वी, बलवान् राजा के सदृश हो । (ii)चन्द्रमा–धन, धान्य वस्त्र, आभूषण से सम्पन्न, स्त्रियों से विलास करने वाला । (iii) मंगल–प्रतापी, धनी, प्रबल, प्रसिद्ध । (iv) बुध–सब विद्याओं का ज्ञाता, विद्वान् धनी, विनोदशील । (v) बृहस्पति–जिस कार्य को प्रारम्भ करे उसमें सफलता प्राप्त करे, उत्तम आचार वाला (अथवा मूल में साधुवृत्तः शब्द आया है, उसका यह भी अर्थ हो सकता है कि न्यायोचित मार्ग से आजीविका उपार्जन करे) विद्वान्, आढ्य (धनी), अपने धर्म का पालन करने वाला । (vi) शुक्र-खेती बाड़ी या स्त्रियों से (स्त्रियों के सम्बन्धी कार्यों से) धन प्राप्त करे और विभु हो । (vii) शनि-दण्डकर्ता (ऐसे पद पर कार्य करे जहाँ अन्य जनों को दण्ड देने की क्षमता हो), मानी, धनी, अपने कुल में अग्रणी, शूर । (viii) राहु-रण के लिये उत्सुक (वीर), विशील (सौशील्यादि गुण रहित), चोरी के कार्य में जिसकी बुद्धि लगी रहे और चोरी के कार्य में निपुण । सम्प्रति रिश्वत लेना, चोर बाजार में सामान क्रय, विक्रय करना, कस्टम एक्साइज, आयकर की चोरी करना आदि । (ix) केतु–बुद्धिमान्, बली शिल्प के कार्य में बुद्धिमान् । जनानुरागी

सर्व सामान्य व्यक्तियों से सौहार्द रखने वाला) किन्तु दूसरों का विरोध करने वाला भी, आत्मज्ञान के लिये प्रयत्नशील । ८९-९३ ।

ग्यारहवें घर में स्थित ग्रहों का फल

भानौ लाभगते तु वित्तविपुलस्त्रीपुत्रदासान्वितः
सन्तुष्टश्च विषादशीलधनिको लाभस्थिते शीतगौ ।
आयस्थे धरणीसुते चतुरवाक्कामी धनी शौर्यवान्
सौम्ये लाभगृहं गते निपुणधीर्विद्यायशस्वी धनी ॥९४॥

आयस्थेऽमरमन्त्रिणि प्रबलधीविख्यातनामा धनी
लाभस्थे भृगुजे सुखी परवधूलोलाटनो वित्तवान् ।
भोगी भूपतिलब्धवित्तविपुलः प्राप्ति गते भानुजे
राहौ श्रोत्रविनाशको रणतलश्लाघी धनी पण्डितः ॥९५॥

उपान्त्ययाते शिखिनि प्रतापी परप्रियश्चान्यजनाभिवन्द्यः ।
सन्तुष्टचित्तः प्रभुरल्पभोगी शुभक्रियाचाररतः प्रजातः ॥९६॥

अब ग्यारहवें घर में सूर्य आदि ग्रहों का फल कहते हैं :—(i) सूर्य–बहुत धन हो, स्त्री, पुत्र, दास (नौकरों) से युक्त हो । (ii) चन्द्रमा–सन्तुष्ट, मन में दुखी रहने का स्वभाव हो, धनी हो । (iii) मंगल–चतुर वाणी बोलने वाला, कामी (काम वासना प्रधान), धनी, शूरवीर । (iv) बुध–निपुण बुद्धि, विद्या-यशस्वी (विद्वान् और यशस्वी अथवा विद्या के कारण यशस्वी), धनी । (v) बृहस्पति–बहुत बुद्धिमान, विख्यात नाम वाला धनी । (vi) शुक्र–सुखी, धनी, परायी स्त्रियों से विलास करने के लिये चंचल, भ्रमणशील । (vii) शनि–भोगी, राजा से बहुत अधिक धन प्राप्ति हो । (viii) राहु–धनी, पंडित, युद्ध में जिसकी प्रशंसा हो (युद्ध में पराक्रमी) किन्तु बहरा हो जाता है । (ix) केतु–प्रतापी, परप्रिय (औरों का प्रिय), अन्य जन जिसका सम्मान और सत्कार करें, सन्तुष्ट चित्त प्रभु, अल्प भोग करने वाला, सदाचारी, सत्कर्मा ॥९४-९६॥

बारहवें घर में स्थित ग्रहों का फल

व्ययस्थिते पूषणि पुत्रशाली
व्यङ्गः सुधीरः पतितोऽटनः स्यात् ।
चन्द्रेऽव्ययाते तु विदेशवासी
भौमे विरोधी धनदारहीनः ॥९७॥

बन्धुद्वेषकरो धनी विगतधीस्तारासुते रिष्फगे
चार्वाकी चपलोऽटनः खलमतिर्जीवे यदाऽन्त्यं गते।
शुक्रे बन्धुविनाशकोऽन्त्यगृहगे जारोपचारोऽधनी
मन्दे रिष्फगृहं गते विकलधीर्मूर्खो धनी वञ्चकः ॥६८॥

विधुन्तुदे रिष्फगते विशीलः
सम्पत्तिशाली विकलश्च साधुः।
पुराणवित्तस्थितिनाशकः स्या-
च्चलो विशीलः शिखिनि व्ययस्थे ॥६९॥

अब बारहवें घर में सूर्य आदि कोई ग्रह हो तो उसका फल कहते हैं :— (i) सूर्य—पुत्रवान्, व्यंग (शरीर के किसी अंग में हीनता या विकलता), बहुत धीर, पतित, भ्रमण शील। 'पतित' शब्द वैद्यनाथ दीक्षित ने बृहज्जातक से लिया है, जहां कहा गया है कि द्वादश में सूर्य होने से पतित होता है। पतित का अर्थ है कर्मभ्रष्ट। (ii) चन्द्रमा—विदेशवासी। (iii) मंगल—अन्य जनों का विरोध करने वाला, धन और स्त्रीहीन। (iv) बुध—बन्धुओं से द्वेष करने वाला, धनी, बुद्धि रहित। (v) बृहस्पति—नास्तिक, चपल, भ्रमणशील, दुष्ट बुद्धि। (vi) शुक्र—अपने बन्धुओं का विनाशक, परायी स्त्रियों से हास, विलास में प्रवीण, धनहीन। (vii) शनि—विकलबुद्धि, मूर्ख, धनी, वञ्चक (ठगने वाला)। (viii) राहु—विकल, सम्पत्तिशील, दुर्गुणी किन्तु परोपकारी। (ix) केतु—विशील (दुर्गुणी) दुष्ट, पहिले से जो धन आदि चला आया हो उसका नाश करने वाला।

यह बारह भावों में प्रत्येक ग्रह का फल कहा है। राशिफल पहिले कह चुके हैं। राशिफल और भावफल दोनों का सामञ्जस्य करना चाहिये। उदाहरण के लिये लग्न में धनुराशि का बृहस्पति जो शुभ फल दिखलायेगा वह मकर का बृहस्पति लग्न में होने पर भी कैसे दिखलायेगा। इसी कारण ग्रंथकार ने इसी अध्याय में आगे उच्च राशि का फल, ग्रह यदि अपनी मूल त्रिकोण या स्वराशि में हो, मित्र क्षेत्र, शत्रु क्षेत्र या नीच राशि में हो तो क्या फल, इसका पृथक्-पृथक् विवेचन किया। इसका अति शुभ फल होगा तो कहाँ तक या पाप फल होगा तो कितना, यह निष्कर्ष निकालते समय सारावली अध्याय ३० में भाव फल कहने के बाद, कल्याण वर्मा ने जो महत्त्वपूर्ण आदेश दिया है, वह पाठकों के लाभार्थ नीचे लिखा जाता है। अध्याय ३० के श्लोक ८७ में कल्याणवर्मा कहते हैं कि शुभग्रह, मित्रग्रह किसी ग्रह को देखते हैं तो शुभ फल में वृद्धि, पाप

फल में ह्रास होता है तथा पाप ग्रह, शत्रुग्रह किसी ग्रह को देखते हों तो पाप फल में वृद्धि, शुभफल में ह्रास होता है। अब आगे ग्रह यदि अपनी उच्चराशि में हो तो उसका फल कहते हैं।

अथ स्वोच्चफलम्

उच्चस्थे दिननायके यदि धनी सेनापतिः शीतगौ
मिष्टान्नाम्बरभूषणः कुतनयो भूनन्दने शौर्यवान्।
सौम्ये वंशविवर्द्धनो जनपतिर्धीमाञ्जितारिः सुखी
जीवे वंशकरः सुशीलचतुरो विद्वान्नृपालप्रियः ॥१००॥

शुक्रे स्वोच्चगते विलासवनितासङ्गीतनृत्यप्रियो
मन्दे ग्रामपुराटवीक्षितिपतिर्जातः कुमारीरतः।
राहौ चोरजनाधिपः कुलवरः शूरः कुकर्मी धनी
केतौ चोररतस्तु हीनधरणीपालप्रियो जायते ॥१०१॥

एकः स्वतुङ्गगः खेटो मित्रग्रहनिरीक्षितः।
जनयत्यवनीशं तं पूज्यं शस्तं सुहृद्युतम् ॥१०२॥

तुङ्गस्थैकवियच्चरे बलयुते जातः स धन्यो धनी
सामन्तः खचरद्वये त्रिषु यदा जातोऽवनीशो भवेत्।
उच्चस्थेषु चतुर्ग्रहेषु बलवान् केन्द्रेषु भूपालराट्
पञ्चव्योमचरेषु तुङ्गभवनप्राप्तेषु लोकेश्वरः ॥१०३॥

प्रत्येक ग्रह यदि अपनी उच्चराशि में हो तो उसका फल निम्नलिखित है:–
(i) सूर्य–धनी, सेनापति (ii) चन्द्रमा–उत्तम भोजन (मूल में मिष्टान्न–मिठाई लिखा है), वस्त्र, आभूषणों का भोक्ता। मूल में कुतनयो लिखा है अर्थात् जातक के पुत्र कुपुत्र हो। यह अर्थ कुछ बैठता नहीं। चन्द्रमा यदि अपनी उच्चराशि में हों तो कुपुत्र क्यों हों? सारावली अध्याय २३ श्लोक ८ में वृष-राशि स्थित चन्द्रमा का फल निम्नलिखित है।

व्यूढोरस्कोऽतिदाता धनकुटिलकचः कामुकः कीर्तिशाली
कान्तः कन्याप्रजावान् वृषसमनयनो हंसलीलाप्रचारः।

मध्यान्ते भोगभागी पृथुकटिचरणस्कन्धजा वास्यजङ्घः
सांकः पार्श्वास्यपृष्ठे ककुदि शुभगतिः क्षान्तियुक्तो गवीन्दौ ॥

बृहज्जातक के अध्याय १७ श्लोक २ में वृष राशिस्थ चन्द्रमा का फल निम्नलिखित है :—

कान्तः खेलगतिः पृथूरुवदनः पृष्ठास्यपार्श्वेऽङ्कित-
स्त्यागी क्लेशसहः प्रभुः ककुदवान् कन्याप्रजः श्लेष्मलः।
पूर्वैर्बन्धुभिरात्मजैर्विरहितः सौभाग्ययुक्तः क्षमी
दीप्ताग्निः प्रमदाप्रियः स्थिरसुहृन्मध्यान्त्यसौख्यो गवि ॥

इन मान्य ग्रंथों में कहीं भी वृष में चन्द्रमा होने से कुपुत्र हों, यह नहीं लिखा है। प्रतीत होता है लिपिकारों के दोष से किसी अन्य पाठ के स्थान में कुतनयो यह पाठ हो गया है।

(iii) मंगल यदि अपनी उच्चराशि में हो तो शूरवीर हो। अब अन्य ग्रहों की उच्चराशि स्थिति का फल कहते हैं। (iv) बुध—वंश की वृद्धि करने वाला, जनपति (लोकनायक), बुद्धिमान्, शत्रुओं को जीतने वाला, सुखी। (v) बृहस्पति—वंशकर (जिसका वंश पुत्र, पौत्रादि होने से आगे चले) सुशील, चतुर, विद्वान्, राजा का प्रिय। (vi) शुक्र—विलास, वनिता (स्त्रीभोग), संगीत तथा नृत्य का प्रिय। (vii) शनि—ग्राम, पुर (नगर), अटवी (वन), भूमि का स्वामी, किन्तु अविवाहित (कुमारी) कन्या में आसक्त। (viii) राहु—चोरों के समूह का स्वामी, कुल में प्रधान, शूर, कुकर्म करने वाला, धनी। (ix) केतु—चोरों में रत छोटे राजा का कृपापात्र। पुनः कहते हैं कि—

यदि एक भी ग्रह अपनी उच्चराशि में हो और मित्र ग्रह से दृष्ट हो तो जातक पूज्य, प्रशस्त, मित्रयुत राजा होता है।

यदि एक ग्रह उच्च हो और बलवान् हो (नीच नवांश, अस्त आदि दोष न हों) तो जातक धन्य (प्रशंसित) और धनी हो। यदि दो ग्रह ऐसे हों (उच्च और बलवान्) तो सामन्त (बड़ा जागीरदार) हो। यदि तीन ग्रह ऐसे हों तो राजा हो। यदि चार ग्रह अपनी-अपनी उच्च राशि में स्थित होकर केन्द्र में हों तो सम्राट् (जिसकी मातहत में अनेक छोटे राजा हों)। यदि पाँच ग्रह अपनी-अपनी उच्च राशि में बलवान् हों तो लोकेश्वर (लोक का स्वामी-आशय है बादशाह) हो। १००-१०३।

मूल त्रिकोण राशि स्थित फल

मार्तण्डे यदि मूलकोणगृहगे जातो धनी वन्दित-
श्चन्द्रे वित्तसुखान्वितश्च रुधिरे कोपी दयावर्जितः।
ताराजे धनिकस्तपी, सुरगुरौ भोगी नृपालप्रियः
शुक्रे ग्रामपुराधिपस्तरणिजे शूरस्तु राहौ धनी ॥१०४॥

अब ग्रह यदि अपनी मूल त्रिकोण राशि में हो तो उसका फल कहते हैं। किस ग्रह की कौन सी मूल त्रिकोण राशि है, यह अध्याय १ श्लोक २६ में कह चुके हैं।

(i) सूर्य—धनी, वन्दित (सम्मानित)। (ii) चन्द्रमा—धनी, सुखी। (iii) मंगल—क्रोधी, दयाहीन। (iv) बुध—धनिक, तपस्वी। (v) बृहस्पति—भोगी, राजा का प्रिय। (vi) शुक्र—ग्राम या नगर का स्वामी। (vii) शनि—शूर (viii) राहु—धनी। केतु का मूल त्रिकोण राशि स्थिति का फल पृथक् नहीं कहा है क्योंकि राहु यदि अपनी मूल त्रिकोण राशि में होगा तो उससे सप्तम केतु भी अपने मूल त्रिकोण में होगा। १०४।

अपनी राशि में स्थित ग्रहों का फल

स्वर्क्षे भास्वति चारुमन्दिरदुराचारोऽग्रकामी, विधौ
तेजोरूपधनी, कुजे कृषिवलख्यातो बुधे पण्डितः।
जीवे काव्यकलागमश्रुतपरः, शुक्रो मनस्वी धनी,
मन्दे चण्डपराक्रमो गतसुखी, राहौ यशोवित्तवान् ॥१०५॥

स्वजातिकल्पाधिकपूज्यवित्तो धनाधिकः क्ष्मापतितुल्यभूपः।
एकादिभिः स्वर्क्षगतैर्ग्रहेन्द्रैर्जालक्रमेणैव भवेन्मनुष्यः ॥१०६॥

अब प्रत्येक ग्रह, यदि वह अपनी राशि में हो तो—उसका फल कहते हैं। किस ग्रह की कौन सी राशि है—अर्थात् कौन सा ग्रह किस राशि का स्वामी है, यह अध्याय १ श्लोक १५ में कह चुके हैं।

(i) सूर्य—सुन्दर मकान हो, जातक का आचार अच्छा न हो, विशेष कामी (काम वासना युक्त) हो। (ii) चन्द्रमा—तेजस्वी, रूपवान्, धनी। (iii) मंगल—खेती बाड़ी तथा बल के लिये ख्यात। (iv) बुध—पंडित। (v) बृहस्पति-काव्य, कला, वेद, शास्त्र में लगा हुआ अर्थात् शास्त्राध्ययनशील। (vi) शुक्र—मनस्वी, धनी। (vii) शनि—प्रचंड, पराक्रमी, सुखहीन। (viii) राहु—यशस्वी, धनी केतु का पृथक् फल नहीं कहा क्योंकि राहु स्वगृही हो तो उससे सप्तम केतु भी स्वगृही होगा।

पुनः कहते हैं कि अपनी राशि में यदि (i) एक ग्रह हो तो अपने कुल के सदृश। (ii) दो हों तो अपनी जाति में श्रेष्ठ। (iii) तीन हों तो पूज्य (सम्मानित)। (iv) चार हों तो धनी। (v) पांच हों तो अधिक धनी। (vi) छः हों तो राजा के सदृश। (vii) और सात ग्रह स्वगृही हों तो राजा होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जितने ग्रह स्वगृही हों, उतना उत्तरोत्तर शुभ फल होता है। १०५-१०६।

मित्रक्षेत्री ग्रहों का फल

मित्रक्षेत्रगते रवौ दृढसुहृद्दाता यशस्वी भवे-
त्तारेशे बहुमानसौख्यधनिको जातो धरानन्दने।
वित्तागारसुहृत्प्रियः शशिसुते चातुर्यहास्याग्रणी-
र्जीवे शिष्टरतः सिते सुतसुखी मन्दे परान्नो धनी ॥१०७॥

ख्यातः, सुखी सुहृत्प्रीतश्चातुर्यगुणवान् सुधीः।
भोगी परान्नभोक्ता च मित्रराशिफलं क्रमात् ॥१०८॥

परद्रव्योपभोक्ता स्यादेको मित्रक्षगो ग्रहः।
द्वौ सुहृद्वित्तभोगी स्यात् त्रयः स्वार्जितवित्तभुक् ॥१०९॥

सुहृच्चतुष्टये दाता गणपः पञ्चखेचराः।
चमूपः षड्ग्रहाः सप्त ग्रहाः स्याद्धरणीपतिः ॥११०॥
त्रिभिरुच्चगतैर्भूपस्त्रिभिर्मन्त्री स्वराशिगैः।
त्रिभिरस्तं गतैर्दासः त्रिभिर्नीचं गतैर्जडः ॥१११॥

क्षेत्र, राशि, गृह, ऋक्ष, भवन, घर सबका एक ही अर्थ है। ऋक्ष नक्षत्र को भी कहते हैं। अब ग्रह यदि अपने मित्र की राशि में हो तो उसका फल कहते हैं। पंचधा मैत्री में मित्रामित्र की पाँच संज्ञा कही हैं (देखिये अध्याय २ के श्लोक ४५-४६)। अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु, अधिशत्रु। किन्तु इस अध्याय में मित्रक्षेत्री और शत्रुक्षेत्री दो का ही फल कहा है। बृहज्जातक में भी अध्याय २ में नैसर्गिक मित्र, सम और शत्रु तथा तात्कालिक मित्र, शत्रु का भेद कहा है किन्तु अध्याय २० श्लोक १० में प्रत्येक ग्रह की बारह भावों में स्थिति का क्या फल है, यह कहने पर वराहमिहिर कहते हैं कि भाव फल निरूपण करते समय यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि ग्रह अपनी राशि में है या अपनी उच्चराशि में किंवा मित्र की राशि में, शत्रुग्रह की राशि में या सम की राशि में। इसी सिद्धान्त के अनुसार हमने पहले लिखा है कि भाव फल और राशिफल का सामञ्जस्य कर फल निरूपण करना उचित है। अस्तु, प्रकृत विषय है कि फल निरूपण में पंचधामैत्री के अनुसार अधिमित्र आदि पांच स्थितियों का उल्लेखन कर वराहमिहिर ने मित, सम और शत्रु केवल इन तीन का उल्लेख किया है। जातक पारिजातकार ने इस अध्याय में केवल दो का—मित्रक्षेत्री और शत्रुक्षेत्री ग्रह का निरूपण किया है। तब ऐसी स्थिति में नैसर्गिक मित्रता, शत्रुता का विचार करना या तात्कालिक का? इस सम्बन्ध में हमारा मन्तव्य है कि नैसर्गिक सम्बन्ध को ही मुख्य मानना क्योंकि वराहमिहिर ने मित्र, सम तथा शत्रु तीन का ही उल्लेख किया और सम केवल नैसर्गिक सम्बन्ध में होता है, तात्कालिक में नहीं। अतः यहाँ वराहमिहिर द्वारा नैसर्गिक मित्रता आदि ही इंगित है, तात्कालिक नहीं। फलदीपिका अध्याय ४ श्लोक १० में भी कहा है कि नैसर्गिक सम्बन्ध की मुख्यता है।

'नैसर्गिकशत्रुसुहृत्त्वमेव भवेत्प्रमाणं फलकारि सम्यक्।'

अब दूसरी शंका उठती है। यदि जातकपारिजात में जो मित्रक्षेत्री और शत्रुक्षेत्री दो का फल कहा, वह नैसर्गिक मित्र, शत्रु के विचार से लेना तो, यदि कोई ग्रह समक्षेत्री हो तो क्या व्यवस्था करना? इसका उत्तर यह है कि वह न मित्रक्षेत्री के समान शुभफल करेगा, न शत्रुक्षेत्री के समान अनिष्ट फल। उसका फल बीच का होगा। यह भी सिद्ध है कि यदि ग्रह अधिमित्र क्षेत्री हो तो और भी सुन्दर फल होगा। अब यदि सूर्य आदि ग्रह मित्रक्षेत्री हों तो प्रत्येक का पृथक् पृथक् फल निर्देश करते हैं।

(i) सूर्य–दृढ मित्र (पक्का दोस्त), दाता (दानशील), यशस्वी। (ii) चन्द्रमा–अत्यन्त सम्मानित, सुखी, धनी। (iii) मंगल–धनी, अच्छा मकान हो, मित्रों का प्रिय हो। (iv) बुध–विशेष चतुर और विनोदी (हास्यप्रिय)।

(v) बृहस्पति—अच्छे लोगों के साथ सहवास और सम्पर्क हो। (vi) शुक्र—पुत्रवान्, सुखी। (vii) शनि—दूसरे का (मित्रों का) भोजन खाये, धनी। पुनः कहते हैं कि मित्रक्षेत्री यदि सूर्य हो तो ख्यात, चन्द्रमा हो तो सुखी, मंगल हो तो मित्रों का प्रिय, बुध हो तो चतुर और गुणी, बृहस्पति हो तो विद्वान्, शुक्र हो तो भोगी, शनि हो तो (बिना स्वयं परिश्रम किये) दूसरों का (मित्रों का) भोजन करे।

यदि एक ग्रह मित्रक्षेत्री हो तो दूसरों के द्रव्य का उपभोग करे, दो मित्रक्षेत्री हों तो मित्र के धन का उपभोक्ता, तीन हों तो स्वयं उपार्जन करे और भोग करे, चार हों तो दाता (दानशील), पांच हों तो गणप (व्यक्ति समूहों का नायक), छः हों तो सेनापति और सात हों तो राजा।

यदि तीन ग्रह अपनी अपनी उच्च राशि में हों तो राजा, तीन ग्रह अपनी अपनी राशि में हों तो राजा का मंत्री, तीन ग्रह अस्त (सूर्य सान्निध्य के कारण दिखायी न दें) तो दास (हीनसेवक) और तीन ग्रह यदि अपनी अपनी नीच राशि में हों तो जड़-निर्बुद्धि होता है। १०७-१११।

शत्रुक्षेत्री ग्रहों का फल

शत्रुक्षेत्रगते रवौ पितृसुखत्यागी च सेवापरः
शीतांशौ यदि मातृदुःखनिरतो हृद्रोगशाली भवेत्।
भूसूनौ विकलोऽकृतज्ञमलिनः सौम्ये सुखी पापधी-
र्जीवे भव्यरतः सिते तु भृतको मन्देऽध्वशोकाकुलः ॥११२॥

मिश्रदा रिपुगाः पञ्च षड् ग्रहा हीनसौख्यदाः।
सर्वदुःखकराः सप्त मूढाः कुर्वन्त्यशोभनम् ॥११३॥

अब शत्रुक्षेत्री यदि ग्रह हो तो सूर्य आदि का पृथक् पृथक् फल कहते हैं। यह समझना चाहिये कि ग्रह यदि अधिशत्रुक्षेत्री हो तो और भी अधिक अनिष्ट फल होगा।

(i) सूर्य-पिता का सुख नहीं होता या कम होता है, जातक दूसरे की सेवा से जीविकोपार्जन करता है। (ii) चन्द्रमा—माता सम्बन्धी दुःख होता है। (भाव यह है कि चन्द्रमा मातृ-कारक है, इसलिये इस सम्बन्ध में सुख हानि करता है।) तथा हृदय का रोग (हार्ट डिज़ीज) संभावित है। चन्द्रमा

मन अर्थात् हृदय का कारक है, इस कारण यह फल कहा है। (iii) मंगल—विकल (शरीर से या मन से), कृतघ्न, मलिन। (iv) बुध—सुखहीन, पाप बुद्धि (v) बृहस्पति—सदैव भविष्य के विषय में सोचता रहे (वर्तमान में क्रियाशील न हो) एक पुस्तक में पाठ है भव्यरतः और टीकाकार ने अर्थ किया है कि अच्छे कार्यों में रत रहे। परन्तु यह पाठ सम्यक् नहीं है क्योंकि अच्छे कार्यों में रत रहना शुभ फल है और शत्रुक्षेत्री ग्रह शुभ फल में हानि करता है। इस कारण भव्यरतः—भविष्य के लिये मनोरथ बनाता रहे, वर्तमान में निष्क्रिय हो, यह पाठ युक्तिसंगत है। (vi) शुक्र—भृतक (नौकर होना हीनता का द्योतक है)। (vii) शनि—सदैव निरर्थक रास्ता चलता रहे, शोकाकुल हो।

शत्रु राशि में पांच ग्रह हों तो मिला-जुला (कुछ अच्छा, कुछ खराब) फल होता है। छः ग्रह शत्रु राशि में हों तो सुखहीन हो। और सात ग्रह शत्रु क्षेत्री हों तो अनेक प्रकार का दुःख करते हैं। अस्त ग्रह अनिष्ट फल करते हैं। ११२-११३।

नीच राशि स्थित ग्रह फल

नीचस्थे दिननायके तु पतितोऽबन्धुः प्रवासे रतः
शीतांशौ सरुजोऽल्पपुण्यधनवान् भौमे कृतघ्नो धनी।
क्षुद्रो बन्धुविरोधकृच्छशिसुते जीवेऽपवादी खलः
शुक्रे दुःखरतः शनौ गतधनस्त्रीको विपन्नः खलः ॥११४॥

स्वेषूच्चभावेषु फलं समग्रं त्रिकोणवत्स्यात्फलमंशकेषु।
स्वराशितुल्यं सुहृदंशकेषु नीचारिमूढेष्वरिराशितुल्यम् ॥११५॥

स्वोच्चत्रिकोणस्वसुहृच्छत्रुनीचगृहार्कगः।
फलं सम्पूर्णपादोनदलपादाल्पनिष्फलम् ॥११६॥

केन्द्रत्रिकोणगाः सर्वे शुभदा बलिनः शुभाः।
त्रिषडायगताः पापा बलिनो यदि शोभनाः ॥११७॥

षट्पञ्चकत्रिचतुरक्षिवियच्चरेन्द्र-
सम्पर्कजद्युचरभावभवानि यानि।
तुङ्गादिकग्रहफलानि च कीर्तितानि
प्रद्योतनप्रमुखलब्धवरप्रसादात् ॥११८॥

अत्र सूर्य आदि ग्रह यदि नीच राशि में हों तो प्रत्येक ग्रह का पृथक् पृथक् फल कहते हैं।

(i) सूर्य–पतित, बन्धुहीन, सदा प्रवासी (पहिले परदेश में रहना कष्ट लक्षण समझा जाता था)। (ii) चन्द्रमा–रोगी, अल्पधनी, पुण्य कार्य थोड़ी-मात्रा में करे। (iii) मंगल–कृतघ्न किन्तु धनी। (iv) बुध–क्षुद्र, बन्धुओं से विरोध करे। (v) बृहस्पति–दुष्ट लोग उसकी निन्दा करें। (vi) शुक्र–दुःखी। (vii) शनि–स्त्री और धन का सुख न हो, दुष्ट, कष्टग्रस्त।

अब कहते हैं कि अपनी उच्च राशि में पूर्ण फल होता है। नवांश (स्वनवांश) का वही फल जो अपनी मूल त्रिकोण राशि में कहा गया है। यदि अपने मित्र के नवांश में ग्रह हो तो वही फल प्राप्त होता है, जो स्वगृही कहा है। और यदि ग्रह अपने नीच नवांश या शत्रुनवांश में हो या अस्त हो तो वही दुष्ट फल जो शत्रु राशि स्थित ग्रह का कहा है।

यदि शुभ ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में बलवान् हों तो ऐसे सभी ग्रह शुभ फल प्रदान करते हैं। पाप ग्रह यदि बलवान् होकर लग्न से तृतीय, षष्ठ या एकादश में हों तो अच्छा फल प्रदान करते हैं।

अब ग्रंथकार कहते हैं कि सूर्य आदि ग्रहों की कृपा से इस अध्याय में दो, तीन, चार, पाँच, छः ग्रहों की युति का फल, ग्रहों का राशि, भाव फल और उच्च राशि स्थिति आदि का फल कहा गया है। ११४-११८।
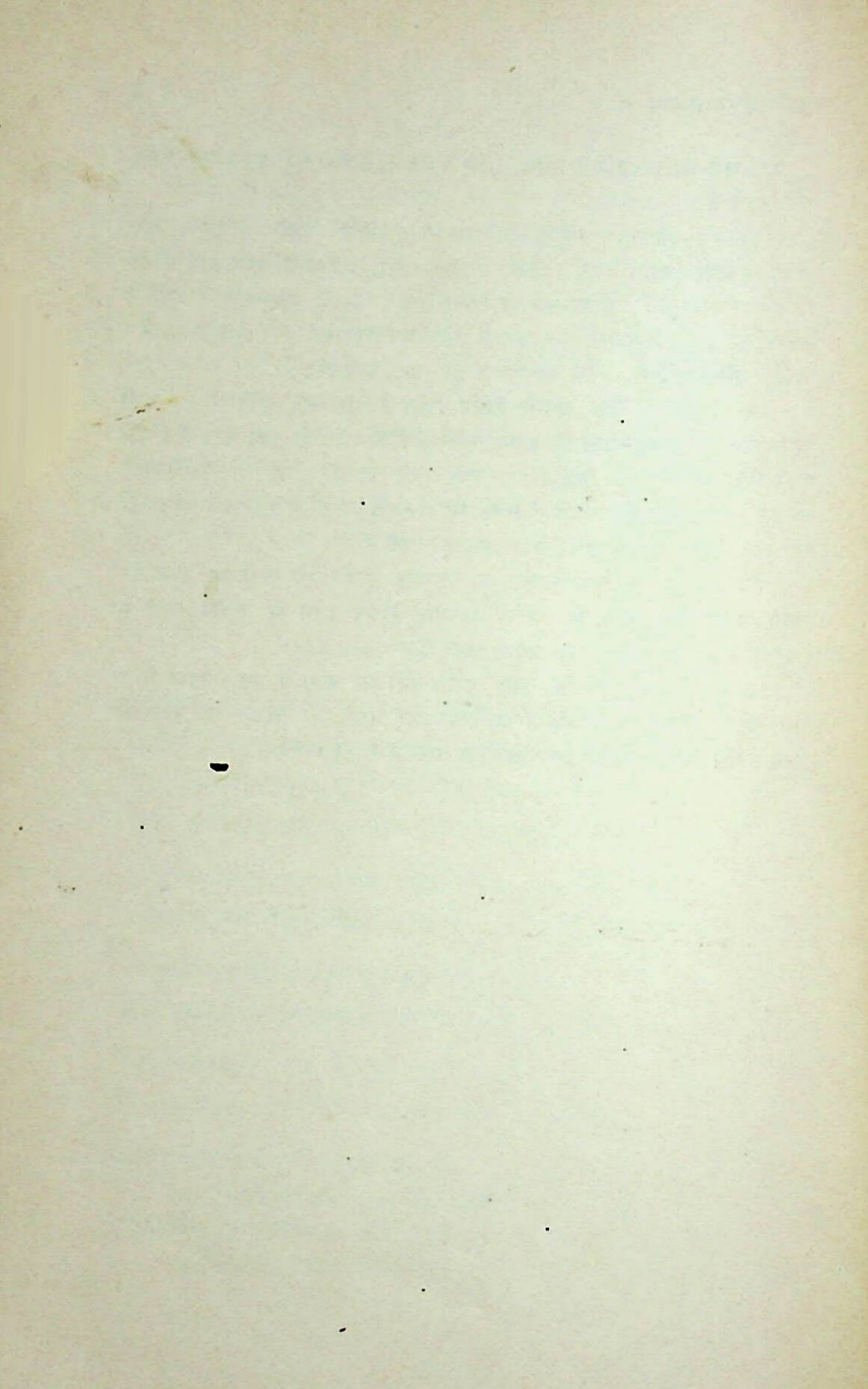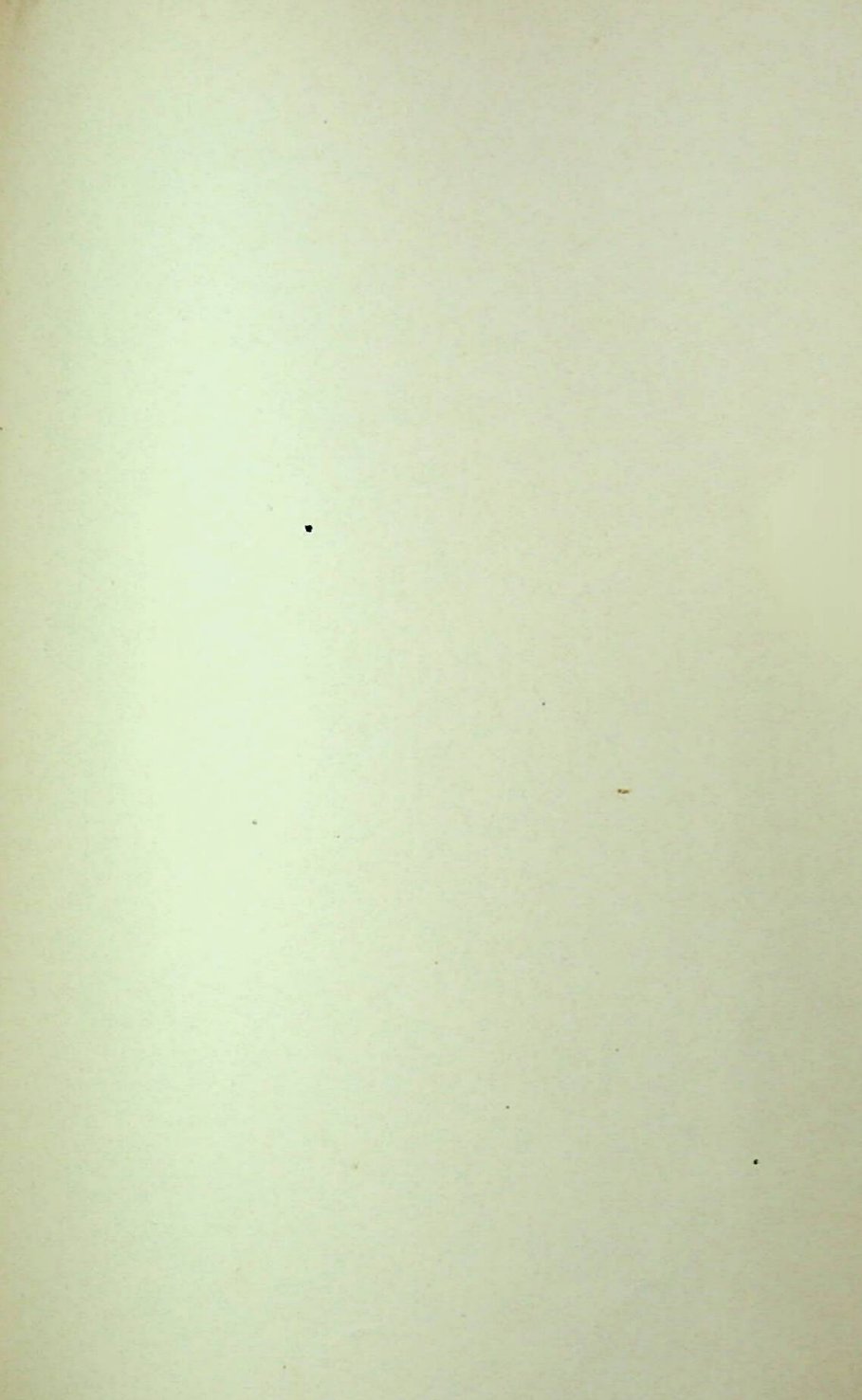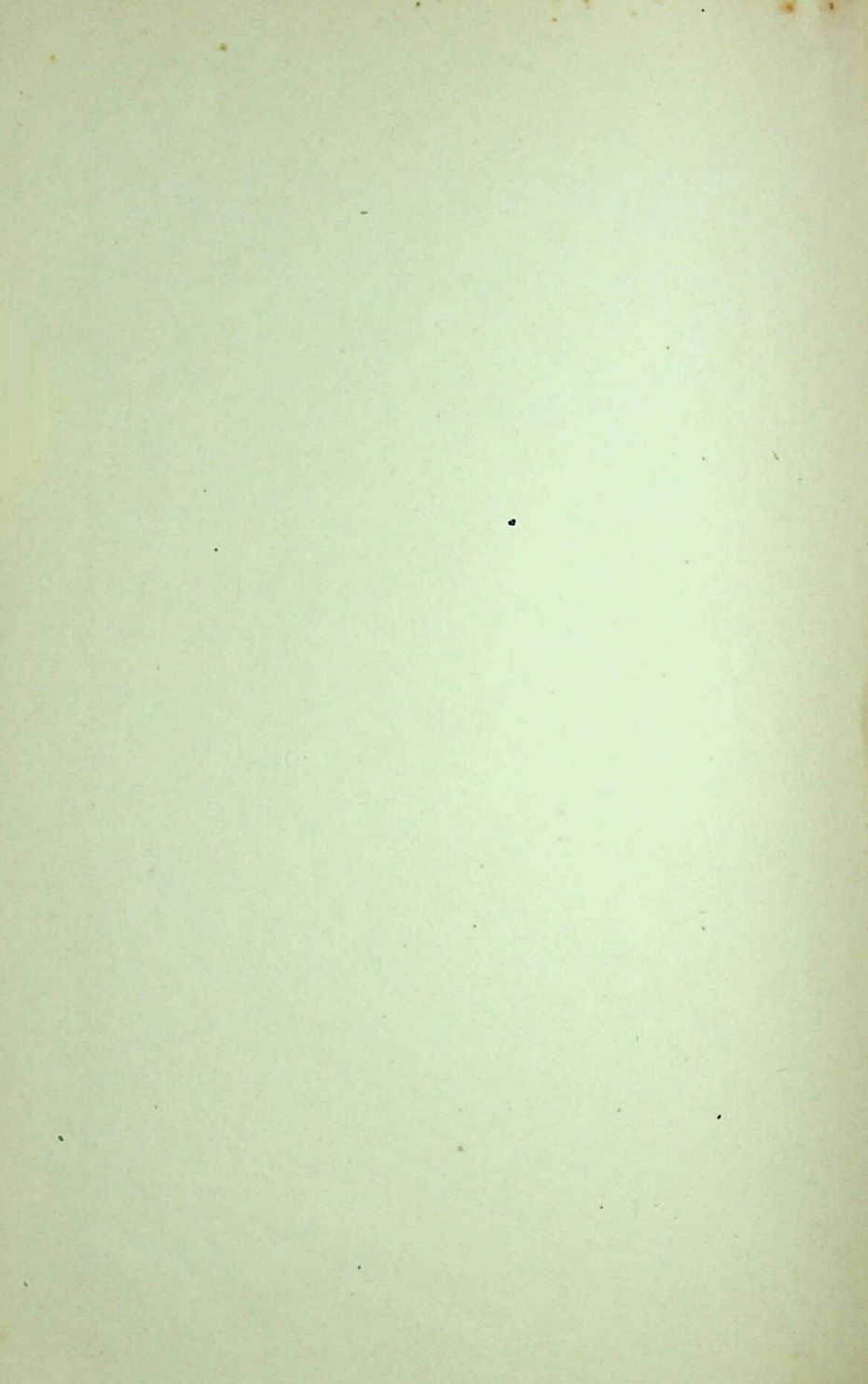
लेखक की अन्य कृतियां

फलदीपिका—आज से प्राय: ४०० वर्ष पहले फलित ज्योतिष के इस अनुपम ग्रन्थ की रचना श्री मंत्रेश्वर ने दक्षिण भारत में की थी। दक्षिण भारत में प्रचलित फलित ज्योतिष के बहुत-से नवीन सिद्धान्त इसमें दिए गए हैं, जिनका अध्ययन उत्तर भारत के पंडितों के लिए नवीन होगा, क्योंकि ये सिद्धान्त उत्तर भारत में अब तक प्राप्त संस्कृत ग्रन्थों में भी उपलब्ध नहीं थे। श्रीरामानुजकृत फलितज्योतिष-ग्रन्थ—भावार्थरत्नाकर—भी हिन्दी में उपलब्ध नहीं है। उसके सारभूत फलित ज्योतिष के ४५० योग इस ग्रन्थ में दिए गए हैं। ज्योतिष के प्रेमियों के लिए इसमें सर्वथा नवीन पाठ्यसामग्री प्रस्तुत है।
(अजिल्द) रु० ५०; (सजिल्द) रु० ७५

त्रिफला—इस पुस्तक में फलित ज्योतिष के तीन दुर्लभ संस्कृत ग्रन्थों—सुश्लोक-शतक, शतमंजरी और बेडाजातक—की हिन्दी में व्याख्या प्रस्तुत की गई है। रु० २५

अङ्कविद्या— यह जन्म की अंग्रेजी तारीख और मास के आधार पर भविष्यफल बतानेवाला सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। रु० १०

सुगमज्योतिष-प्रवेशिका— इस ग्रन्थ में अनेक शास्त्रों का अवलोकन करके उनका सार-संग्रह प्रस्तुत किया गया है। इसके चार भाग है—(१) जन्म-कुण्डली का गणित और फलित (२) वर्ष-कुण्डली विचार (३) प्रश्न-कुण्डली, एवं (४) मुहूर्त-विचार।

जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका)— इस ग्रन्थ में दक्षिण भारत के प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ जातकादेशमार्ग की हिन्दी में व्याख्या दी गई है। इसमें अष्टकवर्ग प्रकरण, भाव-विचार, दम्पती में आनुकूल्य आदि विषयों का संग्रह है। रु० १०

भारतीय लग्न सारिणी—बिना पंचाग, सूर्योदय या इष्टकाल के, जन्म की तारीख, घंटे, मिनट के आधार पर लग्न स्पष्ट करने की सर्वोत्तम पुस्तक है। रु० १६

हस्त-रेखा-विज्ञान—इसमें पाश्चात्य तथा भारतीय सिद्धान्तों के आधार पर हस्त-रेखाएं देखने का वर्णन है। प्रस्तुत ग्रन्थ को चार खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड में हस्त-परीक्षा-विचार, द्वितीय खण्ड में हस्त-रेखा-विचार, तृतीय खण्ड में अन्य रेखाओं और हाथ पर विध चिह्नों के प्रभाव का वर्णन है और चतुर्थ खण्ड में शरीर के लक्षणों का निरूपण है। ज्योतिष-शास्त्र के इच्छुकों के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। (अजिल्द) रु० ४०; (सजिल्द) रु० ६०

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली ☐ वाराणसी ☐ पटना